आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति रचित

गोम्मटसार

(कर्मकाण्ड)

भाग-१

सम्पादन-अनुवाद

डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोम्मटसार

जैन-धर्म के जीवतत्त्व और कर्मसिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या करनेवाला महान् ग्रन्थ है 'गोम्मटसार'। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (दसवीं शताब्दी) ने इस वृहत्काय ग्रन्थ की रचना 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' और 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' के रूप में की थी। डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये और सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री के सम्पादकत्व में यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ से सन् १९७८-१९८१ में प्राकृत मूल गाथा, श्रीमत् केशववर्णी विरचित कर्णाट वृत्ति जीवतत्त्व-प्रदीपिका, संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत प्रस्तावना के साथ पहली बार चार वृहत् जिल्दों (गोम्मटसार जीवकाण्ड, भाग १,२ और गोम्मटसार कर्मकाण्ड, भाग १,२) में प्रकाशित हुआ था। और अब जैन धर्म-दर्शन के अध्येताओं एवं स्वाध्याय-प्रेमियों को समर्पित है ग्रन्थ का यह नया संस्करण, नयी साजसज्जा के साथ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक—१६

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति रचित

गोम्मटसार

(कर्मकाण्ड)

भाग-१

[श्रीमत्केशववर्णिविरचित कर्णाटवृत्ति, संस्कृत टीका जीवतत्त्वप्रदीपिका,
हिन्दी अनुवाद तथा प्रस्तावना सहित]

सम्पादन एवं अनुवाद
डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये
सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ

तृतीय संस्करण : १९९९ □ मूल्य १९५.०० रुपये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ६, वीर नि. सं. २४७०, विक्रम सं. २०००, १८ फरवरी, १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम संस्करण)

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री
डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३
मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली-११० ०३२

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA : Prakrit Grantha No. 16

GOMMAṬASĀRA

(KARMAKĀṆḌA)

of

ACHARYA NEMICHANDRA SIDDHANTACHAKRAVARTI

VOL. I

[With Karṇāṭa-vṛtti, Sanskrit Ṭikā Jivatattvapradipikā,
Hindi Translation & Introduction]

by

Dr. A. N. Upadhye
Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri

BHARATIYA JNANPITH

Third Edition : 1999 □ Price Rs. 195.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHARATIYA JNANPITH

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N. Sam. 2470 • Vikrama Sam. 2000 • 18th Feb. 1944

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

Founded by
Late Sahu Shanti Prasad Jain
In memory of his late Mother Smt. Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
late Smt. Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical,
puranic, literary, historical and other original texts
available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi,
Kannada, Tamil etc., are being published
in the respective languages with their
translations in modern languages.
Also
being published are
catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies,
art and architecture by competent scholars,
and also popular Jain literature.

•

General Editors (First Edition)

Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri
Dr. Jyoti Prasad Jain

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at : Nagri Printers, Delhi-110032

All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

कर्मसिद्धान्त

गोम्मटसारका प्रथम भाग जीवकाण्ड जीवसे सम्बद्ध है और उसका यह दूसरा भाग कर्मकाण्ड कर्मसे सम्बद्ध है। साधारण रूपमें जो कुछ किया जाता है उसे कर्म या क्रिया कहते हैं। जैसे खाना, पीना, चलना, बोलना, सोचना आदि। किन्तु यहाँ कर्म शब्दसे केवल क्रियारूप कर्म विवक्षित नहीं है। महापुराणमें कर्मरूपी ब्रह्माके पर्याय शब्द इस प्रकार कहे हैं—

विधिः स्रष्टा विधाता च दैवं कर्म पुराकृतम्।
ईश्वरश्चेति पर्याया विज्ञेयाः कर्मवेधसः ॥ ४।३७ ॥

अर्थात् विधि, स्रष्टा, विधाता, दैव, पुराकृत कर्म, ईश्वर ये कर्मरूपी ब्रह्माके वाचक शब्द हैं।

कर्मका आशय—

यहाँ कर्म शब्दसे इसी विधाताका ग्रहण अभीष्ट है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि जो जीवित हैं एक दिन वे मरणको प्राप्त होते हैं और उनका स्थान नये प्राणी लेते हैं। जीवन और मरणकी यह प्रक्रिया अनादिसे चली आती है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि संसारमें विषमताका साम्राज्य है—कोई अमीर है कोई गरीब। आज जो अमीर है कल वह गरीब हो जाता है और गरीब अमीर बन जाता है। कोई सुन्दर है कोई कुरूप। कोई बलवान् है कोई कमजोर। कोई रोगी है कोई नीरोग। कोई बुद्धिमान् है कोई मूर्ख। यदि यह विषमता विभिन्न कुलोंके या देशोंके मनुष्योंमें ही पायी जाती तब भी एक बात थी। किन्तु एक कुलकी तो बात ही क्या, एक ही माताकी कोखसे जन्म लेनेवाली सन्तानोंमें भी यह पायी जाती है। एक भाई सुन्दर है तो दूसरा असुन्दर। एक भाई बुद्धिमान् है तो दूसरा मन्दबुद्धि। एक भाई शरीरसे स्वस्थ है तो दूसरा जन्मसे रोगी। जिन देशोंमें समाजवाद है वहाँ भी इस प्रकारकी विषमता वर्तमान है। मनुष्योंकी तो बात क्या, पशु योनिमें भी यह विषमता देखी जाती है। एक वे कुत्ते हैं जो पेट भरनेके लिए मारे-मारे फिरते हैं, जिन्हें खाज और घाव हो रहे हैं। दूसरे वे कुत्ते हैं जो पेट-भर दूध-रोटी खाते हैं और मोटरोंमें घूमते हैं। इसका क्या कारण है। इसपर विचारके फलस्वरूप ही दर्शनोंमें आत्मवाद, परलोकवाद और कर्मवादके सिद्धान्त अवतरित हुए हैं। इस कर्मवादके सिद्धान्त को आत्मवादी जैन सांख्ययोग, नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक आदि दर्शन तो मानते ही हैं अनात्मवादी बौद्धदर्शन भी मानता है। इसके लिए राजा मिलिन्द और स्थविर नागसेनका निम्न संवाद द्रष्टव्य है—

राजा बोला—भन्ते! क्या कारण है कि सभी आदमी एक ही तरहके नहीं होते? कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भद्दे, कोई सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बड़े प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊँचे कुलवाले, कोई बेवकूफ, कोई होशियार क्यों होते हैं?

स्थविर बोले—महाराज! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियाँ एक-जैसी नहीं होतीं? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तीती, कोई कड़वी, कोई कसैली और कोई मीठी होती हैं?

भन्ते! मैं समझता हूँ कि बीजोंके भिन्न-भिन्न होनेसे ही वनस्पतियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाराज ! इसी तरह सभी मनुष्योंके अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होनेसे वे सभी एक तरहके नहीं हैं। कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले होते हैं।

भगवान् (बुद्ध) ने भी कहा है—हे मानव ! सभी जीव अपने कर्मोंसे ही फलका भोग करते हैं। सभी जीव कर्मोंके आप मालिक हैं। अपने कर्मोंके अनुसार ही नाना योनियोंमें उत्पन्न होते हैं। अपना कर्म ही अपना बन्धु है, अपना कर्म ही अपना आश्रय है, कर्म ही से ऊंचे और नीचे होते हैं।

—मिलिन्द प्रश्न, पृ. ८०-८१।

इसी तरह ईश्वरवादी भी मानते हैं। न्यायमंजरीकार (पृ. ४२) ने कहा है—"संसारमें कोई सुखी है, कोई दुःखी है, किसीको खेती आदि करनेपर विशेष लाभ होता है, किसीको उलटी हानि होती है। किसीको अचानक सम्पत्ति मिल जाती है, किसीपर बैठे-बैठाये बिजली गिर जाती है। ये सब बातें किसी दृष्ट कारणकी वजहसे नहीं होतीं, अतः इनका कोई अदृष्ट कारण मानना चाहिए।"

अन्य दर्शनोंमें कर्मका स्वरूप—

उक्त कर्मसिद्धान्तके विषयमें ऐकमत्य होते हुए भी कर्मके स्वरूप और उसके फलदानके सम्बन्धमें मतभेद है—परलोकवादी सभी दार्शनिकोंका मत है कि हमारा प्रत्येक अच्छा या बुरा कार्य कर्तापर अपना संस्कार छोड़ जाता है। उस संस्कारको नैयायिक[1] और वैशेषिक धर्म या अधर्मके नामसे कहते हैं। योग[2] उसे कर्माशय कहते हैं और बौद्ध[3] उसे अनुशय आदि कहते हैं।

बौद्धग्रन्थ मिलिन्द प्रश्न (पृ. ३९) में लिखा है—

"(मरनेके बाद) कौन जन्म ग्रहण करता है और कौन नहीं ?

जिनमें क्लेश (चित्तका मैल) लगा है वे जन्म ग्रहण करते हैं। और जो क्लेशसे रहित हो गये हैं वे जन्म ग्रहण नहीं करते।

भन्ते ! आप जन्मग्रहण करेंगे या नहीं ?

"महाराज ! यदि संसारकी ओर आसक्ति लगी रहेगी तो जन्मग्रहण करूँगा। और यदि आसक्ति छूट जायेगी तो नहीं करूँगा।"

योगदर्शनमें कहा है—पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं जो क्लिष्ट भी होती हैं और अक्लिष्ट भी होती हैं। जिन वृत्तियोंका कारण क्लेश होता है और जो कर्माशयके संचयके लिए आधारभूत होती हैं उन्हें क्लिष्ट कहते हैं। अर्थात् ज्ञाता अर्थको जानकर उससे राग या द्वेष करता है और ऐसा करनेसे कर्माशयका संचय होता है। इस प्रकार धर्म-अधर्मको उत्पन्न करनेवाली वृत्तियाँ क्लिष्ट होती हैं। क्लिष्ट जातीय अथवा अक्लिष्ट जातीय संस्कार वृत्तियोंसे होते हैं और वृत्तियाँ संस्कारसे होती हैं। इस प्रकार वृत्ति और संस्कारका चक्र सर्वदा चलता रहता है। १-५ व्यास भाष्य।

सांख्यकारिका (६७) में कहा है—

'धर्म-अधर्मको संस्कार कहते हैं। उसीके निमित्तसे शरीर बनता है। सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होने पर धर्मादि पुनर्जन्म करनेमें समर्थ नहीं रहते। फिर भी संस्कारवश पुरुष ठहरा रहता है। जैसे कुलालके दण्ड-का सम्बन्ध दूर हो जाने पर भी संस्कारवश चाक घूमता है।'

प्रशस्तपाद भाष्य (पृ. २८०-२८१) में कहा है—

'राग और द्वेषसे युक्त अज्ञानी जीव कुछ अधर्म सहित किन्तु प्रकृष्ट धर्ममूलक कामोंके करनेसे ब्रह्म-लोक, इन्द्रलोक, प्रजापति लोक, पितृलोक और मनुष्यलोकमें अपने आशयके अनुरूप इष्टशरीर, इन्द्रिय-

१. 'स कर्मजन्यसंस्कारो धर्माधर्मगिरोच्यते'—न्यायमं, (उत्तर भाग) पृ. ४४।
२. क्लेशमूलः कर्माशयः॥ २-१२। योग द.।
३. 'मूलं भवस्यानुशयः'।—अभिधर्म. ५-१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय और दुःखादिको प्राप्त करता है। तथा कुछ धर्मसहित किन्तु प्रकृष्ट अधर्ममूलक कामोंके करनेसे प्रेतयोनि, तिर्यग्योनि वगैरह स्थानोंमें अनिष्ट शरीर, इन्द्रियविषय और दुःखादिको प्राप्त करता है। इस प्रकार अधर्मसहित प्रवृत्तिमूलक धर्मसे देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरकोंमें (जन्म लेकर) पुनः-पुनः संसारबन्ध करता है ॥'

न्यायमंजरीकारने भी उक्त मतको ही व्यक्त करते हुए कहा है—'देव, मनुष्य और तिर्यग्योनिमें जो शरीरको उत्पत्ति देखी जाती है, प्रत्येक वस्तुको जाननेके लिए जो ज्ञानकी उत्पत्ति होती है, और आत्माका मनके साथ जो सम्बन्ध होता है वह सब प्रवृत्तिका ही परिणाम है। सभी प्रवृत्तियाँ क्रियारूप होनेसे यद्यपि क्षणिक हैं किन्तु उनसे होनेवाला आत्मसंस्कार, जिसे धर्म या अधर्म कहा जाता है, कर्मफलभोग पर्यन्त स्थिर रहता है।'

इस प्रकार विभिन्न दार्शनिकोंके उक्त मन्तव्योंसे यह स्पष्ट है कि कर्म नाम क्रिया या प्रवृत्तिका है। यद्यपि वह क्षणिक है किन्तु उसका संस्कार फलकाल तक स्थायी रहता है। संस्कारसे प्रवृत्ति और प्रवृत्तिसे संस्कारकी परम्परा अनादि है। इसीका नाम संस्कार है। किन्तु जैनदर्शनमें कर्ममात्र संस्काररूप नहीं है। उसका स्वरूप आगे कहते हैं—

जैनदर्शनमें कर्मका स्वरूप—

जैन दर्शनमें कर्मके दो प्रकार कहे हैं—एक द्रव्यकर्म और दूसरा भावकर्म। यद्यपि अन्य दर्शनोंमें भी इस प्रकारका विभाग पाया जाता है और भावकर्मकी तुलना अन्य दर्शनोंके संस्कारके साथ तथा द्रव्यकर्मकी तुलना योगदर्शनकी वृत्ति और न्यायदर्शनकी प्रवृत्तिके साथ की जा सकती है तथापि दोनोंमें मौलिक अन्तर है, जैन दर्शनमें कर्म केवल एक संस्कार मात्र ही नहीं है किन्तु एक वस्तुभूत पदार्थ है जो रागी, द्वेषी जीवकी क्रियाका निमित्त पाकर उसकी ओर आकृष्ट होता है और दूध-पानीकी तरह उसके साथ घुल-मिल जाता है। यह पदार्थ है तो भौतिक किन्तु उसका कर्मनाम इसलिए रूढ़ हो गया; क्योंकि वह जीवके कर्म अर्थात् मानसिक, वाचनिक और कायिक क्रियाके साथ आकृष्ट होकर जीवके साथ बँध जाता है।

आशय यह है कि जहाँ अन्य दर्शन राग और द्वेषसे आविष्ट जीवकी क्रियाको कर्म कहते हैं और इस कर्मके क्षणिक होने पर भी तज्जन्य संस्कारको स्थायी मानते हैं वहाँ जैनदर्शनका मत है कि राग-द्वेषसे आविष्ट जीवकी प्रत्येक क्रियाके साथ एक प्रकारका द्रव्य आत्माकी ओर आकृष्ट होता है और उसके राग-द्वेष रूप परिणामोंका निमित्त पाकर आत्माके साथ बन्धको प्राप्त होता है तथा कालान्तरमें वही द्रव्य आत्माको अच्छा या बुरा फल मिलनेमें निमित्त होता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

आचार्य कुन्दकुन्दने पंचास्तिकायमें कहा है—

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो।
सुहुमेहि बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं ॥६४॥
अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं।
गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥६५॥

अर्थ—यह लोक सर्वत्र सब ओरसे अनन्तानन्त विविध प्रकारके सूक्ष्म और बादर कर्मरूप होने योग्य पुद्गलोंसे ठसाठस भरा है। जहाँ आत्मा है वहाँ भी ये पुद्गल काय वर्तमान रहते हैं। संसार अवस्थामें प्रत्येक आत्मा अपने स्वाभाविक चैतन्य स्वभावको न छोड़ते हुए अनादि कालसे कर्मबन्धनसे बद्ध होनेके कारण अनादिसे मोह, राग-द्वेष आदि रूप अविशुद्ध ही परिणाम करता रहता है। वह जब जहाँ मोहरूप, रागरूप, द्वेषरूप अपने भाव करता है तब वहाँ उसके उन भावोंको निमित्त करके जीवके प्रदेशोंमें परस्पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवगाह रूपसे प्रविष्ट हुए पुद्गल स्वभावसे ही कर्मरूपताको प्राप्त होते हैं। जैसे लोकमें अपने योग्य चन्द्र और सूर्यकी प्रभाको पाकर पुद्गल स्कन्ध सन्ध्या, मेघ, इन्द्रधनुष रूपसे बिना किसी अन्य ...के स्वयं परिणमन करते हैं वैसे ही अपने योग्य जीवके परिणामोंको निमित्त करके पुद्गल कर्म भी बिना किसी अन्य कर्ताके अनेक कर्मरूप परिणमन करते हैं।

उन पुद्गलोंको भी कर्म शब्दसे ही कहते हैं क्योंकि जीवकी मन, वचन, कायकी क्रियाका निमित्त पाकर वे उस रूप स्वयं परिणमन करते हैं। जीवकी क्रियाके साथ इस प्रकारके पौद्गलिक कर्मबन्धनको अन्य किसी दर्शनने स्वीकार नहीं किया है। यह केवल जैन सिद्धान्तका ही मत है।

जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है—

जैनदर्शन सृष्टिका कर्ता-धर्ता-हर्ता कोई ईश्वर नहीं मानता। यह विश्व अनादि और अनन्त है। इसे किसीने न तो बनाया और न कोई सर्वथा नष्ट करता है। परिणमन वस्तुका स्वभाव है, अतः परिणमन सदा हुआ करता है। छह द्रव्योंमें-से जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंका संयोग-वियोग सदा चलता रहता है। इसीका नाम संसार है। जैसे खानसे सोना मैल मिट्टीको लिये हुए ही निकलता है उसी तरह संसारमें अनादि कालसे जीव अशुद्ध दशाके कारण भ्रमण करते हैं। यदि ऐसा न माना जाये तो अनेक आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं। यदि जीवको प्रारम्भसे ही शुद्ध मान लिया जाये तो उसकी अशुद्धता सम्भव नहीं है। आन्तरिक अशुद्धताके बिना नवीन कर्मका बन्ध कैसे हो सकता है। यदि शुद्ध जीव भी बन्धनमें पड़ने लगे तो बन्धनको काटनेका उपदेश और उसका आचरण ही व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए जीवका प्रारम्भिक रूप जो अनादि है अशुद्ध ही है।

तत्त्वार्थसूत्रमें बन्धका लक्षण इस प्रकार कहा है—

'सकषायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः' इसकी टीका सर्वार्थसिद्धिका आशय यहाँ दिया जाता है—

कषायके साथ रहनेसे सकषाय कहलाता है। सकषायके भावको सकषायत्व कहते हैं। उससे अर्थात् सकषाय भावसे। यह हेतुनिर्देश है। यह बतलाता है कि जैसे उदरकी पाचक शक्तिके अनुरूप आहारका ग्रहण होता है, उसी प्रकार तीव्र मन्द या मध्यम जैसा कषायभाव होता है उसके अनुरूप कर्मोंमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है। यह ज्ञान करानेके लिए हेतुनिर्देश किया गया है।

शंका—आत्मा तो अमूर्तिक है, उसके हाथ नहीं है, तब वह कर्मोंको कैसे ग्रहण करता है।

इसी शंकाको दूर करने लिए 'जीव' शब्द रखा है। जो जीता है अर्थात् प्राणधारण करता है, जिसके पीछे आयुकर्म लगा है वह जीव है। 'कर्मयोग्यान्' पाठसे भी काम चल सकता था। उसके स्थानमें जो 'कर्मणो योग्यान्' पाठ रखा है वह विशेष अर्थका ज्ञान करानेके लिए है। वह विशेष अर्थ है—'कर्मणो जीवः सकषायो भवति।' कर्मके निमित्तसे जीव सकषाय होता है। जो कर्मसे रहित है उसके कषाय नहीं होती। इससे यह बतलाया है कि जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है। इससे यह आशंका दूर हो जाती है कि अमूर्त जीव मूर्त कर्मसे कैसे बन्धता है। यदि ऐसा न माना जाये अर्थात् बन्धको अनादि न मानकर सादि माना जाये तो आत्यन्तिक शुद्धताके धारी सिद्ध जीवकी तरह शुद्ध जीवके कर्मबन्ध ही नहीं हो सकता।

दूसरा अर्थ होता है—कर्मके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है। इस तरह 'कर्मणः'का पहला अर्थ 'कर्मके कारण' बदलकर 'कर्मके योग्य' हो जाता है। 'पुद्गल' शब्द बतलाता है कि कर्म पौद्गलिक है। इससे जो दर्शन अदृष्टको आत्माका गुण मानते हैं उनका निराकरण हो जाता है क्योंकि यदि अदृष्ट (कर्म) आत्माका गुण हो तो वह उसके संसारपरिभ्रमणमें कारण नहीं हो सकता।

अतः मिथ्यादर्शन आदि अभिनिवेशमें भीगे हुए आत्माके सब समयोंमें योगविशेषसे कर्मरूप होनेके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य पुद्गलोंके, जो सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही और अनन्तानन्त प्रदेशी होते हैं—विभागरहित उपश्लेषको बन्ध कहते हैं। जैसे एक विशेष पात्रमें डाले गये विभिन्न रसवाले बीज पुष्प फलोंका परिणमन मदिराके रूपमें हो जाता है उसी प्रकार आत्मामें स्थित पुद्गलोंका योग और कषायके वशसे कर्मरूपसे परिणमन होता है इसीको बन्ध कहते हैं।

इस तरह जैसे जीव और पुद्गल दोनों अनादि हैं। उसी प्रकार दोनोंका सम्बन्ध भी अनादि है। जीवके अशुद्ध रागादि भावोंका कर्म कारण है और जीवके अशुद्ध रागादि भाव उस कर्मके कारण हैं। आशय यह है कि पूर्वमें बद्ध कर्मके उदयसे जीवके रागादि भाव होते हैं, और रागादि भावोंको निमित्त करके जीवके नवीन कर्मका बन्ध होता है। वे नवीन बन्धे कर्म जब उदयमें आते हैं तो उनका निमित्त पाकर जीवके पुनः रागादि भाव होते हैं और उन भावोंका निमित्त पाकर पुनः नवीन कर्मबन्ध होता है। इस प्रकार जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है।

पंचास्तिकायमें जीव और कर्मके इस अनादि सम्बन्धको जीवपुद्गल कर्मचक्रके नामसे अभिहित करते हुए लिखा है—

'जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥१२८॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयगहणं तत्तो रागो व दोसो वा ॥१२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥'

अर्थ—जो जीव संसारमें स्थित हैं अर्थात् जन्म और मरणके चक्रमें पड़ा है उसके राग और द्वेषरूप परिणाम होते हैं। परिणामोंसे नये कर्म बन्धते हैं। कर्मोंसे गतियोंमें जन्म लेना पड़ता है, जन्म लेनेसे शरीर होता है। शरीरमें इन्द्रियाँ होती हैं। इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होता है। विषयोंके ग्रहणसे राग व द्वेषरूप परिणाम होते हैं। इस प्रकार संसाररूपी चक्रमें पड़े हुए जीवके भावोंसे कर्म और कर्मसे भाव होते रहते हैं। यह प्रवाह अभव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनन्त है और भव्य जीवकी अपेक्षा सादिमात्र है।

जीव और कर्ममें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध—

खानिया तत्त्वचर्चामें प्रथम शंका यह उपस्थित की गई थी—'द्रव्यकर्मके उदयसे संसारी आत्माका विकारभाव और चतुर्गति भ्रमण होता है या नहीं?

इसके समाधानमें कहा गया है कि द्रव्यकर्मोंके उदय और संसारी आत्माके विकारभाव तथा चतुर्गति भ्रमणमें व्यवहारसे निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। और अपने इस कथनके सम्बन्धमें समयसारकी गाथा ८०–८२ उद्धृत की गयी हैं।

अमृतचन्द्रजीने अपनी टीकामें कहा है—'यतः जीवके परिणामोंको निमित्त करके पुद्गल कर्मरूपसे परिणमन करते हैं और पुद्गल कर्मोंको निमित्त करके जीव भी परिणमन करता है। इस प्रकार जीवके परिणाम और पुद्गलके परिणाममें पारस्परिक हेतुत्वकी स्थापना करनेपर भी परस्परमें व्याप्य-व्यापक भावका अभाव होनेसे जीव और पुद्गलके परिणामोंमें कर्ता कर्मभाव सिद्ध न होनेपर भी निमित्त-नैमित्तिक भावका निषेध न होनेसे एक दूसरेके निमित्तमात्र होनेसे ही दोनोंका परिणाम होता है।

अध्यात्ममें कर्ता-कर्म भाव दो द्रव्योंमें नहीं माना जाता है। क्योंकि उनमें व्याप्य-व्यापक भावका अभाव होता है। जहाँतक हम जानते हैं जीव और कर्ममें कर्ताकर्म भाव जो उपादान मूलक होता है कोई नहीं मानता। फिर भी निमित्तको हेतुकर्ता माननेवालोंका ऐसा भाव है कि जीव और कर्म दोनों परस्परमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेरक निमित्त हैं। अर्थात् जीवके परिणामोंसे प्रेरित होकर पुद्गल कर्मरूप परिणमन करता है। और पुद्गलकर्मसे प्रेरित होकर जीव रागादिरूप परिणमन करता है। और इस प्रकारके कथन कर्मकी बलवत्ता दिखानेके लिए किये-भी-गये-हैं। प्रवचनसार गाथा ११७ में कहा है—'नाम संज्ञावाला कर्म अपने स्वभावसे आत्माके स्वभावको अभिभूत करके उसे मनुष्य तिर्यंच नारकी अथवा देव करता है।'

कर्मसिद्धान्तसे सम्बद्ध जितना भी कार्मिक साहित्य मिलता है प्रायः उस सबमें कर्मका वर्णन निमित्त-कर्ताके रूपमें मिलता है। जैसे, जो ज्ञानको आवरण करता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है, जो दर्शनको आवरण करता है वह दर्शनावरणीय कर्म है। इसी तरह षट्खण्डागमकी जीवस्थान चूलिकामें धवला टीकाके अन्तर्गत व्युत्पत्ति करते हुए मोहनीयकी व्युत्पत्ति की गयी है जो मोहित किया जाता है वह मोहनीय है। इसपरसे जो शंका और समाधान किया गया है वह द्रष्टव्य है—

मोहणीयं ॥८॥

'मुह्यत इति मोहनीयम्। एवं संते जीवस्स मोहणीयत्तं पसजदि त्ति णासंकणिज्जं, जीवादो अभिण्णम्हि पोग्गलदव्वे कम्मसण्णिदे उवयारेण कत्तारत्तमारोविय तथा उत्तीदो' (पृ. ११)।

शंका—ऐसी व्युत्पत्ति करनेपर तो जीवको मोहनीयत्व प्राप्त होता है।

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि जीवसे अभिन्न और कर्म नामवाले पुद्गल-द्रव्यमें उपचारसे कर्तृत्वका आरोप करके उस प्रकारकी व्युत्पत्ति की गयी है।

वीरसेन स्वामीका उक्त कथन सर्वत्र लगा लेना चाहिये। कर्म संज्ञावाले पुद्गलद्रव्यमें उपचारसे कर्तृत्वका आरोप करके कर्मसिद्धान्तमें निमित्तकर्ताके रूपमें कथन किया गया है ऐसा माननेमें कोई विसंगति नहीं है।

कर्मसिद्धान्तका समस्त वर्णन द्रव्यकर्म प्रधान है। द्रव्यकर्मको लेकर ही उसमें वर्णन किया गया है। षट्खण्डागमके वर्गणाखण्डके अन्तर्गत प्रकृति अनुयोगद्वारमें (पु. १३।पृ. २०५) प्रकृतिमें निक्षेपोंका वर्णन करते हुए नोआगमद्रव्य प्रकृतिके दो भेद किये हैं—कर्मप्रकृति और नोकर्मप्रकृति। और कर्मप्रकृतिके ज्ञानावरणादि भेद किये हैं। अतः कर्मसिद्धान्तमें पुद्गलद्रव्य कर्मको लेकर ही वर्णन मिलता है। किन्तु कुन्दकुन्द स्वामीने अपने ग्रन्थोंमें जीव और कर्मके विवेचनमें व्यवहारके साथ निश्चय या परमार्थ स्थितिको भी स्पष्ट किया है।

यहाँ हम पञ्चास्तिकाय गा. ५७-६० से उसकी टीकाका विवरण उपस्थित करते हैं—

गाथा ५७ की टीकामें कहा है—'व्यवहारनयसे जीव द्रव्यकर्मका अनुभवन करता है। और वह अनुभूयमान द्रव्यकर्म जीवके भावोंका निमित्तमात्र कहा जाता है। उसके निमित्तमात्र होने पर कर्ता जीवके द्वारा कर्मभूत भाव किया जाता है। इस तरह जो जिस प्रकारसे जीवके द्वारा भाव किया जाता है वह जीव उस भावका उस प्रकारसे कर्ता होता है।'

उक्त कथनमें उदयागत द्रव्य कर्मोंको जीवके भावोंका निमित्तमात्र कहा है। तथा जीवको ही अपने भावका कर्ता कहा है। जीव द्रव्यका परिणमन जीवमें होता है और पुद्गल द्रव्य का परिणमन पुद्गलमें होता है। जिस समय जीव स्वतन्त्र रूपसे अपने भाव करता है उसी समयमें कर्मका उदय भी होता है। इस तरह दोनोंमें निमित्त नैमित्तिकपना घटित होता है।

कर्मकी उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्थाएँ होती हैं। और उसीको निमित्त करके जीवके औदयिक औपशमिक आदि भाव होते हैं। इसलिये गाथा ५२ में भावको कर्मकृत कहा है। क्योंकि कर्मके बिना उदयादि नहीं होते।

इसपरसे गाथा ५९ में यह पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया है, यदि जीवका औदयिकादिरूप भाव कर्म-कृत है तो जीव उसका कर्ता नहीं हुआ और जीवको कर्ता माना गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि जीव द्रव्यकर्मका कर्ता है । किन्तु ऐसा कैसे हो सकता है; क्योंकि निश्चयनयसे आत्मा अपने भावको छोड़ अन्य कुछ भी नहीं करता ?'

इसके समाधानमें कहा है—व्यवहारसे निमित्तमात्र होने के कारण जीवभावका कर्म कर्ता है। और जीवभाव कर्मका कर्ता है। किन्तु निश्चय से न तो जीवभावोंका कर्ता कर्म है और न कर्मका कर्ता जीव-भाव है। किन्तु वे कर्ता के बिना भी नहीं होते। अतः निश्चयसे जीवभावोंका कर्ता जीव है और कर्मपरिणामोंका कर्ता कर्म है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि द्रव्यकर्मके निमित्तमात्र होनेपर भी जीव अपने भावके करनेमें स्वतन्त्र कैसे कहा जा सकता है इस प्रसंगमें हम अकलंकदेवके तत्त्वार्थराजवार्तिकसे एक उद्धरण देना उचित समझते हैं। पाँचवें अध्यायके प्रथम सूत्रके व्याख्यानमें कहा है कि 'धर्माधर्माकाशपुद्गलाः' यहाँ पर बहुवचन स्वतन्त्रताका बोध करानेके लिए कहा है। वह स्वातन्त्र्य क्या है ? धर्मादिद्रव्य जो गति आदि उपकार करनेके लिए प्रवृत्त होते हैं ऐसा वे स्वयं ही परिणमन करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति पराधीन नहीं है। यही स्वातन्त्र्य यहाँ विवक्षित है। इसपर शंका की गयी—परिणामियोंमें परिणाम बाह्य द्रव्यादिनिमित्त-वश पाया जाता है। स्वतन्त्र मानने पर उसका विरोध होता है। समाधानमें कहा गया है—नहीं, बाह्य तो निमित्तमात्र है। गति आदि रूपसे परिणमन करनेवाले जीव पुद्गल गति आदि उपग्रहमें धर्मादि के प्रेरक नहीं हैं।

जीव और कर्ममें भी जो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है वह प्रेरणामूलक नहीं है। अर्थात् न तो जीव-कर्म पुद्गलोंको कर्म रूप परिणमन करनेमें प्रेरक होता है और न उदयागत कर्म जीवको अपने भाव करनेमें प्रेरक होते हैं। यदि कर्मको प्रेरक निमित्त माना जायेगा तो जीवकी मुक्तिमें बाधा उपस्थित होगी। यद्यपि ऐसा भी कथन मिलता है। सोमदेव उपासकाध्ययन में कहा है—

'प्रेर्यते कर्म जीवेन जीवः प्रेर्येत कर्मणा।
एतयोः प्रेरको नान्यो नौनाविकसमानयोः ॥' १०६ ॥

किन्तु उक्त कथनमें जीव और कर्मकी स्थितिमें किसी अन्य प्रेरक ईश्वर आदिका निषेध किया है। जीवके अशुद्ध रागादिभावोंका कारण कर्म है और कर्मके कारण रागादिभाव हैं। किन्तु न तो पुद्गलकर्म जीवको रागादिभाव करनेके लिए प्रेरित करता है और न रागादिभाव पुद्गलकर्मोंको कर्म रूप होने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रवचनसारमें कहा है—'कर्मरूप होनेके योग्य पुद्गलस्कन्ध अर्थात् जिनमें कर्मरूप परिणमन करनेकी शक्ति है वे पुद्गलस्कन्ध जीवके साथ एक क्षेत्रमें रहते हैं और जीवके परिणाममात्र बाह्य साधनका आश्रय लेकर स्वयमेव कर्मरूपसे परिणमन करते हैं, जीव उनको परिणमाता नहीं है' अतः यह निश्चित होता है कि पुद्गलस्कन्धोंका कर्मरूप करने वाला आत्मा नहीं है ॥१६९॥

आगे पुद्गलबन्ध, जीवबन्ध और उभयबन्धका स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

कर्मोंका स्निग्धता और रूक्षता रूप स्पर्श विशेषोंके द्वारा जो परस्परमें एकत्व रूप परिणमन होता है वह केवल पुद्गलबन्ध है और जीवका औपाधिक मोह राग द्वेष पर्यायों के साथ एकत्वरूप परिणाम होता है वह केवल जीवबन्ध है। तथा जीव और कर्म पुद्गलोंके परस्परमें एक दूसरेके परिणाममें निमित्त होनेसे जो विशिष्टतर परस्पर अवगाह है वह उभयबन्ध अर्थात् पुद्गल जीवात्मकबन्ध है ॥१७७॥

यह आत्मा लोकाकाशके समान असंख्यातप्रदेशी होनेसे सप्रदेशी है। उसके प्रदेशोंमें कायवर्गणा, वचनवर्गणा और मनोवर्गणाका अवलम्बन पाकर जैसा परिस्पन्द होता है उसी प्रकारसे कर्मपुद्गल स्वयं परिस्पन्द वाले होते हुए उसमें प्रवेश करते हैं और ठहर जाते हैं। और यदि जीवके मोह राग द्वेष रूप भाव होते हैं तो बन्धको प्राप्त होते हैं। इस तरह द्रव्यबन्धका कारण भावबन्ध है ॥१७८॥ रागरूप परिणत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा ही नवीन द्रव्यकर्मसे बन्धता है और रागरहित आत्मा कर्मोंसे छूटता है। अतः निश्चयसे रागपरिणाम ही बन्ध है वही द्रव्यबन्धका साधकतम है ॥१७९॥

इस प्रकारसे आगममें बन्धकी व्याख्या है।

स्वयंका अर्थ अपने रूप नहीं—

प्रवचनसार, समयसार आदिमें इस प्रकरणमें अनेक स्थानोंमें 'स्वयं' शब्द आता है। 'स्वयं' शब्दका अर्थ स्पष्ट है—'अपने-आप' अर्थात् किसीसे प्रेरित होकर नहीं। जैसे हरिवंशपुराणके श्लोकमें कहा है—

'स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्राम्यति संसारे स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥'

'आत्मा स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है। स्वयं संसारमें भ्रमण करता है और स्वयं उससे छूटता है।' इसी प्रकार प्रवचनसारगाथा १६९ की टीकामें भी जो 'स्वयं' शब्द आया है उसका अर्थ भी वही है—अपनेआप।

समयसारमें भी गाथा ११६, ११८, १२१, १२२, १२३, १२४ में 'स्वयं' पद आया है। उनका अर्थ प्रथम हिन्दी टीकाकार पं. जयचन्दजीने सर्वत्र 'अपनेआप' किया है। यहाँ हम टीकानुसार अर्थ देते हैं—

यदि पुद्गलद्रव्य जीवमें आप स्वयं नहीं बँधा है, और कर्मभावसे आप नहीं परिणमता है तो वह पुद्गलद्रव्य अपरिणामी ठहरता है। अथवा कर्मवर्गणा आप कर्मभावसे नहीं परिणमती है तो संसारका अभाव ठहरता है। अथवा सांख्यमतका प्रसंग आता है। यदि जीव पुद्गलद्रव्यको कर्मभावसे परिणमाता है तो आप नहीं परिणमते हुए पुद्गलद्रव्यको चेतनजीव कैसे परिणमाता है। अथवा यदि पुद्गलद्रव्य आप ही कर्मभावसे परिणमता है तो जीव पुद्गलद्रव्यको कर्मभावसे परिणमाता है यह कथन मिथ्या ठहरता है।

तथा जीव कर्मसे स्वयं नहीं बँधा हुआ क्रोधादिभावसे आप नहीं परिणमता तो वह जीव अपरिणामी हुआ। ऐसा होनेपर संसारका अभाव आता है। यदि कोई ऐसा तर्क करे जो क्रोधादि रूप पुद्गल कर्म है वह जीवको क्रोधादि रूप परिणमाता है अतः संसारका अभाव नहीं होगा। तो यहाँ दो पक्ष हैं—जो पुद्गलकर्म क्रोधादि हैं वे अपनेआप अपरिणमतेको परिणमाते हैं कि परिणमतेको परिणमाते हैं। प्रथम तो जो आप नहीं परिणमता हो उसको परिणमानेको पर समर्थ नहीं होता; क्योंकि आपमें जो शक्ति नहीं उसे पर उत्पन्न नहीं कर सकता। यदि स्वयं परिणमता है तो उसे परिणमानेवाले परकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वस्तुकी शक्ति परकी अपेक्षा नहीं करती 'अतः यह ठहरा कि जीव परिणाम स्वभाववाला स्वयं है।'

ऊपर सर्वत्र टीकाकार पं. जयचन्दजीने 'स्वयं' का अर्थ अपनेआप ही किया है, अतः अपनेरूप अर्थ करना ठीक नहीं।

आचार्य वादिराजजीने अपने एकीभाव स्तोत्रमें लिखा है—

'एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो'

जो कर्मबन्ध स्वयं (अपनेआप) मेरे साथ एकीभावकी तरह प्राप्त हुआ है।

अतः यथार्थमें न तो जीव कर्मको प्रेरित करता है और न कर्म जीवको प्रेरित करता है। दोनों दो स्वतन्त्र विभिन्न द्रव्य हैं। दोनों ही परिणामी हैं। दोनोंमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धमात्र है। पुरुषार्थ सिद्धयुपायमें कहा है—

'इस संसारमें जीवकृत रागादिरूप परिणामोंका निमित्तमात्र पाकर पुद्गल स्वयं ही कर्मरूपसे परिणत हो जाते हैं। और अपने चिदात्मक रागादिभाव रूपसे स्वयं ही परिणमन करनेवाले उस चेतन आत्माके भी पौद्गलिक कर्म निमित्तमात्र होते हैं। इस प्रकार यह आत्मा कर्मकृत भावोंसे असमाहित होते हुए भी अज्ञानी जनोंको संयुक्तके समान प्रतिभासित होता है और इस प्रकारका प्रतिभास ही संसारका बीज है। इस विपरीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिनिवेशको दूर करके और अपने आत्मस्वरूपको सम्यक्रूपसे निश्चित करके उससे विचलित न होना ही पुरुषार्थ-मोक्षकी सिद्धिका उपाय है। (१२-१५ श्लो.)

अतः यह सिद्ध होता है कि जीव और पुद्गलकर्ममें निमित्त-नैमित्तिकभाव है। किन्तु यह कथन भी बाह्यदृष्टिसे है। अन्तर्दृष्टिसे तो जीवके भावोंमें और कर्ममें निमित्त-नैमित्तिकभाव है, जीव और कर्ममें नहीं। क्योंकि यदि स्वयं जीवको कर्मका निमित्त मान लिया जायेगा तो वह सदा ही कर्ता बना रहेगा और इस तरह मुक्ति नहीं हो सकेगी।

कर्म और जीवमें परस्परमें निमित्त-नैमित्तिक भावको लेकर प्रवचनसार गाथा १२१ की टीकामें जो कथन किया है वह भी द्रष्टव्य है—

उसकी उत्थानिकामें कहा है—परिणामात्मक संसारमें किस कारणसे पुद्गलका सम्बन्ध होता है जिससे वह मनुष्यादि पर्यायरूप होता है? इसके समाधानमें कहा है—'यह जो आत्माका संसार नामक परिणाम है वही द्रव्यकर्मके श्लेषका कारण है।

प्रश्न—उस प्रकारके परिणामका कारण कौन है?

उत्तर—उसका कारण द्रव्यकर्म है। क्योंकि द्रव्यकर्मसे संयुक्त होनेसे ही उस प्रकारका परिणाम पाया जाता है।

प्रश्न—ऐसा होनेसे इतरेतराश्रय दोष आता है, क्योंकि उस प्रकारके परिणाम होनेपर द्रव्यकर्मका श्लेष होता है और उसके होनेपर उस प्रकारके परिणाम होते हैं?

उत्तर—नहीं आता, क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्मके साथ सम्बद्ध आत्माका जो पूर्वका द्रव्यकर्म है उसको कारण रूपसे स्वीकार किया है। इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म उसका कार्य होनेसे और पुराना द्रव्यकर्म उसका कारण होनेसे आत्माका उस प्रकारका परिणाम द्रव्यकर्म ही है। अतः आत्मा आत्मपरिणामका कर्ता होनेसे उपचारसे द्रव्यकर्मका भी कर्ता है। परमार्थसे आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं है।

कर्मका कर्ता-भोक्ता कौन—पहले बतला आये हैं कि जैन धर्ममें केवल जीवके द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्मोंका नाम कर्म नहीं है, किन्तु जीवके कामोंके निमित्तसे आकृष्ट होकर जो पुद्गल परमाणु उस जीवसे बन्धको प्राप्त होते हैं वे भी कर्म कहे जाते हैं। तथा उन पुद्गल परमाणुओंके फलोन्मुख होनेपर उनके निमित्तसे जीवमें जो काम-क्रोधादि भाव होते हैं, वे भी कर्म कहे जाते हैं। पहले प्रकारके कर्मोंको द्रव्यकर्म और दूसरे प्रकारके कर्मोंको भावकर्म कहते हैं। जीवके साथ उनका अनादि सम्बन्ध है। इन कर्मोंके कर्तृत्व और भोक्तृत्वके बारेमें जब हम निश्चयदृष्टिसे विचार करते हैं तो जीव न तो द्रव्य-कर्मोंका कर्ता ही प्रमाणित होता है और न उनके फलका भोक्ता ही प्रमाणित होता है; क्योंकि द्रव्यकर्म पौद्गलिक हैं, पुद्गल द्रव्यके विकार हैं, उनका कर्ता चेतन जीव कैसे हो सकता है। चेतनका कर्म चैतन्यरूप होता है और अचेतनका कर्म अचेतनरूप। यदि चेतनका कर्म भी अचेतनरूप होने लगे तो चेतन-अचेतनका भेद नष्ट होनेसे महान् संकर दोष उपस्थित होगा। अतः प्रत्येक द्रव्य स्वभावका कर्ता है, परभावका कर्ता नहीं है। जैसे जल स्वभावसे शीतल होता है। किन्तु आगके सम्बन्धसे उष्ण हो जाता है। यहाँ उष्णताका कर्ता जल नहीं है। उष्णता तो आगका धर्म है। जलमें उष्णता आगके सम्बन्धसे आती है। अतः आगन्तुक है। आगका सम्बन्ध छूटते ही चली जाती है। इसी प्रकार जीवके अशुद्ध भावोंका निमित्त पाकर जो पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं उनका कर्ता स्वयं पुद्गल ही है, जीव उनका कर्ता नहीं है। जीव तो अपने भावोंका कर्ता है। जैसे सांख्यके मतमें पुरुषके संयोगसे प्रकृति-का कर्तृत्व गुण व्यक्त हो जाता है। और वह सृष्टि प्रक्रियाको उत्पन्न करना शुरू कर देता है तथापि पुरुष अकर्ता ही कहा जाता है, उसी तरह जीवके राग-द्वेषादि रूप अशुद्ध भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य उसकी ओर स्वतः आकृष्ट होता है, उसमें जीवका कर्तृत्व नहीं है। जैसे यदि कोई सुन्दर युवा पुरुष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यवश बाजारसे जाता है और कोई सुन्दरी उसपर मोहित होकर उसकी अनुगामिनी बन जाती है तो इसमें पुरुषका क्या कर्तृत्व है। कर्त्री तो वह स्त्री है, पुरुष तो उसमें निमित्त मात्र है। उसे तो इसका पता भी नहीं रहता।

समयसारमें कहा है—

> जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
> पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥ ८६ ॥
> ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
> अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ॥ ८७ ॥
> एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
> पुग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ८८ ॥

अर्थ—जीव तो अपने रागद्वेषादिरूप भाव करता है। उन भावोंको निमित्त करके कर्मरूप होनेके योग्य पुद्गल कर्मरूप परिणत हो जाते हैं। तथा कर्मरूप परिणत पुद्गल जब फलोन्मुख होते हैं, तो उनका निमित्त पाकर जीव भी रागद्वेषादिरूप परिणमन करता है। यद्यपि जीव और पुद्गल दोनों एक दूसरेको निमित्त करके परिणमन करते हैं तथापि न तो जीव पुद्गल कर्मोंके गुणोंका कर्ता है और न पुद्गलकर्म जीवके गुणोंका कर्ता है। किन्तु दोनों परस्परमें एक दूसरेको निमित्त करके परिणमन करते हैं। अतः आत्मा अपने भावोंका ही कर्ता है, पुद्गल कर्मकृत समस्त भावोंका कर्ता नहीं है।

सांख्यके दृष्टान्तसे किन्हीं पाठकोंको यह भ्रम होनेकी सम्भावना है कि जैनधर्म भी सांख्यकी तरह जीवको सर्वथा अकर्ता और प्रकृतिकी तरह पुद्गलको ही कर्ता मानता है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। सांख्यका पुरुष तो सर्वथा अकर्ता है किन्तु जैनोंकी आत्मा सर्वथा अकर्ता नहीं है। वह आत्माके स्वाभाविक भाव ज्ञान दर्शन सुख आदिका और वैभाविक भाव राग-द्वेष आदिका कर्ता है, किन्तु उनको निमित्त करके पुद्गलोंमें जो कर्मरूप परिणमन होता है उसका वह कर्ता नहीं है। सारांश यह है कि वास्तवमें तो उपादान कारणको ही किसी वस्तुका कर्ता कहा जाता है। निमित्त कारणमें जो कर्ताका व्यवहार किया जाता है वह तो व्यावहारिक है, वास्तविक नहीं है। वास्तविक कर्ता तो वही है, जो स्वयं कार्यरूप परिणत होता है। जैसे घटका कर्ता मिट्टी ही है कुम्हार नहीं। कुम्हारको जो लोकमें घटका कर्ता कहा जाता है उसका केवल इतना ही तात्पर्य है कि घट पर्यायमें कुम्हार निमित्त मात्र है। वास्तवमें तो घट मिट्टीका ही एक भाव है अतः वही उसका कर्ता है। जो बात कर्तृत्वके सम्बन्धमें कही गयी है वही भोक्तृत्वके सम्बन्धमें भी जाननी चाहिए। जो जिसका कर्ता नहीं वह उसका भोक्ता कैसे हो सकता है। अतः आत्मा जब पुद्गल कर्मोंका कर्ता ही नहीं तो उनका भोक्ता कैसे हो सकता है। वह अपने जिन राग-द्वेषादि रूप भावोंका संसारदशामें कर्ता है उन्हींका भोक्ता भी है। जैसे व्यवहारमें कुम्हारको घटका भोक्ता कहा जाता है क्योंकि घटको बेचकर जो कुछ कमाता है उससे अपना और परिवारका पोषण करता है। किन्तु वास्तवमें तो कुम्हार अपने भावोंको ही भोगता है। उसी तरह जीव भी व्यवहारसे स्वकृत कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःखादिका भोक्ता कहा जाता है। वास्तवमें तो अपने चैतन्य भावोंका ही भोक्ता है। इस प्रकार कर्तृत्व और भोक्तृत्वके विषयमें निश्चय दृष्टि और व्यवहारदृष्टिके भेदसे द्विविध व्यवस्था है।

निश्चय और व्यवहार—

आगममें कथनकी दो शैलियाँ प्रचलित हैं उनमें-से एकको निश्चय और दूसरीको व्यवहार कहते हैं। ये दोनों दो नय हैं। नय वस्तुस्वरूपको देखनेकी दृष्टिका नाम है। जैसे हमारे देखनेके लिए दो आँखें हैं वैसे ही वस्तुस्वरूपको देखनेके लिए भी दो नयरूप दो दृष्टियाँ हैं। एक नयदृष्टि स्वाश्रित है अर्थात् वस्तुके

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

स्वाश्रित स्वरूपको देखती है और दूसरी नयदृष्टि पराश्रित है—परके निमित्तसे होनेवाले भावोंको भी उस वस्तुका मानकर देखती है। स्वाश्रित दृष्टि निश्चयनय है और पराश्रित दृष्टि व्यवहारनय है। आगममें इन दोनों नयोंसे जीव और कर्मका कथन किया गया है। निश्चय और व्यवहारकथनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. व्यवहारनय कहता है जीव और शरीर एक है। निश्चयनय कहता है जीव और शरीर कभी भी एक नहीं हैं। इन दोनों कथनोंमें-से किसका कथन यथार्थ है और किसका कथन असत्य है यह मोटी बुद्धिवाला भी जान सकता है। क्योंकि मृत्यु होनेपर शरीर पड़ा रहता है और जीव निकल जाता है। अतः जीव और शरीर एक नहीं हैं। इसी तरह आत्मामें कर्मका निमित्त पाकर होनेवाले जो भावादि हैं वे भी व्यवहारसे जीव या जीवके कहे जाते हैं किन्तु यथार्थमें तो वे जीव नहीं हैं। उदाहरणके लिए व्यवहारसे कर्मबन्धके कारण जीवको मूर्तिक कहा जाता है। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये चार गुण होते हैं उसे मूर्तिक कहते हैं। किन्तु जीवमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि नहीं होते। यदि होते तो जीव और पुद्गलमें कोई अन्तर नहीं रहता। इसी तरह कर्मसिद्धान्तमें वर्णित वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, अनुभागस्थान, योगस्थान, स्थितिबन्धस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान, यहाँ तक कि गुणस्थान और जीव समास भी जीवके नहीं हैं। क्योंकि ये सभी पुद्गल द्रव्यके संयोगसे निष्पन्न होते हैं।

इसीसे समयसार (गा. ५६) में कहा है कि रूपसे लेकर गुणस्थान पर्यन्त भाव व्यवहारनयसे जीवके कहे हैं। क्योंकि व्यवहारनय पर्यायाश्रित होनेसे पुद्गलके संयोगवश अनादि सिद्ध बन्धपर्यायको लेकर परके भावोंको परका कहता है। किन्तु निश्चयनय द्रव्याश्रित होनेसे केवल जीवके स्वाभाविक भावको ही जीवका कहता है और प्रभावका निषेध करता है इसलिए निश्चयसे ये जीवके नहीं हैं।

ये सब संसारी जीवोंमें ही पाये जाते हैं। मुक्तजीवोंमें नहीं पाये जाते। इससे सिद्ध है वे सब कर्मके सम्बन्धसे होनेसे आगन्तुक हैं उनके साथ जीवका तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, संयोग सम्बन्ध मात्र हैं। संयोग सम्बन्ध दो भिन्न द्रव्योंमें ही होता है।

यदि उक्त सबको जीवका कहा जायेगा तो जीव और अजीवमें कोई अन्तर नहीं रहेगा। इसी तरह एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त ये सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ है। इन्हींके मेलसे चौदह जीव समास बनते हैं। तब उन्हें जीव कैसे कहा जा सकता है? जैसे किसी व्यक्तिने जन्मसे ही घीका घड़ा देखा था, वह घीसे भिन्न घड़ेको जानता नहीं था उसको समझानेके लिए कहा जाता है कि जो यह घीका घड़ा कहा जाता है वह मिट्टी से बना है घीसे नहीं बना। किन्तु उसमें घी रखा जाता है इससे उसे घीका घड़ा कहा जाता है। इसी प्रकार अज्ञानी लोग अनादिसे अशुद्ध जीवको ही जीव जानते हैं, शुद्ध जीवको नहीं जानते। उनको समझानेके लिए कहा गया है कि यह जो वर्णादि वाला जीव है वह ज्ञानमय है वर्णादिमय नहीं है। अतः प्रसिद्धिवश जीवको वर्णादिमान व्यवहारसे कहा है।

इसी प्रकार जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थान हैं ये पौद्गलिक मोहकर्मके उदयसे कहे गये हैं। अतः जैसे जौसे पैदा हुए जौ ही होते हैं उसी तरह ये भी पुद्गल ही हैं जीव नहीं हैं। इसी तरह राग, द्वेष, मोह, कर्म, नोकर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, अध्यवस्थान, अनुभागस्थान, योगस्थान, बन्धस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान, स्थितिबन्धस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान आदि भी पुद्गल कर्म पूर्वक होनेसे पुद्गल ही हैं जीव नहीं हैं। व्यवहारसे ही इन्हें आगममें जीव कहा है क्योंकि ये परके निमित्तसे जीवमें होते हैं। ऐसी स्थितिमें व्यवहारको सर्वथा सत्य कैसे कहा जा सकता है। वह तो केवल व्यवहार रूपसे ही सत्य है। परमार्थ सत्य तो निश्चयनयका ही विषय है क्योंकि वह जीवके वास्तविक स्वरूपको कहता है जो नित्य अविनाशी है, परके निमित्त से नहीं होता है।

हमने पूर्वमें कहा है कि व्यवहार पराश्रित होता है पर निमित्तसे होनेवाले भावोंको भी जीवका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहता है और निश्चयनय स्वाश्रित होता है। इसीसे पहला असत्य और दूसरा सत्य कहलाता है। जैसे जीवकी संसारदशा व्यवहारसे है निश्चयसे नहीं है। तब क्या जीवकी संसारदशा झूठी है? क्या वह संसारी नहीं है? ऐसा प्रश्न होता है। इसका उत्तर है कि जीवकी संसारदशा झूठी नहीं है सच्ची है किन्तु उस दशाको जीवका स्वरूप मानना असत्य है। व्यवहारनय उसे जीवका मानता है। यदि हम व्यवहारनयको सर्वथा सत्य मान बैठें तब तो मुक्ति की चर्चा ही व्यर्थ हो जायेगी। अतः जो केवल व्यवहारको ही यथार्थ मानकर उसीमें रमे रहते हैं उन्हें तो सम्यक्त्वको प्राप्ति तीन कालमें नहीं हो सकती; क्योंकि उसके लिए आत्माका ज्ञान आवश्यक है और आत्माके ज्ञानके लिए अनात्माका ज्ञान आवश्यक है। आत्मा और अनात्मा-का भेदज्ञान होनेपर ही सम्यक्त्व हो सकता है और यह ज्ञान निश्चय दृष्टिके बिना सम्भव नहीं है क्योंकि वही दृष्टि आत्माके शुद्ध स्वरूपका बोध कराती है।

प्रवचनसार गा. १८३ में कहा है—

जो जीव और पुद्गलके स्वभावको निश्चित करके यह नहीं देखता कि जीव स्व है और पुद्गल पर है। वही मोहवश परद्रव्यको अपना मानता है और उसमें आसक्ति करता है। इस प्रकार भेदविज्ञान न होनेसे जीव परद्रव्यासक्त होता है और भेदज्ञान होनेसे परसे आसक्ति त्याग 'स्व' में प्रवृत्त होता है।

आगे प्रवचनसार गा. १८९ की टीकामें निश्चय और व्यवहारका अविरोध दर्शाते हुए अमृतचन्द्रजीने जो कहा है वह व्यवहार और निश्चय विषयक सब शंकाओंका निराकरण करता है। उन्होंने कहा है—

'रागपरिणाम ही आत्माका कर्म है, वही पुण्य-पापरूप है। रागपरिणामका ही आत्मा कर्ता है, उसीका ग्रहण करनेवाला और उसीका त्याग करनेवाला है, यह शुद्ध द्रव्यका निरूपण करनेवाला निश्चय-नय है, और पुद्गल परिणाम आत्माका कर्म है वही पुण्य-पापरूप है, आत्मा पुद्गल परिणामका ही कर्ता है, उसीको ग्रहण करता और छोड़ता है, यह अशुद्ध द्रव्यका कथन करनेवाला व्यवहारनय है। ये दोनों भी नय हैं क्योंकि शुद्धता और अशुद्धता दोनों प्रकारसे द्रव्यकी प्रतीति होती है किन्तु यहाँ (अध्यात्मशास्त्रमें) निश्चयनय साधकतम होनेसे ग्रहण किया गया है। क्योंकि साध्यके शुद्ध होनेसे द्रव्यकी शुद्धताका प्रकाशक होनेसे निश्चयनय साधकतम है किन्तु जीवके अशुद्ध स्वरूपका प्रकाशक व्यवहारनय साधकनय नहीं है।

उक्त कथनमें व्यवहार और निश्चयका कथन तथा दोनोंकी उपयोगिता और अनुपयोगिता अथवा साधकतमता और असाधकतमताको स्पष्ट कर दिया है।

चूँकि सापेक्षनय सत्य और निरपेक्षनय मिथ्या होते हैं। अतः जैसे निश्चय निरपेक्ष व्यवहार मिथ्या है उसी प्रकार व्यवहार निरपेक्ष निश्चय भी मिथ्या है। किन्तु हेय और उपादेयकी दृष्टिसे व्यवहारनय द्वारा प्रतिपादित जीवका अशुद्ध स्वरूप हेय है और निश्चय प्रतिपादित शुद्ध स्वरूप उपादेय है। उसीकी प्राप्तिके लिए सब प्रयत्न है।

किन्तु व्यवहार हेय होते हुए भी प्रारम्भसे ही सर्वथा हेय नहीं है। व्यवहार नयके बिना परमार्थका उपदेश भी अशक्य है। जैसे 'आत्मा' कहनेपर जिन्हें आत्माका परिज्ञान नहीं है, व कुछ भी नहीं समझते। किन्तु जब व्यवहार नयका अवलम्बन लेकर कहा जाता है कि जो दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप है वह आत्मा है तो वह समझ जाते हैं। किन्तु ऐसा कहनेपर भी अखण्ड-अभेदरूप आत्माकी प्रतीति न होकर खण्ड-भेदरूप आत्माकी प्रतीति होती है जो यथार्थ नहीं है क्योंकि आत्मा तो अखण्ड-अभेदरूप है। यदि कोई व्यवहारके द्वारा प्रतिपादित खण्ड-भेदरूप स्वरूपको ही यथार्थ मान बैठे तो वह मिथ्याज्ञानी ही कहा जायेगा। इस प्रकार जहाँ परमार्थका प्रतिपादक होनेसे व्यवहार उपयोगी है वहाँ यथार्थ स्वरूपका बोध न करा सकनेसे त्याज्य भी है। इसीलिए अमृतचन्द्रजीने कहा है—

'एवं....व्यवहारनयोऽपि परमार्थप्रतिपादकत्वात् उपन्यसनीय....व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः।' (गा. ८की टीका)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए व्यवहारनयको परमार्थका प्रतिपादक होनेसे स्थापित करना तो योग्य है किन्तु उसको सर्वथा उपादेय मानकर उसका अनुसरण करना योग्य नहीं है। इसीसे समयसार गा. ७ में कहा है—

'ज्ञानीके चारित्र, दर्शन, ज्ञान व्यवहारसे कहे हैं। निश्चयसे न ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है वह तो ज्ञायक मात्र है।'

तथा गाथा १६ में कहा है—

'साधुको दर्शन, ज्ञान, चारित्रका निरन्तर सेवन करना योग्य है। किन्तु निश्चयसे उन तीनोंको आत्मा ही जानो।'

अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र आत्माके ही पर्याय हैं, कोई भिन्न वस्तु नहीं हैं, अतः साधुको एक आत्माकी ही आराधना करनी चाहिए।

इस तरह व्यवहार भी किन्हीं जीवोंके लिए किन्हीं अवस्थाओंमें उपयोगी होता है। इसीसे आगममें जो कथन किया गया है वह व्यवहार प्रधान है क्योंकि उसके बिना परमार्थका बोध नहीं होता। अतः परमार्थका ज्ञान करानेके लिए आगममें भी व्यवहारप्रधान कथनका निषेध मिलता है। उदाहरणके लिए गोम्मटसारके जीवकाण्डमें बीस प्ररूपणाओंके द्वारा जीवका कथन किया है। अन्तमें कहा है—

गुणजीवठाणरहिया सण्णा पज्जत्तिपाणपरिहीणा।
सेस णवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति॥

सिद्ध सदा शुद्ध होते हैं उनमें गुणस्थान, जीवसमास, संज्ञा, पर्याप्ति, प्राण तथा चौदह मार्गणाओंमें-से नौ मार्गणा नहीं होतीं। अर्थात् बीसमें-से केवल छह प्ररूपणाएँ शुद्ध जीवमें होती हैं। अतः चौदहका कथन व्यवहारमूलक है। उससे ही संसारी जीव जीवका यथार्थ स्वरूप समझनेमें समर्थ होते हैं।

समयसारोक्त बन्धका कथन—

समयसारमें भी बन्धतत्त्वका कथन है। उसका भी सार यहाँ दिया जाता है—

जैसे कोई पुरुष शरीरमें तेल लगाकर धूलसे भरी भूमिमें खड़ा होकर व्यायाम कर्म करते हुए अनेक प्रकारके उपकरणोंसे सचित्त-अचित्त वस्तुका घात करते हुए धूलसे लिप्त हो जाता है। उसके धूलसे लिप्त होनेका कारण क्या है? भूमिका स्वभावसे ही धूलिभरा होना तो कारण नहीं है। यदि ऐसा हो तो जिनके शरीरमें तेल नहीं लगा है उनके भी धूलिसे लिप्त होनेका प्रसंग आता है। यही बात शस्त्रोंसे व्यायाम करनेके सम्बन्धमें भी जानना तथा अनेक उपकरणोंसे सचित्त-अचित्त वस्तुका घात करनेके सम्बन्धमें भी जानना। अतः न्यायबलसे यही सिद्ध होता है कि उस पुरुषका तेलसे लिप्त होना ही धूलिसे लिप्त होनेका कारण है।

इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि आत्मामें रागादि करता हुआ स्वभावसे ही कर्मयोग्य पुद्गलोंसे भरे लोकमें मन-वचन-कायकी क्रिया करते हुए अनेक प्रकारके उपकरणोंके द्वारा सचित्त-अचित्त वस्तुओंका घात करते हुए कर्मरूपी धूलि बाँधता है। इसमें उसके बन्धका कारण क्या है? लोकका स्वभावसे ही कर्मपुद्गलोंसे भरा होना यदि कारण हो तो लोकके अग्रभागमें विराजमान सिद्धोंके भी कर्मबन्धनका प्रसंग आता है। मन-वचन-कायकी क्रिया भी बन्धका कारण नहीं है। यदि हो तो यथाख्यात संयमके धारियोंके भी कर्म-बन्धनका प्रसंग आता है। अनेक इन्द्रियोंका होना भी बन्धमें कारण नहीं है, यदि हो तो केवलज्ञानियोंके भी बन्धका प्रसंग आता है। सचित्त-अचित्त वस्तुका घात भी बन्धका कारण नहीं है। यदि हो तो समितियोंके पालक मुनिराजोंके भी कर्मबन्धनका प्रसंग आता है। अतः न्यायबलसे यह निष्कर्ष निकलता है कि उपयोगमें रागादिका करना ही बन्धका कारण है॥२३७-२४१॥

आगे रागको अज्ञानमय अध्यवसाय बतलाकर उसे ही बन्धका कारण कहा है। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं अन्य जीवोंको मारता हूँ या अन्य जीव मुझे मारते हैं जिसके ऐसा अध्यवसाय है वह अज्ञानी होनेसे मिथ्यादृष्टि है। और जिसके नहीं है वह ज्ञानी होनेसे सम्यग्दृष्टी है ॥२४७॥

क्योंकि जीवोंका मरण अपने आयुकर्मके क्षय होनेसे ही होता है और आयुकर्मको कोई दूसरा हर नहीं सकता। वह तो अपने उपभोगसे ही क्षय होता है। अतः कोई कभी भी किसी अन्यका मरण नहीं कर सकता। अतः मैं अन्य जीवको मारता हूँ और अन्य जीव मुझे मारते हैं इस प्रकारका अध्यवसाय निश्चय ही अज्ञान है। इसी तरह मैं अन्य जीवोंको जिलाता हूँ और अन्य जीव मुझे जिलाते हैं ऐसा अध्यवसाय निश्चयसे अज्ञान है। क्योंकि जीवन तो जीवोंके अपने आयुकर्मके उदयसे ही होता है। उसके अभावमें नहीं होता। और आयुकर्म कोई किसीको दे नहीं सकता। वह तो अपने परिणामोंसे ही बँधता है।

मैं अन्य जीवों को दुखी या सुखी करता हूँ और अन्य जीव मुझे दुखी या सुखी करते हैं ऐसा अध्यवसाय निश्चय ही अज्ञान है। क्योंकि सब जीव अपने-अपने कर्मके उदयसे दुखी और सुखी होते हैं। उसके अभावमें उनका सुखी-दुखी होना सम्भव नहीं है। और अपना कर्म कोई किसी को दे नहीं सकता, उसका उपार्जन तो अपने परिणामोंसे ही होता है। अतः कोई कभी भी किसीको दुखी-सुखी नहीं कर सकता।

अतः अन्य जीवोंको मैं मारता हूँ, या नहीं मारता हूँ, उन्हें सुखी या दुखी करता हूँ इस प्रकारका जो अज्ञानमय अध्यवसाय है वही स्वयं रागादिरूप होनेसे उसके शुभ या अशुभ बन्धका कारण होता है।

जीवोंके प्राणोंका घात अपने कर्मोदयकी विचित्रतावश कभी होता है और कभी नहीं होता। किन्तु जो मारनेका अध्यवसाय किया जाता है वह निश्चयसे बन्धका हेतु होता है। इसी प्रकार अहिंसाका अध्यवसाय करना पुण्यबन्धका हेतु है। सारांश यह है कि बन्धका कारण अध्यवसाय है, बाह्य वस्तु बन्धका कारण नहीं है वह तो केवल अध्यवसानका कारण है। अध्यवसानके निषेधके लिए ही बाह्य वस्तुका निषेध है। बाह्य वस्तुके आश्रयके बिना अध्यवसान नहीं होता। इसलिये बाह्यवस्तु परम्परासे बन्धका कारण होती है साक्षात् नहीं, साक्षात् बन्धका कारण तो अध्यवसान ही है। अतः अन्य जीवोंको मैं सुखी करता हूँ या दुःखी करता हूँ इत्यादि अध्यवसान मिथ्या है क्योंकि परका भाव परमें व्यापार नहीं करनेसे स्वार्थ क्रियाकारी नहीं होता।

स्व और परका भेदज्ञान न होनेपर जो जीव संकल्प-विकल्प करता है उसे अध्यवसान कहते हैं। यही बन्धका कारण है। यह कषायके उदयरूप होता है। कषायके उदयसे ही कर्मोंमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है। कषायके उदयके अभावमें केवल योगसे तो प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध ही होते हैं। अतः बन्धका प्रमुख कारण कषायोदयरूप अध्यवसान ही होता है। किन्तु आगममें बन्धके कारण चार या पाँच कहे हैं।

मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योग ये पाँच हैं और प्रमादके बिना चार हैं। तत्त्वार्थसूत्र अ. ८।१ में पाँच कारण कहे हैं। समयसार, गोम्मटसार आदिमें प्रमादको नहीं लिया है इसपरसे यह आशंका होना स्वाभाविक है कि जब बन्धके चार प्रकार हैं और उनके दो ही कारण कहे हैं तब मिथ्यात्व और अविरतिको बन्धका कारण क्यों कहा ?

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि बन्धके ये कारण क्रमसे ही दूर होते हैं, प्रथम गुणस्थान मिथ्यादृष्टिमें बन्धके पाँचों कारण रहते हैं। दूसरेसे चतुर्थतक मिथ्यात्व नहीं रहता। शेष चार रहते हैं। पाँचवेंमें एक देश अविरतिके साथ बन्धके तीन कारण रहते हैं। छठेमें प्रमाद कषाय योग रहते हैं। सातवेंसे दसवें तक कषाय योग दो ही कारण रहते हैं। आगे तेरहवें तक केवल एक योग रहता है। अतः दसवें गुणस्थान तक चारों बन्ध होते हैं, आगे केवल प्रकृतिबन्ध प्रदेशबन्ध ही होते हैं। इस तरह इन चारों बन्धोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण कषाय योग प्रारम्भसे ही रहते हैं फिर भी मिथ्यात्व अविरति और प्रमादको भी बन्धके कारणोंमें कहा है।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मोहनीय कर्मके दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीयका भेद मिथ्यात्व है और चारित्र मोहनीयका भेद कषाय है। उस कषायकी चार जातियाँ हैं, उनमेंसे प्रथम अनन्तानुबन्धी कषाय है। इसका और मिथ्यात्वका ऐसा गठबन्धन है कि एकके बिना दूसरा नहीं जाता। जब दोनोंका ही उपशम आदि होता है तभी जीवको सम्यक्त्व होता है। किन्तु पहले गुणस्थानमें १६ प्रकृतियोंकी बन्धको व्युच्छित्ति होती है। ये सोलह प्रकृतियाँ केवल पहले गुणस्थानमें ही बँधती हैं आगे मिथ्यात्वका उदय न होनेसे नहीं बँधती हैं। अतः उनके बन्धका मुख्य कारण मिथ्यात्व ही है। अतः मिथ्यात्वको बन्धका कारण कहा है।

मिथ्यात्वके उदयके साथ अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंका उदय तो रहता ही है। फिर भी दूसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्वका उदय न होनेसे अनन्तानुबन्धीका उदय होते हुए भी उक्त सोलह प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। अतः उनके बन्धका प्रमुख कारण मिथ्यात्व ही है। अतः कषाय और योगके साथ मिथ्यात्वको भी बन्धका कारण माना गया है। अविरति या असंयमके तीन प्रकार हैं—अनन्तानुबन्धी कषायके उदयरूप, अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयरूप और प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयरूप। इस तरह उसे भी बन्धके कारणोंमें गिनाया है।

जीव और कर्मके बन्धका स्वरूप—

जीव एक पृथक् स्वतन्त्र द्रव्य है और पौद्गलिक कर्म एक पृथक् स्वतन्त्र द्रव्य है। इसीसे शुद्ध जीवके साथ पौद्गलिक कर्मका बन्ध नहीं होता किन्तु कर्मसे बद्ध अशुद्धजीवके साथ ही पौद्गलिक कर्मका बन्ध होता है। यह बन्ध संयोगपूर्वक ही होता है। संयोगके बिना तो हो नहीं सकता। किन्तु जीव और कर्मका बन्ध संयोगपूर्वक होनेपर भी केवल संयोगमात्र नहीं है। जैसे दो परमाणुओंका संयोग होनेपर भी यदि उनमें बन्ध न हो तो द्व्यणुक आदि स्कन्ध नहीं बन सकते। इसी तरह जीवका कर्मके साथ बन्ध भी केवल संयोग-मात्र नहीं है।

सर्वार्थसिद्धिमें (५।३३) सूत्रकी उत्थानिकामें यह शंका उठायी है कि द्व्यणुक आदि लक्षण संघात संयोगसे ही हो जाता है या कुछ विशेषता होती है। समाधानमें कहा है कि संयोगके होनेपर एकत्व परिणमन रूप बन्धसे संघातकी उत्पत्ति होती है।

इसी सर्वार्थसिद्धिमें (२।७) सूत्रकी टीकामें शंका की गयी है—यदि कर्मबन्ध रूप पर्यायकी अपेक्षा जीव मूर्त है तो कर्मबन्धके आवेशसे आत्माका ऐक्य हो जानेपर दोनोंमें भेद नहीं रहेगा। उत्तरमें कहा है, बन्धकी अपेक्षा एकत्व है, लक्षणभेदसे नानात्व है।

इससे स्पष्ट है कि जीव और कर्मका बन्ध भी दो परमाणुओंके बन्धकी तरह ही होता है। पंचास्तिकाय गाथा ६७ की टीकामें अमृतचन्द्रजीने लिखा है—

'जीवा हि मोहरागद्वेषस्निग्धत्वात् पुद्गलस्कन्धाश्च स्वभावस्निग्धत्वात् बन्धावस्थायां परमाणुद्वन्द्वानीवान्योन्यावगाहग्रहणप्रतिबद्धत्वेनावतिष्ठन्ते।'

'जीव तो मोह, राग, द्वेषसे स्निग्ध है, और पुद्गलस्कन्ध स्वभावसे स्निग्ध है। अतः बन्धदशामें दो परमाणुओंकी तरह परस्परमें अवगाहके ग्रहण द्वारा प्रतिबद्ध रूपसे रहते हैं।'

सर्वार्थसिद्धि (५।३७) में कहा है—"ऐसा बन्ध होनेसे पूर्व अवस्थाओंको त्यागकर उससे भिन्न एक तीसरी अवस्था उत्पन्न होती है। अतः उनमें एकरूपता आ जाती है। अन्यथा सफेद और काले तन्तुके समान संयोग होनेपर भी पारिणामिक न होनेसे सब अलग-अलग ही स्थित रहेगा। परन्तु उक्त विधिसे बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होनेपर ज्ञानावरणादि कर्मोंकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति बनती है।"

इन उक्त प्रमाणोंसे सिद्ध है कि जीव और कर्मका बन्ध भी उसी प्रकार होता है जैसा दो परमाणुओं-का बन्ध होता है। वह केवल एक क्षेत्रावगाहरूप ही नहीं है। जयसेनाचार्यने 'अन्योन्यावगाहेन संश्लिष्टरूपेण प्रतिबद्धाः' लिखा है। और आचार्य पूज्यपादने 'अविभागेन उपश्लेषः' लिखा है। आचार्य अमृतचन्द्रजीने 'विशिष्टतरः परस्परमवगाहः' लिखा है।

पंचाध्यायी उत्तरार्द्धमें यह शंका की गयी है कि बद्धता और अशुद्धतामें क्या अन्तर है। उसके उत्तरमें कहा है—

बन्धः परगुणाकारा क्रिया स्यात्पारिणामिकी।
तस्यां सत्यामशुद्धत्वं तद्द्वयोः स्वगुणच्युतिः ॥ १३० ॥

"परगुणाकार जो पारिणामिकी क्रिया होती है उसीका नाम बन्ध है और उसके होनेपर उन दोनोंका अपने-अपने गुणसे च्युत हो जाना अशुद्धता है।" इस तरह अशुद्धता बन्धका कारण भी है और कार्य भी है। क्योंकि बन्धके बिना अशुद्धता नहीं होती।

इस प्रकार शुद्धनयसे जीव शुद्ध है किन्तु व्यवहारनयसे अशुद्ध भी है। शुद्धनय एक और निर्विकल्पक होता है अतः शुद्धनयसे जीव एक चैतन्यस्वरूप है। और व्यवहारनय अनेक और सविकल्पक है। उसके विषय जीवादि नौ पदार्थ हैं। यद्यपि शुद्धनय ही मोक्षमार्गमें उपयोगी माना गया है व्यवहारनय नहीं माना गया। तथापि शुद्धनयकी तरह व्यवहारनय भी न्यायप्राप्त है। क्योंकि जब एक ही जीव अनादि सन्तान-बन्ध पर्यायमात्रसे विवक्षित होता है तब जीव-अजीव आदि नौ पदार्थरूप होता है। यद्यपि ये नौ पदार्थ पर्यायधर्मा होते हैं किन्तु ये केवल जीवकी ही पर्याय नहीं हैं। उसके साथ उपरक्तिरूप उपाधि लगी हुई है। यह उपाधि अनादिकालसे है। इस उपरक्तिको उपाधि मानकर यदि उपेक्षित कर दिया जाये तो नौ पदार्थ नहीं बन सकते। क्योंकि ये नौ पदार्थ जीव और पुद्गलसे भिन्न स्वतन्त्र द्रव्य नहीं हैं और न ये केवल जीव या केवल पुद्गलके होते हैं, किन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे परस्परमें सम्बद्ध जीव और पुद्गलके होते हैं। सारांश यह है कि एक ही जीव नौ पदार्थरूप हो रहा है। किन्तु उस दशामें भी वह शुद्ध अनुभवमें आता है क्योंकि जो उपरक्ति है वह उपाधि होनेसे अभूतार्थ है।

यह सब कथन पंचाध्यायीके उत्तरार्द्धमें विस्तारसे किया है।

अतः जीव और कर्मका सम्बन्ध केवल परस्पर एकक्षेत्रावगाह मात्र ही नहीं है किन्तु विशिष्ट उपश्लेष रूप होता है। तभी तो उसके प्रकृतिबन्ध आदि चार भेद होते हैं और वह जीवके संसार परिभ्रमणका कारण होता है और उसके विनाशके लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

कर्म फल कैसे देते हैं—

अन्य दर्शनोंमें भी जीवको कर्म करनेमें स्वतन्त्र माना है किन्तु उसका फल भोगनेमें परतन्त्र माना है। उनकी दृष्टिसे जड़ कर्म स्वयं अपना फल नहीं दे सकता। अतः ईश्वर उसे उसके कर्मोंके अनुसार फल देता है। किन्तु जैनधर्ममें तो ऐसा कोई ईश्वर नहीं है। अतः जीव स्वयं ही कर्म करता है और स्वयं ही उसका फल भोगता है। उदाहरणके लिए एक व्यक्ति दूध पीकर पुष्ट होता है और दूसरा व्यक्ति शराब पीकर मतवाला होता है। क्या इसके लिए किसी दूसरेकी आवश्यकता है? दूधमें बलदायक शक्ति है अतः उसको पीनेवाला स्वयं बलशाली होता है और शराबमें मादकशक्ति है अतः उसे पीनेवाला स्वयं मतवाला होता है। इसी प्रकार जो अच्छे कार्योंके द्वारा शुभ कर्मका बन्ध करता है उसकी परिणति स्वयं अच्छी होती है और जो बुरे कार्योंके द्वारा अशुभ कर्मका बन्ध करता है उसकी परिणति स्वयं बुरी होती है। पूर्व जन्मके अच्छे-बुरे संस्कारवश ही ऐसा होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशय यह है कि जीवकी प्रत्येक कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाको निमित्त करके जो पुद्गल कर्म परमाणु जीवकी ओर आकृष्ट होते हैं और राग-द्वेषका निमित्त पाकर उससे बँध जाते हैं उन कर्म परमाणुओंमें भी शराब और दूधकी तरह अच्छा या बुरा करनेकी शक्ति होती है जो चैतन्यके सम्बन्धसे व्यक्त होकर उसपर अपना प्रभाव डालती है तथा उससे प्रभावित हुआ जीव ऐसे कार्य करता है जो उसे सुखदायक या दुःखदायक होते हैं। यदि कर्म करते समय जीवके भाव अच्छे होते हैं तो बँधनेवाले कर्म परमाणुओंपर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है और कालान्तरमें अच्छा फल मिलनेमें निमित्त होते हैं। यदि भाव बुरे होते हैं तो उसका प्रभाव भी बुरा पड़ता है और कालान्तरमें फल भी बुरा मिलता है। अतः जीवको फल भोगनेमें परतन्त्र माननेकी आवश्यकता नहीं है। यदि ईश्वरको फलदाता माना जाता है तो जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्यका घात करता है तब घातकको दोषका भागी नहीं होना चाहिए; क्योंकि उस मनुष्यके द्वारा ईश्वरने मरनेवालेको मृत्युका दण्ड दिया है। जैसे राजा जिन व्यक्तियोंके द्वारा अपराधियोंको दण्ड देता है वे व्यक्ति अपराधी नहीं माने जाते; क्योंकि वे राजाकी आज्ञाका पालन करते हैं। उसी तरह किसीका घात करनेवाला भी जिसका घात करता है उसके पूर्वकृत कर्मोंका फल भुगताता है क्योंकि ईश्वरने उसके पूर्वकृत कर्मोंकी यही सजा नियत की, तभी तो उसका वध हुआ। यदि कहा जाये कि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है अतः घातकका कार्य ईश्वरप्रेरित नहीं है किन्तु उसकी स्वतन्त्र इच्छाका परिणाम है, तो कहना होगा कि संसारदशामें कोई भी प्राणी वास्तवमें स्वतन्त्र नहीं है सभी अपने-अपने कर्मोंसे बँधे हैं। महाभारत-में भी लिखा है—'कर्मणा बध्यते जन्तुः।' प्राणी कर्मसे बँधता है। और कर्मकी परम्परा अनादि है। ऐसी परिस्थितिमें 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' अर्थात् प्राणियोंकी बुद्धि कर्मके अनुसार होती है, इस न्यायके अनुसार किसी भी कामको करने या न करनेमें मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। इसपर-से यह आशंका होती है कि ऐसी दशामें तो कोई भी जीव मुक्तिलाभ नहीं कर सकेगा क्योंकि जीव कर्मसे बँधा है और कर्मके अनुसार जीवकी बुद्धि होती है। किन्तु ऐसी आशंका ठीक नहीं है क्योंकि कर्म अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। अतः अच्छे कर्मका अनुसरण करनेवाली बुद्धि मनुष्यको सन्मार्गकी ओर ले जाती है और बुरे कर्मका अनुसरण करनेवाली बुद्धि मनुष्यको कुमार्गकी ओर ले जाती है। सन्मार्गपर चलनेसे क्रमशः मुक्तिलाभ और कुमार्गपर चलनेसे कुगति लाभ होता है। अस्तु,

जब उक्त प्रकारसे जीव कर्म करनेमें सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है तब घातकका घातनरूप कर्म उसकी दुर्बुद्धिका ही परिणाम कहा जायेगा, और बुद्धिकी दुष्टता उसके किसी पूर्वकृत कर्मका फल होना चाहिए। किन्तु जब हम कर्मका फल ईश्वराधीन मानते हैं तो उसका प्रेरक ईश्वरको ही कहा जायेगा।

किन्तु यदि हम ईश्वरको फलदाता न मानकर जीवके कर्मोंमें ही स्वतः फलदानकी शक्ति मान लेते हैं तो उक्त समस्या हल हो जाती है। क्योंकि मनुष्यके पूर्वकृत बुरे कर्म उसकी आत्मापर इस प्रकारके संस्कार डाल देते हैं जिससे वह क्रुद्ध होकर हत्या तक कर बैठता है।

किन्तु ईश्वरको फलदाता माननेपर हमारी विचार-शक्ति कहती है कि किसी विचारशील फलदाता-को किसी व्यक्तिके बुरे कर्मका फल ऐसा देना चाहिए जो उसकी सजाके रूपमें हो, न कि दूसरोंको उसके द्वारा सजा दिलवानेके रूपमें। उक्त घटनामें ईश्वर घातकसे दूसरेका घात कराता है; क्योंकि उसे उसके द्वारा दूसरेको सजा दिलानी है। किन्तु घातककी जिस दुर्बुद्धिके कारण वह परका घात करता है उस बुद्धिको दुष्ट करनेवाले कर्मोंका उसे क्या फल मिला। अतः ईश्वरको कर्मफलदाता माननेमें इसी तरह अन्य भी अनेक अनुपपत्तियाँ खड़ी होती हैं। जिनमें-से एक इस प्रकार है—

किसी कर्मका फल हमें तत्काल मिल जाता है, किसीका कुछ माह बाद मिलता है, किसीका कुछ वर्ष बाद मिलता है, और किसीका इस जन्ममें नहीं मिलता। इसका क्या कारण है? कर्मफलके भोगमें यह समयकी विषमता क्यों देखी जाती है। ईश्वरेच्छाके सिवाय इसका कोई सन्तोषजनक समाधान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वरवादियोंकी ओरसे नहीं मिलता। किन्तु कर्ममें ही फलदानकी शक्ति माननेवाला जैनकर्म-सिद्धान्त उक्त प्रश्नोंका बुद्धिगम्य समाधान करता है जैसा आगे बतलाया जायेगा।

९. कर्मके भेद

कर्मके दो भेद हैं—द्रव्यकर्म और भावकर्म। द्रव्यकर्मके मूल भेद आठ हैं और उत्तर भेद एक सौ अड़तालीस तथा उत्तरोत्तर भेद असंख्यात हैं। ये सब पुद्गलके परिणामरूप हैं क्योंकि जीवकी परतन्त्रतामें निमित्त होते हैं। और भावकर्म चैतन्यके परिणामरूप क्रोधादि भाव हैं उनका तो प्रत्येक जीवको अनुभव होता है; क्योंकि जीवके साथ उनका कथंचित् अभेद है। इसीसे वे पारतन्त्र्य स्वरूप हैं, परतन्त्रतामें निमित्त नहीं हैं। द्रव्यकर्म परतन्त्रतामें निमित्त होता है और भावकर्म चैतन्यका परिणाम होनेसे पारतन्त्र्यस्वरूप होता है। यही दोनोंमें भेद है। जहाँ कर्मसिद्धान्त विषयक ग्रन्थोंमें द्रव्यकर्मकी प्रधानतासे कथन मिलता है वहाँ अध्यात्ममें भावकर्मकी प्रधानतासे वर्णन मिलता है। सब कर्मोंमें प्रधान मोहनीय कर्म है। वही संसारपरिभ्रमणका मुख्य कारण है। प्रवचनसार गा. ८३-८४ में कहा है कि द्रव्य-गुण पर्यायके विषयमें जीवका जो मूढ़ भाव है, जिसका लक्षण तत्त्वको न जानना है, वह मोह है। उससे आच्छादित आत्मा परद्रव्यको आत्मद्रव्य रूपसे, परगुणको आत्मगुण रूपसे और परपर्यायको आत्मपर्याय रूपसे जानता है। अतः रात-दिन पर-द्रव्यके ग्रहणमें लगा रहता है। तथा इन्द्रियोंके वशमें होकर जो पदार्थ रुचता है उससे राग करता है, जो नहीं रुचता उससे द्वेष करता है। इस प्रकार मोह-राग द्वेषके भेदसे मोहके तीन प्रकार अध्यात्ममें कहे हैं। ये सब भावमोह हैं। यह भावमोह कार्य भी है और कारण भी। पूर्वमें बद्धकर्मके उदयसे होता है इसलिए तो कार्य है और नवीन बन्धका कारण होनेसे कारण है। भावमोहको दूर किये बिना द्रव्यमोहसे छुटकारा नहीं हो सकता। क्योंकि भावमोहका निमित्त मिलने पर ही पौद्गलिक कर्म मोहादि द्रव्यकर्म रूप परिणत होते हैं। उनके उदयमें ज्ञानी विवेकी जीव मोहरूप परिणत नहीं होता अतः द्रव्यमोहका नवीन बन्ध नहीं होता। अतः यथार्थमें भावकर्मकी प्रधानता है, द्रव्यकर्मकी नहीं। किन्तु कर्म-सिद्धान्त द्रव्यकर्म प्रधान है। इसीसे कर्मकाण्डके प्रारम्भमें कर्मके दो भेद करके लिखा है—

'पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥६॥

अर्थात् पुद्गलके पिण्डको द्रव्यकर्म कहते हैं और उसमें जो शक्ति है उसे भावकर्म कहते हैं।
उक्त गाथाकी जीवतत्त्वप्रदीपिका टीकामें लिखा है—

'पिण्डगतशक्तिः कार्ये कारणोपचारात् शक्तिजनिताज्ञानादिर्वा भावकर्म भवति।'

'उस पुद्गलपिण्डमें रहनेवाली फल देनेकी शक्ति भावकर्म है। अथवा कार्यमें कारणके उपचारसे उस शक्तिसे उत्पन्न अज्ञानादि भी भावकर्म है।' इस प्रकार कर्म-सिद्धान्तमें पौद्गलिक कर्मोंकी मुख्यतासे वर्णन मिलता है। यद्यपि भावकर्म द्रव्यकर्ममें निमित्त होता है और द्रव्यकर्म भावकर्ममें निमित्त होता है। दोनों ही अनादि होनेसे आगे-पीछेका प्रश्न नहीं है। फिर भी गौणता और मुख्यताकी दृष्टिका भेद है। द्रव्यकर्मकी मुख्यतामें कहा जाता है कि द्रव्यकर्मका निमित्त न मिले तो भावकर्म नहीं हो सकते। और भावकर्मकी मुख्यतामें कहा जाता है कि भावकर्मका निमित्त न मिले तो पुद्गल पिण्ड द्रव्यकर्म रूप नहीं हो सकता। दोनों ही कथन दृष्टिभेदसे यथार्थ हैं। किन्तु मुमुक्षुके लिए प्रथम कथनसे द्वितीय कथन अधिक उपयोगी है। प्रथम कथनसे तो यही ध्वनित होता है कि पुद्गल कर्मोंने ही चेतनको बाँध रखा है। और उनपर हमारा कोई जोर नहीं है। अतः परसे बाँधा जानकर जीव निराश हो जाता है। किन्तु जब वह जानता है कि मेरे भावकर्म ही मेरे बन्धनके मूल हैं उनका निमित्त पाकर पौद्गलिक पिण्ड द्रव्यकर्म रूप होते हैं, तब वह अपने भावोंको सम्हालनेकी चेष्टा करता है। द्रव्य मोहके उदयमें भी भेदज्ञानके द्वारा मोहित नहीं होता। और इस तरह सम्यक्त्वको प्राप्त करके कर्मोंके बन्धनसे सदाके लिए छूट जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः पुद्गलपिण्डकी शक्तिरूप भावकर्म तज्जनित अज्ञानादि रूप भावकर्मके अभावमें निष्फल होकर झड़ जाते हैं। पुद्गल पिण्डको शक्ति प्रदान करनेवाले जीवके भावकर्म ही हैं, जो जीवकी ही करतूत है।

उक्त दो भेद अन्य दर्शनोंमें नहीं मिलते। प्रायः शास्त्रकारोंने कर्मके भेद दो दृष्टियोंसे किये हैं—एक विपाककी दृष्टिसे और दूसरा विपाककालकी दृष्टिसे। कर्मका फल किस-किस रूप होता है और कब होता है प्रायः इन्हीं दो बातोंको लेकर भेद किये गये हैं। कर्मके भेदोंका उल्लेख तो प्रायः सभी दर्शनकारोंने किया है किन्तु जैनेतर दर्शनोंमेंसे योगदर्शन और बौद्धदर्शनमें ही कर्माशय और उसके विपाकका कुछ विस्तृत वर्णन मिलता है और विपाक तथा विपाककालकी दृष्टिसे कुछ भेद भी गिनाये हैं परन्तु जैनदर्शनमें उसके भेद-प्रभेदों और विविध दशाओंका बहुत ही विस्तृत और सांगोपांग वर्णन है। तथा जैनदर्शनमें कर्मोंके भेद तो विपाककी दृष्टिसे ही गिनाये हैं किन्तु विपाकके होने, न होने, अमुक समयमें होने वगैरहकी दृष्टिसे जो भेद हो सकते हैं उन्हें कर्मोंकी विविध दशाके रूपमें चित्रित किया है। अर्थात् कर्मके अमुक-अमुक भेद हैं और उनकी अमुक-अमुक अवस्थाएँ होती हैं। अन्य दर्शनोंमें इस तरहका श्रेणिविभाग नहीं पाया जाता। जैसा आगे स्पष्ट किया जाता है।

कर्मके दो भेद अच्छा और बुरा तो सभी मानते हैं। इन्हें ही विभिन्न शास्त्रकारोंने शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, कुशल-अकुशल, शुक्ल, कृष्ण आदि नामोंसे कहा है। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न दर्शनकारोंने विभिन्न दृष्टियोंसे विभिन्न भेद किये हैं। गीतामें (१।१८) सात्त्विक, राजस, तामस भेद पाये जाते हैं। संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण भेद भी किये गये हैं। किसी मनुष्यके द्वारा किया गया जो कर्म है, चाहे वह इस जन्ममें किया गया हो या पूर्व जन्ममें, वह सब संचित कहाता है। इसीका दूसरा नाम अदृष्ट और मीमांसकोंके मतमें अपूर्व है। इन नामोंका कारण यह है कि जिस समय कर्म या क्रिया की जाती है उसी समयके लिए वह दृश्य रहती है। उस समयके बीत जानेपर वह स्वरूपतः शेष नहीं रहती, किन्तु उसके सूक्ष्म अतएव अदृश्य अर्थात् अपूर्व और विलक्षण परिणाम ही शेष रह जाते हैं। उन सब संचित कर्मोंको एक साथ भोगना सम्भव नहीं है। क्योंकि उनमेंसे कुछ परस्पर विरोधी अर्थात् अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके फल देनेवाले हो सकते हैं। उदाहरणके लिए कोई संचित कर्म स्वर्गप्रद और कोई नरक ले जानेवाला होता है। अतएव संचितमेंसे जितने कर्मोंके फलोंको भोगना पहले प्रारम्भ होता है उतनेको प्रारब्ध कहते हैं।

लोकमान्य तिलकने अपने गीतारहस्यमें (पृ. २७२) क्रियमाण भेदको ठीक नहीं माना है। उन्होंने लिखा है—

'क्रियमाण....का अर्थ है जो कर्म अभी हो रहा है अथवा जो कर्म अभी किया जा रहा है। परन्तु वर्तमान समयमें हम जो कुछ करते हैं वह प्रारब्ध कर्मका ही परिणाम है। अतएव क्रियमाणको कर्मका तीसरा भेद माननेके लिए हमें कोई कारण नहीं दीख पड़ता।'

वेदान्त सूत्रमें (४।१।१५) कर्मके प्रारब्ध कार्य और अनारब्ध कार्य दो भेद किये हैं। लोकमान्य इन्हें ही उचित मानते हैं।

योगदर्शनमें कर्माशयके दो भेद किये हैं—एक दृष्ट जन्मवेदनीय और दूसरा अदृष्ट जन्मवेदनीय। जिस जन्ममें कर्मका संचय किया है उसी जन्ममें यदि वह फल देता है तो उसे दृष्ट जन्मवेदनीय कहते हैं और यदि दूसरे जन्ममें फल देता है तो उसे अदृष्ट जन्मवेदनीय कहते हैं। दोनोंमेंसे प्रत्येकके दो भेद हैं—एक नियत विपाक, दूसरा अनियत विपाक।

बौद्धदर्शनमें कर्मके भेद कई प्रकारसे गिनाये हैं। यथा—सुखवेदनीय, दुःखवेदनीय, न दुःखसुखवेदनीय तथा कुशल, अकुशल और अव्याकृत। दोनोंका आशय एक ही है—जो सुखका अनुभव कराये, जो दुःखका अनुभव कराये और जो न दुःखका और न सुखका अनुभव कराये। प्रथम तीन भेदोंके भी दो भेद हैं—एक नियत, दूसरा अनियत। नियतके तीन भेद हैं—दृष्टधर्मवेदनीय, उपपद्यवेदनीय और अपरपर्याय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदनीय। अनियतके दो भेद हैं—विपाककाल अनियत और अनियत विपाक। दृष्टधर्मवेदनीयके दो भेद हैं—सहसा वेदनीय और असहसा वेदनीय। शेष भेदोंके भी चार भेद हैं—विपाककाल अनियत। विपाकानियत, विपाकनियत विपाककाल अनियत, नियतविपाक नियतवेदनीय और अनियत विपाक अनियतवेदनीय।

किन्तु जैनदर्शनमें वर्णित कर्मके भेदोंकी तुलनाके योग्य कोई भेद अन्य दर्शनोंमें वर्णित पूर्वोक्त भेदोंमें नहीं पाया जाता। योगदर्शनमें कर्मका विपाक तीन रूपसे बतलाया है—जन्मके रूपमें, आयुके रूपमें और योगके रूपमें। किन्तु अमुक कर्माशय आयुके रूपमें अपना फल देता है, अमुक कर्माशय जन्मके रूपमें अपना फल देता है और अमुक कर्माशय भोगके रूपमें अपना फल देता है यह बात वहाँ नहीं बतलायी है। यदि यह भी वहाँ बतलाया गया होता तो योगदर्शनके आयुविपाकवाले कर्माशयकी जैनदर्शनके आयुकर्मसे और जन्मविपाकवाले कर्माशयकी नामकर्मसे तुलना की जा सकती थी। किन्तु वहाँ तो सभी कर्माशय मिलकर तीनरूप फल देते हैं। जो कर्माशय दृष्टजन्मवेदनीय होता है वह केवल दो ही रूप फल देता है, जन्मान्तरमें न जानेसे उसका विपाक जन्मरूपसे नहीं होता। अन्य दर्शनोंमें वर्णित कर्मके जो भेद पहले गिनाये हैं वे जैनदर्शनमें वर्णित कर्मोंकी विविध दशाएँ हैं जिनका कथन आगे करेंगे।

कर्मशास्त्र अध्यात्मशास्त्र है—

जिसमें एक आत्माको लेकर कथन किया जाता है उसे अध्यात्मशास्त्र कहते हैं। इस प्रकार अध्यात्मशास्त्रका उद्देश्य आत्माके स्वरूपका विचार है। द्रव्यसंग्रह (गा. ५७) और समयसारकी टीकाके अन्तमें 'अपनी शुद्ध आत्मामें अधिष्ठानको अध्यात्म' कहा है। यही अध्यात्मका प्रयोजन है। द्रव्य संग्रहकी गा. १३ में कहा है—

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया॥

अर्थ—संसारी जीव अशुद्धनयकी दृष्टिसे चौदह मार्गणा तथा चौदह गुणस्थानोंकी अपेक्षा चौदह प्रकारके होते हैं और शुद्धनयसे सब जीव शुद्ध हैं।

इसकी टीकाके अन्तमें टीकाकारने कहा है कि उक्त गाथाके तीन पदोंसे 'गुणजीवा पज्जत्ति' इत्यादि गाथामें जो बीस प्ररूपणा कही हैं, वे धवल, जयधवल, महाधवल नामक तीन सिद्धान्त ग्रन्थोंके बीजपद रूप हैं, उनको सूचित किया है और गाथाके चतुर्थ पाद 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' से पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार नामक तीन प्राभृतोंके बीजपदको सूचित किया है।

इस तरह उक्त गाथामें सिद्धान्त या आगम और अध्यात्म दोनोंकी ही कथनीको संगृहीत बतलाया है। साथ ही दोनोंके भेदको भी स्पष्ट किया है। और दोनोंके पारस्परिक सम्बन्धको भी सूचित किया है। उक्त टीकाके अनुसार अध्यात्ममें आत्माके पारमार्थिक शुद्ध स्वरूपका वर्णन होता है और आगम या सिद्धान्तमें उसके व्यावहारिक स्वरूपका कथन होता है। मोक्षके अभिलाषीको इन दोनों ही स्वरूपोंको जानना आवश्यक है, क्योंकि एक उसके शुद्ध स्वरूपको बतलाता है तो दूसरा उसके वर्तमान अशुद्ध स्वरूपको। और अशुद्धता उसके ही कर्मोंका परिणाम है। अतः जबतक वह अपनी वर्तमान परिणतिके कारण कलापोंसे परिचित न होगा तबतक उससे छूटनेका प्रयत्न नहीं करेगा। इस दृष्टिसे कर्मशास्त्र भी अध्यात्म शास्त्रका ही अंग है। इसीसे समयसार नामक अध्यात्मशास्त्रमें संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्वके साथ आस्रव और बन्धतत्त्वका भी विवेचन है। उनके विना शेष तत्त्वोंका कथन ही निरर्थक हो जाता है।

हमारे सामने आत्मा दृश्य नहीं है। दृश्य हैं मनुष्योंके विविध रूप और पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि। जो हमें चलते-फिरते दृष्टिगोचर होते हैं, उनमें कुछ समझदार हैं तो कुछ नासमझ। इन्हींके द्वारा हम जब

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

और चेतनके भेदको जाननेका प्रयत्न करते हैं। और तब उनकी विविध दशाओंका कारण उनके कर्मको बखानते हैं। कर्मसिद्धान्त प्रकट करता है कि जीवकी इन विविध दशाओंका कारण उनका कर्म है। कर्मका अमुक कारणोंसे आस्रव और बन्ध होता है। तथा उनका अमुक परिणाम होता है।

केवल अध्यात्मशास्त्र अर्थात् आत्माके शुद्ध स्वरूपका निरूपण करनेवाले शास्त्रके अध्ययनसे आत्माका एकांगी ज्ञान होता है और केवल उस ज्ञानके बलसे शुद्धात्माको प्राप्त करना शक्य नहीं है। इसीसे आचार्य कुन्दकुन्दने पंचास्तिकाय और प्रवचनसारकी रचना की। इन तीनोंके अध्ययनसे द्रव्य-गुण-पर्यायका स्वरूप, छह द्रव्योंका स्वरूप आदि अनेक आवश्यक बातोंका ज्ञान होता है। फिर भी कर्मसिद्धान्तका ज्ञान नहीं होता। और कर्मसिद्धान्तका ज्ञान न होनेसे शरीरको रचना, उसमें इन्द्रियोंकी रचना, इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाला विषयोंका ग्रहण, उससे होनेवाला रागरूप भावकर्म, उससे नवीन कर्मका बन्ध, बन्धसे पुनर्जन्म आदिका ज्ञान नहीं होता है। उस ज्ञानसे ही शरीर और इन्द्रियोंमें आत्मबुद्धिकी भावना दूर होती है और आत्मामें ही आत्मबुद्धिका विकास होता है; क्योंकि जबतक प्रत्यक्ष अनुभवमें आनेवाली वर्तमान अवस्थाओंके साथ आत्माके सम्बन्धका सच्चा स्पष्टीकरण न हो तब तक दृष्टि उधरसे हटकर अपनी ओर नहीं लग सकती। जब यह ज्ञान होता है कि ये सब रूप वैभाविक हैं, कर्मजन्यविकार हैं तब आत्मस्वरूपकी यथार्थ जिज्ञासा होती है। उसी अवस्थामें आत्माके शुद्ध स्वरूपका उपदेश कार्यकारी होता है।

समयसारमें शुद्ध जीवके स्वरूपके वर्णनमें लिखा है—गुणस्थान, मार्गणास्थान, योगस्थान, उदयस्थान, अनुभागस्थान, बन्धस्थान, स्थितिबन्धस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान आदि जीवके नहीं हैं। इन सबका कथन कर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थोंमें है। जिसने उन्हें पढ़ा नहीं वह कैसे इनसे भेदबुद्धि कर सकेगा। अतः कर्मशास्त्र अध्यात्मशास्त्रका अभिन्न अंग है और जो उसकी उपेक्षा करके केवल समयसारमें रमते हैं वे समयसारके मात्र ज्ञाता हो सकते हैं अनुभविता और प्राप्ता नहीं हो सकते।

पं. टोडरमलजी ने अपने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थके आठवें अध्यायमें चारों अनुयोगोंकी उपयोगिता और प्रयोजन बतलाते हुए करणानुयोगके सम्बन्धमें लिखा है—

"कितने ही जीव कहते हैं कि करणानुयोगमें गुणस्थान मार्गणादिका व कर्मप्रकृतियोंका कथन किया....सो उन्हें जान लिया कि 'यह इस प्रकार है', इसमें अपना कार्य क्या सिद्ध हुआ। या तो भक्ति करे, या व्रतदानादि करे या आत्मानुभव करे, इससे अपना भला है।"

उससे कहते हैं—परमेश्वर तो वीतराग हैं, भक्ति करनेसे प्रसन्न होकर कुछ करते नहीं हैं। भक्ति करनेसे कषाय मन्द होती है, उसका स्वयमेव उत्तम फल होता है। सो करणानुयोगके अभ्याससे उससे भी अधिक मन्द कषाय होती है इसलिए इसका फल अति उत्तम होता है। तथा व्रत-दानादि तो कषाय घटानेके बाह्य निमित्तके साधन हैं और करणानुयोगका अभ्यास करनेपर वहाँ उपयोग लग जाये तब रागादिक दूर होते हैं सो यह अन्तरंग निमित्तका साधन है इसलिए यह विशेष कार्यकारी है। तथा आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है परन्तु सामान्य अनुभवमें उपयोग टिकता नहीं। और नहीं टिकता तब अन्य विकल्प होते हैं। वहाँ करणानुयोगका अभ्यास हो तो उस विचारमें उपयोग लगाता है। यह विचार वर्तमान भी रागादि घटाता है और आगामी रागादि घटानेका कारण है इसलिए यहाँ उपयोग लगाना। जीव कर्मादिके नाना भेद जाने, उनमें रागादिक करनेका प्रयोजन नहीं है। इसलिए रागादि बढ़ते नहीं हैं। वीतराग होनेका प्रयोजन जहाँ-तहाँ प्रकट होता है इसलिए रागादि मिटानेका कारण है। कितने ही कहते हैं—करणानुयोगमें कठिनता बहुत है इसलिए उसके अभ्यासमें खेद होता है।

उनसे कहते हैं—यदि वस्तु शीघ्र जाननेमें आये तो वहाँ उपयोग उलझता नहीं है तथा जानी हुई वस्तुको बारम्बार जाननेका उत्साह नहीं होता, तब पाप कार्योंमें उपयोग लगाता है। इसलिये अपनी बुद्धि के अनुसार कठिनतासे भी जिसका अभ्यास होता जाने उसका अभ्यास करना। तथा तू कहता है—खेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। परन्तु प्रमादी रहनेमें तो धर्म है नहीं। प्रमादसे सुखी रहे वहाँ तो पाप ही होता है इसलिए धर्मके अर्थ उद्यम करना ही योग्य है ऐसा विचारकर करणानुयोगका अभ्यास करना।' (पृ. २९०-२९१)

कर्मशास्त्र करणानुयोगसे सम्बद्ध है। अतः उसकी उपयोगिता निर्विवाद है। वह अनेक प्रकारके आध्यात्मिक शास्त्रीय विचारोंकी खान होनेसे उसका महत्त्व अध्यात्मशास्त्रसे कम नहीं है। यह ठीक है कि अनेक लोगोंको कर्मप्रकृतियोंकी संख्या गणनामें उलझन प्रतीत होती है और इसीसे उन्हें कर्मशास्त्र रुचिकर नहीं लगता। किन्तु इसमें कोई दोष नहीं है, प्रत्युत सांसारिक विषयोंमें भटकते हुए मनको रोकनेके लिए यह एक अच्छा साधन है। विपाकविचयको इसीसे धर्मध्यानके भेदोंमें गिनाया है। उसके चिन्तनमें एकाग्रता आती है उसका अभ्यासी अपने आत्माके परिणामोंके उतार-चढ़ावको सरलतासे आँककर अपना कल्याण करनेमें समर्थ होता है। अतः अध्यात्मरसिक मुमुक्षुको अध्यात्मके साथ कर्मशास्त्रका भी अभ्यास करना चाहिये।

विषय परिचय तथा तुलना—

कर्मकाण्डकी गाथा संख्या ९७२ है। उसमें नौ अधिकार हैं—(१) प्रकृति समुत्कीर्तन (२) बन्धोदय सत्त्व (३) सत्त्वस्थानभंग (४) त्रिचूलिका (५) स्थान समुत्कीर्तन (६) प्रत्यय (७) भाव चूलिका (८) त्रिकरण चूलिका (९) कर्म स्थिति रचना।

प्रथम खण्ड जीवकाण्डकी प्रस्तावनामें हम यह लिख आये हैं कि यह एक संग्रहग्रन्थ है, षट् खण्डागम तथा उसकी धवलाटीकाके आधारपर इसका संकलन हुआ है। कर्मकाण्डमें ग्रन्थकारने अपने सम्बन्धमें लिखा है—

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं होदि॥

अर्थात् जैसे चक्रवर्ती चक्रके द्वारा निर्विघ्नता पूर्वक छह खण्डोंको साधता है वैसे ही मैंने अपनी बुद्धि रूपी चक्रके द्वारा छह खण्डोंको साधा है।

यह छह खण्ड षट्खण्डागम हैं। अतः ग्रन्थकारने मुख्य रूपसे उसीका अनुगम इस ग्रन्थकी रचनामें किया है। किन्तु पंचसंग्रह नामक ग्रन्थ गोम्मटसार तथा धवलाटीकासे पूर्वमें रचा गया था और उसमें भी वही विषय है जो गोम्मटसारमें है। अतः उसका भी प्रभाव इस ग्रन्थपर हो सकता है जैसा आगेके विवरणसे प्रकट होगा।

१. प्रकृति समुत्कीर्तन—

प्रथम अधिकारका नाम प्रकृति समुत्कीर्तन है। ग्रन्थकारने प्रथम गाथामें प्रकृति समुत्कीर्तनको कहनेकी प्रतिज्ञा की है।

षट् खण्डागमके प्रथमखण्ड जीव स्थानकी चूलिकामें तीसरा सूत्र है—

'इदाणिं पयडि समुक्कीत्तणं कस्सामो।'

इसका टीकामें अर्थ किया है—प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण। तथा लिखा है कि प्रकृति समुत्कीर्तन को जाने बिना स्थान समुत्कीर्तन आदिको नहीं जाना जा सकता। उसके दो भेद हैं—मूल प्रकृति समुत्कीर्तन और उत्तर प्रकृति समुत्कीर्तन।

आगे चूलिकामें सूत्रकारने क्रमसे सूत्रोंद्वारा आठों कर्मोंका नाम और फिर प्रत्येकके उत्तर भेदोंका कथन किया है और टीकाकार वीरसेनने अपनी धवलामें प्रत्येकका व्याख्यान किया है। और इस तरह प्रकृति समुत्कीर्तन नामक चूलिकाके मूल सूत्र छियालीस हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु आचार्य नेमिचन्द्रजीने अपने कर्मकाण्डमें गाथा ८ से २१ तक मूल प्रकृतियोंके नाम, उनका कार्य, क्रम आदि बतलाकर गाथा २२ में उनकी उत्तर प्रकृतियोंके भेदोंकी संख्यामात्र बतलायी है तथा आगे दर्शनावरणके भेद पाँच निद्राओंका स्वरूप तीन गाथाओंसे कहा है। गाथा २६ में दर्शन मोहके भेद मिथ्यात्वका तीन रूप होनेका कथन किया है। गाथा २७ में नामकर्मके भेद शरीर नामकर्मके संयोगी भेदोंका कथन है। गाथा २८ में शरीरके आठ अंग बतलाये हैं। गाथा २९-३२ में किस संहननसे मरकर किस गतिमें जीव जाता है इसका कथन है। ३३ वीं गाथामें आतप और उष्ण नामकर्ममें अन्तर बतलाया है। इस तरह कुछ प्रकृतियोंका विशेष कार्यमात्र बतलाया है। इसको लेकर कई दशक पूर्व अनेकान्त पत्रमें बड़ा विवाद चला था और इसको त्रुटि बतलाते हुए उसकी पूर्तिका भी प्रयत्न किया गया था। यह सब विवाद वीरसेवा मन्दिरसे प्रकाशित पुरातन जैन वाक्य सूचीकी प्रस्तावना (पृ. ७५ आदि) में दिया है।

उस समय स्व. पं. लोकनाथजीने मूडबिद्रीके सिद्धान्त मन्दिरके शास्त्रभण्डारमें जीवकाण्ड कर्मकाण्डकी मूल प्रतियोंको खोजकर ३० दिसम्बर सन् ४० को स्व. पं. जुगलकिशोरजी मुख्तारको सूचित किया था कि विवादस्थ कई गाथाएँ इस प्रतिमें सूत्ररूपमें हैं और वे सूत्र कर्मकाण्डके प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार की जिस-जिस गाथाके बाद मूल रूपमें पाये जाते हैं उनकी सूचनाके साथ उनकी एक नकल भी भेजी थी। स्व. मुख्तार सा. ने पुरातन जैन वाक्य सूचीको अपनी प्रस्तावनामें वे सूत्र दिये हैं।

मुख्तार सा. ने लिखा था—ऐसा मालूम होता है कि गद्यसूत्र टीका-टिप्पणका अंश समझे जाकर लेखकोंकी कृपासे प्रतियोंमें छूट गये हैं और इसलिए उनका प्रचार नहीं हो पाया। परन्तु टीकाकारोंकी आँखोंसे वे सर्वथा ओझल नहीं रहे हैं। उन्होंने अपनी टीकाओंमें इन्हें ज्योंके त्यों न रखकर अनुवादित रूपमें रखा है और यही उनकी सबसे बड़ी भूल हुई है जिससे मूल सूत्रोंका प्रचार रुक गया है और उनके प्रभावमें ग्रन्थका यह अधिकार त्रुटिपूर्ण जँचने लगा। चुनांचे कलकत्तासे जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था द्वारा दो टीकाओंके साथ प्रकाशित इस ग्रन्थकी संस्कृत टीकामें (और तदनुसार भाषा टीकामें भी) ये सब सूत्र प्रायः ज्योंके त्यों अनुवादके रूपमें पाये जाते हैं जिसका एक नमूना २५वीं गाथाके साथ पाये जानेवाले सूत्रोंका इस प्रकार है—

मूल—"वेदनीयं दुविहं सादावेदणीयमसादावेदणीयं चेइ।
मोहणीयं दुविहं दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेई॥
दंसणमोहणीयं बंधादो एयविहं मिच्छत्तं।
उदयं पडुच्च तिविहं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं सम्मत्तं चेइ॥"

सं. टीका—"वेदनीयं द्विविधं सातावेदनीयमसातावेदनीयं चेति।
मोहनीयं द्विविधं दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं चेति।
तत्र दर्शनमोहनीयं बन्धविवक्षया मिथ्यात्वमेकविधं।
उदयं सत्त्वं प्रतीत्य मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्व प्रकृतिश्चेति त्रिविधम्।"

आदरणीय स्व. मुख्तार सा. की सम्भावनाको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सम्भव है ऐसा ही हो। कर्मकाण्डपर उपलब्ध प्रथम टीका कर्नाटक भाषामें जीवतत्त्वप्रदीपिका है। उसीका रूपान्तर संस्कृत टीका है। दोनों टीकाओंमें मूल गाथाओंकी संख्या ९७२ है किन्तु मूडबिद्रीवाली मूल प्रतिमें गाथा संख्या ८७२ है ऐसा स्व. पं. लोकनाथजीने सूचित किया था। सम्भव है क्रमसंख्यामें सौ की भूल हो गयी हो। लेखकोंके प्रमादसे ऐसा हो जाता है। किन्तु कर्नाटक टीकाके रचयिताको जो करणानुयोगके प्रकाण्ड पण्डित थे और जिन्हें सिद्धान्त चक्रवर्ती अभयसूरिका शिष्यत्व प्राप्त था, ऐसा भ्रम कैसे हुआ कि उन्होंने मूलको टीका-टिप्पण समझकर मूलमें सम्मिलित नहीं किया और उसका अनुवाद अपनी टीकामें दिया, यह चिन्त्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दि. प्राकृत पञ्चसंग्रहके दूसरे अधिकारका नाम भी प्रकृतिसमुत्कीर्तन है। उसकी भी मंगलगाथामें प्रकृतिसमुत्कीर्तनको कहनेको प्रतिज्ञा की गयी है। उसमें बारह गाथाएँ हैं और कुछ प्राकृत सूत्र हैं।

प्रथम चार गाथाओंमें-से मंगल गाथाको छोड़कर शेष तीन गाथाएँ कर्मकाण्डमें २०, २१, २२ संख्याको लिये हुए पायी जाती हैं। २२वीं गाथामें थोड़ा-सा परिवर्तन किया गया है।

पंचसंग्रहमें आठों कर्मोंकी प्रकृतियोंकी संख्या बतलाकर प्रकृतियोंके नामादिका कथन गद्य सूत्रों द्वारा ही किया गया है। उसीका अनुसरण नेमिचन्द्राचार्यने भी किया था ऐसा मूड़बिद्रीके भण्डारकी कर्मकाण्ड-की प्रतिसे ज्ञात होता है। पंचसंग्रहमें गद्य सूत्रोंके द्वारा क्रमसे सब प्रकृतियोंका निर्देश किया है। कर्मकाण्डमें बीच-बीचमें गाथासूत्र देकर प्रकृतियोंके सम्बन्धमें आवश्यक उपयोगी कथन भी किया है। अतः मूड़बिद्रीकी कर्मकाण्डकी प्रतिमें वर्तमान गद्य गाथासूत्र कर्मकाण्डके अंग हो सकते हैं। कर्मकाण्डकी कन्नड़ और संस्कृत टीकामें उन सूत्रोंका भाषान्तर अक्षरशः पाया जाना भी उसका समर्थन करता है।

इस प्रकृतिसमुत्कीर्तनमें चार घातिकर्मोंकी सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियाँ तथा सब कर्मोंकी पुण्य और पाप या प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियाँ नामोल्लेखपूर्वक गिनायी हैं। तथा विपाककी अपेक्षा उनके चार भेदों में भी पृथक्से गिनायी हैं। वे भेद हैं—पुद्गलविपाकी, भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी। आगे कर्ममें चार निक्षेपोंको घटित किया है। इसी प्रसंगमें ज्ञायकशरीर नोआगम द्रव्यकर्मके तीन भेदोंमें-से भूत शरीरके च्युत-च्यावित और त्यक्त भेदोंका स्वरूप कहा है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें चारों निक्षेपोंको सुगम बतलाकर नोकर्म द्रव्यकर्मका ही विवेचन किया है। जिस-जिस प्रकृतिका जो-जो उदयफलरूप कार्य होता है उस-उस कार्यमें जो बाह्य वस्तु निमित्त होती है उस वस्तुको उस प्रकृतिका नोकर्म कहते हैं। इस कथनके साथ यह प्रथम अधिकार समाप्त होता है।

यहाँ हम चूलिकामें आगत आठ कर्म सम्बन्धी आठ सूत्रोंकी धवलाटीकाका संक्षिप्त अनुवाद उपस्थित करते हैं उससे पाठक आठों कर्मों का स्वरूप समझ सकेंगे।

णाणावरणीयं ॥ ५ ॥

जो ज्ञानको आवरण करता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है।

शंका—ज्ञानावरणके स्थानपर ज्ञानविनाशक क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जीवके लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शनका विनाश नहीं होता। यदि ज्ञान और दर्शनका विनाश माना जाये तो जीवका भी विनाश हो जायेगा; क्योंकि लक्षणसे रहित लक्ष्य नहीं पाया जाता।

शंका—ज्ञानका विनाश नहीं माननेपर सभी जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व प्राप्त होता है ?

समाधान—उसमें कोई विरोध नहीं है; क्योंकि अक्षरका अनन्तवाँ भाग नित्य उद्घाटित रहता है ऐसा सूत्रमें कहा है। अतः सब जीवोंके ज्ञानका अस्तित्व सिद्ध है।

शंका—यदि ऐसा है तो सब अवयवोंके साथ ज्ञानकी उपलब्धि होना चाहिए।

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि आवरण किये गये ज्ञानके भागोंकी उपलब्धि माननेमें विरोध आता है।

शंका—आवरण सहित जीवमें आवरण किये गये ज्ञानके भाग क्या हैं अथवा नहीं हैं ? यदि हैं तो उन्हें आवरित नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जो सर्वात्मना सत् हैं उनको आवरित माननेमें विरोध आता है। यदि नहीं हैं तो उनका आवरण नहीं माना जा सकता; क्योंकि आव्रियमाणके अभावमें आवरणके अस्तित्वका विरोध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान—द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर आवरण किये गये ज्ञानके भाग सावरण जीवमें भी होते हैं ; क्योंकि जीवद्रव्यसे भिन्न ज्ञानका अभाव है। अथवा ज्ञानके विद्यमान अंशोंसे आवृत ज्ञानके अंश अभिन्न हैं।

शंका—ज्ञानके आवृत और अनावृत अंश एक कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि राहु और मेघोंके द्वारा सूर्य और चन्द्रके आवृत और अनावृत भागोंमें एकता पायी जाती है।

शंका—ज्ञानको आव्रियमाण कैसे कहा ?

समाधान—अपने विरोधी द्रव्यका सामीप्य होनेपर भी जो मूलसे नष्ट नहीं होता उसे आव्रियमाण कहते है और दूसरेको आवारक कहते हैं। विरोधी कर्मद्रव्यका सामीप्य होनेपर भी ज्ञानका निर्मूल विनाश नहीं होता। वैसा होनेपर जीवके विनाशका प्रसंग आता है। इसलिए ज्ञान आव्रियमाण है और कर्मद्रव्य आवारक है।

शंका—जीव से भिन्न पुद्गल के द्वारा जीवके लक्षण ज्ञानका विनाश कैसे किया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि जीवद्रव्यसे भिन्न घट-पट, स्तम्भ, अन्धकार आदि पदार्थ जीवके लक्षण ज्ञानके विनाशक पाये जाते हैं। अतः ज्ञानका आवारक पुद्गल स्कन्ध जो प्रवाहरूपसे अनादि बन्धनबद्ध है वह ज्ञानावरणीय कर्म कहलाता है।

दर्शनावरणीयं ॥६॥

दर्शन गुणको जो आवारण करता है वह दर्शनावरणीय कर्म है। जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्व असंयम कषाय और योगके द्वारा कर्मरूपसे परिणत होकर जीवके साथ सम्बन्धको प्राप्त है और दर्शनगुणका प्रतिबन्धक है वह दर्शनावरणीय है।

वेदनीयं ॥७॥

जो वेदन या अनुभवन किया जाता है वह वेदनीय कर्म है।

शंका—इस व्युत्पत्तिसे तो सभी कर्मोंके वेदनीय होनेका प्रसंग आता है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि रूढ़िवश कुशल शब्दकी तरह विवक्षित पुद्गलपुंजमें ही वेदनीय शब्दकी प्रवृत्ति है। अथवा जो वेदन करता है वह वेदनीय कर्म है। जीवके सुख-दुःखके अनुभवनमें कारण जो पुद्गल स्कन्ध मिथ्यात्व आदि प्रत्ययवश कर्मरूप परिणत होकर जीवके साथ सम्बद्ध होता है वह वेदनीय कहाता है।

शंका—उसका अस्तित्व कैसे जाना जाता है ?

समाधान—उसके अभावमें सुख और दुःखरूप कार्य नहीं हो सकते। कार्य कारणके अभाव में नहीं होता ; क्योंकि ऐसा नहीं देखा जाता।

मोहणीयं ॥८॥

जो मोहित किया जाता है वह मोहनीय कर्म है।

शंका—ऐसी व्युत्पत्तिसे जीवके मोहनीय होनेका प्रसंग आता है।

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए ; क्योंकि जीवसे अभिन्न और कर्म संज्ञावाले पुद्गल द्रव्यमें उपचारसे कर्मत्वका आरोप करके उस प्रकारकी व्युत्पत्ति की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा जो मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है।

आउगं ॥९॥

जो भवधारणके प्रति जाता है वह आयुकर्म है। जो पुद्गल मिथ्यात्व आदि कारणोंके द्वारा नरक आदि भवधारण करनेकी शक्तिसे परिणत होकर जीवमें बद्ध होते हैं वे आयु नामक होते हैं।

शंका—उस आयुकर्मका अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

समाधान—यदि आयुकर्म न हो तो देह की स्थिति नहीं हो सकती।

णामं ॥१०॥

जो नाना प्रकारकी रचना करता है वह नामकर्म है। शरीर, संस्थान, संहनन, वर्ण, गन्ध आदि कार्योंके करनेवाले जो पुद्गल जीवसे बद्ध हैं वे नाम संज्ञावाले हैं।

गोदं ॥११॥

जो उच्च-नीचकुलका बोध कराता है वह गोत्रकर्म है। उच्च और नीच कुलोंमें उत्पादक जो पुद्गल स्कन्ध मिथ्यात्व आदि कारणोंसे जीवसे सम्बद्ध होता है उसे गोत्र कहते हैं।

अंतरायं चेदि

जो दोके मध्यमें आता है वह अन्तराय है। दान, लाभ, भोग, उपभोग आदिमें विघ्न करनेमें समर्थ पुद्गल स्कन्ध अपने कारणोंसे जीवसे सम्बद्ध होता है उसे अन्तराय कहते हैं।

इस प्रकार मूल प्रकृतियाँ आठ ही हैं, क्योंकि आठ कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले कार्योंसे अतिरिक्त कार्य नहीं पाया जाता। अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदायके समागमसे उत्पन्न इन आठ कर्मोंके द्वारा एक-एक जीवके प्रदेशोंमें सम्बद्ध अनन्त परमाणुओंसे अनादिसे सम्बद्ध अमूर्त भी जीव मूर्तताको प्राप्त होकर घूमते हुए कुम्हारके चाककी तरह संसारमें भ्रमण करता है (षट्खं., पु. ६, पृ. ६–१४)।

२. बन्धोदयसत्त्वाधिकार—

दूसरे अधिकारके प्रारम्भमें नेमिनाथ भगवान्‌को नमस्कार करके बन्ध, उदय, सत्त्वसे युक्त स्तवको गुणस्थान और मार्गणाओंमें कहनेकी प्रतिज्ञा की है और उससे आगेकी गाथामें स्तव, स्तुति और धर्मकथाका स्वरूप कहा है।

षट्खण्डागमके अन्तर्गत वेदनाखण्ड पुस्तक ९ में आगमोंमें उपयोगके भेद सूत्र द्वारा इस प्रकार कहे हैं—

'जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेक्खणा वा थयथुइधम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया ॥५५॥

इस सूत्रकी धवलाटीकामें कहा है—सब अंगोंके विषयोंकी प्रधानतासे बारह अंगोंके उपसंहारको स्तव कहते हैं। बारह अंगोंमें एक अंगके उपसंहारका नाम स्तुति है। एक अंगके एक अधिकारका नाम धर्मकथा है।

कर्मकाण्ड गाथा ८८ में भी तीनों का यही स्वरूप प्रकारान्तरसे कहा है—समस्त अंगसहित अर्थका विस्तार या संक्षेपसे जिसमें वर्णन होता है उस शास्त्रको स्तव कहते हैं, सो कर्मकाण्डमें बन्ध, उदय, सत्त्वरूप अर्थका कथन समस्त अंगसहित यथायोग्य विस्तार या संक्षेपसे कहा गया है अतः उसे स्तव नाम दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे बन्धके चार भेदोंके उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट जघन्य अजघन्य भेद किये हैं और उन उत्कृष्ट आदिके भी सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव भेद किये हैं। आगे उनका स्वरूप कहा है।

अनादि अनन्त—जिस बन्ध या उदयकी परम्पराका प्रवाह अनादिकालसे बिना किसी रुकावटके चला आता है, मध्यमें न कभी व्युच्छिन्न हुआ, न होगा उस बन्ध या उदयको अनादि अनन्त कहते हैं। ऐसा बन्ध या उदय अभंग जीवके ही होता है।

अनादिसान्त—जिस बन्ध या उदयकी परम्पराका प्रवाह अनादिकालसे बिना रुके चले आनेपर भी आगे व्युच्छिन्न होनेवाला है उसे अनादिसान्त कहते हैं। यह भव्यके ही होता है।

सादिसान्त—जो बन्ध या उदय बीचमें रुककर पुनः प्रारम्भ होता है और कालान्तरमें व्युच्छिन्न हो जाता है उसे सादिसान्त कहते हैं। सादि अनन्त भंग घटित नहीं होता; क्योंकि जो बन्ध या उदय सादि होता है वह अनन्त नहीं होता।

इस प्रकरणमें कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वका विवेचन गुणस्थानों और मार्गणाओंमें किया गया है। यह विवेचन आठों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंको लेकर किया है। भेद विवक्षामें आठों कर्मोंको प्रकृति संख्या एक सौ अड़तालीस होती है। किन्तु अभेद विवक्षामें बन्ध प्रकृतियोंकी संख्या एक सौ बीस और उदय प्रकृतियोंकी संख्या एक सौ बाईस है। इसका कारण यह है कि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण नामकर्मके बीस भेदोंमें-से अभेद विवक्षामें चार ही लिये जाते हैं तथा पाँच बन्धन और पाँच संघात नामकर्मोंको शरीर नामकर्ममें सम्मिलित कर लेते हैं। अतः सोलह और दस—छब्बीस प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं। तथा बन्ध केवल एक मिथ्यात्वका ही होनेसे बन्ध प्रकृतियोंकी संख्यामें-से सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति कम हो जाती हैं। अतः उदय प्रकृतियाँ एक सौ बाईस और बन्ध प्रकृतियाँ एक सौ बीस होती हैं।

प्रत्येक गुणस्थानमें प्रकृतियोंकी तीन दशाएँ होती हैं—बन्ध, अबन्ध, बन्धव्युच्छित्ति। उदय, अनुदय, उदयव्युच्छित्ति। सत्त्व, असत्त्व, सत्त्वव्युच्छित्ति।

जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध, उदय और सत्ता होती है उसमें उतनी बन्ध, उदय, सत्त्वमें रहती है। जितनेका बन्ध, उदय, सत्त्व नहीं होता उतनी अबन्ध, अनुदय, असत्त्वमें रहती हैं। और जिन प्रकृतियोंका बन्ध, उदय या सत्ता जिस गुणस्थानसे आगे नहीं होती, उनकी बन्ध, उदय, सत्त्वव्युच्छित्ति उस गुणस्थानमें होती है। जैसे प्रथम गुणस्थानमें एक सौ बीस बन्ध प्रकृतियोंमें-से एक सौ सत्रह का बन्ध होता है, तीनका बन्ध नहीं होता। तथा एक सौ सतरहमें-से सोलह प्रकृतियाँ आगेके गुणस्थानोंमें नहीं बँधती हैं। अतः एक सौ सतरहका बन्ध, तीनका अबन्ध, सोलहकी बन्धव्युच्छित्ति कही जाती है।

षट्खण्डागमके तीसरे खण्डका नाम बन्ध स्वामित्व विचय है। जिसका अर्थ होता है—बन्धके स्वामीपनेका विचार। इसका चतुर्थ सूत्र है—

"एदेसिं चोदसण्हं जीवसमासाणं पयडिबन्धवोच्छेदो कादव्वो होदि।"

अर्थ—"इन चौदह गुणस्थानोंमें प्रकृतिबन्धके व्युच्छेदका कथन कर्तव्य है।" इसकी टीका धवलामें यह प्रश्न उठाया है कि यदि यहाँ प्रकृतिबन्धव्युच्छेदका कथन है तो इसका नाम बन्धस्वामित्वविचय कैसे घटित हुआ? उत्तरमें कहा है—"इस गुणस्थानमें इतनी प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद होता है।" ऐसा कहनेपर उससे नीचेके गुणस्थान उन प्रकृतियोंके बन्धके स्वामी हैं यह सिद्ध होता है।

जैसे सूत्र पाँचमें कहा है—पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बन्धक है और कौन अबन्धक है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठे सूत्रमें कहा है—मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक उक्त प्रकृतियोंके बन्धक हैं। सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें उक्त प्रकृतियोंके बन्धका विच्छेद होता है अतः ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

इसी प्रकार सूत्रोंमें प्रत्येक प्रकृतिके बन्ध और अबन्धके सम्बन्धमें प्रश्न और उत्तर किया गया है। इसीके आधारपर गोम्मटसारमें गुणस्थानों और मार्गणाओंमें बन्ध, अबन्ध और बन्धव्युच्छित्तिका विचार किया गया है।

पाँचवें सूत्रकी धवलाटीकामें वीरसेन स्वामीने सूत्रको देशामर्षक मानकर तेईस प्रश्न उठाये हैं और उनका समाधान किया है। वे प्रश्न इस प्रकार हैं—

१. किन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्तिसे पूर्व होती है ?
२. किन प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति बन्धव्युच्छित्तिसे पूर्व होती है ?
३. किनकी दोनों व्युच्छित्ति एक साथ होती हैं ?
४. अपने उदयमें बन्ध किनका होता है ?
५. परप्रकृतियोंके उदयमें बन्ध किनका होता है ?
६. अपने और परके उदयमें बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ?
७. सान्तरबन्धी कौन है ?
८. निरन्तरबन्धी कौन है ?
९. सान्तर-निरन्तरबन्धी कौन हैं ?
१०. सनिमित्तक बन्ध किनका होता है ?
११. अनिमित्तक बन्ध किनका है ?
१२. गतिके साथ बँधनेवाली कौन प्रकृतियाँ हैं ?
१३. गतिके बिना बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ?
१४. कितनी गतिवाले जीव किन प्रकृतियोंके स्वामी हैं ?
१५. कितनी गतिवाले स्वामी नहीं हैं ?
१६. बन्धकी सीमा किस गुणस्थान तक है ?
१७. क्या अन्तिम समयमें बन्धकी व्युच्छित्ति होती है ?
१८. क्या प्रथम समयमें बन्धकी व्युच्छित्ति होती है ?
१९. या बीचके समयमें बन्धकी व्युच्छित्ति होती है ?
२०. किनका बन्ध सादि है ?
२१. किनका बन्ध अनादि है ?
२२. किनका बन्ध ध्रुव है ?
२३. किनका बन्ध अध्रुव है ?

इन प्रश्नोंमें-से वीरसेन स्वामीने विषम प्रश्नोंका उत्तर दिया है। चूँकि बन्धव्युच्छेदका कथन सूत्रोंमें ही है अतः उसे छोड़कर उदयव्युच्छेदका कथन किया है। और उसके अन्तमें एक उपसंहार गाथा दी है—

दस चदुरिगि सत्तारस अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्क एग दुग दुग चोद्दस उगुतीस तेरसुदय विदी।

यह गाथा कर्मकाण्डके उदय प्रकरणमें है और इसका क्रमांक २६३ है। इस उदयव्युच्छित्तिको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चर्चाके प्रारम्भमें वीरसेन स्वामीने कहा है—मिथ्यात्व आदि दस प्रकृतियोंकी उदयकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है यह महाकर्म प्रकृति प्राभृतका उपदेश है।

चूर्णिसूत्रकर्ता यतिवृषभाचार्यके उपदेशसे मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें पाँच प्रकृतियोंका उदयव्युच्छेद होता है क्योंकि उनके मतसे चार जाति और स्थावर प्रकृतियोंका उदयव्युच्छेद सासादन गुणस्थानमें होता है।

गोम्मटसार कर्मकाण्डमें भी इस मतभेदका कथन है। कर्मकाण्डमें त्रिचूलिकानामक अधिकारके अन्तर्गत नौ प्रश्नचूलिकामें उक्त तेईस प्रश्नोंमें-से नौ प्रश्नोंका कथन है। शेषमें-से कुछका कथन बन्धाधिकार और उदयाधिकारमें है।

इस अधिकारके प्रारम्भमें प्रकृतिबन्धके कथनके पश्चात् स्थितिबन्धका कथन है। यह कथन जीवस्थानकी चूलिकाके अन्तर्गत छठी और सातवीं चूलिकाका ऋणी है। छठी चूलिकामें मूल प्रकृतियों और उत्तर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति, आबाधा तथा निषेक रचनाका कथन है। और सातवीं चूलिकामें उनकी जघन्यस्थिति आदिका कथन है। यथा—

पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस सागरोपम कोडाकोडी है॥ ४॥

उनका तीस हजार वर्ष आबाधाकाल है॥ ५॥

आबाधाकालसे हीन कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है॥ ६॥

(—षट्खं. पु. ६, पृ. १४६-१५०)

इसी प्रकार जघन्य स्थिति आदिका भी कथन है।

किन्तु कर्मकाण्डमें संज्ञीपञ्चेन्द्रियसे लेकर असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, एकेन्द्रिय और उनके अवान्तर भेदोंमें जो स्थिति बन्धका निरूपण है वह यहाँ नहीं है। और न स्थिति बन्धके स्वामियोंका कथन यहाँ है।

कर्मकाण्डमें स्थितिबन्धके बाद अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्धका कथन है वह भी यहाँ नहीं है। धवलामें प्रश्न किया गया है कि यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध तथा अनुभागबन्ध क्यों नहीं कहा? उत्तरमें कहा है—अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके अविनाभावि प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धका कथन किये जाने पर उनका कथन स्वतः सिद्ध है। तथा प्रदेशबन्धसे योगस्थान सिद्ध होते हैं। (ये योगस्थान जगत श्रेणिके असंख्यातवें भाग मात्र हैं।) क्योंकि योगके बिना प्रदेशबन्ध नहीं हो सकता।

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध और स्थितिबन्धके द्वारा यहाँ चारों ही बन्धका कथन हो जाता है।

पञ्चसंग्रहके शतक नामक चतुर्थ अधिकारमें भी चारों बन्धोंका कथन है। उसमें बन्धके नौ भेद किये हैं—सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, प्रकृतिस्थानबन्ध, भुजाकारबन्ध, अल्पतरबन्ध, अवस्थितबन्ध और स्वामित्वकी अपेक्षा बन्ध। और क्रमसे उनका कथन किया है। कर्मकाण्डमें आदिके चार भेदोंका कथन तो इसी अधिकारमें किया है। शेषका कथन पाँचवें बन्धोदय सत्त्वयुक्त स्थान समुत्कीर्तन अधिकारमें किया है। सादिबन्ध आदिका निरूपण दोनोंमें समान है। इतना ही नहीं किन्हीं गाथाओंमें भी समानता है। यथा—

साइ अणाइ य धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स।
तइए साइयसेसा अणाइ धुवसेसओ आऊ॥ १२५॥

—पञ्चसंग्रह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादि अणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स ।
तदियो सादि य सेसो अणादि धुव सेसगो आऊ ॥ १२२ ॥

—कर्मकाण्ड ।

पञ्चसंग्रहमें बन्धके नवम भेद स्वामित्वकी अपेक्षा बन्धके कथनमें गुणस्थान और मार्गणाओंमें बन्ध, बन्धव्युच्छित्ति आदिका कथन है। तदनन्तर स्थितिबन्धका कथन है, जैसा कर्मकाण्डके इस दूसरे अधिकारमें है। किन्तु पञ्चसंग्रहसे कर्मकाण्डके कथनमें विशेषता है। कर्मकाण्डमें एकेन्द्रिय आदि जीवोंके होनेवाले स्थितिबन्ध का भी कथन है जो पञ्चसंग्रहमें नहीं है। अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका कथन पञ्चसंग्रहमें भी है और कर्मकाण्ड उसका ऋणी हो सकता है किन्तु कर्मकाण्डके कथनमें उससे विशेषता भी है। प्रदेशबन्धका कथन करते हुए पञ्चसंग्रहमें तो समय प्रबद्धका विभाग केवल मूल कर्मोंमें ही कहा है किन्तु कर्मकाण्डमें उत्तर-प्रकृतियोंमें भी कहा है। तथा प्रदेशबन्धके कारणभूत योगके भेदों और अवयवोंका भी कथन किया है यह कथन पञ्चसंग्रहमें नहीं है। इस प्रकरणमें पञ्चसंग्रहकी कई गाथाएँ संगृहीत हैं।

उदयप्रकरणमें कर्मोंके उदय उदीरणा आदिका कथन गुणस्थान और मार्गणाओंमें है। प्रत्येक गुणस्थान और मार्गणामें प्रकृतियोंके उदय, अनुदय उदयव्युच्छित्तिका कथन है। सत्त्व प्रकरणमें भी गुणस्थान और मार्गणाओंमें प्रकृतियोंके सत्त्व, असत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्तिका कथन है। मार्गणाओंमें बन्ध, उदय,सत्त्वादिका कथन अन्यत्र नहीं मिलता। आचार्य नेमिचन्द्रने उसे स्वयं फलित करके लिखा प्रतीत होता है। उदय और सत्त्व प्रकरणकी अन्तिम गाथामें इसकी झलक मिलती है। यथा—

कम्मेवाणाहारे पयडीणं उदयमेवमादेसे ।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥ ३३२ ॥
कम्मेवाणाहारे पयडीणं सत्तमेवमादेसे
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥ ३५६ ॥

—कर्मकाण्ड ।

अर्थात् यह कथन आचार्यनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीने किया है।

३. सत्त्वस्थान भंगाधिकार—

तीसरे अधिकारका नाम सत्त्वस्थान भंगाधिकार है। इसकी प्रथम गाथामें जिसका क्रमांक ३५८ है, भगवान् महावीरको नमस्कार करके सत्त्वस्थानको भंगोंके साथ कहनेकी प्रतिज्ञा की है। और आगेकी गाथामें कहा है—पिछले अधिकारके अन्तमें जो सत्त्वस्थानका कथन किया है वह आयुके बन्ध और अबन्धका भेद न करके किया है। इस अधिकारमें भंगके साथ कथन है।

एक समयमें एक जीवके संख्याभेदको लिये हुए जो प्रकृति समूहका सत्त्व पाया जाता है उसे स्थान कहते हैं। और समान संख्यावाली प्रकृतियोंमें जो प्रकृतियोंका परिवर्तन होता है उसे भंग कहते हैं। जैसे किन्हीं जीवोंके मनुष्यायु देवायुके साथ एक सौ पैंतालीसका सत्त्व पाया जाता है और किन्हीं जीवोंके तिर्यंचायु नरकायुके साथ एक सौ पैंतालीसका सत्त्व पाया जाता है। यहाँ भंगभेद होता है। एक जीवके दो आयुकी सत्ता रह सकती है। एक आयु भुज्यमान—जो वह भोग रहा है, एक आयु बध्यमान—जो उसने आगामी भवकी बाँधी है। जिसने अभी परभवकी आयुका बन्ध नहीं किया उसके एक भुज्यमान आयुकी सत्ता रहती है।

देवगतिमें और नरकगतिमें मनुष्य और तिर्यंच दो ही आयुका बन्ध होता है। मनुष्य और तिर्यंचोंमें चारों आयुका बन्ध हो सकता है। किन्तु सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच देवायुका ही बन्ध करते हैं। तथा

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मनुष्यायुका ही बन्ध करते हैं। जिस स्थानमें चारों आयुकी सत्ता रहती है उसमें चारों आयुके बन्धको लेकर बारह भंग बद्धायुके होते हैं—यथा

१. भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु।
२. भुज्यमान नरकायु बध्यमान तिर्यंचायु।
३. भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान नरकायु।
४. भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु।
५. भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु।
६. भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायु।
७. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु।
८. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यंचायु।
९. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु।
१०. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु।
११. भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु।
१२. भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यंचायु।

इनमेंसे जिन भंगोंमें दोनों आयु समान हैं केवल भुज्यमान और बध्यमानका ही भेद वे भंग पुनरुक्त होनेसे अपुनरुक्त पाँच ही भंग बद्धायुके होते हैं। और अबद्धायुके चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक गुणस्थानमें स्थानों और भंगोंका कथन इस अधिकारमें है।

इस अधिकारकी अन्तिम गाथामें ग्रन्थकारने कहा है—इन्द्रनन्दि गुरुके पासमें सकल सिद्धान्तको सुनकर कनकनन्दी गुरुने सत्त्वस्थानका कथन किया।

स्व. पं. जुगल किशोरजी मुख्तारने पुरातन वाक्यसूची (पृ. ७२-७४) की प्रस्तावनामें लिखा है कि उक्त सत्त्वस्थान ग्रन्थ विस्तरसत्त्व त्रिभंगीके नामसे आराके जैन सिद्धान्तभवनमें मौजूद है। उसमें साफ तौरपर इन्द्रनन्दिको ही गुरुरूपसे उल्लेखित किया है। इस सत्त्वस्थानको नेमिचन्द्रने अपने गोम्मटसारमें प्रायः ज्योंका त्यों अपनाया है। आराकी उक्त प्रतिके अनुसार प्रायः ८ गाथाएँ छोड़कर मंगलाचरण और अन्तिम गाथा सहित सब गाथाओंको अपने ग्रन्थका अंग बनाया है। कहीं-कहीं भेद भी है। उक्त प्रस्तावनामें उसका विवरण देखा जा सकता है। इस तरह यह अधिकार कनकनन्दिके उक्त सत्त्वत्रिभंगीका ऋणी है।

४. त्रिचूलिकाधिकार—

इस अधिकारमें तीन चूलिकाएं हैं—नवप्रश्नचूलिका, पंचभागहारचूलिका, और दशकरणचूलिका। पहली नौ प्रश्नचूलिकामें नौ प्रश्नोंका समाधान किया है। ये नौ प्रश्न इस प्रकार हैं—१. उदय व्युच्छित्तिके पहले बन्धकी व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है। २. उदयव्युच्छित्तिके पीछे बन्धकी व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ? ३. उदयव्युच्छित्तिके साथ बन्धकी व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है। ४. अपने उदयमें बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं, ५. अन्यके उदयमें बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ? ६. अपने तथा परके उदयमें बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ? ७. निरन्तर बँधनेवाली प्रकृतियाँ कौन हैं ? ८. जिनका सान्तरबन्ध होता है वे प्रकृतियाँ कौन हैं ? ९. जिनका निरन्तर बन्ध भी होता है और सान्तरबन्ध भी, वे प्रकृतियाँ कौन हैं। इन नौ प्रश्नोंका उत्तर इस चूलिकामें दिया है।

प्रा० पंचसंग्रहके तीसरे अधिकारके अन्तमें नौ प्रश्नचूलिका आती है। तथा षट्खण्डागमके अन्तर्गत तीसरे खण्ड बन्धस्वामित्व विचयकी धवला टीकामें (पु. ८, पृ. ७–१७) उक्त नौ प्रश्न उठाकर उनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान किया है। तथा उनके समर्थनमें कुछ आर्ष गाथाएँ भी दी हैं। उन्हींके आधारसे यह नौ प्रश्न चूलिका ली गयी प्रतीत होती है।

पंच भागहार चूलिकामें उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम इन पाँच भागहारोंका कथन है। इन भागहारोंके द्वारा शुभाशुभकर्म जीवके परिणामोंका निमित्त पाकर अन्य प्रकृतिरूप परिणमन करते हैं। जैसे शुभ परिणामोंके निमित्तसे पूर्वबद्ध असातावेदनीय कर्म सातावेदनीय रूप परिणत हो जाता है। किस-किस प्रकृतिमें कौन-कौन भागहार सम्भव हैं और किस-किस भागहारकी कौन-कौन प्रकृतियाँ हैं यह सब कथन भी है। चूँकि पाँचों भागहार एक भाजक राशिके समान हैं अतः उनका परस्परमें अल्पबहुत्व भी बतलाया है। पंचसंग्रहमें यह कथन नहीं है।

तीसरी दशकरण चूलिकामें बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, उदीरणा, सत्ता, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना इस दस करणोंका कथन किया है और बतलाया है कि कौन करण किस गुणस्थान तक होता है। कर्मपरमाणुओंका आत्माके साथ सम्बद्ध होना बन्ध है। यह सबसे पहली क्रिया है। करण नाम क्रियाका है। इसके बिना आगेका कोई करण नहीं होता। कर्मकी दूसरी क्रिया या अवस्था उत्कर्षण है। स्थिति और अनुभागके बढ़नेको उत्कर्षण कहते हैं। तीसरा करण अपकर्षण उससे विपरीत है, अर्थात् स्थिति और अनुभागके घटनेको अपकर्षण कहते हैं। बन्धके बाद ही ये दोनों करण होते हैं। किसी अशुभकर्मका बन्ध होनेके पश्चात् यदि जीव शुभपरिणाम करता है तो पूर्व बद्ध कर्ममें स्थिति अनुभाग घट जाता है। इसी तरह अशुभकर्मकी जघन्य स्थिति बाँधकर यदि कोई और भी अधिक पापकार्यमें रत रहता है तो उसकी स्थिति अनुभाग बढ़ जाता है। बँधनेके बाद कर्मके सत्तामें रहनेको सत्त्वकरण कहते हैं। कर्मका अपना फल देना उदय है। नियत समयसे पूर्वमें फलदानको उदीरणा कहते हैं। उदीरणासे पहले अपकर्षण द्वारा कर्मकी स्थितिको घटा दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति पूरी आयु भोगे बिना असमयमें हो मर जाता है तो उसे आयुकर्मकी उदीरणा कहते हैं। एक कर्मका दूसरे सजातीय कर्मरूप होनेको संक्रमण करण कहते हैं। संक्रमण मूल कर्म-प्रकृतियोंमें नहीं होता अर्थात् न ज्ञानावरण दर्शनावरणरूप या किसी अन्यकर्मरूप होता है और न दर्शनावरण या मोहनीय आदि ज्ञानावरणरूप होते हैं। किन्तु एक कर्मके अवान्तर भेदोंमेंसे एक भेद अन्य सजातीय प्रकृतिरूप हो सकता है। जैसे सातावेदनीय असातावेदनीयरूप और असातावेदनीय सातावेदनीय रूप हो जाता है। किन्तु आयुकर्मके भेदोंमें संक्रमण नहीं होता। नरककी आयु बाँध लेनेपर मरकर नरकमें ही जन्म लेना होगा।

कर्मका उदयमें आनेके अयोग्य होना उपशम है। उसमें संक्रमण और उदयका न हो सकना निधत्ति है। और उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उदयका न हो सकना निकाचना है। कर्मोंमें-ये दसकरण होते हैं। ये सब जीवके भावोंपर ही अवलम्बित हैं। अन्य किसीका इनमें कर्तृत्व नहीं है।

५. बन्धोदयसत्त्वयुक्तस्थानसमुत्कीर्तन—

एक जीवके एक समयमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध, उदय, सत्त्व सम्भव है उनके समूहका नाम स्थान है। इस अधिकारमें पहले आठों मूलकर्मोंको लेकर और फिर प्रत्येक कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंको लेकर बन्ध स्थानों, उदय स्थानों और सत्त्व स्थानोंका कथन है। जैसे मूल कर्मोंका कथन करते हुए कहा है कि तीसरे गुणस्थानके सिवाय अप्रमत्त पर्यन्त छह गुणस्थानोंमें एक जीवके आयुकर्मके बिना सातका अथवा आयुकर्म सहित आठका बन्ध होता है। तीसरे, आठवें और नौवें गुणस्थानमें आयुके बिना सात कर्मोंका बन्ध होता है। दसवें गुणस्थानमें आयु और मोहनीयके बिना छह ही कर्मोंका बन्ध होता है। ग्यारहवें आदि तीन गुणस्थानोंमें एक वेदनीय कर्मका ही बन्ध होता है। और चौदहवें गुणस्थानमें एक भी कर्मका बन्ध नहीं होता। अतः आठ कर्मोंके चार बन्ध स्थान हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह प्रकृतिक, एक प्रकृतिक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मोंका उदय होता है। ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानमें मोहनीयके बिना सात कर्मोंका उदय होता है। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें चार कर्मोंका उदय होता है। अतः आठ कर्मोंके तीन उदयस्थान होते हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक।

ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों कर्मोंकी सत्ता रहती है। बारहवें गुणस्थानमें मोहनीयके बिना सात कर्मोंकी सत्ता रहती है। तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानमें चार कर्मोंकी सत्ता रहती है। अतः आठों कर्मोंके तीन सत्त्व स्थान हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। इसी तरहका कथन प्रत्येक कर्मके विषयमें किया गया है। आठों कर्मोंमें-से वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मकी उत्तरप्रकृतियोंमें-से एक जीवके एक समयमें एक ही प्रकृतिका बन्ध होता है और एकका ही उदय होता है। तथा ज्ञानावरण और अन्तरायकी पाँचों प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध, उदय और सत्त्व होता है। अतः इनको छोड़कर शेष दर्शनावरणीय, मोहनीय और नामकर्ममें बन्धस्थानों, उदयस्थानों और सत्त्वस्थानोंका कथन बहुत विस्तारसे किया है।

प्रत्येकके कथनके पश्चात् त्रिसंयोगी भंगोंका कथन है अर्थात् बन्धमें उदय-सत्त्व, उदयमें बन्ध और सत्त्व, और सत्त्वमें बन्ध और उदयका कथन किया है। फिर बन्धादिमेंसे दो को आधार और एकको आधेय बनाकर कथन किया है। पंचसंग्रहके अन्तर्गत शतक और सप्ततिका अधिकारमें भी उक्त कथन है। कर्मकाण्डका उक्त कथन उसका ऋणी हो सकता है। कुछ गाथाएँ भी दोनोंमें समान हैं।

इस प्रकरणमें प्रसंगवश आगत कर्मविषयक अन्य भी ज्ञातव्य विषय हैं। यह अधिकार बहुत विस्तृत है। इसमें ३२४ गाथाएँ हैं।

६. प्रत्ययाधिकार—

इस अधिकारमें कर्मबन्धके कारणोंका कथन है। मूल कारण चार हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग और इनके भेद क्रमसे पाँच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह सब मिलकर सत्तावन होते हैं। इन्हीं मूल और उत्तर प्रत्ययोंका कथन गुणस्थानोंमें किया गया है कि किस गुणस्थानमें बन्धके कितने प्रत्यय होते हैं। और उनके भंगोंका भी कथन है। प्रा. पंचसंग्रहके शतकाधिकारके प्रारम्भमें यह कथन बहुत विस्तारसे है। कर्मकाण्डमें केवल पच्चीस गाथाओंमें है तो पंच संग्रहमें सवा सौ गाथाओंमें। प्रारम्भकी दो मूल गाथाएँ दोनों ग्रन्थोंमें समान हैं। उनमें कहा है 'प्रथम गुणस्थानमें उक्त चारों प्रत्ययोंसे कर्मबन्ध होता है। बादके तीन गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वको छोड़ शेष तीन प्रत्ययोंसे कर्मबन्ध होता है। पाँचवें गुणस्थानमें एक देश असंयम कषाय और योगसे कर्मबन्ध होता है। उससे ऊपरके पाँच गुणस्थानोंमें कषाय और योगसे कर्मबन्ध होता है। ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, गुणस्थानमें केवल योगसे कर्मबन्ध होता है।

आगे गुणस्थानोंमें उत्तर प्रत्ययोंका कथन है। अन्तमें दोनों ही ग्रन्थोंमें कर्मबन्धके विशेष कारण कहे हैं जो तत्त्वार्थसूत्रके छठे अध्यायके अन्तमें कहे हैं। दोनों ग्रन्थोंमें ये गाथाएँ प्रायः समान हैं। पंचसंग्रहमें इन्हें मूल गाथा कहा है। अतः ये गाथाएँ पंचसंग्रहसे ही ली गयी जान पड़ती हैं। इस प्रकार यह कथन कर्मकाण्डमें पंचसंग्रहसे संग्रहीत होना चाहिए।

७. भावचूलिका—

इस अधिकारमें औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक भावोंका तथा उनके भेदोंका कथन करके गुणस्थानोंमें उनके स्वसंयोगी और परसंयोगी भंगोंका कथन किया है।

प्रस्ता०–५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके पश्चात् 'असिदि सदं किरियाणं' आदि प्राचीन गाथा आती है जिसमें कहा है कि क्रियावादियोंके एक सौ अस्सी, अक्रियावादियोंके एक सौ चौरासी, अज्ञानवादियोंके सड़सठ और वैनयिकोंके बत्तीस, इस तरह तीन सौ तरेसठ मत हैं। आगे इन तीन सौ तरेसठ मतोंको उपपत्ति दी गयी है। श्वे. सूत्रकृतांगके प्रथम श्रुतस्कन्धके बारहवें अध्ययनमें भी उक्त मतोंकी चर्चा है। और टीकाकार शीलांकने अपनी टीकामें उनकी उपपत्ति भी दी है। किन्तु दोनोंमें अन्तर है। अमितगतिके पंचसंग्रह (पृ. ४१ आदि) में भी यह सब कथन है जो कर्मकाण्डका ऋणी प्रतीत होता है, क्योंकि प्रा. पंचसंग्रहमें यह कथन नहीं है।

अन्तमें एक गाथाके द्वारा जो सन्मति तर्कमें (का. ३, गा. ४७) भी है, कहा गया है जितने वचनके मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं। और जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय हैं। परसमयोंका कथन मिथ्या है क्योंकि वे सर्वथा वैसा मानते हैं और जैनोंका कथन यथार्थ है क्योंकि वे स्याद्वादी हैं।

८. त्रिकरणचूलिका—

इस अधिकारमें अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणका स्वरूप वर्णित है। जीवकाण्डके प्रारम्भमें भी इन तीनोंका स्वरूप गुणस्थानोंके प्रसंगसे कहा है। इन तीनोंका स्वरूप बतलानेवाली गाथाएँ भी वे ही हैं जो जीवकाण्डमें हैं। किन्तु यहाँ मूलग्रन्थकारने स्वयं अंकसंदृष्टिके द्वारा इन करणोंको समझाया है।

९. कर्मस्थिति रचनाधिकार—

प्रति समय बँधनेवाले कर्मपरमाणु आठों कर्मोंमें या सात कर्मोंमें विभाजित हो जाते हैं और प्रत्येक कर्म प्रकृतिको प्राप्त कर्मनिषेकोंकी रचना उसकी स्थितिके अनुसार आबाधाकालको छोड़कर हो जाती है, अर्थात् बन्धको प्राप्त वे कर्मपरमाणु उदयकाल आनेपर क्रमशः प्रति समय एक-एक निषेकके रूपमें खिरने प्रारम्भ होते हैं। उनकी रचनाको ही कर्मस्थिति रचना कहते हैं। उसीका कथन इस अधिकारमें विस्तारसे है। संक्षेपमें यह कथन दूसरे अधिकारके अन्तर्गत स्थिति बन्धाधिकारमें भी किया है, फलतः इस अधिकारमें जो ९१४ से ९२१ तककी गाथाएँ हैं वे सब उस अधिकारमें आती हैं। वहाँ उनका क्रमांक १५४–१६२ है।

बँधनेके पश्चात् कर्म तत्काल फल नहीं देता, कुछ समय बाद फल देता है और उस समयको आबाधाकाल कहते हैं। यह आबाधाकाल कर्मकी स्थितिके अनुसार होता है। एक कोटी-कोटी सागर की स्थितिमें एक सौ वर्ष आबाधाकाल होता है। अर्थात् यदि किसी कर्मकी स्थिति एक कोटी-कोटी सागर बँधी हो तो वह कर्म सौ वर्षके बाद अपना फल देना प्रारम्भ करता है। और सौ वर्ष कम एक कोटी-कोटी सागर काल तक अपना फल देता रहता है। अतः उस कर्मकी निषेक रचना सौ वर्ष कम एक कोटि-कोटि सागरके समयप्रमाण होती है। प्रति समय एक-एक निषेक उदयमें आता रहता है। आयुकर्मकी आबाधामें अपवाद है। उसकी निषेक रचना जितनी आयु बाँधी है उतने समयप्रमाण होती है क्योंकि आयुकर्मके स्थितिबन्धमें उसका आबाधाकाल सम्मिलित नहीं है। इसी आबाधाकालके कारण कोई कर्म देरमें फल देता है और कोई तत्काल फल देता है।

इस अधिकारके अन्तमें ग्रन्थकारकी प्रशस्ति गाथा ९६५ से ९७२ तक है। उसमें ग्रन्थकारने इस ग्रन्थकी रचनामें निमित्त चामुण्डरायके ही क्रिया-कलापोंका वर्णन किया है। अपने सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा।

इस प्रकार इस ग्रन्थका विषय-परिचय जानना। यह ग्रन्थ कर्मसिद्धान्तका सिरमौर जैसा है। इसमें पूर्वरचित कर्मसिद्धान्त-विषयक ग्रन्थोंका सार आ जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ दिगम्बर-श्वेताम्बर मतभेद—

श्वेताम्बर परम्परामें भी कर्मविषयक साहित्य विपुल है। यहाँ उसके आधारपर कुछ विशेषताओं तथा मतभेदोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

१. कर्मकाण्डमें केवल ध्रुवबन्धिनी और ध्रुवोदयी तथा उसकी विपक्षी प्रकृतियोंको ही बतलाया है। किन्तु पंचम कर्मग्रन्थमें ध्रुव सत्ताका और अध्रुव सत्ताका प्रकृतियोंको भी गिनाया है। १३० प्रकृतियाँ ध्रुव सत्ताका हैं और २८ अध्रुव सत्ताका हैं। दोनोंका जोड़ १५८ है जो उदयप्रकृतियों की संख्यासे ३६ अधिक है। इसका कारण यह है कि बन्ध और उदयमें नामकर्मकी वर्णादि चारको ही गिना है। इसी तरह पाँच बन्धन और पाँच संघातको पृथक् न गिनाकर शरीरनामकर्ममें ही सम्मिलित कर लिया है। और बन्धननामकर्मके १५ भेदोंको भी शरीरनामकर्ममें अन्तर्भूत कर लिया है अतः १६ + ५ + १५ = ३६ बढ़ जाती हैं।

इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि ध्रुवबन्धिनी और ध्रुव उदयवाली प्रकृतियोंकी संख्या अध्रुव बन्धिनी और अध्रुव उदयवाली प्रकृतियोंकी संख्यासे बहुत कम है। किन्तु सत्तामें विपरीत दशा है। इसका कारण यह है कि जो प्रकृति बन्धदशामें है और जिसका उदय हो रहा है उन दोनों की ही सत्ताका होना आवश्यक है। अतः बन्ध और उदय प्रकृतियाँ सत्तामें रहती ही हैं। तथा मिथ्यात्व दशामें जिनकी सत्ता नियमसे नहीं होती, ऐसी प्रकृतियाँ कम ही हैं। इन कारणोंसे ध्रुव सत्ताका प्रकृतियोंकी संख्या अधिक है और अध्रुव सत्ताकी कम। त्रसादि बीस, वर्णादि बीस और तैजसकार्मण सप्तककी सत्ता सभी संसारी जीवोंके रहती है अतः ये ध्रुव सत्ताका हैं। सैंतालीस ध्रुवबन्धिनी ध्रुवसत्ताका हैं। तीनों वेदोंकी सत्ता ध्रुव है। क्योंकि उनका बन्ध क्रमशः होता रहता है। संस्थान, संहनन, जाति, वेदनीय द्विक भी ध्रुव सत्ताका हैं। हास्य, रति और अरति शोककी सत्ता नौवें गुणस्थान तक सभी जीवों के रहती है। इसी प्रकार उच्छ्वास आदि चार, विहायोयुगल, तिर्यग्द्विक और नीच गोत्रकी भी सत्ता सर्वदा रहती है। सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेसे पहले सभी जीवोंके ये प्रकृतियाँ सदा रहती हैं इसीसे इन्हें ध्रुव सत्ताका कहा है। शेष २८ अध्रुव सत्ताका हैं। क्योंकि सम्यक्त्व और मिश्रकी सत्ता अभव्योंके तो होती ही नहीं, बहुतसे भव्योंके भी नहीं होती। तेजकाय-वायुकायिक जीव मनुष्यद्विककी उद्वेलना कर देते हैं अतः उनके मनुष्यद्विककी सत्ता नहीं होती। वैक्रियक आदि ग्यारह प्रकृतियोंकी सत्ता अनादि निगोदिया जीवके नहीं होती। तथा जो जीव उनका बन्ध करके एकेन्द्रियमें आकर उद्वेलना कर देते हैं उनके भी नहीं होती। सम्यक्त्वके होते हुए भी तीर्थंकरनाम किसीके होता है किसीके नहीं होता। स्थावरोंके देवायु-नरकायुका, अहमिन्द्रोंके तिर्यगायुका, तेजकाय, वायुकाय और सप्तम नरकके नारकियोंके मनुष्यायुका बन्ध न होनेके कारण उनकी सत्ता नहीं है। तथा संयम होनेपर भी आहारक सप्तक किसीके होते हैं किसीके नहीं होते। तथा उच्चगोत्र भी अनादि निगोदिया जीवोंके नहीं होता। उद्वेलना हो जानेपर तेजकाय, वायुकायके भी नहीं होता। अतः ये अट्ठाईस प्रकृतियाँ अध्रुव सत्ताका हैं।

गुणस्थानोंमें कुछ प्रकृतियोंकी ध्रुव सत्ता और अध्रुव सत्ताका कथन करते हुए कहा है—

आदिके तीन गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वकी सत्ता अवश्य होती है। आगे असंयत सम्यग्दृष्टि आदि आठ गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वकी सत्ता होती भी है, नहीं भी होती। सासादनमें सम्यक्त्व मोहनीयकी सत्ता नियमसे होती है। किन्तु शेष मिथ्यादृष्टि आदि दस गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व मोहनीयकी सत्ता होती भी है, नहीं भी होती। सासादन और मिश्र गुणस्थानोंमें मिश्र प्रकृतिकी सत्ता नियमसे रहती है शेष मिथ्यादृष्टि आदि नौ गुणस्थानोंमें उसकी सत्ता भजनीय है। इसी प्रकार आदिके दो गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धीकी सत्ता नियमसे रहती है शेष तीसरे आदि नौ गुणस्थानोंमें उसकी सत्ता भजनीय है। मिथ्यात्व आदि सभी गुणस्थानोंमें आहारक सप्तककी सत्ता भजनीय है। दूसरे और तीसरे गुणस्थानके सिवाय शेष सभी गुणस्थानोंमें तीर्थंकर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की सत्ता विकल्पसे होती है। तीर्थंकर और आहारककी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नहीं आता। तीर्थंकरकी सत्तावाला यदि मिथ्यात्वमें आता है तो अन्तर्मुहूर्त के लिए आता है।

२. कर्मकाण्ड गाथा २६ में कहा है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूपी भावयन्त्रके द्वारा मिथ्यात्व प्रकृतिका द्रव्य मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप हो जाता है। श्वेताम्बर परम्परामें कार्मिकोंको तो यही मत मान्य है किन्तु सैद्धान्तिकोंका मत भिन्न है। विशेषावश्यक भाष्यकी गाथा ५३० की टीकामें हेमचन्द्रसूरिने लिखा है—

सैद्धान्तिकोंका मत है कि कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उस प्रकारकी सामग्रीके मिलनेपर अपूर्वकरणके द्वारा मिथ्यात्वके तीन पुंज करता है और शुद्ध पुंज अर्थात् सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुभव न करता हुआ, औपशमिक सम्यक्त्वको प्राप्त किये बिना ही, सबसे पहले क्षायोपशमिक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। तथा कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव यथाप्रवृत्त आदि तीन करणोंको क्रमसे करके अन्तरकरण करनेपर औपशमिक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। किन्तु वह मिथ्यात्वके तीन पुंज नहीं करता। इसीसे औपशमिक सम्यक्त्वके छूट जानेपर वह जीव नियमसे मिथ्यात्वमें आता है।..........किन्तु कर्मशास्त्रियोंका मत है कि सभी मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय यथाप्रवृत्त आदि तीन करणोंको करते हुए अन्तरकरण करते हैं और ऐसा करनेपर उन्हें औपशमिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। ये जीव मिथ्यात्वके तीन पुंज अवश्य करते हैं। इसीलिए उनके मतसे औपशमिक सम्यक्त्वके छूट जानेपर जीव क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि, सम्यक्मिथ्यादृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि होता है।

तथा श्वे. कर्म प्रकृति उसकी चूर्णि और श्वे. पंचसंग्रहके रचयिताओंका मत है कि उपशम सम्यक्त्वके प्रकट होनेसे पहले अर्थात् मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें द्वितीय स्थितिमें वर्तमान मिथ्यात्वके तीन पुंज करता है। और लब्धिसारके मतसे जिस समय सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसी समय तीन पुंज करता है।

३. कर्मकाण्ड गा. ३३३ में सासादन गुणस्थानमें आहारकका सत्त्व स्वीकार नहीं किया है। किन्तु श्वे. कर्मग्रन्थमें स्वीकार किया है। कर्मकाण्ड गा. ३७३ से यह स्पष्ट है कि सासादनमें आहारककी सत्ताको लेकर कर्मशास्त्रियोंमें मतभेद है। एक पक्ष उसकी सत्ता मानता है, दूसरा पक्ष नहीं मानता।

४. कर्मकाण्ड गा. ३९१ में 'णत्थि अणं उवसमगे' पदके द्वारा यह बतलाया है कि उपशमश्रेणिमें अनन्तानुबन्धीके सत्त्वको लेकर कार्मिकोंमें मतभेद है। श्वे. परम्पराकी कर्मप्रकृति और कर्मग्रन्थमें भी अनन्तानुबन्धीकी सत्ताको लेकर मतभेद है। कर्मप्रकृति और पंचसंग्रहमें सातवें गुणस्थान तक ही अनन्तानुबन्धीकी सत्ता स्वीकार की गयी है किन्तु कर्मग्रन्थमें ग्यारहवें गुणस्थान तक सत्ता स्वीकार की गयी है। कर्मप्रकृतिका मत है जो चारित्रमोहनीयके उपशमका प्रयास करता है वह अवश्य ही अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करता है। कर्मकाण्डमें दोनों मतोंको स्थान दिया गया है।

५. तीर्थंकरनामकर्मकी जघन्य स्थिति भी अन्तःकोटी-कोटी सागर बतलायी है। उसको लेकर श्वेताम्बर कर्मसाहित्यमें शंका-समाधान इस प्रकार है—

शंका—यदि तीर्थंकरनामकर्मकी जघन्यस्थिति भी अन्तःकोटीकोटी सागर है तो तीर्थंकरकी सत्तावाला जीव तिर्यंचगतिमें जाये बिना नहीं रह सकता। क्योंकि उसके बिना इतनी दीर्घ स्थिति पूर्ण नहीं हो सकती। किन्तु तिर्यंचगतिमें तीर्थंकरनामकी सत्ताका निषेध किया है। तथा तीर्थंकरके भवसे पूर्वके तीसरे भवमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होना बतलाया है। अन्तःकोटी-कोटी सागरकी स्थितिमें यह भी कैसे बन सकता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान—तीर्थंकर नामकर्म की स्थिति कोटि-कोटि सागर प्रमाण है और तीर्थंकरके भवसे पहलेके तीसरे भवमें उसका बन्ध होता है। इसका आशय यह है कि तीसरे भवमें उद्वर्तन-अपवर्तनके द्वारा उस स्थितिको तीन भवोंके योग्य कर लिया जाता है। शास्त्रकारोंने तीसरे भवमें जो तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका विधान किया है वह निकाचित तीर्थंकर प्रकृतिके लिए है। निकाचित प्रकृति अपना फल अवश्य देती है किन्तु अनिकाचित तीर्थंकर प्रकृतिके लिए कोई नियम नहीं है वह तीसरे भवसे पहले भी बँध सकती है—विशेषणवती गा. ७९-८०।

६. आयुबन्ध तथा उसकी आबाधाके सम्बन्धमें मतभेदको दर्शाते हुए श्वे. पंचसंग्रहमें रोचक चर्चा इस प्रकार है—

देवायु और नरकायुकी उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर है। तिर्यंचायु और मनुष्यायुकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य है। तथा चारों आयुओंकी आबाधा एक पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण है।

शंका—आयुके दो भाग बीत जानेपर जो आयुका बन्ध कहा है वह असम्भव होनेसे चारों गतियोंमें नहीं घटता। क्योंकि भोगभूमिया, मनुष्य और तिर्यंच कुछ अधिक पल्यका असंख्यातवाँ भाग शेष रहनेपर परभवकी आयु नहीं बाँधते, किन्तु पल्यका असंख्यातवाँ भाग शेष रहनेपर ही परभवकी आयु बाँधते हैं। तथा देव और नारक भी अपनी आयुके छह माससे अधिक शेष रहनेपर परभवकी आयु नहीं बाँधते, किन्तु छह मास आयु शेष रहनेपर ही परभवकी आयु बाँधते हैं। परन्तु उनकी आयुका त्रिभाग बहुत होता है। तिर्यंच और मनुष्योंकी आयुका त्रिभाग एक पल्य तथा देव और नारकोंकी आयुका त्रिभाग ग्यारह सागर होता है।

उत्तर—जिन तिर्यंच और मनुष्योंकी आयु एक पूर्वकोटि होती है उनकी अपेक्षासे ही एक पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण आबाधा बतलायी है। तथा यह आबाधा अनुभूयमान भव सम्बन्धी आयुमें ही जाननी चाहिए, परभव सम्बन्धी आयुमें नहीं। क्योंकि परभव सम्बन्धी आयुकी दलरचना प्रथम समयसे ही हो जाती है उसमें आबाधाकाल सम्मिलित नहीं है। अतः एक पूर्वकोटिकी आयुवाले तिर्यंच और मनुष्योंकी परभव सम्बन्धी आयुकी उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण होती है। शेष देव, नारक और भोगभूमियोंके परभवकी आयुकी आबाधा छह मास होती है। और एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय जीवोंके अपनी-अपनी आयुके त्रिभाग प्रमाण उत्कृष्ट आबाधा होती है। अन्य आचार्य भोगभूमियोंके परभवकी आयुकी आबाधा पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहते हैं।—गाथा २४४–२४८।

चन्द्रसूरिरचित संग्रहणीसूत्रमें इसी बात को और भी स्पष्ट करके लिखा है—कहा है—देव, नारक और असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्य और तिर्यंच छह मासकी आयु शेष रहनेपर परभवकी आयु बाँधते हैं। शेष निरुपक्रम आयुवाले जीव अपनी आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर परभवकी आयु बाँधते हैं। और सोपक्रम आयुवाले जीव अपनी आयुके त्रिभागमें अथवा नौवें भागमें, अथवा सत्ताईसवें भागमें परभवकी आयु बाँधते हैं। यदि इन त्रिभागोंमें भी आयुका बन्ध नहीं कर पाते तो अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें परभवकी आयु बाँधते हैं। गो. कर्मकाण्डमें आयुबन्धके सम्बन्धमें साधारण रूपसे तो यही कथन किया है। किन्तु देव, नारक और भोगभूमियोंकी छह मास प्रमाण आबाधाको लेकर उसमें मौलिक भेद है। कर्मकाण्डके मतानुसार छह मास शेष रहनेपर आयुबन्ध नहीं होता, किन्तु उसके त्रिभागमें आयुबन्ध होता है। यदि उस त्रिभागमें भी आयुबन्ध न हो तो छह मासके नौवें भागमें आयुबन्ध होता है। सारांश यह है कि जैसे कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंचोंमें अपनी-अपनी पूरी आयुके त्रिभागमें परभवकी आयुका बन्ध होता है उसी प्रकार देव, नारक और भोगभूमिजोंमें अन्तिम छह मासके त्रिभागमें आयुबन्ध होता है। दिगम्बर परम्परामें यही मत मान्य है। केवल भोगभूमिजोंको लेकर मतभेद है। किन्हींका मत है कि उनमें नौ मास आयु शेष रहनेपर उसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिभागमें परभवकी आयुका बन्ध होता है। (देखो कर्मकाण्ड गा. १५८ की टीका तथा गा. ६४०)। इसके सिवाय एक मतभेद और भी है। यदि आठों त्रिभागोंमें आयुबन्ध न हो तो अनुभयमान आयुका एक अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर परभवकी आयु नियमसे बँध जाती है। यह सर्वमान्य मत है। किन्तु किन्हींके मतसे अनुभूयमान आयुका काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण शेष रहनेपर परभवकी आयुका बन्ध नियमसे हो जाता है (देखो कर्मकाण्ड गा. १५८ और उसकी टीका)।

सम्पादनादिके सम्बन्धमें

यतः कर्मकाण्ड गोम्मटसारका ही दूसरा भाग है अतः इसकी भी कन्नड़ टीकाकी प्रतिलिपि आदिके सम्बन्धमें पूर्व कथन ही जानना चाहिए। संस्कृत टीकाका आधार कलकत्ता संस्करण ही रहा है। दिल्लीके जैनमन्दिरसे लाला पन्नालालजी अग्रवाल द्वारा एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी। किन्तु तीसरे प्रकरणसे उसमें जो टीका मिली उसमें भेद होनेसे उसे छोड़ देना पड़ा और प्रयत्न करनेपर भी संस्कृत टीकाकी कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मकाण्डपर संस्कृतकी अन्य भी टीकाएँ थीं। कलकत्ता संस्करण एक-दो स्थानमें टिप्पणमें सूचित किया है कि अभयचन्द्र सूरिके नामांकित टीकामें विशेष पाठ मिलता है। हमने उस पाठको कन्नड टीकासे मिलाया तो बिलकुल मिल गया। इसीसे हमने वह विशेष पाठ और उसका हिन्दी अर्थ भी, जो पं॰ टोडरमलजीकी टीकामें नहीं है अलगसे इसी में दे दिया है। हमें ऐसा लगता है कि कन्नड़ टीका अभयचन्द्रसूरिकी संस्कृत टीकाका रूपान्तर तो नहीं है। कन्नड़ टीकाकार केशववर्णी अभयसूरि सिद्धान्त चक्रवर्तीके शिष्य थे। और उन्होंने ई. १३५९ में अपनी कन्नड़ टीका रची थी।

कर्मकाण्डकी संस्कृत टीकाओंकी प्रतियाँ प्राप्त होनेपर उनके तुलनात्मक अध्ययनसे ही प्रकृत विषय-पर प्रकाश पड़ सकता है।

श्रीस्याद्वादमहाविद्यालय
भदैनी, वाराणसी
१-१-८०

—कैलाशचन्द्र शास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

१. प्रकृति समुत्कीर्तन १–६०
मंगलाचरण १
प्रकृति शब्दका अर्थ २
जीव और शरीरका अनादि सम्बन्ध २
जीवके द्वारा प्रतिसमय कर्म-नोकर्मका ग्रहण ३
समयप्रबद्धका प्रमाण ३
प्रतिसमय उदय और सत्ताका परिमाण ४
कर्मके भेद और उनका स्वरूप ४
कर्मके आठ भेद और उनमें घाति–अघाती भेद ५
आठों कर्मोंके नाम ५
घाती और अघाती कर्म ६
जीवके गुण, जिन्हें कर्म घातते हैं ६
आयुकर्मका कार्य ७
नामकर्मका कार्य ७
गोत्रकर्मका कार्य ७
वेदनीय कर्मका कार्य ८
कर्मोंके नामोंके क्रममें हेतु ८
अन्तरायका कार्य तथा उसे अन्तमें रखनेमें हेतु ९
आयु नाम गोत्रके क्रममें हेतु ९
वेदनीयको मोहनीयसे प्रथम रखनेमें हेतु १०
आठों कर्मोंका स्वरूप दृष्टान्त द्वारा ११
कर्मोंके उत्तर भेदोंकी संख्या १२
स्त्यानगृद्धि और निद्रानिद्राका स्वरूप १२
प्रचला-प्रचला और निद्राका स्वरूप १३
प्रचलाका स्वरूप १३
मिथ्यात्वके तीन भेद कैसे १४
मोहनीय तथा नाम कर्मकी प्रकृतियाँ १६
औदारिक आदि पाँच शरीरोंके भंग १७
आठ अंग और उपांग १९
संहननके धारक जीवोंकी स्वर्ग तथा नरकमें उत्पत्ति १९
कर्मभूमिकी स्त्रियोंके संहनन २१
आतप और उष्ण नामकर्मका उदय किनके २२
गोत्र कर्म और अन्तराय कर्मके भेद २२
ज्ञानावरण और दर्शनावरणकी प्रकृतियाँ २३
वेदनीयके भेद २४
मोहनीयकी प्रकृतियोंका स्वरूप २४-२५
आयुकर्मकी प्रकृतियोंका स्वरूप २६
नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वरूप २७–३२
गोत्र और अन्तरायकी प्रकृतियोंका स्वरूप ३३
नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें अभेद विवक्षासे गर्भित प्रकृतियाँ ३३
बन्ध प्रकृतियोंकी संख्या ३४
उदय प्रकृतियोंकी संख्या ३५
सत्त्व प्रकृतियोंकी संख्या ३६
सर्वघाती प्रकृतियाँ ३६
देशघाती प्रकृतियाँ ३६
प्रशस्त प्रकृतियाँ ३७
अप्रशस्त प्रकृतियाँ ३८
कषायोंका कार्य ३९
कषायोंका वासनाकाल ४०
पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ ४०
भवविपाकी और क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ ४१
जीवविपाकी प्रकृतियाँ ४२
श्रोताके तीन भेद और उनका स्वरूप ४३
चार निक्षेपोंका लक्षण ४४–४५
नामकर्म और स्थापनाकर्मका स्वरूप ४५
द्रव्यकर्मके भेद और उनका स्वरूप ४६
नोआगम द्रव्यकर्मके भेद ४६
भूत शरीरके तीन भेद ४७
कदलीघात मरणका स्वरूप ४७
च्यावित और त्यक्तका स्वरूप ४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यक्त शरीरके तीन भेद ४८
भक्तप्रतिज्ञाके कालका प्रमाण ४८
इंगिनी और प्रायोपगमन मरणका स्वरूप ४९
भाविज्ञायक शरीरका स्वरूप ४९
तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्मके भेद ५०
आगम भावकर्मका स्वरूप ५१
नोआगम भावकर्मका स्वरूप ५१
उत्तर प्रकृतियोंमें नामादि निक्षेप ५१
मूल प्रकृतियोंके नोकर्म द्रव्यकर्म ५२
मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणके नोकर्म ५३
अवधि और मनःपर्यय ज्ञानावरणके नोकर्म द्रव्यकर्म ५४
पाँचों निद्राओंके नोकर्म ५४
चार दर्शनावरणोंके नोकर्म ५४
साता-असाता वेदनीयके नोकर्म ५४
सम्यक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्वके नोकर्म ५५
अनन्तानुबन्धी आदिका नोकर्म ५६
स्त्रीवेद आदि नोकषायोंका नोकर्म ५६
नरकायु आदिका नोकर्म ५७
गति, जाति, शरीर नामकर्मके नोकर्म ५७
पाँच शरीर नामकर्मोंके नोकर्म ५८
बन्धन आदि नामकर्मोंके नोकर्म ५८
आनुपूर्वीका नोकर्म ५८
स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ स्वर आदिका नोकर्म ५९
उच्च और नीच गोत्र तथा दानान्तराय आदिका नोकर्म ५९
वीर्यान्तरायका नोकर्म ५९
नोआगम भावकर्मका स्वरूप ६०

२. बन्धोदय सत्त्वाधिकार ६१–५९१

नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञा ६१
स्तव, स्तुति, धर्मकथाका स्वरूप ६१
बन्धके भेद और उनके उत्कृष्ट आदि भेद ६२
उत्कृष्ट आदिके सादि-आदि भेद ६२
उदाहरण द्वारा उनका स्पष्टीकरण ६३
गुणस्थानोंमें प्रकृतिबन्धके नियम ६४
तीर्थंकर प्रकृतिबन्धके विशेष नियम ६५
गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्तिका कथन ६६
बन्ध व्युच्छित्तिमें दो नयसे कथन ६७
मिथ्यात्व गुणस्थानमें व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ६९
सासादनमें व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ७०
असंयत और देश संयतमें व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ७०
प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरणमें व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ७१
अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें ,, ७२
उपशान्त आदि तीन गुणस्थानोंमें केवल साताका बन्ध ७३
गुणस्थानोंमें बन्ध और अबन्धका कथन ७६
नरकगतिमें बन्धादि कथन ७८
तिर्यंच गतिमें बन्धादि कथन ८३
मनुष्यगतिमें बन्धादि कथन ८६
देवगतिमें बन्धादि कथन ९०
इन्द्रियमार्गणामें कथन ९७
सासादन गुणस्थान किन तिर्यंचोंके नहीं होता—१००
त्रसकाय, मनोयोग और वचनयोगमें कथन १०१
औदारिक मिश्रकाय योगमें कथन १०२
वैक्रयिक और आहारक काययोगमें बन्धादि कथन १०४
वैक्रयिक मिश्रकाय योगमें ,, १०५
कार्मणकाययोगमें ,, १०६
स्त्रीवेदमें ,, १०७
नपुंसकवेदमें ,, १०८
पुरुषवेदमें ,, १०९
कषायमार्गणामें ,, ११०
ज्ञानमार्गणामें ,, ११०
संयममार्गणामें ,, ११२
दर्शनमार्गणामें ,, ११४
लेश्यामार्गणामें ,, ११४
भव्यमार्गणामें ,, ११६
सम्यक्त्वमार्गणामें ,, ११६
संज्ञीमार्गणामें ,, ११९
आहारमार्गणामें ,, १२०
मूल प्रकृतियोंमें सादि-आदि भेद १२१
सादि आदि भेदोंका लक्षण १२२
उत्तर प्रकृतियोंमें सादि आदि भेद १२३
४७ ध्रुव प्रकृतियोंमें चारों भेद १२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष प्रकृतियोंमें सादि और अध्रुव बन्ध हो क्यों ? १२४
मूल प्रकृतियोंमें स्थितिबन्ध १२६
उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध १२६
उत्कृष्ट स्थितिबन्धका कारण १३०
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसके ? १३०
संक्लेश परिणामोंकी रचना अंक संदृष्टि द्वारा १३४
मूल प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध १३६
तीर्थंकर और आहारकका जघन्य स्थितिबन्ध कब, किसके ? १३७
आयुकर्मके भेदोंका जघन्य स्थितिबन्ध १३७
एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना १३८
त्रैराशिक द्वारा अन्य प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्धको लाने का विधान १३९
संज्ञी, असंज्ञी चतुष्टय और एकेन्द्रियकी आबाधा १४३
जघन्य स्थितिबन्धका साधक करणसूत्र १४५
अंक संदृष्टि द्वारा स्पष्टीकरण १५१
चौदह जीवसमासोंमें उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्धका विभाग १५९
स्थितिबन्धके अट्ठाईस विकल्प १६१
उनमें-से आदिके चौबीस भेदोंकी स्थितिका आयाम लानेके लिए अन्तराल भेदोंका त्रैराशिकों द्वारा विभाजन १६१
उनमें आबाधाकालका प्रमाण १६५
एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्ध और आबाधाके भेदोंका तथा कालका प्रमाण १६५
दो-इन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्ध और आबाधा कालके भेदोंका तथा कालका प्रमाण १६६
त्रीन्द्रिय आदि जीवोंमें कथन १६८
उक्त सब कथन मनमें रखकर शलाका निक्षेपण १७०
संज्ञिपंचेन्द्रिय भेदोंके कथनमें विशेषता १७५
जघन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीव १७९
स्थितिके अजघन्य आदि भेदोंमें सादि-आदि भेद १८०
आबाधाका लक्षण १८२
मूल प्रकृतियोंमें आबाधा १८२
अन्तः कोटी-कोटी सागरकी स्थितिकी आबाधा १८३
आयुकर्मकी आबाधा १८४
उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा १८६
निषेकका स्वरूप १८७
निषेक रचनाका क्रम १८८
अनुभागबन्धका कारण १९१
उत्तर प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागबन्ध किसके १९१
जघन्य अनुभागबन्ध किनके १९४
मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागके सादि-आदि भेद २००
उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागबन्धमें सादि-आदि भेद २०१
घातिकर्मोंमें अनुभागका स्वरूप २०२
उत्तर प्रकृतियोंमें-से मिथ्यात्वमें अनुभागका स्वरूप २०३
मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंमें अनुभागका दर्शक यन्त्र २०५
देशघाति १७ प्रकृतियोंमें लता, दारु आदि रूप अनुभाग २०५
समस्त प्रकृतियोंमें शैल आदि तीन रूप अनुभाग २०६
नोकषायोंमें अनुभाग २०६
अघातिकर्मोंमें गुड़, खांड रूप अनुभाग २०७
अनुभागका यन्त्र २०८
प्रदेशबन्धका कथन २०९
एकक्षेत्र-अनेकक्षेत्रका लक्षण २०९
योग्य और अयोग्य पुद्गल द्रव्य २१०
उनमें सादि-अनादिका प्रमाण २१०
उसको लानेकी विधि २१२
समयप्रबद्धका प्रमाण २१७
समयप्रबद्धमें आठों कर्मोंका भाग २१७
वेदनीयको अधिक भाग क्यों ? २१८
अन्य कर्मोंको उनकी स्थितिके अनुसार विभाग २१९
विभागका अनुक्रम २१९
मूलकर्मको मिले द्रव्यका उसकी उत्तर प्रकृतियों में विभाग २२१
घातिकर्मोंमें सर्वघाती-देशघाती द्रव्यका विभाग २२२
सर्वघाती द्रव्य लानेके लिए प्रतिभागहारका प्रमाण २२५
सर्वघाती-देशघाती द्रव्यके विभागका क्रम २२९
उत्तर प्रकृतियोंमें विभाग २३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणका विभाग २३२
दर्शनावरणका विभाग २३३
अन्तरायका विभाग २३५
मोहनीय कर्मका विभाग २३६
नोकषायरूप पिण्ड प्रकृतिके द्रव्यका विभाग २४१
नोकषायोंके निरन्तर बन्धका काल २४३
अन्तराय कर्म और नामकर्मके द्रव्यका विभाग २४६
मूल प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध के सादि-आदि भेद २५०
उत्तर प्रकृतियोंमें उक्त भेद २५१
उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी सामग्री २५२
मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व गुणस्थानोंमें २५३
उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामित्व २५४
मूल प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामी २५६
उत्तर प्रकृतियोंमें उक्त कथन २५६
गुणस्थानोंमें एक जीवके एक कालमें बँधनेवाली प्रकृतियोंका निदर्शक यन्त्र २५९
उसका भाव २५९
योगस्थानोंके भेद २६१
उपपाद योगस्थानका स्वरूप २६२
उपपादके भेदोंका दर्शक यन्त्र २६३
परिणाम योगस्थानका स्वरूप २६४
एकान्तानुवृद्धि योगस्थान २६६
योगस्थानके अवयव २६६
उन अवयवोंका स्वरूप २६७
एक योगस्थानमें सब स्पर्धक आदिका प्रमाण २३८
अंक संदृष्टि द्वारा कथन २६९
अर्थ संदृष्टि द्वारा कथन २७४
स्थान, गुणहानि, स्पर्धक, वर्गणा, वर्ग, अविभाग प्रतिच्छेदका स्वरूप ३१०
जघन्य वृद्धिका प्रमाण ३१०
जघन्य योगस्थानका कथन ३१२
प्रदेशोंकी प्रधानतासे कथन ३३१
जघन्य स्थानसे उत्कृष्ट पर्यन्त जघन्य स्पर्द्धकोंकी वृद्धि होनेपर उत्तरोत्तर एक स्थान उत्पन्न होता है ३३३
अपूर्व स्पर्धक होनेका विधान ३३४
चौरासी पदोंके द्वारा अल्पबहुत्वका विधान ३४२
उपपाद आदि योगस्थानोंके निरन्तर प्रवर्तनेका काल ३५१
जीवोंकी संख्याकी यवाकार रचना ३५९
अंक संदृष्टि द्वारा कथन ३६१
यथार्थ कथन ३७०
योगस्थानोंमें समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण ३८८
निरन्तर योगस्थानोंका प्रमाण ३९१
सान्तर योगस्थानोंका प्रमाण ३९२
योगस्थानोंमें आदि और अन्तस्थान ३९३
चारों बन्धोंके कारण ३९४
योगस्थान आदिका अल्पबहुत्व ३९४
गुणहानि यन्त्र ४१२
त्रिकोण रचनाका अभिप्राय ४१४
उदयका निरूपण ४२७
गुणस्थानोंमें कुछ प्रकृतियोंके उदयका नियम ४२७
आनुपूर्वीके उदयका विशेष नियम ४२८
गुणस्थानोंमें उदय व्युच्छित्ति ४२९
गुणस्थानोंमें मतान्तरसे उदय व्युच्छित्ति ४३३
प्रत्येक गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्तिकी प्रकृतियोंका कथन ४३४
केवलीके साता-असाताजन्य सुख-दुःख नहीं ४३८
केवलीके परीषह क्यों नहीं ४४०
गुणस्थानोंमें उदय और अनुदयका कथन ४४२
उदीरणाका कथन ४४३
उदीरणा व्युच्छित्तिका कथन ४४४
गुणस्थानोंमें उदीरणा और अनुदीरणा प्रकृतियोंका कथन ४४७
गति आदि मार्गणाओंमें प्रकृतियोंके उदय सम्बन्धी नियम ४४८
नरकगतिमें उदययोग्य प्रकृतियाँ ४५१
प्रथम नरकमें उदय व्युच्छित्ति ४५२
द्वितीयादि नरकोंमें उदय व्युच्छित्ति ४५४
तिर्यंच गतिमें उदयत्रिक ४५५
पंचेन्द्रिय और पर्याप्ततिर्यंचमें ४५७
योनिमती और अपर्याप्त तिर्यंचमें ४५९
मनुष्यगतिमें उदययोग्य प्रकृतियाँ ४६१
मनुष्यगतिमें उदय व्युच्छित्ति ४६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्त मनुष्यमें उदयादि त्रिक	४६५	कपोत लेश्यामें उदयादि	५३०
मानुषीमें उदयादि तीन	४६७	तीन शुभ लेश्यामें उदयादि	५३२
भोगभूमिज, मनुष्य और तिर्यंचोंमें	४७०	भव्य मार्गणामेंउदयादि	५३८
देवगतिमें उदयादि तीन	४७३	उपशम सम्यक्त्व मार्गणामें	५३९
अनुदिश आदिमें उदयादि	४७५	वेदक सम्यक्त्व मार्गणामें	५४१
इन्द्रियमार्गणामें कथन	४७७	क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणामें	५४२
विकलत्रयमें कथन	४७८	संज्ञी मार्गणामें उदयादि	५४५
पंचेन्द्रियोंमें कथन	४७९	असंज्ञीमार्गणामें उदयादि	५४७
कायमार्गणामें कथन	४८१	आहार मार्गणामें उदयादि	५४९
त्रसकाय मार्गणामें कथन	४८५	अनाहार मार्गणामें उदयादि	५५०
योगमार्गणामें कथन	४८६	गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंकी सत्ता	५५३
अनुभय वचन योगमें कथन	४८९	क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका क्रम	५५४
औदारिक काययोगमें कथन	४९१	अनिवृत्तिकरणमें क्षययोग्य प्रकृतियाँ	५५७
औदारिक–मिश्रकाययोगमें कथन	४९३	अयोगी गुणस्थानमें सत्त्वव्युच्छित्ति	५५९
वैक्रियिक काययोगमें कथन	४९६	गुणस्थानोंमें सत्त्वादि तीन	५६१
वैक्रियिक–मिश्रकाययोगमें कथन	४९८	चारित्रमोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंके उपशमका विधान	५६३
आहारक काययोगमें कथन	४९९		
कार्मणकाययोगमें कथन	५००	मार्गणाओंमें सत्त्वादि तीन	५६५
वेदमार्गणामें कथन	५०३	नरकगतिमें सत्ता	५६६
पुरुष वेदमें उदयादि	५०५	तिर्यंचोंमें सत्तादि तीन	५६९
स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमें	५०६	मनुष्योंमें सत्तादि तीन	५७०
क्रोध–कषायमार्गणामें	५१०	देवगतिमें सत्तादि तीन	५७५
अनन्तानुबन्धी रहित क्रोधमें	५१२	इन्द्रिय और कायमार्गणामें सत्तादि तीन	५७७
कुमति–कुश्रुत ज्ञानमें	५१३	उद्वेलन प्रकृतियाँ	५७९
विभंगज्ञानमें उदयादि	५१४	कौन जीव किस प्रकृतिकी उद्वेलना करता है	५७९
पाँच सम्यग्ज्ञानोंमें उदयादि	५१५	योगमार्गणामें सत्तादि	५८१
मनःपर्ययज्ञानमें उदयादि	५१७	औदारिक मिश्रयोगमें सत्तादि	५८३
केवलज्ञानमें उदयादि	५१८	कार्मणकाययोगमें सत्तादि	५८४
संयम मार्गणामें उदयादि	५१९	वेदमार्गणा आदिमें सत्तादि	५८५
परिहारविशुद्धिमें उदयादि	५१९	कषायमार्गणामें सत्तादि	५८६
यथाख्यातमें उदयादि	५२१	ज्ञानमार्गणामें सत्तादि	५८६
देशसंयम और असंयममें	५२१	संयममार्गणामें सत्तादि	५८७
दर्शन मार्गणामें	५२२	दर्शनमार्गणामें सत्तादि	५८८
चक्षुदर्शनमें उदयादि	५२४	लेश्यामार्गणामें सत्तादि	५८८
अचक्षुदर्शनमें उदयादि	५२५	अभव्यमें सत्ता	५९१
अवधिदर्शन–केवलदर्शनमें	५२८	सम्यक्त्व मार्गणामें सत्ता	५९२
लेश्या मार्गणामें	५२८	संज्ञी मार्गणामें सत्ता	५९३
कृष्ण और नील लेश्यामें	५२८	आहार मार्गणामें सत्ता	५९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनाहारकमें सत्ता	५९४
३. सत्त्वस्थानभंगाधिकार	**५९६–६४६**
नमस्कारपूर्वक भंग सहित सत्त्वस्थानका कथन करनेकी प्रतिज्ञा	५९६
गुणस्थानोंमें स्थान और भंगके भेदोंके प्रकार	५९७
गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंका सत्त्व	५९७
गुणस्थानोंमें स्थानोंकी संख्या	५९९
गुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या	६००
मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थानोंकी प्रकृति संख्या	६०१
घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम	६०२
अठारह स्थानोंके पचास भंग	६०३
सासादन और मिश्रमें स्थान	६१६
सासादनमें घटायी प्रकृतियाँ	६१७
मिश्रमें घटायी गयी प्रकृतियाँ	६१८
सासादन मिश्रमें भंगोंकी संख्या	६१८
असंयतमें चालीस स्थानोंकी उपपत्ति	६२२
असंयतमें घटायी गयी प्रकृतियाँ	६२४
असंयतमें भंगोंकी संख्या	६२५
देशसंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें स्थान और भंग	६३१
उपशमश्रेणिके अपूर्वकरण आदिमें स्थान और भंग	६३४
उसमें घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम	६३५
क्षपक अपूर्वकरणमें स्थान-भंग	६३६
क्षपक अनिवृत्तिकरणमें भंग	६३७
क्षपक अनिवृत्तिकरणमें भंग	६३८
सूक्ष्म साम्पराय और क्षीणकषायोंमें स्थान तथा भंग	६३९
संयोग और अयोग केवलीमें भंग	६४१
उपशमश्रेणिके अनन्तानुबन्धी सहित आठ स्थानोंमें मतभेद	६४२
क्षपक श्रेणिके अनिवृत्ति गुणस्थानमें कषायोंके क्षपणमें मतभेद	६४२
क्षपक अनिवृत्तिकरणके स्थानों और भंगोंमें मतभेद	६४३
मतान्तरसे गुणस्थानोंमें स्थानोंकी संख्या	६४३
मतान्तरसे गुणस्थानोंमें भंगोंकी संख्या	६४४
सत्त्वस्थानके अभ्यासका फल	६४५
सिद्धान्त चक्रवर्तीकी उपाधिकी सार्थकता	६४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यप्रवर श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्त्तिरचित

गोम्मटसार

(कर्मकांड)

श्री केशवण्णविरचित टीका सहित

पणमिय सिरसा णेमिं गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मतरयणणिलयं पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥१॥

प्रणम्य शिरसा नेमिं गुणरत्नविभूषणं महावीरं। सम्यक्त्वरत्ननिलयं प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनं वक्ष्यामि ॥

वक्ष्यामि । कं । प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनं प्रकृतीनां ज्ञानावरणादिमूलोत्तरभेदभिन्नानां समुत्कीर्त्तनमस्मिन्निति प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनो ग्रंथस्तं । आदौ किं कृत्वा । प्रणम्य । नमस्कृत्य । कं । नेमिं । नेमितीर्त्थंकरपरमदेवं । केन । शिरसा । उत्तमांगेन । कथंभूतं । गुणरत्नविभूषणं । गुणा एव रत्नानि । तान्येव विभूषणानि यस्यासौ गुणरत्नविभूषणस्तं । पुनरपि कथंभूतं । महावीरं वि विशिष्टामीं लक्ष्मीं राति ददातीति वीरः । महांश्चासौ वीरश्च महावीरस्तं । भूयः किंभूतं । सम्यक्त्वरत्ननिलयं । आत्मस्वरूपोपलब्धिलक्षणः सम्यग्भावः सम्यक्त्वं । क्षायिकसम्यक्त्वं वा । तदेव रत्नं तस्य निलय आश्रयस्तमिति ।

सम्यक्त्वरत्ननिलयनुं गुणरत्नविभूषणनुं महावीरनुमप्प नेमितीर्त्थंकरपरमदेवनं नमस्कारमं माडि ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिगळ स्वरूपनिरूपणमं माळ्प ग्रंथमं पेळ्दपेनेंबुदाचार्य्यन प्रतिज्ञे ॥

प्रकृतियें देनें दोडे पेळ्दपं—

वक्ष्यामि । कं ? प्रकृतिसमुत्कीर्तनं–प्रकृतीनां ज्ञानावरणादिमूलोत्तरभेदभिन्नानां समुत्कीर्तनमस्मिन्निति प्रकृतिसमुत्कीर्तनो ग्रन्थः तं । आदौ किं कृत्वा ? प्रणम्य–नमस्कृत्य । कं ? नेमिं–नेमितीर्थंकरपरमदेवं । केन ? शिरसा–उत्तमाङ्गेन । कथंभूतं ? गुणरत्नविभूषणं–गुणा एव रत्नानि तान्येव भूषणानि यस्यासौ गुणरत्नविभूषणस्तं । पुनरपि कथंभूतं ? महावीरं–विशिष्टां ई–लक्ष्मीं राति ददातीति वीरः महांश्चासौ वीरश्च महावीरः तं । भूयः किंभूतं । सम्यक्त्वरत्ननिलयं आत्मस्वरूपोपलब्धिलक्षणः सम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं वा तदेव रत्नं तस्य निलय आश्रयः तं । एवं विशिष्टेष्टदेवतानमस्कारपूर्विका प्रकृतिसमुत्कीर्तनकथनप्रतिज्ञा आचार्यस्य ज्ञातव्या ॥१॥ प्रकृतिः का ? इति चेदाह—

गुणरूपी रत्न ही जिनके भूषण हैं, जो विशिष्ट 'ई'—लक्ष्मीको देता है वह वीर है किन्तु जो महान् वीर होने से महावीर है, तथा आत्मस्वरूपकी उपलब्धिरूप सम्यक्त्व, अथवा क्षायिकसम्यक्त्वरूपी रत्नके जो आश्रय हैं उन नेमिनाथ तीर्थंकर परमदेवको मस्तकसे नमस्कार करके, जिसमें ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे भिन्न प्रकृतियोंका कथन है, उस प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक ग्रन्थको कहूँगा। इस प्रकार विशिष्ट देवताको नमस्कार करके प्रकृतिसमुत्कीर्तनका कथन करनेकी प्रतिज्ञा आचार्यने की है ॥१॥

क–१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।
कणयोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥

प्रकृतिः शीलं स्वभावः जीवांगयोः अनादिः संबंधः। कनकोपले मलमिव तयोरस्तित्वं स्वतःसिद्धं ॥

प्रकृतियेंदोडं शीलमेंदोडं स्वभावमेंबुदत्थं। कारणांतरनिरपेक्षमप्पुदं स्वभावमेंबुदु। अग्निगूर्ध्वज्वलनमुं वायुविंगे तिर्य्यक्पवनमं नीरिग निम्नगमनमु मेंतु स्वभावो,हि स्वभाववन्तऽमपेक्षत इति। कयोः स्वभावः एंदितेंदोडे जीवांगयोः जीवकर्म्मणोः जीवस्वभावमुं कर्म्मस्वभावमुमेंबदर्त्थमल्लि रागादिपरिणमनमात्मन स्वभावमक्कुं। रागाद्युत्पादकत्वं कर्म्मस्वभावमक्कुमंतादोडे इतरेतराश्रयदोषमागि बक्कुमेंदोडे तद्दोषपरिहारार्त्थमागि अनादिः संबंधः एंदु पेळल्पट्टुदु। जीवकर्म्मंगळ संबंधक्कनादित्वमंटप्पुदरिंदमा दोषं पोद्दुदक्के दृष्टांतमं तोरिदपरु। कनकोपले मलमिव कनकोपलदोळु सुवर्ण्णमलंगळगे संबंधमेंतंते[1] अनादिः संबंधः एंदिदरिंदमे अमूर्त्तो जीवः मूर्त्तेन कर्म्मणा कथं बध्यत इति चोद्यमपाकृतं भवति।

जीवकर्म्मंगळस्तित्वमेंतु सिद्धमेंदोडे पेळ्दपरु। तयोरस्तित्वं जीवकर्म्मंगळस्तित्वं स्वतःसिद्धमेंबुदु पेळल्पट्टुदवेंतेंदोडे अहं प्रत्ययवेद्यत्वदिंदमात्मास्तित्वमुं ओव्वं दरिद्रनोव्वं श्रीमन्तनितु विचित्रपरिणमनदत्तणिंदं कर्म्मास्तित्वमं सिद्धमेंदु ज्ञातव्यमक्कुं।

संसारिजीवं कर्म्मनोकर्म्मंगळु तनगेमाळ्प प्रकारमं पेळ्वपरु—

प्रकृतिः शीलं स्वभाव इत्यर्थः। सोऽपि कारणान्तरनिरपेक्षता अग्निवायुजलानामूर्ध्वतिर्यग्निम्नगमनवत्। सहि स्वभाववन्तमपेक्षते इति। कयोः सः ? जीवाङ्गयोः—जीवकर्मणोः। तत्र रागादिपरिणमनमात्मनः स्वभावः रागाद्युत्पादकत्वं तु कर्मणः तदेतरेतराश्रयदोषः तत्परिहारार्थं तयोः जीवकर्मणोः संबन्ध अनादिरित्युक्तम्। क इव ? कनकोपले मलमिव स्वर्णपाषाणे स्वर्णपाषाणयोः संबन्धस्य अनादिरिव। अनेन अमूर्तो जीवः मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यते ? इत्यप्यपास्तं। तयोरस्तित्वं कुतः सिद्धं ? स्वतः सिद्धं। अहंप्रत्ययवेद्यत्वेन आत्मनः दरिद्रश्रीमदादिविचित्रपरिणामात् कर्मणश्च तत्सिद्धेः ॥२॥ संसारिणां कर्मनोकर्मग्रहणप्रकारमाह—

प्रकृति किसे कहते हैं ? यह कहते हैं—

जैसे अग्निका ऊर्ध्वगमन, वायुका तिर्यग्गमन और जलका नीचेको गमन स्वभाव है उसी प्रकार अन्य कारण निरपेक्ष जो होता है उसे प्रकृति या शील या स्वभाव कहते हैं। ये तीनों शब्द एकार्थक हैं। यहाँ जीव और कर्मके स्वभावसे प्रयोजन है। रागादि रूप परिणमन आत्माका स्वभाव है तथा रागादि उत्पन्न करना कर्मका स्वभाव है। किन्तु ऐसा होनेसे इतरेतराश्रय दोष आता है इसलिए उस दोषको दूर करनेके लिए जीव और कर्मके सम्बन्ध को अनादि कहा है। जैसे स्वर्णपाषाणमें स्वर्ण और पाषाणका सम्बन्ध अनादि है उसी तरह जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है। इससे यह तर्क निरस्त कर दिया कि अमूर्त जीव मूर्त कर्मसे कैसे बँधता है। अब प्रश्न होता है कि जीव और कर्मका अस्तित्व कैसे सिद्ध होता है तो उत्तर है कि स्वतःसिद्ध है। क्योंकि आत्मा तो 'मैं' इस प्रत्ययसे जाना जाता है और कोई दरिद्र और कोई श्रीमान् देखा जाता है इससे कर्मका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥२॥

संसारी जीव कर्म-नोकर्म को कैसे ग्रहण करता है, यह कहते हैं—

---

१. म मेंतंते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्मणोकम्मं ।
पडिसमयं सव्वंगं तत्तायसपिंडओव्व जलं ॥३॥

देहोदयेन सहितो जीवः आहरति कर्म्म नोकर्म्म । प्रतिसमयं सर्वांगैस्तप्तायसपिंडमिव जलं ॥

देहोदयेन कार्म्मणशरीरनामकर्मोदयजनितयोगदोडने । सहितो जीवः सहितनप्प जीवनु । आहरति आहरिसुगुं । कर्म्म ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्म्ममं । मत्तं देहोदयेन औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्म्मोदयंगळोडने । सहितो जीवः सहितनप्प जीवं । आहरति आहरिसुगुं । नोकर्म्म औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीर नोकर्म्ममं आव कालदोळाहरिसुगुमें दोडे प्रतिसमयं तदुदयद समयं प्रति समयं प्रति । सर्व्वांगैः सर्व्वात्मप्रदेशैः जगच्छ्रेणीघनप्रमितजीवप्रदेशंगळिदमाहरिसुगुमदक्के दृष्टांतमं तोरिदपरु । तप्तायसपिंडं अयसि भवमायसं तच्च तत्पिंडं च आयसपिंडं । तप्तं च तदायसपिंडं च तप्तायसपिंडं । काय्द कब्बुनद गुंडु जलमिव जलमं तन्न सर्व्वप्रदेशंगळिदमें तु पोर्गुमंते जीवनुं तन्न सर्व्वप्रदेशंगळिदं शरीरनामकर्मोदयहेतुविदं कर्म्ममुमं नोकर्म्ममुमं प्रतिसमयमुमाहरिसुगुमेंबुदर्त्थं । जीवं प्रतिसमयमुं कर्म्मनोकर्म्मपरमाणुगळनेनितनाहरिसुगुमें दोडे पेळदपरु ।

सिद्धाणंतिमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।
समयपबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं ॥४॥

सिद्धानामनंतैकभागमभव्यसिद्धादणंतगुणमेव । समयप्रबद्धं बध्नाति योगवशतस्तु विसदृशं ॥

सिद्धराशिप्रमाणमं नोडलनंतैकभागमनभव्यसिद्धराशियं नोडलुमनन्तगुणमप्पुदं । समयप्रबद्धमने । तु मत्ते योगवशदिदं विसदृशमप्पुदं कट्टुगुं । समये समये प्रबध्यत इति समयप्रबद्धः

देहाः—औदारिक-वैक्रियिकाहारक—तैजस—कार्मणनामकर्माणि । तत्र कार्मणनामोदयजनितयोगेन सहितो जीवः ज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म आहरति । शेषोदयेन सहितः तत्तत्संज्ञं नोकर्म आहरति । कदा ? इति चेत् प्रतिसमयं तदुदयकाले समयं समयं प्रति । कथं ? सर्वाङ्गसर्वात्मप्रदेशैः किंवत् ? तप्तायसपिंडं जलमिव—यथा तप्तं अयोभवं पिंडं सर्वप्रदेशैर्जलमाहरति तथा शरीरनामोदयसहितजीवः प्रतिसमयं कर्म नोकर्म आहरतीत्यर्थः[1] ॥३॥ कति तत्परमाणूनाहरति ? इति चेत्—

सिद्धराश्यनन्तैकभागं । अभव्यसिद्धेभ्यो ऽनंतगुणं तु—पुनः योगवशाद् विसदृशं समयप्रबद्धं बध्नाति ।

देहसे मतलब है औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणनामकर्म-इनमेंसे नामकर्मके उदयसे उत्पन्न योगसे सहित जीव ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके कर्मको ग्रहण करता है। शेष शरीरनामकर्मके उदयसे सहित जीव उस नामवाले नोकर्मको ग्रहण करता है। कब ग्रहण करता है ? इसका उत्तर है कि उसका उदय रहते हुए प्रति समय ग्रहण करता है। तथा जैसे तपा हुआ लोहपिण्ड सब प्रदेशोंसे जलको ग्रहण करता है उसी तरह शरीरनामकर्मके उदयसे सहित जीव सब आत्मप्रदेशोंसे कर्म-नोकर्मको ग्रहण करता है ॥३॥

प्रति समय कितने परमाणुओंको ग्रहण करता है, यह कहते हैं—

सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्यराशिसे अनन्तगुणे परमाणुरूप समयप्रबद्धको बाँधता है। योगके वशसे कमती-बढ़ती परमाणुओंके समूहरूप समयप्रबद्धको बाँधता है।

१. ब त्यर्थः । सोऽपि कः कारणान्तरनिरपेक्षता । कति० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एंदितन्वर्त्थनाममनुळ्ळ[1] कर्म्मनोकर्म्मसमयप्रबद्धमंमुक्तप्रमाणमं प्रतिसमयं कट्टुगमेंदु पेळ्दु मत्तं प्रतिसमयमुदयमुं सत्वमुमेनितेंबुदं पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपं ।—

जीरदि समयपबद्धं पओगदोऽणेगसमयबद्धं वा ।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं ॥५॥

जीर्य्यंते समयप्रबद्धः प्रयोगतोनेकसमयबद्धो वा । गुणहानीनां द्व्यर्द्धः समयप्रबद्धो भवेत्सत्वं ॥

प्रतिसमयमोंदु कार्म्मणसमयप्रबद्धमुदयिसुगुं । सातिशयक्रियेयोळात्मन सम्यक्त्वादिप्रवृत्तियं प्रयोगमेंबुदक्कु कारणदिं मेणेकादश निर्ज्जराविवक्षेयिंदमनेकसमयप्रबद्धं प्रतिक्षणमुदयिसुगुं । द्व्यर्द्ध-गुणहानि प्रमितसमयप्रबद्धं प्रतिसमयं सत्वमक्कुमल्लि शिष्यनेंदपं । प्रतिक्षणमोंदु समयप्रबद्धं बंधमप्पुदोंदु समयप्रबद्धं फलदानपरिणतियिनुदयिसिगळिसुगुमप्पुदरिनेन्तु मत्तं सत्वं द्व्यर्द्धगुणहानि-मात्रसमयप्रबद्धमेंदोडुत्तरमं मुन्नं जीवकांडदोळु पेळ्द त्रिकोणरचनाभिप्रायदिंदं पेळ्वुदु ।

कर्म्मदके सामान्यादिभेदप्रभेदमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु ।

कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥६॥

कर्म्मत्वेनैकं द्रव्यं भाव इति भवति द्विविधं तु पुद्गलपिंडो द्रव्यं तच्छक्तिर्भावकर्म्म तु ॥

समये समये प्रबध्यते इति समयप्रबद्धः ॥४॥ अथ प्रतिसमयभवं बंधं प्रमाणयित्वा उदयसत्त्वे प्रमाणयति—

प्रतिसमयमेकः कार्मणसमयप्रबद्धः जीर्यते उदेति, वा अथवा सातिशयक्रियोपेतस्य आत्मनः सम्यक्त्वादि-प्रवृत्तिलक्षणप्रयोगेन हेतुना एकादशनिर्जराविवक्षया अनेकसमयप्रबद्धो जीर्यते । द्व्यर्धगुणहानिमात्रसमय-प्रबद्धः प्रतिसमयं सत्त्वं भवति । ननु प्रतिक्षणमेकः समयप्रबद्धो बध्नाति एको गलति तदा सत्त्वेऽप्येक एव स्यात् कथं द्व्यर्धगुणहानिमात्रः ? तन्न प्रागुत्तरत्रापि त्रिकोणरचनायां व्यक्तप्रतिपादनात् ॥५॥ कर्मणः सामान्यादिभेदप्रभेदान् गाथाद्वयेनाह—

अर्थात् योगके अनुसार ही कर्मपरमाणुओंका बन्ध होता है। समय-समयमें जो बँधता है उसे समयप्रबद्ध कहते हैं ॥४॥

प्रति समय होनेवाले बन्धका प्रमाण कहकर उदय और सत्त्वका प्रमाण कहते हैं—

प्रतिसमय एक कार्मण समयप्रबद्धकी निर्जरा अर्थात् उदय होता है। अथवा सातिशय क्रिया सहित आत्माके सम्यक्त्व आदिकी प्रवृत्तिरूप प्रयोगके कारण जो निर्जराके ग्यारह स्थान कहे हैं उनकी विवक्षासे एक समयमें अनेक समयप्रबद्धकी निर्जरा करता है। तथा प्रति समय डेढ़ गुणहानि प्रमाण समयप्रबद्धका सत्त्व होता है।

शंका—जब प्रति समय एक समयप्रबद्ध बाँधता है और एक ही निर्जीर्ण होता है तो सत्त्वमें भी एक ही होना चाहिए, डेढ गुण-हानि प्रमाणकी सत्ता कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी शंका उचित नहीं है, क्योंकि पहले (जीवकाण्डमें) योगमार्गणामें त्रिकोण रचनाके द्वारा इसे स्पष्ट किया है और आगे भी करेंगे ॥५॥

कर्मके सामान्य आदि भेद-प्रभेदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. म॰ मनुक्त॰ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुन्नमुद्देशिसल्पट्ट सामान्यकर्म्मं कर्म्मत्वदिंदमोंदु। तु मत्ते द्रव्यकर्म्म भावकर्म्मभेददिंदं द्विविधमक्कुमल्लि पुद्गलपिंडं द्रव्यकर्म्ममेंबुदक्कुमा पुद्गलपिंडद अज्ञानादिजननशक्ति भावकर्म्ममेंदु पेळल्पट्टुदु। अथवा पुद्गलपिंडाज्ञानादिजनकशक्तिसंजातजीवाज्ञानादियुं भावकर्म्ममेंदु पेळल्पट्टुदवेंतेंदोडे कार्य्ये कारणोपचारः एंबी न्यायदिंजीवाज्ञानादियुं तच्छक्तियेंदितु पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदमुभयदोळं भावकर्म्मत्व सिद्धमादुदु ॥

तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा।
ताणं पुण[1] घादित्ति अघादित्ति य होंति सण्णाओ ॥७॥

तत्पुनरष्टविधं वा अष्टाचत्वारिंशच्छतमसंख्यलोको वा। तेषां पृथक् घातीत्यघातीति च भवतः संज्ञे ॥

तत्पुनः मुंपेळ्द सामान्यदोळु विवक्षितद्रव्यकर्म्ममष्टविधमक्कुमथवा अष्टाचत्वारिंशच्छतविधमुमथवा असंख्यातलोकविधमुमप्पुदु। तेषां पृथक् तदष्टविधमुमष्टाचत्वारिंशच्छतविधमुमसंख्यातलोकविधमुं पृथक्-पृथक् घातियुमेंदुमघातियुमेंदु संज्ञे द्वे भवतः संज्ञेगळेरडप्पुवु। यथोद्देशस्तथा निर्द्देशः एंदी न्यायदिंदं प्रथमोद्दिष्टाष्टविधमं तद्घात्यघातिभेदंगळं पेळल्वेडि गाथाद्वयमं पेळ्दपरु :—

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि अट्ठपयडीओ ॥८॥

ज्ञानस्य दर्शनस्य चावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुष्यं नामगोत्रमन्तराय इत्यष्टौ प्रकृतयः ॥

प्रागुक्तं सामान्यकर्म कर्मत्वेन एकं। तु—पुनः द्रव्यभावभेदाद्द्विविधं। तत्र द्रव्यकर्म पुद्गलपिण्डो भवति। पिण्डगतशक्तिः कार्ये कारणोपचारात् शक्तिजनिताज्ञानादिर्वा भावकर्म भवति ॥६॥

तत्पुनः सामान्यं कर्म अष्टविधं वा अष्टचत्वारिंशच्छतविधं वा असंख्यातलोकविधं भवति तेषां च अष्टविधादीनां पृथक्-पृथक् घात्यघातीति संज्ञे स्तः ॥७॥ यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायात् प्रथमोद्दिष्टाष्टविधं तद्घात्यघातिभेदौ च गाथाद्वयेनाह—

पहले कहा सामान्य कर्म कर्मत्वरूपसे एक है। तथा द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकार है। उनमेंसे द्रव्यकर्म पुद्गलपिण्ड है। और उस पिण्डमें रहनेवाली फल देनेकी शक्ति भावकर्म है। अथवा कार्यमें कारणके उपचारसे उस शक्तिसे उत्पन्न हुए अज्ञानादि भी भावकर्म हैं ॥६॥

वह सामान्य कर्म आठ प्रकार है अथवा एक सौ अड़तालीस प्रकार है अथवा असंख्यात लोक प्रकार है। उन आठ प्रकार आदि रूप कर्मोंकी पृथक्-पृथक् घाती और अघाती संज्ञा है ॥७॥

उद्देशके अनुसार निर्देश होता है इस न्यायसे प्रथम कहे आठ भेद और उनके घाति-अघाति भेदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. म पुण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणमुं दर्शनावरणमुं वेदनीयमुं मोहनीयमुमायुष्यमुं नाममं गोत्रमुमन्तरायमुमं बितु मूलप्रकृतिगळें टप्पुवु ॥

आवरणमोहविग्घं घादी जीवगुणघादणत्तादो ।
आउगणामं गोदं वेयणियं तह अघादित्ति ॥९॥

आवरणमोहविघ्नं घाति जीवगुणघातनात् । आयुर्न्नामगोत्रं वेदनीयं तथा अघातीति ॥

ज्ञानावरणमुं दर्शनावरणमुं मोहनीयमुमंतरायमुमें बी नाल्कुं प्रकृतिगळु घातिगळप्पुवेकें दोडे जीवगुणघातकत्वदिदं । आयुष्यमुं नाममुं गोत्रमुं वेदनीयमुमं बो नाल्कुं प्रकृतिगळु तथा न, ज्ञानावरणादिगळंते जीवगुणघातकंगळल्लतु कारणमागियघातिगळें दु पेळल्पट्टुवु ॥

जीवगुणमं पेळ्दपरु :—

केवलणाणं दंसणमणंतविरियं च खयियसम्मं च ।
खयियगुणे मदि यादी खयोवसमिये य घादी दु ॥१०॥

केवलज्ञानं दर्शनमनंतवीर्य्यं च क्षायिकसम्यक्त्वं च । क्षायिकगुणान् मत्यादीन् क्षायोपशमिकांश्च घ्नंति तु ॥

केवलज्ञानमुमं केवलदर्शनमुममनन्तवीर्य्यमुमं क्षायिकसम्यक्त्वमुमं च शब्ददिदं क्षायिकचारित्रमुमं द्वितीय च शब्ददिदं क्षायिकदानादिगळन्निती क्षायिकगुणंगळनू । तु मत्तं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययमुमें बी क्षायोपशमिक गुणंगळनू । घ्नंति केडिसुववें दितु घातिगळप्पुवु ॥

अनंतरज्ञानावरणादिपाठक्रमक्कुपपत्तियं पेळल्वेडियायुरादिकर्म्मंगळ कार्य्यमं पेळ्दपरु :—

ज्ञानावरणं दर्शनावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतयोऽष्टौ ॥८॥

ज्ञानावरणं दर्शनावरणं मोहनीयं अन्तरायश्चेति चत्वारि घातिसंज्ञानि स्युः, कुतः ? जीवगुणघातकत्वात् । आयुष्यं नाम गोत्रं वेदनीयं चेति चत्वारि तथा जीवगुणघातकप्रकारेण न इत्यघातिसंज्ञानि स्युः ॥९॥ तान् जीवगुणानाह—

केवलज्ञानं केवलदर्शनं अनन्तवीर्यं क्षायिकसम्यक्त्वं चशब्दात्क्षायिकचारित्रं द्वितीयचशब्दात् क्षायिकदानादींश्च क्षायिकान् । तु—पुनः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यान् क्षायोपशमिकांश्च गुणान् घ्नंतीति घातीनि ॥१०॥ आयुःकर्मकार्यमाह—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ये आठ मूल प्रकृतियाँ हैं ॥८॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय ये चार कर्म घाती कहे जाते हैं, क्योंकि जीवके गुणोंके घातक हैं । आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय ये चार उस प्रकारसे जीवके गुणोंके घातक नहीं हैं अतः अघाती कहे जाते हैं ॥९॥

उन जीवके गुणोंको कहते हैं—

केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और 'च' शब्दसे क्षायिक चारित्र तथा दूसरे 'च' शब्दसे क्षायिक दान आदि क्षायिक गुणोंको, व मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान नामक क्षायोपशमिक गुणोंको ये कर्म घातते हैं इससे ये घाती हैं ॥१०॥

आयुकर्मका कार्य कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मकयमोहवड्ढिय संसारम्मि य अणादिजुत्तम्मि ।
जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥११॥

कर्म्मकृतमोहवर्द्धितसंसारे चानादियुक्ते । जीवस्यावस्थानं करोत्यायुर्हलीव नरं ॥

ज्ञानावरणाद्यष्टविधप्रकृतिगळोळायुः कर्म्मोदयं हलिवन्नरं चोरनप्प नरनं स्थूलकाष्ठ भृंखलाविशेषमंतु कालं सिलिकिसि पिडिदिर्प्पुदंते कर्म्मकृताज्ञानासंयममिथ्यात्वमेंब मोहत्रयदिदं वर्द्धितसंसारदोळनादियुक्तदोळु जीवक्कवस्थानमं चतुर्गतिगळोळुमाळ्कुं ॥

नामकर्म्मकार्य्यमं पेळ्दपरु :—

गदियादिजीवभेदं देहादी पोग्गलाण भेदं च ।
गदियंतरपरिणमणं करेदि णामं अणेयविहं ॥१२॥

गत्यादिजीवभेदं देहादिपुद्गलानां भेदं च । गत्यंतरपरिणमनं करोति नाम अनेकविधं ॥

गत्याद्यनेकविधमप्प नामकर्म्मं । जीवभेदं नारकादि जीवपर्य्ययमुमनौदारिकादिशरीरंगळ पुद्गलभेदमुमं । गतियिदं गत्यंतरपरिणमनमुमं । करोति माळ्कुमप्पुदरिदं । जीवदिपाकियुं पुद्गलविपाकियुं क्षेत्रविपाकियुमेंदितु नामकर्म्मं त्रिविधमक्कुं । च शब्ददिदं भवविपाकियुमक्कुं ॥

गोत्रकर्म्मकार्य्यमं पेळ्दपरु :—

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।
उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं ॥१३॥

संतानक्रमेणागतजीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा । उच्चं नीचं चरणं उच्चं नीचं भवेद्गोत्रं ॥

संतानक्रमदिदमागतजीवाचरणक्के गोत्रमेंब संज्ञेयक्कुमल्लियुच्चाचरणमुच्चैर्गोत्रमक्कुं । नीचाचरणं नीचैर्गोत्रमक्कुं ॥

आयुः कर्मोदयः कर्मकृते अज्ञानासंयममिथ्यात्ववर्धिते अनादौ संसारे चतुर्गतिषु हलिरिव स्वच्छिद्रनिवं-त्रिततत्पादकाष्ठविशेष इव जीवस्यावस्थानं करोति ॥११॥ नामकर्मकार्यमाह—

गत्याद्यनेकविधं नामकर्म नारकादिजीवपर्यायभेदं औदारिकादिशरीरपुद्गलभेदं गत्यन्तरपरिणमनं च करोति तेन तत् जीवपुद्गलक्षेत्रविपाकि भवति । चशब्दाद्भवविपाकि च ॥१२॥ गोत्रकर्मकार्यमाह—

संतानक्रमेण आगतजीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा भवति । तत्र उच्चाचरणम् उच्चैर्गोत्रम् । नीचा-

---

आयुकर्मका उदय कर्मके द्वारा किये गये और अज्ञान, असंयम तथा मिथ्यात्वके द्वारा वृद्धिको प्राप्त हुए अनादि संसारकी चार गतियोंमें जीवको उसी प्रकार रोके रहता है जैसे एक विशेष प्रकारका काष्ठ अपने छिद्रमें पैर डालनेवाले व्यक्तिको रोके रहता है ॥११॥

नामकर्मका कार्य कहते हैं—

गति आदिके भेदसे अनेक प्रकारका नामकर्म जीवके नारक आदि पर्यायभेदको, औदारिक आदि शरीररूप पुद्गलके भेदको तथा एक गतिसे दूसरी गतिमें परिणमनको करता है। इसीसे वह जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और 'च' शब्द से भवविपाकी है ॥१२॥

गोत्रकर्मका कार्य कहते हैं—

सन्तानक्रमसे आये हुए जीवके आचरणकी गोत्र संज्ञा है। उच्च आचरणको उच्च गोत्र और नीच आचरणको नीच गोत्र कहते हैं ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदनीयकार्य्यमं पेळ्दपरु ॥

अक्खाणं अणुभवणं वेयणियं सुहसरूवयं सादं ।
दुक्खसरूवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥१४॥

अक्षाणामनुभवनं वेदनीयं सुखस्वरूपकं सातं । दुःखस्वरूपमसातं तद्वेदयतीति वेदनीयं ॥

इंद्रियविषयानुभवनं इंद्रियविषयावबोधमं वेदनीयं वेदनीयमें बुदा वेदनीयं सुखस्वरूपं सातमें बुदक्कुं दुःखस्वरूपमसातमें बुदक्कुं । तद्वेदयतीति सत्सुखदुःखंगळं वेदिसुगुमरियिसुगुमें दितु वेदनीयमें ब संज्ञेयाक्कुं ॥

अत्थं देक्खिय जाणदि पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं ।
इदि दंसणं च णाणं सम्मत्तं होंति जीवगुणा ॥१५॥

अर्थं दृष्ट्वा जानाति पश्चाच्छ्रद्दधाति सप्तभंगीभिः । इति दर्शनं च ज्ञानं सम्यक्त्वं भवन्ति जीवगुणाः ॥

संसारिजीवं अर्थं बाह्यार्थमं । दृष्ट्वा कंडु । जानाति अरिगुं मरिवुदं सप्तभंगीभिः सप्तभंगिगळिंदं निश्चयिसि । पश्चाच्छ्रद्दधाति बळिकं नंबुगुं । इति ई प्रकारदिदं । दर्शनमुं ज्ञानमुं सम्यक्त्वमुं जीवगुणंगळप्पुवु ॥

इवरावरणंगळ पाठक्रममनुपपत्तिपूर्व्वकं पेळ्दपरु :—

अब्भरहिदादु पुव्वं णाणं तत्तो हि दंसणं होदि ।
सम्मत्तमदो विरियं जीवाजीवगदमिदि चरिमे ॥१६॥

अभ्यर्हितात्पूर्व्वं ज्ञानं ततो हि दर्शनं भवति । सम्यक्त्वमतो वीर्य्यं जीवाजीवगतमिति चरमे ॥

चरणं नीचैर्गोत्रम् ॥१३॥ वेदनीयकर्मकार्यमाह—

इन्द्रियाणां अनुभवनं विषयावबोधनं वेदनीयं । तच्च सुखस्वरूपं सातं दुःखस्वरूपमसातं ते सुखदुःखे वेदयति-ज्ञापयति इति वेदनीयम् ॥१४॥

संसारी जीवः अर्थं दृष्ट्वा जानाति । तमेव पुनः सप्तभंगीभिर्निश्चित्य पश्चात् श्रद्दधाति इत्यनेन प्रकारेण दर्शनं ज्ञानं सम्यक्त्वं च जीवगुणा भवन्ति ॥१५॥ तदावरणानां पाठक्रममुपपत्तिपूर्वकमाह—

वेदनीय कर्मका कार्य कहते हैं—

इन्द्रियोंके विषयको जाननेरूप अनुभवनको वेदनीय कहते हैं। वह सुखरूप साता है और दुःखरूप असाता है उसे जो अनुभव कराता है वह वेदनीय है ॥१४॥

संसारी जीव अर्थको देखकर जानता है। पुनः उसे ही सात भंगोंके द्वारा निश्चित करनेके पश्चात् श्रद्धान करता है। इस प्रकारसे दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्व जीवके गुण हैं ॥१५॥

उन गुणोंके आवरणोंके पाठका क्रम उपपत्तिपूर्वक कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यर्हितात्पूज्यात् पूज्यमप्पुदरिदं ज्ञानं पूर्व्वमक्कुं। हि तथा हि अहंगे लघुघ्यजाद्यदल्पाजच्यमेकमें दितु पूज्यपदक्के पूर्व्वं निपतनमुंटप्पुदरिदं। ततः बळिकं। दर्शनं भवति दर्शनमक्कुं। अतः बळिकं सम्यक्त्वं सम्यक्त्वमक्कुं। जीवाजीवगतमिति जीवदोळमजीवदोळमिक्कुमें दितु वीर्य्यं चरमदोळपठिसल्पट्टुदु ॥

घादीवि अघादिं वा णिस्सेसं घादणे असक्कादो।
णामतियणिमित्तादो विग्घं पढिदं अघादि चरिमम्मि ॥१७॥

घात्यप्यघातिवन्निःशेषं घातनेऽशक्यात्। नामत्रयनिमित्ताद्विघ्नं पठितमघातिचरमे ॥

घातिकर्म्ममादोडमंतरायकर्म्ममघातिकर्म्मदंते निःशेषमागि जीवगुणघातनदोळु शक्तिराहित्यदिंदमुं नामगोत्रवेदनीयंगळं निमित्तमागुळ्ळुदरिदमुमघातिगळ चरमदोळु विघ्नं पठिसल्पट्टुदु ॥

आउबलेण अवट्ठिदि भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु।
भवमस्सिय णीचुच्चं इदि गोदं णाम पुव्वं तु ॥१८॥

आयुर्ब्बलेनावस्थितिर्भवस्येति नाम आयुः पूर्व्वं तु। भवमाश्रित्य नीचोच्चमिति गोत्रं नामपूर्व्वं तु ॥

आयुर्ब्बलाधानदिंदमवस्थितियक्कुमाउदक्कें दोडे नामकर्म्मकार्य्यंगतिलक्षणमप्प भवस्य भवक्कें दिदु कारणमागि। तु मत्ते नाममायुष्यकर्म्ममं पूर्व्वमागुळ्ळुदादुदु। तु मत्ते भवमनाश्रयिसये नीचत्वमुमुच्चत्वमुमें दिदु कारणमागि गोत्रकर्म्म नामकर्म्ममं पूर्व्वमागुळ्ळुदादुदु।

अभ्यर्हितात् पूज्यात् ज्ञानं पूर्वं पठितं हि तथाहि—'लघ्वघ्यजाद्यदल्पाजच्यं' इति सूत्रसद्भावात्। ततो दर्शनं भवति। अतः सम्यक्त्वम्। वीर्यं तु जीवाजीवगतमिति चरमे पठितम् ॥१६॥

अंतरायकर्म घात्यपि अघातिवत् निश्शेषजीवगुणघातेऽशक्यात् नामगोत्रवेदनीयनिमित्ताच्च अघातिनां चरमे पठितम् ॥१७॥

तु—पुनः—आयुर्बलाधानेन अवस्थितिः नामाकार्यगतिलक्षणभवस्येति हेतोः नामकर्म आयुष्कर्मपूर्वकं भवति। तु—पुनः भवमाश्रित्यैव नीचत्वमुच्चत्वं चेति हेतोः गोत्रकर्म नामकर्मपूर्वकं ॥१८॥

पूज्य होनेसे ज्ञानको पहले कहा क्योंकि व्याकरणके सूत्रमें कहा है कि अल्प अक्षरवालेसे जो पूज्य होता है उसका पूर्व निपात होता है। उसके पश्चात् दर्शन कहा है, उसके पश्चात् सम्यक्त्व कहा। और वीर्य तो जीव-अजीव दोनोंमें पाया जाता है इसलिए अन्तमें पढ़ा है। इस प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायका पाठक्रम जानना ॥१६॥

अन्तराय कर्म घाती होनेपर भी अघातीके समान है क्योंकि वह जीवके समस्त गुणको घातनेमें असमर्थ है। तथा नाम, गोत्र और वेदनीयके निमित्तसे अपना कार्य करता है इसलिए उसका पाठ अघाति कर्मोंके अन्तमें किया है ॥१७॥

नामकर्मका कार्य जो भव है उस भवकी अवस्थिति आयुकर्मके बलाधानसे होती है, आयुकर्मके बिना भवका ठहरना सम्भव नहीं है। अतः नामकर्मसे पहले आयुकर्म कहा। तथा भवको लेकर नीचपना-उच्चपना होता है इसलिए गोत्रकर्मसे पहले नामकर्म कहा है ॥१८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घादिंव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं ।
इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्मि पढिदं तु ॥१९॥

घातिवद्वेदनीयं मोहस्य बलेन घातयति जीवं । इति घातीनां मध्ये मोहस्यादौ पठितं तु ॥

घातिकर्म्ममें तंते वेदनीयकर्म्मं मोहनीयकर्म्मवेनिसिद रत्यरतिप्रकृत्युदयबलदिंदमे जीवं जीवनं । घातियति सुखदुःखरूपसातासातनिमित्तेंद्रियविषयानुभवनदिंदं कॆडुवंतु माळ्कुमेंदितु घातिगळ मध्यदोळु मोहनीयकर्म्मदादियोळु पठियिसल्पट्टुदु ॥

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं ॥२०॥

ज्ञानस्य दर्शनस्य चावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमन्तरायमिति पठितमिति सिद्धं ॥

ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमन्तरायमेंदितु मुंपेळ्द पाठक्रममी प्रकारदिंदं सिद्धमादुदी मूलप्रकृतिगळ्गे निरुक्तिगळ्पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीयं । तस्य का प्रकृतिः ज्ञानप्रच्छादनता । किंवत् देवतामुखवस्त्रवत् । दर्शनामावृणोतीति दर्शनावरणीयं । तस्य का प्रकृतिः दर्शनप्रच्छादनता । किंवत् राजद्वारे प्रतिनियुक्तप्रतिहारवत् । वेदयतीति वेदनीयं । तस्य का प्रकृतिः सुखदुःखोत्पादनता । किंवत् मधुलिप्तासिधारावत् । मोहयतीति मोहनीयं । तस्य का प्रकृतिः मोहोत्पादनता । किंवत् मद्यधुत्तूरमदनकोद्रववत् । भवधारणा...

घातिकर्मवत् वेदनीयं कर्म मोहनीयविशेषरत्यरत्युदयबलेनैव जीवं घातयति सुखदुःखरूपसातासातनिमित्तेंद्रियविषयानुभवनेन हन्तीति घातिनां मध्ये मोहनीयस्य आदौ पठितम् ॥१९॥

ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयम् आयुर्नाम गोत्रम् च अन्तरायः इति प्रागुक्तपाठक्रम एवं सिद्धः । तेषां निरुक्तिरुच्यते–ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? ज्ञानप्रच्छादनता । किंवत् ? देवतामुखवस्त्रवत् । दर्शनमावृणोतीति दर्शनावरणीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? दर्शनप्रच्छादनता । किंवत् ? राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतीहारवत् । वेदयतीति वेदनीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? सुखदुःखोत्पादनता । किंवत् ? मधुलिप्तासिधारावत् । मोहयतीति मोहनीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? मोहोत्पादनता । किंवत् मद्यधत्तूरमदन-

घातिकर्मकी तरह वेदनीयकर्म मोहनीयके भेद रति और अरतिके उदयका बल पाकर ही जीवका घात करता है अर्थात् सुख-दुःखरूप साता-असातामें निमित्त इन्द्रियोंके विषयोंका अनुभवन कराकर घात करता है इसलिए घातिकर्मोंके मध्यमें और मोहनीयके पहले वेदनीय कहा है ॥१९॥

इस प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय पहले कहा पाठक्रम सिद्ध होता है। उनकी निरुक्ति कहते हैं। जो ज्ञानको आवृत करता है, आच्छादित करता है वह ज्ञानावरणीय है। जैसे देवताके मुखपर वस्त्र डालनेसे वह वस्त्र देवताका विशेष ज्ञान नहीं होने देता, वैसे ही ज्ञानावरण ज्ञानको आच्छादित करता है। जो दर्शनको आवृत करता है वह दर्शनावरणीय है। जैसे राजद्वार-पर बैठा द्वारपाल राजाको नहीं देखने देता, उसी प्रकार दर्शनावरण दर्शनगुणको आच्छादित करता है। जो सुख-दुःखका वेदन अर्थात् अनुभवन कराता है वह वेदनीय है। जैसे

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

गच्छतीत्यायुः । तस्य का प्रकृतिः भवधारणता । किंवत् शृंखलाकोळमें बुदत्थं । हलिवत् । नाना मिनोतीति नाम । तस्य का प्रकृतिः नरनारकादिनानाविधकरणता । किंवत् चित्रकारवत् । उच्चनीचं मयतीति गोत्रं । तस्य का प्रकृतिः उच्चनीचत्वप्रापकता । किंवत् कुंभकारवत् । दातृपात्रयोरंतरमेतीत्यंतरायः । तस्य का प्रकृतिः विघ्नकरणता । किंवत् भांडागारिकवत् ।। ज्ञानावरणादिप्रकृतिगळ्गे यी पेळ्द दृष्टांतमं पेळ्दपरु—

पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलालभंडयारीणं ।

जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ।।२१।।

पटप्रतीहारासिमद्यहलिचित्रकुलालभांडागारिकाणां । यथैतेषां भावास्तथापि च कर्म्माणि मन्तव्यानि ।

देवतामुखवस्त्रमुं राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतीहारनुं मधुलिप्तासिधारेयुं मद्यमुं हळियुं चित्रकनुं कुलालनुं भांडागारिकनुमें ब यथैतेषां भावाः एंतिवर भावंगळु तथापि च आ प्रकारंगळिदमे कर्म्माणि मंतव्यानि कर्म्मंगळु बगेयल्पडुवउ ।

उत्तरप्रकृतिगळुत्पत्तिक्रममं पेळ्दपरु :—

कोद्रववत् । भवधारणाय एति गच्छतीति आयुः । तस्य का प्रकृतिः ? भवधारणता । किंवत्[1] ? हलिवत् । नाना मिनोतीति नाम । तस्य का प्रकृतिः ? नरनारकादि नानाविधकरणता । किंवत् ? चित्रकवत् । उच्चनीचं गमयतीति गोत्रं । तस्य का प्रकृतिः उच्चनीचत्वप्रापकता । किंवत् ? कुंभकारवत् । दातृपात्रयोरन्तरमेतीति अंतरायः । तस्य का प्रकृतिः ? विघ्नकरणता । किंवत् ! भांडागारिकवत् ।।२०।। उक्तदृष्टान्तानाह—

देवतामुखवस्त्र-राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतीहार-मधुलिप्तासिधारा—मद्य-हलि—चित्रक—कुलाल—भाण्डागारिकाणां एतेषां भावा यथा तथैव कर्माणि मन्तव्यानि ।।२१।। उत्तरप्रकृत्युत्पत्तिक्रममाह—

शहद लपेटी तलवारकी धारको चाटनेसे पहले सुख और फिर दुःख होता है। वैसे ही वेदनीय कर्म सुख-दुःखमें निमित्त होता है। जो जीवको मोहित करता है वह मोहनीय है। जैसे मदिरा, धतूरा या मादक कोदोंका सेवन करनेसे नशा होता है और सेवन करनेवाला असावधान हो जाता है वैसे ही मोहनीय आत्माको मोहित करनेमें निमित्त होता है। जो नवीन भव धारण करनेमें निमित्त है वह आयु है। जैसे सांकल या काठ आदिका फन्दा मनुष्यको नियत स्थानमें रोके रखता है वैसे ही आयुकर्म भी जीवको अमुक भवमें रोके रखनेमें निमित्त होता है। जो नाना प्रकारके कार्य करता है वह नामकर्म है। जैसे चित्रकार अनेक प्रकारके चित्र बनाता है वैसे ही नामकर्म जीवको नर नारक आदि रूप करता है। जो उच्च-नीच कहानेमें निमित्त है वह गोत्रकर्म है। जैसे कुम्हार मिट्टीके छोटे-बड़े बरतन बनानेमें निमित्त है वैसे ही गोत्र जीवको उच्च-नीच बनानेमें निमित्त है। जो दाता और पात्रके मध्यमें आकर विघ्न डालता है वह अन्तराय है। जैसे भण्डारी दान देनेमें विघ्न करता है उसी प्रकार अन्तरायकर्म दान आदिमें विघ्न करता है ।।२०।।

इस प्रकार देवताके मुखपर पड़ा वस्त्र, राजद्वारपर खड़ा द्वारपाल, शहद लपेटी तलवार, मदिरा, हलि, चित्रकार, कुम्हार और भण्डारीका जैसा स्वभाव होता है वैसा ही स्वभाव इन कर्मोंका भी जानना ।।२१।।

१. ब शृङ्खलाहलिवत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
तेउत्तरं सयं वा दुगपणगं उत्तरा होंति ।।२२।।

पंच नव द्व्यष्टाविंशति चतुस्त्रिनवति त्र्युत्तरशतं वा द्विपंचोत्तरा भवंति ।।

ज्ञानावरणादिगळ्गे यथासंख्यमागुत्तरप्रकृतिगळु पंच नव द्व्यष्टाविंशति चतुस्त्रिनवति त्र्युत्तरशतं वा द्विपंचभेदंगळु भवन्ति अप्पुवु । अवं तें दोड—ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्न्नामगोत्रमंतरायमें दिवु मूलप्रकृतिगळक्कुमल्लि ज्ञानावरणीयं पंचविधमक्कुमाभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणीयमुं केवलज्ञानावरणीयमुमें दितु । दर्शनावरणीयं नवविधमक्कुं स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयमुमें दिन्तु ।

थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य ।
णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घाडिदुं सक्को ।।२३।।

स्त्यानगृद्धयुदयेनोत्थापिते स्वपिति कर्म्म करोति जल्पति च । निद्रानिद्रोदयेन च न दृष्टिमुद्घाटितुं शक्तः ।।

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्म्मोदयदिदमेत्ति येब्बिसिदोडं स्वपिति निद्रेगेय्गुं । कर्म्मं करोति निद्रेयोळ्केलसमं माळ्कुं । जल्पति च मातुमनाडुगुं । निद्रानिद्रादर्शनावरणीयकर्म्मोदयदिदमेनितनेच्चरिसिदोडं दृष्टिगळं तेगेयलु शक्तनल्लं ।

ज्ञानावरणादीनां यथासंख्यमुत्तरभेदा पंच नव द्वौ अष्टाविंशतिः चत्वारः त्रिनवतिः त्र्युत्तरशतं वा द्वौ पञ्च भवन्ति । तद्यथा ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतयः । तत्र ज्ञानावरणीयं पंचविधं—आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणीयं केवलज्ञानावरणीयं चेति । दर्शनावरणीयं नवविधं स्त्यानगृद्धि-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-निद्रा-प्रचला चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयं चेति ।।२२।।

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयोदयेनोपस्थापितेऽपि स्वपिति । निद्रायां कर्म करोति । जल्पति च । निद्रानिद्रोदयेन बहुधा सावधानीक्रियमाणोऽपि दृष्टिमुद्घाटयितुं न शक्नोति ।।२३।।

ज्ञानावरण आदिके उत्तर भेद क्रमानुसार पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, तिरानबे अथवा एक सौ तीन, दो और पाँच होते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—ज्ञानावरणीयके पाँच भेद हैं—मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय। दर्शनावरणीयके नौ भेद हैं—स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ।।२२।।

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयके उदयसे उठानेपर भी सोता है। सोते हुए कर्म करता है, बोलता है। निद्रानिद्राके उदयसे सावधान करनेपर भी दृष्टि उघाड़नेमें समर्थ नहीं होता ।।२३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलंति अंगाइं ।
णिद्दुदये गच्छंतो ठाइ पुणो बइसइ पडेइ ॥२४॥

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्म्मोदयेन च वहति लाला चलन्त्यंगानि । निद्रोदये गच्छन् तिष्ठति पुनरुपविशति पतति ॥

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्म्मोदयदिंदमुं । वहति लाला लोळ्ळि बायिदं सुरिगुं । चलन्त्यंगानि अवयवंगळ्चलिसुगुं । निद्रादर्शनावरणीयकर्म्मोदयदोळु । गच्छन् नडेयुत्तं । तिष्ठति निंदिक्कुं । पुनरुपविशति मत्ते कुळ्ळिक्कुं । पतति ओरगुगुं ।

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि ।
ईसं ईसं जाणदि मुहुं मुहुं सोवदे मंदं ॥२५॥

प्रचलोदयेन च जीवः ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोपि ईषदीषज्जानाति मुहुर्म्मुहुः स्वपिति मंदं ॥

प्रचलादर्शनावरणीयकर्म्मोदयदिंदं जीवः जीवं ईषदुन्मील्य ओप्पच्चिक्कण्देरदु स्वपिति निद्रेगेय्गुं । सुप्तोपि निद्रे गेय्यलपट्टनागियुं ईषदीषज्जानाति इनितिनितनेरच्चरगुं । मुहुर्म्मुहुः मरळे मरळे । मंदं गाढमागि । स्वपिति निद्रगेय्गुं ।

वेदनीयं द्विविधमक्कुं । सातवेदनीयमुमसातवेदनीयमुमें दितु । मल्लि रतिमोहनीयकर्म्मोदयबलदिंदं जीवक्के सुखकारणेंद्रियविषयानुभवनमं माडिसुगुं सातवेदनीयं । जीवक्के दुःखकारणेंद्रियविषयानुभवनमं माडिसुगुमरतिमोहनीयकर्म्मोदयबलदिंदमसातवेदनीयं ॥

मोहनीयं द्विविधमक्कुं । दर्शनमोहनीयमुमें दु चारित्रमोहनीयमें दितल्लि दर्शनमोहनीयं बंधविवक्षेयिदं मिथ्यात्वमेकविधमेयक्कुमुदयमुमं सत्वमुमं कुरुत्तु मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतियुमें दिन्तु त्रिविधमक्कुमक्कुपपत्तियं पेळ्दपरु ।

प्रचलाप्रचलोदयेन मुखात् लाला वहन्ति । अङ्गानि चलन्ति । निद्रोदयेन गच्छन् तिष्ठति । स्थितः पुनरुपविशति । पतति च ॥२४॥

प्रचलोदयेन जीवः ईषदुन्मील्य स्वपिति । सुप्तोऽपि ईषदीषज्जानाति । मुहुर्मुहुर्मन्दं स्वपिति । वेदनीयं द्विविधं-सातवेदनीयमसातवेदनीयं चेति । तत्र रतिमोहनीयोदयबलेन जीवस्य सुखकारणेंद्रियविषयानुभवनं कारयति तत्सातवेदनीयं । दुःखकारणेंद्रियविषयानुभवनं कारयति अरति मोहनीयोदयबलेन तदसातवेदनीयं । मोहनीयं द्विविधं दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं चेति । तत्र दर्शनमोहनीयं बंधविवक्षया मिथ्यात्वमेकविधं भवति उदयं सत्त्वं प्रतीत्य मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतिश्चेति त्रिविधं ॥२५॥ तस्योपपत्तिमाह—

प्रचलाप्रचलाके उदयसे मुखसे लार बहती है, अंग चलते हैं। निद्राके उदयसे चलता हुआ ठहरता है, पुनः बैठता है और पड़कर सो जाता है ॥२४॥

प्रचलाके उदयसे जीव कुछ-कुछ आँख खोले सोता है। सोता हुआ भी कुछ-कुछ जानता है। बार-बार मन्द सोता है। वेदनीयके दो भेद हैं—सातवेदनीय और असातवेदनीय। रतिमोहनीयके उदयके बलसे जीवके सुखके कारण इन्द्रियविषयका अनुभवन जो कराता है वह सातवेदनीय है। और अरतिमोहनीयके उदयके बलसे जो दुःखके कारण इन्द्रियविषयका अनुभवन कराता है वह असातवेदनीय है। मोहनीयके दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। उनमें-से दर्शनमोहनीयका बन्धकी विवक्षामें एक भेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण ।
मिच्छं दव्वं तु तिहा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥२६॥

यंत्रेण कोद्रववत् प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रेण । मिथ्यात्वद्रव्यं तु त्रिधा असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमात् ॥

यंत्रेण कोद्रववत् हारत्तिकन कल्लिदं हारक्कें ब धान्यमें तु बीसिदोडे हारक्कुमक्कियुं नुच्चुगळुमें दि तु त्रिप्रकारमप्पुदंते । तु मत्ते । प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रदिदं मिथ्यात्वद्रव्यं मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिस्वरूपदिदमसंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमदिंद । त्रिधा स्यात् त्रिःप्रकारमप्पुददें तें दोडे—दर्शनमोहनीयं बंधविवक्षेयिदं मिथ्यात्वमेकप्रकारमेयक्कुमप्पुदरिंदमायुर्व्वज्जितज्ञानावरणादिसप्तप्रकृतिद्रव्यं किंचिदूनद्व्यर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं सत्वमक्कुं । स ० १२–। इदनेळुं कर्म्मंगळगे पसुगेयं माडिदोडे मोहनीयक्के त्रैराशिकसिद्धमिनितु द्रव्यमक्कु स ० १२
७।
मिदरोळु देशघातिसर्व्वघातिविभागनिमित्तमनन्त भागहारदिदं भागिसिदोडे बहुभागं देशघातिगळगक्कुमेकभागं सर्व्वघातिसंबंधिद्रव्यमिनितक्कु स ० १२– मी द्रव्यमं मिथ्यात्वमुं षोडश-
७। ख
कषायंगळुं सर्व्वघातिगळप्पुदरिंदं पदिनेळक्कं पसलोडमों दु मिथ्यात्वकर्म्मसंबंधिद्रव्यमिनितक्कु स ० १२– मिदं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालमंतर्म्मुहूर्त्तमदर प्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमय-
७। ख १७

यन्त्रेण घरट्टेन कोद्रवो दलितो यथा तुषतंडुलकणिकारूपेण त्रिधा भवति तथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रेण मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिस्वरूपेण असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण त्रिधा भवति । तद्यथा—

आयुर्वर्जितसप्तकर्मद्रव्यं किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं स ० १२–तत्सप्तभिर्भक्तं मोहनीयस्य स्यात् स ० १२– । तत्रानन्तबहुभागो देशघातिनः इत्येकभागः सर्वघातिनः स ० १२–तच्च मिथ्यात्व-
७   ७ ख
षोडशकषायेभ्यो दातुं सप्तदशभिर्भक्तं मिथ्यात्वस्यैतावत् स ० १२– । इदं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालांतर्मुहूर्तस्य
७ ख १७

मिथ्यात्व है । किन्तु उदय और सत्त्वकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति तीन भेद हैं ॥२५॥

ये तीन भेद कैसे होते हैं इसकी उपपत्ति कहते हैं—

जैसे चाकीसे दलनेपर कोदोंके भूसी, चावल और कनरूपसे तीन भेद होते हैं उसी प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूप भावयन्त्रसे एक मिथ्यात्वप्रकृतिका द्रव्य (परमाणु समूह) क्रमसे असंख्यातगुण हीन द्रव्यरूपसे मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप तीनमें विभाजित हो जाता है । उसका विवरण इस प्रकार है—आयुको छोड़ सातकर्मोंका द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । उसमें सातसे भाग देनेपर मोहनीयका द्रव्य होता है । उसमें अनन्तसे भाग देनेपर बहुभाग देशघाती द्रव्य है और एक भाग सर्वघाती द्रव्य है । उस सर्वघातीद्रव्यको मिथ्यात्व और सोलह कषायोंमें देनेके लिए सतरहसे भाग देनेपर मिथ्यात्वका द्रव्य होता है । प्रथमोपशम सम्यक्त्वके काल अन्तर्मुहूर्तके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यंतं प्रतिसमयमुं गुणसंक्रमभागहारविंदमपकर्षिसिकों डु असंख्यातगुणहीनक्रमदिंदं मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिरूपमागि मूरुं पुंजंगळं माळ्कुमंतु माडुत्तिरलुमा प्रथमोपशम-सम्यक्त्वकालचरमसमयदोळु मिथ्यात्वद्रव्यमुं मिश्रप्रकृतिद्रव्यमुं सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमुमितिप्पुवु :–

	∧ मि	∧ मि	∧ सं
० ० ० ०	स ə १२– गु द्र ७ स १७ ə गु ə	स ə १२–ə ७ । ख १७ । गु	स ə १२– १ ७ । ख १७ । गु
२१ ० ० ०	३ शक्ति । ९र्व ना	२ ९ ना S ख	३ S ९ ना ख ख

मिथ्यात्वमें तु मिथ्यात्वमागि माडल्पट्टुवें दोडे—अतिच्छापनावलिमात्रस्थिति ह्रासमागि माडल्पट्टुदें बवर्थं । ई विधानमं मनदोळिरिसियसंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमदिंदं मिथ्यात्वद्रव्यं त्रिप्रकारमक्कुमें दाचार्य्यनिंद पेळल्पट्टुदु । चारित्रमोहनीयं द्विविधमक्कुं । कषायवेदनीयं नोकषायवेद-

प्रथमसमयात्प्रभृति चरमसमयपर्यंतं प्रतिसमयं गुणसंक्रमभागहारेण अपकृष्यापकृष्य असंख्यातगुणहीनक्रमेण मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण त्रिपुंजीकरोति तथा सति तच्चरसमयेऽप्येवं तिष्ठति—

	मि ∧	मि ∧	सं ∧
० ० ० ० ० २१	१ –०– स ə १२–गु १– ७ ख १७ ə गु १– ə	स ə १२–ə १– ə ख १७ गु ə	स ə १२– । १ १– ७ ख १७ गु ə
० ० ० ० ०	३ व ९ ना शक्ति	३ व ९ ना ख शक्ति	व ९ ना ख ख शक्ति

मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वकरणं तु अतिस्थापनावलिमात्रं पूर्वस्थितान्नूनितमित्यर्थः । एतद्विधानं मनसि कृत्वा असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण मिथ्यात्वद्रव्यं त्रिधा स्यात् इति आचार्येणोक्तम् ।

प्रथमसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय गुणसंक्रम भागहारके द्वारा उस मिथ्यात्वके द्रव्यको अपकर्षण कर-करके मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूपसे तीन पुंज करता है। उसमें मिथ्यात्वका जितना द्रव्य होता है उससे असंख्यातगुणा हीन सम्यक्-मिथ्यात्वका और उससे भी असंख्यातगुणा हीन सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य होता है। ऐसा होनेपर अन्तिम समयमें भी ऐसा ही रहते हैं। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जो द्रव्य-मिथ्यात्वरूप ही था उसका मिथ्यात्व करना कैसा ? इसका समाधान यह है कि मिथ्यात्वकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोयमुमें दितवरोळ् कषायवेदनीयं षोडशविधमक्कुं । क्षपणेयं कुरुत्तु अनंतानुबंधि क्रोधमानमाया-लोभमप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभं । क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनमें दितुं प्रक्रमद्रव्यमं कुरुत्तु प्रक्रमद्रव्यमें बुदु विभंजनद्रव्यमें बुदर्त्थमवं कुरुत्तु अनंतानुबंधिलोभमायाक्रोधमानं । संज्वलनलोभमायाक्रोधमानं । प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानं । अप्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानमें दितु ॥ नोकषायवेदनीयं नवविधमक्कुं :—पुरुषस्त्रीनपुंसकवेदं रत्यरतिहास्यशोकभयजुगुप्सेयें दिन्तु ॥

आयुष्यं चतुर्व्विधमक्कं । नरकायुष्यं तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यमें दिन्तु । नामकर्म्मं द्वाचत्वारिंशद्विधमक्कुं । पिंडापिंडभेददिदं । गति जाति शरीर बंधन संघातसंस्थान अंगोपांग संहनन वर्ण्णं गंध रस स्पर्श आनुपूर्व्यअगुरुलघुक उपघात परघात उच्छ्वास आतप उद्योत विहायोगति त्रस स्थावर बादर सूक्ष्म पर्य्याप्त अपर्याप्त प्रत्येक साधारणशरीर स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुभग दुर्भग सुस्वर दुस्वर आदेय अनादेय यशस्कीर्त्ति अयशस्कीर्त्ति निर्म्माण तीर्त्थंकरनाममें दितल्लि

चारित्रमोहनीयं द्विविधं—कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयं चेति । तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधं क्षपणां प्रतीत्य अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभं, अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभं, प्रत्याख्यानक्रोधमानमाया-लोभं, क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति । प्रक्रमद्रव्यं विभञ्जनद्रव्यं प्रतीत्य अनन्तानुबन्धिलोभमायाक्रोधमानं संज्वलनलोभमायाक्रोधमानं प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानं अप्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानं चेति । नोकषायवेदनीयं नवविधं पुरुषस्त्रीनपुंसकवेदं रत्यरतिहास्यशोकभयजुगुप्साश्चेति । आयुष्यं चतुर्विधं नरकायुष्यं तिर्यग्मनुष्यदेवायुष्कं चेति । नामकर्म द्वाचत्वारिंशद्विधं पिण्डापिण्डप्रकृतिभेदेन गतिजातिशरीरबन्धनसंघातसंस्थानाङ्गोपाङ्गसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शानुपूर्व्यागुरुलघुकोपघातपरघातोच्छ्वासातपो-द्योतविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येकसाधारणशरीरस्थिरास्थिर-शुभाशुभसुभगदुर्भगसुस्वर-दुःस्वरादेयानादेययशोऽयशस्कीर्तिनिर्माणतीर्थंकरनामेति ।

जो पूर्व स्थिति थी उसमें-से अति स्थापनावली प्रमाण कम कर दिया। यह विधान मनमें रखकर आचार्यने असंख्यातगुणाहीन क्रमसे मिथ्यात्व द्रव्य तीन रूप किया ऐसा कहा है।

चारित्रमोहनीयके दो भेद हैं—कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय। उनमें-से कषायवेदनीयके सोलह भेद हैं। जिस क्रमसे उनका क्षय होता है उस क्रमके अनुसार वे भेद इस प्रकार हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन। प्रदेशबन्धके अन्तर्गत होनेवाले विभाजनके क्रमानुसार लें तो अनन्तानुबन्धी लोभ माया क्रोध मान, संज्वलन लोभ माया क्रोध मान, प्रत्याख्यान लोभ माया क्रोध मान, अप्रत्याख्यान लोभ माया क्रोध मान, यह क्रम है। इसी क्रमसे इनमें विभाग दिया जाता है। नोकषाय वेदनीयके नौ भेद हैं—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, रति, अरति, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा। आयुकर्मके चार भेद हैं—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु। नामकर्म पिण्ड प्रकृति और अपिण्ड प्रकृतिके भेदसे बयालीस भेदवाला है—गति, जाति, शरीर, बन्धन, संघात, संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्व्य, अगुरुलघुक, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतिनामकर्म्मं चतुर्व्विधमक्कुं। नारकतिर्य्यग्गतिनामकर्म्ममेंदुं मनुष्यदेवगतिनामकर्म्ममेंदितुं। जातिनामकर्म्मं पंचविधमक्कुमेकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियजातिनामकर्म्ममेंदुं पंचेंद्रिय-जातिनामकर्म्ममेंदिन्तु।

शरीरनामकर्म्मं पंचविधमक्कुं। औदारिक वैक्रियिक आहार तैजस कार्म्मण शरीरनाम कर्म्ममेंदिन्तु।

औदारिकादिपंचशरीरंगळिवक्के द्विसंयोगदिभंगंगळपदिनय्दप्पुवेंबुदं पेळदपरु :—

तेजाकम्मेहि तिए तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं।
कयसंजोगे चदु चदु चदु दुग एक्कं च पयडीओ ॥२७॥

तैजसकार्म्मणाभ्यां त्रये तैजसं कार्म्मणेन कार्म्मणेन कार्म्मणं। कृतसंयोगे चतुः चतुश्चतु-द्व्येका वा प्रकृतयः॥

तैजसकार्म्मणंगळेरडरोडने। त्रये औदारिक वैक्रियिक आहारकमेंब त्रयदोळु। कृत-संयोगे संयोगं माडल्पडुत्तिरलु। चतुश्चतुश्चतुः प्रकृतयो भवंति नाल्कुं नाल्कुं नाल्कुं प्रकृति-गळप्पुवु। तैजसं कार्म्मणदोडने संयोगं माडल्पडुत्तिरलु द्विप्रकृतिगळप्पुवु। कार्म्मणदोडने कार्म्मणं संयोगं माडल्पडुत्तिरलेकप्रकृतियक्कुमितु पंचदशप्रकृतिगळगे संदृष्टिरचनेयिदु :—

तत्र गतिनाम चतुर्विधं–नारकतिर्यग्गतिनाम मनुष्यदेवगतिनाम चेति। जातिनाम पञ्चविधं–एकेन्द्रिय-द्वीद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियजातिनाम पञ्चेंद्रियजातिनाम चेति। शरीरनाम पञ्चविधं–औदारिकवैक्रियिकाहारक-तैजसकार्मणशरीरनामेति ॥२६॥ एषां पञ्चशरीराणां भङ्गानाह—

औदारिकवैक्रियिकाहारकत्रये तैजसकार्मणाभ्यां संयोगे कृते चतस्रश्चतस्रः प्रकृतयः। तद्यथा—औदारिकौदारिक–औदारिकतैजस–औदारिककार्मण–औदारिकतैजसकार्मणाः। एवं वैक्रियिके आहारकेऽपि ज्ञातव्याः। पुनः तैजसकार्मणेन संयोगे कृते तदा तैजसतैजसतैजसकार्मणेति द्वे प्रकृती। पुनः कार्मणं कार्मणेन तदा कार्मणकार्मणेत्येका। एवं पञ्चदश भवन्ति।

नाम। गतिनामके चार भेद हैं—नारकगतिनाम, तिर्यंचगतिनाम, मनुष्यगतिनाम, देवगति-नाम। जातिनामके पाँच भेद हैं—एकेन्द्रिय जातिनाम, द्वीन्द्रिय जातिनाम, त्रीन्द्रिय जाति-नाम, चतुरिन्द्रिय जातिनाम और पंचेन्द्रिय जाति नाम। शरीरनामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीरनाम, वैक्रियिक शरीरनाम, आहारक शरीरनाम, तैजस शरीरनाम और कार्मण शरीरनाम ॥२६॥

इन पाँच शरीरोंके भंग कहते हैं—

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीनोंमें तैजस और कार्मणका संयोग करनेपर चार, चार, चार प्रकृतियाँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं—औदारिकऔदारिक, औदारिक-तैजस, औदारिककार्मण, औदारिकतैजसकार्मण। इसी प्रकार वैक्रियिक और आहारकमें भी जानना चाहिए। पुनः तैजसका कार्मणसे संयोग करनेपर तैजसतैजस, तैजसकार्मण दो प्रकृति होती हैं। पुनः कार्मणका कार्मणसे संयोग होनेपर एक प्रकृति होती है। इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औ	औ औ	औ तै	औ का ३	औ तै का ४
वै	वै वै	वै तै	वै का ।	वै तै का ४
आ	आ आ	आ तै	आ । का	आ तै का ४
तै	तै तै	तै का	२	
का	का का		१	

इन्ती द्विसंयोगादिजनितपंचदशभंगंगळोळु पुनरुक्तंगळप्प औदारिकौदारिक वैक्रियिक-वैक्रियिक आहारकाहारक तैजसतैजस कार्म्मणकार्म्मणम्गळ्व द्विसंयोगभंगपंचकमं बिट्टु शेषदश-भंगंगळं त्रिनवतिनामकम्मंगळोळु कूडुत्तं विरलु त्र्युत्तरशतं वा यें दु पेळद नामकर्म्मदुत्तरप्रकृति-गळप्पुवु ।

शरीरबंधननामकर्म्मं पंचविधमक्कुमौदारिक वैक्रियिक आहारक तैजसकार्म्मण शरीर बंधननामकर्म्ममें दिन्तु ।

शरीरसंघातनामकर्म्मं पंचविधमक्कुं मौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्म्मणशरीरसंघात नामकर्म्मंगें दितु ।

शरीरसंस्थाननामकर्म्मं षड्विधमक्कुं । समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म्ममें बुदुं न्यग्रोधपरि-मण्डल स्वाति कुब्ज वामन हुंडशरीर संस्थाननामकर्म्ममें दितु ।

	औ	औ औ	औ तै	औ का	औ तै का	४
१	वै	वै वै	वै तै	वे का	वै तै का	४
	आ	आ आ	आ तै	आ का	आ तै का	४
	तै	तै तै	तै का	२		
	का	का	का	१		

एतासु औदारिकौदारिकादयः कार्मणकार्मणान्ताः सदृशद्विसंयोगाः पञ्च पुनरुक्ता इति त्यक्त्वा शेषदशसु त्रिनवत्यां निक्षिप्तासु त्र्युत्तरं शतं नामकर्मोत्तरप्रकृतयो भवन्ति ।

शरीरबन्धननाम पञ्चविधं-औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरबन्धननामेति । शरीरसंघातनाम पञ्चविधं-औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंघातनामेति । शरीरसंस्थानं नाम षड्विधं-समचतुरस्र-संस्थान नाम न्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्जवामनहुण्डशरीरसंस्थाननाम चेति । शरीराङ्गोपाङ्गनाम त्रिविधं—औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गनामेति ॥२७॥

पन्द्रह भेद होते हैं। इनमें औदारिकऔदारिक आदि कार्मणकार्मणपर्यन्त समान दो संयोगी पाँच भेद पुनरुक्त हैं इनको छोड़कर शेष दस भेद तिरानबेमें जोड़नेपर नामकर्मकी उत्तर-प्रकृतियाँ १०३ (एक सौ तीन) होती हैं। शरीरबन्धननामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीर-बन्धननाम, वैक्रियिक शरीरबन्धननाम, आहारक शरीरबन्धननाम, तैजस शरीर बन्धन-नाम, कार्मण शरीरबन्धननाम। शरीर संघात नामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीर संघात नाम, वैक्रियिक शरीर संघात नाम, आहारक शरीरसंघातनाम, तैजस शरीर संघात नाम, कार्मण शरीर संघात नाम। शरीर संस्थान नामके छह भेद हैं—समचतुरस्रसंस्थान-नाम, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नाम, स्वातिसंस्थान नाम, कुब्जसंस्थान नाम, वामन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरांगोपांगनामकर्म्मं त्रिविधमक्कुमौदारिकवैक्रियिकाहारशरीरांगोपांगनामकर्म्मंमें दिन्तु ॥

णलया बाहू य तहा णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य ।
अट्ठेव दु अंगाइं देहे सेसा उवंगाइं ॥२८॥

नलकौ बाहू च तथा नितंबपृष्ठे उरश्च शीर्षं च । अष्टैव त्वंगानि देहे शेषाण्युपांगानि ।

एरडुं कालगळुमेरडुं कैगळुमों दु नितंबमुमों दपरभागमुमों दुरस्सु मों दु शीर्षंमुमें बिवें टंगंगळप्पुवु । उळिदवेल्लं देहदोळुपांगंगळप्पुवु । संहनननामकर्म्मं षड्विधमक्कुं । वज्रवृषभनाराचशरीरसंहनननामकर्म्मंमें दुं वज्रनाराच नाराचार्द्धनाराच कीलितासंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननामकर्म्ममुमें दितु ॥

सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति ।
तत्तो दु जुगलजुगले खीलियणारायणद्धोत्ति ॥२९॥

सृपाटिकया च गम्यते आदितश्चतुर्षु कल्पयुगळपर्य्यंतं । ततो द्वि युगळयुगळे कीलितनाराचनार्द्धं पर्य्यंतं ॥

सृपाटिकासंहननदिंदं सौधर्म्मकल्पयुगलं मोदल्गों डु लांतवयुगलपर्य्यंतं नाल्कु युगलंगळोळ्पुट्टल्पडुगुं । ततो द्वियुगळयुगळे मेले शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारमें बी द्वियुगळदोळं आनतप्राणत आरण अच्युतमें बी द्वियुगळदोळं क्रमदिदं कीलितार्द्धनाराचसंहननंगळिदं पुट्टल्पडुगुं ॥

णवगेवेज्जाणुद्दिसणुत्तरवासीसु जांति ते णियमा ।
तिदुगेगे संघडणे णारायणमादिगे कमसो ॥३०॥

नवग्रैवेयकानुदिशानुत्तरवासिषु यांति ते नियमात् । त्रिद्विकैके संहनने नाराचनादिके क्रमशः ॥

नलकौ पादौ तथा बाहू हस्तौ नितम्बः परभागः उरः शीर्षं चेत्यष्टैवाङ्गानि । शेषाणि देहे उपाङ्गानि भवन्ति । संहनननाम षड्विधं वज्रर्षभनाराचशरीरसंहनननाम वज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितासंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनननाम चेति ॥२८॥

सृपाटिकासंहननेन सौधर्मद्वयाल्लान्तवद्वयपर्यंतं चतुर्षु युगलेषु उत्पद्यते । तत उपरि युग्मद्वये युग्मद्वये क्रमेण कीलितार्धनाराचसंहननाभ्यामुत्पद्यते ॥२९॥

संस्थान नाम, हुण्ड शरीर संस्थान नाम । शरीरांगपांग नामके तीन भेद हैं—औदारिकशरीरांगोपांग, वैक्रियिक शरीरांगोपांग नाम, आहारकशरीरांगोपांग नाम ॥२७॥

शरीरमें दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, उर, सिर ये आठ अंग हैं । शेष उपांग होते हैं । संहनन नामके छह भेद हैं—वज्रर्षभनाराचशरीर संहनन नाम, वज्रनाराचशरीरसंहनननाम, नाराचशरीरसंहनननाम, अर्धनाराचशरीरसंहनननाम, कीलितशरीरसंहनन नाम, असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नाम ॥२८॥

सृपाटिकासंहननसे जीव मरकर सौधर्मयुगलसे लान्तवयुगल पर्यन्त चार युगलोंमें उत्पन्न होता है । उससे ऊपर दो युगलों शतारयुगलपर्यन्त कीलितसंहननसे मरकर उत्पन्न होता है, उसके ऊपर दो युगलोंमें आरणअच्युतपर्यन्त अर्धनाराचसंहननसे मरकर उत्पन्न होता है ॥२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवग्रैवेयकमुं नवानुदिशमुं पंचानुत्तरमुम बी विमानवासिगळोळु क्रमदिदं यांति पुट्टुवरु। ते अवर्गळु। अवर्गळदवरारॆंदोडे नाराचनादिकें त्रिद्विकैकसंहनने नाराचवज्रनाराचवज्रवृषभनाराचमेंब त्रिसंहननदवर्गळं। वज्रनाराचवज्रवृषभनाराचसंहननद्वितयदवर्गळु वज्रवृषभनाराचसंहननमोंदनुळ्ळवर्गळुं क्रमदिदं पुट्टुवरु॥

सण्णी छस्संघडणो वज्जदि मेघं तदो परं चावि।
सेवट्टादीरहिदो पणपणचदुरेगसंघडणो॥३१॥

संज्ञी षट्संहननो व्रजति मेघां ततः परं चापि। सृपाटिकादिरहितः पंचपंचचतुरेकसंहननः॥

संज्ञिजीवं षट्संहननयुतनु मेघां व्रजति मेघेयं तृतीयपृथ्वियं पुगुगुं। तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतं पुट्टुगुमॆंबुदर्थं। ततः परं चापि अल्लिद मुंदेयुमा संज्ञिजीवं सृपाटिकासंहननादिरहितं कीलितसंहननपर्य्यंतमादैदुं संहननंगळिदमरिष्टे पर्य्यंतमादैदुं पृथ्विगळोळुपुट्टुगुं। अर्द्धनाराचपर्य्यंतमाद नाल्कुं संहननंगळनुळ्ळ संज्ञिजीवं मघविपर्य्यंतमादारुं पृथ्विगळोळुपुट्टुगुं। वज्रवृषभनाराचसंहननयुतं संज्ञिजीवं माघविपर्य्यंतमादेळुं पृथ्विगळोळुपुट्टुगुं।

५	१	घ। ६
९	२	वं। ६
९	३	मे। ६
११	४	अं। ५
११	४	अ। ५
१।०	५	म। ४
१।०	५	मा। १
०।१	६	
०।१	६	
०।१	६	
१।१	६	

नाराचादिना संहननत्रयेण वज्रनाराचादिना द्वयेन वज्रर्षभनाराचैकेन चोपलक्षिताः ते जीवाः क्रमशः नवग्रैवेयकनवानुदिशपञ्चानुत्तरविमानवासिषु उत्पद्यन्ते॥३०॥

संज्ञी जीवः षट्संहननः मेघां व्रजति—तृतीयपृथ्वीपर्यन्तमुत्पद्यते इत्यर्थः। ततः परं चापि सृपाटिकादिरहितः कीलितान्तपञ्चसंहननः अरिष्टान्तपञ्चपृथिवीषु उत्पद्यते। अर्धनाराचान्तचतुःसंहननः मघव्यन्तषट्पृथ्वीषु उत्पद्यते। वज्रर्षभनाराचसंहननः माघव्यन्तसप्तपृथ्वीषु उत्पद्यते॥३१॥

नाराच आदि तीन संहननोंसे मरे जीव नौग्रैवेयकपर्यन्त उत्पन्न होते हैं। वज्रनाराच आदि दो संहननोंसे मरे जीव नौ अनुदिशोंपर्यन्त उत्पन्न होते हैं। तथा वज्रर्षभनाराचसे मरे जीव पाँच अनुत्तर विमानवासी देवपर्यन्त उत्पन्न होते हैं॥३०॥

छह संहननसे युक्त संज्ञी जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न हो तो मेघा नामक तीसरी पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है। सृपाटिका रहित कीलित पर्यन्त संहननवाला जीव मरकर अरिष्टा नामक पाँचवीं पृथ्वीपर्यन्त उत्पन्न होता है। अर्धनाराचपर्यन्त चार संहननवाला जीव मघवी नामक छठी पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है। एक वज्रर्षभनाराच संहननका धारी जीव माघवी नामकी सातवीं पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है॥३१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिमतिगसंघडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं ।
आदिमतिगसंघडणं णत्थित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३२॥

अन्त्यत्रयसंहननस्योदयः पुनः कर्म्मभूमिमहिलानां । आद्यत्रयसंहननस्योदयो नास्तीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥

कर्म्मभूमिसंजातमहिलाजनंगळ्गे अर्द्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननमें ब संहननत्रितयोदयमल्लदुळिदाद्यसंहननत्रितयोदयमिल्लें दु जिनस्वामिगळिदं पेळल्पट्टुदु ॥

वर्णनामकर्म्मं पंचविधमक्कुं कृष्ण नीलरुधिरपीतशुक्लवर्णनामकर्म्ममें दितु । गंधनामकर्म्मं द्विविधमक्कुं सुगंधदुर्गंधनामकर्म्ममें दितु ।

रसनाकर्म्मं पंचविधमक्कुं तिक्तकटुकषायाम्लमधुरनामकर्म्ममें दितु ॥ स्पर्शनामकर्म्ममष्टविधमक्कुं कर्क्कश गुरु मृदु लघु रूक्षस्निग्धशीतोष्णस्पर्शनामकर्म्ममें दितु । आनुपूर्व्वीनामकर्म्मं चतुर्व्विधमक्कुं नरकतिर्य्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्विनामकर्म्ममें दितु मनुष्यदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्विनामकर्म्ममुमें दितु ॥

अगुरुकलघुक उपघातपरघात उच्छ्वास आतप उद्योतनामकर्म्ममें दुं । विहायोगतिनामकर्म्मं द्विविधमक्कुं प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म्ममें दुं अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म्ममें दितु । त्रस बादरपर्य्याप्त प्रत्येकशरीर स्थिर शुभसुभग सुस्वरआदेययशस्कीर्त्ति निर्म्माण तीर्त्थंकर नामकर्म्ममें दुं । स्थावर सूक्ष्म अपर्य्याप्त साधारणशरीर अस्थिर अशुभ दुर्भगदुःस्वर अनादेय अयशस्कीर्त्ति-

---

कर्मभूमिस्त्रीणां अर्धनाराचाद्यन्त्यत्रिसंहननोदय एव नाद्यसंहननत्रयोऽस्तीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।

वर्णनाम पञ्चविधं–कृष्णनीलरुधिरपीतशुक्लवर्णनामेति । गन्धनाम द्विविधं सुगन्धदुर्गन्धनामेति । रसनाम पञ्चविधं–तिक्तकटुकषायाम्लमधुरनामेति । स्पर्शनामाष्टविधं कर्कशमृदुकगुरुलघुरूक्षस्निग्धशीतोष्णस्पर्शनामेति । आनुपूर्वीनाम चतुर्विधं नरकतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम मनुष्यदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनामेति च । अगुरुकलघुकोपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योतनामेति । विहायोगतिनाम द्विविधं प्रशस्तविहायोगतिनाम अप्रशस्तविहायोगतिनाम चेति । त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकरनामेति । स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीरास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशःकीर्तिनामेति नामकर्मोत्तरप्रकृतयस्त्रिनवति-

---

कर्मभूमिकी स्त्रियोंके अर्धनाराच आदि अन्तिम तीन संहननोंका उदय होता है, आदिके तीन संहनन नहीं होते, ऐसा जिनदेवने कहा है। वर्णनाम पाँच प्रकार है—कृष्ण, नील, लाल, पीत और शुक्ल वर्णनाम। गन्धनाम दो प्रकार है—सुगन्ध और दुर्गन्धनाम। रसनाम पाँच प्रकार है—तीता, कटुक, कषाय, खट्टा और मधुरनाम। स्पर्शनाम आठ प्रकार है—कर्कश, कोमल, गुरु, लघु, रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्णनाम। आनुपूर्वीनाम चार प्रकार है—नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम। अगुरुलघुकनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतपनाम, उद्योतनाम। विहायोगतिनाम दो प्रकार है—प्रशस्तविहायोगतिनाम, अप्रशस्तविहायोगतिनाम। त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, स्थिरनाम, शुभनाम, सुभगनाम, सुस्वरनाम, आदेयनाम, यशस्कीर्तिनाम, निर्माणनाम, तीर्थंकरनाम। स्थावरनाम, सूक्ष्मनाम, अपर्याप्तनाम, साधारणशरीर नाम, अस्थिरनाम, अशुभनाम, दुर्भगनाम, दुःस्वरनाम, अनादेयनाम, अयशःकीर्तिनाम। इस प्रकार नामकर्मकी उत्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामकर्म्ममें दितु नामकर्म्मदुत्तरप्रकृतिगळु तों भत्तमूरुं नूर मूरुं मेणप्पुवु ॥

मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा ।
आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥३३॥

मूलोष्णप्रभोऽग्निः आतपो भवत्युष्णसहितप्रभः । आदित्ये तिरश्चि उष्णोनप्रभः खलूद्योतः ॥

मूलदोळुष्णप्रभेयनुळ्ळुदग्नियक्कुं । उष्णसहितप्रभेयनुळ्ळु दातपमक्कुमदुवुमादित्यबिंबदोळपुट्टिद बादरपर्य्याप्तपृथ्वीकायतिर्य्यंचरोळेयक्कुं । उष्णरहितप्रभेयनुळ्ळुदुद्योतमक्कं स्फुटमागि ॥

गोत्रकर्म्मं द्विविधमक्कुं उच्चनीचगोत्रकर्म्ममें दितु । अंतरायकर्म्मं पंचविधमक्कुं । दान लाभ भोगोपभोगवीर्य्यांतरायकर्म्ममें दितु आत्मप्रदेशस्थितकर्म्मभावयोग्यंगळप्प कार्म्मणवर्गणेगळे अविभागदिदमुपश्लेषं बंधमें दुपेळल्पट्टुदु । भाजनविशेषदोळप्रक्षिप्त विविधरसबीजपुष्पफलंगळगे मदिराभावदिदं परिणाममें तक्कुमंते कार्म्मणपुद्गलंगळगेयुं योगकषायनिमित्तदिदं कर्म्मभावदिदं परिणाममरियल्पडुगुं । ओंदे आत्मपरिणामदिदं कैकोळुत्तिर्द्द पुद्गलंगळु ज्ञानावरणाद्यनेकभेदंगळरियल्पडुवुवेंतोगळु सकृदुपयुक्तान्नमों दक्केये रसरुधिरादिपरिणाममेंतंते ।

यिन्नुत्तरप्रकृतिगळगे निरुक्ति पेळल्पडुगुमदें तें दोडे :—

स्त्र्युत्तरशतं वा भवन्ति ॥३२॥

मूले उष्णप्रभः अग्निः, उष्णसहितप्रभः आतपः स च आदित्यबिम्बोत्पन्नबादरपर्याप्तपृथ्वीकायतिरश्चि भवति । उष्णरहितप्रभः उद्योतः स्फुटम् । गोत्रकर्म द्विविधं उच्चनीचगोत्रभेदात् । अन्तरायकर्म पञ्चविधं–दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायभेदात् । आत्मप्रदेशस्थितानां कर्मभावयोग्यानां कार्मणवर्गणानां अविभागेन उपश्लेषः बन्धः । यथा भाजनविशेषप्रक्षिप्तविविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावः स्यात् तथा कार्मणपुद्गलानां योगकषायनिमित्तेन कर्मभावो ज्ञातव्यः । एकेनैव आत्मपरिणामेन स्वीक्रियमाणपुद्गलाः ज्ञानावरणाद्यनेकभेदाः स्युः सकृदुपयुक्तस्यान्नस्य एकस्यैव रसरुधिरादिपरिणामवत् । इदानीमुत्तरप्रकृतीनां निरुक्तिरुच्यते—

प्रकृतियाँ तिरानबे अथवा एक सौ तीन होती हैं ॥३२॥

जो मूलमें उष्ण हो वह अग्नि है और जिसकी प्रभा उष्ण हो वह आतप है। आतप नाम कर्मका उदय सूर्यके बिम्बमें उत्पन्न बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक तिर्यंचजीवमें होता है। जिसकी प्रभा भी उष्ण न हो वह उद्योत है। गोत्रकर्म दो प्रकार है—उच्चगोत्र, नीचगोत्र। अन्तरायकर्म पाँच प्रकार है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय। आत्माके प्रदेशोंमें स्थित कर्मरूप होनेके योग्य कार्मणवर्गणाओंका भेदरहित सम्बन्ध बन्ध है। जैसे विशेष पात्रमें डाले गये विविध रस, बीज, पुष्प, फलोंका मदिरारूप परिणाम होता है उसी तरह योग और कषायके निमित्तसे कार्मणपुद्गलोंका कर्मरूप परिणाम जानना। एक ही आत्मपरिणामसे ग्रहण किये गये पुद्गल ज्ञानावरण आदि अनेक भेदरूप हो जाते हैं जैसे एक बारमें खाये गये एक ही अन्नका रस रुधिर आदि रूपसे परिणाम होता है। अब उत्तरप्रकृतियोंकी निरुक्ति कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिज्ञानमावृणोत्यावीयतेऽनेनेति मतिज्ञानावरणं। श्रुतज्ञानमावृणोत्यावीयतेऽनेनेति श्रुतज्ञानावरणं। अवधिज्ञानमावृणोत्यावीयतेऽनेनेति अवधिज्ञानावरणं। मनःपर्य्ययज्ञानमावृणोत्यावीयतेऽनेनेति मनःपर्य्ययज्ञानावरणं। केवलज्ञानमावृणोत्यावीयतेऽनेनेति केवलज्ञानावरणमिति यिल्लि चोदिसल्पट्टुदु॥ अभव्यंगे मनःपर्य्ययज्ञानशक्तियुं केवलज्ञानशक्तियुमुंटो मेणिल्लमो एरलानुमुंटप्पोडे तज्जीवक्कभव्यत्वाभावमक्कुमेत्तलानुमिल्लमक्कुमप्पोडे यिल्लि आवरणद्वयकल्पनेव्यर्थमेंदितु। इदक्कुत्तरं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडादेशवचनमप्पुदरिनिल्लि दोष[1]मिल्लेकेंदोडे द्रव्यात्थादेशान्मनःपर्य्ययकेवलज्ञानशक्तिसंभवमप्पुदरिदं। पर्य्यायात्थादेशदत्तणिदं तच्छक्त्यभावमक्कुमेत्तलानुमिलु भव्याभव्यविकल्पसंभविसदिर्द्दोडे उभयदोळं तच्छक्तिसद्भावमागि अक्कुमदुकारणमागि शक्तिभावाभावापेक्षेयिदं भव्याभव्यविकल्पं पेळल्पडदु। मत्तेंतु पेळल्पडुगुमेंदोडे बहिर्व्यक्तिसद्भावासद्भावापेक्षेयिदं सम्यग्दर्शनादिव्यक्ति यावंगे संभविसुगुमा जीवं भव्यनक्कुमावंगे मत्ते तत्सम्यक्त्वाभिव्यक्तियागदा जीवनभव्यनेंदु पेळल्पडुगुं। सुवर्णाधपाषाणगळंते आवृणोत्यावीयतेनेऽनेत्यावरणं। चक्षुर्द्दर्शनावरणमचक्षुर्द्दर्शनावरणमवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणमिति।

स्वप्ने यया वीर्य्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः। स्त्यायतेरनेकात्थत्वात् स्वप्नात्थे इह गृह्यते। गृद्धेरपि दीप्तिर्गृह्यते स्त्याने स्वप्ने गृध्यते दीप्यते यदुदयादातं रौद्रं च बहु च कर्म्मकरणं

मतिज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति मतिज्ञानावरणं। श्रुतज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति श्रुतज्ञानावरणं। अवधिज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति अवधिज्ञानावरणं। मनःपर्ययज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति मनःपर्ययज्ञानावरणं। केवलज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति केवलज्ञानावरणं। ननु अभव्यस्य मनःपर्ययकेवलज्ञानशक्तिरस्ति न वा यद्यस्ति तदा तस्याभव्यत्वं न स्यात्। यदि नास्ति तदा तत्रावरणद्वयकल्पनावैयर्थ्यमिति? तन्न। द्रव्यार्थादेशेन तच्छक्तिसद्भावात् पर्यायार्थादेशेन व्यक्त्यसंभवात्तदुक्तदोषानवकाशात्। अन्धपाषाणे स्वर्णवत्।

आवृणोति आव्रियतेऽनेनेति आवरणं चक्षुर्दर्शनावरणं अचक्षुर्दर्शनावरणं अवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणं चेति। स्वप्ने यया वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः। स्त्यायतेरनेकार्थत्वात् स्वप्नोऽर्थ इह गृह्यते।

जो मतिज्ञानका आवरण करता है या जिससे मतिज्ञान आवृत किया जाता है वह मतिज्ञानावरण है। जो श्रुतज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा श्रुतज्ञान आवृत होता है वह श्रुतज्ञानावरण है। जो अवधिज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा अवधिज्ञान आवृत होता है वह अवधिज्ञानावरण है। जो मनःपर्ययज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा मनःपर्ययज्ञान आवृत होता है वह मनःपर्ययज्ञानावरण है। जो केवलज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा केवलज्ञान आवृत किया जाता है वह केवलज्ञानावरण है।

शंका—अभव्यके मनःपर्यय और केवलज्ञान शक्ति है या नहीं? यदि है तो वह अभव्य नहीं हो सकता। यदि नहीं है तो उसके दो आवरण मानना व्यर्थ है?

समाधान—द्रव्यार्थिक-नयसे अभव्यमें दोनों ज्ञानशक्तियाँ विद्यमान हैं। किन्तु पर्यायार्थिक नयसे उन शक्तियोंकी व्यक्ति असम्भव होनेसे उक्त दोषोंको स्थान नहीं है। जैसे अन्धपाषाणमें द्रव्यदृष्टिसे स्वर्णशक्ति है किन्तु वह व्यक्त नहीं हो सकती। जो आवरण करता है या जिसके द्वारा आवृत किया जाता है वह आवरण है अतः चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण रूपसे चार दर्शनोंके चार दर्शनावरण

---

१. म मिल्लमदेंतेंदोडे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा स्त्यानगृद्धि। इह स्त्यानगृद्ध्यादिभिर्दर्शनावरणं सामानाधिकरण्येनाभिसंबध्यतयितिस्त्यानगृद्धिर्दर्शनावरणमिति। यदुदयान्निद्रायाः उपर्युपरि वृत्तिस्तन्निद्रानिद्रादर्शनावरणं। यदुदयाद्या क्रिया आत्मानं पुनः पुनः प्रचलयति तत्प्रचलाप्रचलादर्शनावरणं। शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका सैव पुनःपुनरावर्त्तमाना प्रचलाप्रचलेत्यर्थः। यदुदयान्मदखेदक्लमव्यपनोदार्थं स्वापस्तन्निद्रादर्शनावरणं। यदुदयाद्या क्रिया आत्मानं प्रचलयति तत्प्रचलादर्शनावरणमिति॥

यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सातं। तद्वेदयति वेद्यत इति सातवेदनीयं यदुदयफलं दुःखमनेकविधं तदसातं। तद्वेदयति वेद्यत इत्यसातवेदनीयमिति॥ दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयमिति मोहनीयं चतुर्विधं। तत्र दर्शनमोहनीयं सम्यक्त्वमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वमिति त्रिविधं। तद्बंधं प्रत्येकविधं सत् उदयसत्कर्मापेक्षया त्रिविधमवतिष्ठते। यस्योदयात्सर्व्वज्ञप्रणीतमार्ग्गपराङ्मुखस्तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुखो हिताहितविचा-

---

गृद्धेरपि दीप्तिर्गृह्यते। स्त्याने-स्वप्ने गृध्यते दीप्यते यदुदयादार्तं रौद्रं च बहु च कर्मकरणं सा स्त्यानगृद्धिः। इह स्त्यानगृद्ध्यादिभिर्दर्शनावरणं सामानाधिकरण्येनाभिसंबध्यते इति स्त्यानगृद्धिर्दर्शनावरणमिति। यदुदयान्निद्राया उपर्युपरि वृत्तिः तन्निद्रानिद्रादर्शनावरणं। यदुदयात् या क्रिया आत्मानं पुनः पुनः प्रचलयति तत्प्रचला प्रचलादर्शनावरणं। शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका [सैव पुनः पुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचलेत्यर्थः]। यदुदयात् मदखेदक्लमव्यपनोदार्थं स्वापः तन्निद्रादर्शनावरणं। यदुदयात् या क्रिया आत्मानं प्रचलयति तत्प्रचलादर्शनावरणमिति।

यदुदयाद्देवादिगतिषु शरीरमानससुखप्राप्तिः तत्सातं; तद्वेदयति वेद्यते इति सातवेदनीयं। यदुदयफलं दुःखमनेकविधं तदसातं तद्वेदयति वेद्यते इत्यसातवेदनीयमिति।

दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयं इति मोहनीयं चतुर्विधं। तत्र दर्शनमोहनीयं सम्यक्त्वं–मिथ्यात्वं–सम्यग्मिथ्यात्वमिति त्रिविधम्। तद्बन्धं प्रति एकविधं सत् तदेव मिथ्यात्वं सत्कर्मा-

---

हैं। सोतेमें जिसके द्वारा शक्ति विशेष प्रकट हो वह स्त्यानगृद्धि है। 'स्त्यायति'के अनेक अर्थ होनेसे यहाँ शयन अर्थ लिया है। और गृद्धिका अर्थ दीप्ति लिया है। अतः 'स्त्यान' यानी शयनमें जिसके उदयसे आत्मा दीप्त होती है, आर्तरौद्ररूप बहु कर्म करती है वह स्त्यानगृद्धि है यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके साथ दर्शनावरणका समान अधिकरण रूपसे सम्बन्ध किया जाता है कि स्त्यानगृद्धि ही दर्शनावरण है। जिसके उदयसे निद्रापर निद्रा आती है वह निद्रा-निद्रादर्शनावरण है। जिसके उदयसे जो क्रिया आत्माको पुनः-पुनः प्रचलित करती है वह प्रचलाप्रचलादर्शनावरण है। यह शोक, मेहनत, नशा आदिसे होती है, बैठे हुए भी मनुष्यके नेत्र और गात्रमें विकारकी सूचक है। इसकी पुनः पुनः आवृति होना प्रचलाप्रचला है। जिसके उदयसे मद, खेद, थकान दूर करनेके लिए सोया जाता है वह निद्रादर्शनावरण है। जिसके उदयसे जो क्रिया आत्माको प्रचलित करती है वह प्रचलादर्शनावरण है। जिसके उदयसे देवादि गतियोंमें शारीरिक और मानसिक सुखकी प्राप्ति हो वह साता है उसका जो वेदन कराता है या जिसके द्वारा उसका वेदन हो वह सातवेदनीय है। जिसके उदयका फल अनेक प्रकारका दुख है वह असाता है उसका जो वेदन कराता है या जिसके द्वारा उसका वेदन हो वह असातवेदनीय है। मोहनीयके चार भेद हैं—दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, कषाय-वेदनीय, नोकषायवेदनीय। दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वं। तदेव मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदौदासिन्येनाऽवस्थितमात्मानं श्रद्धधानं न निरुणद्धि तद्वेदयमानः सन् पुरुषः सम्यग्दृष्टिरभिधीयते। तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात् क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रवत्सामिषच्छुद्धस्वरसं स्वशक्तियुतं तदुभयमित्याख्यायते सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत्। यस्योदयादात्मनोऽशुद्धशुद्धमदकोद्रवौदनोपयोगापादितमिश्रपरिणामवदुभयात्मको भवति परिणाम इति॥

चारित्रमोहनीयं द्विविधं चरति चर्य्यते अनेन चरणमात्रं वा चारित्रं। तन्मोहयति मुह्यतेऽनेनेति चारित्रमोहनीयं। तद्द्विविधं कषायवेदनीय-नोकषायवेदनीयभेदात्। कषंति हिंसंतीति कषायाः। ईषत्कषायाः नोकषायाः इति। तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधं। कुतोऽनंतानुबंध्यादिविकल्पात्। तद्यथा कषायाः क्रोधमानमायालोभाः। तेषां चतस्रोऽवस्थाः अनंतानुबंधिनः अप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति॥

तत्रानन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यात्वमनन्तं। तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमाया-

---

पेक्षया त्रिविधमवतिष्ठते। यस्योदयात् सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखः तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम्। तदेव मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धरसं यदा औदासीन्येनावस्थितमात्मानं श्रद्धानं न निरुणद्धि तद्वेदयमानः सन् पुरुषः सम्यग्दृष्टिरभिधीयते। तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात् क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रववत्समीषच्छुद्धरसं स्वशक्तियुतं तदुभयमित्याख्यायते-सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत्। यस्योदयात् आत्मनः अशुद्धशुद्धमदकोद्रवौदनोपयोगापादितमिश्रपरिणामवदुभयात्मको भवति।

चारित्रमोहनीयं द्विविधं चरति चर्यतेऽनेनेति चरणमात्रं वा चारित्रं तन्मोहयति मुह्यतेऽनेनेति चारित्रमोहनीयम्। तद्द्विविधं कषायवेदनीयनोकषायवेदनीयभेदात्। कषन्ति हिंसन्ति कषायाः। ईषत्कषाया नोकषाया इति। तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधम्। कुतः? अनन्तानुबन्ध्यादिविकल्पात्। तद्यथा—कषायाः क्रोधमानमायालोभाः, तेषां चतस्रोऽवस्थाः अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति। तत्र अनन्तसंसार-

---

मिथ्यात्व। यह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकार होनेपर भी उदय और सत्ताकी अपेक्षा तीन प्रकार है। जिसके उदयसे सर्वज्ञकथित मार्गसे विमुख, तत्त्वार्थश्रद्धानके प्रति उत्सुकतारहित, तथा हित-अहितके विचारमें असमर्थ मिथ्यादृष्टि होता है वह मिथ्यात्व है। वही मिथ्यात्व जब शुभ परिणामके द्वारा उसका रस रोक दिया जाता है और उदासीनतासे अवस्थित हो आत्माके श्रद्धानको नहीं रोकता तो वह सम्यक्त्व कहलाता है। उसका वेदन करनेवाला मनुष्य वेदकसम्यग्दृष्टि कहलाता है। जैसे धोनेसे कोदोंकी मदशक्ति कुछ क्षीण और कुछ अक्षीण होती है उसी तरह मिथ्यात्वकी कुछ शक्ति शुद्ध हो और कुछ बनी रहे तब उसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं। उसके उदयसे आत्माके कुछ शुद्ध कुछ अशुद्ध कोदोंके भातके खानेपर होनेवाले मिश्रपरिणामकी तरह उभयरूप परिणाम होते हैं। जो आचरण करता है या जिसके द्वारा आचरण किया जाता है या आचरण मात्र चारित्र है। उसे जो मोहित करता है या जिसके द्वारा वह मोहित किया जाता है वह चारित्रमोहनीय है। उसके दो भेद हैं—कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। जो कषति अर्थात् हिंसा करती है वह कषाय है। ईषत् कषाय नोकषाय है। उनमें-से कषायवेदनीयके सोलह भेद हैं। वह इस प्रकार हैं—कषाय क्रोध मान माया लोभ हैं। उनकी चार अवस्थाएँ हैं—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन।

लोभाः। यदुदयाद्देशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति तदप्रत्याख्यानावरणम्। तद्भेदाः क्रोधमानमायालोभाः। प्रत्याख्यानं सकलसंयमस्तमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः। संशब्दः एकीभावे वर्तते संयमेन सहावस्थानात् एकीभूय ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः। त एते समुदिताः षोडश कषाया भवन्ति। ईषत्कषायाः नोकषायास्तान् वेदयन्ति वेद्यन्ते एभिरिति नोकषायवेदनीयानि नवविधानि। तत्र यस्योदयाद्धास्याविर्भावस्तद्धास्यम्। यदुदयाद्देशादिषु औत्सुक्यं सा रतिः। अरतिस्तद्विपरीतेत्यर्थः॥ यद्विपाकात् शोचनं स शोकः। यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम्॥ यदुदयादात्मदोषसंवरणं परदोषस्य धारणं सा जुगुप्सा॥ यदुदयात्स्त्रैणान्भावान् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः॥ यस्योदयात्पौंस्नान् भावानास्कंदति स पुंवेदः॥ यदुदयान्नापुंसकान् भावानुपव्रजति स नपुंसकवेदः। नरकादि भवधारणाय एतीत्यायुः। तन्नारकादिभेदाच्चतुर्विधम्। तत्र नरकादिषु भवसंबन्धेनायुषो व्यपदेशः क्रियते। वा नरकेषु भवं नारकमायुः। तिर्यग्योनिषु भवं तैर्यग्योनम्। मनुष्येषु भवं मानुष्यं देवेषु भवं दैवमिति॥

कारणत्वात् मिथ्यात्वमनन्तं तदनुबन्धिनः—अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः। यदुदयात् देशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति तदप्रत्याख्यानावरणं तद्भेदाः क्रोधमानमायालोभाः। प्रत्याख्यानं सकलसंयमः तमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः! सम् शब्दः, एकीभावे वर्तते संयमेन सहावस्थानात् एकीभूत्वा ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलति एषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः त एते समुदिताः षोडश कषाया भवन्ति।

ईषत्कषाया नोकषायाः तान् वेदयन्ति वेद्यन्ते एभिरिति नोकषायवेदनीयानि नवविधानि। तत्र यस्योदयात् हास्याविर्भावः तद्धास्यम्। यदुदयाद्देशादिषु औत्सुक्यं सा रतिः। अरतिस्तद्विपरीता। यद्विपाकात् शोचनं स शोकः। यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम्। यदुदयात् आत्मदोषसंवरणं अन्यदोषस्य धारणं सा जुगुप्सा। यदुदयात् स्त्रैणान् भावान् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः। यस्योदयात् पौंस्नान् भावान् आस्कन्दति स पुंवेदः। यदुदयात् नापुंसकान् भावान् उपव्रजति स नपुंसकवेदः।

नारकादिभवधारणाय एतीत्यायुः तन्नारकादिभेदाच्चतुर्विधम्। तत्र नरकादिषु भवसंबन्धेन आयुषो

अनन्त संसारका कारण होनेसे मिथ्यात्वको अनन्त कहते हैं उसके बाँधनेवाले अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ हैं। जिसके उदयसे संयमासंयम नामक देशविरतिको थोड़ा सा भी करनेमें असमर्थ होता है वह अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ है। प्रत्याख्यान कहते हैं सकलसंयमको। उसे जो आवरण करती हैं वे प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ हैं। 'सम्' शब्दका अर्थ एकीभाव है। संयमके साथ एकमेक रूपसे रहकर जो ज्वलित हों अथवा जिनके रहते हुए भी संयम ज्वलित हो वे संज्वलन क्रोध मान माया लोभ हैं। ये सब मिलकर सोलह कषाय हैं। ईषत् कषायको नोकषाय कहते हैं। उनका जो वेदन कराते हैं या जिनके द्वारा उनका वेदन हो वे नोकषायवेदनीय नौ भेदरूप हैं। उनमें-से जिसके उदयसे हास्य प्रकट हो वह हास्यवेदनीय है। जिसके उदयसे देशादिमें उत्सुकता हो वह रति है। उससे विपरीत अरति है। जिसके उदयसे शोक हो वह शोक है। जिसके उदयसे उद्वेग हो वह भय है। जिसके उदयसे अपने दोषोंको ढाँके और दूसरोंके दोष प्रकट करे वह जुगुप्सा है। जिसके उदयसे स्त्रियों जैसे भाव हों वह स्त्रीवेद है। जिसके उदयसे पुरुषों जैसे भाव हों वह पुरुषवेद है। जिसके उदयसे नपुंसक भाव हों वह नपुंसकवेद है। नारक आदि भव धारणके लिए गमन करना आयु है। उसके चार भेद हैं। नरक आदिमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु दीर्घजीवनं नारकमायुरित्येवं शेषेष्वपि ॥

पिण्डापिण्डभेदाद्द्विचत्वारिंशद्विधं नाम । तत्र यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः । सा चतुर्व्विधा । नरकगतिः तिर्य्यग्गतिर्म्मनुष्यगतिर्देवगतिरिति । तत्र यन्निमित्तमात्मनो नारकपर्य्यायस्तन्नारकगति नाम । यन्निमित्तमात्मनस्तिर्य्यग्भावस्तत्तिर्य्यग्गतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो मनुष्यपर्य्यायस्तन्मनुष्यगतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो देवपर्य्यायस्तद्देवगतिनाम । तासु नरकादिष्वव्यभिचारिणा सादृश्येनैकीकृतार्त्थात्मा जातिस्तन्निमित्तं जातिनाम । तत्पञ्चविधं एकेंद्रियजातिनाम द्वींद्रियजातिनाम त्रींद्रियजातिनाम चतुरिंद्रियजातिनाम पंचेंद्रियजातिनाम चेति । यदुदयादात्मा एकेंद्रिय इति शब्द्यते तदेकेंद्रियजातिनाम । यदुदयादात्मा द्वींद्रिय इति चोच्यते तद्द्वींद्रियजातिनाम । यदुदयफलं त्रींद्रियत्वं तत्त्रींद्रियजातिनाम । यस्योदयाज्जीवश्चतुरिंद्रिय इति वर्ण्यते तच्चतुरिंद्रियजातिनाम । यदुदयादात्मा पंचेंद्रिय इति चोच्यते तत्पंचेंद्रियजातिनाम ॥ यदुदयादात्मनः

व्यपदेशः क्रियते, वा नरकेषु भवं नारकमायुः । तिर्यग्योनिषु भवं तैर्यग्योनम् । मनुष्ययोनिषु भवं मानुष्यम् । देवेषु भवं दैवमिति । नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु दीर्घजीवनं नारकमायुरित्येवं शेषेष्वपि ।

पिण्डापिण्डभेदाद्द्विचत्वारिंशद्विधं नाम । तत्र यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः । सा चतुर्विधा—नरकगतिः तिर्यग्गतिः मनुष्यगतिः देवगतिरिति । तत्र यन्निमित्तमात्मनो नारकपर्यायः तन्नारकगतिनाम । यन्निमित्तं आत्मनः तिर्यग्भवः तत्तिर्यग्गतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो मनुष्यपर्यायस्तन्मनुष्यगतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो देवपर्यायः तद्देवगतिनाम ।

तासु नरकादिगतिषु अव्यभिचारिणा सादृश्येन एकीकृतार्थात्मा जातिः तन्निमित्तं जातिनाम । तत्पञ्चविधं एकेन्द्रियजातिनाम द्वीन्द्रियजातिनाम त्रीन्द्रियजातिनाम चतुरिन्द्रियजातिनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम चेति । यदुदयात् आत्मा एकेन्द्रिय इति शब्द्यते तदेकेन्द्रियजातिनाम । यदुदयात् आत्मा द्वीन्द्रिय इत्युच्यते तद्द्वीन्द्रियजातिनाम । यदुदयफलं त्रीन्द्रियत्वं तत्त्रीन्द्रियजातिनाम । यस्योदयाज्जीवश्चतुरिन्द्रिय इति वर्ण्यते तच्चतुरिन्द्रियजातिनाम । यदुदयात् आत्मा पञ्चेन्द्रिय इत्युच्यते तत् पञ्चेन्द्रियजातिनाम ।

भवके सम्बन्धसे आयुका व्यवहार किया जाता है। नरकमें होनेवाली नारकायु है, तिर्यंचयोनिमें होनेवाली तिर्यंचायु है। मनुष्ययोनिमें होनेवाली मनुष्यायु है। देवोंमें होनेवाली देवायु है। तीव्र शीत-उष्णकी वेदनावाले नरकोंमें दीर्घकाल तक जीना नरकायु है। इसी तरह शेषमें भी जानना।

पिण्ड और अपिण्डके भेदसे नामकर्मके बयालीस भेद हैं। जिसके उदयसे आत्मा भवान्तरमें जाता है वह गति है। उसके चार भेद हैं—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति। जिसके निमित्तसे आत्माकी नारकपर्याय हो वह नरकगति नाम है। जिसके निमित्तसे आत्माकी तिर्यंचपर्याय हो वह तिर्यग्गतिनाम है। जिसके निमित्तसे आत्माकी मनुष्य पर्याय हो वह मनुष्यगतिनाम है। जिसके निमित्तसे आत्माकी देवपर्याय हो वह देवगतिनाम है। इन नरकादि गतियोंमें अव्यभिचारी समानतासे एकरूप किये गये जीव जाति हैं। उसमें निमित्त जातिनाम है। उसके पाँच भेद हैं—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रिय जातिनाम, चतुरिन्द्रिय जातिनाम, पंचेन्द्रियजातिनाम। जिसके उदयसे आत्मा एकेन्द्रिय कहा जाये वह एकेन्द्रिय जातिनाम है। जिसके उदयसे आत्मा द्वीन्द्रिय कहा जाये वह द्वीन्द्रिय जातिनाम है। जिसके उदयका फल त्रीन्द्रियपना है वह त्रीन्द्रियजातिनाम है। जिसके उदयसे जीव चतुरिन्द्रिय कहा जाता है वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरनिर्वृत्तिस्तच्छरीरनाम। तत्पंचविधं औदारिकशरीरनाम, वैक्रियिकशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्म्मणशरीरनाम चेति ॥ यदुदयादात्मनः औदारिकशरीरनिर्वृत्तिस्तदौदारिकशरीरनाम। यदुदयाद्वैक्रियिकशरीरनिर्वृत्तिस्तद्वैक्रियिकशरीरनाम। यदुदयादाहारकशरीरनिर्वृत्तिस्तदाहारकशरीरनाम। यस्योदयात्तैजसशरीरनिर्वृत्तिस्तत्तैजसशरीरनाम। यदुदयादात्मनः कार्म्मणशरीरनिर्वृत्तिस्तत्कार्म्मणशरीरनाम ॥

शरीरनामकर्म्मोदयवशादुपात्तानामाहारवर्ग्गणायातपुद्गलस्कंधानामन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्बन्धननाम। यदुदयादौदारिकादिशरीराणां विवरविरहितानामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम। यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम। तत् षोढा विभज्यते। समचतुरस्रसंस्थाननाम न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननाम स्वातिसंस्थाननाम कुब्जसंस्थाननाम वामनसंस्थाननाम हुंडसंस्थाननाम चेति ॥

यदुदयादात्मनः शरीरनिर्वृत्तिः तच्छरीरनाम। तत्पञ्चविधं औदारिकशरीरनाम—वैक्रियिकशरीरनाम—आहारकशरीरनाम—तैजसशरीरनाम—कार्मणशरीरनाम चेति। यदुदयादात्मनः औदारिकशरीरनिर्वृत्तिः तदौदारिकशरीरनाम। यदुदयाद्वैक्रियिकशरीरनिर्वृत्तिः तद्वैक्रियिकशरीरनाम। यदुदयादाहारकशरीरनिर्वृत्तिस्तदाहारकशरीरनाम। यस्योदयात्तैजसशरीरनिर्वृत्तिः तत्तैजसशरीरनाम। यदुदयादात्मनः कार्मणशरीरनिर्वृत्तिः तत्कार्मणशरीरनाम।

शरीरनामकर्मोदयवशात् उपात्तानामाहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां अन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्बन्धनं नाम।

यदुदयात् औदारिकादिशरीराणां विवरविरहितानामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम।

यदुदयात् औदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम। तत् षोढा विभज्यते—समचतुरस्रसंस्थाननाम न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम स्वातिसंस्थाननाम कुब्जसंस्थाननाम वामनसंस्थाननाम हुण्डकसंस्थाननाम चेति।

चतुरिन्द्रियजातिनाम है। जिसके उदयसे आत्मा पंचेन्द्रिय कहा जाता है वह पंचेन्द्रियजातिनाम है। जिसके उदयसे आत्माके शरीरकी रचना होती है वह शरीरनाम है। उसके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीरनाम, वैक्रियिक शरीरनाम, आहारक शरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम। जिसके उदयसे आत्माके औदारिक शरीर बनता है वह औदारिक शरीरनाम है। जिसके उदयसे वैक्रियिक शरीरकी रचना होती है वह वैक्रियिक शरीरनाम है। जिसके उदयसे आहारक शरीरकी रचना होती है वह आहारक शरीरनाम है। जिसके उदयसे तैजस शरीरकी रचना होती है वह तैजस शरीरनाम है। जिसके उदयसे आत्माके कार्मणशरीरकी रचना होती है वह कार्मणशरीरनाम है। शरीर नामकर्मके उदयके वश ग्रहण किये गये आहारवर्गणाके रूपमें आये पुद्गलस्कन्धोंका परस्परमें प्रदेशोंका सम्बन्ध जिससे होता है वह बन्धननाम है। जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका छिद्ररहित परस्परमें प्रदेशोंके प्रवेशसे एकरूपता होती है वह संघातनाम है। जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका आकार बनता है वह संस्थान नाम है। उसके छह भेद हैं—समचतुरस्र संस्थान नाम, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नाम, स्वातिसंस्थान नाम, कुब्जसंस्थान नाम, वामन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदुदयादंगोपांगविवेकस्तदंगोपांगनाम। तत्त्रिविधमौदारिकशरीरांगोपांगनाम वैक्रियिकशरीरांगोपांग नाम आहारकशरीरांगोपांगनाम चेति ॥ यस्योदयादस्थिबंधनविशेषो भवति तत्संहनननाम। षड्विधं तत्। वज्रवृषभनाराचसंहनननाम वज्रनाराचसंहनननाम नाराचसंहनननाम अर्द्धनाराचसंहनननाम कीलितसंहनननाम असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननाम चेति। संहननमस्थिसंचयः। ऋषभो वेष्टनं। वज्रवदभेद्यत्वाद्वज्रऋषभः वज्रवन्नाराचो वज्रनाराचस्तौ द्वावपि यस्मिन्वज्रशरीरे संहनने तद्वज्रऋषभनाराचशरीरसंहनननाम। एष एव वज्रास्थिबंधो वज्रऋषभवर्जितः सामान्यऋषभवेष्टितो यस्योदयेन भवति तद्वज्रनाराचशरीरसंहनननाम। यस्य कर्म्मण उदयेन वज्रविशेषेण रहितनाराचकीलिताः अस्थिसंधयो भवन्ति तन्नाराचशरीरसंहनननाम। यस्य कर्म्मण उदयेनास्थिसंधयो नाराचेनार्द्धकीलिता भवन्ति तदर्द्धनाराचशरीरसंहनननाम। यस्योदयादवज्रास्थीनि कीलितानीव भवन्ति तत्कीलितशरीरसंहनननाम। यस्योदयेनान्योन्यासंप्राप्तानि शरीरसृपसंहननवत् शिराबंधान्यस्थीनि भवन्ति तदसंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननाम ॥

यदुदयादङ्गोपाङ्गविवेकस्तदङ्गोपाङ्गनाम। तत् त्रिविधं औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम आहारकशरीराङ्गोपाङ्गनाम चेति।

यस्योदयादस्थिबन्धनविशेषो भवति तत्संहनननाम। तत् षड्विधं–वज्रर्षभनाराचसंहनननाम। वज्रनाराचसंहनननाम। नाराचसंहनननाम। अर्धनाराचसंहनननाम। कीलितसंहनननाम। असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननाम। संहननम् अस्थिसंचयः। ऋषभो वेष्टनं वज्रवदभेद्यत्वात् वज्रर्षभः। वज्रवन्नाराचो वज्रनाराचः तौ द्वावपि यस्मिन् वज्रशरीरे संहनने तत् वज्रर्षभनाराचसंहनननाम। एष एव वज्रास्थिबन्धः वज्रर्षभवर्जितः सामान्यर्षभवेष्टितः यस्योदयेन भवति तद्वज्रनाराचशरीरसंहनननाम। यस्य कर्मण उदयेन वज्रविशेषणेन रहितनाराचकीलिता अस्थिसंधयो भवन्ति तन्नाराचशरीरसंहनननाम। यस्य कर्मण उदयेन अस्थिसंधयो नाराचेनार्धकीलिता भवन्ति तदर्धनाराचशरीरसंहनननाम। यस्योदयादवज्रास्थीनि कीलितानि भवन्ति तत्कीलितशरीरसंहनननाम। यस्योदयेन अन्योन्यासंप्राप्तानि शरीरसृपसंहननवत्सिराबन्धानि अस्थीनि भवन्ति तदसंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननाम।

संस्थान नाम और हुण्डकसंस्थान नाम। जिसके उदयसे अस्थियोंका बन्धनविशेष होता है वह संहनननाम है। उसके छह भेद हैं—वज्रर्षभनाराचसंहनन नाम, वज्रनाराचसंहनन नाम, नाराचसंहनन नाम, अर्धनाराच संहनननाम, कीलितसंहनन नाम, असंप्राप्तसृपाटिका-संहनन नाम। संहनन अस्थियोंके संचयको कहते हैं। ऋषभका अर्थ वेष्टन है। नाराच कीलको कहते हैं। वज्रके समान अभेद्य ऋषभ होनेसे वज्रर्षभ कहलाता है। और वज्रके समान नाराचको वज्रनाराच कहते हैं। जिस वज्रसंहनन शरीरमें ऋषभ नाराच दोनों वज्रवत् हो उसे वज्रर्षभनाराच संहनन नाम कहते हैं। यही वज्ररूप अस्थिबन्ध वज्रवत् वेष्टनके बिना सामान्य वेष्टनसे वेष्टित जिस कर्मके उदयसे होता है वह वज्रनाराच शरीर-संहनन नाम है। जिस कर्मके उदयसे वज्रविशेषणसे रहित और नाराचसे कीलित अस्थियों-की सन्धियाँ होती हैं वह नाराच शरीरसंहनन नाम है। जिस कर्मके उदयसे अस्थियोंके जोड़ नाराचसे अर्धकीलित होते हैं वह अर्धनाराचशरीर संहनन नाम है। जिसके उदयसे अस्थियाँ परस्परमें कीलित होती हैं वह कीलितशरीर संहनन नाम है। जिसके उदयसे अस्थियाँ परस्परमें प्राप्त न होकर सरीसृपकी शरीरकी तरह सिराओंसे बँधी होती हैं वह असंप्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन नाम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्धेतुको वर्णविकारस्तद्वर्णनाम। तत्पंचविधं कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम रक्तवर्णनाम हारिद्रवर्णनाम शुक्लवर्णनाम चेति॥ यदुदयात्प्रभवो गंधस्तद्गंधनाम। तद् द्विविधं सुरभिगंधनाम असुरभिगन्धनाम चेति॥ यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम। तत्पंचविधं तिक्तनाम कटुकनाम कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम चेति। यस्योदयात् स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शनाम। तदष्टविधं कर्कशनाम मृदुनाम गुरुनाम लघुनाम शीतनाम उष्णनाम स्निग्धनाम रूक्षनाम चेति॥ पूर्व्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्व्यनाम तच्चतुर्व्विधं नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्व्यनाम तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्व्यनाम मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्व्यनाम देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्व्यनाम चेति।

यस्योदयादयस्पिण्डवद्गुरुत्वान्न च पतति न चार्क्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम। उपेत्य घात इत्युपघातः आत्मघात इत्यर्थः। यस्योदयादात्मघातावयवा महाश्रृंगलंबस्तनतुंदोदरादयो भवन्ति तदुपघातनाम। परेषां घातः परघातः। यदुदयात्तीक्ष्णश्रृंगनखसर्प्पदाढादयो भवन्त्यवयवास्तत्परघातनाम। यद्धेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम। यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातप-

---

यद्धेतुको वर्णविकारः तद्वर्णनाम। तत्पञ्चविधं–कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम रक्तवर्णनाम हरिद्रवर्णनाम शुक्लवर्णनाम चेति। यदुदयात्प्रभवो गन्धः तद्गन्धनाम। तद्द्विविधं सुरभिगन्धनाम असुरभिगन्धनाम चेति। यन्निमित्तो रसविकल्पः तद्रसनाम। तत्पञ्चविधं–तिक्तनाम-कटुकनाम-कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम चेति। यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावः तत्स्पर्शनाम। तदष्टविधं—कर्कशनाम मृदुनाम गुरुनाम लघुनाम शीतनाम उष्णनाम स्निग्धनाम रूक्षनाम चेति।

पूर्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम। तच्चतुर्विधं-नरकगतिप्रयोग्यानुपूर्व्यनाम तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चेति।

यस्योदयादयःपिण्डवत् गुरुत्वान्न च पतति न चार्कतूलवत् लघुत्वादूर्ध्वम् गच्छति तदगुरुलघुनाम। उपेत्य घात इत्युपघात आत्मघात इत्यर्थः। यस्योदयादात्मघातावयवाः महाश्रृङ्गलम्बस्तनतुन्दोदरादयो भवन्ति तदुपघातनाम। परेषां घातः परघातः यदुदयात्तीक्ष्णश्रृङ्गनखसर्पदाढादयो भवन्ति अवयवा तत्परघातनाम।

जिसके निमित्तसे शरीरमें वर्णविकार होता है वह वर्णनाम है। वह पाँच प्रकार है—कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवर्णनाम, हरितवर्णनाम और शुक्लवर्णनाम। जिसके उदयसे गन्ध हो वह गन्धनाम है। उसके दो भेद हैं—सुगन्ध और दुर्गन्ध। जिसके निमित्तसे रस हो वह रसनाम है। उसके पाँच भेद हैं—तिक्त नाम, कटुक नाम, कषाय नाम, आम्लनाम, मधुरनाम। जिसके उदयसे स्पर्श हो वह स्पर्शनाम है। उसके आठ भेद हैं—कर्कशनाम, मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, शीतनाम, उष्णनाम, स्निग्धनाम, रूक्षनाम। पूर्वशरीरके आकारका अविनाश जिसके उदयसे होता है वह आनुपूर्व्य नाम है। उसके चार भेद हैं—नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नाम।

जिसके उदयसे शरीर न तो लोहेकी पिण्डीकी तरह भारी होनेसे नीचे गिरे और न आककी रुईकी तरह हल्का होनेसे ऊपर उड़े वह अगुरुलघुनाम है। उपतकर घातको उपघात अर्थात् आत्मघात कहते हैं। जिसके उदयसे आत्मघात करनेवाले अवयव यथा बड़े-बड़े सींग, लम्बे स्तन, बड़ा पेट आदि होते हैं वह उपघात नाम है। परके घातको परघात कहते हैं। जिसके उदयसे तीक्ष्ण सींग, नख, दाढ़ आदि अवयव होते हैं वह परघात नाम है। जिसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम। तदप्यादित्यबिंबोत्पन्नबादरपर्य्याप्तपृथ्विकायिकजीवेष्वेव वर्त्तते। यस्योदयादुद्योतनं तदुद्योतनाम। तच्चन्द्रे खद्योतादिषु च वर्त्तते। विहाय आकाशं तत्र गतिनिवर्त्तकं तद्विहायोगतिनाम। तद्द्विविधं प्रशस्ताप्रशस्तभेदात्। यदुदयाद्द्वींद्रियादिषु जन्म तत् त्रसनाम। यदुदयादन्यबाधाकरशरीरं भवति तद्बादरनाम। यदुदयादाहारादिपर्य्याप्तिनिर्वृत्तिस्तत्पर्य्याप्तिनाम। तत् षड्विधमाहारपर्य्याप्तिनाम शरीरपर्य्याप्तिनाम इंद्रियपर्य्याप्तिनाम प्राणापानपर्य्याप्तिनाम भाषापर्य्याप्तिनाम मनःपर्य्याप्तिनाम चेति॥ शरीरनामकर्म्मोदयान्निर्वर्त्यमानं शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम। यस्योदयाद्रसादिधातूपधातूनां स्वस्वस्थाने स्थिरभावनिर्वर्त्तनं भवति तत् स्थिर नाम।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्त्तते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जात् शुक्रं ततः प्रजा॥
वातं पित्तं तथा श्लेष्मा शिरा स्नायुश्च चर्म च।
जठराग्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः॥

यद्धेतुरुच्छ्वासः तदुच्छ्वासनाम। यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातपनाम। तदपि आदित्यबिम्बोत्पन्नबादरपर्याप्तपृथिवीकायिकजीवेषु एव वर्तते। यस्योदयादुद्योतनं तदुद्योतनाम। तच्चन्द्रखद्योतादिषु च वर्तते। विहायः आकाशं तत्र गतिनिर्वर्तकं तद्विहायोगति नाम। तद्द्विविधं प्रशस्ताप्रशस्तभेदात्। यदुदयात् द्वीन्द्रियादिषु जन्म तत् त्रसनाम। यदुदयादन्यबाधाकरशरीरं भवति तद्बादरनाम।

यदुदयादाहारादिपर्याप्तिनिर्वृत्तिस्तत्पर्याप्तिनाम। तत् षड्विधं-आहारपर्याप्तिनाम शरीरपर्याप्तिनाम इन्द्रियपर्याप्तिनाम प्राणापानपर्याप्तिनाम भाषापर्याप्तिनाम मनःपर्याप्तिनाम चेति। शरीरनामकर्मोदयान्निर्वर्त्यमानशरीरम् एकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम।

यस्योदयात् रसादिधातूपधातूनां स्वस्वस्थाने स्थिरभावनिर्वर्तनं भवति तत्स्थिरनाम—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्तते।
मेदतोऽस्थि ततो मज्जं मज्जाच्छुक्रं ततः प्रजाः॥१॥
वातः पित्तं तथा श्लेष्मा सिरा स्नायुश्च चर्म च।
जठराग्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः॥२॥ [ ]

निमित्तसे श्वासोच्छ्वास होता है वह उच्छ्वास नाम है। जिसके उदयसे आतपन हो वह आतपनाम है। उसका उदय सूर्यके बिम्बमें उत्पन्न बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीवोंमें ही होता है। जिसके उदयसे उद्योतन हो वह उद्योत नाम है। उसका उदय चन्द्रबिम्ब, जुगनू आदिमें होता है। विहाय आकाशको कहते हैं। उसमें गमन जिसके उदयसे हो वह विहायोगति नाम है। उसके दो भेद हैं—प्रशस्त और अप्रशस्त। जिसके उदयसे दो-इन्द्रिय आदिमें जन्म हो वह त्रसनाम है। जिसके उदयसे दूसरेको बाधा करनेवाला स्थूल शरीर होता है वह बादरनाम है। जिसके उदयसे आहार आदि पर्याप्तिकी रचना होती है वह पर्याप्तिनाम है। उसके छह भेद हैं—आहारपर्याप्तिनाम, शरीरपर्याप्तिनाम, इन्द्रियपर्याप्तिनाम, प्राणापानपर्याप्तिनाम, भाषापर्याप्तिनाम, मनःपर्याप्तिनाम। शरीरनामकर्मके उदयसे रचा गया शरीर जिसके उदयसे एक आत्माके उपभोगका कारण होता है वह प्रत्येक शरीर नाम है। जिसके उदयसे रस आदि धातु-उपधातु अपने-अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों वह स्थिर नाम है। कहा है—'रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धातु । प्र ७ । फ । दिन । ५० (३०) । इच्छि । वा १ । लब्धदि ४ २ ।
७

यदुदयाद्रमणीया मस्तकादिप्रशस्तावयवा भवन्ति तच्छुभनाम । यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवस्तत्सुभगनाम । यस्मान्निमित्तान्मनोज्ञस्वरनिर्व्वर्त्तनं भवति तत्सुस्वरनाम । प्रभोपेतशरीरकारणमादेयनाम । पुण्यगुणख्यापनकारणं यशस्कीर्त्तिनाम । यन्निमित्तात्परिनिःपत्तिस्तन्निर्म्माणं तद्द्विविधं स्थाननिर्म्माणं प्रमाणनिर्म्माणं चेति । तत्र जातिनामकर्म्मोदयापेक्षं चक्षुरादीनां स्थानं प्रमाणं च निर्व्वर्त्तयति । निर्म्मीयतेऽनेनेति वा निर्म्माणमिति ।

आर्हन्त्यकारणं तीर्थकरत्वनाम । यन्निमित्तादेकेंद्रियेषु प्रादुर्भावः तत्स्थावरनाम । सूक्ष्मशरीरनिर्व्वर्त्तकं सूक्ष्मनाम । षड्विधपर्य्याप्त्यभावहेतुरपर्य्याप्तनाम । बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं भवति शरीरं यतस्तत्साधारणशरीरनाम । धातूपधातूनां स्थिरभावेनानिर्व्वर्त्तनं यतस्तदस्थिरनाम । यदुदयेनाऽरमणीयमस्तकाद्यवयवनिर्व्वर्त्तनं भवति तदशुभनाम । यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतेऽप्यप्रीतिं विदधाति जनस्तद्दुर्भगनाम । यदुदयादमनोज्ञस्वरनिर्व्वर्त्तनं भवति तद्दुःस्वर-

---

धातु प्र ७ । फ दि ३० । इच्छा धातुः १ लब्धदि ४ । २ ।
७

यदुदयात् रमणीया मस्तकादिप्रशस्तावयवा भवन्ति तच्छुभनाम । यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवः तत्सुभगनाम । यस्मान्निमित्तात् मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तत्सुस्वरनाम । प्रभोपेतशरीरकारणं आदेयनाम । पुण्यगुणख्यापनकारणं यशस्कीर्तिनाम ।

यस्मान्निमित्तात् परिनिष्पत्तिः तन्निर्माणनाम । तद्द्विविधम्-स्थाननिर्माणं प्रमाणनिर्माणं चेति । तत्र जातिनामोदयापेक्षं चक्षुरादीनां स्थानं प्रमाणं च निर्वर्तयति निर्मीयते अनेनेति वा निर्माणम् । आर्हन्त्यकारणं तीर्थकरत्वनाम ।

यन्निमित्तादेकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावः तत्स्थावरनाम । सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम । षड्विधपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तनाम । बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं भवति शरीरं यतः तत्साधारणशरीरनाम । धातूपधातूनां स्थिरभावेनानिर्वर्तनं यतः तदस्थिरनाम । यदुदयेन अरमणीयमस्तकाद्यवयवनिर्वर्तनं भवति तदशुभनाम । यदुदयात् रूपादिगुणोपेतेऽपि अप्रीतिं विदधाति जनः तद्दुर्भगनाम । यदुदयात्

मज्जा, मज्जासे वीर्य और वीर्यसे सन्तान होती है। वात, पित्त, कफ, सिरा, स्नायु, चर्म और उदराग्नि इन सातको विद्वानोंने उपधातु कहा है।'

जिसके उदयसे रमणीय मस्तक आदि प्रशस्त अवयव होते हैं वह शुभनाम है। जिसके उदयसे दूसरे प्रीति करते हैं वह सुभगनाम है। जिसके निमित्तसे मनोज्ञ स्वर होता है वह सुस्वरनाम है। प्रभायुक्त शरीरका कारण आदेयनाम है। पुण्य गुणोंकी कीर्तिमें कारण यशस्कीर्तिनाम है। जिसके निमित्तसे रचना हो वह निर्माणनाम है। उसके दो भेद हैं—स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माण। वह जातिनामकर्मके उदयके अनुसार चक्षु आदिके स्थान और प्रमाणका निर्माण करता है। अर्हन्तपदका कारण तीर्थंकर नाम है। जिसके निमित्तसे एकेन्द्रियोंमें जन्म हो वह स्थावरनाम है। सूक्ष्मशरीरका उत्पादक सूक्ष्मनाम है। छह प्रकारकी पर्याप्तिके अभावमें जो निमित्त है वह अपर्याप्तिनाम है। जिसके उदयसे बहुत-से जीवोंके उपभोगमें हेतु साधारण शरीर होता है वह साधारणशरीरनाम है। जिसके उदयसे धातु-उपधातु स्थिर न हों वह अस्थिर नाम है। जिसके उदयसे अरमणीय मस्तक आदि अवयवोंकी रचना हो वह अशुभ नाम है। जिसके उदयसे रूप आदि गुणोंसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम। निष्प्रभशरीरकारणमनादेयनाम। पुण्ययशसः प्रत्यनीकफलमयशस्कीर्त्तिनाम। यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म भवति तदुच्चैर्गोत्रंनाम। तद्विपरीतेषु गर्हितेषु कुलेषु जन्म भवति तन्नीचैर्गोत्रं नाम। यदुदयाद्दातुकामोपि न प्रयच्छति लब्धुकामोपि न लभते भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते उपभोक्तुमिच्छन्नपि नोपभुंक्ते तत्सहितुकामोपि न तत्सहते त एते पंचान्तरायस्य भेदाः। अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः क्रियते। दानस्यांतरायो लाभस्यान्तरायो भोगस्यान्तराय उपभोगस्यान्तरायो वीर्य्यस्यांतराय इति। दानादिपरिणामस्य व्याघातहेतुत्वात्।

नामकर्म्मदुत्तरप्रकृतिगळोळ भेदविवक्षेयिंदमन्तर्भाविमं तोरिदपरु :—

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया।
वण्णचउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥३४॥

देहे अविनाभाविनौ बंधनसंघाताविरयबंधोदयौ। वर्णचतुष्के अभिन्ने गृहीते चत्वारि बंधोदययोः॥

देहे शरीरनामकर्म्मदोळु। अविनाभाविनौ अविनाभाविगळंतर्भाविगळु। बंधनसंघातौ बंधननाममुं संघातनाममुमेंदेरडुं इति यिदुकारणदिदमबंधोदयौ बंधप्रकृतिगळुमुदयप्रकृतिगळु-

अमनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तद्दुःस्वरनाम। निष्प्रभशरीरकारणम् अनादेयनाम। पुण्ययशसः प्रत्यनीकफलं अयशस्कीतिनाम।

यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म भवति तदुच्चैर्गोत्रम्। यदुदये तद्विपरीतेषु गर्हितेषु कुलेषु जन्म भवति तन्नीचैर्गोत्रम्।

यदुदयाद्दातुकामोऽपि न प्रयच्छति लब्धुकामोऽपि न लभते भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते उपभोक्तुमिच्छन्नपि नोपभुङ्क्ते तत्सहितुकामोऽपि न तत्सहते ते एते पञ्चान्तरायभेदाः। अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः क्रियते। दानस्य अन्तरायः, लाभस्य अन्तरायः, भोगस्यान्तरायः, उपभोगस्यान्तरायः, वीर्यस्य अन्तराय इति दानादिपरिणामस्य व्याघातहेतुत्वात् ॥३३॥ अथ नामोत्तरप्रकृतिषु अभेदविवक्षया अन्तर्भावं दर्शयति—

देहे पञ्चविधशरीरनामकर्मणि स्वस्वबन्धसंघातौ अविनाभाविनौ इति कारणात् अबन्धोदयौ-बन्धोदय-

युक्त होनेपर भी लोग प्रीति नहीं करते वह दुर्भगनाम है। जिसके उदयसे स्वर सुन्दर नहीं होता वह दुःस्वरनाम है। प्रभाहीन शरीरका कारण अनादेय नाम है। पुण्य कार्य करनेपर भी यशका न फैलना या अपयश फैलना जिसके उदयसे हो वह अयशकीर्तिनाम है।

जिसके उदयसे लोकपूजित कुलमें जन्म हो वह उच्चगोत्र है। जिसके उदयमें उससे विपरीत नीच कुलमें जन्म हो वह नीचगोत्र है।

जिसके उदयसे देनेकी इच्छा होनेपर भी दान नहीं कर पाता, लाभकी इच्छा होनेपर लाभ नहीं होता, भोगनेकी इच्छा होनेपर भी भोग नहीं सकता, उपभोगकी इच्छा होनेपर उपभोग नहीं करता, उत्साह करनेकी इच्छा होनेपर भी उत्साह नहीं होता, वे ये अन्तरायके भेद हैं। अन्तरायकी अपेक्षा भेदपूर्वक निर्देश किया गया है—दानका अन्तराय, लाभका अन्तराय, भोगका अन्तराय, उपभोगका अन्तराय और वीर्यका अन्तराय; क्योंकि ये दान आदिके परिणामोंके व्याघातमें निमित्त होते हैं ॥३३॥

आगे नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें अभेद-विवक्षामें गर्भित प्रकृतियोंको दिखाते हैं—

पाँच शरीरनामकर्मके अपने-अपने बन्धन और संघात अविनाभावी हैं। इस कारणसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लवु। औदारिकादिपंचशरीरंगळ बंधदोळुमुदयदोळं तंतम्म बंधनसंघातंगळंतर्भाविं माडल्पट्टुर्दरिदं पृथक् बंधदोळमुदयदोळं पेळल्पडवें बुदत्थं। वर्णचतुष्केऽभिन्ने गृहीते वर्णसामान्यमुं गन्धसामान्यमुं रससामान्यमुं स्पर्शसामान्यमुमभेदविवक्षेयिंदं कैकोळल्पडुत्तिरलु सत्वकथनमल्लदुळिद बंधदोळमुदयदोळं। चत्वारि नाल्कु नामकर्म्मं प्रकृतिगळप्पुवु। शेषपदिनारुं प्रकृतिगळगे पृथक्कथनमिल्लें बुदत्थंमंतागुत्तिरलु बंधप्रकृतिगळुमुदयप्रकृतिगळुं सत्वप्रकृतिगळुमेनितेनितप्पुमें दोडे नाल्कु गाथासूत्रंगळिदं पेळ्दपरु :—

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ बंधपयडीओ ॥३५॥

पंच नव द्वे षड्विंशतिरपि च चतस्रः क्रमेण सप्तषष्टिर्द्वे च पंच च भणिताः एता बंधप्रकृतयः॥

पंचज्ञानावरणंगळं नवदर्शनावरणंगळुं द्विवेदनीयंगळुं षड्विंशतिमोहनीयंगळुमेकें दोडे बंधकालदोळु दर्शनमोहनीयमों दे मिथ्यात्वमें बुदरिदं सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिगळेरडुं उदयसत्वंगळोळे पेळल्पडुगुमप्पुदरिदमी बंधप्रकृतिगळोळु मोहनीयद षड्विंशत्युत्तरप्रकृतिगळ्पेळल्पट्टुवु। चतुरायुष्यंगळं सप्तषष्टिनामप्रकृतिगळुमेकें दोडे बंधनसंघातंगळपत्तुं वर्णादिषोडशप्रकृतिगळुमिन्तु षड्विंशतिप्रकृतिगळं बिट्टु शेषसप्तषष्टिनामप्रकृतिगळु पेळल्पट्टुवु। द्विगोत्रकर्म्मंगळुं पंचान्तरायकर्म्मंगळुमिन्तु ज्ञानावरणादिपाठक्रमदिंदमिनितुं कूडि विंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळ्बंधयोग्यंगळप्पुवें दु वीतरागसर्व्वज्ञरिदं पेळल्पट्टुवु। ५। ९। २। २६। ४। ६७। २। ५। कूडि १२०॥

प्रकृती न भवतः। तत्र पृथग्नोक्तावित्यर्थः। वर्णचतुष्के वर्णगन्धरसस्पर्शसामान्यचतुष्के अभिन्ने अभेदविवक्षया एकैकस्मिन्नेव गृहीते सत्त्वादन्यत्र बन्धोदययोश्चतस्र एव प्रकृतयो भवन्ति। शेषषोडशानां पृथक् कथनं नास्तीत्यर्थः ॥३४॥ तथा सति ता बन्धोदयसत्त्वप्रकृतयः कति ? इति चेत् चतुर्भिर्गाथाभिराह—

पञ्च ज्ञानावरणानि नव दर्शनावरणानि द्वे वेदनीये षड्विंशतिर्मोहनीयानि। कुतः ? मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योरुदयसत्त्वयोरेव कथनात्। चत्वारि आयूंषि। सप्तषष्टिर्नामानि कुतः ? दशबन्धनसंघातषोडशवर्णादीनामन्तर्भावात्। द्वे गोत्रे। पञ्चान्तराया इत्येता विंशत्युत्तरशतबन्धयोग्या भणिताः सर्वज्ञैः ॥३५॥

पाँच बन्धन और पाँच संघात बन्ध और उदय प्रकृतियोंमें पृथक् नहीं लिये गये हैं। अर्थात् बन्ध और उदयमें वे दस पृथक् नहीं कहे हैं, शरीरनामकर्ममें ही गर्भित कर लिये हैं। तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श इन चारोंको सामान्य रूपसे अभेदविवक्षामें एक-एकमें ही ग्रहण करनेपर सत्त्वके अतिरिक्त बन्ध और उदयमें चार ही प्रकृतियाँ होती हैं, शेष सोलहको पृथक् नहीं कहा है ॥३४॥

ऐसा होनेपर बन्ध, उदय और सत्त्व प्रकृतियाँ कितनी हैं यह चार गाथाओंसे कहते हैं—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, छब्बीस मोहनीय, क्योंकि मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति उदय और सत्त्वमें ही कही गयी हैं, चार आयु, सड़सठ नाम; क्योंकि दस बन्धन दस संघात और सोलह वर्णादिका अन्तर्भाव कर लेते हैं, दो गोत्र, पाँच अन्तराय इस प्रकार ये एक सौ बीस प्रकृतियाँ बन्धयोग्य सर्वज्ञदेवने कही हैं ॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयप्रकृतिगळं पेळ्दपरु । :—

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णि य पंच य भणिदा एदाओ उदयपयडीओ ॥३६॥

पंच नव द्वे अष्टाविंशतिश्चतस्रः । क्रमेण सप्तषष्टिर्द्वे च पंच च भणिता एता उदयप्रकृतयः ॥

पंचज्ञानावरणंगळुं नवदर्शनावरणंगळुं द्विवेदनीयंगळुमष्टाविंशतिमोहनीयंगळुमेकें दोडुदयदोळु सत्वदोळं मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळ्गे सद्भावमुंटप्पुदरिंदं । चतुरायुष्यंगळुं सप्तषष्टि नामप्रकृतिगळुमेकें दोडे बंधदोळ्पेळ्दंते षड्विंशतिप्रकृतिगळ्गविनाभावमुंटप्पुदरिंदं । द्विगोत्रकर्म्मप्रकृतिगळुं पंचांतरायकर्म्मप्रकृतिगळुमिन्तु क्रमदिंदमिविनितुं कूडि द्वाविंशत्युत्तरशतमुदयप्रकृतिगळें दु श्रीवीतरागसर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टुवु । ५ । ९ । २ । २८ । ४ । ६७ । २ । ५ । कूडि १२२ ॥

ई बंधोदयप्रकृतिगळ्गे भेदाभेदविवक्षेयिदं संख्येयं पेळ्दपरु । :—

भेदे छादालसयं इदरे बंधे हवंति वीससयं ।
भेदे सव्वे उदये बावीससयं अभेदम्मि ॥३७॥

भेदे षट्चत्वारिंशच्छतमितरस्मिन्बंधे भवन्ति विंशतिशतं । भेदे सर्व्वा उदये द्वाविंशतिशतमभेदे ॥

बंधे बंधदोळु भेदे भेदविवक्षेयागुत्तिरलु । षट्चत्वारिंशच्छतं षट्चत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतिगळु भवन्ति अप्पुवु । इतरस्मिन्नभेदविवक्षेयागुत्तिरलु विंशतिशतं विंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळप्पुवु । उदये उदयदोळु । भेदे भेदविवक्षेयागुत्तं विरलु । सर्व्वाः अष्टाचत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतिगळप्पुवु । अभेदे अभेदविवक्षेयागुत्तं विरलु । द्वाविंशतिशतं द्विविंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळप्पुवु । भे बं । १४६ । अभे । बं १२० । भे । उ । १४८ । अभे । उ । १२२ ॥

सत्वप्रकृतिगळं पेळ्दपरु ।

उदयप्रकृतीराह—

उदयप्रकृतयो ज्ञानावरणादीनां क्रमेण पञ्च नव द्वे अष्टाविंशति चतस्रः सप्तषष्टिः द्वे पञ्च च मिलित्वा द्वाविंशत्युत्तरशतं भणिताः ॥३६॥ ता एवं बन्धोदयप्रकृतीर्भेदाभेदविवक्षया संख्याति—

बन्धे भेदविवक्षायां षट्चत्वारिंशच्छतं प्रकृतो भवन्ति । अभेदविवक्षायां विंशत्युत्तरशतम् । उदये भेदविवक्षायां सर्वा अष्टचत्वारिंशच्छतं अभेदविवक्षायां द्वाविंशत्युत्तरशतम् ॥३७॥ सत्त्वप्रकृतीराह—

उदय प्रकृतियाँ कहते हैं—

उदयप्रकृतियाँ ज्ञानावरण आदिकी क्रमसे पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, सड़सठ, दो, पाँच मिलकर एक सौ बाईस कही हैं ॥३६॥

बन्धमें भेदविवक्षामें एक सौ छियालीस प्रकृतियाँ होती हैं। अभेदविवक्षामें एक सौ बीस हैं। उदयमें भेद विवक्षामें सब एक सौ अड़तालीस हैं और अभेद विवक्षामें एक सौ बाईस हैं ॥३७॥

सत्त्व प्रकृतियाँ कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
दोण्णि य पंच य भणिदा एदाओ सत्तपयडीओ ॥३८॥

पंच नव द्वे अष्टाविंशतिश्चतस्रः क्रमेण त्रिनवतिर्द्वे च पंच च भणिता एताः सत्वप्रकृतयः ॥

पंचज्ञानावरणंगळुं नवदर्शनावरणंगळुं द्विवेदनीयंगळुं अष्टाविंशति मोहनीयंगळु चतुरायुष्यंगळुं त्र्युत्तरनवतिनामकर्म्मप्रकृतिगळु द्विगोत्रकर्म्मप्रकृतिगळुं पंचान्तरायकर्म्मप्रकृतिगळुमें विविनितुं सत्वप्रकृतिगळें दुत्तरप्रकृतिगळु श्रीवीतरागसर्व्वज्ञरिदं निरूपिसलपट्टुवु ॥

घातिकर्म्मगळु सर्व्वघातिदेशघातिभेर्दादिदं द्विविधंगळें वरोळु सर्व्वघातिगळं पेळदपरु ।

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं कसायबारसयं ।
मिच्छं च सव्वघादी सम्मामिच्छं अबंधम्मि ॥३९॥

केवलज्ञानावरणं दर्शनषट्कं कषायद्वादशकं । मिथ्यात्वं च सर्व्वघातीनि सम्यग्मिथ्यात्वमबंधे ॥

केवलज्ञानावरणमुं केवलदर्शनावरणमुं स्त्यानगृद्धयादिदर्शनावरणपंचकमुमनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभंगळें ब द्वादशकषायंगळुं मिथ्यात्वकर्म्ममुमें बिविनितुं कूडि विंशतिप्रकृतिगळु २० । सर्व्वघातिगळप्पुवु । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं बंधप्रकृतियल्लप्पुदरिंदमुदयसत्वंगळोळु जात्यंतर सर्व्वघातियें वु पेळलपट्टुवु ॥

देशघातिगळं पेळदपरु :—

णाणावरणचउक्कं तिदंसणं सम्मगं च संजलणं ।
णवणोकसायविग्घं छव्वीसा देसघादीओ ॥४०॥

ज्ञानावरणचतुष्कं त्रिदर्शनं सम्यक्त्वं च संज्वलनं । नवनोकषायविघ्नं षड्विंशतिर्देशघातीनि ॥

पञ्च नव द्वे अष्टाविंशतिः चतस्रः त्रिणवतिः द्वे पञ्च एताः क्रमेण ज्ञानावरणादीनां सत्त्वप्रकृतयोऽष्टचत्वारिंशच्छतं सर्वज्ञैर्भणिताः ॥३८॥ घातिकर्माणि सर्वघातीनि देशघातीनि च । तत्र सर्वघातीन्याह—

केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणं स्त्यानगृद्धयादिपञ्चकं अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभाः, मिथ्यात्वकर्मेति विंशतिः सर्वघातीनि भवन्ति । सम्यग्मिथ्यात्वं तु बन्धप्रकृतिर्नेत्युदयसत्त्वयोरेव जात्यन्तरसर्वघाति भवति ॥३९॥ देशघातीन्याह—

पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, तिरानबे, दो, पाँच ये क्रमसे ज्ञानावरण आदिकी सत्त्वप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस सर्वज्ञदेवने कही हैं ॥३८॥

घाति कर्म, सर्वघाती और देशघाती होते हैं। उनमें-से सर्वघाती कहते हैं—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि आदि पाँच, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, क्रोध-मान-माया-लोभ, मिथ्यात्वकर्म ये बीस सर्वघाती हैं। सम्यग्मिथ्यात्व बन्धप्रकृति नहीं है। अतः उदय और सत्त्वमें ही जात्यन्तर सर्वघाती है ॥३९॥

देशघाती कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणचतुष्कमुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणत्रितयमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं संज्वलनक्रोधमानमायालोभकषायचतुष्कमुं हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकमें ब नवनोकषायंगळुं दानलाभभोगोपभोगं वीर्य्यांतरायमें ब पंचान्तरायकर्म्मंगळुमिन्तु कूडि षड्विंशतिप्रकृतिगळु देशघातिगळें दनादिसिद्धमप्प परमागमदोळु पेळल्पट्टुवु ॥ सर्व्वघातिगळु के १ । द ६ । क १२ । मि १ । मिश्र १ । कूडि २१ ॥ देशघातिगळु ज्ञा ४ । दं ३ । सं १ । सं ४ । नो ९ । विघ्न ५ कूडि २६ ॥

घातिकर्म्मंगळ्गे सर्व्वघातिदेशघातिभेदमं पेळ्दु अघातिकर्म्मंगळ्गे प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतिभेदमं पेळ्दल्लि प्रशस्तप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु ।

सादं तिण्णेवाऊ उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी ।
देहा बंधणसंघादंगोवंगाइं वण्ण चऊ ॥४१॥
समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्कसग्गमणं ।
तसबारसट्ठसट्ठी बादालमभेददो सत्था ॥४२॥

सातं त्रीण्येवायुरुच्चं नरसुरद्विकं पंचेंद्रियं देहाः बंधनसंघातांगोपांगानि च वर्णचतस्रः ॥ समचतुरस्रं वज्रऋषभः उपघातोनागुरुलघुषट्क सद्गमनं त्रसद्वादशाष्टषष्टिर्द्वाचत्वारिंशदभेदतः शस्ताः ॥

सातवेदनीयमुं तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यमें बायुस्त्रितयमुं उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यगति मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं देवगतिदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं पंचेंद्रियजातिनाममुं औदारिकादिशरीरपंचकमुं औदारिकादिशरीरबंधनपंचकमुं औदारिकादिशरीरसंघातपंचकमुं औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरांगोपांगत्रितयमुं शुभवर्ण्णगंधरसस्पर्शचतुष्टयमुं समचतुरस्रशरीरसंस्थानमुं वज्रवृषभनाराचशरीरसंहननमुं अगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योतमें बुपघातोनागुरुलघुषट्कमुं प्रशस्तविहायो-

---

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणानि । चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानि । सम्यक्त्वप्रकृतिः । संज्वलनक्रोधमानमायालोभाः । हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकानि । दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायाश्चेति षड्विंशतिर्देशघातीनि ॥४०॥ घातिनां सर्वदेशघातिभेदौ प्ररूप्य अघातिनां प्रशस्ताप्रशस्तभेदप्ररूपणे प्रशस्तप्रकृतीर्गाथाद्वयेन आह—

सातवेदनीयं तिर्यग्मनुष्यदेवायूंषि उच्चैर्गोत्रं मनुष्यगतितदानुपूर्व्ये देवगतितदानुपूर्व्ये पञ्चेन्द्रियं पञ्चशरीराणि पञ्चबन्धनानि पञ्चसंघाताः त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि शुभवर्णगन्धरसस्पर्शाः समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराच-

---

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञानावरण, चक्षु अचक्षु अवधि दर्शनावरण, सम्यक्त्व प्रकृति, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्यान्तराय ये छब्बीस देशघाती हैं ॥४०॥

घातिकर्मोंके सर्वघाती देशघाती भेद कहकर अघातीकर्मोंके प्रशस्त और अप्रशस्त भेदका प्ररूपण करते हुए प्रशस्त प्रकृतियोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

सातवेदनीय, तिर्यंच मनुष्य देवआयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, तीन अंगोपांग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतियुं। त्रसबादरपर्य्याप्त प्रत्येकशरीर स्थिर शुभ सुभग सुस्वरादेय यशस्कीर्त्तिनिर्म्माण तीर्त्थंकर नाममें ब त्रस द्वादशकमुमिन्तष्टषष्टि प्रकृतिगळु भेदविवक्षेयिदं प्रशस्तप्रकृतिगळक्कुमभेदविवक्षेयिदं द्विचत्वारिंशत्प्रशस्तप्रकृतिगळक्कुं ॥ सा १। आ ३। उ १। म २। सु २। पं १। दे ५। बं ५।
२०
सं ५। अंगो ३। व ४। स १। व १। अगु ५। सद्गमन १। त्रस १२। कूडि भेदप्रकृतिगळु ६८। अभेदर्दिदं ४२। सद्वेद्यशुभायुर्न्नामगोत्राणि पुण्यमें दु पेळल्पट्ट प्रशस्तप्रकृतिगळें बुदर्त्थं ॥

घातिगळनितुमप्रशस्तंगळप्पुदरिंदमवुवेरसु अघातिगळोळु अप्रशस्तप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळदपरु। :—

घादी णीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी।
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचऊ ॥४३॥
उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्पसत्था हु।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥४४॥

घातीनि नीचमसातं नरकायुर्न्नरकतिर्य्यग्द्विकंजाति। संस्थानसंहननानां चतुः पंच पंचकं च वर्णचतुष्कं ॥

उपघातमसद्गमनं स्थावरदशकं चाप्रशस्ताः खलु। बंधोदयं प्रति भेदेऽष्टनवतिः शतं द्विचतुरुत्तराशीतिरितरस्मिन् ॥

सप्तचत्वारिंशद्घातिकर्म्मंगळुं नीचैर्ग्गोत्रमुं असातवेदनीयमुं नरकायुष्यमुं नरकगति नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्वद्विकमुं तिर्य्यग्गति तिर्य्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्वद्विकमुं एकेंद्रियादिचतुरिंद्रियपर्य्यंतमाद जातिचतुष्टयमुं न्यग्रोधपरिमंडलादि पंचसंस्थानंगळुं वज्रनाराचादिपंचसंहननंगळुं

संहननं अगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योताः प्रशस्तविहायोगतिः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकराणि। एवमष्टषष्टिर्भेदविवक्षया प्रशस्ताः अभेदविवक्षया द्विचत्वारिंशत्। सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यमित्युक्ता एवेत्यर्थः ॥४१-४२॥ अप्रशस्तप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

घातीनि सर्वाण्यप्रशस्तान्येवेति तानि सप्तचत्वारिंशत् नीचैर्गोत्रं असातवेदनीयं नरकायुष्यं नरकगतितदानुपूर्व्ये तिर्यग्गतितदानुपूर्व्ये एकेन्द्रियादिचतुर्जातयः न्यग्रोधपरिमण्डलादिपञ्चसंस्थानानि वज्रनाराचादि-

---

शुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्श, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण तीर्थंकर, इस प्रकार भेदविवक्षासे अड़सठ और अभेदविवक्षासे बयालीस प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है—सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र पुण्य प्रकृतियाँ हैं ॥४१-४२॥

अप्रशस्त प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

घातिकर्मोंकी सभी प्रकृतियाँ अप्रशस्त ही हैं अतः वे सैंतालीस, नीचगोत्र, असातवेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि चार जातियाँ, न्यग्रोध परिमण्डल आदि पाँच संस्थान, वज्रनाराच आदि पाँच संहनन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुभवर्ण्णगंधरसस्पर्शमेंब वर्ण्णचतुष्टयमुं उपघातमुमप्रशस्तविहायोगतियुं स्थावरसूक्ष्म अपर्य्याप्त-साधारणशरीरास्थिराशुभदुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्त्तियेंब स्थावरदशकमुमें बिउ बंधोदयंगळं कूर्त्तु भेदविवक्षेयोळु क्रमदिदमष्टनवतियुं शतमुमप्पुवु। अभेदविवक्षेयोळु द्व्युत्तराशीतियुं चतुरुत्तराशीतियुमप्पुवु। घा ४७। नी १। अ १। न १। नि २। ति २। जा ४। सं ५। सं ५।— २० अ = व ४। उ १। असद्गमन १। स्था १०। बंधे। भेदे ९८। उदये। भेदे १००। बंधे अभेदे ८२। उदये अभेदे ८४॥

कषायंगळ कार्य्यमं पेळ्दपरु—

पढमादिया कसाया सम्मत्तं देससयलचारित्तं।
जहखादं घादंति य गुणणामा होंति सेसा वि ॥४५॥

प्रथमादिकाः कषायाः सम्यक्त्वं देशसकलचारित्रं। यथाख्यातं घ्नंति च गुणनामानो भवन्ति शेषा अपि ॥

अनंतानुबंधिकषायं सम्यक्त्वमं केडिसुगुमेकें दोडदप्रतिबंधकत्वमुंटप्पुदरिंदं। अप्रत्याख्यान-कषायं देशचारित्रमं किडिसुगु। प्रत्याख्यानकषायं सकलचारित्रमं किडिसुगुं। संज्वलनकषायं यथाख्यातचारित्रमं किडिसुगुं। अदुकारणमागि कषायंगळ्गुणनाममनुळ्ळुवप्पुववें तें दोडे :—

अनंतसंसारकारणत्वान्मिथ्यात्वमनन्तं तदनुबध्नंतीत्यनंतानुबंधिनः। अप्रत्याख्यानमीषत्संयमो देशसंयमस्तं कषंतीत्यप्रत्याख्यानकषायाः। प्रत्याख्यानं सकलसंयमस्तं कषंतीति प्रत्याख्यान-

---

पञ्चसंहननानि अशुभवर्णगन्धरसस्पर्शाः उपघातः अप्रशस्तविहायोगतिः स्थावरसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्तयः इत्येता अप्रशस्ताः बन्धोदयौ प्रति क्रमेण भेदविवक्षायामष्टनवतिः शतं च भवन्ति। अभेदविवक्षायां द्व्यशीतिश्चतुरशीतिश्च भवन्ति ॥४३–४४॥ कषायकार्यमाह—

अनन्तानुबन्धिनः सम्यक्त्वं घ्नन्ति। अप्रत्याख्यानकषायाः देशचारित्रं, प्रत्याख्यानकषायाः सकलचारित्रं, संज्वलना यथाख्यातचारित्रं तेन गुणनामानो भवन्ति। तथाहि—अनन्तसंसारकारणत्वात् मिथ्यात्वमनन्तं तदनुबध्नन्तीत्यनन्तानुबन्धिनः। अप्रत्याख्यानं-ईषत्संयम देशसंयमः तं कषंतीति अप्रत्याख्यानकषायाः।

अशुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्श, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति ये अप्रशस्त प्रकृतियाँ भेदविवक्षामें बन्धमें अठानबे तथा उदयमें सौ, अभेदविवक्षामें बन्धमें बयासी और उदयमें चौरासी होती हैं ॥४३–४४॥

कषायका कार्य कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यक्त्वको घातती हैं। अप्रत्याख्यानकषाय देशचारित्रको घातती हैं। प्रत्याख्यान कषाय सकल चारित्रको घातती हैं। संज्वलन कषाय यथाख्यात-चारित्रको घातती हैं। अतः ये सार्थक नामवाली हैं। यही कहते हैं—अनन्त संसारका कारण होनेसे मिथ्यात्व अनन्त कहलाता है उसको जो बाँधती हैं या उसके साथ जो बँधती हैं वे अनन्तानुबन्धी हैं। अप्रत्याख्यान कहते हैं ईषत् संयम या देशसंयमको। उसे जो घातती हैं वे अप्रत्याख्यानकषाय हैं। प्रत्याख्यान कहते हैं सकलसंयमको, उसे जो घातती हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायाः । समेकीभूय ज्वलन्ति संयमेन सहावस्थानात् । संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनास्तयेव यथाख्यातं कर्षति संज्वलनाः । कषायाः एवं गुणनामानो भवन्तीत्यर्थः । शेषा अपि नोकषायज्ञानावरणादीन्यप्यन्वर्थसंज्ञानि भवन्तीति ज्ञातव्यानि ॥

संज्वलनादिचतुःकषायंगळवासनाकालमं पेळ्दपरु :—

अंतोमुहुत्तपक्खं छम्मासं संखासंखणंतभवं
संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण ॥४६॥

अन्तर्म्मुहूर्त्तः पक्षः षण्मासाः संख्यासंख्यानंतभवाः । संज्वलनादीनां वासनकालस्तु नियमेन ॥

उदयाभावेपि तत्संस्कारकालो वासनाकालः एंदितप्प वासनाकालं संज्वलनकषायंगळ्गे अन्तर्म्मुहूर्त्तं वासनाकालमक्कुं । प्रत्याख्यानकषायंगळ्गे एकपक्षं वासनाकालमक्कुं । अप्रत्याख्यानकषायंगळ्गे षण्मासं वासनाकालमक्कुमनंतानुबंधिकषायंगळ्गे वासनाकालं संख्यातभवंगळुमसंख्यातभवंगळुमनंतभवंगळुमप्पुवु नियमदिवं ॥ सं २१ प्र । दि १५ । अप्र मास ६ । अनंता १ a । ख । वासनाकालंगळ् ॥

अनंतरं पुद्गलविपाकीप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

देहादीफस्संता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च ।
थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतियं पोग्गलविवाई ॥४७॥

देहादिस्पर्शांतानि पंचाशत् निर्म्माणमातपयुगळं च स्थिरशुभप्रत्येकयुगळमगुरुलघुत्रितयं पुद्गलविपाकीनि ॥

प्रत्याख्यानं सकलसंयमः तं कषंतीति प्रत्याख्यानकषायाः । सम् एकीभूत्वा ज्वलन्ति संयमेन सहावस्थानात् संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः त एव यथाख्यातं कषंतीति संज्वलनकषायाः । एवं शेषनोकषायज्ञानावरणादीन्यप्यन्वर्थसंज्ञानि भवन्ति ॥४५॥ संज्वलनादिचतुःकषायाणां वासनाकालमाह—

उदयाभावेऽपि तत्संस्कारकालो वासनाकालः । स च संज्वलनानामन्तर्मुहूर्तः । प्रत्याख्यानावरणानामेकपक्षः । अप्रत्याख्यानावरणानां षण्मासाः । अनन्तानुबन्धिनां संख्यातभवाः, असंख्यातभवाः, अनन्तभवा वा भवन्ति नियमेन ॥४६॥ अथ पुद्गलविपाकीन्याह—

वे प्रत्याख्यान कषाय हैं । जो संयमके साथ 'सम्' अर्थात् एकरूप होकर ज्वलित होती हैं अथवा जिनके होते हुए भी संयम ज्वलित होता है वे संज्वलन कषाय हैं । वे ही यथाख्यात संयमको घातती हैं । इसी तरह शेष नोकषाय और ज्ञानावरण आदि भी सार्थक नामवाले हैं ॥४५॥

संज्वलन आदि चार कषायोंका वासनाकाल कहते हैं—

उदयके अभावमें भी उनका संस्कार जितने काल रहता है उसे वासना काल कहते हैं । संज्वलन कषायोंका वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त है । प्रत्याख्यानावरण कषायोंका एक पक्ष है । अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका छह मास है । अनन्तानुबन्धीकषायोंका संख्यातभव, असंख्यातभव अथवा अनन्तभव नियमसे होता है ॥४६॥

पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंको कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिकादिशरीरपंचकमुं तद्बंधनपंचकमुं संघातपंचकमुं संस्थानषट्कमुं अंगोपांगत्रितयमुं संहननषट्कमुं वर्णपंचकमुं गंधद्वितयमुं रसपंचकमुं स्पर्शाष्टकमुमेंदितु पंचाशत्प्रकृतिगळुं निर्म्माण-नाममुं आतपोद्योतयुगळमुं स्थिरास्थिरशुभाशुभप्रत्येकसाधारणशरीरंगळ द्विकंगळुं अगुरुलघु-उपघातपरघातमें ब अगुरुलघुत्रितयमुमें बी द्वाषष्टिप्रकृतिगळु पुद्गलविपाकिगळवक्कुं। पुद्गले विपाकः पुद्गलविपाकः। सोऽस्त्येष्विति पुद्गलविपाकीनि ये'दु गुणनाममक्कुं॥

इन्तुळिदभवविपाकिगळंगे क्षेत्रविपाकिगळंगे जीवविपाकिगळंगे पेळदपरु :—

आऊणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ।
अट्ठत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा ॥४८॥

आयूंषि भवविपाकीनि क्षेत्रविपाकिन्यानुपूर्व्याणि। अष्टसप्तत्यवशेषा जीवविपाकिन्यो मंतव्याः॥

नाल्कुमायुष्यंगळु भवविपाकिगळवक्कुं। नाल्कुमानुपूर्व्यंगळु क्षेत्रविपाकिगळप्पुवु। अवशे-षाष्टसप्ततिप्रकृतिगळु जीवविपाकिगळें दु बगेयल्पडुववु। औदारिकादिशरीरनिर्व्वर्त्तनदोळु विपाक-मुळ्ळुदरिदं पुद्गलविपाकिगळुं नारकादि भवंगळोळे विपाकमुळ्ळुदरिंदं भवविपाकिगळुं पूर्व्वशरी-रमं बिट्टुत्तरशरीरनिमित्तं विग्रहगतियोळे विपाकमुळ्ळुदरिंदं क्षेत्रविपाकिगळुं नारकादिजीव-पर्य्यायनिवर्त्तनदोळु विपाकमुळ्ळुदरिंदं जीवविपाकिगळें दिन्तु कर्म्मप्रकृतिगळ्गे कार्य्यविशेषंगळपे-ळल्पट्टुवु। दे ५। बं ५। सं ५। सं ६। अं ३। सं ६। व ५। ग २। र ५। स्प ८। नि १। आ १। उ १। स्थि १। अ १। शु १। अ १। प्र १। सा १। अ १। उ १। प १। युति ६२। भवविपाकिगळु ४। क्षेत्रविपाकिगळु ४। जीवविपाकिगळु ७८ युति १४८॥

अष्टासप्ततिजीवविपाकिगळवावुवें दोडे पेळल्पपरु :—

पञ्चशरीरपञ्चबन्धनपञ्चसंघातषट्संहननपञ्चवर्णद्विगन्धपञ्चरसस्पर्शाष्टकमिति पञ्चाशत्। निर्माणं आतपोद्योतौ स्थिरास्थिरशुभाशुभप्रत्येकसाधारणानि अगुरुलघूपघातपरघाताश्चेति द्वाषष्टिः पुद्गलविपाकीनि भवन्ति। पुद्गले एव एषां विपाकत्वात् ॥४७॥ भवक्षेत्रजीवविपाकीन्याह—

चत्वारि आयूंषि भवविपाकीनि। चत्वारि आनूपूर्व्याणि क्षेत्रविपाकीनि अवशिष्टाष्टसप्ततिः जीव-विपाकीनि नरकादिजीवपर्यायनिर्वर्तनहेतुत्वात्। एवं प्रकृतिकार्यविशेषाः ज्ञातव्याः ॥४८॥ तानि जीवविपाकीनि कानि? इति चेदाह—

पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श ये पचास, निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरुलघु, उपघात, परघात ये सब बासठ पुद्गलविपाकी हैं क्योंकि पुद्गलमें ही इनका विपाक होता है ॥४७॥

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियोंको कहते हैं—

चार आयु भवविपाकी हैं। चार आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी हैं। शेष अठहत्तर प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं क्योंकि नारक आदि जीवपर्यायोंकी रचनामें निमित्त हैं। इस प्रकार प्रकृतियोंका कार्यविशेष जानना चाहिए ॥४८॥

वे जीवविपाकी प्रकृतियाँ कौन हैं, यह कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदणियगोदघादीणेक्कावण्णं तु णामपयडीणं ।
सत्तावीसं चेदे अट्ठत्तरि जीवविवाईओ ॥४९॥

वेदनीयगोत्रघातिनामेकपंचाशत् तु नामप्रकृतीनां । सप्तविंशतिश्चैतान्यष्टसप्ततिर्जीवविपाकीनि ॥

वेदनीयद्विकमुं गोत्रद्विकमुं घातिसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतिगळुमिन्तु कूडि एकोत्तरपंचाशत्प्रकृतिगळुं नामकर्म्मदोळु सप्तविंशतिप्रकृतिगळुमिन्तु जीवविपाकिगळु मुंपेळदष्टासप्ततिप्रकृतिगळप्पुवु ॥

नामकर्म्मद सप्तविंशतिगळावुवें दोडे गाथाद्वयदिदं पेळ्दपरु :—

तित्थयरं उस्सासं बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं ।
जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीसं ॥५०॥

तीर्त्थंकरमुच्छ्वासं बादरपर्याप्तसुस्वरादेययशस्कीर्त्तित्रसविहायोगतिसुभगद्वयं चतुर्गतिः पंचजातयः सप्तविंशतिः ॥

तीर्त्थंकरनाममुच्छ्वासमुं बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तसुस्वरदुस्वर आदेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तित्रसस्थावरप्रशस्तविहायोगत्यप्रशस्तविहायोगतिसुभगदुर्भगगळुं चतुर्गतिनामकर्म्मंगळुं पंचजातिनामकर्म्मंगळुमेंदितु नामकर्म्मदोळु जीवविपाकिगळु सप्तविंशतिगळप्पुवु । ती १ । उ १ । बा २ । प २ । सु २ । आ २ । य २ । त्र २ । वि २ । सु २ । ग ४ । जा ५ । कूडि २७ ।

गदि जादी उस्सासं विहायगदि तसतियाण जुगलं च ।
सुभगादी चउजुगलं तित्थयरं चेदि सगवीसं ॥५१॥

गतिजातयः उच्छ्वासो विहायोगति त्रसत्रयाणां युगळं च । सुभगादि चतुर्य्युगळं तीर्त्थंकरं चेति सप्तविंशतिः ॥

वेदनीयद्वयं गोत्रद्वयं घातिसप्तचत्वारिंशत् नामसप्तविंशतिश्चेति अष्टसप्ततिर्जीवविपाकीनि भवन्ति ॥४९॥ तत्सप्तविंशति गाथाद्वयेनाह—

तीर्थङ्करं, उच्छ्वासः बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तित्रसस्थावरप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिसुभगदुर्भगचतुर्गतयः पञ्चजातयश्चेति नामकर्म सप्तविंशतिः ॥५०॥

चतुर्गतयः पञ्चजातयः उच्छ्वासः विहायोगतित्रसबादरपर्याप्तियुगलानि सुभगसुस्वरादेययशस्कीर्तियुगलानि तीर्थंकरं चेत्यथवा नाम सप्तविंशतिः ।

दो वेदनीय, दो गोत्र, घातिकर्मोंकी सैंतालीस और नामकर्मकी सत्ताईस ये अठहत्तर प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं ॥४९॥

नामकर्मकी वे सत्ताईस प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, चार गति, पाँच जाति ये नामकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ॥५०॥

चार गति, पाँच जाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्तका युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्तिका युगल और तीर्थंकर ये नामकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाल्कुगतिगळुमय्दु जातिगळुमुच्छ्वासमुं विहायोगति त्रसबादरपर्याप्तयुगळंगळुं सुभगसुस्वरादेययशस्कीर्त्तिचतुर्युगळंगळुं तीर्थंकरनाममुमिन्तु मेणु नामकर्म्मंदोळु जीवविपाकिगळु सप्तविंशतिगळप्पुवु । २७ ।। ग ४ । जा ५ । उ १ । वि २ । त्र २ । बा २ । प २ । सु २ । सु २ । आ २ । य २ । ती १ । युति २७ ।।

अनंतरं सामान्यकर्म्ममूलोत्तरकर्म्मप्रकृतिगळोळु प्रथमोद्दिष्टसामान्यकर्म्मं नामकर्म्मं स्थापनाकर्म्मं द्रव्यकर्म्मं भावकर्म्मभेदर्दिदं चतुर्व्विधमें दु पेळदपरेकें दोडे :—

> अवगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।
> संसयविणासणट्ठं तच्चट्ठवधारणट्ठं च ।।

अप्रकृतनिवारणार्थं प्रकृतस्य प्ररूपणानिमित्तं च । संशयविनाशनार्थं तत्त्वार्थावधारणार्थं च ।।

अप्रकृतार्थनिवारणार्थमागियुं प्रकृतार्थप्ररूपणानिमित्तमागियुं संशयविनाशनार्थमागियुं तत्त्वार्थावधारणार्थमागियुं चतुर्व्विधनामादिनिक्षेपं पेळल्पडुगुमेकें दोडे—श्रोतृगळु त्रिविधमप्परव्युत्पन्ननुमवगताशेषविवक्षितपदार्थनुमेकदेशतोऽवगतविवक्षितपदार्थनुमें दितिवरोळु प्रथमोद्दिष्टाव्युत्पन्ननव्युत्पन्ननप्पुदरिंदं विवक्षितपदार्थमं नाध्यवस्यति निश्चयिसल्नेरेयं । अवगताशेषविवक्षितपदार्थनप्प द्वितीयनुं संशेते संदेहिसुगुमें तें दोडे—कोऽस्यार्थोऽस्य पदस्याधिकृत इति । प्रकृतार्थादन्यमर्थमादाय विपर्य्यस्यति वा इन्तु विपरीतनुमक्कुं । मेणु एकदेशतोवगतविवक्षितपदार्थनप्प तृतीयनुं द्वितीयनंते संशेते संदेहिसुगुं । प्रकृतादर्थादन्यमर्थमादाय विपर्य्यस्यति वा । प्रकृतार्थदत्तणिद मन्यार्थमं कैको डु विपरीतनक्कु मेणु एकें दोडे सामान्यप्रत्यक्षदत्तणिदमुं विशेषाऽप्रत्यक्ष-

ननु श्रोतारस्त्रिविधाः—अव्युत्पन्नः अवगताशेषविवक्षितपदार्थः एकदेशतोऽवगतविवक्षितपदार्थश्चेति । तत्र प्रथमः—अव्युत्पन्नत्वात् विवक्षितपदार्थं नाध्यवस्यति इदमित्थमेवेति याथात्म्यप्रतिपत्त्यनुपपत्तेः । गच्छतस्तृणस्पर्शवत् । द्वितीयः-कोऽर्थोऽस्य ? इति संशेते । सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् उभयविशेषस्मृतेश्च संशयस्य दुर्निवारत्वात् । स्थाणुर्वा पुरुषो वेति । अथवा प्रकृतार्थादन्यमर्थमादाय विपर्येति । सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् विपरीतस्मृतेश्च विपर्यासस्यावश्यंभावात् शुक्तिकाशकले रजतमिति । तथा तृतीयोऽपि द्वितीयवत् संशेते विपर्येति च । तत् एवाप्रकृतार्थनिवारणार्थं प्रकृतार्थप्ररूपणार्थं संशयविनाशार्थं तत्त्वाव-

श्रोता तीन प्रकारके होते हैं—अव्युत्पन्न, समस्त विवक्षित पदार्थको जाननेवाला और एकदेशसे विवक्षित पदार्थको जाननेवाला। इनमें-से प्रथम अव्युत्पन्न होनेसे विवक्षित पदार्थको नहीं जानता, यह ऐसा ही है इस प्रकारका यथार्थज्ञान उसे नहीं होता। जैसे मार्गमें चलते हुएको तृणका स्पर्श होनेपर यथार्थ ज्ञान नहीं होता कि क्या है। दूसरा 'इसका क्या अर्थ है' इस प्रकार संशय करता है। क्योंकि सामान्यका प्रत्यक्ष, विशेषका अप्रत्यक्ष और दोनोंके विशेष धर्मोंका स्मरण होनेसे संशय अवश्य होता है जैसे यह स्थाणु है या पुरुष है। अथवा वह प्रकृत अर्थसे अन्य अर्थ लेकर विपरीत जानता है जैसे सीपमें चाँदीका ज्ञान करना। यहाँ दोनोंमें पाये जानेवाले समान धर्मका प्रत्यक्ष और दोनोंके विशेष धर्मोंका प्रत्यक्ष न होनेसे व सीपसे विपरीत चाँदीका स्मरण आनेसे सीपको चाँदी समझ लेता है। तीसरा श्रोता भी दूसरेकी तरह संशय करता है या विपरीत जान लेता है। इसीलिए अप्रकृत अर्थका निवारण, प्रकृत अर्थका प्ररूपण, संशयका विनाश और तत्त्वका अवधारण करनेके लिए जबतक सामान्य आदि भेद-प्रभेदवाले कर्मका कथन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्त्तणिदमु उभयविशेषविपरीतस्मृतियर्त्तणिदमु संशयज्ञानमु विपर्य्यासज्ञानमु पुट्टुगुं । स्थाणुर्व्वा पुरुषो वा एंदिन्तु शुक्तिकाशकले रजतमेंदितु । आवुदोंदु कारणदिदमिदमित्थमेव वस्तुवेंदितु वस्तु याथात्म्याऽप्रतिपत्तियदु अनध्यवसायमेंबुदक्कुं । गच्छतस्तृणस्पर्शवत् । एंदितदु कारणदिंदं संशयादिगळोळु व्यवस्थितनप्प शिष्यनना संशयादिगळिदं तोलगिसिनिर्णये निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः । अप्रस्तुतार्त्थापाकरणदिदमु प्रस्तुतार्त्थव्याकरणदिदमुमी नामादिचतुर्व्विधनिक्षेपं फलवंतमक्कुमा नामादिगळ लक्षणमें तेंदोडे :—अतद्गुणेषु भावेषु व्यवहारप्रसिद्धये । यत्संज्ञा कर्म्म तन्नाम नरेच्छावशवर्त्तनात् ।। त एव गुणास्तद्गुणाः । न तद्गुणा एषां ते अतद्गुणास्तेषु भावेषु पदार्त्थेषु व्यवहारप्रसिद्धये व्यवहारप्रसिद्धयर्त्थं यत्संज्ञाकर्म्म यत्संज्ञाकरणं तन्नाम तन्नामेति प्रतिपद्यते । अतद्गुणंगळप्प पदार्त्थंगळोळु व्यवहारप्रसिद्धिनिमित्तमागि यावुदोंदु नामकरणमदु नाममेंदु पेळल्पट्टुदु । येकेंदोडा नामक्के पुरुषेच्छावशवर्त्तनमुंटप्पुदे कारणमागि । तथा चोक्तं :—अंते पेळल्पट्टुदु—

अयमर्त्थो नायमर्त्थ इति शब्दा वदन्ति न, ।
कल्प्योऽयमर्त्थः पुरुषैस्ते च रागादिविप्लुताः ।।

इदर्त्थमप्पुदिदर्त्थमल्लदुदेंदितु शब्दंगळु पेळ्दुवल्लवु । मत्तें तेंदोडे पुरुषैरयमर्त्थः कल्प्यः पुरुषरुगळिंदमी शब्दक्कर्त्थमिदप्पुदिल्तेंदितु कल्पिसल्पडुगुमा पुरुषरुगळु रागादिदोषदूषितरिंदं विप्लुतंगळु विप्लवमनुळ्ळुदरिंदं ।

"साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनं ।
सोऽयमित्यवधानेन स्थापना सा निगद्यते ।।"

वस्तुसादृश्यदोळु मेणसादृश्यदोळं मेणु काष्ठादिद्रव्यदोळु यन्निवेशनं आउदोंदु निक्षेपणमदाव तेरदिनेंदोडे—सोऽयमिति अदिदेंदितु अवधानेन प्रयत्नविशेषदिदं सा स्थापना निगद्यते अदु स्थापनेयेंदु पेळल्पट्टुदु ।

धारणार्थं च यावत्सामान्यादिभेदप्रभेदं कर्म, नामादिचतुर्विधनिक्षेपाश्रयेण नोच्यते तावत् तेषां श्रोतॄणां मनः संशयादिभ्यो न निवर्तते इति तल्लक्षणमुच्यते—

अतद्गुणेषु भावेषु व्यवहारप्रसिद्धये । यत्संज्ञाकर्म तन्नाम नरेच्छावशवर्तनात् ।।१।।
साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनम् । सोऽयमित्यवधानेन स्थापना सा निगद्यते ।।२।।

नाम आदि चार प्रकारके निक्षेपोंके आश्रयसे नहीं किया जाता तबतक उनके विषयमें श्रोताओंके मनसे संशयादि दूर नहीं होते। इसलिए नामादि निक्षेपोंका लक्षण कहते हैं—जिन पदार्थोंमें जो गुण नहीं है उनमें व्यवहार चलानेके लिए मनुष्यकी इच्छानुसार जो संज्ञा रखी जाती है वह नामनिक्षेप है। साकार अथवा निराकार काष्ठ आदिमें 'यह वह है' इस प्रकारका ध्यान करके जो निवेश किया जाता है उसे स्थापना कहते हैं। आगामी गुणके योग्य अर्थ द्रव्यनिक्षेपका विषय है और तत्कालकी पर्यायसे युक्त वस्तु भावनिक्षेपका विषय है। उदाहरणके रूपमें—जैसे किसी व्यक्तिने अपनी इच्छानुसार व्यवहार चलानेके लिए अपने पुत्रका नाम राजा रखा। सो उसको राजा कहना नामनिक्षेप है। काष्ठ आदिको प्रतिमामें या चित्रमें 'यह राजा है' ऐसी स्थापना करके उसे राजा मानना स्थापनानिक्षेप

---

१. म विप्लुतरुगलु । साकारे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"आगामिगुणयोग्योर्त्थो द्रव्यं न्यासस्य गोचरः।
तत्कालपर्य्ययाक्रांतं वस्तु भावोऽभिधीयते ॥"

आगामिगुणयोग्यार्थः आगामिगुणंगळिगे योग्यमप्पत्थं कथंभूतः न्यासस्य गोचरः निक्षेपक्के गोचरमप्पुदु द्रव्यं द्रव्यमें दिल्लि पेळल्पट्टुदु। तत्कालपर्य्ययाक्रांतं वस्तु तत्कालपर्य्ययदिदं परिणतमप्पु वस्तु भावः भावमें दितु अभिधीयते पेसग्गों ळल्पट्टुदु।

मुंपेळ्द चतुर्व्विधनामादिगळोळु सामान्यकर्म्म मूलोत्तरप्रकृतिगळ्गे न्यासमं चतुस्त्रिंशद्गाथासूत्रगळिंदं पेळ्दपरु :—

णामं ठवणा दवियं भावो त्ति चउव्विहं हवे कम्मं
पयडी पावं कम्मं मलं ति सण्णा हु णाममलं ॥५२॥

नाम स्थापना द्रव्यं भाव इति चतुर्व्विधं भवेत्कर्म्मं। प्रकृतिः पापं कर्म्म मलमिति संज्ञं खलु नाममलं।

नामकर्म्म स्थापनाकर्म्म द्रव्यकर्म्म भावकर्म्ममें दितु कर्म्मसामान्यं चतुर्व्विधमक्कुमवरोळु प्रथमोद्दिष्टनाममलं नामकर्म्म प्रकृतिः प्रकृतियें दुं पापं पापमें दुं कर्म्म कर्म्मर्म दुं मलमिति मलमुमें दितु संज्ञं भवेत् संज्ञेयनुळ्ळदक्कुं।

सरिसासरिसे दव्वे मदिणा जीवट्ठियं खु जं कम्मं।
तं एदत्ति पदिट्ठा ठवणा तं ठावणा कम्मं ॥५३॥

सादृश्यासादृश्यद्रव्ये मत्या जीवस्थितं खलु यत्कर्म्मं। तदेतदिति प्रतिष्ठा स्थापना तत्स्थापनाकर्म्म ॥

सद्भाववस्तुविनोळमसद्भाववस्तुविनोळं। मत्या बुद्धियिदं जीवाशेषप्रदेशप्रचययंगळोळिर्त्तिर्द्द यत्कर्म आउदों दु सामान्यकर्म्मं। तदेतदिति अदिदें दितु प्रतिष्ठा स्थापना स्थापने तत् स्थापनाकर्म्म अदु स्थापनाकर्म्ममें दु पेळल्पट्टुदु।

आगामिगुणयोग्योऽर्थो द्रव्यं न्यासस्य गोचरः। तत्कालपर्ययाक्रान्तं वस्तु भावोऽभिधीयते ॥३॥ ॥५१॥ अथ नामादिषु सामान्यकर्म मूलोत्तरप्रकृतोश्च चतुस्त्रिंशद्गाथासूत्रैर्न्यस्यति—

कर्मसामान्यं नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधम्। तत्र नाममलं नामकर्म। प्रकृतिरिति-पापमिति-कर्मेति-मलमिति च संज्ञं स्यात् ॥५२॥

सदृशे असदृशे वा वस्तुनि मत्या जीवा[1]शेषप्रदेशप्रचयस्थितं यत्सामान्यकर्म तदिदमिति प्रतिष्ठा स्थापनाकर्मेत्युच्यते ॥५३॥

है। आगे जो राजा होगा उसको राजा कहना द्रव्यनिक्षेप है और वर्तमानमें जो पृथ्वीका स्वामी राज्यासनपर विराजता है उसे राजा कहना भावनिक्षेप है ॥५१॥

सामान्य कर्म और मूल तथा उत्तर प्रकृतियोंमें नामादि निक्षेपका कथन चौंतीस गाथाओं द्वारा करते हैं—कर्मसामान्य नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे चार प्रकार है। उसमें प्रकृति, पाप कर्म अथवा मल ऐसी संज्ञा नाममल है ॥५२॥

कर्मके समान अथवा असमान द्रव्यमें बुद्धिके द्वारा 'जीवके समस्त प्रदेशोंमें स्थित जो सामान्य कर्म है वह यह है' ऐसी स्थापना स्थापनाकर्म है ॥५३॥

१. अ जीवाविशेष।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दव्वे कम्मं दुविहं आगमणोआगमं ति तप्पढमं ।
कम्मागमपरिजाणगजीवो उवजोगपरिहीणो ॥५४॥

द्रव्ये कर्म्म द्विविधमागम नोआगम इति तत्प्रथमं । कर्म्मागमपरिज्ञायकजीवः उपयोगपरिहीनः ॥

द्रव्यदोळु कर्म्मं द्विविधमक्कुमागमद्रव्यकर्म्ममें दुं नोआगमद्रव्यकर्म्ममुमें दितु । तत्प्रथमं तयोर्म्मध्ये प्रथममागमद्रव्यकर्म्मं कर्म्मागमपरिज्ञायकजीवः कर्म्मागमवाच्यवाचकज्ञातृज्ञेयसंबंध परिज्ञायिकजीवनप्पं । उपयोगपरिहीनः अनुपयुक्तनप्पं । तच्छास्त्रार्त्थावधारणानुचिंतनव्यापाररहितनें बुदत्थं ।

जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं तु होदि जं बिदियं ।
तत्थ सरीरं तिविहं तियकालगयंति दो सुगमा ॥५५॥

ज्ञायकशरीरं भव्यं तद्व्यतिरिक्तं तु भवति यद्द्वितीयं । तत्र शरीरं त्रिविधं त्रिकालगतमिति द्वे सुगमे ॥

यद्द्वितीयं आवुदों दु नोआगमद्रव्यकर्म्मं तत्त्रिविधं अदु त्रिविधमक्कुं ज्ञायकशरीरं भावि तद्व्यतिरिक्तमिति । ज्ञातृशरीरमें दुं ज्ञायि भाविशरीरमें दुं आयेरडरिदं व्यतिरिक्तमें दितु । तु मत्ते तत्र अवरोळु शरीरं प्रथमोद्दिष्टज्ञायकशरीरं त्रिविधं त्रिप्रकारमक्कुं । त्रिकालगतमिति त्रिकालंगळोळु भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालंगळोळिर्द्दुवें दिन्तु द्वे सुगमे तत् ज्ञातृविन त्रिकालगतशरीरंगळोळु भूतशरीरमं बिट्टुळिद वर्त्तमानभाविशरीरंगळें रडुं सुगमंगळेकें दोडे वर्त्तमानदोळिरुत्तिर्द्दुदुं भाविकालदोळागल्वेडिदर्द्दुवुमप्पुदरिदं ।

भूतशरीरक्के पेळ्दपरु :—

द्रव्ये कर्म द्विविधं आगमनोआगमभेदात् । तत्र कर्मस्वरूपप्रतिपादकागमस्य वाच्यवाचकज्ञातृज्ञेयसंबन्धपरिज्ञायकजीवो यः तदर्थावधारणचिन्तनव्यापाररूपोपयोगरहितः स आगमद्रव्यकर्म भवति ॥५४॥

तु—पुनः यद्द्वितीयं नो-आगमद्रव्यकर्म तत्त्रिविधं भवति—ज्ञायकशरीरं भावि तद्व्यतिरिक्तमिति । तत्र ज्ञायकशरीरं त्रिविधं त्रिकालगतमिति । तत्र वर्तमानभाविशरीरे द्वे सुगमे तत्तत्कालवर्तित्वात् ॥५५॥ भूतशरीरस्याह—

द्रव्यनिक्षेप रूप कर्मके दो भेद हैं—आगम द्रव्यकर्म और नोआगमद्रव्यकर्म । उनमें-से कर्मके स्वरूपका कथन करनेवाले आगमका वाच्य-वाचक सम्बन्ध और ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्ध से जाननेवाला जो जीव वर्तमानमें उसके अर्थके अवधारण और चिन्तन व्यापाररूप उपयोगसे रहित है अर्थात् उसका उपयोग अन्य ओर है वह आगमद्रव्यकर्म है ॥५४॥

जो दूसरा नोआगमद्रव्यकर्म है वह तीन प्रकारका है—ज्ञायकशरीर, भावि, तद्व्यतिरिक्त। उनमें-से ज्ञायक शरीर तीन प्रकार है—भूत, भावि और वर्तमानकालीन। जिस शरीर सहित जीव कर्मके स्वरूपको जानता है उसका वह शरीर वर्तमान है। उससे पूर्वका छोड़ा हुआ शरीर भूत है और आगामीमें जो शरीर धारण करेगा वह भावि है। उनमें-से वर्तमान और भाविशरीर दो सुगम हैं, क्योंकि दोनों अपने-अपने कालवर्ती होते हैं ॥५५॥

भूत शरीरको कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूदं तु चुदं चयिदं चत्तंति तिधा चुदं सपाकेण ।
पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि ॥५६॥

भूतं तु च्युतं च्यावितं त्यक्तमिति त्रिधा च्युतं स्वपाकेन । पतितं कदलीघातपरित्यागाभ्यामूनकं भवति ॥

ज्ञायकन भूतशरीरं । तु मत्ते । च्युतशरीरमें दुं च्यावितशरीरमें दुं त्यक्तशरीरमें दितु । त्रिधा त्रिप्रकारमक्कुमल्लि । च्युतं च्युतशरीरमें बुदु स्वपाकेन पतितं स्वस्थितिक्षयवशदिदं बिद्दुं पोदुदागियुं । कदलीघातपरित्यागाभ्यामूनकं भवति कदलीघातमुं सन्न्यासमुमें बेरडींरिदं हीनमादुदक्कुं ।

कदलीघातक्के लक्षणमं पेळदपरु :—

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं ।
उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥५७॥

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंक्लेशैः । उच्छ्वासाहाराणां निरोधतः च्छिद्यते आयुः ॥

विषमुं वेदनेयुं रक्तक्षयमुं भयमुं शस्त्रघातमुं संक्लेशमुमुच्छ्वासनिरोधमुमाहारनिरोधमुमें बी हेतुगळिदमायुष्यं खंडिसल्पडुगुमदु कदलीघातमें बुदक्कुं ।

कदलीघादसमेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि ।
घादेण अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि ॥५८॥

कदलीघातसमेतं त्यागविहीनं त च्यावितं भवति। घातेनाघातेन वा पतितं त्यागेन त्यक्तमिति ॥

तु मत्तें ज्ञायकनाउदों दु भूतशरीरं । कदलीघातसमेतं कदलीघातसमेतमागि[1] पतितं बीळल्पट्टुदु । चागविहीणं त्यागदिंदं हीनमादुदादोडे । च्यावितं भवति च्यावितमें बुदक्कुं । मत्तमा

ज्ञायकस्य भूतशरीरं तु पुनः च्युतं च्यावितं त्यक्तं चेति त्रिधा[2] । तत्र च्युतं स्वपाकेन पतितमपि कदलीघातसंन्यासाभ्यामूनं[3] भवति ॥५६॥ कदलीघातस्य लक्षणमाह—

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रघातसंक्लेशोच्छ्वासनिरोधाहारनिरोधैर्हेतुभिरायुः छिद्यते स कदलीघातः ॥५७॥

तु—पुनः ज्ञायकस्य यद्भूतशरीरं कदलीघातसमेतं सत् पतितम् । त्यागेन संन्यासेनोनं तदा तच्च्यावित-

---

ज्ञायकका भूत शरीर च्युत, च्यावित, त्यक्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमें-से च्युतशरीर स्वयं पककर अपने समयसे छूटता है । वह कदलीघात और संन्यास इन दोनोंसे रहित होता है ॥५६॥

कदलीघातका लक्षण कहते हैं—

विष, वेदना, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेश, उच्छ्वासका रुकना या आहारका न मिलना आदि कारणोंसे आयुका छेद होनेको कदलीघात कहते हैं ॥५७॥

ज्ञायकका जो भूत शरीर कदलीघातपूर्वक छूटता है किन्तु संन्याससे रहित होता है

---

१. म °तसहितमा° । २. आ त्रिविधा । ३. आ °घातं लक्षयति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञातृविनाउदो॑ड़ु भूतशरीरं घातेनाघातेन वा कदलीघातदिंदं मेण्कदलीघातरहितदिंदं मेणु। त्यागेन पतितं सन्यासस‌हितमागि पतितमादुदु। त्यक्तमिति त्यक्तशरीरमें दितु पेळल्पट्टुदु।

आ त्यक्तशरीरं मरणविधानभेददिंदं त्रिविधमें दु पेळदपरु :—

भत्तपइण्णाइंगिणिपाओग्गविहीहि चत्तमिदि तिविहं ।
भत्तपइण्णा तिविहा जहण्णमज्झिमवरा य तहा ॥५९॥

भक्तप्रतिज्ञाइंगिनीप्रायोपगमनविधिभिस्त्यक्तमिति त्रिविधं। भक्तप्रतिज्ञा त्रिविधा जघन्यमध्यमवरा च तथा ॥

ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरं भक्तप्रतिज्ञायिंगिनीप्रायोपगमनविधिभिः। भक्तप्रतिज्ञेयुं इंगिनियुं प्रायोपगमनमुमें ब मरणविधानभेदंगळिंदं। त्यक्तं बिडल्पट्टुदें दितु। त्रिविधं त्रिप्रकारमक्कुमल्लि प्रथमोद्दिष्टभक्तप्रतिज्ञा तथा ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरदंते। त्रिविधा त्रिप्रकारमक्कुं। जघन्यभक्तप्रतिज्ञाविधान मृतियें दु मध्यमभक्तप्रतिज्ञाविधानमरणमें दुमुत्कृष्टभक्तप्रत्याख्यान मरणमुमें दितु।

अनंतरं त्रिविधभक्तप्रतिज्ञाविधानमरणंगळगे कालप्रमाणमं पेळदपरु :—

भत्तपइण्णायविही जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि ।
बारसवरिसा जेट्ठा तम्मज्झे होदि मज्झिमया ॥६०॥

भक्तप्रतिज्ञाविधिर्ज्जघन्योन्तर्म्मुहूर्त्तो भवति। द्वादशवर्षाण्युत्कृष्टस्तन्मध्ये भवति मध्यमकाः ॥

भक्तप्रतिज्ञामरणविधानकालं जघन्यमन्तर्म्मुहूर्त्तमक्कुमुत्कृष्टं द्वादशवर्षंगळप्पुवु। मध्यभक्तप्रतिज्ञामरणविधानकालंगळु। तन्मध्ये तयोर्ज्जघन्योत्कृष्टयोर्म्मध्यं तस्मिन्। आ एरडर मध्यदोळु समयाधिकजघन्यान्तर्म्मुहूर्त्तमादियागि समयाधिकक्रमदिंदं उत्कृष्टविधान द्वादशवरुषंगळोळेकसमयोनसंख्यातावलिपरियंतमाद सर्व्वमध्यमविकल्पंगळ संख्यातावलिप्रमितंगळप्पुवरिंदं युक्तासंख्यातमिति भवति।

कदलीघातेन तद्विना वा त्यागेन पतितं त्यक्तमिति ॥५८॥ तस्यैव मरणविधानेन त्रैविध्यमाह—

तत् त्यक्तशरीरं भक्तप्रतिज्ञा-इंगिनी-प्रायोपगमनमरणविधिभिस्त्यक्तमिति त्रिविधम्। तत्र भक्तप्रतिज्ञापि तथा ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरवत् त्रिधा जघन्या मध्यमोत्कृष्टेति ॥५९॥ तज्जघन्यादेः कालप्रमाणमाह—

भक्तप्रतिज्ञामरणविधानकालः जघन्योऽन्तर्मुहूर्तो भवति। २ ११। उत्कृष्टो द्वादशवर्षमात्रो भवति।

वह च्यावित होता है। कदलीघातसे या उसके बिना किन्तु संन्यासपूर्वक छूटा शरीर त्यक्त होता है ॥५८॥

उसी त्यक्तशरीरके त्यागके मरणविधानकी अपेक्षा तीन भेद कहते हैं—

वह त्यक्तशरीर भक्त प्रतिज्ञा, इंगिनी और प्रायोपगमन नामक मरणविधिके भेदसे तीन प्रकार है। जैसे ज्ञायकका भूत त्यक्तशरीर तीन प्रकारका है वैसे ही भक्तप्रतिज्ञा भी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदसे तीन प्रकार है ॥५९॥

उन जघन्य आदि भेदोंके कालका प्रमाण कहते हैं—

भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजनकी प्रतिज्ञापूर्वक मरणविधानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त

१. आ. भवति २ ११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्यपतितासंख्यातराशिप्रमाणमप्पुववक्के संदृष्टि :—आदि २७ अन्तेव १२ सुद्धे २१। १। वड्ढि-हिदे २१ १ रूवसंजुदे २१ २१ ठाणा। ये दितिनितु मध्यमकालविकल्पंगळसंख्याततंगळप्पुवें-बुदरर्थं ॥

यिंगिनीप्रायोपगमनमरणंगळगे लक्षणमं पेळदपरु :—

अप्पोवयारवेक्खं परोवयारूणमिंगिणीमरणं ।
सपरोवयारहीणं मरणं पाओवगमणमिदि ॥६१॥

आत्मोपचारापेक्षं परोपचारोनमिंगिनीमरणं। स्वपरोपचारहीनं मरणं प्रायोपगमनमिति ॥

तन्निदं तनगे माळ्पुपचारापेक्षमुं परोपचारनिरपेक्षमुमिंगिनीमरणमें बुदक्कुं। स्वपरोपचार-रहितं मरणं प्रायोपगमनमें बुदक्कुं ॥

ज्ञायकशरीरभेदमं पेळ्दनंतरं भावि ज्ञातृकशरीरमं पेळदपरु :—

भवियंति भवियकाले कम्मागमजाणगो स जो जीवो ।
जाणुगसरीरभवियं एवं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥६२॥

भविष्यति भाविकाले कर्म्मागमज्ञायकः स यो जीवः। ज्ञायकशरीरभव्यः एवं भवतीति निर्दिष्टं ॥

यः आवनोर्व्वं मुंपेळल्पट्टं। कर्म्मागमज्ञायकः कर्म्मागमज्ञायी। भाविकाले भाविकालदोळु भविष्यति आदहनु। स जीवः आ जीवं। ज्ञायकशरीरभव्यः ज्ञायकभाविशरीरमक्कुमिन्तु भावियें दु पेळल्पट्टुज्ञायकशरीरं एवं भवति निर्द्दिष्टं इंतप्पुदें दु पेळल्पट्टुदु ॥

---

२ १ १ १। तन्मध्यवर्ती समयोत्तरविकल्पः स सर्वोऽपि मध्यमो भवति ॥६०॥ इंगिनीप्रायोपगमनमरणे लक्षयति—

स्वकृतोपचारापेक्षं परोपचारनिरपेक्षं तदिङ्गिनीमरणम्। स्वपरोपचाररहितं[1] तन्मरणं प्रायोपगमन-मिति ॥६१॥ ज्ञायकशरीरभेदमुक्त्वा भाविज्ञातृशरीरमाह—

यः कर्मागमज्ञायको भाविकाले भविष्यति स जीवो ज्ञायकभाविशरीरं स्यात्। एवं भावीत्युक्त-ज्ञायकशरीरं भवति इति निर्दिष्टम् ॥६२॥

है। उत्कृष्ट बारह वर्ष प्रमाण है। उनके मध्यवर्ती एक-एक समय अधिक जितने भेद हैं वह सब मध्यम कालका प्रमाण है ॥६०॥

इंगिनी और प्रायोपगमन मरणका लक्षण कहते हैं—

जिस संन्यासमरणमें संन्यास धारण करनेवाला अपने शरीरका उपचार स्वयं तो करता है किन्तु दूसरेसे नहीं कराता वह इंगिनी मरण है। और जिसमें अपना उपचार न स्वयं करता है, न दूसरेसे कराता है वह प्रायोपगमन मरण है ॥६१॥

ज्ञायक शरीरके भेद कहकर भाविज्ञायक शरीरको कहते हैं—

जो भविष्यकालमें कर्मविषयक आगमका ज्ञाता होगा वह जीव ज्ञायकभावि है इस प्रकार भाविज्ञायक शरीर कहा है ॥६२॥

---

१. आ. °रहितं तेजो प्रा° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं तद्व्यतिरिक्तमं पेळ्दपरु :—

तव्वदिरित्तं दुविहं कम्मं णोकम्ममिदि तहिं कम्मं ।
कम्मसरूवेणागय कम्मं दव्वं हवे णियमा ॥६३॥

तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्म्म नोकर्म्म इति तस्मिन् कर्म्म। कर्म्मस्वरूपेणागतकर्म्मद्रव्यं भवेन्नियमात् ॥

ताभ्यां व्यतिरिक्तं ज्ञायकशरीरभाविशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं। अरिवन शरीरमरियलु वेडिद्दनशरीरमुमें बेरडुमल्लदुदु तद्व्यतिरिक्तमें बुदक्कुमदु द्विविधं द्विप्रकारमक्कुं। कर्म्म नोकर्म्म इति कर्म्मरूप तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यमें दुं नोकर्म्मरूपतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यमुमें दितु। तस्मिन् आ द्विविधदोळु कर्म्म कर्म्मस्वरूप तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यं कर्म्मस्वरूपेणागतद्रव्यं ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिस्वरूपदिदं परिणतकर्म्मद्रव्यमक्कुं नियमात् नियमदिदं ॥

अनंतरं नोकर्म्मरूप तद्व्यतिरक्त नोआगमद्रव्यमं पेळ्दपरु :—

कम्मद्व्वादण्णं दव्वं णोकम्मदव्वमिदि होदि ।
भावे कम्मं दुविहं आगमणोआगमंति हवे ॥६४॥

कर्म्मद्रव्यादन्यद्रव्यं नोकर्म्मद्रव्यमिति भवति। भावे कर्म्म द्विविधं आगम नोआगम इति भवेत् ॥

कर्म्मस्वरूपद्रव्यदत्तणिदं। अन्यत् द्रव्यं मत्तोंदु द्रव्यं। नोकर्म्मद्रव्यमिति भवेत् नोकर्म्म-द्रव्यकर्म्ममें दितु पेळल्पट्टुदक्कुं। भावे कर्म्म द्विविधं भावदोळु कर्म्मं द्विप्रकारमक्कुं। आगम नो आगम इति आगमभावकर्म्ममेंदुं नोआगम भावकर्म्ममें दितु ॥

आ भावकर्म्मद द्विप्रकारमं पेळ्दपरु :—

कम्मागमपरिजाणगजीवो कम्मागमम्मि उवजुत्तो ।
भावागमकम्मोत्ति य तस्स य सण्णा हवे णियमा ॥६५॥

कर्म्मागमपरिज्ञायकजीवः कर्म्मागमे उपयुक्तः। भावागमकर्म्म इति तस्य च संज्ञा भवेन्नियमात् ॥

अथ तद्व्यतिरिक्तमाह—

तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्मनोकर्मेति। तत्र मूलोत्तरप्रकृतिस्वरूपेण परिणतं कर्म[1] द्रव्यकर्म भवति नियमात् ॥६३॥ नोकर्मरूपतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यमाह—

कर्मस्वरूपादन्यद्द्रव्यं नोकर्मेत्युच्यते। भावे कर्म द्विविधं आगमभावकर्म नोआगमभावकर्मेति ॥६४॥

आगे नो आगम द्रव्यकर्मके तीसरे भेद तद्व्यतिरिक्तको कहते हैं—

तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्यकर्मके दो भेद हैं—कर्म और नोकर्म। उनमें-से मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतिके रूपमें परिणमा पुद्गलद्रव्य कर्मतद्व्यतिरिक्त है ॥६३॥

नोकर्मरूप तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यको कहते हैं—

कर्मरूपसे अन्य द्रव्यको नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म कहते हैं। भाव-निक्षेपरूप कर्मके भी दो भेद हैं—आगमभावकर्म, नोआगमभावकर्म ॥६४॥

---

१. आ. °कर्म भवति।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

कर्म्मागम परिज्ञायकजीवः कर्म्मस्वरूपप्रतिपादकागमशास्त्रपरिज्ञाइयप्प जीवं। कर्म्मागमे उपयुक्तः तच्छास्त्रोपयोगमुळ्ळं। भावागम कर्म्मं इति भावागमकर्म्ममें बिंतु। तस्य च संज्ञा भवेन्नियमात् आ जीवंगे संज्ञे नियमदिंदमक्कुं॥

अनंतरं नोआगमभावमं पेळ्दपरु :—

णोआगमभाओ पुण कम्मफलं भुंजमाणगो जीवो।
इदि सामण्णं कम्मं चउव्विहं होदि णियमेण ॥६६॥

नो आगमभावः पुनः कर्म्मफलं भुंजानो जीवः। इति सामान्यं कर्म्मं चतुर्व्विधं भवति नियमेन॥

नोआगम भावकर्म्ममुं पुनः मत्ते। कर्म्मफलमननुभविसुत्तिर्प्पं जीवनक्कुं। इंतु सामान्यकर्म्मं चतुर्व्विधमक्कुं नियमदिदं॥

अनंतरं मूलोत्तरप्रकृतिगळ्गे नामादिचतुर्व्विधमं पेळ्दपरु :—

मूलुत्तरपयडीणं णामादी एवमेव णवरिं तु।
सगणामेण य णामं ठवणा दवियं हवे भावो ॥६७॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादय एवमेव विशेषस्तु। स्वस्वनाम्ना च नाम स्थापना द्रव्यं भवेद्भावः॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां मूलोत्तरप्रकृतिगळ्गंमुत्तरप्रकृतिगळ्गं। नामादयः नामस्थापनाद्रव्यभावंगळु। एवमेव यो सामान्यकर्म्मक्के पेळ्दंतेये। भवेत् अक्कुं। तु मत्ते। विशेषः विशेषमुंटदाउदेंदोड स्वस्वनाम्ना च तंतम्म नामदिंदमे नाम स्थापना द्रव्यं भावो भवेत् तंतम्म नामस्थापनाद्रव्यं भावमुमक्कुं॥

अनंतरमल्लि विशेषमं पेळ्दपरु :—

तत्र कर्मस्वरूपप्रतिपादकागमपरिज्ञायकः कर्मागमे उपयुक्तः तस्य भावागमकर्मसंज्ञा नियमेन भवति॥६५॥

नोआगमभावकर्म पुनः कर्मफलमनुभवन् जीवो भवति। एवं सामान्यकर्म चतुर्विधं भवति नियमेन॥६६॥

अथ मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादिभेदानाह—

मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च नामस्थापनाद्रव्यभावाः सामान्यकर्मोक्तिरीत्यैव भवन्ति। तु—पुनः विशेषः। स कः? स्वस्वनाम्नैव नाम स्थापना द्रव्यं भावो भवति॥६७॥ पुनः तत्र विशेषमाह—

जो जीव कर्मके स्वरूपके प्रतिपादक आगमका ज्ञाता है और उसीमें अपना उपयोग लगा रहा है उसको नियमसे आगमभावकर्म कहते हैं॥६५॥

जो जीव कर्मका फल भोग रहा है वह नोआगमभावकर्म है। इस प्रकार नियमसे सामान्य कर्म चार प्रकार है॥६६॥

अब मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियोंके नामादि भेद कहते हैं—

मूल प्रकृतियों और उत्तरप्रकृतियोंके नाम, स्थापना, द्रव्य भाव सामान्य कर्मके कहे भेदोंके अनुसार ही होते हैं। इतना विशेष है कि प्रत्येक प्रकृतिके नाम, स्थापना, द्रव्य भाव अपने-अपने नामानुसार ही होते हैं॥६७॥

पुनः अन्य विशेष कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलुत्तरपयडीणं णामादि चउव्विहं हवे सुगमं ।
वज्जित्ता णोकम्मं णोआगमभावकम्मं च ॥६८॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादि चतुर्विधं भवेत्सुगमं । वर्जित्वा नोकर्म्म नोआगमभाव कर्म्म च ॥

ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिगळगं मतिज्ञानावरणाद्युत्तरप्रकृतिगळगं नामादिचतुःप्रकारं सुगममक्कुमल्लि नोकर्म्ममुं नोआगमभावकर्म्ममुमें बेरडं वर्ज्जिसि शेषमनितुं सामान्यकथनमें तंतेयप्पुदरिदं सुगममक्कुमा नोकर्म्म नोआगमभावकर्म्मगळं मूलप्रकृतिगळोळमुत्तरप्रकृतिगळोळ योजिसिदपरदें तें बोडे :—

पडपडिहारसिमज्जा आहारं देह उच्चणीचंगं ।
भंडारी मूलाणं णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥६९॥

पटप्रतिहारासिमद्याहारदेहोच्चनीचांगं । भांडागारी मूलानां नोकर्म्म द्रव्यकर्म्म तु ॥

ज्ञानावरणक्के श्लक्ष्णकांडपटं नोकर्म्मद्रव्यमक्कुमदुवुं ज्ञानावरणदंते वस्तुविशेषप्रतिपत्तिप्रतिबंधकमप्पुदरिदं ॥

दर्शनावरणक्के द्वारनियुक्तप्रतिहारं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममुमक्कुमातंगं दर्शनावरणदंते वस्तुसामान्यग्रहणप्रतिबंधकत्वगुंटप्पुदरिदं ॥ वेदनीयकर्म्मक्के मधुलिप्तासिधारे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमदुवुं विषयानुभवनदोळु सुखदुःखंगळं वेदनीयमें तु माळ्कुमंते सुखदुःखकारणमप्पुदरिदं । मोहनीयकर्म्मक्के मद्यं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमदुवुं मोहनीयदंते सम्यग्दर्शनादिजीवस्वभावमं पत्तुविडिसि

मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च नामादिचतुर्विधं सुगमं भवति । तत्र नोकर्म नो आगमभावकर्मेति द्वयं वर्जित्वा शेषस्य सामान्यवत् कथनात् ॥६८॥ तन्नोकर्मनोआगमभावकर्मणी मूलोत्तरप्रकृतीषु योजयति—

तत्र ज्ञानावरणस्य नोकर्मद्रव्यकर्म श्लक्ष्णकाण्डपटो भवति विशेषग्रहणप्रतिबन्धकत्वात् । दर्शनावरणस्य द्वारनियुक्तप्रतीहारः सामान्यग्रहणविराधकत्वात् । वेदनीयस्य मधुलिप्तासिधारा सुखदुःखकारणत्वात् । मोह-

---

मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियोंके नामादि चारों भेद सुगम हैं। किन्तु नोकर्म और नोआगम भावकर्मको छोड़कर शेषका कथन सामान्य कर्मके समान जानना। आशय यह है कि पहले द्रव्यनिक्षेपके दो भेद किये थे—आगम और नोआगम। नोआगम द्रव्यके तीन भेद कहे थे—ज्ञायक शरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्त। उनमें-से तद्व्यतिरिक्तके दो भेद कहे थे—कर्म और नोकर्म। सो यहाँ नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्मका वर्णन सब प्रकृतियोंमें करते हैं। जिस-जिस प्रकृतिका जो-जो उदय फलरूप कार्य है उस-उस कार्यमें जो बाह्यवस्तु निमित्त होती है उस वस्तुको उस प्रकृतिका नोकर्म द्रव्यकर्म कहते हैं ॥६८॥

मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें नोकर्म और नोआगम भावकर्मकी योजना करते हैं—

ज्ञानावरणका नोकर्मद्रव्यकर्म घने वस्त्रका परदा है क्योंकि वह विशेष रूपसे वस्तुको ग्रहण करनेमें बाधक होता है। दर्शनावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म द्वारपर नियुक्त द्वारपाल है क्योंकि वह सामान्य रूपसे भी देखनेमें बाधक होता है। वेदनीयका नोकर्म द्रव्यकर्म मधुसे लिप्त तलवारकी धार है क्योंकि उसको चाटनेसे सुख और पुनः दुःख होता है। मोहनीयका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरुळ्माडुगुमंते मद्यमुं निजस्वभावमं पत्तुविडिसि सोक्किसुगुमप्पुदरिदं । आयुष्यकर्म्मक्के चतुर्व्विधाहारं नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्ममक्कुमा चतुर्व्विधाहारक्के आयुष्यकर्म्मदंते आयुःकर्म्मधृतशरीरक्के बलाधानकारणत्वदिदं शरीरस्थितिहेतुत्वमुंटप्पुदरिदं । नामकर्म्मक्के औदारिकादिदेहं नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुमा देहक्केयुं नामकर्म्मदंते औदारिकादिदेहनिर्व्वर्त्तकत्वमुंटदे ते दोडे औदारिकादिदेहवर्गणेगळगे योगोत्पादकत्वमुंटप्पुदरिदं तन्निमित्तकमप्पौदारिकादिदेहनिर्व्वर्त्तकत्वं सिद्धमप्पुदरिदं ॥

गोत्रकर्म्मक्के युच्चनीचांगं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमदक्के गोत्रकर्म्मदंते उच्चनीचकुलाविर्भावकत्वमुंटप्पुदरिदं । अन्तरायकर्म्मक्के भाण्डागारिकं नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुमवंगमंतरायकर्म्मदंते भोगोपभोगादिवस्तुगळगमन्तरायकरणत्वमुंटप्पुदरिदं । तु मत्ते ॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळगे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममं पेळदपरु :—

पडविसयपहुडिदव्वं मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं ।
मदिसुदबोहाणं पुण णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥७०॥

पटविषयप्रभृति द्रव्यं मतिश्रुतव्याघातकरणसंयुक्तं । मतिश्रुतबोधयोः पुनर्न्नोकर्म्म द्रव्यकर्म्म तु ॥

पटप्रभृतिद्रव्यं विषयप्रभृतिद्रव्यमुं क्रमदिदं मतिज्ञानव्याघातकरणसंयुक्तमुं श्रुतज्ञानव्याघातकरणसंयुक्तमप्पुववु कारणमागि मतिज्ञानावरणक्के पटप्रभृतिद्रव्यं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । श्रुतज्ञानावरणक्के विषयप्रभृतिद्रव्यं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । तु इति ॥

नीचस्य मद्यं सम्यग्दर्शनादिजीवगुणघातकत्वात् । आयुषः चतुर्विधाहारः धृतशरीरस्य बलाधानकारणत्वेन स्थितिहेतुत्वात् । नामकर्मण औदारिकादिदेहः योग्योत्पादकत्वेन औदारिकादिदेहनिवर्तकत्वात् । गोत्रस्य उच्चनीचाङ्गं उच्चनीचकुलाविर्भावकत्वात् । अन्तरायस्य भाण्डागारिकः भोगोपभोगादिवस्तूनामन्तरायकरणात् ॥६९॥ तु-पुनः अनन्तरमुत्तरप्रकृतीनामाह—

पटप्रभृतिद्रव्यं मतिज्ञानस्य विषयप्रभृतिद्रव्यं श्रुतज्ञानस्य च व्याघातकरणसंयुक्तं तत्तदावरणयोर्नोकर्मद्रव्यकर्म भवति तु-पुनः इति ॥७०॥

नोकर्म मद्य है क्योंकि वह जीवके सम्यग्दर्शन आदि गुणोंका घातक है। आयुका नोकर्म चार प्रकारका आहार है क्योंकि वह धारण किये शरीरके बलाधानमें कारण होनेसे उसकी स्थितिमें निमित्त होता है। नामकर्मका नोकर्म औदारिक आदि शरीर है क्योंकि वह योगका उत्पादक होनेसे औदारिक आदि शरीरको उत्पन्न करता है। गोत्रकर्मका नोकर्म उच्च-नीच शरीर है क्योंकि वह उच्च और नीच कुलको प्रकट करता है। अन्तरायका नोकर्म भण्डारी है क्योंकि वह भोग-उपभोग आदिकी वस्तुओंमें विघ्न डालता है ॥६९॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें नोकर्म कहते हैं—

मतिज्ञानमें बाधा डालनेवाले वस्त्र आदि द्रव्य मतिज्ञानावरणके नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। और श्रुतज्ञानमें बाधा डालनेवाले इन्द्रियोंके विषय आदि श्रुतज्ञानावरणके नोकर्म हैं ॥७०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओहिमणपज्जवाणं पडिघादणिमित्तसंकिलेसयरं ।
जं बज्झट्ठं तं खलु णोकम्मं केवले णत्थि ॥७१॥

अवधिमनःपर्य्यययोः प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकरो यो बाह्यार्थस्तत्खलु नोकर्म्म केवले नास्ति ॥

अवधिमनःपर्य्ययज्ञानंगळ्गे प्रतिघातनिमित्तमप्प संक्लेशमं पुट्टिसुव यद्बाह्यं वस्तु आवुदों दुबाह्यवस्तु । तत् अदु । नोकर्म्मं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । केवलज्ञानावरणक्क नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममिल्लेकें दोडे केवलज्ञानं क्षायिकमेयप्पुदरिंदं तत्प्रतिबंधकमप्प संक्लेशकारि बाह्यवस्तु विल्लप्पुदरिंदं । अवधिमनःपर्य्ययज्ञानंगळु क्षायोपशमिकंगळप्पुदरिंदं तत्प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकारि बाह्यवस्तुगळवधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणंगळंते व्याघातकारिगळोलवें बुदु तात्पर्य्यं ॥

पंचण्हं णिद्दाणं माहिसदहिपहुडि होदि णोकम्मं ।
वाघादकरपडादी चक्खुअचक्खूणणोकम्मं ॥७२॥

पंचानां निद्राणां माहिषदधिप्रभृति भवति नोकर्म्म । व्याघातकरपटादिश्चक्षुरचक्षुषोर्न्नोकर्म्म ॥

पंचनिद्रादर्शनावरणंगळ्गे माहिषदधिप्रभृतिलशुनखलादिद्रव्यंगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळक्कुं । व्याघातहेतुगळप्प पटादिवस्तुगळु चक्षुरचक्षुर्द्दर्शनावरणंगळ्गे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळक्कुं ॥

ओहीकेवलदंसणणोकम्मं ताण णाणभंगोव्व ।
सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि ॥७३॥

अवधिकेवलदर्शननोकर्म्म तयोर्ज्ञानभंगवत् । सातेतरनोकर्म्म इष्टानिष्टान्नपानादि ॥

अवधिमनःपर्यययोः प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकरं यद्बाह्यं वस्तु तत् तदावरणयोर्नोकर्मद्रव्यकर्म स्यात् । केवलज्ञानावरणस्य नोकर्मद्रव्यकर्म नास्ति क्षायिकत्वेन तत्प्रतिबन्धकसंक्लेशकारिवस्तुनोऽसंभवात् । अवधिमनःपर्यययोः क्षायोपशमिकत्वात् तत् संभवतीत्यर्थः ॥७१॥

पञ्चनिद्रादर्शनावरणानां माहिषदधिलशुनखलादिद्रव्याणि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । व्याघातहेतुपटादिवस्तूनि चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणयोर्नोकर्मद्रव्यकर्म भवति ॥७२॥

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके प्रतिघातमें निमित्त संक्लेशपरिणामोंको करनेवाली जो बाह्यवस्तु है वह अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म है। केवलज्ञानावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म नहीं है क्योंकि वह क्षायिक है अतः उसके प्रतिबन्धक संक्लेशपरिणामोंको करनेवाली वस्तु सम्भव नहीं है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक हैं इसलिए उनमें होना सम्भव है ॥७१॥

पाँच निद्रादर्शनावरणोंका भैंसका दही, लहसुन, खल आदि निद्रा लानेवाले द्रव्य नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। चक्षुदर्शनावरण और अचक्षुदर्शनावरणका नोकर्म चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनमें व्याघात डालनेवाले परदा आदि होते हैं ॥७२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवधिदर्शनावरणक्के अवधिज्ञानावरणक्के पेळ्दंते नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमदेतेंदोडे अवधिदर्शनप्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकारियप्पुदाउदानुमोंदु बाह्यार्त्थमदनवधिदर्शनावरणक्के नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमा बाह्यार्त्थमुमवधिदर्शनावरणदंते अवधिदर्शनप्रतिघातहेतुमप्पुदरिदं केवलदर्शनावरणक्के केवलज्ञानावरणक्के पेळ्दंते नोकर्म्ममुमिल्ल। कारणमुं मुंपेळ्दुदेयक्कुं। सातेतरनोकर्म्म सातवेदनीयक्के इष्टान्नपानादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमसातवेदनीयक्के अनिष्टमप्पन्नपानादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ॥

आयदणाणायदणं सम्मे मिच्छे य हवदि णोकम्मं।
उभयं सम्मामिच्छे णोकम्मं होदि णियमेण ॥७४॥

आयतनानायतनं सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे च भवति नोकर्म्म। उभयं सम्यग्मिथ्यात्वे नोकर्म्म भवति नियमेन ॥

सम्यक्त्वक्के सम्यक्त्वप्रकृतिगे आयतनं आप्तनुमाप्तालयमुं। आगममुमागमधरनुं। तपमुं तपोधरनुमेंब षडायतनं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं। सम्यक्त्वप्रकृतियंते सम्यग्दर्शनविघातकारिगळल्लप्पुदरिदं। सम्यक्त्वभावक्के चलमलिनावगाढ हेतुगळप्पुदरिदमुं। अनाप्तनुमनाप्तालयमुं कुश्रुतमुं कुश्रुतधरनुं मिथ्यातपमुं मिथ्यातपस्वियुमेंब षडनायतनंगळु मिथ्यात्वप्रकृतिगे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं। मिथ्यात्वकर्म्मदंतिवक्कं सम्यक्त्वप्रकृतिघातकत्वमुंटप्पुदरिदं। सम्यग्दृष्टिगे अनायतनंगळु सम्यक्त्वप्रकृतिघातकंगळल्तु। सम्यक्त्वातिचारकारणंगळप्पुवु एकेंदोडे मिथ्यात्वकर्म्मोदयमिल्लप्पुदरिदं। मिथ्यात्वकर्म्मक्के नोकर्म्मंगळनायतनंगळप्पुदरिदं। मिथ्यादृष्टिगळोळे अनायतनंगळु गाढमिथ्यापरिणामक्के कारणंगळेंबुदत्थं। नियमशब्दमवधारणार्त्थमक्कुं।

अवधिदर्शनावरणस्य केवलदर्शनावरणस्य च नोकर्मद्रव्यकर्म तज्ज्ञानोक्तभङ्गवत् भवति। सातवेदनीयस्य इष्टान्नपानादयः असातवेदनीयस्यानिष्टान्नपानादयः ॥७३॥

सम्यक्त्वप्रकृतौ आयतनानि आप्ततदालयागमतद्धरतपस्तद्धराख्यानि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति। सम्यक्त्वस्य चलमलिनावगाढहेतुत्वात्। मिथ्यात्वप्रकृतेः मिथ्यात्वतदालयश्रुततद्धरतपस्तपस्विनो नोकर्मद्रव्यकर्म भवति सम्यक्त्वस्य घातकत्वात्। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतावुभयं आयतनानायतनद्वयं संयुक्तमेव नोकर्मद्रव्यकर्म भवति। अत्र नियमशब्दोऽवधारणार्थः ॥७४॥

अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म अवधिज्ञान और केवलज्ञानकी तरह जानना। सातवेदनीयका नोकर्म रुचिकर भोजनादि और असातवेदनीयका नोकर्म अरुचिकर खानपान जानना ॥७३॥

सम्यक्त्व प्रकृतिमें जिन, जिनमन्दिर, जिनागम, जिनागमके धारी, तप तथा तपके धारी ये छह आयतन नोकर्म द्रव्यकर्म होते हैं क्योंकि ये सम्यक्त्वके चल, मलिन और अवगाढ होनेमें निमित्त होते हैं। मिथ्यात्व प्रकृतिके मिथ्यादेव, उनका मन्दिर, मिथ्याशास्त्र, मिथ्याशास्त्रोंके धारी, मिथ्यातप, मिथ्यातपस्वी ये नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। क्योंकि ये सम्यग्दर्शनके घातक हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिमें आयतन और अनायतन दोनों मिलकर ही नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। यहाँ नियमका अर्थ अवधारण है। अर्थात् ये नियमसे इनके नोकर्म होते हैं ॥७४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादी दु होदि सेसाणं ।
सगसगजोग्गं सत्थं सहायपहुडी हवे णियमा ॥७५॥

अनंतानुबंधिनोकर्म्म मिथ्यात्वायतनादि तु भवति नोकर्म्म शेषाणां । स्वस्वयोग्यं शास्त्रं सहायप्रभृति भवेन्नियमात् ॥

अनंतानुबंधिकषायंगळ्गे मिथ्यायतनादिषडनायतनंगळुमादियादुउ नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंमुमक्कु । तु मत्ते । शेषाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनकषायंगळ्गे देशव्रत सकलसंयम यथाख्यातचारित्रंगळ निवारकत्वदोळु स्वस्वयोग्यंगळप्प काव्यनाटककोकादि ग्रंथंगळुं विटजनादिगळ सहायमुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळितयमदिदप्पुउ ।

थीपुंसंढसरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु ।
वेलंबको सुपुत्तो हस्सरदीणं च णोकम्मं ॥७६॥

स्त्रीपुंनपुंसकशरीरं तेषां नोकर्म्म द्रव्यकर्म तु । विडंबकः सुपुत्रो हास्यरत्योश्च नोकर्म्म ॥

स्त्रीवेदनोकषायक्के स्त्रीशरीरमु पुरुषशरीरमुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । पुंवेदनोकषायक्के पुरुषशरीरमुं स्त्रीशरीरमुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । नपुंसकवेदनोकषायक्के स्त्रीशरीरमुं पुरुषशरीरमुं नपुंसकशरीरमुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । हास्यनोकषायक्के विडंबकनप्प बहुरूपिप्रहसनपात्रंगळुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । रतिनोकषायक्के सुपुत्रं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

इट्ठाणिट्ठवियोगं जोगं अरदिस्स मुदसुपुत्तादी ।
सोगस्स य सिंहादी णिंदिददव्वं च भयजुगले ॥७७॥

इष्टानिष्टवियोगो योगोऽरतेर्मृतसुपुत्रादिः । शोकस्य च सिंहादिर्निंदितद्रव्यं च भययुगळे ॥

अरतेः अरतिनोकषायक्के इष्टवियोगमुमनिष्टसंयोगमु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । शोकनोकषायक्के मृतसुपुत्रादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । भयनोकषायक्के सिंहादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । जुगुप्सानोकषायक्के निंदितद्रव्यादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

अनन्तानुबन्धिनां मिथ्यात्वायतनादिनोकर्मद्रव्यकर्म भवति । तु—पुनः शेषद्वादशकषायाणां देशसकलयथाख्यातचारित्रघातककाव्यनाटककोकादिग्रन्थाः विटजनादिसहायश्च नियमेन ॥७५॥

स्त्रीपुंवेदयोः स्त्रीपुंशरीरे नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । नपुंसकवेदस्य तद्द्वयं नपुंसकशरीरं च । हास्यस्य विडम्बकभूतबहुरूपिप्रहसनपात्राणि । रतेः सुपुत्रः ॥७६॥

अरतेः इष्टवियोगोऽनिष्टसंयोगश्च । शोकस्य मृतसुपुत्रादयः । भयस्य सिंहादयः । जुगुप्साया निन्दितद्रव्यादयः ॥७७॥

अनन्तानुबन्धी कषायोंका मिथ्या आयतन आदि नोकर्म द्रव्यकर्म है। शेष बारह कषायोंका देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यात चारित्रके घातक काव्य, नाटक, कोकशास्त्र आदि ग्रन्थ और सहायक विट्पुरुष आदि नियमसे नोकर्म द्रव्यकर्म होते हैं ॥७५॥

स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें स्त्री और पुरुषका शरीर नोकर्म द्रव्यकर्म होता है। नपुंसक वेदका नोकर्म स्त्री-पुरुष और नपुंसकका शरीर होता है। हास्यका नोकर्म विचित्र वेषधारी बहुरुपिया तथा हँसानेवाले पात्र होते हैं। रतिका नोकर्म सुपुत्र है ॥७६॥

अरतिका नोकर्म इष्टवियोग अनिष्टसंयोग है। शोकका नोकर्म सुपुत्र आदिका मरण है। भयका नोकर्म सिंह आदि है। जुगुप्साका नोकर्म घृणा योग्य वस्तु है ॥७७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिरयाउस्सअणिट्ठाहारो सेसाणमिट्ठमण्णादी ।
गदिणोकम्मं दव्वं चउग्गदीणं हवे खेत्तं ॥७८॥

नरकायुषोऽनिष्टाहारः शेषाणामिष्टान्नादिः । गतिनोकर्म्म द्रव्यं चतुर्गतीनां भवेत्क्षेत्रं ॥

नरकायुष्यक्के अनिष्टाहारं नरकगतिय विषमृत्तिकेये नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्ममक्कुं । शेष तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळ्गे इष्टान्नादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळप्पुवु ।

नारकादिशरीरस्थितिकारणंगळप्पुदरिवं । सामान्यगतिनामकर्म्मक्के चतुर्गतिगळ क्षेत्रमात्रं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

णिरयादीण गदीणं णिरयादी खेत्तयं हवे णियमा ।
जाईए णोकम्मं दव्विंदियपोग्गलं होदि ॥७९॥

नरकादीनां गतीनां नरकादिक्षेत्रं भवेन्नियमात् । जातेर्नोकर्म्म द्रव्येंद्रियपुद्गलो भवति ॥

नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिगळ्गे तंतम्म नरकगति तिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिक्षेत्रं नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्मं नियमदिवमक्कुं । नरकगत्यादिचतुर्गतिनामकर्म्मंगळुदयंगळ्नारकादिपर्य्यायंगळ्गे निमित्तमक्कुमादोडा तत्तत्पर्य्यायंगळन्यक्षेत्रंगळोळिल्लप्पुदरिवं तंतम्म गतिक्षेत्रंगळेयागल्वेळ्कुमप्पुदरिदं । नियमशब्दमवधारणार्त्थमक्कुं । जातिनामकर्म्मक्के द्रव्येंद्रियपुद्गलं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

एइंदियमादीणं सगसगदव्विंदियाणि णोकम्मं ।
देहस्स य णोकम्मं देहुदयजदेहखंदाणि ॥८०॥

एकेंद्रियादीनां स्वस्वद्रव्येंद्रियाणि नोकर्म्म । देहस्य च नोकर्म्म देहोदयजदेहस्कंधाः ॥

नरकायुषोऽनिष्टाहारः तद्विषमृत्तिका नोकर्मद्रव्यकर्म । शेषायुषामिष्टाशनादयः नारकादिशरीरस्थितिकारणत्वात् । सामान्यगतेः चतुर्गतिक्षेत्रमात्रम् ॥७८॥

नारकादिगतीनां स्वस्वनरकादिगतिक्षेत्रं नोकर्मद्रव्यकर्म नियमेन भवति । गत्युदयानां नारकादिपर्यायनिमित्तत्वेऽपि तत्पर्यायाणामन्यत्राभावात् । तत्क्षेत्रेणैव भाव्यमित्यवधारणार्थो नियमशब्दः । जातिनाम्नः द्रव्येन्द्रियपुद्गलः ॥७९॥

अनिष्ट आहार वहाँकी विषतुल्य मिट्टी नरकायुका नोकर्म द्रव्यकर्म है। शेष आयुओंका इष्ट अन्नादि नोकर्म है क्योंकि वह नारक आदिके शरीरकी स्थितिमें निमित्त होता है। सामान्य गतिनाम कर्मका नोकर्म चारों गतियोंका क्षेत्र है ॥७८॥

नारक आदि गतियोंका अपना-अपना नरकादिका क्षेत्र नोकर्म द्रव्यकर्म होता है। यद्यपि गतियोंका उदय नारक आदि पर्यायोंमें निमित्त है तथापि वे पर्याय अन्यत्र नहीं होतीं, इसलिए उनका नोकर्म उन-उनका क्षेत्र ही होना चाहिए इसके लिए नियम शब्द गाथामें दिया है। जातिनामका नोकर्म द्रव्येन्द्रियरूप पुद्गल हैं ॥७९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेंद्रियद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियजातिनामकर्म्मंगळ्गे तंतम्म द्रव्येंद्रियंगळु नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्मंगळप्पुवु। शरीरनामकर्म्मक्के शरीरनामकर्म्मोदयजनितदेहस्कंधमे नोकर्म्म द्रव्यकर्म्मंमक्कुं ।

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजकम्मणोकम्मं ।
ताणुदयजचउदेहा कम्मे विस्संचयं णियमा ॥८१॥

औदारिकवैक्रियिकाहारक तैजसकर्म्मणां नोकर्म्म तेषामुदयजचतुर्द्देहाः कार्म्मणे विस्रसोपचयो नियमात् ॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्म्मंगळ्गे तेषां तंतम्म उदयजनितचतुर्द्देहाः उदयसंजनितचतुर्द्देहंगळु यथासंख्यमागि तंतम्मौदारिकादिशरीरवर्ग्गणेगळु तंतम्म नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळप्पुवु। कार्म्मणशरीरनामकर्म्मक्के विस्रसोपचयं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

बंधणपहुडिसमण्णियसेसाणं देहमेव णोकम्मं ।
णवरि विसेसं जाणे सगखेत्तं आणुपुव्वीणं ॥८२॥

बंधनप्रभृतिसमन्वितशेषाणां देह एव नोकर्म्म । नवीनं विशेषं जानीहि स्वक्षेत्रमानुपूर्व्याणां ॥

बंधनप्रभृतिपुद्गलविपाकिगळ्समन्वितशेषजीवविपाकिगळ्गे देहमे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमेकेंदोडे तत्तत्क्रियमाणपुद्गलरूपक्केयुं जीवभावक्केयुं सुखादिगळप्प कार्य्यक्कं शरीरवर्ग्गणेगळुपादाननिमित्तत्व प्रसिद्धत्वदत्तणिदं । क्षेत्रविपाकिगळप्पानुपूर्व्यंगळ्गे तंतम्मक्षेत्रमे नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्मंमक्कुमेंबी पोसतप्प विशेषमं नीनरि शिष्य येंदु संबोधिसल्पट्टुदु ।

एकेन्द्रियादिपञ्चजातीनां स्वस्वद्रव्येन्द्रियाणि नोकर्मद्रव्यकर्म । शरीरनाम्नः स्वोदयजदेहस्कन्धः नोकर्मद्रव्यकर्म ॥८०॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मणां उदयजतत्तच्छरीरवर्गणाः तत्तन्नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । कार्मणस्य विस्रसोपचय एव ॥८१॥

बन्धनप्रभृतिपुद्गलविपाकिसमन्वितशेषजीवविपाकिनां देह एव नोकर्मद्रव्यकर्म । तत्तत्क्रियमाणस्य [1]पुद्गलरूपस्य जीवभावस्य सुखादिरूपस्य कार्यस्य शरीरवर्गणानामेवोपादाननिमित्तत्वप्रसिद्धेः । क्षेत्रविपाक्यानुपूर्व्याणां स्वस्वक्षेत्रमेव नोकर्मद्रव्यकर्मेति नवीनं विशेषं जानीहि ॥८२॥

एकेन्द्रिय आदि पाँच जातियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रियाँ हैं। शरीरनामके नोकर्म द्रव्यकर्म अपने-अपने उदयसे बने शरीररूप स्कन्ध हैं ॥८०॥

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस शरीर नामकर्मोंका अपने-अपने उदयसे प्राप्त हुई उस-उस शरीर सम्बन्धी वर्गणा अपना-अपना नोकर्म द्रव्यकर्म होता है। कार्मणका नोकर्म विस्रसोपचय ही है ॥८१॥

बन्धनसे लेकर पुद्गलविपाकी प्रकृतियों सहित शेष रही जीवविपाकी प्रकृतियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म शरीर ही है। क्योंकि उनके द्वारा किया गया पुद्गलरूप भाव और जीवभाव तथा सुखादि रूप कार्यका उपादान कारण शरीर सम्बन्धी वर्गणा ही है किन्तु क्षेत्रविपाकी आनुपूर्वीनामकर्मोंका अपना-अपना क्षेत्र ही नोकर्म द्रव्यकर्म है इतना विशेष जानना ॥८२॥

---

१. आ. पुद्गलजीवं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थिरजुम्मस्स थिराथिररसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं।
असुहं देहावयवं सरपरिणदपोग्गलाणि सरे ॥८३॥

स्थिरयुग्मस्य स्थिरास्थिररसरुधिरादीनि शुभयुगस्य शुभं। अशुभं देहावयवं स्वरपरिणतपुद्गलाः स्वरे ॥

स्थिरनामकर्म्मक्के स्थिररसरुधिरादिगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुं। अस्थिरनामकर्म्मक्के अस्थिररसरुधिरादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं। शुभनामकर्म्मक्के शुभमप्प शरीरावयवंगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुमशुभनामकर्म्मक्के अशुभमप्प शरीरावयवंगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कु। स्वरनामकर्म्मक्के सुस्वरदुःस्वरपरिणतपुद्गलंगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुं।

उच्चस्सुच्चं देहं णीचं णीचस्स होदि णोकम्मं।
दाणादिचउक्काणं विग्घगणगपुरिसपहुदी हु ॥८४॥

उच्चस्योच्चो देहो नीचो नीचस्य भवति नोकर्म्म। दानादिचतुर्णां विघ्नकनगपुरुषप्रभृतयः खलु ॥

उच्चैर्ग्गोत्रकर्म्मक्के उच्चदेहमे लोकपूजितकुलोत्पन्नदेहमे नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्ममक्कुं। नीचैर्ग्गोत्रकर्म्मक्के नीचकुलोत्पन्नदेहमे नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्ममक्कुं। दानलाभभोगोपभोगांतरायकर्म्म चतुष्टयक्के विघ्नकरपर्व्वतनदीपुरुषप्रभृतिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममप्पुवु। खलु स्फुटमागि।

विरियस्स य णोकम्मं रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं।
इदि उत्तरपयडीणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु ॥८५॥

वीरियस्य च नोकर्म्म रूक्षाहारादिबलहरं द्रव्यं। इत्युत्तरप्रकृतीनां नोकर्म्म द्रव्यकर्म्म तु ॥

तु मत्ते वीर्य्यांतरायकर्म्मक्के रूक्षाहारपानद्रव्यंगळु नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्ममक्कुमिन्तुत्तरप्रकृतिगळगे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मगळु पेळल्पट्टुवु ॥

स्थिरस्य स्थिररसरुधिरादयो नोकर्मद्रव्यकर्म। अस्थिरस्य अस्थिररसरुधिरादयः। शुभस्य शुभशरीरावयवाः। अशुभस्य अशुभशरीरावयवाः। स्वरस्य सुस्वरदुःस्वरपरिणतपुद्गलाः ॥८३॥

उच्चैर्गोत्रस्य उच्चो—लोकपूजितकुलोत्पन्नो देहः नोकर्मद्रव्यकर्म भवति। नीचैर्गोत्रस्य नीचकुलोत्पन्नो देहः। दानादिचतुरन्तरायाणां विघ्नकरपर्वतनदीपुरुषप्रभृतयः। खलु स्फुटम् ॥८४॥

तु—पुनः वीर्यान्तरायस्य रूक्षाहारपानद्रव्याणि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति। एवमुत्तरप्रकृतीनां नोकर्मद्रव्यकर्मोक्तम् ॥८५॥

स्थिरका स्थिर रस रुधिरादि नोकर्म द्रव्यकर्म है। अस्थिरका अस्थिर रसरुधिरादि नोकर्म द्रव्यकर्म है। शुभका शरीरके शुभ अवयव और अशुभका शरीरके अशुभ अवयव तथा स्वरका सुस्वर रूप परिणत पुद्गल द्रव्यकर्म नोकर्म है ॥८३॥

उच्चगोत्रका उच्च लोकपूजित कुलमें उत्पन्न शरीर और नीचगोत्रका नीचकुलमें उत्पन्न हुआ शरीर नोकर्म द्रव्यकर्म है। दानान्तराय आदि चार अन्तरायोंका विघ्न करनेवाले पर्वत, नदी, पुरुष वगैरह द्रव्यकर्म है ॥८४॥

वीर्यान्तरायका नोकर्म रूखा खानपान आदि बलहारी द्रव्य नोकर्म द्रव्यकर्म है। इस प्रकार उत्तर प्रकृतियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म कहा ॥८५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णोआगमभावो पुण सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो ।
पोग्गलविवाइयाणं णत्थि खु णोआगमो भावो ॥८६॥

नोआगमभावः पुनः स्वस्वकर्म्मफलसंयुतो जीवः । पुद्गलविपाकिनां नास्ति खलु नोआगमो भावः ॥

नोआगमभावमुं मत्तें तंतम्म कर्म्मफलसंयुतनप्प जीवनेयक्कुं । पुद्गलविपाकिगळ्गे नोआगमभावमिल्लेकेंदोडे पुद्गलविपाकिगळुदयदोळु साक्षात्सुखादिगळनुत्पत्तियेयक्कुमल्लिमों दु विशेषमुंटदाउदेंदोडे जीवविपाकिगळ सहायत्वविदं सुखाद्युत्पादकत्वमुंटेंबिदु । पुद्गलविपाकिनामकर्मोदयदोळु देहवर्ग्गणेगळुपादानमक्कुं । सुखदुःखंगळ्गे तद्वर्ग्गणानिमित्त जीवविपाकियक्कुं ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्ण विरचितगोम्मटसारकर्ण्णाटवृत्ति जीवतत्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांड प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनं प्रथमाधिकारं व्याख्यातमावुदु ॥

नोआगमभावः पुनः स्वस्वकर्मफलसंयुक्तजीवो भवति । पुद्गलविपाकिनां खलु नोआगमभावकर्म नास्ति तदुदयजीवविपाकि सहायं विना साक्षात्सुखाद्यनुत्पत्तेः ॥८६॥

इत्याचार्यनेमिचन्द्ररचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वदीपिकाख्यायां
कर्मकाण्डे प्रकृतिसमुत्कीर्तननाम प्रथमोऽधिकारः ॥१॥

अपने-अपने फलको भोगता हुआ जीव उन-उन प्रकृतियोंका नोआगमभाव कर्म है। पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंका नोआगमभाव कर्म नहीं होता क्योंकि उनका उदय होते हुए जीवविपाकी प्रकृतियोंकी सहायता बिना साक्षात् सुखादि नहीं होते ॥८६॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव
परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी
श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-
के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका
तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक
भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत
प्रकृति समुत्कीर्तन नामक पहला अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्धोदयसत्वाधिकार ॥ २ ॥

णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं ॥८७॥

नत्वा नेमिचंद्रं असहायपराक्रमं महावीरं । बंधोदयसत्त्वयुक्तं ओघादेशे स्तवं वक्ष्यामि ॥

वक्ष्यामि वदिष्ये करिष्ये वा । कं स्तवं सकलांगार्त्थविषयं शास्त्रं । कथंभूतं बंधोदयसत्त्वयुक्तं बंधोदयसत्त्वप्रतिपादकं तस्मिन् । ओघादेशे गुणस्थानमार्ग्गणास्थाने । किं कृत्वा नत्वा नमस्कृत्य । कं नेमिचंद्रं नेमितीर्त्थंकरपरमदेवं । कथंभूतं महावीरं वंदारुवृंदस्याभिलषितार्त्थप्रदायकं । भूयः किंभूतं असहायपराक्रमं न विद्यते सहायो यस्यासावसहायः । असहायः पराक्रमो यस्यासावसहायपराक्रमस्तमिति ॥

कर्म्मवैरिबलमं गेलुवेडेयोळु सहायनिरपेक्षमप्प अभेदरत्नत्रयात्मकात्मस्वरूपभावनास्वसामर्थ्यरूपपराक्रममनुळ्ळ वंदारुवृंदसमभिलषितार्त्थप्रदायकत्वदिदं महावीरनप्प नेमितीर्त्थंकरपरमदेवनं नमस्करिसि बंधोदयसत्वप्रतिपादकमप्प स्तवमं सकलांगार्त्थविषयशास्त्रमं पेळ्वेनेंबुदाचार्य्यन प्रतिज्ञेयक्कुमल्लि । स्तवमेंबुदे ते दोडे पेळ्दपरु :—

सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं ।
वण्णणसत्थं थयथुइ धम्मकहा होइ णियमेण ॥८८॥

सकलांगैकांगैकांगाधिकार सविस्तरं ससंक्षेपं वर्णनशास्त्रं स्तवः स्तुतिर्द्धर्म्मकथा भवति नियमेन ॥

वक्ष्यामि वदिष्ये करिष्ये वा । कं ? स्तवं सकलाङ्गार्थविषयशास्त्रम् । कथंभूतम् ? बन्धोदयसत्त्वयुक्तं–बन्धोदयसत्त्वप्रतिपादकम् । कस्मिन् ? ओघादेशे–गुणस्थानमार्गणास्थाने । किं कृत्वा ? नत्वा–नमस्कृत्य । कं ? नेमिचन्द्रं–नेमितीर्थंकरपरमदेवं । कथंभूतम् ? महावीरं–वन्दारुवृन्दस्य अभिलषितार्थप्रदायकम् । भूयः किंभूतम् ? असहायपराक्रमं–न विद्यते सहायो यस्यासावसहायः । असहायः पराक्रमो यस्यासावसहायपराक्रमस्तमिति कर्मवैरिबलजये सहायनिरपेक्षाभेदरत्नत्रयात्मकस्वरूपभावनास्वसामर्थ्यरूपपराक्रमम् । वन्दारुवृन्दसमभिलाषितार्थप्रदायकत्वेन महावीरं नेमितीर्थङ्करपरमदेवं नत्वा बन्धोदयसत्त्वप्रतिपादकस्तवं वक्ष्यामीत्याचार्यप्रतिज्ञा ॥८७॥ स्तवः कः इति चेदाह–

जो अन्य सहायताकी अपेक्षा न करके अभेदरत्नत्रयात्मक आत्मस्वरूपकी भावनारूप सामर्थ्यके द्वारा अपने पराक्रमसे कर्मशत्रुकी सेनापर विजय प्राप्त करते हैं और वन्दना करनेवालोंके समूहको इच्छित अर्थ प्रदान करनेके कारण महावीर हैं, उन नेमिनाथ तीर्थंकर परमदेवको नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें बन्ध उदय और सत्त्वका कथन करनेवाले स्तवको कहूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा आचार्य करते हैं ॥८७॥

स्तवका स्वरूप कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकलांगार्थं सविस्तर ससंक्षेपविषयशास्त्रं स्तवं । एकांगार्थं सविस्तर ससंक्षेपविषयशास्त्रं स्तुतिः । एकांगाधिकारार्थसविस्तरससंक्षेपविषयशास्त्रं वस्त्वनुयोगादि धर्म्मकथेयुमक्कुं नियमदिदं ॥

अनंतरं बंधं चतुर्विधमेंदु पेळदपरु :—

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो ।
उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णग त्ति पुधं ॥८९॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंध इति चतुर्विधो बंधः । उत्कृष्टानुत्कृष्टो जघन्योऽजघन्य इति पृथक् ॥

प्रकृतिबंधमेंदुं स्थितिबंधमेंदुमनुभागबंधमेंदुं प्रदेशबंधमुमेंदु बंध चतुर्विधमक्कुमल्लि पृथक् प्रत्येकमुत्कृष्टमुमनुत्कृष्टमुमेंदुं जघन्यमुमजघन्यमुमेंदुमितु चतुर्विधमक्कु ॥

अनंतरं उत्कृष्टादिगळु प्रत्येकं चतुर्विधंगळेंदु पेळदपरु :—

सादिअणादी धुवअद्धुवो य बंधो दु जेट्ठमादीसु ।
णाणेगं जीवं पडि ओघादेसे जहाजोग्गं ॥९०॥

सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्च बंधस्तूत्कृष्टादिषु । नानैकं जीवं प्रति ओघादेशे यथायोग्यं ॥

सादिबंधमेंदुमनादिबंधमेंदुं ध्रुवबंधमेंदुमध्रुवबंधमुमेंदितु । तु मत्ते उत्कृष्टादिबंधंगळोळु नानाजीवमुमेकजीवमुमं कुरुत्तु गुणस्थानदोळं मार्ग्गणास्थानदोळं यथायोग्यमागि साद्यनादि

सकलाङ्गार्थसविस्तरससंक्षेपविषयशास्त्रं स्तवः । एकाङ्गार्थसविस्तरससंक्षेपविषयशास्त्रं स्तुतिः । एकाङ्गाधिकारार्थसविस्तरससंक्षेपविषयशास्त्रं वस्त्वनुयोगादिधर्मकथा च भवति नियमेन ॥८८॥ अथ बन्धभेदानाह—

प्रकृतिबन्धः स्थितिबन्धः अनुभागबन्धः प्रदेशबन्धश्चेति बन्धश्चतुर्विधः । स चतुर्विधोऽपि पृथक् प्रत्येक उत्कृष्टोऽनुत्कृष्टो जघन्योऽजघन्यश्चेति चतुर्विधः ॥८९॥ तानुत्कृष्टादीनपि भिनत्ति—

तेषु उत्कृष्टादिबन्धेषु तु पुनः सादिबन्धोऽनादिबन्धो ध्रुवबन्धोऽध्रुवबन्धश्च नानाजीवमेकजीवं च

समस्त अंगसहित अर्थका विस्तार या संक्षेपसे जिसमें वर्णन होता है उस शास्त्रको स्तव कहते हैं। एक अंगसहित अर्थका जिसमें विस्तार या संक्षेपसे कथन होता है उस शास्त्रको स्तुति कहते हैं। एक अंगके अधिकार सहित अर्थका संक्षेप या विस्तारसे वर्णन करनेवाला शास्त्र जिसमें प्रथमानुयोगसम्बन्धी वस्तु रहती है वह नियमसे धर्मकथा है। सो इसमें बन्ध उदय सत्त्वरूप अर्थका कथन समस्त अंग सहित यथायोग्य विस्तार और संक्षेपसे कहा जायेगा अतः यह शास्त्र स्तव नामसे कहा गया है ॥८८॥

बन्धके भेद कहते हैं—

बन्धके चार भेद हैं—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। उन चारोंके भी जुदे-जुदे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य चार भेद हैं ॥८९॥

उन उत्कृष्ट आदिके भी भेद कहते हैं—

उन उत्कृष्ट आदि बन्धोंमें पुनः सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, नाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्रुवाध्रुवबंधमुमक्कुं	प्र	स्थि	अ	प्र
	उ ४	उ ४	उ ४	उ ४
	अ ४	अ ४	अ ४	अ ४
	अ ४	अ ४	अ ४	अ ४
	ज ४	ज ४	ज ४	ज ४

ठिदिअणुभागपदेसा गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा ।
तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णे वि एमेव ।।९१।।

स्थित्यनुभागप्रदेशा गुणप्रतिपन्नेषु एषामुत्कृष्टाः। तेषामनुत्कृष्टश्चतुर्विधोऽजघन्योप्येवमेव ।।

स्थित्यनुभागप्रदेशंगळु गुणप्रतिपन्न मिथ्यादृष्टि सासादनाद्युपरितनोपरितनगुणस्थानवर्तिगळोळु । एषां कर्म्मणां आउ केलवु कर्म्मंगळगे उत्कृष्टंगळु । तेषामेव कर्म्मणां आकर्म्मंगळगेये अनुत्कृष्टस्थित्यनुभागप्रदेशमक्कुमदु चतुर्विधः साद्यनादिध्रुवाध्रुवचतुर्विधबंधमक्कुमा अघन्यमुमिन्ते चतुर्विधः चतुर्विधबंधमक्कुमी साद्यनादिध्रुवाध्रुवबंधलक्षणमुमं मुंदे पेळ्दपरावोडमिल्लियुदाहरणमात्रं किरिदु तोरल्पट्टपुददेंतेंदोडे उपशमश्रेण्यारोहकसूक्ष्मसांपरायनुच्चैर्ग्गोत्रानुभागमनुत्कृष्टमं कट्टियुपशांतकषायनागि मत्तमवरोहणदोळु सूक्ष्मसांपरायनागि तदनुभागमननुत्कृष्टमं कट्टुगुमागळदक्के सादित्वमा सूक्ष्मसांपरायन चरमदतणिदं केळगे अदक्कनादित्वं अभव्यनोळु ध्रुवत्वमागळोम्मे यनुत्कृष्टमं माण्दु उत्कृष्टमं कट्टुगुमागळदक्कध्रुवत्वमितु। अजघन्योप्येवमेव चतुर्व्विधः अजघन्यमुमिन्ते चतुर्विधमक्कुमदेंतेंदोडे सप्तमपृथ्वियोळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखं

प्रतीत्य गुणस्थाने मार्गणास्थाने च यथायोग्यं भवति ।।९०।।

स्थित्यनुभागप्रदेशाः गुणप्रतिपन्नेषु मिथ्यादृष्टिसासादनाद्युपरितनोपरितनगुणस्थानवर्तिषु येषां कर्मणामुत्कृष्टस्तेषामेव कर्मणामनुत्कृष्टः स्थित्यनुभागप्रदेशः साद्यादिभेदाच्चतुर्विधो भवति । अजघन्योऽप्येवं चतुर्विधः । तेषां लक्षणमग्रे वक्ष्यति । तथाप्यत्रोदाहरणमात्रं किञ्चित् प्रदर्श्यते । तद्यथा—उपशमश्रेण्यारोहकः सूक्ष्मसाम्परायः उच्चैर्गोत्रानुभागमुत्कृष्टं बद्ध्वा उपशान्तकषायो जातः। पुनरवरोहणे सूक्ष्मसाम्परायो भूत्वा तदनुभागमनुत्कृष्टं बध्नाति । तदाऽस्य सादित्वं तत्सूक्ष्मसाम्परायचरमादधोऽनादित्वम् । अभव्ये ध्रुवत्वम् । यदाऽनुत्कृष्टं त्यक्त्वा उत्कृष्टं बध्नाति तदा अध्रुवत्वमिति । अजघन्योऽप्येवमेव चतुर्विधः । तद्यथा—सप्तमपृथिव्यां

जीव और एक जीवकी अपेक्षा गुणस्थान और मार्गणास्थानमें यथायोग्य होते हैं ।।९०।।

गुणप्रतिपन्न अर्थात् मिथ्यादृष्टि सासादन आदि ऊपर-ऊपरके गुणस्थानवर्ती जीवोंमें जिन कर्मोंका स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, प्रदेशबन्ध उत्कृष्ट होता है उन्हीं कर्मोंका अनुत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेशबन्ध सादि-आदिके भेदसे चार प्रकार का होता है, अजघन्यमें भी इसी प्रकार चार भेद होते हैं। उनका लक्षण आगे कहेंगे तथापि यहाँ उदाहरणरूपसे कुछ कहते हैं—उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेवाला सूक्ष्मसाम्पराय उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके उपशान्तकषायगुणस्थानमें गया। पुनः उतरनेपर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवाला होकर वह उसका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है तब वह बन्ध सादि होता है। क्योंकि अनुत्कृष्ट उच्चगोत्र अनुभागबन्धका अभाव होकर सद्भाव हुआ है। उस सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानसे नीचेके गुणस्थानवर्ती जीवोंके वह बन्ध अनादि है। अभव्यके ध्रुव बन्ध है। किन्तु भव्य जीव जब अनुत्कृष्टको छोड़कर उत्कृष्ट बन्ध करता है तब अध्रुव है। अजघन्यमें भी इसी प्रकार चार भेद होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टिचरमसमयदोळु नीचैर्गोत्रानुभागमं जघन्यमं कट्टि सम्यग्दृष्टियागि मिथ्यात्वोदयदिदं मिथ्यादृष्टियागि तदनुभागमनजघन्यमं कट्टुगुमागळदक्के सादित्वं द्विचरमादिसमयंगळोळदक्कनादित्वमी प्रकारदिदं चतुर्व्विधत्वं यथासंभवं तोरल्पडुवुदु। प्रकृतिबंधक्कुत्कृष्टानुत्कृष्टमजघन्यजघन्यंगळिल्ल—

स्थिति । उ १ । अनु	अज । ज १	अनुभाग । उ १ । अनु	अज । ज १	प्रदे । उ १ । अनु	अज । ज १
∧ ० ० ० ०	० ० ० ० ∧	☐ ० ० ० ०	० ० ० ० ☐	स ३२ । ० ० ० ०	० ० ० ० स ।

अनंतरं प्रकृतिबंधक्के गुणस्थानंगळोळु नियममं पेळ्वपरु :—

सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु ।
मिस्सूणे आउस्स य मिच्छादिसु सेसबंधो दु ॥९२॥

सम्यग्दृष्टावेव तीर्त्थबंधः आहारद्वयं प्रमादरहितेषु। मिश्रोने आयुषश्च मिथ्यादिषु शेषबंधस्तु ॥

सम्यग्दृष्टिगळोळे तीर्त्थबंधमक्कुं। आहारकाहारकांगोपांगद्वयं प्रमादरहितरोळेयक्कुं। प्रमत्तावसानमाद गुणस्थानषट्कदोळाहारद्वयबंधमिल्लँबुदर्थं। मिश्रगुणस्थानमं मिश्रकाययोगमुमं

प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखो मिथ्यादृष्टिश्चरमसमये नीचैर्गोत्रानुभागं जघन्यं बध्वा सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा तदनुभागमजघन्यं बध्नाति। तदास्य सादित्वं द्वितीयादिसमये चानादित्वमिति चतुर्विधत्वं यथासंभवं द्रष्टव्यम्। प्रकृतिबन्धस्योत्कृष्टादिर्नास्ति।

शेषाणां संदृष्टिः	स्थिति ३१ अनु । अज १ ज १	अनुभाग उ. अनु.
	० ० ० ० ० ० ०	० ० ० ० ० ० ०

अज. ज.	प्रदे. उ. अनु. अज. ज.
	स ३२ । ० ० ० ० ० ० ० स १

॥९१॥

अथ प्रकृतिबन्धस्य गुणस्थानेषु नियममाह—

तीर्थंबन्धोऽसंयताद्यपूर्वकरणषष्ठभागान्तसम्यग्दृष्टिष्वेव। आहारकतदङ्गोपाङ्गबन्धोऽप्रमत्ताद्यपूर्वकरणषष्ठभागान्तेष्वेव प्रमादरहितेषु न प्रमत्तावसानेषु। आयुर्बन्धो मिश्रगुणस्थानमिश्रकाययोगवर्जितेष्वप्रमत्ता-

---

सातवीं पृथिवीमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि अन्तिम समयमें नीचगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध करके सम्यग्दृष्टी होकर पुनः मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि होकर नीचगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध करता है तब उसके सादिबन्ध कहलाता है। उससे पहले वह अनादि कहलाता है। इस प्रकार यथासंभव चार भेद जानना। प्रकृतिबन्धमें उत्कृष्ट आदि भेद नहीं हैं ॥९१॥

गुणस्थानोंमें प्रकृतिबन्ध का नियम कहते हैं—

तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध असंयत से लेकर अपूर्वकरणगुणस्थानके छठे भाग पर्यन्त सम्यग्दृष्टियोंमें ही होता है। आहारक आहारक अंगोपांगका बन्ध अप्रमत्तसे लेकर अपूर्वकरणके छठे भाग पर्यन्त प्रमादरहित गुणस्थानोंमें ही होता है, प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त नहीं होता। आयुका बन्ध मिश्रगुणस्थान और मिश्रकाययोगोंको छोड़कर अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त ही

---

१. म द्वितीयादि ।

वर्ज्जिसि शेषमिथ्याद्यप्रमत्तगुणस्थानावसानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळोळु यथायोग्यमायुर्ब्बंधमक्कुं। तु मत्ते अपूर्व्वकरणादिगळोळिल्ल ॥

तीर्त्थबंधक्के विशेषनियममं पेळ्दपरु :—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि ।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥९३॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेषत्रये अविरतादिचत्वारस्तीर्त्थंकरबंधप्रारंभकाः नराः केवलिद्वयोपांते ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळं शेषद्वितीयोपशमसम्यक्त्वक्षायोपशमिकसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वमें ब सम्यक्त्वत्रयदोळं असंयताद्यप्रमत्तावसानमाद नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु मनुष्यरुगळे तीर्त्थकरनामकर्म्मबंधप्रारंभकरप्परंतप्पोडं प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिद्वय श्रीपादोपांतदोळेयप्परु। यिल्लि प्रथमोपसम्यक्त्वदोळमेंबिलु भिन्नविभक्तिकरणमत्थांतरज्ञापकमक्कुमें तें दोडे प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालं स्तोकांतर्म्मुहूर्त्तमप्पुदरिंदमल्लि षोडशभावनासमृद्धि समनिसदें दु केलंबराचार्य्यरें बरवर पक्षदोळा सम्यक्त्वदोळु तीर्त्थंबंधप्रारंभमिल्ल। नरा एंबी विशेषणमेकें दोडे मनुष्यगतिजरल्लदुळिद गतिजर्ग्गे तीर्त्थंबंधप्रारंभकत्वयोग्यतेयिल्लवें तें दोडे नारकरुगळ्गे पेरगे पेळ्द विशुद्धिनिबंधनकेवलिद्वयश्रीपादसन्निधि संभविसदप्पुदरिदं नारकरुं तिर्य्यंचरुगळ्गे विशिष्टप्रणिधानक्षयोपशमाभावदिंद तत्त्वार्त्थाधिगमविशेषाभावदत्तणिवं तीर्त्थंबंधप्रारंभक्कनुपपत्तियिदमा तिर्य्यंचरुं योग्यरल्लमेकें दोडे तीर्त्थंकरबंधकारणदर्शनविशुद्ध्यादि भावनापरमप्रकर्षमिल्लदत्तणिदं। देवगतिजर्ग्गेयुं मनुष्यरंते विशिष्टप्रणिधानाभावदिदं क्रीडाशीलत्वदिंदमभीक्ष्णज्ञानोपयोगादिभावनाऽ-

---

न्तेष्वेव। नापूर्वकरणादिषु। शेषप्रकृतिबन्धः तु पुनः मिथ्यादृष्टयादिषु स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिपर्यन्तेष्वेव ॥९२॥ तीर्थबन्धस्य विशेषनियममाह—

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेष-द्वितीयोपशम क्षायोपशमिक-क्षायिकसम्यक्त्वेषु चासंयताद्यप्रमत्तान्तमनुष्या एव तीर्थकरबन्धं प्रारभन्ते। तेऽपि प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिश्रीपादोपान्ते एव। अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्व' इति भिन्नविभक्तिकरणं तत्सम्यक्त्वे स्तोकान्तर्मुहूर्तकालत्वात् षोडशभावनासमृद्धयभावात्तद्बन्धप्रारम्भो नेति केषाञ्चित्पक्षं ज्ञापयति। नरा इति विशेषणं शेषगतिजानपाकरोति। विशिष्टप्रणिधानक्षयोपशमादिसामग्रीविशेषाभावात्।

होता है, अपूर्वकरण आदिमें आयुका बन्ध नहीं होता। शेष प्रकृतियोंका बन्ध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्तिपर्यन्त ही होता है ॥९२॥

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके विषयमें विशेष नियम कहते हैं—

प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें तथा शेष द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्वमें असंयतसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त मनुष्य ही तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करते हैं। वे भी प्रत्यक्ष साक्षात् केवली श्रुतकेवलीके चरणोंके निकटमें ही करते हैं। यहाँ जो 'पढमुवसमिए' इस प्रकार जुदी विभक्ति की है सो प्रथमोपशमसम्यक्त्वका काल थोड़ा अन्तर्मुहूर्तमात्र होनेसे षोडश कारण भावना भाना संभव नहीं है इसलिये उसमें तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता ऐसा किन्हीं का पक्ष है' उसका ज्ञापन करनेके लिये की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नुपपत्तिइंदं तीर्त्थंकरत्वबंधप्रारंभयोग्यविशुद्धिविशेषासंभवमप्पुदरिंदमुं सिद्धमाद्दुदु। मनुष्यरुगळे तीर्त्थबंधप्रारंभकरप्परेंबुदर्थं ॥ तिर्य्यग्गतिवर्ज्जितमागि शेषगतित्रयदोळु तीर्त्थकरबंधं संभविसुगुमेकेंदोडे तीर्त्थबंधकालमुत्कृष्टदिंदमन्तर्म्मुहूर्त्ताधिकाष्टवर्षहीनपूर्व्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालप्रमाणमप्पुदरिंदं। केवलिद्वयश्रीपादोपान्तदोळेंब नियममेकेंदोडे तत्समीपदोळे दर्शनविशुद्ध्यादिनिबंधनविशुद्धिकारणतत्त्वाधिगमविशेषं संभविसुगुमप्पुदरिंदं ॥

अनंतरं गुणस्थानंगळोळु प्रकृतिगळोळु प्रकृतिगळ्गे बंधव्युच्छित्तियं पेळ्दपरु :—

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा।
दुग तीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को ॥९४॥

षोडश पंचविंशतिर्न्नभः दश चतुः षट्कैक्कबंधव्युच्छित्तयः। द्विकस्त्रिंशच्चतस्रोऽपूर्व्वे पंच षोडश योगिन्येकः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवलिपर्य्यंतमाद गुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि षोडशपंचविंशति शून्यं दश चतुः षट्क एक प्रकृतिगळु तंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। मेले अपूर्व्वकरणगुणस्थानत्रिभागंगळोळं द्वित्रिंशच्चतुः प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु। अनिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायरोळु क्रमदिंदं पंचषोडशप्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु। उपशांतक्षीणकषायरोळु व्युच्छित्ति

न च तिर्यग्गतिवर्जितगतित्रयतीर्थबन्ध...तद्बन्धकालस्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षोनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रत्वात्। केवलिद्वयान्त एवेति नियमः तदन्यत्र तादृग्विशुद्धिविशेषासंभवात् ॥९३॥

अथ गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिमाह—

मिथ्यादृष्टौ षोडशप्रकृतयो बन्धव्युच्छिन्नास्तासामुपरि बन्धो नास्तीत्यर्थः। सासादने पञ्चविंशतिः। मिश्रे शून्यं व्युच्छित्त्यभाव इत्यर्थः। असंयते दश। देशसंयते चतस्रः। प्रमत्ते षट्। अप्रमत्ते एका। अपूर्वकरणस्य सप्तभागेषु प्रथमे द्वे षष्ठे त्रिंशत्। सप्तमे चतस्रः। अनिवृत्तिकरणे पञ्च। सूक्ष्मसाम्पराये षोडश। उपशान्त-

---

'णरा' ऐसा विशेषण शेषगतियोंका निराकरण करता है क्योंकि अन्य गतियोंमें विशिष्ट चिन्तन क्षयोपशम आदि विशेष सामग्री का अभाव होता है किन्तु तिर्यञ्चगतिको छोड़ शेष तीन गतियोंमें तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका अभाव नहीं है क्योंकि तीर्थंकरके बन्धका काल उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त अधिक आठवर्षकम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीससागर प्रमाण कहा है। अर्थात् यद्यपि तीर्थंकरके बन्ध का प्रारम्भ मनुष्य गतिमें ही होता है तथापि उसके नरक देव आदि गतिमें जानेपर वहाँ भी बन्ध होता रहता है केवल तिर्यञ्च गतिमें ही बन्ध नहीं होता। केवली श्रुतकेवलीके निकट में ही बन्धका नियम कहनेका कारण यह है कि अन्यत्र उस प्रकार की विशेष विशुद्धि संभव नहीं है ॥९३॥

गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्ति कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सोलह प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। इसका आशय यह है कि उन प्रकृतियों का बन्ध दूसरे आदि गुणस्थानोंमें नहीं होता। सासादनमें पच्चीस पकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। मिश्रमें शून्य है अर्थात् यहाँ व्युच्छित्ति नहीं होती। असंयतमें दस, देशसंयतमें चार, प्रमत्तमें छह, अप्रमत्तमें एक, अपूर्वकरणके सात भागोंमें-से पहलेमें दो, छठे भागमें तीस, सातवें भागमें चार की व्युच्छित्ति होती है। अनिवृत्तिकरणमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिगळिल्ललिल शून्यंगळेयप्पुवु। सयोगकेवलियोळु वोंदे प्रकृतिव्युच्छित्तियक्कुं। व्युच्छित्ति-येंबुदेने दोडे उपरितनगुणस्थानेष्वभावो व्युच्छित्तिः। एल्लि व्युच्छित्तियेंदु पेळल्पट्टुदल्लिया प्रकृतिगळगे मेलण गुणस्थानदोळु बंधाभावपेंबुदत्थं। लंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्यु-च्छित्ति बंधविनाशमेंबी विनाशविषयदोळु द्वौ नयाविच्छन्ति येरडु नयंगळनोडंबडुवरु। उप्पा-दाणुच्छेदो अणुप्पादाणुच्छेदो चेदि। उत्पादानुच्छेदमुमनुत्पादानुच्छेदमुमेंदितु। तत्थ अल्लि उप्पादाणुच्छेदो णाम उत्पादानुच्छेदमेंबुदु। दव्वट्ठियो द्रव्यार्त्थिकः द्रव्यार्त्थिकं। तेण सत्तावट्ठाए चेव विणासमिच्छदि। अदरिं सत्वावस्थेयोळे विनाशमनिच्छयिसुगुं। असत्ते असत्वे असत्वदोळु। बुद्धिविसयमइक्कंतभावेण बुद्धिविषयमतिक्रांतभावदिदं वयणगोयराइक्कंते वचनगोचरातिक्रांत-मागुत्तिरलु। अभाववबहाराणुववत्तीदो अभाव व्यवहारानुपपत्तितः। अभावव्यवहारानुपत्तियत्त-णिदं। ण च अभावो णाम अत्थि न च अभावो नामास्ति अभाव मेंबुदिल्ल। तप्परिच्छिददो पमाणाभावादो तत्परिच्छिदतः प्रमाणस्याभावात्। सत्तविसयाणं पमाणाणमसत्ते वावारविरो-हादो–सत्त्वविषयाणां प्रमाणानां असत्त्वे व्यापारविरहात् सत्त्वविषयंगळप्प प्रमाणं गळसत्त्वदोळु व्यापारमप्पुदरिदं। अविरोहे वा अविरोधे वा। अविरोधमादोडे मेणु। गद्दहसिंगंपि पमाणविसयं होज्ज गर्द्दभशृंगोपि प्रमाणविषयो भवेत् गर्द्दभशृंगमुं प्रमाणविषयमागलि। ण च एवमणुवलंभादो न चैवमनुपलंभात् इन्तल्तनुपलंभमप्पुदरिदं। तम्हा भावो चेव तस्माद्भावश्च एव अदरिदं भावमे। अभावोत्ति सिद्धं अभावमेंदितु सिद्धं॥

क्षीणकषाययोः शून्यम्। सयोगकेवलिन्येका। अयोगकेवलिनि बन्धो व्युच्छित्तिरपि न॥ तत्र बन्धव्युच्छित्तौ द्वौ नयाविच्छन्ति–उत्पादानुच्छेदोऽनुत्पादानुच्छेदश्चेति। तत्र उत्पादानुच्छेदो नाम द्रव्यार्थिकः। तेन सत्त्वा-वस्थायामेव विनाशमिच्छति। असत्त्वे बुद्धिविषयातिक्रान्तभावेन वचनगोचरातिक्रान्ते सति अभावव्यवहारा-नुपपत्तेः। न चाभावो नामास्ति तत्परिच्छेदकप्रमाणाभावात्। सत्त्वविषयाणां प्रमाणानामसत्त्वे व्यापार-विरोधात्। अविरोधे वा गर्दभशृङ्गमपि प्रमाणविषयं भवेत्। न चैवमनुपलम्भात्। तस्माद्भाव एव अभाव इति सिद्धम्। अनुत्पादानुच्छेदो नाम पर्यायार्थिकः। तेन सत्त्वावस्थायामभावव्यपदेशमिच्छति। भावे उप-

पाँच, सूक्ष्मसाम्परायमें सोलह, उपशान्तकषाय क्षीणकषायमें शून्य, सयोगकेवलीमें एक की बन्धव्युच्छित्ति होती है। अयोगकेवलीमें बन्ध भी नहीं होता व्युच्छित्ति भी नहीं होती। बन्धव्युच्छित्तिमें दो नयसे कथन है—

एक उत्पादानुच्छेद और दूसरा अनुत्पादानुच्छेद। उत्पादानुच्छेद नाम द्रव्यार्थिक का है। इस नयके अभिप्रायसे सत्त्व अवस्थामें ही विनाश होता है। जहाँ सत्त्व ही नहीं है वहाँ बुद्धि का व्यापार ही सम्भव नहीं है। और ऐसी अवस्थामें वचनके अगोचर होनेसे उसमें अभाव का व्यवहार सम्भव नहीं है। दूसरे, अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि उसको ग्रहण करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है। जो प्रमाण सत्पदार्थको जानते हैं वे तो असत्पदार्थको जाननेमें व्यापार नहीं कर सकते। यदि कर सकते हैं तो गधेके सींग भी प्रमाणके विषय होने चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि ऐसा पाया नहीं जाता। अतः सिद्ध होता है कि भाव ही अभावरूप होता है। अनुत्पादानुच्छेद नाम पर्यायार्थिक नयका है। उसके अनुसार असत्व अवस्थामें अभावका व्यवहार होता है क्योंकि भावके होते हुए अभावका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुप्पादाणुच्छेदो णाम अनुत्पादानुच्छेदो नाम अनुत्पादानुच्छेदमें बुदु। पज्जट्ठियो णयो पर्य्यार्थिको नयः। पर्य्यार्थिकनयं। तेण असस्सावत्थाए तेनासत्त्वावस्थायां अदरिनसत्वावस्थेयोळु। अभाववव‌एसमिच्छदि अभावव्यपदेशमिच्छति। भावे उवलंभमाणे अभावत्तविरोहादो भावे उपलभ्यमाने अभावत्वविरोधात्। ण च पडिसेहाविसओ भाओ अभावत्तमल्लियइ न च प्रतिषेधाविषयो भावोऽभावत्वमाश्रयति। प्रतिषेधाविषयमप्प भावमभावत्वमनाश्रयिसदु। पडिसेहस्स फलाभावप्पसंगादो प्रतिषेधस्य फलाभावप्रसंगात्। प्रतिषेधक्के फलाभावप्रसंगदिदं। ण च विणासो णत्थि न च विनाशो नास्ति। न चैवं इल्लल्तु। विनाशो नास्ति विनाशमिल्ल। घादि अघादीणं घात्यघातीनां। घात्यघातिगळ्गे। सव्वत्थमवट्ठाणाणुवलंभादो सर्वत्रावस्थानानुपलंभात् सर्व्वत्रावस्थानानुपलंभदत्तणिदं। ण च भाओ अभाओ होदि न च भावो अभावो भवति भावमभावमुमागदु। भावाभावाणमण्णोण्णविरुद्धाणमेयत्तविरोहादोत्ति। भावाभावानामन्योन्यविरुद्धानामेकत्वविरोधादिति। भावाभावंगळगन्योन्यविरुद्धंगळगेकत्वविरोधमुंटप्पुदरिं। एत्थ पुण सुत्ते—अत्र पुनःसूत्रे द्रव्यार्थिकनयः। उप्पादाणुच्छेदोवलंबिदो उत्पादानुच्छेदोवलंबितः। उत्पादस्य विद्यमानस्य अनुच्छेदोऽविनाशो यस्मिन्नसावुत्पादानुच्छेदो नयः। एंदितु द्रव्यार्त्थिकनयापेक्षेयिदं तंतम्म गुणस्थानद चरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिबंधविनाशमप्पुदरिंदं। पर्य्यायार्त्थिकनयदिदमनन्तरसमयदोळु बंधविनाशमक्कुमिन्तु॥

लभ्यमाने अभावत्वविरोधात्। न च प्रतिषेधाविषयो भावोऽभावत्वमाश्रयति प्रतिषेधस्य फलाभावप्रसङ्गात्। न च विनाशो नास्ति घात्यघातिनां सर्वत्रावस्थानानुपलम्भात्। न च भावोऽभावो भवति भावाभावयोरन्योन्यविरुद्धयोरेकत्वविरोधात् इति। अत्र पुनः सूत्रे द्रव्यार्थिकनयः उत्पादानुच्छेदोऽवलम्बितः। उत्पादस्य विद्यमानस्यानुच्छेदोऽविनाशो यस्मिन्नसावुत्पादानुच्छेदो नयः, इति द्रव्यार्थिकनयापेक्षया स्वस्वगुणस्थानचरमसमये बन्धव्युच्छित्तिः-बन्धविनाशः। पर्यायार्थिकनयेन तु अनन्तरसमये बन्धनाशः॥९४॥

व्यवहार होनेमें विरोध है। क्योंकि भावका निषेध किये विना अभाव नहीं होता। अतः वह अभावपने का आधार नहीं हो सकता। यदि हो तो फिर निषेधका कोई फल नहीं रहेगा। कर्मोंका विनाश नहीं होता ऐसा भी नहीं है क्योंकि घाति और अघाति कर्म सर्वत्र नहीं पाये जाते। न भाव-अभावरूप होता है क्योंकि भाव और अभाव परस्परमें विरोधी होनेसे एक नहीं हो सकते। यहाँ व्युच्छित्तिके कथनमें उत्पादानुच्छेदरूप द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन लिया है। उत्पाद अर्थात् विद्यमानका अनुच्छेद अर्थात् अविनाश जिसमें है वह उत्पादानुच्छेदनय है। इस प्रकार द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा अपने-अपने गुणस्थानके अन्तिम समयमें बन्धकी व्युच्छित्ति अर्थात् विनाश होता है। किन्तु पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा तो अनन्तर समयमें बन्धका नाश होता है।

भावार्थ—इसका आशय यह है कि जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति कही है उन प्रकृतियोंका बन्ध उस गुणस्थान के अन्त समयपर्यन्त होता है, उसमें उनके बन्धका अभाव नहीं होता। उससे ऊपरके गुणस्थानोंमें उनके बन्धका अभाव होता है। अतः जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध कहा है उसमें उतनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है। सो पूर्व-पूर्वके गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध कहा है उनमें-से उसी गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति कही हो उन्हें घटानेपर आगे-आगेके गुणस्थानमें बन्धका प्रमाण आता है। तथा जितनी प्रकृतियाँ बन्ध योग्य कही हों उनमें-से जितनी प्रकृतियोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तरं मिथ्यादृष्टियषोडशबंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पेळ्वपरु :—

मिच्छत्तहुंडसंढासंपत्तेयक्खथावरादावं ।
सुहुमतियं वियलिंदी णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ॥९५॥

मिथ्यात्वहुंडषंढाऽसंप्राप्तैकाक्षस्थावरातपाः। सूक्ष्मत्रिकं विकलेंद्रियनरकद्विकनरकायुष्कं मिथ्यादृष्टौ ॥

मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ हुंडसंस्थानमुं १ षंढवेदमुं १ असंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुं १ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ आतपनाममुं १ सूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणशरीरमें ब सूक्ष्मत्रितयमुं ३ द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियमुमें ब विकलेंद्रियत्रितयमुं ३ नरकगति तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यमें ब नरकद्विकमुं २ नरकायुष्यमुमें दिंती षोडशप्रकृतिगळु केवलं मिथ्यात्वोदयहेतुकंगळप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु ॥

अनंतरं सासादनन व्युच्छित्तिगळं पेळ्वपरु :—

बिदियगुणे अणथीणतिदुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं ।
दुग्गमणित्थीणीचं तिरियदुगुज्जोवतिरिआऊ ॥९६॥

द्वितीयगुणे अनंतानुबंधिनः स्त्यानगृद्धित्रितयं दुर्भगत्रितयं संस्थानसंहननचतुष्कं दुर्गमनं स्त्रीनीचं तिर्य्यग्द्विकमुद्योततिर्य्यगायूंषि ॥

द्वितीयगुणे सासादनगुणस्थानदोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुं ४ स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचलात्रितयमुं ३ दुर्भगदुःस्वर मनादेयमें ब दुर्भगत्रितयमुं ३ न्यग्रोधपरिमंडलस्वातिकुब्जवामनसंस्थानचतुष्टयमुं ४ वज्रनाराच नाराच अर्द्धनाराच कीलितसंहननमें ब संहननचतुष्टयमुं ४,

---

अथ ताः षोडशादि प्रकृतिर्गाथाष्टकेनाह—

मिथ्यात्वं हुंडसंस्थानं षण्ढवेदः असंप्राप्तसृपाटिकासंहननं एकेंद्रियं स्थावरातपः सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणि नरकगतितदानुपूर्व्ये नरकायुश्चेति षोडश केवलमिथ्यात्वोदयहेतुबन्धत्वात् मिथ्यादृष्टिगुणस्थानचरमसमये एव व्युच्छिद्यन्ते ॥९५॥

सासादनगुणस्थानचरमसमये अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाः दुर्भगदुःस्वरानादेयानि न्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्जवामनसंस्थानानि वज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितसंहननानि अप्रशस्त-

---

बन्ध कहा हो उन्हें घटानेपर शेष जितनी प्रकृतियाँ रहें उन्हें अबन्धरूप जानना। इस तरह बन्ध, व्युच्छित्ति और अबन्ध ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। उन्हींका कथन आगे करेंगे ॥९४॥

उन सोलह आदि व्युच्छित्ति प्रकृतियों को आठ गाथाओं से कहते हैं—

मिथ्यात्व, हुंडसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु ये सोलह प्रकृतियाँ केवल मिथ्यात्वके उदयके कारण ही बँधती हैं। अतः मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के अन्तिम समयमें ही ये व्युच्छिन्न होती हैं ॥९५॥

सासादन गुणस्थानके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, वज्रनाराचसंहनन, अर्धनाराच संहनन, कीलितसंहनन, अप्रशस्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रशस्तविहायोगतियुं १ स्त्रीवेदमुं १ नीचैर्गोत्रमुं १ तिर्य्यग्गति तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यमें ब तिर्य्यग्द्विकमुं २ उद्योतनाममुं १ तिर्य्यगायुष्यमु १ में ब पंचविंशतिप्रकृतिगळनंतानुबंधिकषायोदयहेतुकंगळप्पुदरिदं सासादनगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु।

ई पंचविंशतिप्रकृतिगळु मिथ्यात्वानंतानुबंध्युभयोदयहेतुकंगळप्पुवेकें दोडे अनंतानुबंधिकषायोदयरहितमिथ्यादृष्टियोळिवक्के बंधमुंटप्पुदरिंदमुं मिथ्यात्वोदयरहित सासादननोळं बंधमुंटपुदरिंदं उभयोदयरहितरोळु बंधरहितत्वदिदमुं।

अनंतरमसंयतगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळं पेळदपरु :—

मिश्रगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यमेकें दोडे अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुकंगळगसंयत पर्य्यंतं बंधमुंटप्पुदरिंदमल्लि बंधव्युच्छित्तिशून्यमें दु पेळल्पट्टुवु।

अयदे बिदियकसाया वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ।
देसे तदियकसाया णियमेणिह बंधवोच्छिण्णा ॥९७॥

असंयते द्वितीयकषाया वज्रमौदारिकमनुष्यद्विकं मनुष्यायुर्देशव्रते तृतीयकषायाः नियमेनेह बंधव्युच्छित्तयः॥

असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं ४ वज्रऋषभनाराचसंहननमुं १ औदारिकशरीरतदंगोपांगद्विकमुं २ मनुष्यगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वितयमुं २ मनुष्यायुष्यमें ब दशप्रकृतिगळु अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुकंगळप्पुदरिंदमसंयतगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। देशव्रते देशव्रतगुणस्थानचरमसमयदोळु प्रत्याख्यानावरणोदयहेतुकंगळप्प प्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं ४ बंधव्युच्छित्तियक्कुं नियमदिद नी गुणस्थानदोळे येकें दोडनंतगुणस्थानवर्त्तिगळु संयमिगळप्पुदरिंदं प्रत्याख्यानावरणोदयाभावमप्पुदरिंदं तद्धेतुक तद्बंधमुमिल्ल।

विहायोगतिः स्त्रीवेदः नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतितदानुपूर्व्ये उद्योतः तिर्यगायुश्चेति पञ्चविंशतिः व्युच्छिद्यन्ते। अमूः पञ्चविंशतिः अनन्तानुबन्ध्युदयरहितमिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वोदयरहितसासादने च बन्धादुभयोदयहेतुका भवन्ति। मिश्रगुणस्थाने बन्धव्युच्छित्तिः शून्यम् ॥९६॥

असंयतगुणस्थानचरमसमये द्वितीयकषायचतुष्कं वज्रवृषभनाराचसंहननं औदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गे मनुष्यगतितदानुपूर्व्ये मनुष्यायुश्चेति दश अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुबन्धत्वाद्व्युच्छिद्यन्ते। देशव्रतगुणस्थानचरमसमये स्वोदयहेतुबन्धत्वात् प्रत्याख्यानावरणा व्युच्छिद्यन्ते नियमेन ॥९७॥

विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यगायु इन पच्चीसकी व्युच्छित्ति होती है। ये पच्चीस अनन्तानुबन्धीके उदयके बिना मिथ्यादृष्टिमें और मिथ्यात्वके उदयके विना सासादनमें भी बँधती हैं अतः इनका बन्ध मिथ्यात्वके उदयसे भी होता है और अनन्तानुबन्धीके भी उदयसे होता है। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छिति नहीं है ॥९६॥

असंयतगुणस्थानके अन्तिम समयमें अप्रत्याख्यान कषायकी चौकड़ी, वज्रर्षभनाराच संहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु ये दस अप्रत्याख्यानकषायके उदयसे बँधनेके कारण व्युच्छिन्न होती हैं। देशविरत गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्रत्याख्यानावरण कषायकी नियमसे व्युच्छित्ति होती है। क्योंकि ये अपने उदयके निमित्तसे ही बँधती हैं ॥९७॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

अनंतरं प्रमत्तसंयतन बंधव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु :—

छट्ठे अथिरं असुहं असादमजसं च अरदिसोगं च ।
अपमत्ते देवाऊ णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति ॥९८॥

षष्ठे अस्थिरमशुभमसातमयशश्चारतिः शोकश्च । अप्रमत्ते देवायुर्न्निष्ठापनं चैवास्तीति ॥

प्रमत्ते प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु अस्थिरमुमशुभमुमसातवेदनीयमुमयशस्कीर्त्तिनाममुमरतियुं शोकमुमें ब षट्प्रकृतिगळु प्रमादहेतुकंगळप्पुदरिंदं षष्ठगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। प्रमादरहितरोळु तद्बंधाभावमप्पुदरिंदं । अप्रमत्ते अप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळे देवायुर्ब्बन्धव्युच्छित्तियक्कुं । स्वस्थानाप्रमत्तचरमसमयदोळु तद्गुणस्थानचरमसमयदोळे देवायुर्न्निरंतर बंधान्तर्म्मुहूर्त्तकालसमयसंख्याप्रमाणासंख्यातसमयप्रबद्धंगळु समाप्तंगळप्पुवेकें दोडे—सातिशयाप्रमत्तादिविशिष्टविशुद्धपरिणामरप्प उपशमश्रेण्यारोहकापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायर्ग्गे तदायुर्ब्बंधननिबंधनमध्यमविशुद्धि संज्वलनकषायपरिणामस्थानंगळु संभविसवप्पुदरिंदं ।

अनंतरमपूर्व्वकरणगुणस्थानसप्तभागेगळं त्रिविधंमाडिदल्लि तद्भागंगळोळु बंधव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु । गाथाद्वयदिदं :—

मरणूणम्मि णियट्टीपढमे णिद्दा तहेव पयला य ।
छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिंदी ॥९९॥
तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णगुरुगचउक्कतसणवयं ।
चरिमे हस्सं च रदी भयं जुगुच्छा य वोच्छिण्णा ॥१००॥

मरणोने निवृत्तिप्रथमे निद्रा तथैव प्रचला च । षष्ठे भागे तीर्त्थं निर्म्माणं सद्गमनपंचेंद्रिये ॥

तैजसद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुरवर्णागुरुलघुचतुष्कं त्रसनवकं । चरमे हास्यं च रतिः भयं जुगुप्सा च व्युच्छित्तयः ॥

प्रमत्तसंयतगुणस्थानचरमसमये अस्थिरं अशुभं असातवेदनीयं अयशस्कीर्तिः शोकश्चेति षट् व्युच्छिद्यन्ते प्रमादहेतुकबन्धत्वात् । स्वस्थानाप्रमत्तगुणस्थानचरमसमये देवायुर्बन्धव्युच्छित्तिः[2] । सातिशयाप्रमत्तादिषु विशिष्टविशुद्धिकेषु तद्बन्धनिबन्धनमध्यमविशुद्धिसंज्वलनपरिणामासंभवात् ॥९८॥ अथापूर्वकरणस्य सप्तभागान् त्रिधा कृत्वा तत्र बन्धव्युच्छित्ति गाथाद्वयेनाह—

प्रमत्तसंयतगुणस्थानके अन्तिम समयमें अस्थिर, अशुभ, असातवेदनीय, अयशकीर्ति, शोक ये छह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती हैं क्योंकि इनका बन्ध प्रमादके कारण होता है। स्वस्थानाप्रमत्तगुणस्थानके अन्तिम समयमें देवायुकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है। यहाँ अप्रमत्तके साथ स्वस्थान विशेषण इसलिए लगाया है कि सातिशय अप्रमत्त आदिमें विशिष्ट विशुद्धि होनेसे मध्यम विशुद्धिरूप संज्वलनके परिणाम सम्भव नहीं हैं और ये ही मध्यम विशुद्धिरूप परिणम यहाँ देवायुके बन्धमें कारण होते हैं ॥९८॥

अपूर्वकरणके सात भागोंमें-से तीन भागोंमें बन्धव्युच्छित्ति दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. मु य वंधवो॰ । २. त्तिः स्वस्थानविशेषणं तु साति॰ मु. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपशमश्रेण्यारोहणदोळु अपूर्व्वकरणंगे प्रथमभागदोळु मरणमिल्लवु कारणमागि मरणोने मरणरहितमप्प निवृत्तिप्रथमे निवृत्तिः परिणामविकल्पः तस्य प्रथमो भागस्तस्मिन्। परिणामभेदंगळ मरणरहितमप्प प्रथमभागदोळु परिणामभेदंगळसंख्यात लोकमात्रंगळपूर्वंगळपूर्व्वकरणंगे बु जीवकांडदोळु सुनिर्ण्णीतमप्पुदरिंदमपूर्व्वकरणगुणस्थानद मरणविरहितमप्प प्रथमभागदोळे बुदत्थमल्लि निद्रादर्शनावरणमुं प्रचलादर्शनावरणमुमें बेरडुं बंधव्युच्छित्तिगळक्कुं। तथैव तेन प्रकारेणैव आ प्रकारदिंदमे षष्ठे भागे षष्ठभागदोळु तीर्त्थकरनाममुं १ निर्म्माणनाममुं १ सद्गमनमुं १ पंचेंद्रियजातिनाममुं १ तैजसकार्म्मणशरीरद्वितयमुं २ आहारकाहारकांगोपांगनामद्वितयमुं २ समचतुरस्रसंस्थानमुं १ देवगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यंवैक्रियिकशरीर तदंगोपांगमुमें ब सुरचतुष्कमुं ४ वर्णगंधरसप्पर्शमें ब वर्णचतुष्कमुं ४ अगुरुलघु उपघातपरघातोच्छ्वासमें ब अगुरुलघुचतुष्कमुं ४ त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिर शुभ सुभग सुस्वरादेयमें ब त्रस नवकमुं ९ इन्तु त्रिंशत्प्रकृतिगळु षष्ठभाग चरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळक्कुं। चरमे चरमसप्तमभागदोळु हास्यमुं रतिनोकषायमुं भयनोकषायमुं जुगुप्सानोकषायमुमिन्तु नाल्कुं प्रकृतिगळु तत्सप्तमभागचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळक्कुं।

अनंतरमनिवृत्तिकरण गुणस्थानद बंधव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु :—

पुरिसं चदु संजलणं कमेण अणियट्टि पंचभागेसु।
पढमं विग्घं दंसणचउ जस उच्चं च सुहुमंते ॥१०१॥

पुरुषश्चतुः संज्वलनाः क्रमेणानिवृत्तिपंचभागेषु। प्रथमं विघ्नं दर्शनचत्वारि यशस्कीर्त्तिरुच्चं च सूक्ष्मांते ॥

पुंवेदनोकषायमुं १ क्रोधसंज्वलनकषायमुं २ मानसंज्वलनकषायमुं १ मायासंज्वलनकषायमुं १ लोभसंज्वलनकषायमुं १ में दितु पंचप्रकृतिगळु अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपंचभागंगळोळु यथाक्रमदिंदं मेले मेले बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। सांपरायगुणस्थानदोळु मत्यावरणादिज्ञानावरणपंचकमुं ५

निवृत्तिः अर्थादपूर्वकरणपरिणामः। तस्य प्रथमभागे मरणोने आरोहणावसरे मरणरहिते निद्राप्रचले व्युच्छिन्ने। तथैव—तेनैव प्रकारेण षष्ठभागचरमसमये तीर्थं निर्माणं सद्गमनं पञ्चेन्द्रियं तैजसकार्मणे आहारकतदङ्गोपाङ्गे समचतुरस्रं देवगतितदानुपूर्व्ये वैक्रियिकतदङ्गोपाङ्गानि वर्णगन्धरसस्पर्शाः अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेयानि चेति त्रिंशद्बन्धव्युच्छिन्ना। सप्तमभागे हास्यं रतिर्भयं जुगुप्सा चेति चतुष्कं बन्धव्युच्छिन्नम् ॥९९–१००॥

पुंवेदः क्रोधादयश्चतुःसंज्वलनाश्चानिवृत्तिकरणगुणस्थानपञ्चमभागेषु क्रमेणोपर्युपरि व्युच्छिद्यन्ते।

निवृत्ति अर्थात् अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम भागमें श्रेणी चढ़ते समय मरण नहीं होता। उस भागमें निद्रा और प्रचलाकी व्युच्छित्ति होती है। उसी प्रकारसे छठे भागके अन्तिम समयमें तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय, तैजस, कार्मण, आहारक, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय ये तीस प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं। सप्तमभागमें हास्य, रति, भय, जुगुप्सा ये चार व्युच्छिन्न होती हैं ॥९९–१००॥

पुरुषवेद, संज्वलनक्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमाया, संज्वलन लोभ ये पाँच अनिवृत्तिगुणस्थानके पाँच भागोंमें क्रमसे व्युच्छिन्न होती हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानांतरायादिविघ्नपंचकमुं ५ चक्षुर्द्दर्शनावरणादि दर्शनावरणचतुष्कमुं ४ यशस्कीर्त्तिनाममुं १ उच्चैर्गोत्रमुमें ब षोडशप्रकृतिगळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तियप्पुवु। अंतें बो शब्दमन्त्यदीपकमप्पुदरिंदमेल्ला गुणस्थानंगळोळु तंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोळी पेळल्पट्ट बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवेंदितु निश्चयिसुवुदु। मेले कषायोदयमिल्लप्पुदरिदं। कषायहेतुकंगळगी गुणस्थानदोळे बंधव्युच्छित्तियादुदिन्तु योगहेतुकमप्प सातवेदनीयबंधं मूरु गुणस्थानंगळोळेंदु पेळ्पडुगु।

उवसंतखीणमोहे जोगिम्मि य समइयट्ठिदी सादं।
णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥१०२॥

उपशांतक्षीणमोहयोर्योगिनि च समयिकस्थिति सातं। ज्ञातव्यः प्रकृतीनां बंधस्यान्तोऽनंतश्च ॥

उपशांतकषायनोळं क्षीणमोहनोळं सयोगकेवलिभट्टारकरोळं समयस्थितिकसातवेदनीयं योगहेतुकं बंधमक्कुमयोगिभट्टारकरोळु योगमुमिल्लप्पुदरिंदमदक्के बंधाभावमक्कुमिन्तु प्रकृतिगळगे बंधस्यांतः बंधव्युच्छित्तियुं अनंतश्च बंधमुं च शब्ददिनबंधमिन्तु त्रिभेदं ज्ञातव्यः। अरियल्पडुवुदिल्लि बंधव्युच्छित्तिगळे पेळल्पट्टुवनुक्तंगळप्पबंधमुमबंधमुमें तरियल्पडुववें दोडे मुंपेळ्दबंधनियमसूत्रमं लेसागि भाविसि तीर्त्थबंधमसंयतादिचतुर्गुणस्थानदोळेयक्कुमाहारकद्वयमप्रमत्तादिअपूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतमेयक्कुमायुष्यं मिश्रगुणस्थानमुमं मिश्रकाययोगिगळं वर्ज्जिसिउळिदेल्ला अप्रमत्तावसानमाद सप्तगुणस्थानंगळोळु यथायोग्यमागियायुष्यं बंधमक्कुमुळिदेल्ला प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्ट्यादि सयोगकेवलिगुणस्थानावसानमागिर्द्दत्रयोदशगुणस्थानंगळोळी पेळल्पट्ट व्युच्छित्ति प्रकृतिगळिंपडिदु मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु व्युच्छित्तिबंधअबंधमुमें ब त्रिविधत्वमं रचिसुवददें तें दोडे बंधप्रकृतिगळु बंधप्रकृतिगळु अभेदविवक्षेयिदं विंशत्युत्तरशतंगळवक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुमें बत्रिप्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळल्लेंदवं कळेदुळिद—११७ प्रकृतिगळु बंध-

---

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानचरमसमये मत्यादीनि पञ्च, दानान्तरादयः पञ्च, चक्षुर्दर्शनावरणादीनि चत्वारि, यशःकीर्तिरुच्चैर्गोत्रं चेति षोडश व्युच्छिद्यन्ते। अन्ते इत्यन्तदीपकत्वात् सर्वत्रोक्तव्युच्छित्तयः तत्तच्चरमसमये एव ज्ञातव्याः ॥१०१॥

उपशान्तकषाये क्षीणमोहे सयोगकेवलिनि चैकसमयस्थितिकं सातवेदनीयमेव बध्नाति। तच्च योगहेतुकबन्धं कषायोदयस्य तेष्वभावात्। अयोगे योगोऽपि बन्धोऽपि च नास्ति। एवं प्रकृतीनां बन्धस्यान्तो बन्ध-

---

अन्तिम समयमें मत्यावरण आदि पाँच, दानान्तराय आदि पाँच, चक्षुदर्शनावरण आदि चार, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र ये सोलह व्युच्छिन्न होती हैं। अन्त शब्द अन्तदीपक है अतः सर्वत्र उक्त व्युच्छित्तियाँ प्रत्येक गुणस्थानके अन्तिम समयमें ही होती हैं यह ज्ञापित करता है ॥१०१॥

उपशान्तकषाय, क्षीणमोह और सयोगकेवलीमें एक समयकी स्थिति लेकर सातवेदनीयका ही बन्ध होता है। यह बन्ध योगके कारण होता है। इन गुणस्थानोंमें कषायका अभाव है। अयोगकेवलीमें योग भी नहीं है अतः बन्ध भी नहीं है। इस प्रकार प्रकृतियोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्यंगळु । कळेवत्रिप्रकृतिगळु अबंधंगळप्पुवंतागुत्तिरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिगळु १६ । बंधंगळु ११७ । अबंधंगळु ३ । सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिय षोडश बंधव्युच्छित्तिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडे शेष १०१ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पवा पदिनारुमबंधद मूरुं कूडि एकान्नविंशति प्रकृतिगळु १९ सासादनंगबंधंगळप्पुवंतागुत्तिरलु सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिगळु २५ बंधगळु १०१ अबंधगळु १९ । मिश्रगुणस्थानदोळु आयुर्ब्बंधमिल्लेंब नियममुंटप्पुदरिंदमा सासादनसम्यग्दृष्टिगे पेळ्द बंधप्रकृतिगळोळगे नरकायुष्यं मिथ्यादृष्टियोळुळियितप्पुदरिंदं । तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळिरुतिर्द्दपवातन पंचविंशतिव्युच्छित्तिप्रकृतिगळोळु तिर्य्यगायुष्यमिद्दपुदप्पुदरिना पंचविंशतिप्रकृतिगळनू मनुष्यदेवायुष्यद्वयमुमं कूडि २७ प्रकृतिगळं कळेदोडे ७४ प्रकृतिगळु बंधंगळप्पुवु । अबंधंगळा कळेद २७ प्रकृतिगळुं सासादनन अबंधंगळु १९ मं कूडिदोडे ४६ प्रकृतिगळ बंधंगळप्पुवंतागुत्तिरलु मिश्रगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिशून्यं बंधंगळु ७४ अबंधंगळु ४६ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिशून्यमप्पुदरिंदमा मिश्रनबंधप्रकृति गळु ७४ रोळगेयातन बंधप्रकृतिगळोळु मनुष्यायुष्यमुं देवायुष्यमुं तीर्त्थनाममुमेंब त्रिप्रकृतिगळिरुत्तिप्पंववं तेगदु कूडिदोडसंयतंगे बंधप्रकृतिगळु ७७ अप्पुवा तेगदुळिद अबंधप्रकृतिगळु ४३ असंयतंगे अबंधप्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तिरलु असंयतगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिगळु १० बंधंगळु ७७ अबंधगळु ४३ । देशसंयतगुणस्थानदोळु असंयतन बंधप्रकृतिगळोळगेयातन व्युच्छित्तिगळं कळेदुळिद ६७ प्रकृतिगळु बंधप्रकृतिगळप्पुवा पत्तुं आतन अबंधद ४३ प्रकृतिगळुमं कूडिदोडे देशसंयतंगे अबंधगळु ५३ प्रकृतिगळप्पुवु । अन्तागुत्तिरला देशव्रतंगे व्युच्छित्तिगळु ४ बंधंगळु ६७ अबंधंगळु ५३ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळुदेशसंयतन नाल्कुं व्युच्छित्तिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळकळेदोडे शेष ६३ प्रकृतिगळु बंधंगळप्पुवा नाल्कुमातन अबंधंगळु ५३ नू कूडिदोडे प्रमत्तंगे अबंधप्रकृतिगळु ५७ अप्पुवु । अन्तागुत्तिरलु प्रमत्तसंयतंगे व्युच्छित्तिगळु ६ बंधंगळु ६३ । अबंधंगळु ५७ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळु प्रमत्तसंयतन व्युच्छित्तिगळारुम ६ नातन बंधप्रकृतिगळोळु ६३ कळेदुळिद ५७ प्रकृतिगळं प्रमत्तर अबंधप्रकृतिगळोळिरुत्तिर्द्दाहारकद्वयमं बंधयोग्यतेयुळ्ळुदरिंदं तेगदुकोंडु कूडिदोडे बंधप्रकृतिगळु ५९ अप्पुवाशेषाबंधप्रकृतिगळु ५५ मनातनबंधव्युच्छित्तिगळु ६ मं कूडिदोडे अप्रमत्तरिगे अबंधप्रकृतिगळु ६१ अप्पुवंतागुत्तिरलप्रमत्तसंयतंगे बंधव्युच्छित्ति १ बंधंगळु ५९ अबंधंगळु ६१ ।

अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु अप्रमत्तसंयतन बंधप्रकृतिगळोळु ५९ आतन बंधव्युच्छित्तियोंदं कळेदोडे बंधप्रकृतिगळु ५८ आ कळेदोंदुमनातन अबंधप्रकृतिगळु ६१ मं कूडिदोडे ६२ प्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तिरलु मरणरहितापूर्व्वकरणन प्रथमभागदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु २ बंधंगळु ५८

व्युच्छित्तिरुक्तो ज्ञातव्यः । बन्धस्यानन्तो बन्ध इत्यर्थः । च शब्दादबन्धश्चेति ॥१०२॥

बन्धका अन्त अर्थात् बन्धव्युच्छित्ति और बन्धका अनन्त अर्थात् बन्ध तथा 'च' शब्दसे अबन्ध जानना ॥१०२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबंधंगळु ६२ तद्गुणस्थानषष्ठभागदोळु तन्न प्रथमभागद बंधव्युच्छित्तिगळ्निद्राप्रचलेगळेरडुमना प्रथमभागबंधप्रकृतिगळु ५८ रोळु कळेदुळिद ५६ प्रकृतिगळु बंधंगळप्पुवा निद्राप्रचलेगळुमाप्रथम-भागेय अबंधप्रकृतिगळु ६२ मं कूडिदोडे तत्षष्ठभागेयोळऽबंधंगळु ६४ अप्पुवंतागुत्तिरला षष्ठभागे-योळु बंधव्युच्छित्तिगळु ३० बंधंगळय्वत्तारु ५६ अबंधंगळु ६४। अपूर्व्वकरणसप्तमभागदोळु तन्न षष्ठभाग बंधप्रकृतिगळोळु ५६ तत् षष्ठभागव्युच्छित्तिगळु ३० कळेदुळिद २६ प्रकृतिगळु बंध-प्रकृतिगळप्पुवु वा मूवत्तु ३० प्रकृतिगळं तत्षष्ठभागद अबंधंगळु ६४ मं कूडिदोडे अबंधप्रकृतिगळु ९४ अप्पुवंतागुत्तं विरलु अपूर्व्वकरणन सप्तमभागचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ४ बंधप्रकृति-गळु २६ अबंधप्रकृतिगळु ९४। अनिवृत्तिकरणन पंचभागंगळोळगे प्रथमभागदोळु अनिवृत्तिकरणन चरमसप्तमभागद नाल्कुं बंधव्युच्छित्तिगळनातनबंधप्रकृतिगळु २६ रोळु कळेयलुळिद २२ प्रकृति-गळु बंधंगळप्पुवु। तत्सप्तमभागव्युच्छित्तिगळु नाल्कुमं तत्भागाबंधप्रकृतिगळु ९४ कूडिदोडे अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागद अबंधप्रकृतिगळप्पु ९८ वंतागुत्तं विरला अनिवृत्तिकरणन प्रथमभाग-दोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृतिगळु २२ अबंधप्रकृतिगळु ९८। अनिवृत्तिकरणन द्वितीयभागदोळु तन्न प्रथमभागद बंधव्युच्छित्ति पुंवेदमनोंदं १ तन्न प्रथमभागद बंधप्रकृतिगळु २२ रोळगे कळवोडे बंधप्रकृतिगळु २१ अप्पुवा पुंवेदमुं तत्प्रथमभागद अबंधप्रकृतिगळु ९८ मं कूडिदोडे तद्द्वितीय-भागद अबंधप्रकृतिगळु ९९ अप्पुवंतागुत्तं विरला द्वितीयभागवर्त्तिययानिवृत्तिकरणंगे बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृतिगळु २१ अबंधप्रकृतिगळु ९९ अनिवृत्तिकरणन तृतीयादिभागंगळोळमी प्रकारदिदं बंधव्युच्छित्तिगळुं बंधंगळुमबंधंगळुमी प्रकारदिदंमिप्पुवु। तृतीयभागदोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंध-प्रकृतिगळु २०। अबंधप्रकृतिगळु १००। चतुर्त्थभागदोळु मानसंज्वलनं पोवडे बंधव्युच्छित्ति १। बंधप्रकृतिगळु १९। अबंधप्रकृतिगळु १०१। अनिवृत्तिपंचमभागदोळुं बंधव्युच्छित्ति १। बंध-प्रकृतिगळु १८। अबंधप्रकृतिगळु १०२। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु बादरलोभसंज्वलनं पोवडे बंधव्युच्छित्तिगळु १६ बंधप्रकृतिगळु १७ अबंधप्रकृतिगळु १०३। उपशांतकषायगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यं । ०। बंधप्रकृति १। अबंधप्रकृतिगळु ११९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळु बंध-व्युच्छित्तिशून्यं ०। बंधप्रकृति १ अबंधप्रकृतिगळु ११९। सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृति १ अबंधप्रकृतिगळु ११९। अयोगिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यं ०। बंधप्रकृति गळु शून्यं ०। अबंधप्रकृतिगळु १२०।

इंतिवेल्लमं मनदोळिरिसि बंधप्रकृतिगळुमनबंधप्रकृतिगळुमं गुणस्थानंगळोळु गाथाद्वयदिदं पेळदपं :—

सत्तरसेक्कग्गसयं चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी।
बंधा णवट्ठवण्णा दुवीस सत्तारसेक्कोघे ॥१०३॥

सप्तदशैकाधिकशतं चतुः सप्तोत्तरसप्ततिः सप्तषष्टिस्त्रिषष्टिर्बंधा नवाष्टाधिकपंचाशद्द्विविंशतिः सप्तदशैक ओघे ॥

तद्द्वयं गुणस्थानेष्वप्रतनसूत्रद्वयेनाह—

आगे बन्ध और अबन्ध गुणस्थानोंमें दो गाथाओंसे कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि। बंधाः प्रकृतिबंधंगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु ११७। सासादनदोळु १०१ मिश्रनोळु ७४। असंयतनोळु ७७। देशव्रतियोळु ६७। प्रमत्तसंयतनोळु ६३, अप्रमत्तसंयतनोळु ५९, अपूर्व्वकरणनोळु ५८। अनिवृत्तिकरणनोळु २२, सूक्ष्मसांपरायनोळु १७। उपशांतकषायनोळु १। क्षीणकषायनोळु १। सयोगकेवलियोळोंदु १। अयोगकेवलियोळु शून्यं ०।

अनंतरमबंधप्रकृतिगळं पेळदपरु :—

तिय उणवीसं छत्तियतालं तेवण्ण सत्तवण्णं च।
इगिदुगसट्ठी बिरहिय तियसय उणवीससय ति वीससयं ॥१०४॥

तिस्रश्चैकान्नविंशतिः षट्त्र्यधिकचत्वारिंशत्त्रिपंचाशत्सप्तपंचाशत् एकद्विकषष्टिर्द्विरहितत्र्यधिकशतमेकान्नविंशत्युत्तरशतत्रिविंशत्युत्तरशतं॥

अभेदविवक्षया बन्धो विंशत्यग्रशतम्। तत्र मिथ्यादृष्टौ सप्तदशोत्तरशतमेव। 'सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु' इति तत्त्रयस्य बन्धाभावात्। सासादने एकोत्तरशतं मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्तेरुपर्यबन्धात्। मिश्रे चतुःसप्ततिः सासादनव्युच्छित्तेर्नृसुरायुषोश्चाबन्धे प्रक्षेपात्। असंयते सप्तसप्ततिः नृदेवायुस्तीर्थानामबन्धाद्बन्धे निक्षेपात्। देशसंयते सप्तषष्टिः, असंयतछेदस्याभावात्। प्रमत्ते त्रिषष्टिः देशसंयतव्युच्छित्तेरभावात्। अप्रमत्ते एकान्नषष्टिः प्रमत्तव्युच्छित्तेरभावादाहारकद्वयस्य च बन्धे पतनात्। अपूर्वकरणेऽष्टपञ्चाशत् देवायुषोऽप्रमत्ते छेदात्। अनिवृत्तिकरणे द्वाविंशतिः षट्त्रिंशतो बन्धाभावात्। सूक्ष्मसाम्पराये सप्तदश पञ्चानामनिवृत्तिकरणे व्युच्छेदात्। उपशान्त-क्षीणकषाययोः सयोगे च एकैका अयोगे शून्यम् ॥१०३॥

अभेद विवक्षासे बन्ध प्रकृतियाँ एक सौ बीस हैं। उनमेंसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक सौ सतरह ही बँधती हैं क्योंकि कहा है कि 'तीर्थंकरका बन्ध सम्यग्दृष्टिके ही होता है और आहारकद्विकका बन्ध प्रमादरहितके होता है।' इस प्रकार वहाँ तीन प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। सासादनमें एक सौ एक बँधती हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न सोलह प्रकृतियाँ ऊपरके गुणस्थानोंमें अबन्धरूप होती हैं। मिश्रमें चौहत्तर बँधती हैं क्योंकि सासादनमें व्युच्छिन्न पच्चीस प्रकृतियाँ तथा मनुष्यायु और देवायुका बन्ध यहाँ नहीं होता। असंयतगुणस्थानमें सतहत्तर बँधती है क्योंकि मनुष्यायु देवायु और तीर्थंकर अबन्धसे बन्धमें आ जाती हैं अर्थात् यहाँ बँधने लगती हैं। देशसंयतमें सड़सठका बन्ध होता है क्योंकि असंयतमें दसकी बन्धव्युच्छित्ति होनेसे यहाँ उनका बन्ध नहीं होता। प्रमत्तमें त्रेसठका बन्ध होता है क्योंकि देशसंयतमें चारकी व्युच्छित्ति होनेसे यहाँ उनका बन्ध नहीं होता। अप्रमत्तमें उनसठका बन्ध होता है क्योंकि प्रमत्तमें व्युच्छिन्न छहका अभाव हो जाता है तथा आहारकादिक बन्धमें आ जाते हैं। अपूर्वकरणमें अठावनका बन्ध होता है क्योंकि एक देवायुकी अप्रमत्तमें व्युच्छित्ति हो जाती है। अनिवृत्तिकरणमें बाईसका बन्ध होता है क्योंकि छत्तीसका बन्ध नहीं होता। सूक्ष्मसाम्परायमें सतरह बँधती हैं क्योंकि पाँचकी अनिवृत्तिकरणमें व्युच्छित्ति हो जाती है। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय सयोगीमें एक-एक बँधती है। अयोगीमें शून्य है ॥१०३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु ३ सासादननोळु १९ मिश्रनोळु ४६ असंयतनोळु ४३ देशव्रतियोळु ५३ प्रमत्तसंयतनोळु ५७। अप्रमत्तसंयतनोळु ६१। अपूर्व्वकरणनोळु ६२। अनिवृत्तिकरणनोळु ९८। सूक्ष्मसांपरायनोळु १०३। उपशांतकषायनोळु ११९। क्षीणकषायनोळु ११९। सयोगकेवलि भट्टारकनोळु ११९। अयोगकेवलिभट्टारकनोळु अबंधप्रकृतिगळ् १२०।

अनंतरं मार्ग्गणास्थानंगळोळ् बंधव्युच्छित्ति बंधाबंध त्रिविधत्वमं पेळवल्लि मोदलोळ् नरकगतिमार्ग्गणेयोळ् गाथात्रितयदिदं पेळदपरु :—

अबन्धो मिथ्यादृष्टौ तीर्थकृदाहारकद्वयं चेति त्रयम्। सासादने तदेव षोडशयुतमित्येकान्नविंशतिः। मिश्रे सापि पञ्चविंशत्या नृदेवायुर्भ्यां च युते षट्चत्वारिंशत् असंयते नृदेवायुस्तीर्थकृद्बन्धात् त्रिचत्वारिंशत्। देशसंयते सा दशयुतेति त्रिपञ्चाशत्। प्रमत्ते चतुर्युतेति सप्तपञ्चाशत्। अप्रमत्ते प्रमत्तषड्युतापि आहारकद्वयबन्धात् एकषष्टिः। अपूर्वकरणप्रथमभागे देवायुर्युतेति द्वाषष्टिः। द्वितीयभागे निद्राप्रचलाभ्यां चतुःषष्टिः। सप्तमभागे षष्ठभागत्रिंशता चतुर्नवतिः। अनिवृत्तिकरणे सप्तमभागचतुर्भिरष्टानवतिः। सूक्ष्मसाम्पराये ऽनिवृत्तिकरणपञ्चभागानामेकैकव्युच्छित्या त्र्युत्तरशतम्। उपशान्तक्षीणकषायसयोगेषु षोडशयुतमित्येकान्नविंशत्यग्रशतम्। अयोगे सातस्याप्यबन्धाद्विंशत्यग्रशतम् ॥१०४॥ अथ मार्गणासु तत्त्रयप्ररूपयंस्तावन्नरकगतौ गाथात्रयेणाह—

अब अबन्ध कहते हैं। मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकर और आहारकद्विक तीनका अबन्ध है। सासादनमें उनमें सोलह मिलानेसे उन्नीसका अबन्ध है। मिश्रमें उन्नीसमें पच्चीस व्युच्छित्ति तथा मनुष्यायु देवायु मिलानेसे छियालीसका अबन्ध है। छियालीसमेंसे मनुष्यायु देवायु तीर्थंकर घटानेसे असंयतमें तैंतालीसका अबन्ध है अर्थात् असंयतमें ये तीन अबन्धसे बन्धमें आ जाती हैं। उनमें दस जोड़नेसे देशसंयतमें तिरपनका अबन्ध है। उनमें चार जोड़नेसे प्रमत्तमें सत्तावनका अबन्ध है। इसमें प्रमत्तमें व्युच्छिन्न छह प्रकृतियोंको जोड़नेपर भी आहारकद्विकके बन्धमें आ जानेके इकसठका अबन्ध है। इसमें देवायु बढ़ानेसे अपूर्वकरणके प्रथम भागमें बासठका अबन्ध है। दूसरे भागमें निद्रा प्रचलाके बढ़नेसे चौसठका अबन्ध है। सप्तम भागमें छठे भागमें व्युच्छिन्न तीस प्रकृतियोंके मिलनेसे चौरानबेका अबन्ध है। अनिवृत्तिकरणमें अपूर्वकरणके सप्तमभागमें व्युच्छिन्न चारके मिलनेसे अठानबेका अबन्ध है। अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें व्युच्छिन्न पाँच प्रकृतियोंके मिलनेसे सूक्ष्मसाम्परायमें एक सौ तीनका अबन्ध है। इसमें सोलह मिलनेसे उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय सयोगीमें एक सौ उन्नीसका अबन्ध है। अयोगीमें साताका भी अबन्ध होनेसे एक सौ बीसका अबन्ध है ॥१०४॥

इनकी संदृष्टि इस प्रकार हैं—

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
बन्ध व्यु.	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
अबन्ध	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	१०३	११९	११९	११९	१२०

आगे मार्गणाओंमें बन्धादि तीनका कथन करते हुए नरकगतिमें तीन गाथाओंसे कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघे वा आदेसे णारयमिच्छम्मि चारि वोच्छिण्णा।
उवरिम बारस सुरचउ सुराउ आहारयमबंधा ॥१०५॥

ओघे इवादेशे नारकमिथ्यादृष्टौ चतस्रो व्युच्छित्तयः। उपरिम द्वादश सुरचतुःसुरायुराहारकमबंधाः ॥

ओघे इव इन्तु गुणस्थानदोळ् पेळ्वंते आदेशे मार्ग्गणेयोळमरियल्पडुगुमप्पुदरिदं गुणस्थानदोळ् मिथ्यादृष्टिगे पेळ्द बंधव्युच्छित्तिगळ् १६ ररोळगे नारकमिथ्यादृष्टियल्लि मोदल नाल्कुं मिथ्यात्व हुंडसंस्थान षंढवेदासंप्राप्तसंहननमें ब प्रकृतिगळ् बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवी नाल्कर मुंदण एकेंद्रियजाति स्थावरनाम आतप सूक्ष्म अपर्याप्तसाधारणशरीरनाम द्वींद्रियजाति त्रींद्रियजाति चतुरिंद्रियजाति नरकगति नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नरकायुष्यमें ब द्वादशप्रकृतिगळुं १२। देवगति देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यमुं वैक्रियिकशरीरमुं तदंगोपांगमें ब सुरचतुष्कमुं ४ देवायुष्यमुं आहारकद्वयमुमें ब १९ प्रकृतिगळु नरकगतिसामान्यनारकरुगळ्गे बंधयोग्यंगळल्लवेकें दोडे नारकरु नरकगतियिंबंदु एकेंद्रियजीवंगळुं विकलत्रयजीवंगळुं नारकरुं देवक्कळुमागि पुट्टरदु कारणदिंदमा पत्तों भत्तुं प्रकृतिगळं नूरिप्पत्तु बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडे नरकगतिय नारकरुगळ्गे बंधयोग्यमप्प प्रकृतिगळु नूरोंदु प्रकृतिगळप्पुवु १०१। घर्म्मेयोळं वंशेयोळं मेघेयोळमी नूरोंदु प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। अंजनेयोळमरिष्टेयोळं मघवियोळं तीर्त्थबंधमिल्लप्पुदरिंदमा नूरुं नरकंगळ नारकरुगळ्गे नूरु नूरे प्रकृतिगळ् बंधयोग्यंगळप्पुवु। माघवियोळ् मनुष्यायुष्यं तद्गतिनारकरुगळ्गे बंधयोग्यमल्लप्पुदरिंदमा मनुष्यायुष्यमं कळेदोडे ओं दु गुंदि नूरु प्रकृतिगळ् बंधयोग्यंगळप्पुवी प्रकृतिगळ् तत्तत्पृथ्विय पर्य्याप्तकरुगळ्गे योग्यंगळु। अपर्य्याप्तकरुगळ्गे बेरे योग्य प्रकृतिगळ पेळल्पट्टुवप्पुदरिंदं

परि		अप	
घ	१०१	घ	९९
वं	१०१	वं	९८
मे	१०१	मे	९८
अं	१००	अं	९८
अं	१००	अ	९८
म	१००	म	९८
मा	९९	मा	९५

मार्गणाणां गुणस्थानवज्ज्ञातव्यं किन्तु नरकगतौ मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वादीनां चतुर्णामेव व्युच्छित्तिः। तदुपरितनैकेन्द्रियादिद्वादशानां देवगतितदानुपूर्व्यवैक्रियिकतदङ्गोपाङ्गानां देवायुराहारकद्वययोश्च बन्धो नास्ति। तेन बन्धयोग्यमेकोत्तरशतम् १०१। अञ्जनादित्रये तीर्थङ्करत्वं विना शतम्। माघव्यां मनुष्यायुर्विना एकोन-

मार्गणामें गुणस्थानवत् जानना। किन्तु नरकगतिमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारकी ही व्युच्छित्ति होती है। उससे ऊपरकी एकेन्द्रिय आदि बारह, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग, देवायु, आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता। अतः घर्मा आदि तीन नरकोंमें बन्ध योग्य एक सौ एक हैं। अंजना आदि तीन नरकोंमें तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य सौ हैं। माघवीमें मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य निन्यानबे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्तकरुगळगे मिश्रकाययोगिगळप्पुदरिंदं आवायुर्ब्बंधमिल्लप्पुदरिंदं तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं कळेदोडे ९९ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळुं कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळुं घर्म्मेयोळपुट्टुवरप्पुदरिंदमपर्य्याप्तकालदोळं तीर्त्थबंधमुंटु। वंशेयोळं मेघेयोळमुळिद नरकंगळोळं सम्यग्दृष्टिगळपुट्टरु मिथ्यादृष्टिगळे पोगि पुट्टुवरदु कारणमागि तीर्त्थनामकर्म्ममना तो भत्तो-भत्तरोळु कळेदोडे ९८ प्रकृतिगळु वंशादिमघवीपर्य्यंतं बंधयोग्यप्रकृतिगळप्पुवु। माघवियोळु नारकरु अपर्य्याप्तकालदोळु मनुष्यगतिनामकर्म्ममुमन्तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यमुमनुच्चैर्गोत्रमुमनिन्तु मूरुं प्रकृतिगळं कट्टुव योग्यतेयिल्लप्पुदरिंदमवं तोभत्तें टुं प्रकृतिगळोळकळेदोडे ९५ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। इन्ती विधानम ननितं लेसागव धारिसिदंगे घर्म्मादिपृथ्विगळोळु बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधत्रिविकल्पमं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्ग्गुणस्थानंगळोळु योजिसुव प्रकारमं पेळदपरु :—

घम्मे तित्थं बंधदि वंसामेघाण पुण्णगो चेव।
छट्ठोत्ति य मणुवाउ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥१०६॥

घर्म्मायां तीर्त्थं बध्नाति वंशामेघयोः पूर्णश्चैव षष्टिपर्य्यंतं मनुष्यायुश्चरमे मिथ्यादृष्टयावेव तिर्य्यगायुः ॥

घर्म्मेयोळु नारकं तीर्त्थनामकर्म्ममं कट्टुगुं। वंशेय मेघेय नारकरु पर्य्याप्तकालदोळे कट्टुवरु। अदेकेंदोडे घर्म्मेयल्लदुळिद वंशाद्यधस्तन पृथ्विगळोळु सम्यग्दृष्टिगळपुट्टरदु कारणदिंदमा वंशेयोळु मेघेयोळपुट्टिद तीर्त्थसत्कर्म्मरु पुट्टिदंतर्म्मुहूर्त्तक्के षट्पर्य्याप्तिगळनेरदु सम्यक्त्वस्वीकारमं माडि तीर्त्थबंधमं माळपरप्पुदरिंदं। मघविपर्य्यंन्तमाद नरकंगळ नारकरु मनुष्यायुष्यमं कट्टुवरु। माघविय नारकरु मिथ्यादृष्टिगळे तिर्य्यगायुष्यमं कट्टुवरु एंबी सूत्राभिप्रायदिदं घर्म्मे वंशे मेघेय पर्य्याप्तकरचनेयं मुन्नं रचियिसि बळिक्कदर विचारमं माडिदपेमदक्के संदृष्टि :—

शतम्। अपर्याप्तकाले तु मिश्रकाययोगित्वात् नरतिर्यगायुषी विना घर्मायामेकोनशतम् ९९। वंशादिषु सम्यग्दृष्ट्यनुत्पत्तेः तीर्थङ्करत्वं विना अष्टानवतिः ९८। माघव्यां मनुष्यगतितदानुपूर्व्योच्चैर्गोत्रैर्विना पंचनवतिः ९५। इदं जानन्तं प्रति गुणस्थानेषु व्युच्छित्त्यादित्रयं योजयति ॥१०५॥

घर्मायां तीर्थकरत्वं च बध्नाति। वंशामेघयोः पर्याप्त एव बध्नाति नापर्याप्तः। मघवीं यावन्मनुष्यायुर्बध्नाति नाधः। माघव्यां मिथ्यादृष्टावेवैकं तिर्यगायुर्बध्नाति एतत्सूत्राभिप्रायेण घर्मादित्रयपर्याप्तस्य

अपर्याप्त अवस्थामें मिश्रकाय योग होनेसे मनुष्यायु तिर्यंचायुका बन्ध नहीं होता। अतः घर्मामें बन्धयोग्य निन्यानबे हैं। सम्यग्दृष्टि जीव मरकर वंशा आदिमें उत्पन्न नहीं होता। अतः वहाँ तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य अठानबे हैं। माघवीमें मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके बिना बन्धयोग्य पिचानबे हैं, यह अपर्याप्त अवस्थामें जानना ॥१०५॥

यह जान लेनेपर गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति आदि तीनका कथन करते हैं—

घर्मानरकमें तीर्थंकरका बन्ध करता है। वंशा और मेघामें पर्याप्त अवस्थामें ही तीर्थंकरका बन्ध करता है, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं करता। मघवी नामक छठे नरक तक ही मनुष्यायुका बन्ध करता है उससे नीचे नहीं करता। 'माघवीमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्त		घर्म्मे	वंशे	मेघे
प्त	अ	१०	७२	२९
	मि	०	७०	३१
	सा	२५	९६	५
	मि	४	१००	१
अप	अ	९	७१	२८
र्याप्त	मि	२८	९८	१
		व्युच्छि	बंध	अबंध

इल्लि मिथ्यात्वमुं हुंडसंस्थानमुं षंढवेदमुमसंप्राप्तसृपाटिकासंहननमेंब नाल्कुं प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु १०० अबंधप्रकृति तीर्त्थमोंदेयक्कुं। सासादनंगे बंधव्युच्छित्तिगळुं मुन्नं गुणस्थानदोळु पेळ्द पंचविंशतिप्रकृतिगळेयप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळु नाल्कनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदुळिद ९६ प्रकृतिगळु सासादनंगे बंधप्रकृतिगळप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळुं मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्तिगळु नाल्कुमबंधप्रकृति तीर्त्थमितैदुं प्रकृतिगळु सासादनंगे अबंधप्रकृतिगळप्पुवु। मिश्रंगे व्युच्छित्तिशून्य मक्कुं। बंधप्रकृतिगळु। सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु २५ मनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदुळिद ७१ प्रकृतिगळोळगे मिश्रगायुर्बंधमिल्लप्पुदरिंदमल्लिर्द्द मनुष्यायुष्यमं तेगेदोडे बंधप्रकृतिगळु ७० त्तप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळुमा कळेद मनुष्यायुष्यमुं १। सासादनन बंधव्युच्छित्ति २५ मबंधप्रकृतिगळु ५ मिन्तु ३१ प्रकृतिगळु मिश्रंगे अबंधप्रकृतिगळप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु १० बंधप्रकृतिगळु मिश्रन बंधप्रकृतिगळोळगे तीर्त्थमुमं मनुष्यायुष्यमुमं कूडिदोडे ७२ प्रकृतिगलु असंयतंगे बंधप्रकृतिगळप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळुं मिश्रन अबंधंगळु ३१ रोळगे तीर्त्थमुमं मनुष्यायुष्यमुमं तेगेदु बंधप्रकृतिगळोळु कूडिदवप्पुदरिंदमु आ येरडुं प्रकृतिगळं कळेदोडे असंयतंगे अबंधप्रकृतिगळु २९ अप्पुवु। घर्म्मेय अपर्य्याप्तनारकरुगळगे। मिथ्यादृष्टिगे सासादनतिर्य्यगायुर्व्वर्ज्जितबंधव्युच्छित्तिगळ २४ मं तन्न नाल्कुं बंधव्युच्छित्तिगळं कूडिदोडे बंधव्युच्छित्तिगळु २८ प्पुवेकेंदोडे नरकगतियोळेल्लियुमप्पर्य्याप्तकालदोळु सासादनरिल्लप्पुदरिंदं। असंयतसम्यग्दृष्टिगे मनुष्यायुर्व्वर्जितं-

---

एकोत्तरशते मिथ्यादृष्टौ अबन्धः तीर्थकरत्वं, बन्धः शतं, व्युच्छित्तिः तदेवाद्यचतुष्कम्। सासादने अबन्धः पञ्च, बन्धः षण्णवतिः, व्युच्छित्तिः प्रागुक्तैव पञ्चविंशतिः। मिश्रे बन्धः मनुष्यायुर्नेति सप्ततिः, अबन्धः एकत्रिंशत्, व्युच्छित्तिः शून्यम्। असंयते बन्धः मनुष्यायुस्तीर्थकरत्वाभ्यां द्वासप्ततिः, अबन्धः एकान्नत्रिंशत्, व्युच्छित्तिर्दश। नारकापर्याप्तानां सासादनत्वं नेति घर्मायां मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः तिर्यगायूरहितसासादन-

---

एक तिर्यगायुका बन्ध करता है' इस सूत्रके अभिप्रायसे घर्माआदि तीनमें पर्याप्तके एकसौ एक बन्धयोग्य हैं। मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरका अबन्ध है, बन्ध सौका, व्युच्छित्ति आदिकी चार प्रकृतियों की। सासादनमें अबन्ध पाँच, बन्ध छियानबे, व्युच्छित्ति पूर्वोक्त पच्चीस। मिश्रमें मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे बन्ध सत्तर, अबन्ध इकतीस, व्युच्छित्ति शून्य। असंयतमें तीर्थंकर और मनुष्यायुका बन्ध होनेसे बन्ध बहत्तर, अबन्ध उनतीस, व्युच्छित्ति दस। नरकमें अपर्याप्तावस्थामें सासादन गुणस्थान नहीं होता। अतः घर्मामें मिथ्यादृष्टिमें

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

गळप्प तन्न व्युच्छित्तिगळु ९ तनगे बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु ९। मिथ्यादृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयरहित ९८ प्रकृतिगळु बंधप्रकृतिगळप्पुवु। असंयतंगे तन्न पर्य्याप्तकालद ७२ रोळगे मनुष्यायुष्यरहितमागि तीर्त्थसहितमागि बंधप्रकृतिगळु ७१ अप्पुवु। मिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थमों दे अबंधप्रकृतियक्कुं १। असंयतंगे आ मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्ति अबंधंगळुं कूडि २९ रोळगे तीर्त्थबंधप्रकृतिगळोळं कूडित्तप्पुवु कारणमागि असंयतनोळबंधप्रकृतिगळु २८ अप्पुवु। यिन्तु अंजने अरिष्टे मघविगळ पर्य्याप्तनारकर्गे :—

अ	१०	७१	२९
मि	०	७०	३०
सा	२५	९६	४
मि	४	१००	०

तीर्त्थरहितमागि घर्मे वंशे मेघेगळगे पेळदंतेयक्कुं। वंशेयुं मेघेयुमंजनेयुमरिष्टेयुं मघवियुमें ब पंचभूमिगळनारकापर्य्याप्तरु मिथ्यादृष्टिगळेयप्पुवर्दरिदमा मिथ्यादृष्टिगळगेल्लरिगं बंधप्रकृतिगळु ९८ अप्पुवु मो २८। ९८। ०। माघविय नारकपर्याप्तकरुगळगे :—

अ	९	७०	२९
मि	०	७०	२९
सा	२४	९१	८
मि	५	९६	३
माघविय अपर्य्याप्त			
मि	९५	९५	०

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ४ सासादननल्लिय तिर्य्यगायुष्यं गूडि ५ प्रकृतिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु ९६। अबंधप्रकृतिगळु ३ ॥

मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो ।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति ॥१०७॥

मिश्राविरतयोरुच्चं मनुष्यद्विकं सप्तम्यां भवेद्‌बंधः। मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यद्विकमुच्चं न बध्नीतः ॥

व्युच्छित्या युता इत्यष्टाविंशतिः, बन्धोऽष्टानवतिः, अबन्धः तीर्थकरत्वम्। असंयते व्युच्छित्तिः मनुष्यायुर्विना नव, बन्धस्तीर्थकरत्वेन एकसप्ततिः। अबन्धोऽष्टाविंशतिः। अञ्जनादित्रयपर्याप्तानां तीर्थकरत्वं बिना घर्मादित्रयवत् ज्ञातव्यम्। वंशादिपञ्चापर्याप्ता मिथ्यादृष्टय एवेति बन्ध एव ॥१०६॥

व्युच्छित्ति तिर्यगायुके बिना सासादनमें व्युच्छिन्न चौबीस प्रकृतियोंके मिलनेसे अठाईसकी होती है। बन्ध अठानबे, अबन्ध तीर्थंकर का। असंयतमें व्युच्छित्ति मनुष्यायुके बिना नौ, बन्ध तीर्थंकरके साथ इकहत्तर, अबन्ध अठाईस। अंजना आदि तीनमें पर्याप्तकोंके तीर्थंकरके बिना घर्मा आदि तीनकी तरह जानना। वंशा आदि पाँच पृथिवियोंमें अपर्याप्त अवस्थामें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ॥१०६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रनोळमसंयतनोळं उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यद्विकमुं सप्तमपृथुवियोळु बंधमक्कुं। मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिगळीर्व्वरु मनुष्यद्विकमुमनुच्चैर्गोत्रमुमं कट्टरेंदितु मिथ्यादृष्टियोळबंधप्रकृतिगळु ३ अप्पुवु। सासादनसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु २४ अप्पुवेकेंदोडे तिर्य्यगायुष्यमं तेगदु मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळोळकूडिदप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु ९१ अप्पुवेकेंदोडे मिथ्यादृष्टिबंधव्युच्छित्तिगळय्दुं कळेदुदप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळु ८ प्पुवेकेंदोडे मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळय्दु मातन अबंधप्रकृतिगळमूरुं ३ कूडिदोडेंटे प्रकृतिगळप्पुदरिंदं मिश्रनोळु व्युच्छित्तिशून्यमक्कुं। बंधप्रकृतिगळु सासादनन व्युच्छित्तिगळनातनबंधप्रकृतिगळोळकळेदोडे ६७ प्रकृतिगळप्पुववरोळु मनुष्यद्विकमुमनुच्चैर्गोत्रमुमं कूडिदोडे मिश्रंगे बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळा कूडिद मूरुं प्रकृतिगळं सासादनन व्युच्छित्यबंधंगळोळु ३२ कळेदोडे मिश्रंगबंधप्रकृतिगळु २९ अप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु मनुष्यायुर्व्वर्जितनवप्रकृतिगळप्पुवु ९। बंधप्रकृतिगळु मिश्रंगे पेळ्दंते ७० प्रकृतिगळप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळुं मिश्रनोळेंतंते २९ प्रकृतिगळप्पुवु। माघविय अपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगे तिर्य्यगायुर्व्वर्जित ९८ प्रकृतिगळोळगे मनुष्यद्विकोच्चप्रकृतित्रयमं कळेदोडे ९५ प्रकृतिगळुबंधंगळप्पुवु। इन्तु नरकगतियोळु बंधव्युच्छित्तिबंधाबधप्रकृतिगळु पेळल्पट्टुवनंतरं तिर्य्यग्गतियोळु पेळ्दपरु :—

सप्तमपृथिव्यां मिश्रासंयतयोरुच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्वयं च बध्नाति। मिथ्यादृष्टिसासादनौ न बध्नतः इति तत्त्रयं तत्पर्याप्ते मिथ्यादृष्टावबन्धः। बन्धः षण्णवतिः। व्युच्छित्तिस्तिर्यगायुषोऽत्रैव बंधात् पञ्च। सासादने अबन्धोऽष्टौ, बन्धः एकनवतिः, व्युच्छित्तिः चतुर्विंशतिः। मिश्रेऽबन्धः तत्त्रयबन्धादेकान्नविंशत्, बन्धः सप्ततिः, व्युच्छित्तिः शून्यम्। असंयते अबन्धबन्धौ मिश्रवत्। व्युच्छित्तिर्मनुष्यायुर्वर्जनान्नव ॥१०७॥ एवं नरकगतौ बन्धव्युच्छित्तिबन्धाबन्धप्रकृतीः प्ररूप्य अनन्तरं तिर्यग्गतौ प्ररूपयति—

सातवीं पृथिवीमें मिश्र और असंयत गुणस्थानमें ही उच्चगोत्र और मनुष्यद्विकका बन्ध होता है। मिथ्यादृष्टि और सासादनमें उनका बन्ध नहीं होता। अतः सातवीं पृथिवीमें पर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टिमें इन तीनोंका अबन्ध होता है। बन्ध छियानबे, तिर्यगायुका बन्ध यहीं होनेसे व्युच्छित्ति पाँच। सासादनमें अबन्ध आठ, बन्ध इक्यानबे, व्युच्छित्ति चौबीस। मिश्रमें मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रका बन्ध होनेसे अबन्ध उनतीस, बन्ध सत्तर, व्युच्छित्ति शून्य। असंयतमें अबन्ध और बन्ध मिश्रकी तरह, व्युच्छित्ति मनुष्यायुको छोड़ नौ ॥१०७॥

	धर्मादि तीन पर्याप्त १०१ बन्धयोग्य				धर्मा अपर्याप्त ९९ बन्धयोग्य		अंजनादि तीन पर्याप्त १०० बन्धयोग्य				सप्तम नरक पर्याप्त ९९ बन्धयोग्य			
	मि.	सा.	मिश्र	असं.	मि.	असं.	मि.	सा.	मिश्र	असं.	मि.	सा.	मिश्र	असं.
अबन्ध	१	५	३१	२९	१	२८	०	४	३०	२९	३	८	२९	२९
बन्ध	१००	९६	७०	७२	९८	७१	१००	९६	७०	७१	९६	९१	७०	७०
बं. व्यु.	४	२५	०	१०	२८	९	४	२५	०	१०	५	२४	०	९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिए ओघो तित्थाहारूणो अविरदे छिदी चउरो ।
उवरिमछण्णं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा ॥१०८॥

तिरश्चि ओघस्तीर्त्थाहारोनोऽविरते व्युच्छित्तयश्चतस्रः । उपरितनषण्णां व्युच्छित्तिः सासादनसम्यग्दृष्टौ भवेन्नियमात् ॥

तिर्य्यंग्गतियोळु ओघः गुणस्थाननिरूपणमेयक्कुं । अदें तप्पुदें दोडे तीर्त्थाहारोनः तीर्त्थनाममुमाहारकद्वयविहीनमप्पुदक्कुं । तीर्त्थाहारकत्रिप्रकृतिविहीनमाद सर्व्वबंधप्रकृतिगळु ११७ ळुं मुन्नं गुणस्थानदोळ्पेळ्दंते बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधभेदंगळु ज्ञातव्यमप्पुवल्लि अविरते असंयतसम्यग्दृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळुं १० रोळगे तिर्य्यंचासंयतंगे चतस्रो व्युच्छित्तयः नाल्के बंधव्युच्छित्तिगळप्पुव ४ ल्लि उपरितनषट्प्रकृतिगळगे ६ सासादनसम्यग्दृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु नियमदिदमप्पुवन्तागुत्तं विरलु :—

सामण्णतिरियपंचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव ।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि ॥१०९॥

सामान्यतिर्य्यक्पंचेंद्रियपूर्णकयोनिमतिष्वेवमेव । सुरनारकायुरपूर्ण्णे वैक्रियिकषट्कमपि नास्ति ॥

सामान्यतिर्य्यंचरुं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरुं पर्य्याप्तकतिर्य्यंचरुं योनिमतितिर्य्यंचरुमें बी चतुर्व्विधतिर्य्यंचरुगळोळु एमेव यी प्रकारमेयक्कुमपूर्णे लब्ध्यपर्य्याप्ततिर्य्यंचरोळु सुरनारकायुः देवायुष्यमुं नरकायुष्यमुं वैक्रियिकषट्कमपि वैक्रियिकद्वितयमुं देवगतिद्वयमुं नरकगतिद्वयमुमें ब वैक्रियिकषट्कमुमा तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तकरोळु बंधमिल्लेकें दोडे उत्तरभवदोळु उदययोग्यमल्लद प्रकृतिगळं कट्टुवरल्लरें बुदर्त्थं । संदृष्टिरचने :—

तिर्यग्गतौ ओघः गुणस्थाननिरूपणमिव भवति किन्तु तीर्थाहारोन। तीर्थकरत्वाहारकद्वयाभ्यां रहितो भवति तेन बन्धयोग्यप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतम् । व्युच्छित्तिबन्धाबन्धभेदास्तत्प्रकृतित्रयं बिना गुणस्थानवज्ज्ञातव्याः । तत्रापि अविरते असंयतसम्यग्दृष्टौ व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया एव चत्वारः तदुपरितनानां वज्रवृषभनाराचादीनां षण्णां व्युच्छित्तिः तिर्यग्मनुष्यगत्योः सासादनसम्यग्दृष्टावेव भवति नियमात् ॥१०८॥ तथासति—

सामान्यतिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः पर्याप्ततिर्यञ्चः योनिमत्तिर्यञ्चश्चेति चतुर्विधतिर्यक्षु एवमेव भवति । अपूर्णे लब्ध्यपर्याप्तकतिरश्चि सुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कमपि बन्धो नास्ति उत्तरभवे उदयायोग्यानां

तिर्यञ्चगतिमें 'ओघ' अर्थात् गुणस्थानवत् जानना। किन्तु तीर्थंकर और आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता। अतः बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ सतरह। व्युच्छित्ति, बन्ध-अबन्ध गुणस्थानवत् जानना। इतना विशेष है कि असंयत गुणस्थानमें व्युच्छित्ति चार अप्रत्याख्यानावरण कषायकी ही होती है। उससे ऊपरकी वज्रवृषभनाराच आदि छहकी व्युच्छित्ति सासादन सम्यग्दृष्टिमें ही नियमसे होती है ॥१०८॥

सामान्यतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पर्याप्ततिर्यञ्च, योनिमत्तिर्यञ्च इन चार प्रकारके तिर्यञ्चोंमें इसी प्रकार होता है। लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चमें देवायु, नरकायु और वैक्रियिक षट्क-

1. ब भवेदिति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा	पं	प	यो
वि	४	६६	५१
अ	४	७०	४७
मि	०	६९	४८
सा	३१	१०१	१६
मि	१६	११७	०

इल्लि मिथ्यादृष्टिय बंधप्रकृतिगळु ११७ रोळु मिथ्यात्वादि षोडश व्युच्छित्ति प्रकृतिगळं कळेदुळिद १०१ प्रकृतिगळु सासादनंगे बंधप्रकृतिगळक्कुमा कळेद १६ प्रकृतिगळु आतंगबंधप्रकृतिगळप्पुउ। बंधव्युच्छित्ति प्रकृतिगळु ३१ अप्पुवेकेंदोडे चतुर्व्विधतिर्य्यंचासंयतसम्यग्दृष्टिगळु वज्रऋषभनाराचसंहननमुमं औदारिकद्वयमुमं मनुष्यद्वितयमुमं मनुष्यायुष्यमुमं कट्टरप्पुदरिंदमवं तेगदु सासादननोळु व्युच्छित्तिगळमाडल्पट्टुदरिंदं। मिश्रंगे बंधप्रकृतिगळु ६९ अप्पुवेंतेंदोडे सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु ३१ नातन बंधप्रकृतिगळोळ्कळेदल्लिहृंदेवायुष्यमुमं कळेदोडक्कुमप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळल्लि ४८ प्रकृतिगळप्पुवेंतदोडे सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळुमबंधप्रकृतिगळुं कूडि देवायुष्यं सहितमागियप्पुवप्पुदरिंदं। तिर्य्यक्चतुष्टयासंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रनोळ्कळेद देवायुष्यमनातं कट्टुगुमप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळु ४७ अप्पुवा कूडिद देवायुष्यं कळदुदप्पुदरिंदं। चतुर्व्विधतिर्य्यंचदेशव्रतिगळगे बंधप्रकृतिगळु ६६ अप्पुवेंतेंदोडे असंयतन बंधव्युच्छित्तिगळ्नाल्कुमनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडक्कुमेंबुदत्थं। अबंधप्रकृतिगळु ५१ अप्पुवेंतेंदोडसंयतन अबंधप्रकृतिगळोळु ४७ आतनव्युच्छित्तिगळ्नाल्कु कूडिदोडक्कु मेंबुदत्थं। बंधव्युच्छित्तिगळुमल्लि ४ अप्पुवो चतुर्व्विधतिर्य्यंचनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १११

बन्धाभावात्। तत्सामान्यादिचतुर्विधतिरश्चां मिथ्यादृष्टौ बन्धप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतम्। अत्र मिथ्यात्वादि षोडशव्युच्छित्तिमपनीय शेषाः १०१।

सासादनस्य बन्धः। अपनीतास्ताः १६ अबन्धः, व्युच्छित्तिरेकत्रिंशत्। कुतः? असंयतव्युच्छित्तेरुपरितनषण्णामत्रैव छेदात्। मिश्रे बन्धः एकान्नसप्ततिः सासादनबन्धे तद्व्युच्छित्तेर्देवायुषश्च अपनयनात्। अबन्धोऽष्टचत्वारिंशत् सासादनव्युच्छित्यबन्धयोर्देवायुर्मेलनात्। व्युच्छित्तिः शून्यम्। असंयतस्य बन्धः सप्ततिः देवायुषोऽत्र बन्धसंभवात्। अबन्धः सप्तचत्वारिंशत् देवायुषोऽपनीतत्वात्। व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया

का बन्ध नहीं है क्योंकि जो प्रकृतियाँ आगामी भवमें उदयके योग्य नहीं हैं उनका बन्ध नहीं होता। अतः सामान्य आदि चार प्रकारके तिर्यञ्चोंके मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ सतरह हैं। इनमें-से सोलहकी व्युच्छित्ति घटानेपर शेष एक सौ एकका बन्ध सासादनमें, अबन्ध सोलह, व्युच्छित्ति इकतीस; क्योंकि असंयतमें व्युच्छिन्न होनेवाली ऊपरकी छह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही होती है। मिश्रमें बन्ध उनहत्तर क्योंकि सासादनमें बँधनेवाली एक सौ एक प्रकृतियोंमें-से व्युच्छिन्न इकतीस तथा देवायु कम हो जाती हैं। अबन्ध अड़तालीस, क्योंकि सासादनमें व्युच्छिन्न इकतीस और अबन्धमें सोलह तथा देवायुके मिलनेसे अड़तालीस होती है। व्युच्छित्ति शून्य। असंयतके बन्ध सत्तरका, क्योंकि यहाँ देवायुका बन्ध सम्भव है। अबन्ध सैंतालीस क्योंकि देवायु कम हो गयी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पुवदे तें दोडे मिश्रकाययोगिगळोळायुर्बंधमिल्लप्पुदरिदं। नाल्कायुष्यंगळुं ४ नरकद्विकमुमिन्तु ६ प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिदं। ई निवृत्यपर्याप्तकरुगळिगे गुणस्थानत्रयमवकुमल्लिमिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु बंधप्रकृतिगळु १०७ अप्पुवेकें दोडे निर्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळु मिथ्यादृष्टिगं सासादनंगं सुरचतुष्टयमं कट्टुव योग्यते यिल्लप्पुदरिनवं कळेदातनोळु अबंधप्रकृतिगळमाडिद वप्पुदरिदं। आ चतुर्विधसासादननिवृत्यपर्य्याप्ततिर्य्यंचरुगळ्गे बंधप्रकृतिगळु ९४ अप्पुवें तें दोडे मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्तिगळु १३ कळेदोडप्पुवप्पुदरिदं अबंधप्रकृतिगळुमल्लि १७ अप्पुवें तें दोडे मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्तिगळुमनातन अबंधप्रकृतिगळुमं कूडिदोडक्कुमप्पुदरिदं। असंयतत्रिविधतिर्य्यंचनिर्वृत्यपर्य्याप्तरुगळ्गे बंधप्रकृतिगळु ६९ अप्पुवें तें दोडे सासादनबंधव्युच्छित्तिगळु २९ इवनातन बंधप्रकृतिगळोळ्कळेदोडे ६५ अप्पुववरोळु सुरचतुष्कमं कूडिदोडे अप्पुवप्पुदरिदं। अबंधप्रकृतिगळोळातनोळु ४२ अप्पुवें तें दोडे सासादनबंधव्युच्छित्तिगळुमं २९। अबंधप्रकृतिगळुमं १७ कूडिदोडे ४६ रिवरोळु सुरचतुष्कं तेगदु असंयतनोळ्कूडिदुदप्पुदरिदं :—

सा	पं	अप	०
अ	४	६९	४२
सा	२९	९४	१७
मि	१३	१७	४

एव चत्वारः वज्रवृषभनाराचादीनां षण्णां प्राक् सासादन एव बन्धच्छेदात्। देशसंयतस्य बन्धः षट्षष्टिः असंयतव्युच्छित्तिचतुष्कस्य तद्बन्धेऽपनीतत्वात्। अबन्धः एकपञ्चाशत् असंयतव्युच्छित्तेरत्र पतितत्वात्। व्युच्छित्तिः स्वस्य चतुष्कम्। चतुर्विधतिर्यग्निर्वृत्त्यपर्याप्तानां बन्धयोग्यप्रकृतयः एकादशोत्तरशतमेव। मिश्रकाययोगित्वादायुश्चतुष्कनरकद्विकयोर्बन्धाभावात् तेषां च गुणस्थानत्रयमेव। तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धः सप्तोत्तरशतं निर्वृत्त्यपर्याप्तकाले मिथ्यादृष्टिसासादनयोः सुरचतुष्कस्याबन्धात्। व्युच्छित्तिः त्रयोदश नरकायुर्नरकद्विकयोरभावात्। अबन्धः सप्तदश मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्त्यबन्धयोर्मेलत्वात्। असंयतस्य बन्धः एकान्नसप्ततिः सासादनबन्धे तद्व्युच्छित्त्येकान्नत्रिंशतमपनीय सुरचतुष्कस्य मेलनात्। अबन्धः द्वाचत्वारिंशत् सासादनव्युच्छित्त्यबन्धौ

व्युच्छित्ति चार अप्रत्याख्यानकषायोंकी, क्योंकि वज्रर्षभनाराच आदि छहकी पहले सासादनमें ही बन्धव्युच्छित्ति हो गयी है। देशसंयतमें बन्ध छियासठका, क्योंकि असंयतमें बँधनेवाली सत्तर प्रकृतियोंमें-से उसमें व्युच्छिन्न चार घट जाती हैं। अबन्ध इक्यावनका, असंयतमें व्युच्छिन्न उसमें मिल जाती हैं। व्युच्छित्ति चार। उक्त चारों प्रकारके निर्वृत्यपर्याप्ततिर्यञ्चोंके बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ ग्यारह हैं। क्योंकि मिश्रकाययोग होनेसे चारों आयु और नरकद्विकका बन्ध नहीं होता तथा उनमें तीन ही गुणस्थान होते हैं। उनके मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें बन्ध एक सौ सात; क्योंकि निर्वृत्यपर्याप्तकालमें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें सुरचतुष्कका बन्ध नहीं होता। व्युच्छित्ति तेरह; क्योंकि नरकद्विक और नरकायुका अभाव है। सासादनमें बन्ध चौरानबे; क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न तेरह घट जाती हैं। व्युच्छित्ति उनतीस, क्योंकि तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका अभाव है। अबन्ध सतरह, क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न तेरह और अबन्धमें चार मिलकर सतरह होती हैं। असंयतमें बन्ध उनहत्तर; क्योंकि सासादनमें बन्ध चौरानबेमें-से उसमें व्युच्छिन्न उनतीस घटाकर सुरचतुष्क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्नु लब्ध्यपर्य्याप्तकमिथ्याहृष्टिगळगे सुरनारकायुरपूर्णे वैक्रियिकषट्कमपि नास्ति एंदी सूत्राभिप्रायदिदं लब्ध्यपर्य्याप्तकतिर्य्यंचमिथ्याहृष्टिगळु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं कट्टुवरप्पुदरिंदं शेष-सुरनारकायुर्द्वयमुमं वैक्रियिकषट्कमुमं कट्टव योग्यतेयिल्लप्पुदरिंदमा ८ प्रकृतिगळं तिर्य्यग्गतिय बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७ रोळगे कळेदोडे १०९ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु ॥

अनंतरं मनुष्यगतियोळु बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिगळं गुणस्थानंगळोळु पेळ्दपरु :—

तिरियेव णरे णवरि हु तित्थाहारं च अत्थि एमेव ।
सामण्णपुण्णमणुसिणिणरे अपुण्णे अपुण्णेव ॥११०॥

तिरश्चीव नरे नवं खलु तीर्त्थाहारं चास्त्येवमेव । सामान्यपूर्णमानुषीषु नरे अपूर्ण्णे अपूर्णे इव ॥

तिर्य्यग्गतियोळेंतु पेळ्दंते मनुष्यगतियोळुमक्कुमेंतेंदोडे अविरते व्युच्छित्तयश्चतस्रः एंबिदुवु । मा असंयतन नाल्करिंद मुंदण ६ व्युच्छित्तिप्रकृतिगळु सासादननोळु व्युच्छित्तिगळप्पुवेंबिदुवुं । मत्तं नवीनमुंटदावुदेंदोडे तीर्त्थाहारं चास्ति तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं बंधमुंटु खलु स्फुट-

---

एकीकृत्य तस्मात् सुरचतुष्कस्य बन्धे निक्षेपात् । व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया एव चत्वारः । तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तकमिथ्यादृष्टौ तिर्यग्मनुष्यायुर्बन्धसद्भावात् शेषसुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कमपि बन्धो नास्तीति तदष्टके तिर्यग्गतिबन्धेऽनीते शेषं नवोत्तरशतमेव बन्धयोग्यं भवति ॥१०९॥ अथ मनुष्यगतौ बन्धव्युच्छित्ति बन्धाबन्धप्रकृतीर्गुणस्थानेषु प्ररूपयति—

तिर्यग्गतिवन्मनुष्यगतौ भवति । अविरते व्युच्छित्तिश्चत्वारः । तदुपरितनानां षण्णां व्युच्छित्तिः सासादनसम्यग्दृष्टावेव इति विशेषस्य उभयत्र समानत्वात् । पुनः नवीनमस्ति । तत् किम् ? तीर्थकरत्वमा-

---

मिलानेसे उनहत्तर होती हैं। अबन्धमें बयालीस; क्योंकि सासादनमें हुई व्युच्छित्ति और अबन्धको मिलाकर उसमें-से सुरचतुष्कको बन्धमें ले जानेपर बयालीस रहती हैं। व्युच्छित्ति चार अप्रत्याख्यान कषायकी। तिर्यञ्चलब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टिमें तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका बन्ध सम्भव है। शेष देवायु, नरकायु और वैक्रियिक षट्कका बन्ध नहीं होता। अतः तिर्यञ्चगतिमें बन्धयोग्य एक सौ सतरहमें-से ये आठ कम करनेपर शेष एक सौ नौ बन्धयोग्य होती हैं ॥१०९॥

सामान्यादि चार पर्याप्त तिर्यञ्चोंमें
बन्धयोग्य ११७

	मि.	सा.	मिश्र	असं.	देश.
अबन्ध	०	१६	४८	४७	५१
बन्ध	११७	१०१	६९	७०	६६
ब. व्यु.	१६	३१	०	४	४

निर्वृत्यपर्याप्त तिर्यञ्चोंमें
बन्धयोग्य १११

	मि.	सा.	असं.
अबन्ध	४	१७	४२
बन्ध	१०७	९४	६९
ब. व्यु.	१३	२९	४

मनुष्यगतिमें गुणस्थानोंमें बन्ध, व्युच्छित्ति-बन्ध और अबन्ध कहते हैं—

तिर्यञ्चगतिके समान मनुष्यगतिमें होता है। अर्थात् असंयतगुणस्थानमें चारकी व्युच्छित्ति होती है। उससे ऊपरकी छहकी व्युच्छित्ति सासादन सम्यग्दृष्टीमें ही होती है यह विशेषता दोनोंमें समान है। नवीनता यह है कि मनुष्यगतिमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मागि। सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्यमानुषीमनुष्यरुगळें बी त्रिविधमनुष्यरोळं एमेव ई प्रकार-मेयक्कुमदु कारणमागिबंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० अप्पुवु। सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु ३१ अप्पुवु। असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ४ मिवितु तिर्य्यंगतियोळ्पेळल्पट्टुविल्लियुं त्रिविधमनुष्यरोळमरियल्पडुगुमें बुदत्थं। नरे अपूर्णे अपूर्णे इव मनुष्यापूर्णनप्प लब्ध्यपर्याप्तकनोळु तिर्य्यग्गतिलब्ध्यपर्याप्तकंगे पेळ्दंतेयक्कुं संदृष्टि :—

	अ	०	०	१२०
	स	१	१	११९
	क्षी	०	१	११९
१	उ	०	१	११९
१	सू	१६	१७	१०३
१	अ	५	२२	९८
१	अ	३६	५८	६२
	अ	१	५९	६१
	प्र	६	६३	५७
	दे	४	६७	५३
	अ	४	७१	४९
	मि	०	६९	५१
	सा	३१	१०१	१९
	मि	१६	११७	३

इल्लिद मुंदधस्तनाधस्तनगुणस्थानंगळ बंधव्युच्छित्तिगळं बंधदोळ्कळेदोडं बंधव्युच्छित्ति-गळनू अबंधप्रकृतिगळनुं कूडिदडमुपरितनोपरितनगुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि बंधप्रकृतिगळुम-बंधप्रकृतिगळुमप्पुवें दितु बंधदोळमुदयदोळमुदीरणेयोळं सत्वदोळं ज्ञातव्यमक्कुमेकें दोडवं कळेवुं कूडियुं बंधप्रकृतिगळनू अबंधप्रकृतिगळनू पेळ्वुदिल्ल विशेषमुंटादेडेयोळु कंठोक्तं माडिदपरें दु निश्चयिसुवुदु। गुणस्थानंगळोळु बंधप्रकृतिगळिनितें दु पेळ्दोडे केळगणगुणस्थानद बंधव्युच्छित्तिगळना गुणस्थानद बंधप्रकृतिगळोळु कळेदु पेळदरें दु अबंधप्रकृतिगळुमिनितें दु पेळ्दोडेयुं केळगण गुण-स्थानद बंधव्युच्छित्तिगळनू अबंधप्रकृतिगळनू कूडि पेळदरें दे निश्चयिसुवुदें बुदत्थं।

मनुष्यगतियोळु सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तमनुष्ययोनिमतिमनुष्यनें बितु त्रिविधमनुष्यरुगळ्गे गुणस्थानंगळु चतुर्दशप्रमितंगळप्पुववरोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १६ बंध-प्रकृतिगळु ११७ अबंधप्रकृतिगळु तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं कूडि त्रिप्रकृतिगळप्पुवु ३। सासादननोळु

हारकद्वयं च बन्धोऽस्ति खलु—स्फुटम्। सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्यमानुषीमनुष्येषु त्रिविधेष्वपि एवमेव तेन बन्धयोग्यं विंशत्युत्तरशतम्। सासादनव्युच्छित्तिरेकत्रिंशत्। असंयतव्युच्छित्तिश्चत्वारश्चेति ज्ञातव्यम्। गुण-स्थानानि चतुर्दश। तेष्वधस्तनव्युच्छित्तौ बन्धादपनीतायां विशेषकथनपूर्वकमबन्धे च युतायामुपरितनबन्धाबन्धौ स्याताम्। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १६। बन्धः ११७। अबन्धः तीर्थमाहारकद्वयं चेति त्रयं। सासादने

बन्ध होता है। सामान्य मनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मानुषी मनुष्य तीनोंमें भी इसी प्रकार है। अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। सासादनमें व्युच्छित्ति इकतीस और असंयतमें चार जानना। गुणस्थान चौदह हैं। उनमें नीचेकी व्युच्छित्ति बन्धमें-से घटानेपर विशेष कथनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधव्युच्छित्तिगळु ३१ अप्पुवें तें दडे असंयतंगे पेळद बंधव्युच्छित्तिगळु १० रोळु तिरियेव णरे एंदु पेळदरप्पुदरिंदमप्रत्याख्यानचतुष्टयमं कळदुळिद षट्प्रकृतिगळु सासादननोळु व्युच्छित्तिगळादुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु १०१। अबंधप्रकृतिगळु १९। मिश्रगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यमक्कुं। बंधप्रकृतिगळु ६९। अप्पुवेकें दोडे देवायुष्यमं कळेदु अबंधप्रकृतिगळोळकूडिदवप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळु ५१। असंयतगुणस्थानदोळु बंधप्रकृतिगळु ४ अप्पुवेकें दोडे वज्रऋषभनाराचसंहननादि षट्प्रकृतिगळु सासादननोळु बंधव्युच्छितिगळादुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु ७१ अप्पुवें तें दोडे मिश्रनोळबंधरूपदिनिर्द्द देवायुष्यमुमं तीर्त्थमुमनातं कट्टुवनप्पुदरिंदमा एरडुं प्रकृतिगळुं कूडिदुवें बुदर्त्थं। अबंधप्रकृतिगळु ४९। अप्पुवा कूडिदेरडुं प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिंदं। देशव्रतियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु तन्न प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्टयमेयक्कुं ४। बंधप्रकृतिगळु ६७ अबंधप्रकृतिगळु ५३। प्रमत्तसंयतनोळु बंधव्युच्छितिगळु अस्थिरादिगळु ६ अप्पुवु। बंधप्रकृतिगळं ६३ अबंधप्रकृतिगळु ५७। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु देवायुष्यमों दे बंधव्युच्छित्तियक्कुं १। बंधप्रकृतिगळु ५९ एकें दोडाहारकद्विकमुं प्रमादरहितरु कट्टुवरप्पुदरिंदमा एरडुं प्रकृतिगळु कूडिदोडक्कुमें बुदर्त्थं। अबंधप्रकृतिगळु ६१। अप्पुवा कूडिदेरडुं प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिंदं मेलपूर्व्वकरणादिगुणस्थानंगळेल्लेडेयोळं मुन्नं गुणस्थानसामान्यकथनदोळें तु पेळदंते बंधव्युच्छित्ति बंधाऽबंधप्रकृति-

---

बन्धव्युच्छित्तिः ३१। तिरिएव णरे इत्यसंयतस्योक्तबन्धव्युच्छित्तौ उपरितनषण्णामत्रैव छेदाद् बन्धः १०१। अबन्धः १९। मिश्रे बन्धव्युच्छित्तिः शून्यम्। बन्धः ६९। देवायुष्यमपनीय अबन्धप्रकृतिषु क्षेपात्। बन्धः १०१। अबन्धः ५१। असंयते बन्धव्युच्छित्तिः ४। वज्रवृषभनाराचादिषट्प्रकृतीनां सासादने व्युच्छिन्नत्वात्। बन्धः ७१। देवायुस्तीर्थंकरयोरत्र बन्धे मिलितत्वात्। अबन्धः ४९। तत्प्रक्षिप्तप्रकृतिद्वयस्यापनयनात्। देशव्रते बन्धव्युच्छित्तिः स्वस्य प्रत्याख्यानकषायचतुष्कमेव ४। बन्धः ६७। अबन्धः ५३। प्रमत्तसंयते बन्धव्युच्छित्तिः अस्थिरादयः ६। बन्धः ६३ अबन्धः ५७। अप्रमत्तगुणस्थाने देवायुर्व्युच्छित्तिः १। बन्धः ५९। आहारद्वयस्य प्रमादरहितेषु बन्धप्रतिपादनात्। अबन्धः ६१। तद्द्वयस्यापनयनात्। उपर्यपूर्वकरणादिषु

अनुसार अबन्धमें जोड़नेपर ऊपरके बन्ध और अबन्ध होते हैं। मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति १६, बन्ध ११७, अबन्ध तीर्थंकर और आहारद्विक इस प्रकार तीन। सासादनमें बन्ध व्युच्छित्ति ३१, क्योंकि तिर्यञ्चके समान मनुष्यमें होनेसे असंयतमें कही बन्धव्युच्छित्ति दसमें-से ऊपरकी छहकी व्युच्छित्ति यहाँ ही होती है। बन्ध १०१, अबन्ध १९। मिश्रमें बन्धव्युच्छित्ति शून्य, बन्ध ६९, क्योंकि देवायुको अबन्ध प्रकृतियोंमें मिला दिया है, बन्ध एक सौ एक, अबन्ध इक्यावन। असंयतमें बन्धव्युच्छित्ति चार, क्योंकि वज्रर्षभनाराच आदि छह प्रकृतियोंकी सासादनमें व्युच्छित्ति हो गयी है। बन्ध इकहत्तर, क्योंकि देवायु और तीर्थंकर यहाँ बन्धमें आ गयी हैं। अबन्ध उनचास; क्योंकि बन्धमें गयी दो प्रकृतियाँ कम हो गयी हैं। देशसंयतमें बन्धव्युच्छित्ति अपनी प्रत्याख्यान कषाय चार हैं। बन्ध सड़सठ, अबन्ध तरेपन। प्रमत्तसंयतमें बन्धव्युच्छित्ति अस्थिर आदि छह, बन्ध तरेसठ, अबन्ध सत्तावन। अप्रमत्त गुणस्थानमें एक देवायुकी बन्धव्युच्छित्ति, बन्ध उनसठ, क्योंकि आहारकद्विकका बन्ध प्रमादरहितमें कहा है। अबन्ध इकसठ क्योंकि दो कम गयीं। ऊपर अपूर्वकरण आदिमें सर्वत्र गुणस्थान सामान्यकी तरह व्युच्छित्ति बन्ध और अबन्ध प्रकृतियाँ होती हैं उसी प्रकार लगाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळप्पुदरिदं नडसल्पडुवुदु। ई सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्य योनिमतिमनुष्यरेंदी त्रिविधमनुष्यरुगळ्गे निर्वृत्यपर्याप्तकालदोळु बंधयोग्यप्रकृति ११२ अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रकाययोगिगळप्पुदरिंदमायुश्चतुष्कमुं ४ नरकद्विकमुं २ आहारकद्विकमु २ मिन्तु ८ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुदरिंदमवं बंधप्रकृतिगळु १२० रोळु कळेवोडे ११२ प्रकृतिगळप्पुवप्पुदरिंदं। अल्लि मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतप्रमत्तसयोगकेवलिगुणस्थानपंचकमक्कुमागुणस्थानंगळ्गे संदृष्टि :—

स	१	१	१११
प्र	६१	६२	५०
अ	८	७०	४२
सा	२९	९४	१८
मि	१३	१०७	५

ई निवृत्यपर्याप्तमनुष्यमिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १३ अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रकाययोगिगळ्गे बंधयोग्यमल्लद नरकायुष्यमुं नरकद्विकमुं कळेदोडप्पुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु १०७ अप्पुवेकेंदोडे सुरचतुष्कमुं तीर्त्थमुमातनोळबंधयोग्यतेयिल्लप्पुदरिंदमनितेयप्पुवा पंच प्रकृतिगळुमबंधप्रकृतिगळप्पुवु ५।

सासादनंगे बंधव्युच्छित्तिगळु २९ अप्पुवेकेंदोडे मनुष्यायुष्यमुं तिर्यगायुष्यमुं एरडुमल्लि कळेवुवप्पुदरिंदं। बंधप्रकृतिगळु ९४ अप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळु १८ अप्पुवु। मिश्रगुणस्थानं शून्यमेयक्कुमेकेंदोडे मिश्रगायुर्ब्बंधमुं मरणमुमिल्लप्पुदरिंदं।

असंयतगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ८ अप्पुवेंतेंदोडे अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषायाष्टकमुं तन्नोळे व्युच्छित्तियप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु ७०। अप्पुवेंतेंदोडे सुरचतुष्कमुं ४ तीर्त्थमुमं निवृत्यपर्याप्तासंयतं कट्टुगुमप्पुदरिंदमवं कूडिदोडक्कुमप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळु ४२ अप्पुवेकेंदोडे-

सर्वत्र गुणस्थानसामान्यवत् व्युच्छित्तिबन्धाबन्धप्रकृतयो भवन्तीति नेतव्यम्। तत्त्रिविधमनुष्यनिर्वृत्यपर्याप्तकानां बन्धयोग्यं द्वादशोत्तरशतमेव मिश्रकाययोगित्वादायुश्चतुष्कं नरकद्विकं आहारद्विकं चेत्यष्टानां बन्धाभावात्। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतप्रमत्तसयोगाख्यानि पञ्च। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १३। नरकायुर्नरकद्विकापनयनात्। बन्धः १०७ सुरचतुष्कतीर्थयोरबन्धात्। अबन्धः ५। सासादने व्युच्छित्तिः २९। नरतिर्यगायुषोरपनयनात्। बन्धः ९४। अबन्धः १८। मिश्रगुणस्थानं न संभवति। असंयते व्युच्छित्तिः ८ अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषायाष्टकस्य अत्रैव छेदात्। बन्धः ७०। सुरचतुष्कतीर्थयोरस्य

चाहिए। तीनों प्रकारके मनुष्य निर्वृत्यपर्याप्तकोंमें बन्ध योग्य एक सौ बारह हैं क्योंकि मिश्रकाययोग होनेसे चारों आयु, नरकद्विक और आहारकद्विक इन आठोंका बन्ध नहीं होता। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगकेवली पाँच होते हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति तेरह, क्योंकि नरकायु और नरकद्विकका अभाव है। बन्ध एक सौ सात, क्योंकि सुरचतुष्क और तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता। अतः अबन्ध पाँच। सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस क्योंकि मनुष्यायु तिर्यञ्चायु कम हो गयी है। बन्ध चौरानबे, अबन्ध अठारह। यहाँ मिश्रगुणस्थान नहीं होता। असंयतमें व्युच्छित्ति आठ; क्योंकि अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान आठ कषायोंकी व्युच्छित्ति यहीं हो जाती है। बन्ध सत्तर;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूडिदप्पु प्रकृतिगळु कळेवुवप्पुदरिंदं । प्रमत्तसंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ६१ अप्पुवेंते दोडे तन्न वारुं ६ अप्रमत्तनदों वु देवायुष्यं राशियोळकळेदुवेददं बिट्टु अपूर्वकरणन आहारकद्वयरहित ३४ प्रकृतिगळं अनिवृत्तिय ५ प्रकृतिगळुं सूक्ष्मसांपरायन १६ कं कूडिदोडप्पुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु ६२ अबंधप्रकृतिगळु ५० सयोगिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्ति सातमों देप्रकृतियक्कुं १ । बंधप्रकृतियुमदों देयक्कु १ मबंधप्रकृतिगळु १११ अप्पुवु । मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिगे णरे अपुण्णे अपुण्णेव येंदितु तिर्य्यग्गतिलब्ध्यपर्य्याप्तकंगे पेळदंते बंधप्रकृतिगळु १२० रोळगे तीर्त्थमुं १ माहारकद्वयमुं २ देवनारकायुष्यद्वयमुं २ वैक्रियिकषट्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगळं कळेदोडे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०९ अप्पुवु ।

देवगतियोळु बंधयोग्य प्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळदपरु :—

णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी ।
सोलस चेव अबंधो भवणतिये णत्थि तित्थयरं ॥१११॥

नरक इव भवति देवे आईशान पर्य्यंतं सप्त वाम व्युच्छित्तयः । षोडश चैवाबंधः भवनत्रये नास्ति तीर्थंकरं ॥

बन्धात् । अबन्धः ४२ । प्रमत्तसंयते व्युच्छित्तिः ६१ । कुतः स्वस्य षट्कं अप्रमत्तस्य देवायुराशावपनीतमिति तत्यक्त्वा । अपूर्वकरणस्य आहारद्वयं बिना चतुस्त्रिंशत्, अनिवृत्तेः पञ्च, सूक्ष्मसांपरायस्य षोडश चेत्येषां मिलितत्वात् । बन्धः ६२ । अबन्धः ५० । सयोगे व्युच्छित्तिः सातवेदनीयम् । बन्धोऽपि तदेव । अबन्धः १११ । 'णरे अपुण्णे अपुण्णेव' मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकमिथ्यादृष्टौ तिर्यग्गतिलब्ध्यपर्याप्तकवत् तीर्थमाहारद्वयं देवनरकायुषी वैक्रियिकषट्कं चेत्येकादशानामबन्धात् । बन्धयोग्यं नवोत्तरशतमिति १०९ ॥ ११० ॥ देवगतौ बन्धयोग्यप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

क्योंकि सुरचतुष्क और तीर्थंकरका यहाँ बन्ध होता है अबन्ध बयालीस । प्रमत्तसंयतमें व्युच्छित्ति इकसठ, क्योंकि अपनी छह, अप्रमत्तकी देवायु मूलमें ही नहीं है अतः उसे छोड़ देना, अपूर्वकरणकी आहारकद्विकके बिना चौंतीस, अनिवृत्तिकी पाँच, सूक्ष्म साम्परायकी सोलह ये सब मिलकर इकसठ होती हैं, बन्ध बासठ, अबन्ध पचास । सयोगीमें व्युच्छित्ति एक सातवेदनीय, बन्ध भी उसीका, अबन्ध एक सौ ग्यारह ।

मनुष्यनिर्वृत्यपर्याप्तक बन्धयोग्य ११२

	मि.	सा.	असं.	प्र.	स.
अबन्ध	५	१८	४२	५०	१११
बन्ध	१०७	९४	७०	६२	१
ब. व्यु.	१३	२९	८	६१	१

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकमें तिर्यञ्चलब्ध्यपर्याप्तककी तरह तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इन ग्यारहका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ नौ हैं ॥११०॥

देवगतिमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

नरकगतियोळें तु पेळदंते देवगतियोळु आईशानपर्य्यंतं अभिविधियोळाओप्पुदरिदं भवनत्रय· दोळं कल्पवासिस्त्रीयरोळं सौधर्म्मैशानकल्पद्वयदोळं मिथ्यादृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु ७ अप्पुवु। अंतागुत्तं विरलु षोडश चैवाबंधः आ मिथ्यादृष्टिय शेषसूक्ष्मत्रयमुमं ३ विकलत्रयमुं नरकद्विकमुं २ नरकायुष्यमु १ इंतु ९ प्रकृतिगळु सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ आहारकद्वयमु २ मिन्तु १६ प्रकृतिगळु देवगतियोळु बंधयोग्यंगळल्लप्पुदरिदंमी षोडश प्रकृतिगळं बंधप्रकृतिगळु १२० रोळु कळदोडे शेष १०४ प्रकृतिगळु देवगतियोळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। भवनत्रयदोळं कल्प स्त्रीयरोळं तीर्थबंधमिल्लप्पुदरिदमल्लि बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०३ अप्पुवल्लि संदृष्टिः —

भ ३	कल्पस्त्रीयरु		
अ	१०	७१	३२
मि	०	७०	३३
सा	२५	९६	७
मि	७	१०३	०

यिल्लि भवनत्रय कल्पवासि स्त्री मिथ्यादृष्टिगळगे बंधप्रकृतिगळु १०३ रोळु मिथ्यात्वहुंड षंढा संप्राप्तैकेंद्रियस्थावरातपमेंब ७ प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टिगळे कट्टुवरप्पुदरिदमा प्रकृतिसप्तकमं कळेदोडे भवनत्रयसासादनसम्यग्दृष्टिगळं कल्पस्त्रीसासादनरुं कट्टुव योग्यप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळु ७ अप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळनंतानुबंध्यादि २५ प्रकृतिगळं सासादनने कट्टुमगुप्पु· दरिदमवं मनुष्यायुष्यमुमं सासादनन बंधप्रकृतिगळोळु ९६ रोळु कळेदोडे मिश्रंगे बंधप्रकृतिगळ ७० अप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळु ३३॥

असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु ७१ अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रनोळकळेद मनुष्यायुष्यमं

नरकगतिवत् देवगतौ स्यात्। किन्तु आ ईशानपर्यन्तं सप्तप्रकृतयः मिथ्यात्वहुण्डसंस्थानादयः मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिर्भवति। तदुपरितनसूक्ष्मत्रयादयो नव सुरचतुष्कं सुरायुष्यं आहारकद्वयं चेति षोडश प्रकृतयो देवगतौ अबन्धाः–बन्धयोग्या न भवन्ति तेन चतुरुत्तरशतमेव बन्धयोग्याः। तत्रापि भवनत्रये कल्पस्त्रीषु च तीर्थबन्धाभावात् बन्धयोग्यास्त्र्युत्तरशतमेव। तत्र भवनत्रयकल्पस्त्रीमिथ्यादृष्टेर्बन्धः त्र्युत्तरशतम्। व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वाद्यसप्तकं। अबन्धः शून्यम्। तत्सासादनस्य बन्धः षण्णवतिः तत्सप्तकस्य मिथ्यादृष्टेरेव बन्धात्। व्युच्छित्तिः सैव पञ्चविंशतिः। अबन्धः तदेव सप्तकं। मिश्रगुणस्थानस्य बन्धः सप्ततिः, मनुष्यायुरबन्धात्। अबन्धा त्रयस्त्रिंशत्, सासादनव्युच्छित्त्यबन्धयोर्मनुष्यायुर्मेलनात्। असंयतस्य बन्धः एकसप्ततिः, मनुष्यायुषोऽत्र

देवगतिमें नरकगतिके समान जानना। किन्तु ईशानपर्यन्त मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व हुण्डसंस्थान आदि सात प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। उससे ऊपरकी सूक्ष्मत्रिक आदि नौ, सुरचतुष्क, सुरायु, आहारकद्विक इन सोलह प्रकृतियोंका देवगतिमें बन्ध नहीं होनेसे बन्धयोग्य एक सौ चार ही है। उनमेंसे भी भवनत्रिक और कल्पस्त्रियोंमें तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ तीन हैं। भवनत्रिक और कल्पस्त्रियोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध एक सौ तीन, व्युच्छित्ति मिथ्यात्व आदि सात, अबन्ध शून्य। सासादनमें बन्ध छियानवे, क्योंकि सातका बन्ध मिथ्यादृष्टिमें ही होता है, व्युच्छित्ति पचीस, अबन्ध वही सात। मिश्रगुणस्थानमें बन्ध सत्तर, क्योंकि मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता, अबन्ध तेतीस क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंयतं कट्टुगुमप्पुदरिदं अबंधप्रकृतिगळु ३२। अप्पुवु। मनुष्यायुष्यं तेगेदु बंधप्रकृतिगळोळ्कूडिदुदप्पुदरिदं। सौधर्म्मैशानकल्पद्वयदोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०४ अप्पुवा कल्पद्वयमिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि मिश्रासंयतसम्यग्दृष्टिगळगे त्रिविधप्रकृतिगळ संदृष्टिः—

सौधर्म्म	२		
अ	१०	७२	३२
मि	०	७०	३४
सा	२५	९६	८
मि	७	१०३	१

इल्लि मिथ्यादृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु १०३। अबंधप्रकृति तीर्त्थमों देयक्कुं १। सासादननोळु बंधप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवें तें दोडे मिथ्यात्व हुंडसंस्थान षंडवेद असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन एकेंद्रियजातिनामस्थावरनाम आतपनाममें बी ७ प्रकृतिगळं मिथ्यादृष्टिये कट्टुगुं। सासादनसम्यग्दृष्टि कट्टनप्पुदरिदमा प्रकृतिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडनितेयप्पुवप्पुदरिदं अबंधप्रकृतिगळु ८ अप्पुवु। मिश्रगुणस्थानददोळु बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवेकें दोडे अनन्तानुबंध्यादि २५ प्रकृतिगळुमं मनुष्यायुष्यमुमं कूडि २६ प्रकृतिगळु सासादननोळ बंधमप्पुवप्पुदरिदमवनातन बंधप्रकृतिगळोळकळेदोडनितेयप्पुवप्पुदरिदं। अबंधप्रकृतिगळु मनुष्यायुष्यंकूडि ३४ प्रकृतिगळप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टियोळु बंधप्रकृतिगळु ७२ अप्पुवदें तें दोडे मिश्रनोळबंधप्रकृतिगळोळिर्द्द मनुष्यायुष्यमुमं तीर्त्थमुमनो सौधर्म्मकल्पद्वयासंयतं कट्टुगुमप्पुदरिदमवं कूडिदोडप्पुवें बु बगेयल्पडुवुदु। अबंधप्रकृतिगळु ३२ अप्पुवें तें दोडे आकूडिदेरडुं प्रकृतिगळिल्लि कळेदुवप्पुदरिदं॥

कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥११२॥

कल्पस्त्रीषु न तीर्त्थं शतारसहस्रार पर्य्यंतं तिर्य्यग्द्विकं। तिर्य्यगायुरुद्योतः अस्ति ततो नास्ति शतारचतुष्कं॥

बन्धात्। अबन्धः द्वात्रिंशत्। व्युच्छित्तिः स्वस्य दश। सौधर्मैशानद्वये बन्धयोग्याश्चतुरुत्तरशतम्। तत्र मिथ्यादृष्टौ अबन्धः तीर्थकरत्वम्। बन्धः त्र्युत्तरशतम्। व्युच्छित्तिः ते एव सप्त। सासादने अबन्धः ८। बन्धः ९६। व्युच्छित्तिः २५। मिश्रेऽबन्धः ३४ मनुष्यायुःक्षेपात्। बन्धः ७०। व्युच्छित्तिः शून्य ०। असंयते अबन्धः ३२ तीर्थकरत्वमनुष्यायुषोर्बन्धात्। बन्धः ७२। व्युच्छित्तिः १०॥ १११॥

सासादनकी व्युच्छित्ति और अबन्धके जोड़में मनुष्यायु भी मिल गयी। असंयतमें बन्ध इकहत्तर क्योंकि यहाँ मनुष्यायुका बन्ध होता है। अबन्ध बत्तीस, व्युच्छित्ति अपनी दस। सौधर्म ऐशानयुगलमें बन्धयोग्य एकसौ चार। मिथ्यादृष्टिमें अबन्ध तीर्थंकरका, बन्ध एक सौ तीन, व्युच्छित्ति वही सात। सासादनमें अबन्ध आठ, बन्ध छियानबे, व्युच्छित्ति पच्चीस। मिश्रमें अबन्ध चौंतीस क्योंकि मनुष्यायुका भी बन्ध नहीं होता। बन्ध सत्तर, व्युच्छित्ति शून्य। असंयतमें अबन्ध बत्तीस, क्योंकि यहाँ तीर्थंकर और मनुष्यायु बँधने लगती हैं, बन्ध बहत्तर, व्युच्छित्ति दस ॥१११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पस्त्रीयरोळं तीर्त्थबंधमिल्लदुकारणमागि तद्बंधरहित भवनत्रयदेवक्कळ रचनेयोळे कल्पस्त्रीयरुं पेळल्पट्टरेकेंदोडे मिथ्यादृष्टचादिगुणस्थानंगळोळु बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधप्रकृतिगळु सदृशंगळप्पुदे कारणमागि पृथक् पेळल्पट्टुदिल्ल।

सानत्कुमार माहेंद्रब्रह्मब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ट शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारमुमेंब १० कल्पंगळोळु देवक्कळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०१ अप्पुवेकेंदोडे तत्कल्पजरुगळेकेंद्रियजातिनाममुं स्थावरनाममुं आतपमुमं सूक्ष्मत्रयविकलत्रय नरकद्विक नारकायुष्यमुमेंबी मिथ्यादृष्टिय उपरितन द्वादशप्रकृतिगळुं १२ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुमाहारकद्वयमुमितु १९ प्रकृतिगळं कट्टुवरल्लेकेंदोडे "आईसाणोत्ति सत्तवामछिदी" एंदितु सौधर्मैशानकल्पद्वयावसानमाद भवनत्रयदेवक्कळुमेकेंद्रियस्थावरातपंगळं कट्टुवरप्पुदरिंदमवरोळेया प्रकृतित्रयक्के बंधमुळिद सानत्कुमारादि दशकल्पजरुगळ्गे "णिरयेव होदि देवे" एंबी सूत्राभिप्रायदिदं। णारयमिच्छम्मि चारि वोच्छिण्णा। उवरिम बारस सुरचउ सुराउ आहारयमबंधा॥ एंदु बंधप्रकृतिगळु १२० रोळु १९ प्रकृतिगळं कळेदोडे सानत्कुमारादि दशकल्पजरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळनितेयप्पुवप्पुदरिंदं। अल्लि मिथ्यादृष्टचादिचतुर्ग्गुणस्थानंगळोळु बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधप्रकृतिगळ्गे संदृष्टि :—

सानत्कुमारादि १० कल्पज			
अ	१०	७२	२९
मि	०	७०	३१
सा	२५	९६	५
मि	४	१००	१

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्व हुंड षंढ असंप्राप्तमेंब नाल्कुं प्रकृतिगळु ४ बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु १०० अप्पुव बंधप्रकृति तीर्त्थमों देयक्कुं।

सासादनसम्यग्दृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु २५ बंधप्रकृतिगळु ९६ अबंधप्रकृतिगळु ५।

कल्पस्त्रीषु तीर्थकरत्वं न बध्नातीति ततः कारणात् तद्रचना भवनत्रयरचनायामेवोक्ता उभयत्र गुणस्थानेषु बन्धाबन्धव्युच्छित्तिभिर्विशेषाभावात्। सानत्कुमारादिदशकल्पेषु नरकगतिवदिति बन्धयोग्यमेकोत्तरशतम्। मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिश्चत्वारि सप्तानां तु ईशानपर्यन्तमेवोक्तत्वात्। बन्धः १००। अबन्धः तीर्थकरत्वं। सासादने व्युच्छित्तिः २५। बन्धः ९६। अबन्धः ५। मिश्रे व्युच्छित्तिः शून्यम्। बन्धः ७०। मनुष्यायुषोऽ-

---

कल्पस्त्रियोंमें तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता। अतः उनकी रचना भवनत्रिककी रचनामें ही कही गयी। दोनोंके गुणस्थानोंमें बन्ध, अबन्ध, बन्ध व्युच्छित्तिमें अन्तर नहीं है। सानत्कुमार आदि दस कल्पोंमें नरकगतिके समान बन्धयोग्य एक सौ एक हैं। मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति चार, क्योंकि सातकी व्युच्छित्ति तो ईशान्तपर्यन्त ही कही है। बन्ध सौ, अबन्ध तीर्थंकर एक। सासादनमें व्युच्छित्ति पचीस, बन्ध छियानवे, अबन्ध पाँच। मिश्रमें व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध सत्तर, क्योंकि मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता। अबन्ध इकतीस।

---

१. सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणेति सूक्ष्मत्रयः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्ति शून्यं। बंधप्रकृतिगळु ७०। अबंधप्रकृतिगळु ३१। एकेंदोडे मनुष्यायुष्यं बंधदोळकळेदऽबंधप्रकृतिगळोळकूडिदुदप्पुदरिंदं। असंयतगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १०। बंधप्रकृतिगळु ७२। एकेंदोडे मनुष्यायुमं तीर्त्थमुमं कट्टुवनप्पुदरिना येरडु प्रकृतिगळु मिश्रन अबंधप्रकृतिगळोळिद्दुवं तेगेदिल्लि कूडिवुवप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळु २९ अप्पुवा येरडुं प्रकृतिगळु कळेवुवप्पुदरिंदं। शतारसहस्रारकल्पद्वयपर्यंतं तिर्य्यग्द्विकमुं तिर्य्यगायुष्यमुं उद्योतमुं बंधवप्पुवल्लिदं मेले बंधमिल्लेंब नियममुंटप्पुदरिंदं आनतादिचतुष्कल्पंगळोळं नवग्रैवेयकंगळोळं नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळुं कट्टुवरल्लप्पुदरिंदमा नाल्कुं प्रकृतिगळं ४ नूरोंदु प्रकृतिगळोळु १०१ कळेदोडानतादि १३ स्थानंगळोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ९७ अप्पुवल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्ग्गुणस्थानवर्त्तिगळ्गे बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधत्रिभेदंगळ संदृष्टि :—

आन ४।९ ग्रैवेयक

अ	१०	७२	२५
मि	०	७०	२७
सा	२१	९२	५
मि	४	९६	१

इल्लि मिथ्यादृष्टिगळ्गे मिथ्यात्वादि चतुष्प्रकृतिगळु ४ बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवु। अबंधप्रकृति तीर्त्थमों देयक्कुं १। सासादन सम्यग्दृष्टियोळु बंधव्युच्छित्ति २१। प्रकृत्तिगळप्पुवु। एकेंदोडे शतारचतुष्कं बंधमिल्लप्पुदरिंदमवं कळेदोडनितेयप्पुवप्पुदरिंदबंधप्रकृतिगळु ९२। अबंधप्रकृतिगळु ५। मिश्रगुणस्थानदोळु बंधप्रकृतिगळु ७०। मनुष्यायुष्यमबंधमप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळु २७। मनुष्यायुष्यमिल्लि कूडिदुवप्पुदरिंदं। असंयतगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १०। बंधप्रकृतिगळु ७२। अप्पुवेकेंदोडातनोळु तीर्त्थमुं मनुष्यायुष्यमुं बंधमुंटप्पुदरिंदमवं मिश्रन बंधप्रकृतिगळोळु तेगदिल्लि कूडिदोडनितावुवेंबुदत्थं। अबंधप्रकृतिगळु २५ अप्पुवा कूडिद प्रकृतिगळिल्लि तेगवुवप्पुदरिंदं।

प्यपनीतत्वात्। अबन्धः ३१। असंयते व्युच्छित्तिः १०। बन्धः ७२ तीर्थमनुष्यायुषोर्बन्धात्। अबन्धः २९ शतारसहस्रारपर्यन्तमेव तिर्यग्द्विकं तिर्यगायुरुद्योतश्चेति सदरचतुष्कं बन्धयोग्यमस्ति तत उपरि नास्तीति नियमादानतादिषु कल्पेषु नवग्रैवेयकेषु च बन्धयोग्याः ९७। तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धः ९६ तीर्थकरत्वस्याबन्धात्। व्युच्छित्तिः ४। सासादने व्युच्छित्तिः २१ सदरचतुष्कस्य राशयभावात्। बन्धः ९२। अबन्धः ५। मिश्रे व्युच्छित्तिः शून्यम्। बन्धः ७० मनुष्यायुरबन्धात्। अबन्धः २७। असंयते व्युच्छित्तिः दश। बन्धः ७२।

असंयतमें व्युच्छित्ति दस, बन्ध बहत्तर क्योंकि तीर्थंकर और मनुष्यायुका बन्ध होता है, अबन्ध उनतीस ॥

शतार सहस्रार पर्यन्त ही तिर्यंचगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु उद्योत इस शतार चतुष्कका बन्ध होता है। उससे ऊपर नहीं होता, इस नियमके अनुसार आनत आदि चार कल्पोंमें और नवग्रैवेयकमें बन्धयोग्य सत्तानवे। उनमें मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे बन्ध छियानबे, व्युच्छित्ति चार। सासादनमें शतार चतुष्कके न होनेसे व्युच्छित्ति इक्कीस, बन्ध बानबे, अबन्ध पाँच। मिश्रमें व्युच्छित्ति शून्य, मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुदिशानुत्तरविमानंगळ् १४ रोळ् सम्यग्दृष्टिगळेयप्पुदरिंदमल्लिय असंयतरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळ् ७२ अप्पुविन्ती देवगतियोळ् पेळ्द भवनत्रयजरुं कल्पजस्त्रीयरुगळुं निर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळ् १०१। अप्पुवेंतेंदोडे तत्पर्य्याप्तरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळ् १०३ रोळ्गे मिश्रकाययोगिगळप्पुदरिंदं । तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं कट्टरप्पुदरिंदमवं कळेदोडे तावन्मात्रप्रकृतिगळप्पुवप्पुदरिंदं । अल्लि मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानद्वितयमेयक्कुमेकेंदोडे तिर्य्यग्मनुष्यगतिय सम्यग्दृष्टिगळल्लि पुट्टुवरल्लप्पुदरिंदं आ गुणस्थानद्वयदोळ् बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिगळ्गे संदृष्टिः—

भ ३। कल्पजस्त्रीयरु निर्वृत्यपर्य्याप्तरु

सा	२४	९४	७
मि	७	१०१	०

ई रचने सुगममेकेंदोडे तीर्थमुमायुष्यमुमिल्लि बंधमिल्लप्पुदरिंदं। सौधर्म्मेशानकल्पजनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळ् १०२ अप्पुवेंतेंदोडिल्लियुमेरडायुष्यंगळे कळेवुवु तीर्थमुंटप्पुदरिंदं। गुणस्थानत्रितयमुमप्पुवदक्के संदृष्टिः—

सौधर्म २ द्वयनिर्वृत्यप.।

अ	९	७१	३१
सा	२४	९४	८
मि	७	१०१	१

ई रचने सुगममेकेंदोडे असंयतनोळ् तीर्थबंधमेंबिनिते विशेषमप्पुदरिंदं। सानत्कुमारादि दशकल्पजनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळ् ९९ अप्पुविल्लियुमायुर्द्वयरहितमप्पुदरिंदं संदृष्टिः—

सा कल्प निर्वृत्य

अ	९	७१	२८
सा	२४	९४	५
मि	४	९८	१

अबन्धः २५। अनुदिशानुत्तराः असंयतसम्यग्दृष्टय एव तेषां बन्धयोग्यप्रकृतयः ७२। निर्वृत्यपर्याप्तानां तु भवनत्रयकल्पस्त्रीषु बन्धयोग्यं मिश्रयोगित्वात्तिर्यग्मनुष्यायुषी न इत्येकोत्तरशतम् १०१। गुणस्थाने द्वे एव असंयतानां तत्रोत्पत्त्यभावात्। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्त्यादित्रयं ७। १०१। ०। सासादने २४। ९४। ७। सौधर्मेशानयोर्बन्धयोग्यं तीर्थकृता सह द्व्युत्तरशतम् १०२। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्त्यादित्रयं ७। १०१। १।

बन्ध सत्तर, अबन्ध सत्ताईस। असंयतमें व्युच्छित्ति दस, बन्ध बहत्तर, अबन्ध पचीस। अनुदिश अनुत्तरवासी देव असंयत सम्यग्दृष्टी ही होते हैं। उनके बन्धयोग्य प्रकृतियाँ बहत्तर हैं। निर्वृत्यपर्याप्तकोंके भवनत्रय और कल्पस्त्रियोंमें बन्धयोग्य एक सौ एक हैं क्योंकि मिश्रकाययोग होनेसे तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता। गुणस्थान दो ही हैं क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि मरकर उनमें उत्पन्न नहीं होता मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति आदि तीन, सात, एकसौ एक और शून्य है। सासादनमें चौबीस, चौरानवे, सात है। सौधर्म ऐशानमें तीर्थंकरके बँधनेसे बन्धयोग्य एक सौ दो हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति आदि तीन, सात, एक सौ एक है। सासादनमें चौबीस, चौरानबे, आठ। असंयतमें नौ, इकहत्तर, इकतीस।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई रचनेयुं सुगममेंतें दोडे संयतनोळु तीर्त्थबंधमुंटे बिनिते विशेषमप्पुदरिंदं ॥ आनतादि-चतुष्कल्पनवग्रैवेयकसंजातनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुकळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवें तें दोडे मनुष्यायुष्यमनल्लियोंदने कट्टुवरदुवुमी निर्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळु बंधमिल्लप्पुदरिंदमदं कळेदोडनिते योग्यंगळप्पुवप्पुदरिंदं संदृष्टि :—

अ	९	७१	२५
सा	२१	९१	५
मि	४	९५	१
आ ४। ९ ग्रैवे = निर्वृ			

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे असंयतनोळु तीर्थबंधमुंटु सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु २१ अप्पुवें-केंदोडे अल्लि शतारचतुष्टयं कळेदुदप्पुदरिंदं । अनुदिशानुत्तरविमान १४ गळोळु सम्यग्दृष्टिगळे-यप्पुदरिंदं तीर्त्थसहितमागि ७१ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । मनुष्यायुष्यमों देयक्कुमवुवुमा कालदोळु बंधमिल्लप्पुदरिंमं कळेदोडनिते बंधयोग्यंगळप्पुदरिंदं ॥

सासादने २४ । ९४ । ८ । असंयते ९ । ७१ । ३१ । सानत्कुमारादिदशकल्पेषु बन्धयोग्या नवनवतिः ९९ । व्युच्छित्यादित्रयं मिथ्यादृष्टौ ४ । ९८ । १ । सासादने २४ । ९४ । ५ । असंयते ९ । ७१ । २८ । आनतादि-चतुःकल्पनवग्रैवेयकेषु बन्धयोग्याः षण्णवतिः ९६ । तत्र व्युच्छित्यादित्रयं मिथ्यादृष्टौ ४ । ९५ । १ । सासादने २१ । ९१ । ५ । असंयते ९ । ७१ । २५ । अनुदिशानुत्तराणामसंयतसम्यग्दृष्टित्वात् तेषां बन्ध एव ७१ ॥ ११२॥

सानत्कुमार आदि दस कल्पोंमें बन्धयोग्य निन्यानबे । व्युच्छिति आदि तीन मिथ्यादृष्टिमें चार, अठानबे, एक सासादनमें चौबीस, चौरानबे, पाँच । असंयतमें नौ, इकहत्तर, अठाईस । आनतादि चार कल्पों और नवग्रैवेयकोमें बन्धयोग्य छियानबे । उनमें व्युच्छित्ति आदि तीन मिथ्यादृष्टिमें चार, पिचानबे, एक । सासादनमें इक्कीस, इकानबे, पाँच । असंयतमें नौ, इकहत्तर, पच्चीस । अनुदिश अनुत्तरवासियोंके असंयत सम्यग्यदृष्टी ही होनेसे उनके इकहत्तर-का बन्ध होता है ॥११२॥

	पर्याप्त भवनत्रिक कल्पस्त्री १०३ बन्धयोग्य				पर्याप्त सौधर्मयुगल १०४ बन्धयोग्य			
	मि,	सा.	मि.	असं.	मि.	सा.	मिश्र	असं.
बन्ध व्यु.	७	२५	०	१०	७	२५	०	१०
बन्ध	१०३	९६	७०	७१	१०३	९६	७०	७२
अबन्ध	०	७	३३	३२	१	८	३४	३२

	पर्याप्त सानत्कुमारादि दस कल्प १०१				पर्या. आनतादि ४ नवग्रैवेयक ९७				नि. अ. भव. कल्प स्त्री १०१	
	मि.	सा.	मिश्र	असं.	मि.	सा.	मिश्र	असं.	मि.	सा.
बन्ध व्यु.	४	२५	०	१०	४	२१	०	१०	७	२४
बन्ध	१००	९६	७०	७२	९६	९२	७०	७२	१०१	९४
अबन्ध	१	५	३१	२९	१	५	२७	२५	०	७

	नि. अ. सौधर्मयुगल १०२			नि. अ. सानत्कु. दस कल्प ९९			नि. आनतादि नवग्रै. ९६		
	मि.	सा.	असं.	मि.	सा.	असं.	मि.	सा.	असं.
बन्ध व्यु.	७	२४	९	४	२४	९	४	२१	९
बन्ध	१०१	९४	७१	९८	९४	७१	९५	९१	७१
अबन्ध	१	८	३१	१	५	२८	१	५	२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंद्रियमार्गणेयं पेळ्वल्लि मोदलोळेकेंद्रियविकलत्रयंगळ्गे पेळ्वपरु :—

पुण्णिदरं विगिविगले तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे।
पज्जत्तिं ण वि पावदि इदि णरतिरियाउगं णत्थि ॥११२॥

पूर्णेतरवदेकेंद्रियविकलत्रये तत्रोत्पन्नः खलु सासादनो देहे। पर्य्याप्ति न प्राप्नोति इति नरतिर्य्यगायुषी नस्तः ॥

तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तकनोळु पेळ्वंते एकेंद्रियंगळोळं विकलेंद्रियंगळोळं पेळल्पडुगुमेकेंदोडे तीर्त्थमुमाहारद्वयमुं सुरनारकायुर्द्वयमुं वैक्रियिकषट्कमुमेंब ११ प्रकृतिगळं कळेदु शेष १०९ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवरिंदमा एकेंद्रियविकलत्रयंगळ्गे गुणस्थानद्वितयमेयक्कु—

एकेंद्रिय विकलत्रयक्के			
सा	२९	९४	१५
मि	१५	१०९	०

मिल्लि मिथ्यादृष्टिगळ्गे बंधव्युच्छित्तिगळु १५ प्रकृतिगळप्पुवेंतेंदोडे तन्न मिथ्यात्वादि बंधव्युच्छित्तिगळु १६ रोळगे नरकद्विकमुं नरकायुष्यमुं कळेदु १३ प्रकृतिगळप्पुववरोळगे तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं कूडि दोडे तत्प्रमाणप्रकृतिसंख्येयक्कुमप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु १०९। अबंधशून्यमक्कुं। सासादननोळु तत्रोत्पन्नः खलु सासादनो देहे पर्य्याप्ति न प्राप्नोतीति नरकतिर्य्यगायुषी नस्तः। एंदितु एकेंद्रियविकलत्रयदोळपुट्टिद सासादनं निर्वृत्यपर्य्याप्तकालमन्तर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं शरीरापर्य्याप्ति[1]कालदोळु मिश्रकाययोगियप्पुदरिंदं आयुर्ब्बंधयोग्यतेयिल्लवुकारणमागि तत्कालपर्य्यंतं तद्गुणस्थानकालमल्पमप्पुदरिंदं तोदुदु पोकुमदु कारणमागि मनुष्यायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुं

इन्द्रियमार्गणायां एकविकलेन्द्रियेषु लब्ध्यपर्याप्तकवत्तीर्थकरत्वाहारकद्वयसुरनारकायुर्वैक्रियिकषट्कबन्धाभावात् बन्धयोग्यं नवोत्तरशतम्। गुणस्थाने द्वे। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः पञ्चदश। १५। तत्षोडशके नरकद्विकनरकायुषोरभावे नरतिर्यगायुषोः क्षेपात् तत्क्षेपोऽत्रैव कृतः। तत्र तेषु एकविकलेन्द्रियेषु उत्पन्नः खलु सासादनः स्वकीयकालस्य निर्वृत्त्यपर्याप्तकालात् स्तोकत्वात् सासादनत्वे शरीरपर्याप्ति न प्राप्नोतीति कारणात्

इन्द्रियमार्गणामें एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियमें लब्ध्यपर्याप्तकके समान तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ नौ हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पन्द्रह, क्योंकि उसमें व्युच्छिन्न होनेवाली सोलह प्रकृतियोंमें-से नरकद्विक और नरकायुका बन्ध न होने तथा मनुष्यायु तिर्यञ्चायुके मिलानेसे होता है। इसका कारण यह है कि उन एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियोंमें उत्पन्न सासादन गुणस्थानवर्ती जीव सासादनका काल निर्वृत्यपर्याप्तकके कालसे थोड़ा होनेके कारण सासादन अवस्थामें शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं करता, इससे यहाँ सासादनमें मनुष्यायु तिर्यञ्चायुका बन्ध

१. मः °सियोलु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेगदु मिथ्यादृष्टियोळ् बंधव्युच्छित्तियादुवप्पुदरिदमिल्लि बंधव्युच्छित्तिगळु २९ प्रकृतिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु १५ अप्पुवु।

अनंतरं पंचेंद्रियंगळगं पृथ्वीकायादि पंचककं पेळ्दपरु :—

पंचिंदिएसु ओघं एयक्खे वा वणप्फदीयंते।
मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउवाउम्मि ॥११४॥

पंचेंद्रियेषु ओघः एकाक्षवद्वनस्पत्यंतानां। मनुष्यद्विकं मनुष्यायुरुच्चं न हि तेजोवाय्वोः॥

पंचेंद्रियंगळोळु ओघः मुन्नं चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु पेळ्दंतेयप्पुवेकेंदोडे विशेषाभावमप्पुदरिदं बंधयोग्यंगळु १२०। बंधव्युच्छित्तिगळु मि १६। सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी ०। स १। अ०॥ बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टयोळु ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०॥ अबंधप्रकृतिगळु :—
मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ९८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०॥

बन्धः १०९। अबन्धः शून्यम् ०। सासादने व्युच्छित्तिरेकान्नत्रिंशत् २९। बन्धः चतुर्नवतिः ९४। अबन्धः पञ्चदश १५॥ ११३॥ अथ पञ्चेंद्रिये पृथ्व्यादिपञ्चकायेषु चाह—

पञ्चेन्द्रियेषु ओघः चतुर्दशगुणस्थानवद्भवति विशेषाभावात्। बन्धयोग्याः १२०। व्युच्छित्तयः—मि १६। सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी ०। स १। अ ०। बन्धाः—मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०। अबन्धाः—मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ९८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०।

न होनेसे उनकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें ही कही है। अतः बन्ध एक सौ नौ, अबन्ध शून्य। सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस, बन्ध चौरानवे, अबन्ध पन्द्रह ॥११३॥

आगे पञ्चेन्द्रिय और पृथिवी आदि पाँच कायोंमें कहते हैं—

पञ्चेन्द्रियोंमें 'ओघ' अर्थात् चौदह गुणस्थानवत् होता है उससे भेद नहीं है।

अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस। व्युच्छित्ति मि. १६। सा. २५। मि. ०। असं. १०। दे. ४। प्र. ६। अप्र. १। अपूर्व. ३६। अनि. ५। सू. १६। उप.। क्षी.। स. १। अयो.। बन्ध—मि. ११७। सा. १०१। मि. ७४। असं. ७७। दे. ६७। प्र. ६३। अप्र. ५९। अप्र. ५८। अनि. २२। सू. १७। उ. १। क्षी. १। स. १ अयो.। अबन्ध—मि. ३। सा. १९। मि. ४६। असं. ४३। दे. ५३। प्र. ५७। अप्र. ६१। अपू. ६२। अनि. ९८। सू. १०३। उ. ११९। क्षी. ११९। सं. ११९। अयो. १२०। पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकमें बन्ध योग्य एक सौ बारह। गुणस्थान पाँच।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेंद्रियनिर्वृत्यपर्य्याप्तकंगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ् ११२। गुणस्थानंगळ् ५। एंतेंदोडे चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं कळेद प्रकृतिगळ् आहारकद्वयमुं २ नरकद्विकमुं २ आयुष्यचतुष्कमु ४ मिन्तु ८ प्रकृतिगळु। पंचेंद्रियनिर्वृत्य १.

स	१	१	१११
प्र.	६१	६२	५०
अ.	१३	७५	३७
सा.	२४	९४	१८
मि.	१३	१०७	५

ई रचने सुगममेंतेंदोडे—असंयतनोळु तीर्त्थमुं सुरचतुष्टयमुं बंधमुंटप्पुदरिंदमल्लि बंधप्रकृतिगलु ७५ अबंधप्रकृतिगळु ३७ अप्पुवेंबिनि ते विशेषमप्पुदरिंदं। पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकंगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०९ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुमोंदेयक्कुं। कळेद प्रकृतिगलु तीर्त्थमुमाहारद्वयमुं सुरनारकायुर्द्वयमुं वैक्रियिकषट्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगलु बंधयोग्यंगळल्लप्पुदरिंदं॥

तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तके तु बन्धयोग्यम् ११२। गुणस्थानानि ।५। चतुर्गतिसाधारणत्वात् अपनीतप्रकृतयः आहारकद्वयं नरकद्विकमायुष्यचतुष्कं चेति रचनेयं सुगमा—

पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्त रचना।

	व्युच्छित्ति	बन्ध	अबन्ध
स	१	१	१११
प्र	६१	६२	५०
अ	१३	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	१३	१०७	५

असंयते तीर्थसुरचतुष्कबन्धः। इत्येतावत एव विशेषाभावात्। तल्लब्ध्यपर्याप्तके बन्धयोग्यप्रकृतयः १०९। मिथ्यादृष्टि—गुणस्थानम्। अपनीतप्रकृतयः। तीर्थमाहारद्वयं सुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कं चेति ११।

यहाँ आहारकद्विक, नरकद्विक, चार आयुका बन्ध नहीं होता। इसकी रचना सुगम है। तथा असंयतमें तीर्थंकर और सुरचतुष्कका बन्ध होता है। पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें बन्धयोग्य एक सौ नौ। तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध नहीं होता। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायमार्ग्गणेयोलु वनस्पत्यंतमाव पंचकायिकंगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगलु १०९ अप्पुवें तें दोडे एकेंद्रियवद्वनस्पत्यंतानासेंविन्तु तीर्त्थमुमाहारकद्विकमुं सुरायुष्यमुं नारकायुष्यमुं वैक्रियिकषट्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगलु बंधप्रकृतिगळोलु कलेदुवप्पुवरिवं पृथ्वीकायिकाप्कायिकवनस्पतिकायिकंगळ्गे १०९ प्रकृतिगलु बंधयोग्यंगळप्पुवु । तेजस्कायिकवायुकायिकंगळ्गे मनुष्यद्वयं मानवायुष्यमुमुच्चैर्ग्गोत्रमुं बंधमिल्लेंब अपवादविधियिवमा नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदोडे बंधयोग्यप्रकृतिगलु नूरैदु नूरैदुमप्पुवु—

पृथ्वी ३ कायिक			
सा	२९	९४	१५
मि	१९	१०९	०

इल्लिसासावनं देहवोळु पर्य्याप्तियनेय्यदप्पुवरिवं तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयं मिथ्यादृष्टियोळे बंधव्युच्छित्तिगळागि कूडिदवप्पुवरिवं मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छिगळु १५ बंधप्रकृतिगळु १०९ अबंधप्रकृतिशून्यमक्कुं । सासावनंगे बंधव्युच्छित्तिगळु २९ बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु १५ । तेजस्कायिकंगळ्गं वायुकायिकंगळ्गं सासावनगुणस्थानमिल्ल । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुमेकें दोडे :—

ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे ।
ओघं तस मणवयणे ओराले मणुवगइभंगो ॥११५॥

न हि सासावनोऽपूर्ण्णे साधारणसूक्ष्मके च तेजोद्विके ओघस्त्रस मनोवचने औवारिके मानवगतिभंगः ॥

कायमार्गणायां वनस्पत्यन्तपञ्चानां एकेन्द्रियवत् तीर्थमाहारकद्वयं सुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कं च न इति बन्धयोग्यं नवोत्तरशतम् । १०९ । तत्र पृथ्व्यब्वनस्पतिकायेषु उत्पन्नस्य सासादनत्वे शरीरपर्याप्त्यसंभवात् तिर्यग्मनुष्यायुर्बन्धो मिथ्यादृष्टावेवेति तत्र व्युच्छित्तिः १५ । बन्धः १०९ । अबन्धः शून्यम् । सासादने व्युच्छित्तिः २९ । बन्धः ९४ । अबन्धः १५ । तेजोवातकायिकयोः पुनः मनुष्यद्वयं मनुष्यायुः उच्चैर्गोत्रमपि न बध्नाति बन्धयोग्यं पञ्चोत्तरशतमेव । १५ । तौ तु मिथ्यादृष्टी एव न सासादनौ ॥११४॥ कुतः ?—

कायमार्गणामें वनस्पतिकायिक पर्यन्त पाँच स्थावरकायोंमें एकेन्द्रियके समान तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ नौ। वहाँ पृथिवी, जल तथा वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न सासादनके सासादन अवस्थामें शरीरपर्याप्ति पूर्ण न होनेसे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका बन्ध मिथ्यादृष्टिमें ही होता है इसलिए वहाँ व्युच्छित्ति पन्द्रह, बन्ध एक सौ नौ, अबन्ध शून्य। सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस, बन्ध चौरानबे, अबन्ध पन्द्रह। तैजस्कायिक वायुकायिकोंमें मनुष्यायु, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भी बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ पाँच ही हैं। तथा उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, सासादन नहीं होता ॥११४॥

	मि.	सा.	असं.	प्र.	सयो.	मि.	सा.	मि.	सा.
व्यु.	१३	२४	१३	६१	१	१५	२९	१५	२९
बन्ध	१०७	९४	७५	६२	१	१०९	९४	१०९	९४
अबन्ध	५	१८	३७	५०	१११	०	१५	०	१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादनसम्यग्दृष्टि यावेडेयोळपुट्टनें दडे लब्ध्यपर्याप्तकभेदंगळेनितोळवनितरोळं साधारणशरीरंगळोळं सूक्ष्मजीवभेदंगळगनितोळ वनितरोळं तेजस्कायिकजीवंगळोळं वायुकायिकजीवंगळोळं पुट्टनें बी नियममरियल्पडुगुं। नरकगतियोळं पुट्टं। त्रसकायिकजीवंगळगं योगमार्गणेयोळु मनोवाग्योगिगळगं ओघः सामान्यगुणस्थानकथनमेयक्कुमौदारिककाययोगिगळगे मनुष्यगतिभेदंगळक्कुमें बरियल्पडुगुमल्लि त्रसकायिकंगळगं मनोवाग्योगिगळगं बंधयोग्यंगळु १२० प्रकृतिगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टिगे व्युच्छित्तिगळु १६ सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी ०। स १। अ ०। बंधप्रकृतिगळु मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०॥

अबंधप्रकृतिगळु मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ९८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०। ई निवृत्यपर्याप्तकरोळु पंचेंद्रियंगळोळु पेळवंत भाविसल्पडुवुदु। औदारिककाययोगिगळगे मानवगतिभंगमप्पुदरिदं बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२०। अप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु १६। सासादनंगे ३१। मि ०। अ ४। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी०। स १। अ ०॥

बंधप्रकृतिगळु मि ११७। सासा १०१। मि ६९। अ ७१। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०॥ अबंधप्रकृतिगळु मि ३। सा १९। मि ५१। अ ४९। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ६८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०॥

हि यस्मात्सर्वलब्ध्यपर्याप्तेषु साधारणशरीरेषु सर्वसूक्ष्मेषु तेजोवायुकायिकेषु च सासादनो न विद्यते। नरकगतौ च नोत्पद्यते।

त्रसकायिकेषु योगमार्गणायां मनोवाग्योगिषु च ओघः सामान्यगुणस्थानवत् तेन तेषु बन्धयोग्यम् १२०। व्युच्छित्तयः—मि १६। सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी ०। स १। अ ०। बन्धाः—मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०। अबन्धाः—मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ९८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०। त्रसनिर्वृत्यपर्याप्तके पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकवत्। औदारिककाययोगिषु मानवगतिभङ्गः तेन

क्योंकि सर्वलब्ध्यपर्याप्तकोंमें, साधारण शरीरोंमें, सब सूक्ष्मकायोंमें और तेजकाय-वायुकायिकोंमें सासादन नहीं होता तथा सासादन मरकर नरक गतिमें भी उत्पन्न नहीं होता। त्रसकायिकोंमें, योगमार्गणामें, मनोयोगी-वचनयोगियोंमें सामान्य गुणस्थानके समान बन्धयोग्य एक सौ बीस होती हैं।

त्रसकायिक, मनोयोगी, वचनयोगी बन्धयोग्य १२० की रचना

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अयो.
व्युच्छित्ति	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
अबन्ध	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	१०३	११९	११९	११९	१२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिकमिश्रकाययोगिगळ्गे पेळ्वपरु :—

ओराले वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं ।
मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ॥११६॥

औदारिकवन्मिश्रे न हि सुरनारकायुराहारनरकद्वयं मिथ्यादृग्द्वये देवचतुस्तीर्थं न ह्यविरतेऽस्ति ॥

औदारिकमिश्रकाययोगिगळ्गे औदारिककाययोगिगळगे पेळ्दंते बंधयोग्यप्रकृतिगळुं बंधव्युच्छित्त्यादिगळु मरियल्पडुवुवें तें बोडे औदारिकमिश्रकाययोगिगळु लब्ध्यपर्याप्तकरुं निर्वृत्यपर्याप्तकरुमप्पुदरिदं बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११४ अप्पुवें तें बोडे देवायुष्यमुं १ नरकायुष्यमुं १ आहारकद्वयमुं २। नरकद्वयमु २ मल्लि बंधयोग्यंगळल्लवप्पुदरिंदमा षट्प्रकृतिगळं कळेदोडे योग्यप्रकृतिगळ्तावन्मात्रंगळेयप्पुवप्पुदरिदं मिथ्यादृष्टिसासादनरोळु सुरचतुष्कमुं तीर्त्थमुं बंधमिल्ला प्रकृतिगळु अविरतनोळु बंधमप्पुवु । संदृष्टि औदारिकमिश्रकाययोगिगळ्गे

स	१	१	११३
अ	६९	७०	४४
सा	२९	९४	२०
मि	१५	१०९	५

बन्धयोग्यम् १२० । व्युच्छित्तयः—मि १६ । सा ३१ । मि ० । अ ४ । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ । उ ० । क्षी ० । स १ । अ ० । बन्धाः—मि ११७ । सा १०१ । मि ६९ । अ ७१ । दे ६७ । अ ६३ । अ ५९ । अ ५८ । अ २२ । सू १७ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ ० । अबन्धाः—मि ३ । सा १९ । मि ५१ । अ ४९ । दे ५३ । । ५७ । अ ६१ । अ ६२ । अ ९८ । सू १०३ । उ ११९ । क्षी ११९ । स ११९ । अ १२० ॥ ११५ ॥

औदारिक-मिश्रकाययोगिष्वाह—

औदारिकमिश्रकाययोगिषु औदारिककाययोगिवद्बन्धप्रकृतयो व्युच्छित्त्यादयश्च ज्ञातव्याः । औदारिकमिश्रकाययोगिनो हि लब्ध्यपर्याप्ताः निर्वृत्यपर्याप्ताश्च तेन देवनारकायुषी आहारकद्वयं नरकद्वयं च तत्र बन्धयोग्यं नेति चतुर्दशोत्तरशतम् । तत्रापि सुरचतुष्कं तीर्थं च मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्न बध्नाति । अविरते च बध्नाति ॥११६॥

त्रसनिर्वृत्यपर्याप्तकमें पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकके समान जानना। औदारिक काययोगीमें मनुष्यगतिके समान जानना। अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं।

औदारिक काययोगमें बन्धयोग्य १२० रचना

	मि.	सा.	मि.	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.
व्युच्छित्ति	१६	३१	०	४	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१
बन्ध	११७	१०१	६९	७१	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१
अबन्ध	३	१९	५१	४९	५३	५७	६१	६२	९८	१०३	११९	११९	११९

औदारिक मिश्रकाययोगियोंमें कहते हैं—

औदारिक मिश्रकाययोगियोंमें औदारिक काययोगियोंकी तरह बन्ध प्रकृतियाँ और व्युच्छित्ति आदि जानना। औदारिक मिश्रकाययोगी लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त होते हैं अतः उनके देवायु, नरकायु, आहारकद्विक, और नरकद्विक बन्धयोग्य नहीं है। इससे एक सौ चौदह बन्धयोग्य हैं। उनमें-से भी सुरचतुष्क और तीर्थंकर मिथ्यादृष्टि और सासादनमें नहीं बँधती, असंयत सम्यग्दृष्टीमें बँधती हैं ॥११६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इल्लि बंधव्युच्छित्तिसंख्येगळं पेळदपरु :—

पण्णारसमुणतीसं मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो ।
उवरिमपणसट्ठीवि य एक्कं सादं सजोगिम्मि ॥११७॥

पंचदशैकान्नत्रिंशन्मिथ्यद्विके अविरते व्युच्छित्तयश्चतस्रः । उवरिम पंचषष्टिरपि च एकं सातं सयोगे ॥

मिथ्याद्विके मिथ्यादृष्टि सासादनगुणस्थानद्विकदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु क्रमदिदं पंचदशैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिगळप्पुवु । मिथ्यादृष्टियोळु १६ प्रकृतिगळोळु नरकायुष्यमुं नरकद्विकमुं कळेदु शेष १३ प्रकृतिगळु मनुष्यायुष्यमुमं तिर्य्यगायुष्यमुमं कूडिदोडे १५ प्रकृतिगळप्पुवु । सासादननोळु ३१ प्रकृतिगळोळु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमुं कळेदु २९ प्रकृतिगळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवेकेंदोडा तिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळं कट्टुवडे मिश्रकालदोळु लब्ध्यपर्याप्तकनागलेवेळकुं । सासादननादोडे लब्ध्यपर्याप्तकरोळु पुट्टुवुदिल्ल । निर्वृत्यपर्य्याप्तकनुं मिश्रकाययोगियप्पुदरिदमायुर्ब्बंधमं माळ्पुदिल्लदु कारणमागि मिथ्यादृष्टिलब्ध्यपर्य्याप्तकने कट्टुगुं । तद्विवक्षेयिंदमा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळे बंधव्युच्छित्तिगळादुवेंदरिवुदु । अविरते असंयतनोळु व्युच्छित्तयश्चतस्रः अप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयमे बंधव्युच्छित्तियप्पुवेकेंदोडे वज्रऋषभनाराचादि षट्प्रकृतिगळु सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळादु वप्पुदरिंदमल्लिदं मेले देशसंयतन ४ प्रमत्तन ६ । अप्रमत्तन देवायुष्यं राशियोळकळेदुवेंददं बिट्टु अपूर्व्वकरणनोळु आहारद्वयरहित शेष ३४ प्रकृतिगळुमनिवृत्तिकरणन ५ सूक्ष्मसांपरायन १६ कूडि यितु उपरितन पंचषष्ठि प्रकृतिगळु सहितमागि असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ६९ अप्पुवु । सयोगकेवलि भट्टारकरोळु सातमोंदे बंधव्युच्छित्तियक्कु १ । मी गुणस्थानंगळोळु बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु १०९ । अबंधंगळु ५ । सासादननोळु बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृति-

---

तस्य गुणस्थानेषु व्युच्छित्ति संख्याति—

मिथ्यादृष्टिद्वये व्युच्छित्तिः क्रमेण मिथ्यादृष्टौ पञ्चदश १५ । नरकायुर्नरकद्वयं चापनीय तिर्यग्मनुष्यायुःक्षेपात् पञ्चदश १५ । सासादने एकान्नत्रिंशत् । २९ । मिश्रकाययोगकाले लब्ध्यपर्याप्तकादन्यस्य आयुर्बन्धासंभवात् नरतिर्यगायुषोरपनयनात् । अविरते व्युच्छित्तिः वज्रर्षभनाराचादीनां षण्णां सासादने छेदात् अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कं, देशसंयतचतुष्कं प्रमत्तषट्कं अप्रमत्तस्य देवायूराशौ न अपूर्वकरणस्य आहारकद्वयं विना शेषचतुस्त्रिंशत् ३४ अनिवृत्तिकरणपञ्चकं सूक्ष्मसांपरायषोडशकमित्येकान्नसप्ततिः ६९ । सयोगे एकं

उनके गुणस्थानोंमें व्युच्छित्तियोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें नरकायु और नरकद्विक धटाकर तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके मिलानेसे व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें उनतीसकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि मिश्रकाय योगके कालमें लब्ध्यपर्याप्तकके सिवाय अन्यके आयुबन्ध नहीं होनेसे मनुष्यायु तिर्यञ्चायु कम हो जाती है। असंयतमें वज्रर्षभनाराच आदि छहकी व्युच्छित्ति सासादनमें होनेसे अप्रत्याख्यानावरण चार, देशसंयतकी चार, प्रमत्तकी छह, अप्रमत्तकी व्युच्छित्ति देवायु मूलमें नहीं है, अपूर्वकरणकी आहारकके बिना चौंतीस, अनिवृत्तिकरणकी पाँच, सूक्ष्म साम्परायकी सोलह इस तरह सब मिलकर व्युच्छित्ति उनहत्तर है। सयोगीमें एक सातवेदनीयकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळु २० । असंयतनोळु बंधप्रकृतिगळु ७० अबंधप्रकृतिगळु ४४ । एकें दोडे तीर्थमुमं सुरचतुष्टय-मुमनविरतं कट्टुगुमप्पुर्दरिंदमल्लिलि कळवुबंधदोळकूडिदुवें बुदर्थं । सयोगिकेवलि भट्टारकरोळु बंधमों दे सातमेयक्कु १ मबंध प्रकृतिगळु ११३ अप्पुवु ॥

वैक्रियिकाहारककाययोगिगळगं पेळवपरु :—

देवे वा वेगुव्वे मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि ।
छट्ठगुणं वाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ ॥ ११८॥

देवे इव वैक्रियिके मिश्रे नरतिर्य्यगायुर्नास्ति । षष्ठगुणवदाहारे तन्मिश्रे नास्ति देवायुः ॥

वैक्रियिककाययोगिगळगे बंधयोग्य प्रकृतिगळु देवगतियोळु पेळवंते १०४ प्रकृतिगळप्पुवेकें दोडे सूक्ष्मत्रयमुं ३ विकलत्रयमुं ३ नरकद्विकमुं २ नरकायुष्यमुं १ सुरचतुष्कमुं ४। सुरायुष्यमु १ माहारद्वयमु २ मिन्तु १६ प्रकृतिगळु कळेदु पोदुवप्पुदरिंद संदृष्टिः— वै० क्रि० काययोगिगळगे

अ	१०	७२	३२
मि	०	७०	३४
सा	२५	९६	८
मि	७	१०३	१

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सूक्ष्मत्रयादिगळु ९ प्रकृतिगळकळेदुवप्पुदरिंदं बंधव्युच्छित्तिगळु ७ बंधप्रकृतिगळु १०३ अबंधप्रकृति तीर्थमों देयकुं १ ॥

सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळु २५ बंधप्रकृतिगळु ९६ अबंधप्रकृतिगळु ८॥ मिश्रनोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यं । बंधप्रकृतिगळु मनुष्यायुष्यमं कळेदु ७० प्रकृतिगळप्पुवु । मनुष्यायुष्यं सहित-

---

सातम् १ । बन्धाबन्धौ च मिथ्यादृष्टौ १०९ । ५ । सासादने ९४ । २० । असंयते ७० । ४४ तीर्थसुरचतुष्कयोर्बन्धात् । सयोगे १ । ११३ ॥ ११७ ॥ वैक्रियिकाहारकयोस्तन्मिश्रयोश्चाह—

वैक्रियिककाययोगिनां बन्धप्रकृतयः देवगतिवत् । १०४ । सूक्ष्मत्रयविकलत्रयनरकद्विकनरकायुःसुर-चतुष्कसुरायुराहारकद्वयानामबन्धात् । अत्र मिथ्यादृष्टौ सूक्ष्मत्रयादिनवानामभावाद्व्युच्छित्तिः ७ । बन्धः १०३ । अबन्धः तीर्थम् । सासादने व्युच्छित्तिः २५ । बन्धः ९६ । अबन्धः ८ । मिश्रे व्युच्छित्तिः शून्यम् । बन्धः ७०

व्युच्छित्ति होती है । बन्ध और अबन्ध मिथ्यादृष्टिमें एक सौ नौ तथा पाँच, सासादनमें चौरानवे तथा बीस । असंयतमें सत्तर तथा चवालीस क्योंकि यहाँ तीर्थंकर और सुरचतुष्कका बन्ध होता है । सयोगीमें एक तथा एक सौ तेरह ॥११७॥

औदारिकमिश्रका. ११४

	मि.	सा.	असं.	सयो.
बन्ध व्यु.	१५	२९	६९	१
बन्ध	१०९	९४	७०	१
अबन्ध	५	२०	४४	११३

वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र और आहारकआहारकमिश्रमें कहते हैं—

वैक्रियिक काययोगियोंके बन्ध प्रकृतियाँ देवगतिके समान एक सौ चार हैं । सूक्ष्मादि तीन, विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु, सुरचतुष्क, देवायु, आहारकद्वयका बन्ध नहीं होता । यहाँ मिथ्यादृष्टिमें सूक्ष्मत्रिक आदि नौका अभाव होनेसे व्युच्छित्ति सात, बन्ध एक सौ तीन, अबन्ध एक तीर्थंकर । सासादनमें व्युच्छित्ति पच्चीस, बन्ध छियानवे, अबन्ध आठ । मिश्रमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मागि अबंधप्रकृतिगळु ३४। असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १०। बंधप्रकृतिगळु तीर्त्थमुं मनुष्यायुष्यमुं सहितमागि ७२ अप्पुवु।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०२ अप्पुवेंतेंदोडे 'मिस्से णरतिरिय आउगं णत्थि' एंदितु नरतिर्य्यगायुर्द्वयमं कळेदोडप्पुवप्पुदरिदं संदृष्टिरचने—

वै० मिश्र काय			
अ	९	७१	३१
सा	२४	९४	८
मि	७	१०१	१

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ७ बंधप्रकृतिगळु १०१। अबंधप्रकृति तीर्थंमो वे १॥

सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळु तिर्य्यगायुष्यरहित २४ प्रकृतिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु ८ असंयतनोळु मनुष्यायुष्यरहित बंधव्युच्छित्तिगळु ९। बंधप्रकृतिगळु तीर्त्थंसहितमागि ७१ प्रकृतिगळप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळु तीर्त्थरहितमागि ३१ अप्पुववु॥ आहारककाययोगिगळगे छट्ठगुणंवाहारे एंदितु प्रमत्तसंयतंगे गुणस्थानदोळु पेळ्वंते बंधव्युच्छित्तिगळु ६ बंधप्रकृतिगळु ६३। अबंधप्रकृतिगळु ५७ अप्पुवु॥ आहारकमिश्रकाययोगिगे बंधव्युच्छित्तिगळु ६। बंधप्रकृतिगळु ६२ अप्पुवेकेंदोडे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ एंदितु देवायुष्यं कळेदु अबंधदोळु कूडिदुदप्पुदरिदम बंधप्रकृतिगळु ५७। कार्म्मणकाययोगिगळगे पेळ्वपरु।

मनुष्यायुरभावात्। अबन्धः ३४। असंयते व्युच्छित्तिः १०। बन्धः तीर्थमनुष्यायुःसहिततया ७२। अबन्धः तद्विना ३२।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां बन्धप्रकृतयः द्व्युत्तरशतमेव १०२। कुतः? तत्र नरतिर्यगायुषो बन्धो नास्तीति तद्द्वयापनयनात्। अत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः ७। बन्धः १०१। अबन्धः तीर्थम्। सासादने व्युच्छित्तिस्तिर्यगायुर्विना २४। बन्धः ९४। अबन्धः ८। असंयते मनुष्यायुर्विना व्युच्छित्तिः ९। बन्धः तीर्थसहिततया ७१। अबन्धः तीर्थं विना ३१। आहारककाययोगिनां प्रमत्तगुणस्थानवत् व्युच्छित्तिः ६। बन्धः ६३। अबन्धः ५७। तन्मिश्रकाययोगिनां व्युच्छित्तिः ६। बन्धः ६२ 'तम्मिस्सेणत्थि देवाऊ' इति वचनात्। अबन्धः ५८॥ ११८॥ कार्मणकाययोगिनामाह—

व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध सत्तर क्योंकि मनुष्यायुका अभाव है अबन्ध चौंतीस। असंयतमें व्युच्छित्ति दस, बन्ध तीर्थंकर और मनुष्यायु सहित बहत्तर, अबन्ध उनके बिना बत्तीस। वैक्रियिक मिश्रकाय योगियोंमें बन्ध प्रकृतियाँ एक सौ दो, क्योंकि मनुष्यायु तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता इसलिए उन दोनोंको कम कर दिया है। यहाँ मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति सात, बन्ध एक सौ एक, अबन्धमें तीर्थंकर एक। सासादनमें व्युच्छित्ति तिर्यञ्चायुके बिना चौबीस, बन्ध चौरानबे, अबन्ध आठ। असंयतमें मनुष्यायुके बिना व्युच्छित्ति नौ, बन्ध तीर्थंकर सहित इकहत्तर, अबन्ध तीर्थंकरके बिना इकतीस। आहार काययोगियोंके प्रमत्त गुणस्थानकी तरह व्युच्छित्ति छह, बन्ध तरेसठ, अबन्ध सत्तावन। आहारक मिश्रकाययोगियोंके व्युच्छित्ति छह, बन्ध बासठ क्योंकि आहारकमिश्रमें देवायुका बन्ध नहीं होता ऐसा कहा है। अबन्ध अठावन ॥११८॥

क–१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगंपि णव छिदी अयदे ।
वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघं तु ॥११९॥

कार्म्मणे औवारिकमिश्रवन्नायुर्द्वयमपि नवव्युच्छित्तयोऽसंयते । वेदादाहारपर्य्यंतं स्वगुणस्थानानामोघस्तु ॥

कार्म्मणकाययोगिगळ्गे औदारिकमिश्रकाययोगिगळ्गे पेळदंतेयक्कुमदुवुं 'ओरालेवामिस्से ण हि सुरणिरयाउहार णिरयदुगमें दितु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११४ अप्पुविल्लि विग्रहगतियोळायुर्ब्बंधमिल्लप्पुर्दारिदमवरोळिर्द्द तिर्य्यंग्मनुष्यायुर्द्वयमं कळेदोडे ११२ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवल्लि गुणस्थानचतुष्टयमक्कुं ॥ कार्म्मणकाययोगिगळ्गे—

स	१	१	१११
अ	७४	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	७३	१०७	५

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १३ अप्पुवें तेंदोडे नरकद्विकमुं नरकायुष्यमुं कळवुवप्पुर्दारिदं बंधप्रकृतिगळु १०७ अप्पुवें तेंदोडे 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि अविरदे अत्थि' एंदितु ५ प्रकृतिगळु बंधदोळकळदु अबंधप्रकृतिगळादुवप्पुर्दारिदं । सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळु तिर्य्यगायुष्यमं कळेवुळिद २४ प्रकृतिगळप्पुवु । बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु १८ ॥

असंयतनोळ् बंधव्युच्छित्तिगळु ७४ अप्पुवें तेंदोडे तन्न ओंभत्तु ९ । देशसंयतन ४ प्रमत्तसंयतन ६ अप्रमत्तन देवायुष्यमं बिट्टु अपूर्व्वकरणनाहारकद्वयरहित ३४ प्रकृतिगळं अनिवृत्ति-

कार्मणकाययोगिनां औदारिकमिश्रकाययोगिवद्भवति । तत्रापि विग्रहगतावायुर्बन्धो नेति तिर्यग्मनुष्यायुषी विना बन्धयोग्यं द्वादशोत्तरशतमेव । गुणस्थानचतुष्कम् । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १३ नरकद्विकनरकायुरभावात् । बन्धः १०७ । मिच्छदुगेदेवचऊ तित्थं णहि अविरदे अत्थीति पञ्चानामबन्धात् । सासादने व्युच्छित्तिः तिर्यगायुर्विना २४ । बन्धः ९४ । अबन्धः १८ । असंयते व्युच्छित्तिः मनुष्यायुर्विना स्वस्य ९ । देशसंयतस्य ४ । प्रमत्तस्य ६ । अप्रमत्तस्य देवायूराशौ न । अपूर्वकरणस्य आहारकद्वयं विना ३४ ।

वैक्रियिक काययोगी–१०४ वै. मिश्र. १०२ बन्धयोग्य

	मि.	सा.	मि.	असं	मि.	सा.	असं.
व्युच्छित्ति	७	२५	०	१०	७	२४	९
बन्ध	१०३	९६	७०	७२	१०१	९४	७१
अबन्ध	१	८	३४	३२	१	८	३१

कार्मणकाय योगियोंके औदारिक मिश्रकाययोगिकी तरह होता है। उसमें भी विग्रहगतिमें आयुबन्ध नहीं होता। अतः तिर्यञ्चायु मनुष्यायुके बिना बन्धयोग्य एक सौ बारह हैं। गुणस्थान चार होते हैं। मिथ्यादृष्टीमें नरकद्विक नरकायुका अभाव होनेसे व्युच्छित्ति तेरह, बन्ध एक सौ सात क्योंकि 'मिथ्यात्व और सासादनमें देवचतुष्क और तीर्थंकरका वन्ध नहीं होता असंयतमें होता है' इस नियमके अनुसार पाँच अबन्धमें हैं। सासादनमें व्युच्छित्ति तिर्यगायुके बिना चौबीस, बन्ध चौरानवे, अबन्ध अठारह। असंयतमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणन ५ सूक्ष्मसांपरायन १६ अन्तु ७४ प्रकृतिगळप्पुवप्पुवरिंदं बंधप्रकृतिगळु ७५ वप्पुवेंते दोडे सुरचतुष्कमुं तीर्त्थमुमनसंयतं कट्टुगुमप्पुदरिनवं कूडिदोडप्पु वप्पुदरिंदं । अबंधप्रकृतिगळोळा ५ प्रकृतिगळं कळेदु ३७ प्रकृतिगळप्पुवु ॥ सयोगभट्टारकनोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृति १ अबंध-प्रकृतिगळु १०१ । मुंदे वेदमार्ग्गणे मोदलगोंडु आहारमार्ग्गणे पर्य्यंतमाद १० मार्ग्गणास्थानंगळोळु तु मत्ते स्वस्वगुणस्थानंगळोळु पेळद साधारणकथनमक्कु । मल्लि स्त्रीवेदिगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० गुणस्थानंगळु ९ बंधव्युच्छित्ति मि१६ । सा२५ । मि ० । अ१० । दे४ । प्र ६ । अ१ । अ३६ । क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेद भागेय द्विचरमदोळु पुंवेद १ चरमसमयदोळु शून्यं बंधप्रकृतिगळु मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ । अ ७७ । दे ६७ । प्रमत्तनोळु ६३ अ ५९ । अनिवृत्तिकरणसवेद भागेय द्विचरमसमयदोळु २२ । चरमसमयदोळु २१ । अबंधप्रकृतिगळु मि ३ । सा १९ । मि ४६ । अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ अनिवृत्तिकरणसवेदभागेय द्विचरमदोळु ९८ । चरम-समयदोळु ९९ । स्त्रीवेदिनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे योग्यप्रकृतिगळु १०७ एंतेंदोडे आयुश्चतुष्टयं

अनिवृत्तिकरणस्य ५ । सूक्ष्मसांपरायस्य १६ । एवं ७४ । बन्धः ७५ । सुरचतुष्कतीर्थबन्धात् । अबन्धः ३७ । सयोगे व्युच्छित्तिः १ । बन्धः १ । अबन्धः १११ । तु पुनः अग्रे वेदाद्याहारपर्यन्तदशमार्गणासु स्वस्वगुण-स्थानोक्तसाधारणकथनमेव । तत्र स्त्रीवेदिनां बन्धयोग्यं १२० । गुणस्थानानि ९ । व्युच्छित्तयः—मि १६ सा २५ । मि ० । अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागद्विचरमसमये पुंवेदः १ । चरमसमये शून्यम् ० । बन्धाः—मि ११७ । सा १०१ । मि ७४ । अ ७७ । दे ६७ । प्र ३६ । अ ५९ । अ ५८ । तत्सवेदभागद्विचरमसमये २२ । चरमसमये २१ । अबन्धाः—मि ३ । सा १९ । मि ४६ । अ ४३ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ । सवेदभागद्विचरमसमये ९८ । चरमसमये ९९ । तन्निर्वृत्य-

व्युच्छित्ति मनुष्यायुके बिना अपनी नौ, देशसंयतकी चार, प्रमत्तकी छह, अप्रमत्तकी देवायु यहाँ नहीं है, अपूर्वकरणकी आहारकयुगलके बिना चौंतीस, अनिवृत्तिकरणकी पाँच, सूक्ष्म-साम्परायकी सोलह, इस प्रकार सब चौहत्तर। बन्ध पिचहत्तर क्योंकि देवचतुष्क और तीर्थंकर बँधती है। अबन्ध सैंतीस। सयोगिमें व्युच्छित्ति एक, बन्ध एक, अबन्ध एक सौ ग्यारह। आगे वेदमार्गणासे लेकर आहार मार्गणापर्यन्त दस मार्गणाओंमें अपने-अपने गुण-स्थानमें कहा साधारण कथन ही जानना।

स्त्रीवेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस, गुणस्थान नौ। स्त्रीवेदीनिर्वृत्यपर्याप्तकोंके बन्ध-योग्य एक सौ सात; क्योंकि चारों आयु, तीर्थंकर, आहारद्विक और वैक्रियिकषट्कका बन्ध नहीं होता। इसमें असंयत गुणस्थान नहीं होता।

	कार्मणकाय योग ११२				स्त्रीवेद १२० बन्धयोग्य									स्त्री. निर्वृत्य १०७	
	मि.	सा.	अ.	सयो.	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	मि.	सा.
व्युच्छित्ति	१३	२४	७४	१	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	१	१३	२४
बन्ध	१०७	९४	७५	१	११७	१०१	७४	७७	६७	३६	५९	५८	२२	१०७	९४
अबन्ध	५	१८	३७	१११	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	०	१३

स्त्रीवेद नौवें गुणस्थानके सवेदभागपर्यन्त होता है। अतः क्षपक अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेद भागके द्विचरम समयमें एक पुरुषवेदकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है। तथा बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थं १। आहारद्वयं २ वैक्रियिकषट्क ६ मन्तु १३ प्रकृतिगळकळेवुवप्पुवरिवं :—

स्त्री = निर्वृत्यपर्य्याप्त

सा	२४	९४	१३
मि	१३	१०७	०

ई रचने सुगममें बोडे स्त्रीवेदिनिर्वृत्यपर्य्याप्तकासंयतं घटिसनें बिनिते विशेषमप्पुवरिवं ॥

षंढवेदिगळगेयुं बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० गुणस्थानंगळुं स्त्रीवेदिगळोल्पेळ्वंते ९ अप्पुवु। गमनिकेयुमा प्रकारमेयक्कु मी षंढवेदिगळोळु निर्वृत्यपर्य्याप्तकोरोळु विशेषमुंटदावुदें दोडे योग्य-प्रकृतिगळु नूरेंटु १०८। गुणस्थानंगळु अप्पुवु।

षं. निर्वृत्य०

अ	९	७१	३७
सा	२४	९४	१४
मि	१३	१०७	१ तीर्थ

ई रचनेयुं सुगममें तें दोडे नरकगतिय असंयतनोळु तीर्त्थबंधमुंटें बिनिते विशेषमप्पुवरिवं। षंढवेदिलब्ध्यपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०९ तीर्त्थमं कळेवु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं

पर्याप्तानां बन्धयोग्यं १०७। कुतः? आयुश्चतुष्कतीर्थाहारद्वयवैक्रियिकषट्कानामबन्धात्। संदृष्टि :—

स्त्रीनिर्वृत्यपर्याप्त १०७

सा	२४	९४	१३
मि	१३	१०७	०

अत्रासंयतो न संभवति।

षंढवेदिनां बन्धयोग्यम् १२०। गुणस्थानानि गमनिका च स्त्रीवेदिवत्। तन्निर्वृत्यपर्याप्ते तु बन्धयोग्यमष्टोत्तरशतम्। १०८। *तल्लब्ध्यपर्याप्तकबन्धात्तिर्यग्मनुष्यायुषी अपनीय नारकासंयतापेक्षया तीर्थ-*बन्धस्यात्र क्षेपात् गुणस्थानानि ३। संदृष्टिः—

षंढनिर्वृत्यपर्याप्त ०।

अ	९	७१	३७
सा	२४	४९	१४
मि	१३	१०७	१ तीर्थ

बाईस और अबन्ध अठानबे का होता है। तथा चरम समयमें व्युच्छिति शून्य, बन्ध इक्कीस और अबन्ध निन्यानबेका होता है।

नपुंसक वेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। गुणस्थान तथा रचना स्त्रीवेदीकी तरह जानना। नपुंसकवेदी निर्वृत्यपर्याप्तमें बन्धयोग्य एक सौ आठ हैं। क्योंकि लब्ध्यपर्याप्तकके बन्धयोग्य एक सौ नौ प्रकृतियोंमें-से तिर्यञ्चायु मनुष्यायु घटाकर तीर्थंकरको मिलानेसे एक सौ आठ होती हैं क्योंकि नरकमें चतुर्थगुणस्थानमें तीर्थंकरका बन्ध होता है। गुणस्थान तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कद्दुगुमप्पुदरिंदमा प्रकृतिद्वयं कूडिदुवेंबुदत्थं। पुंवेदिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० बंधव्युच्छित्तिगळु मि १६ सा २५ मि ०। अ १०। दे ४ प्र ६ अ १ अ ३६। क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागचरमसमयदोळु पुंवेदं १ व्युच्छित्तियक्कुं। बंधप्रकृतिगळु मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३ अ ५९ अ ५८। क्षपकानिवृत्ति प्रथमसवेदभागचरमसमयपर्यंतं बंधप्रकृतिगळु २२। अबंधप्रकृतिगळु मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। क्षपकानिवृत्तिप्रथमसवेदभागचरमसमयपर्य्यंतं ९८।

पुंवेदिनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळगे गतित्रयजरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११२। गुणस्थानत्रितयमुमक्कुं।

पुं० निर्वृत्यपर्य्याप्तक

अ	९	७५	३७
सा	२४	९४	९८
मि	१३	१०७	५

ई रचनेयुं सुगममें तेंदोडे असंयतनोळु तीर्त्थमुं सुरचतुष्कमुं बंधमुंटप्पुदरिंदमा प्रकृतिपंचकमसंयतन बंधप्रकृतिगळोळकूडिदुवे बिनिते विशेषमप्पुदरि, स्त्रीवेददोळं षंढवेददोळं तीर्त्थबंधमुमाहारकद्वयबंधमुं विरोधिसल्पडदु। तीर्त्थोदयमें तु परमोत्कृष्टविशुद्धरोळुदयिसुगुमंते

पुंवेदिनां बन्धयोग्यम् १२०। व्युच्छित्तयः—मि १६। सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमभागचरमसमये पुंवेदः १। बन्धाः—मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। तत्प्रथमभागचरमसमयपर्यन्तम् २२। अबन्धाः—मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। तत्प्रथमभागचरमसमयपर्यन्तम् ९८। तन्निर्वृत्यपर्याप्तानां नारकं विना त्रिगतिजानामेव बन्धयोग्यम् ११२। गुणस्थानत्रयम्। संदृष्टिः—

पुंनिर्वृत्यपर्याप्त०।

अ	९	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	१३	१०७	५

हैं। पुरुषवेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। इनके निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें नारकको छोड़ शेष तीन गतिवाले जीवोंके ही बन्धयोग्य एक सौ बारह हैं। गुणस्थान तीन हैं—

	पुरुषवेद बन्धयोग्य १२०									पु. निवृ. ११२			नपुं. निवृ. १०८		
	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	मि.	सा.	अ.	मि.	सा.	अ.
व्यु.	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	१	१३	२४	९	१३	२४	९
बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१०७	९४	७५	१०७	९४	७१
अबन्ध	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	५	१८	३७	१	१४	३७

पुरुषवेदनिर्वृत्यपर्याप्तकोंके असंयतमें तीर्थंकर और सुरचतुष्क बन्ध होता है इतना विशेष जानना। स्त्रीवेद नपुंसकवेदमें भी तीर्थंकर और आहारकद्विकके बन्धमें कोई विरोध नहीं है, किन्तु इनका उदय नियमसे पुरुषवेदमें ही होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकऋद्धियुं स्त्रीषंढवेविगळोळुदयमिल्ल ॥ कषायमार्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० । गुणस्थानंगळु क्षपकानिवृत्तिकरणद्वितीयतृतीय चतुर्थ पंचमभागंगळु पर्य्यंतं क्रोधमानमायाबादरलोभंगळगे ९ गुणस्थानंगळप्पुवु । सामान्यगुणस्थानदोळपेळदंते गमनिकेयरियल्पडुगुं ॥ सूक्ष्मलोभिगे सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमेयक्कुं । ज्ञानमार्ग्गणेयोळु कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७ गुणस्थानद्वितयमेयक्कुं ।

कु कु विभंग

सा	२५	१०१	१६
मि	१६	११७	०

मतिश्रुतावधिज्ञानिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु तीर्त्थं आहारकद्वितयं सहितमागि ७९ प्रकृतिगळप्पुवु । एंतें बोडे मिथ्यादृष्टिसासादनरोळ ४१ प्रकृतिगळुळिवप्पुदरिंदं । गुणस्थानंगळुमसंयतादि ९ अप्पुवल्लि बंधव्युच्छित्तिगळु अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ । उ ० ।

अत्रासंयते तीर्थसुरचतुष्कयोर्बन्धोऽस्तीति ज्ञातव्यम् । स्त्रीषंढवेदयोरपि तीर्थाहारकबन्धो न विरुध्यते उदयस्यैव पुंवेदिषु नियमात् ।

कषायमार्गणायां बन्धयोग्यम् १२० । गुणस्थानानि क्षपकानिवृत्तिकरणद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमभागपर्यंतानि क्रोधमानमायाबादरलोभानां गमनिका च सामान्यगुणस्थानोक्तैव । सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमेव । ज्ञानमार्गणायां कुमतिकुश्रुतविभंगानां बन्धयोग्यम् ११७ । गुणस्थानद्वयं । संदृष्टि :—

कु–कु–विभंगाः ।

सा	२५	१०१	१६
मि	१६	११७	०

मतिश्रुतावधिज्ञानिनां बन्धयोग्याः ७९ । मिथ्यादृष्टिसासादनव्युच्छित्ति ४१–प्रकृत्यभावात् । गुणस्थानानि असंयतादीनि ९ तत्र व्युच्छितयः–अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ ।

कषायमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। क्रोध, मान, माया और लोभके गुणस्थान क्रमसे क्षपक अनिवृत्तिकरणके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम भाग पर्यन्त जानना। बन्धादि तीन सामान्य गुणस्थानवत् जानना। सूक्ष्मलोभमें सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान ही होता है। ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुत और विभंगज्ञानके बन्धयोग्य एक सौ सतरह हैं। गुणस्थान दो हैं।

कु. कु. विभ. ११७

	मि.	सा.
बन्ध व्यु.	१६	२५
बन्ध	११७	१०१
अबन्ध	०	१६

मति श्रुत अवधिज्ञानियोंके बन्धयोग्य उन्यासी हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सासादनमें व्युच्छिन्न होनेवाली इकतालीस प्रकृतियोंका अभाव है। गुणस्थान असंयतसे लेकर नौ होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षी ०। बंधप्रकृतिगळु अ० ७७। अबंध २। दे बंध ६७। अबंध १२। प्रमत्त बंध ६३। अबंध १६। अप्रमत्त बंध ५९। अबंध २०। अपूर्व्वकरण बंध ५८। अबंध २१। अनिवृत्ति बंध २२। अबंध ५७। सू० बंध १७। अबंध ६२। उपशांतकषाय बंध १ अबंध ७८। क्षीण बंध १ अबंध ७८। मनःपर्य्ययज्ञानिगळु बंधयोग्यप्रकृतिगळो ६५ ॥ प्रमत्तसंयतादिसप्तगुणस्थानंगळुमप्पुवु—

मनःपर्य्ययं

क्षी	०	१	६४
उ	०	१	६४
सू	१६	१७	४८
अ	५	२२	४३
अ	३६	५८	७
अ	१	५९	६
प्र	६	६३	२

ई रचनेयु सुगममेकदोडे मनःपर्य्ययज्ञानिगळु आहारकऋद्धिप्राप्तरिल्लदे तद्बंधमप्रमत्तापूर्व्वकरणरोळुटें बिनिते विशेषमप्पुदरिदं ॥

केवलज्ञानमार्ग्गणेयोळु सातमों दे बंधमक्कुं। सयोगायोगिगुणस्थानद्वितयमुं सिद्धपरमेष्ठिगळुमप्परु ॥ संयममार्ग्गणेयोळु असंयमबंधयोग्यप्रकृतिगळु ११८ गुणस्थानंगळुं मिथ्यादृष्ट्यादि-

उ ०। क्षी ०। बन्धाबन्धौ च—अ ७७। २। दे ६७। १२। प्र ६३। १६। अ ५९। २०। अ ५८। २१। अ २२। ५७। सू १७। ६२। उ १। ७८। क्षी १। ७८। मनःपर्ययज्ञानिनां बन्धयोग्याः ६५। प्रमत्तादिसप्तगुणस्थानानि। सं—

मनःपर्यय

क्षी	०	१	६४
उ	०	१	६४
सू	१६	१७	४८
अ	५	२२	४३
अ	३६	५८	७
अ	१	५९	६
प्र	६	६३	२

अत्राहारकद्वयोदय एव विरुध्यते नाप्रमत्तापूर्वकंकरणयोस्तद्बन्धः। केवलज्ञानिषु सातस्यैव बन्धः। सयोगायोगगुणस्थानद्वयं सिद्धाश्च संति। संयममार्गणायां असंयमस्य बन्धयोग्यं ११८ गुणस्थानानि आद्यान्येव

हैं। मनःपर्ययज्ञानियोंके बन्धयोग्य पैंसठ हैं। प्रमत्त आदि सात गुणस्थान होते हैं। मनःपर्ययका आहारकद्वयके उदयके साथ ही विरोध है, अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें होनेवाले उनके बन्धके साथ विरोध नहीं है। केवलज्ञानियोंके एक साताका ही बन्ध होता है। सयोग और अयोग ये दो गुणस्थान होते हैं। केवलज्ञान सिद्धोंके भी होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्गणस्थानंगळप्पुवु :—

असंयमक्के

अ	१०	७७	४१
मि	०	७४	४४
सा	२५	१०१	१७
मि	१६	११७	१

ई रचनेयुं सुगममेयक्कुमेंतेंदोडे असंयतगे तीर्त्थमुं मनुष्यायुष्यमुं मिश्रन अबंधदोळकळेदु असंयतनोळ्कूडिदुवेंबिनितें विशेषमप्पुदरिंदं ॥

देशसंयमक्के देशसंयतगुणस्थानदोळें तंतेयक्कुं। बंध व्यु ४ बं ६७ अ १२ ॥ सामायिकच्छेदोपस्थानद्वयक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु ६५ अप्पुवेंतेंदोडे ई संयमद्वयदोळु तीर्त्थमुमाहारकद्वितयमुं बंधमुंटप्पुदरिंदं गुणस्थानचतुष्टयमुमक्कुं।

सा० छे०

अ	५	२२	४३
अ	३६	५८	७
अ	१	५९	६
प्र	६	६३	२

चत्वारि। संदृष्टि :—

असंयमस्य रचना

अ	१०	७७	४१
मि	०	७४	४४
सा	२५	१०१	१७
मि	१६	११७	१

अत्र तीर्थदेवमनुष्यायूंषि मिश्रस्य अबन्धादसंयते निक्षिप्तानीति ज्ञातव्यम्। देशसंयमस्य देशसंयतगुणस्थानवत् व्युच्छित्तिः ४। बन्धः ६७। अबन्धः ५३। सामायिकछेदोपस्थापनयोर्बन्धयोग्याः ६५। अत्र तीर्थाहारद्विकबन्धो गुणस्थानचतुष्कं। सं—

सा छे ६५

अ	५	२२	४३
अ	३६	५८	७
अ	१	५९	६
प्रमत्त	६	६३	२

मति. श्रुत. अवधि ७९ बन्धयोग्य

	असं.	दे.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.
बन्ध व्यु.	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०
बन्ध	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१
अबन्ध	२	१२	१६	२०	२१	५७	६२	७८	७८

मनःपर्यय ६५ बन्धयोग्य

	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.
बन्ध व्यु.	६	१	३६	५	१६	०	०
बन्ध	६३	५९	५८	२२	१७	१	१
अबन्ध	२	६	७	४३	४८	६४	६४

संयममार्गणामें असंयममें बन्धयोग्य एक सौ अठारह, आदिके चार गुणस्थान होते हैं, यहाँ तीर्थंकर, देवायु और मनुष्यायुका मिश्रगुणस्थानमें बन्ध नहीं होनेसे असंयत गुणस्थानमें उनका निक्षेप किया है। देशसंयममें देश संयत गुणस्थानकी तरह व्युच्छित्ति चार, बन्ध सड़सठ और अबन्ध तिरपनका है। सामायिक और छेदोपस्थापनामें बन्धयोग्य पैंसठ हैं। यहाँ तीर्थंकर और आहारकद्विकका बन्ध होता है। गुणस्थान चार होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिहारविशुद्धिसंयमदोळ् बंधयोग्यप्रकृतिगळ् ६५ अवप्पुवेंतेंदोडे तीर्त्थमाहारकद्वितय-मुमीसंयमदोळं बंधमुंटु आहारकऋद्धि संभविसदेंबुदत्थं । गुणस्थानद्वितयमेयक्कुं :—

परिहार शु.

अ	१	५९	६
प्र	६	६३	२

सूक्ष्मसांपराय संयमदोळ् सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळें तंतेयक्कुं । बंधव्युच्छित्ति १६ । बं १७ । अ ६२ ॥ यथाख्यात संयमदोळु बंधयोग्यप्रकृति सातमोंदेयक्कुं गुणस्थानचतुष्टयमुमक्कुं

यथाख्यात

अ	०	०	१
स	१	१	०
क्षी	०	१	०
उ	०	१	०

परिहारविशुद्धिसंयमे बन्धयोग्याः ६५ । अत्र तीर्थाहारकद्विकबन्धोऽस्ति नाहारकर्धिः । गुणस्थानद्वयं—

परिहारविशुद्धि ६५

अप्र	१	५९	६
प्रमत्त	६	६३	२

सूक्ष्मसांपरायसंयमे सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवत् व्यु—१६ । बं १७ । अ १०३ । यथाख्यातसंयमे बन्ध-योग्यं सातमेव गुणस्थानचतुष्कं । सं—

यथाख्यात

अ	०	०	१
स	१	१	०
क्षी	०	१	०
उ	०	१	०

परिहार विशुद्धि संयममें बन्धयोग्य पैंसठ हैं। यहाँ तीर्थंकर और आहारकद्विकका बन्ध होता है। किन्तु आहारक ऋद्धि नहीं है।

	असंयम बन्धयोग्य ११८				सामा. छे. ६५				परि. वि. ६५	
	मि.	सा.	मि.	असं.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	प्र.	अप्र.
व्यु.	१६	२५	०	१०	६	१	३६	५	६	१
बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६३	५९	५८	२२	६३	५९
अबन्ध	१	१७	४४	४१	२	६	७	४३	२	६

सूक्ष्मसाम्पराय संयममें सूक्ष्म साम्परायगुणस्थानके समान व्युच्छित्ति सोलह, बन्ध सतरह, अबन्ध एक सौ तीन जानना। यथाख्यात संयममें बन्धयोग्य एक साता है। गुण-स्थान चार अन्तिम हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनमार्ग्गणेयोळ् चक्षुरचक्षुर्द्दर्शनद्वयक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळ् १२० अप्पुवु। गुणस्थानंगळ् मिथ्यादृष्ट्यादि १२ अप्पुवु। इल्लि गुणस्थानसामान्यदोळें तंते बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिगळरियल्पडुगुं। अवधिदर्शनक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु अवधिज्ञानदोळ्पेळ्दंते योग्यप्रकृतिगळ् ७९ गुणस्थानंगळुं असंयतादि ९ अप्पुवु। केवलदर्शनक्के केवलज्ञानक्के पेळ्दंतेयक्कुं।

लेश्यामार्ग्गणेयोळ् कृष्णनीलकपोतंगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळ् ११८ अप्पुवेंतेंदोडे असंयतनोळु तीर्त्थबंधमुंटु। आहारकद्विकमे कळेदुदेंबुदत्थं। गुणस्थानंगळ् मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्ग्गुणस्थानंगळप्पुवु। बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधगमनिकेयुं गुणस्थानदोळ्पेळ्द सामान्यकथनमेयक्कुं। तेजःपद्मशुक्ललेश्येगळ्गे गाथाद्वयदिदं बंधयोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु।

णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।
मिच्छस्संतिमणवयं बारं ण हि तेउपम्मेसु ॥१२०॥
सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमबारसं च ण च अत्थि।
कम्मेव अणाहारे बंधस्संतो अणंतो य ॥१२१॥

नवीनं च सर्व्वोपशमसम्यक्त्वे नरसुरायुषी न स्तः नियमेन। मिथ्यादृष्टेरंत्यनवकं द्वादश च न हि तेजःपद्मयोः ॥

शुक्ले शतारचतुष्कं वामांत्यद्वादश च न च संति। कार्म्मणे इव अनाहारे बंधस्यांतोऽनंतश्च ॥

तेजोलेश्येयोळ् बंधयोग्यप्रकृतिगळु १११ अप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिय कडेय सूक्ष्मत्रयादि नवप्रकृतिगळ् कळेदु तावन्मात्रं गळप्पुदरिदं। अल्लि गुणस्थानंगळ् मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तावसान-

---

दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्बन्धयोग्यम् १२०। मिथ्यादृष्ट्यादिद्वादशगुणस्थानोक्तबन्धाबन्धव्युच्छित्तयो ज्ञातव्याः। अवधिदर्शने अवधिज्ञानवद्बन्धयोग्याः ७९। गुणस्थानानि असंयतादीनि ९। केवलदर्शने केवलज्ञानवत्। लेश्यामार्गणायां कृष्णनीलकपोतानां बन्धयोग्यं ११८ आहारकद्विकाभावात्। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि बन्धाबन्धव्युच्छित्तयस्तद्वत् ॥११९॥ शुभलेश्यानां गाथाद्वयेनाह—

तेजोलेश्यायां बन्धयोग्यं १११ मिथ्यादृष्टेश्चरमसूक्ष्मत्रयादिनवानामभावात्। गुणस्थानानि आद्यान्येव

दर्शनमार्गणामें चक्षु अचक्षुदर्शनमें बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। मिथ्यादृष्टिसे लेकर बारह गुणस्थानोंमें कहे अनुसार बन्ध, अबन्ध और व्युच्छित्ति जानना। अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानकी तरह बन्धयोग्य उनासी हैं। गुणस्थान असंयत आदि नौ हैं। केवल दर्शनमें केवलज्ञानकी तरह जानना।

लेश्यामार्गणामें कृष्ण नील कपोतमें बन्धयोग्य एक सौ अठारह हैं, आहारकद्विक नहीं है। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार हैं। गुणस्थानोंकी तरह ही बन्ध अबन्ध और व्युच्छित्ति होती है ॥११९॥

शुभलेश्याओंमें दो गाथाओंसे कहते हैं—

तेजोलेश्यामें बन्धयोग्य एक सौ ग्यारह हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न होनेवाली सोलह प्रकृतियोंमें से अन्तकी सूक्ष्मत्रिक आदि नौका अभाव है। गुणस्थान आदिके सात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माद ७ गुणस्थानंगळप्पुवु। मि। व्यु ७। बं १०८ अ ३। सासा. व्यु. २५। बं १०१। अ १०। मि व्यु ०। बं ७४। अ बं ३७। अ सं व्यु १०। बं ७७। अ बं ३४॥ देश सं व्यु ४। बंध ६७। अ बं ४४। प्रम व्यु ६ बंध ६३। अ बं ४८॥ अप्र व्यु १ बंध ५९। अबं ५२॥ पद्मलेश्येयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०८ अप्पुवेंतेंदोडे वामन अन्त्यद्वादश प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिदं। गुणस्थानंगळुं ७ अप्पुवु। मि व्यु ४ बंध १०५। अबं ३॥ सासा व्यु २५। बंध १०१। अबं ७॥ मिश्र व्यु। ०। बंध ७४। अबं ३४॥ असं व्यु १०। बंध ७७। अबं ३१॥ देश व्यु ४। बंध ६७। अबं ४१॥ प्रम व्यु ६ बंध ६३। अबं ४५॥ अप्र व्यु १। बंध ५९। अबं ४९॥ शुक्ललेश्येयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०४ अप्पुवेंतेंदोडे सासादननोळु शतारचतुष्टयमुं मिथ्यादृष्टियोळु एकेंद्रियादि अन्त्यद्वादशप्रकृतिगळुं कळेदोडे तावत्प्रमितंगळप्पुवप्पुदरिदं। गुणस्थानंगळुं १३ रप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु व्यु ४। बंध १०१। अबं ३॥ सासा व्यु २१। बंध ९७। अबं ७॥ मिश्र व्यु ०। बंध ७४। अबं ३०॥ असं व्यु १०। बंध ७७। अबं २७॥ देश व्यु ४ बंध ६७। अबं ३७॥ प्रम व्यु ६ बंध ६३। अबं ४१। अप्र व्यु १। बंध ५९। अबं ४५॥ अप्र व्यु १। बंध ५९। अबं ४५॥ अपूर्व्व व्यु ३६। बंध ५८। अबं ४६॥ अनि व्यु ५। बंध २२। अबं ८२॥ सूक्ष्म व्यु १६। बंध १७। अबं ८७॥ उप व्यु ०। बंध १। अबं १०३॥ क्षीण व्यु ०। बंध १। अबं १०३॥

सप्त। मि व्यु-७। बं १०८। अ ३। सा-व्यु २५। बं १०१ अ १०। मि व्यु-०। बं ७४। अ ३७। अ व्यु-१०। बं ७७। अ ३४। दे व्यु-४। बं ६७। अ ४४। प्र व्यु-६। बं ६३। अ ४८। अ व्यु-१। बं ५९। अ ५२। पद्मलेश्यायां बन्धयोग्यं १०८, वामस्यान्तद्वादशानामभावात्। गुणस्थानानि ७। मि व्यु-४। बं १०५। अ ३। सा-व्यु २५। बं १०१। अ ७। मि व्यु-०। बं ७४। अ ३४। अ व्यु १०। बं ७७। अ ३१। दे व्यु-४। बं ६७। अ ४१। प्र व्यु-६। बं ६३। अ ४५। अ व्यु-१। बं ५९। अ ४९। शुक्ललेश्यायां बन्धयोग्यम् १०४। सदरचउक्कं मिथ्यादृष्टचेकेन्द्रियाद्यन्त्यद्वादश च नहि। गुणस्थानानि १३। तत्र मि व्यु-४। बं १०१। अ ३। सा व्यु-२१। बं ९७। अ ७। मि व्यु-०। बं ७४। अ ३०। अ व्यु १०। बं ७७। अ २७। दे व्यु-४ बं ६७। अ ३७। प्र व्यु-६। बं ६३। अ ४१। अ व्यु-१। बं ५९। अ ४५। अ व्यु-३६। बं ५८। अ ४६। अ व्यु-५। बं २२। अ ८२। सू व्यु १६।

होते हैं। पद्मलेश्यामें बन्धयोग्य एक सौ आठ हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंमें-से अन्तिम बारहका अभाव है। गुणस्थान सात होते हैं।

तेजोलेश्या बन्धयोग्य १११

	मि.	सा.	मि.	असं.	दे.	प्र.	अप्र.
बं. व्यु.	७	२५	०	१०	४	६	१
बन्ध	१०८	१०१	७४	७७	६७	६३	५९
अबन्ध	३	१०	३७	३४	४४	४८	५२

पद्मलेश्या बन्धयोग्य १०८

	मि०	सा.	मि.	असं.	दे.	प्र.	अप्र.
बं. व्यु.	४	२५	०	१०	४	६	१
बन्ध	१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५९
अबन्ध	३	७	३४	३१	४१	४५	४९

शुक्ललेश्यामें बन्धयोग्य एक सौ चार। क्योंकि शतारचतुष्क और मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंमें-से अन्तकी एकेन्द्रिय आदि बारह नहीं होतीं। गुणस्थान तेरह हैं। रचना इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयो व्यु १ । बंध १ । अबं १०३ ॥

भव्याऽभव्यमार्ग्गणाद्वयदोळ् मोदल भव्यमार्ग्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० गुणस्थानंगळु १४ अप्पुवल्लि । मि बंधव्युच्छि १६ बं ११७ । अबं ३ ॥ सा व्यु २५ । बं १०१ । अ १९ ॥ मि व्यु ० । बं ७४ । अ ४६ ॥ असं व्यु १० । बं ७७ । अ ४३ ॥ देश व्यु ४ । बं ६७ । अ ५३ ॥ प्रम व्यु ६ । बं ६३ । अ ५७ ॥ अप्र व्यु १ । बंध ५९ । अ ६१ ॥ अपू व्यु ३६ । बं ५८ । अ ६२ ॥ अनिवृत्ति व्यु ५ । बं २२ । अ ९८ ॥ सूक्ष्म व्यु १६ । बं १७ । अ १०३ ॥ उप व्यु ० । बं १ । अ ११९ ॥ क्षीण व्यु शून्य ० । बं १ । अ ११९ ॥ सयोग व्यु १ । बं १ । अ ११९ ॥ अयोगि व्यु ० । बं ० । अ १२० ॥ अभव्यमार्ग्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७ । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं नियमदिदं मोदेयक्कुं ॥

सम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ७७ अप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिसासादनरुगळ व्युच्छित्तिप्रकृतिगळु ४० । णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुर आऊणि णत्थि णियमेण एंदितु सम्यग्दृष्टिगळगे तिर्य्यग्मनुष्यगतिगळोळु परभवबंधयोग्यमप्पदेवायुष्यमुं नरकदेवगतिगळोळु परभवबंधयोग्यमप्प मनुष्यायुष्यमुमुभयोपशमसम्यक्त्वदोळ् बंधयोग्यंगळल्लप्पुवरिंदमा यरडुमायुष्यंगळुं कूडि ४३ । प्रकृतिगळु कळदुवप्पुदरिंदं तावन्मात्रं गळेयप्पुवु । गुणस्थानंगळु

बं १७ । अ ८७ । उ व्यु ० । बं १ । अ १०३ । क्षी व्यु ० । बं १ । अ १०३ । स व्यु १ । बं १ । अ १०३ ।

भव्यमार्गणायां बन्धयोग्यम् १२० । गुणस्थानानि १४ । तद्रचनासामान्यगुणस्थानोक्तवज्ज्ञातव्या । अभव्यमार्गणायां बन्धयोग्यप्रकृतयः ११७, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । सम्यक्त्वमार्गणायां प्रथमोपशमसम्यक्त्वे बन्धयोग्याः ७७ । मिथ्यादृष्टिसासादनव्युच्छित्तेः ४१ । तथा णवरिय सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेणेति उपशमसम्यग्दृष्टीनां तिर्यग्मनुष्यगत्योर्देवायुषोर्नरकदेवगत्योर्मनुष्यायुषश्चाबन्धादुभयोपशमसम्यक्त्वे तद्द्वयस्याप्यभावात् गुणस्थानानि असंयतादीनि चत्वारि ।

शुक्ललेश्या बन्धयोग्य १०४

	मि.	सा.	मि.	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.
व्युच्छित्ति	४	२१	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१
बन्ध	१०१	९७	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१
अबन्ध	३	७	३०	२७	३७	४१	४५	४६	८२	८७	१०३	१०३	१०३

भव्यमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस । गुणस्थान चौदह । उसकी रचना सामान्य गुणस्थानवत् जानना । अभव्यमार्गणामें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ सतरह और केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है ।

सम्यक्त्वमार्गणामें प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें बन्धयोग्य सतहत्तर हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सासादनकी व्युच्छित्ति इकतालीस, तथा यद्यपि सम्यग्दृष्टिके तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें देवायुका तथा नरकगति और देवगतिमें मनुष्यायुका बन्ध होता है तथापि उपशम सम्यग्दृष्टिके दोनों ही उपशमसम्यक्त्वोंमें इन दोनों आयुका बन्ध नहीं होता । गुणस्थान असंयत आदि चार । असंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें तीर्थंकरका बन्ध होता है । अप्रमत्तमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका बन्ध होता है द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें भी बन्धयोग्य सत्तर हैं । गुणस्थान आठ । रचना इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मसंयतादिचतुर्गुणस्थानंगळप्पुवु—

प्रथ०	सम्यक्त्व		
अ	०	५८	१९
प्र	६	६२	१५
दे	४	६६	११
अ	९	७५	२

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळं तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं बंधमुंटेंबी पक्षदोळु असंयतादिगुणस्थानत्रयदोळु तीर्त्थबंधमुमप्रमत्तगुणस्थानदोळु तीर्त्थमुमाहारकद्वितयमुं बंधमक्कुमें बिनितें विशेषमप्पुदरिंदं ॥ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळं बंधयोग्य प्रकृतिगळु ७७ अप्पुवु। गुणस्थानंगळु ८ प्पुवल्लि श्रेण्यवरोहणाऽसंयतंगे बंधव्युच्छित्तिगळ् ९। बं ७५। अबंधप्रकृतिगळाहार २ श्रेण्यवरोहण देशसंयतंगे बंधव्युच्छित्ति ४। बं ६६। अ ११ श्रेण्यवरोहणप्रमत्तसंयतंगे बंधव्युच्छित्ति ६। बं ६२। अ १५॥

प्रथम० सम्यक्त्वं

अ	०	५८	१९
प्र	६	६२	१५
दे	४	६६	११
अ	९	७५	२

अत्र तीर्थाहारकद्विकबन्धपक्षे असंयतादित्रये तीर्थस्य बन्धः, अप्रमत्ते तीर्थाहारकद्विकयोश्च बन्धोऽस्ति। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेऽपि बन्धयोग्याः ७७। गुणस्थानानि ८। तत्र श्रेण्यवरोहकासंयते व्यु ९। बं ७५। अबन्धः आहारकद्वयम्। देशसंयते व्यु ४। बं ६६। अ ११। प्रमत्ते व्यु ६। बं ६२। अ १५। आरोहकाऽवरोहकाप्रमत्ते व्यु ०। बं ५८। अ १९। अपूर्वकरणे व्यु ३६। बं ५८। अ १९। अनिवृत्तिकरणे व्यु ५। बं २२। अ ५५। सूक्ष्मसांपराये व्यु १६। बं १७। अ ६०। उपशांतकषाये व्यु ०। बं १। अ ७६। अत्र।

प्रथमोपश. ७७	असं.	दे.	प्र.	अप्र.
व्युच्छित्ति	९	४	६	०
बन्ध	७५	६६	६२	५८
अबन्ध	२	११	१५	१९

द्वितीयोपश. ७७	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.
व्युच्छित्ति	९	४	६	०	३६	५	१६	१
बन्ध	७५	६६	६२	५८	५८	२२	१७	१
अबन्ध	२	११	१५	१९	१९	५५	६०	७६

असंयत और देशसंयतमें जो प्रमत्तमें श्रेणिसे उतरकर नीचे आता है उसीकी अपेक्षा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। तथा प्रमत्तादिमें श्रेणी चढ़ने व उतरनेकी अपेक्षा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पाया जाता है इससे इसमें गुणस्थान आठ होते हैं।

शंका—जब प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें आयुबन्ध नहीं होता तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेण्यारोहकावरोहकाप्रमत्तसंयतंगे बंध व्यु ०। बंध ५८। अ १९॥ श्रेण्यारोहकावरोहकापूर्व्वकरणंगे बंधव्युच्छित्ति ३६। बं ५८। अ १९॥ श्रेण्यारोहकावरोहकानिवृत्तिकरणंगे बंधव्युच्छित्ति ५। बं २२। अ ५५॥ आरोहकावरोहकसूक्ष्मसांपरायंगे बंधव्युच्छित्ति १६। बं १७। अ ६०॥ उपशांतकषायंगे बंधव्युच्छित्ति। ०। बं १। अ ७६॥ ई प्रथमद्वितीयोपशमसम्यक्त्वद्वयदोळमायुर्बंधमिल्लप्पुदरिंदमारोहकापूर्व्वकरणमरणरहितप्रथमभागमेंब विशेषणमनर्त्थकमक्कुमेंदेनल्वेडि येकेंदोडे प्राग्बद्धदेवायुष्यनप्प सातिशयाप्रमत्तसंयतंगे श्रेण्यारोहणं संभविसुगुमप्पुदरिंदं॥ प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु प्राग्बद्धायुष्यनादोडं तत्सम्यक्त्वकालमंतर्मुहूर्तपर्यंतं मरणं संभविसदु॥ क्षायोपशमिकसम्यक्त्वदोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ७९ अप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानद्वयदोळु ४१ प्रकृतिगळु ळिदुवप्पुदरिंदं तावन्मात्रंगळेयप्पुवु। गुणस्थानंगळुमसंयतादिचतुर्गुणस्थानंगळेयप्पुवेकेंदोडे उपशमश्रेणियोळुपशममुं क्षायिकमुं मेणु क्षपकश्रेणियोळु क्षायिकसम्यक्त्वमेयक्कुमेंब नियममप्पुदरिंदं।—

वेदकसम्यक्त्व

अ	१	५९	२०
प्र	६	६३	१६
दे	४	६७	१२
अ	१०	७७	२ आ

प्रथमद्वितीयोपशमसम्यक्त्वयोरायुरबन्धात् आरोहकापूर्वकरणप्रथमभागे मरणो न इति विशेषोऽनर्थकः ? इति न वाच्यं प्राग्बद्धदेवायुष्कस्यापि सातिशयाप्रमत्तस्य श्रेण्यारोहणसंभवात्। प्रथमोपशमसम्यक्त्वे तु प्राग्बद्धायुष्कस्यापि तत्कालान्तर्मुहूर्ते मरणासंभवात्। क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे मिथ्यादृष्टिसासादनव्युच्छित्त्यसंभवात् बन्धयोग्या ७९। गुणस्थानानि असंयतादीनि चत्वारि एव। कुतः ? उपशमश्रेण्यां औपशमिकं क्षायिकं च, क्षपकश्रेण्यां क्षायिकमेव सम्यक्त्वमिति नियमात्।

वेदकसम्यक्त्वं ७९

अ	१	५९	२०
प्र	६	६३	१६
दे	४	६७	१२
अ	१०	६७	२ आ

श्रेणि चढ़ते हुए अपूर्वकरणके प्रथम भागके साथ 'मरणूण' मरणसे रहित विशेषण क्यों लगाया ? यह विशेषण व्यर्थ क्यों नहीं है ?

समाधान—ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि जिसने पहले देवायुका बन्ध किया है ऐसा सातिशय अप्रमत्त भी श्रेणि पर आरोहण कर सकता है। किन्तु प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें और श्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथमभागमें जिसने पहले देवायुका बन्ध किया है उसका भी मरण नहीं होता अन्यत्र उपशमश्रेणिमें मरण हो सकता है।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें होनेवाली व्युच्छित्ति प्रकृतियोंका अभाव होनेसे बन्धयोग्य उनासी हैं। गुणस्थान असंयत आदि चार ही होते हैं क्योंकि उपशम श्रेणिमें औपशमिक क्षायिक और क्षपकश्रेणिमें क्षायिक ही सम्यक्त्व होनेका नियम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई रचनेयु सुगममेंतेंदोडे अप्रमत्तनोळु तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं बंधमक्कुमेंबिनिते विशेषमप्पुदरिंदं ॥

क्षायिकसम्यक्त्वक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु ७९। अप्पुवल्लियु ४१ प्रकृतिगळकळेदुवप्पुदरिंदं तावन्मात्रंगळेयप्पुवप्पुदरिंदं। गुणस्थानंगळुमसंयताद्ययोगिकेवलिगुणस्थानावसानमाद गुणस्थानंगळु ११ अप्पुवु ॥ गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळोळ क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुं। असं व्यु १०। बं ७७। अ २ आहारकं ॥ देशसंयतनल्लि व्यु ४ बं ६७। अ १२ ॥ प्रम व्यु ६। बं ६३। अ १६ ॥ अप्रमत्त व्यु १ बं ५९ अ २० ॥ एकेंदोडाहारकद्वयं बंधदोळकूडिदुवप्पुदरिंदं ॥ अपूर्व्वकरणंगे बंधव्युच्छित्ति ३६ बं ५८। अ २१ ॥ अनि व्यु ५। बं २२। अ ५७। सूक्ष्म व्यु १६। बं १७। अं ६२ ॥ उप व्यु। ०। ब १। अबं ७८ ॥ क्षीणकषाय। व्यु। ०। बं १। अ ७८ ॥ सयोग व्यु १। बं १। अबं ७८ ॥ अयोगिकेवलि भट्टारकंगे व्यु ०। बं ०। अबं ७९ ॥ मिथ्यारुचिगळगे व्यु १६। ब ११७। अ ३ ॥ सासादनरुचिगळगे व्यु २५। बं १०१। अ १९ ॥ मिश्ररुचिगळगे व्यु ०। बं ७४। अ ४६ ॥ संज्ञ्यसंज्ञिमार्ग्गणाद्वयदोळु संज्ञिमार्ग्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२०। गुणस्थानंगळु १२। इल्लि बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधभेदंगळु सामान्यगुणस्थानदोळु पेळदंते वक्तव्यमप्पुवु ॥ असंज्ञिमार्ग्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुं सासादनगुण-

---

अत्राप्रमत्ते तीर्थाहारकद्विकयोर्बन्धोऽस्ति। क्षायिकसम्यक्त्वेऽपि सैव ७९। बन्धयोग्यगुणस्थानानि असंयताद्ययोगान्तानि ११। सिद्धा अपि। अ व्यु १०। बं ७७। अ २ आहारकद्वयं। दे व्यु ४। बं ६७। अ १२। प्र व्यु ६। बं ६३। अ-१६। अ व्यु १। बं ५९। अ २०। आहारकद्वयस्य बन्धे मिलितत्वात् अपूर्वकरणस्य व्यु ३६। बं ५८। अ २१। अ व्यु ५। बं २२। अ ५७। सू व्यु १६। बं १७। अ ६२। उ व्यु ०। बं १। अ ७८। क्षी व्यु ०। बं १। अ ७८। स व्यु १। बं १। अ ७८। अ व्यु ०। बं ०। अ ७९। मिथ्यारुचीनां व्यु १६। बं ११७। अ ३। सासादनरुचीनां व्यु २५। बं १०१। अ १९। मिश्ररुचीनां व्यु ०। बं ७४। अ ४६। संज्ञिमार्गणायां बन्धयोग्यं १२० गुणस्थानानि १२ बन्धाबन्धव्युच्छित्तयः

है। वेदक सम्यक्त्वमें अप्रमत्त अवस्थामें तीर्थंकर आहारकद्विकका बन्ध होता है और क्षायिक सम्यक्त्वमें भी होता है। अतः क्षायिक सम्यक्त्वमें भी बन्धयोग्य उनासी हैं और गुणस्थान असंयतादि ग्यारह हैं।

वेदक सम्यक्त्व ७९

	असं.	दे.	प्र.	अप्र.
व्युच्छित्ति	१०	४	६	१
बन्ध	७७	६७	६३	५९
अबन्ध	२	१२	१६	२०

क्षायिक सम्यक्त्व ७९

	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अयो.
व्युच्छित्ति	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
बन्ध	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
अबन्ध	२	१२	१६	२०	२१	५७	६२	७८	७८	७८	७९

मिथ्यादृष्टिके व्युच्छित्ति सोलह, बन्ध एक सौ सतरह और अबन्ध तीनका है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध चौहत्तर और अबन्ध छियालीसका है। सासादन सम्यग्दृष्टीके व्युच्छित्ति पच्चीस, बन्ध एक सौ एक और अबन्ध उन्नीस है।

संज्ञिमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। गुणस्थान बारह हैं। बन्ध, अबन्ध और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानमुमप्पुवल्लि सासादननोळायुर्ब्बंधमिल्लेकें दोडे मिश्रकाययोगियप्पुर्दारिदं। तत्कालदोळें तद्गुणस्थानकालं तीर्द्दुं मिथ्यादृष्टियक्कुमप्पुर्दारिदमायुश्चतुष्टयबंध मिथ्यादृष्टियोळे व्युच्छित्तियक्कुं—

असंज्ञिगे		
सा २९	९८	१९
मि १९	११७	०

आहारानाहारमार्ग्गणा द्वयदोळु आहारमार्ग्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२०। गुणस्थानंगळु १३। यिल्लि बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधभेदंगळु साधारणगुणस्थानदोळु पेळ्द क्रममेयप्पुवु॥ अनाहारमार्ग्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११२ अप्पुवें तेंदोडे कम्मेव अणाहारे यें दितु कार्म्मणकाययोगदोळु पेळ्दंतेयक्कुमा कार्म्मणकाययोगमुं औदारिकमिश्रकाययोगक्के पेळ्दंतेयक्कुं। तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमुं रहितमप्पुर्दारिदं॥ ओराळे वा मिस्से ण हि सुराणिरयाउहारणिरयदुगमें बी षट्प्रकृतिगळु ६ मिन्तु ८ प्रकृतिगळकळेदोडे तावन्मात्रंगळे यप्पुवप्पुर्दारिदं गुणस्थानंगळु ५।

सामान्यवत्। असंज्ञिमार्गणायां बन्धयोग्यम् ११७। गुणस्थानद्वयम्। तत्र सासादने मिश्रकाययोगित्वात् मिथ्यादृष्टावेव आयुश्चतुष्कस्य व्युच्छित्तिः।

असंज्ञिनः ११७

सा	२९	९८	१९
मि	१९	११७	०

आहारमार्गणायां बन्धयोग्याः १२०। गुणस्थानानि १३। बन्धाबन्धव्युच्छित्तयः साधारणवत्। अनाहारमार्गणायां बन्धयोग्या ११२। कुतः? 'कम्मेव अणाहारे' कार्मणे च औदारिकमिश्रवदिति तिर्यग्मनुष्यायुषी न। 'ओराले वा मिस्से णहि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं' इत्यष्टानामभावात्। गुणस्थानानि ५।

व्युच्छित्ति सामान्य गुणस्थानकी तरह जानना। असंज्ञिमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ सतरह। गुणस्थान दो। सासादनमें मिश्रकाययोग होनेसे मिथ्यादृष्टिमें ही चारों आयुकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। आहारमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस। गुणस्थान तेरह। बन्ध, अबन्ध और व्युच्छित्ति सामान्यगुणस्थानवत् जानना। अनाहार मार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बारह हैं क्योंकि कार्मण काययोगकी तरह कहा है और कार्मणमें औदारिक मिश्रकी तरह तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता तथा औदारिक मिश्रमें देवायु नरकायु नरकद्विक आहारकद्विकका अभाव है। इस तरह आठका बन्ध नहीं होता। गुणस्थान पाँच होते हैं।

असंज्ञी ११७

	मि.	सा.
व्युच्छित्ति	०	२९
बन्ध	११७	९८
अबन्ध	१९	१९

अनाहार ११२

मि.	सा.	अस.	स.	अयो.
१३	२४	७४	१	०
१०७	९४	७५	१	०
५	१८	३७	१११	११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनाहारमार्गं०			सं०
अ	०	०	११२
स	१	१	१११
अ	९।६५	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	१३	१०७	५

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टियोळु अबंधंगळागिर्द्द तीर्थमुं सुरचतुष्कमुमसंयतसम्यग्दृष्टियोळु बंधमुंटप्पुदरिंदमा प्रकृतिपंचकमं कूडिदोडे बंधप्रकृतिगळु ७५। अबंधप्रकृतिगळु ३७ अप्पुवें बिनिते विशेषमप्पुदरिंदं बंधव्युच्छित्तिगळु णवछिदी अयदे एंदु ९ प्रकृतिगळप्पुवु। उवरिम पणसट्ठी वि य यें दितु देशसंयतादि क्षीणकषायावसानमाद गुणस्थानव्युच्छित्तिगळु ६५ अन्तु ७४ प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळागुत्तिरलु एक्कं सादं सजोगम्मि एंदितु सयोगकेवळिगळोळु सातमों दे बंधमुं व्युच्छित्तियुमक्कुमबंधप्रकृतिगळु १११। अयोगिकेवळिगळोळु व्युच्छित्तिबंधंगळु शून्यंगळु। बंधप्रकृतिगळु ११२। इन्तु वेदमार्गणे मोदलगों डनाहारमार्गणे पर्य्यंतं बंधस्यांतोऽनंतश्च। बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिविशेषंगळुक्तप्रकारदिदं भाविसल्पडुवुवु ॥

अनंतरं मूलप्रकृतिगळगे साद्यनादिध्रुवाध्रुवबंधसंभवासंभवमं पेळदपरु।

सादिअणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स।
तदियो सादि य सेसो अणादि धुव सेसगो आऊ ॥१२२॥

सादिरनादि ध्रुवोऽध्रुवश्च बंधस्तु कर्म्मषट्कस्य। तृतीयं सादि शेषमनादि ध्रुवशेषकमायुः ॥

अनाहारमा०—११२

अ	०	०	११२
स	१	१	१११
अ	९-६५	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	१३	१०७	५

इयं रचना सुगमा। कुतः? मिथ्यादृष्टौ अबन्धस्थिततीर्थसुरचतुष्कयोरसंयते बन्धः, इत्येतावत् एव विशेषात्। व्युच्छित्तिः 'णवच्छिदी अयदे' इति नव। तथा 'उवरिमपणसट्ठीविय' एवं ७४। 'एक्कं सादं सजोगिम्हि' बध्यते व्युच्छिद्यते च। अबन्धः—१११। अयोगे व्युच्छित्तिः बन्धश्च शून्यम्। अबन्धः ११२। एवं वेदमार्गणाद्याहारमार्गणापर्यन्तं बन्धस्यान्तो व्युच्छित्तिः। अनन्तः—बन्धः। चशब्दादबन्धश्चोक्तः ॥१२०–१२१॥ अथ मूलप्रकृतीनां साद्यादिबन्धभेदान् विशेषयति—

अनाहारकमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकर और सुरचतुष्कका बन्ध न होकर असंयतमें होता है इतना ही विशेष है। असंयतमें अपनी व्युच्छित्ति नौ तथा ऊपर के गुणस्थानोंकी पैंसठ मिलकर चौहत्तर होती है। सयोगीमें एक साता ही बँधती है उसीकी व्युच्छित्ति होती है। इस प्रकार वेदमार्गणासे आहारमार्गणा पर्यन्त बन्धका अन्त अर्थात् व्युच्छित्ति और बन्धका अनन्त अर्थात् बन्ध तथा 'च' शब्दसे अबन्ध कहा ॥१२०–१२१॥

आगे मूल प्रकृतियोंके सादि आदि बन्धके भेदोंको कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादिबंधमं बुमनादिबंधमें दुं ध्रुवबंधमें दुमध्रुवबंधमें दितु प्रकृतिबंधं चतुर्विधमक्कुमवरोळु ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं मोहनीयं नामं गोत्रमंतरायमें ब मूलप्रकृतिषट्कक्के प्रत्येकं साद्यनादि ध्रुवाध्रुवबंधचतुष्टयमुमक्कुं। तृतीयं वेदनीयं। सादिशेषं सादिबंधदत्तणिदं शेषानादिध्रुव अध्रुवबंध-भेदंगळनुळ्ळुदक्कुं। एंतेंदोडे सातवेदनीयापेक्षेयिंदं वेदनीयक्के सादित्वमिल्लेकेंदोडे गुणप्रतिपन्न-रोळमुपशमश्रेण्यारोहणावरोहणदोळं सातवेदनीयबंधमविच्छिन्नरूपदिदं सयोगगुणस्थानपर्य्यंतं बंधमुंटप्पुदरिदं। अनादिध्रुवशेषमायुः आयुष्यमनादिध्रुवबंधद्वयदत्तणिदं शेषसाद्यध्रुवबंधंगळनुळ्ळु-दक्कुमेकेंदोडे उत्तरभवदायुष्यमनोम्में मोदल्गोंडु कट्टुगुमप्पुदरिदं। सादिबंधमनुळ्ळुदुमक्कुं अंतर्म्मुहूर्त्तकालावसानबंधमनुळ्ळुदुमप्पुदरिदं अध्रुवबंधमुमनुळ्ळुदुमक्कुं—

णा।	दं।	वे।	मो।	आ।	ना।	गो।	अं।
४।	४।	३।	४।	०/० १ ।	४।	४।	४

अनंतरं सादिबंधादिगळ्गे लक्षणमं पेळ्दपरु।

सादी अबंधबंधे सेढि अणारूढगे अणादी हु।
अब्भवसिद्धम्मि धुवो भवसिद्धे अद्धुवो बंधो ॥१२३॥

सादिरबंधबंधे श्रेण्यनारूढे अनादिस्तु। अभव्यसिद्धे ध्रुवो भव्यसिद्धेऽध्रुवो बंधः ॥

सादिः सादिबंधमेंबुदु। अबंधबंधे कट्टदिद्दुं कट्टिदल्लियक्कुमेंतेंदोडे इदक्कुदाहरणं तोरल्प-डुगुं। ज्ञानावरणीयपंचकमं सूक्ष्मसांपरायं तन्न गुणस्थानचरमसमयदोळकट्टि उपशांतकषायनागि

सादिः अनादिः ध्रुवः अध्रुवश्चेति प्रकृतिबन्धश्चतुर्धा। तत्र ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयनामगोत्रांतरा-याणां प्रत्येकं चतुर्धा बन्धो भवति। वेदनीयं सादितः शेषत्रिविधो बन्धो भवति। सातापेक्षया तस्य गुणप्रति-पन्नेषु उपशमश्रेण्यारोहणावरोहणे च निरन्तरबन्धेन सादित्वासंभवात्। आयुः अनादिध्रुवाभ्यां शेषद्विविध-बन्धो भवति एकवारादिना बन्धेन सादित्वात् अन्तर्मुहूर्तावसाने च अध्रुवत्वात् ॥१२२॥ अथ तान् बन्धान् लक्षयति—

सादिबन्धः अबन्धपतितस्य कर्मणः पुनर्बन्धे सति स्यात्, यथा ज्ञानावरणपञ्चकस्य उपशान्तकषायाद-

प्रकृतिबन्धके चार भेद हैं—सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र, अन्तराय इनमें-से प्रत्येकका बन्ध चार प्रकार है। वेदनीयकर्मका सादिबन्ध नहीं है, शेष तीन बन्ध होते हैं। क्योंकि ऊपरके गुणस्थानोंमें वर्तमान जीवोंके उपशम श्रेणि आदिपर चढ़ने और उतरनेपर साताकी अपेक्षा वेदनीयका निरन्तर बन्ध होता रहता है अतः वेदनीयका सादिबन्ध सम्भव नहीं है। आयुका अनादि और ध्रुवके बिना शेष दो बन्ध होते हैं क्योंकि आयु एक पर्यायमें एक बारसे आठ बार तक बँधती है अतः सादि है और आयुका बन्ध एक बारमें अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यन्त ही होता है। अतः अध्रुव है ॥१२२॥

उन बन्धोंके लक्षण कहते हैं—

जिस कर्मका अबन्ध होकर बन्ध होता है उसके बन्धको सादि कहते हैं। जैसे ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त होता है अतः उपशान्त कषायमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्गुणस्थानदोळंतरिसिद तत्प्रकृतिबंधमनवरोहणदोळु सूक्ष्मसांपरायनागि कट्टिदोडल्लि सादिबंधमक्कुमप्पुदरिदं। श्रेण्यनारूढे यत्कर्म यस्मिन्गुणस्थाने व्युच्छिद्यते तदनंतरोपरितनगुणस्थानं श्रेणिः एंदिन्तु तत्सूक्ष्मसांपरायचरमसमयवर्त्तणिदं केळगे द्वितीयादि समयंगळोळ नादिबंधमें बुदक्कुं। तु मत्ते। अभव्यसिद्धे ध्रुवः अभव्यजीवनोळु ध्रुवबंधमक्कुमेतेंदोडादिमध्यावसानरहितमागि ज्ञानावरणादि निष्प्रतिपक्षकर्म्मंगळगे निरंतरबंधमुंटप्पुदरिदं। भव्यसिद्धे भव्यजीवं गळोळु अध्रुवबंधमक्कुमेतेंदोडे ज्ञानावरणादिकर्म्मंगळगे क्षपकश्रेण्यारोहणदोळमुपशमश्रेण्यारोहणदोळं सूक्ष्मसांपरायनोळु बंधव्युच्छित्तिगळागि मेलणुपशांतकषायादिगुणस्थानंगळोळु बंधरहितत्वमागुत्तं विरलु तद्ज्ञानावरणादिबंधक्कध्रुवत्वमक्कुमप्पुदरिदं ॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळोळु ध्रुवप्रकृतिगळगे साद्यादिचतुर्व्विधबंधमुमनध्रुवप्रकृतिगळगे साद्यध्रुवद्विविधबंधमेयक्कुमें बुदं पेळदपरु :—

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचऊ।
सत्तेतालधुवाणं चदुधा सेसाणयं तु दुधा ॥१२४॥

घातित्रयमिथ्यात्वकषायाः भयतेजोऽगुरुद्विकनिर्म्माणवर्णचत्वारि। सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवाणां चतुर्धा शेषाणां तु द्विधा ॥

घातित्रय ज्ञानावरण पंचकमुं ५ दर्शनावरणनवकमुं ९ अंतरायपंचकमुं ५। मिथ्यात्वप्रकृतियुं १। षोडशकषायंगळुं १६। भयजुगुप्साद्वयमु २ तैजसकार्म्मणशरीरद्वयमुं २ अगुरुलघूपघातद्वयमुं २

वतरतः सूक्ष्मसांपराये। यत्कर्म यस्मिन् गुणस्थाने व्युच्छिद्यते तदनन्तरोपरितनगुणस्थानं श्रेणिः तत्रानारूढे अनादिबन्धः स्यात्, यथा सूक्ष्मसांपरायचरमसमयादधस्तत्पञ्चकस्य। तु—पुनः अभव्यसिद्धे ध्रुवबन्धो भवति निष्प्रतिपक्षाणां बन्धस्य तत्रानाद्यनन्तत्वात्। भव्यसिद्धे अध्रुवबन्धो भवति। सूक्ष्मसांपराये बन्धस्य व्युच्छित्त्या तत्पञ्चकादीनामिव ॥१२३॥ अथोत्तरप्रकृतिष्वाह—

ज्ञानदर्शनावरणांतरायाणामेकान्नविंशतिः[1], मिथ्यात्वं, षोडशकषायाः, भयजुगुप्से तैजसकार्मणे अगुरु-

जानेपर उनके बन्धका अभाव हो जाता है और उपशान्त कषायसे उतरकर जो सूक्ष्मसाम्परायमें आता है उसके पुनः उनका बन्ध होता है वह बन्ध सादि है। जिस कर्मकी जिस गुणस्थानमें व्युच्छित्ति होती है उसके अनन्तरवर्ती ऊपरका गुणस्थान श्रेणि कहाता है उसपर जो नहीं चढ़ा है उसका बन्ध अनादि है। जैसे सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयसे नीचे ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध अनादि है। अभव्य जीवके ध्रुवबन्ध होता है क्योंकि जो प्रकृतियाँ प्रतिपक्षी प्रकृतियोंसे रहित हैं उनका बन्ध अभव्यके अनादि अनन्त होता है। भव्यजीवके अध्रुव बन्ध होता है जैसे सूक्ष्म साम्परायमें ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति हो जाती है ॥१२३॥

उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी उन्नीस, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय,

१. ब °रायैका°।

निम्माणनाममुं १ वर्णचतुष्कमुं ४ में दिन्तु ४७ ळु ध्रुव प्रकृतिगळ्गे साद्यनादि ध्रुवाध्रुवबंधचतुष्टयमु-मक्कुं। शेषाणां शेषवेदनीयद्वयमुं २ मोहनीयसप्तकमु ७। आयुश्चतुष्टयमुं ४ नामदोळ् गतिचतुष्टयमुं ४ जातिपंचकमुं ५ औदारिकद्वयमु २ वैक्रियिकद्वयमुं २ आहारकद्वयमुं २ संस्थानषट्कमुं ६ संहनन-षट्कमुं। आनुपूर्व्व्यचतुष्टयमुं ४। परघातमुं १ आतपमुं १ उद्योतमुं १ उच्छ्वासमुं १ विहायोगति-द्वयमुं २ त्रसद्वयमुं २ बादरद्वयमुं २ पर्य्याप्तद्वयमुं २ प्रत्येकसाधारणशरीरद्वयमुं २ स्थिरद्वयमुं २ शुभद्वयमुं २ सुभगद्वयमुं २ सुस्वरद्वयमुं २ आदेयद्वयमुं २ यशस्कीर्त्तिद्वयमु २ तीर्त्थमुमें दिन्तु ५८ गोत्रद्वितयमु २ मिन्तु ७३ अध्रुवप्रकृतिगळ्गे साद्यध्रुवबंधद्वयमक्कुमी प्रकृतिगळोळु अप्रतिपक्षं-गळें दुं सप्रतिपक्षंगळें दुं द्विप्रकारमप्पुवें दु पेळदपरु :—

सेसे तित्थाहारं परघादचउक्क सव्व आऊणि।
अप्पडिवक्खा सेसा सप्पडिवक्खा हु बासट्ठी ॥१२५॥

शेषे तीर्त्थमाहारद्वयं परघातचतुष्क सर्व्वायूंष्यप्रतिपक्षाणि शेषाणि सप्रतिपक्षाणि खलु द्वाषष्टिः ॥

ध्रुवप्रकृतिगळु ४७। कळेद शेषप्रकृतिगळु ७३। ववरोळु तीर्त्थमुमाहारद्वयमुं परघात-चतुष्कमायुष्यचतुष्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगळ् अप्रतिपक्षंगळप्पुवुळिद सातद्वयमुं २ स्त्रीपुंनपुंसक-वेदत्रयमुं ३ हास्यद्विकमु २ मरतिद्विकमुं २ गतिचतुष्टयमुं ४ जातिपंचकमुं ५ औदारिकद्विकमुं २

लघूपघातो निर्माणं वर्णचतुष्कं चेति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवाणां चतुर्वा बन्धो भवति। शेषाणां वेदनीयद्वयमोहनीय-सप्तकायुश्चतुष्कगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्वयवैक्रियिकद्वयाहारकद्वयसंस्थानषट्कसंहननषट्कानुपूर्व्यचतुष्क-परघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतिद्वयत्रसद्वयबादरद्वयपर्याप्तद्वयप्रत्येकद्वयस्थिरद्वय-शुभद्वयसुभगद्वयसुस्वरद्वया-देयद्वययशस्कीर्तिद्वयतीर्थंकरगोत्रद्वयानां त्रिसप्तत्यध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धौ भवतः ॥१२४॥ एतासु अप्रतिपक्षाः सप्रतिपक्षाश्चेति भिनत्ति—

ध्रुवेभ्यः शेषत्रिसप्तत्या तीर्थमाहारद्वयं परघातचतुष्कं आयुश्चतुकं चेत्येकादश अप्रतिपक्षा भवन्ति

जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णचतुष्क इन सैंतालीस ध्रुव प्रकृतियोंका चारों प्रकारका बन्ध होता है। शेष वेदनीय दो, मोहनीयकी सात, चार आयु, चार गति, पाँच जाति, औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा इनके अंगोपांग इस तरह दो-दो, छह संस्थान, छह संहनन, चार अनुपूर्वी, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, दो विहायोगति, त्रस स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, तीर्थंकर दो गोत्र इन तिहत्तर अध्रुव प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव बन्ध होता है ॥१२४॥

विशेषार्थ—जबतक व्युच्छित्ति नहीं होती तबतक ४७ प्रकृतियाँ प्रतिसमय बँधती हैं। इसीसे इन्हें ध्रुव कहा है। शेष ७३ का बन्ध कभी होता है कभी नहीं होता। अतः इन्हें अध्रुव कहा है।

आगे इनमें अप्रतिपक्ष और सप्रतिपक्ष भेद करते हैं—

ध्रुव प्रकृतियोंसे शेष तिहत्तर प्रकृतियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, चार आयु, परघात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकद्वयमुं २। संस्थानषट्कमुं ६ संहननषट्कमुं ६। विहायोगतिद्वयमुं २ त्रसद्वयमुं २ बादरद्वयमुं २ पर्य्याप्तद्वयमुं २ प्रत्येकशरीरद्वयमुं २ स्थिरद्वयमुं २ शुभद्वयमुं २ सुभगद्वयमुं २ सुस्वरद्वयमुं २। आदेयद्वयमुं २ यशस्कीर्त्तिद्वयमुं २ गोत्रद्वयमुं २ आनुपूर्व्यचतुष्टयमुं ४ मिन्तु द्विषष्टि प्रकृतिगळु ६२ सप्रतिपक्षंगळप्पुवनंतरमी शेषाध्रुवप्रकृतिगळु ७३ क्कं साद्यध्रुवबंधक्कुपपत्तियं तोरिदपरु :—

अवरो भिण्णमुहुत्तो तित्थाहाराण सव्वआऊणं ।
समओ छावट्ठीणं बंधो तम्हा दुधा सेसा ॥१२६॥

अवरो भिन्नमुहूर्तस्तीर्थाहाराणां सर्व्वायुषां समयः षट्षष्टीनां बंधस्तस्माद्द्विधा शेषा ॥

तीर्त्थंकरनामकर्म्मक्कमाहारद्वयक्कं सर्व्वायुष्यंगळुमिन्तु ७ प्रकृतिगळ्गे जघन्यदिदं निरंतरबंधाद्धे अंतर्म्मुहूर्तकालमक्कुं २७। शेषषट्षष्टिप्रकृतिगळ्गे ६६ जघन्यदिदं बंधकालमेकसमयमेयक्कुमदु कारणमागि ई शेष ७३ प्रकृतिगळ्ग ध्रुवंगळ्गे साद्यध्रुवबंधद्वितयं सिद्धमादुदु। यितु प्रकृतिबंधं समाप्तमादुदु।

शेषाः द्वाषष्टिः सप्रतिपक्षा भवन्ति। प्रकृतिप्रदेशबन्धनिबन्धनयोगस्थानानां चतसृभिः स्थित्यनुभागबन्धनिबन्धनतदध्यवसायानां षड्भिश्च वृद्धिहानिभिः परिवर्तनेन सातद्वयस्येव वेदत्रयादीनामपि परस्परं तथात्वसंभवात् ॥१२५॥ अध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धयोरुपपत्तिमाह—

तीर्थस्य आहारकद्वयस्य सर्वायुषां च जघन्येन निरन्तरबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तः २१। शेषषट्षष्टेश्च एक-

---

आदि चार ये ग्यारह प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षा हैं इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ नहीं हैं। शेष बासठ सप्रतिपक्षा हैं ॥१२५॥

विशेषार्थ—जो प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षा होती हैं उन प्रकृतियोंका जिस समय बन्ध होता है उस समय उनका अपना ही बन्ध होता है और जब बन्ध नहीं होता तब नहीं होता। जैसे तीर्थंकर प्रकृति अप्रतिपक्षा है जिस समय इसका बन्ध होता है उस समय इसका बन्ध होता है, नहीं होता तो नहीं होता। इसके बदलेमें बँधनेवाली प्रकृति नहीं है। किन्तु जो प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षा हैं उनमें-से एक समयमें किसी एकका बन्ध होता है, जैसे साता-असातावेदनीय सप्रतिपक्षा हैं उनमें-से एक समयमें एकका बन्ध अवश्य होता है। मोहनीयमें रति-अरति प्रतिपक्षी हैं। हास्य-शोक प्रतिपक्षी हैं, तीनों वेद परस्पर प्रतिपक्षी हैं। इनमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है। नामकर्ममें चार गति परस्पर प्रतिपक्षी हैं। पाँच जाति परस्पर प्रतिपक्षी हैं इनमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है। दो गोत्रोंमें-से एकका ही बन्ध एक समयमें होता है।

प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण योगस्थान है उनमें चतुःस्थानपतित वृद्धिहानिके द्वारा तथा स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्धके कारण अध्यवसाय स्थान हैं उनमें षट्स्थानपतित वृद्धिहानिके द्वारा परिवर्तन होता रहता है इसलिए साता-असाताकी तरह तीन वेद आदिमें भी परस्परमें प्रतिपक्षीपना होता है अतः उनमें-से भी कभी किसीका और कभी किसीका बन्ध होता है ॥१२५॥

अध्रुव प्रकृतियोंमें सादि और अध्रुवबन्ध ही क्यों होता है, यह बतलाते हैं—

तीर्थंकर, अहारक युगल और चारों आयुका निरन्तर बन्धकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त

सातादि सप्रतिपक्षंगळु तंतम्मोळु परस्परं प्रतिपक्षंगळें दरिवुदेकें दोडे प्रकृतिप्रदेशबंधनिबंधनयोग्यस्थानंगळगे चतुर्वृद्धिहानिगळिदमुं स्थित्यनुभागबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगमनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळगं षड्ढानिषड्वृद्धिगळिदं परावृत्तिवर्त्तनमुंटप्पुदरिदं ।

अनंतरं स्थितिबंधमं पेळलुपक्रमिसिमोदळोळु मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिबंधमं पेळ्दपरु ।

तीसं कोडाकोडी तिघादितदिएसु वीस णामदुगे ।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं ॥१२७॥

त्रिंशत्कोटीकोट्यस्त्रिघातित्रितयेषु विंशतिर्नामद्विके । सप्ततिर्मोहे शुद्धा उदधय आयुषस्त्रयस्त्रिंशत् ॥

त्रिघातितृतीयेषु ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयमन्तरायं वेदनीयमुमेंबी नाल्कुं मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिबंधं प्रत्येकं त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमप्रमितमक्कुं । विंशतिर्नामद्विके नामगोत्रद्वयक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं प्रत्येकं विंशतिकोटीकोटिसागरोपममात्रमक्कुं । मोहनीयदोळु सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितमुत्कृष्टस्थितिबंधमक्कुं । आयुष्यक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं शुद्धत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमक्कुमिल्लि शुद्धविशेषणं कोटीकोटिव्यवच्छेदकमक्कुमप्पुदरिद मूवत्मूरे सागरोपमंगळेंबुदर्थं । ज्ञा । सा ३० । को २ । द । सा ३० । को २ । वे । सा ३० । को २ । मो । सा ७० । को २ । आयु । सा ३३ । नाम । सा २० । को २ । गोत्र सा २० । को २ । अन्तरा । सा ३० । को २ ।

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळगे उत्कृष्टस्थितिबंधमं गाथाषट्कदिदं पेळ्दपरु :—

दुक्खतिघादीणोघं सादित्थीमणुदुगे तदद्धं तु ।
सत्तरि दंसणमोहे चरित्तमोहे य चत्तालं ॥१२८॥

दुःखत्रिघातीनामोघः सातः स्त्रीमानवद्विके तदर्द्धं तु । सप्ततिर्दर्शनमोहे चरित्रमोहे च चत्वारिंशत् ॥

समयः, ततः कारणात् तासामध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धौ सिद्धौ ॥१२६॥ इति प्रकृतिबन्धः समाप्तः । अथ स्थितिबन्धमुपक्रमन्नादौ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिमाह—

उत्कृष्टः स्थितिबन्धः कोटीकोटिसागरोपमाणि ज्ञानदर्शनावरणांतरायवेदनीयेषु त्रिंशत् । नामगोत्रयोः विंशतिः । मोहनीये सप्ततिः । आयुषि शुद्धानि कोटीकोटिविशेषणरहितानि सागरोपमाण्येव त्रयस्त्रिंशत् । अत्र शुद्धविशेषणं कोटीकोटिव्यवच्छेदार्थम् ॥१२७॥ अथोत्तरप्रकृतीनां गाथाषट्केनाह—

है। और शेष छियासठका निरन्तर बन्धकाल जघन्यसे एक समय है इस कारणसे उन तिहत्तर अध्रुव प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव बन्ध ही होता है यह सिद्ध हुआ ॥१२६॥

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध समाप्त हुआ।

आगे स्थितिबन्धको प्रारम्भ करते हुए प्रथम मूल प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं—

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीयका तीस कोडाकोडी सागर प्रमाण है। मोहनीयका सत्तर कोडाकोडि सागर प्रमाण है। आयुका शुद्ध अर्थात् कोडाकोडी विशेषणसे रहित तैंतीस सागर प्रमाण है। यहाँ शुद्ध विशेषण कोडाकोडीके व्यवच्छेदके लिए दिया है ॥१२७॥

आगे छह गाथाओंसे उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति ।
अट्ठरसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च ॥१२९॥

संस्थानसंहननानां चरमस्यौघः द्विहीनः आविपर्य्यन्तमष्टादशकोटीकोटचो विकलानां सूक्ष्मत्रयाणां च ॥

अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे ।
वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुतिचउक्के ॥१३०॥

अरतौ शोके षंढे तिर्य्यग्भयनरकतैजसौदारिकद्विके । वैक्रियिकातपद्विके नीचे त्रसवर्णागुरुत्रिचतुष्के ॥

इगिपंचिंदियथावरणिमिणासग्गमण अथिरछक्काणं ।
वीसं कोडाकोडीसागरणामाणमुक्कस्सं ॥१३१॥

एकपंचेंद्रियस्थावरनिर्म्माणसद्गमनास्थिरषट्कानां । विंशतिः कोटीकोटचः सागरनाम्नामुत्कृष्टः ॥

हस्सरदि उच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे ।
तस्सद्धमंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे ॥१३२॥

हास्यरत्युच्चपुरुषे स्थिरषट्के शस्तगमनदेवद्विके । तस्यार्द्धमन्तःकोटीकोटचः आहारतीर्थंकरे ॥

सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि ।
उक्कस्सट्ठिदिबंधो सण्णीपज्जत्तगे जोग्गे ॥१३३॥

सुरनारकायुषोरोघो नरतिर्य्यगायुषोस्त्रीणि पल्याणि । उत्कृष्टस्थितिबंधः संज्ञीपर्य्याप्तके योग्ये । गाथाषट्कं ॥

दुःखत्रिघातीनामोघः असातवेदनीयं ज्ञानावरणीयपंचकं दर्शनावरणीयनवकमन्तरायपंचकमितु विंशति प्रकृतिगळ्गे ओघः मूलप्रकृतिगळोळ्पेळ्द त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपममुत्कृष्टस्थितिबंधमक्कुं । प्रत्येकं दु १ घा १९ सा ३० को २ सातस्त्रीमानवद्विके सातवेदनीयस्त्रीवेदमनुष्यद्विकमेंबी नाल्कुं प्रकृतिगळ्गुत्कृष्टस्थितिबंधं तदर्द्धं पंचदशकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमक्कुं सा १ स्त्री १ म २ सा १५ को २ सप्ततिर्द्दर्शनमोहे दर्शनमोहनीयमिथ्यात्वप्रकृतिबंधदोळेकविधमप्पुदरिदमदक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं सप्तति

उत्कृष्टस्थितिबन्धः असातवेदनीयज्ञानदर्शनावरणान्तरायविंशतेः ओघः मूलप्रकृतिवत् त्रिंशत्कोटिकोटिसागरोपमाणि । सातवेदनीयस्त्रीवेदमनुष्यद्विकेषु तदर्धं पञ्चदशकोटीकोटिसागरोपमाणि । दर्शनमोहे मिथ्यात्वं

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असातावेदनीय तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण अन्तरायकी उन्नीस इन बीस प्रकृतियोंका 'ओघ' अर्थात् मूल प्रकृतियोंके समान तीस कोडाकोडि सागर प्रमाण है। सातवेदनीय स्त्रीवेद और मनुष्यगति मनुष्यानुपूर्वीका उससे आधा अर्थात् पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । दर्शनमोहमें बन्ध एक मिथ्यात्वका ही होता है अतः उसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागरोपमकोटीकोटिप्रमाणमक्कुं द० मिथ्या १ चरित्रमोहे च चत्वारिंशत् चारित्रमोहनीयक्कु-
सा ७० को २

त्कृष्टस्थितितिबंधं चत्वारिंशत्सागरोपमकोटीकोटिप्रमितमक्कुं चारि० कषा १६ संस्थानसंह-
सा ४० को २ ॥

नननानां संस्थानसंहननंगळोळगे चरमस्याघः कडेय हुंडसंस्थानासंप्राप्तसृपाटिकासंहननमेंब प्रकृति-
द्वयदकुत्कृष्टस्थितिबंधंमूलप्रकृतिगळोळ्पेळ्द ओघं विंशति कोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमक्कुं—
हुं १ असं १ शेषसंस्थानसंहननंगळगे आदिपर्य्यंतं समचतुरस्रसंस्थानवज्रऋषभनाराचसंहनन-
सा २० को २

पर्य्यंतं द्विकद्विकंगलोळ्क्रमदिदमुत्कृष्टस्थितिबंधं द्विहीनः द्विकोटीकोटिसागरोपमविहीनमप्पो-
घमक्कुं— वाम १ की १ कु १ अर्द्ध १ स्वाति १ नाराच १ न्य १ वज्र १ सम १ वज्र वृ १
सा १८ को २ सा १६ को १ सा १४ को २ सा १२ को २ सा १० को २

विकलानां सूक्ष्मत्रयाणां च विकलत्रयंगळगं सूक्ष्मत्रयंगळगमुत्कृष्टस्थितिबंधमष्टादशकोटीकोटि साग-
रोपम प्रमाणमक्कुं वि ३ सू ३ अरति शोक षंढवेद तिर्य्यग्द्विकभयद्विक नरकद्विक तैजसद्विक
सा १८ को २

औदारिकद्विक वैक्रियिकद्विक आतपद्विक नीचैर्गोत्र त्रसचतुष्क—(वर्णचतुष्क अगुरुलघुचतुष्क) एकेंद्रियजाति पंचेंद्रियजाति स्थावरनाम निर्माणनाम असद्गमननाम अस्थिर षट्कमुमेंबी ४१ प्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिबंधं विंशतिः कोटीकोटयः विंशतिकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं प्रत्येकमक्कुं— अरत्यादि ४१ हास्य रति उच्चैर्गोत्र पुरुषवेद स्थिरषट्क शस्तगमन देवद्विकमुमेंबी १३ प्रकृति-
सा २ को २०

बन्धे एकविधत्वात् तत्र सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि ७० । चारित्रमोहनीयषोडशकषायेषु चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमाणि । संस्थानसंहननानां चरमसंस्थानसंहननस्य मूलप्रकृतिवद् विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणि । शेषसंस्थानसंहननानां समचतुरस्रसंस्थानवज्रवृषभनाराचसंहननपर्यन्तं द्विद्विकोटीकोटिसागरोपमविहीन ओघः । विकलत्रयाणां चाष्टादशकोटीकोटिसागरोपमाणि । अरतिशोकषंढवेदतिर्यग्द्विकभयद्विकनरकद्विकतैजसद्विकौदारिकद्विकवैक्रियिकद्विकातपद्विकनीचैर्गोत्रत्रसचतुष्कवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कैकेंद्रियपञ्चेन्द्रियस्थावरनिर्माणासद्गमनास्थिरषट्कानां विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणि हास्यरत्युच्चैर्गोत्रपुंवेदस्थिरषट्कप्रशस्तगमनदेवद्विकानां

सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। चारित्र मोहनीयकी सोलह कषायोंका चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। संस्थान और संहननोंमें-से अन्तिम संस्थान और अन्तिम संहननका मूलप्रकृति नामकर्मकी तरह बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। शेष संस्थान और संहननोंका समचतुरस्रसंस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन पर्यन्त दो-दो कोड़ाकोड़ी सागर घटता हुआ है अर्थात् वामन संस्थान और कीलित संहननका अठारह, कुब्ज संस्थान और अर्धनाराच संहननका सोलह, स्वातिसंस्थान और नाराच संहननका चौदह, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान और वज्रनाराच संहननका बारह, तथा समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभ नाराच संहननका दस कोड़ाकोड़ी सागर है। विकलत्रयका अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अरति, शोक, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, भय, जुगुप्सा, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तैजस, कार्मण, औदारिक, औदारिक अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, आतप, उद्योत, नीचगोत्र, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात परघात उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति,

गळुत्कृष्ट) स्थितिबंधं तस्यार्द्धं दशकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमक्कुं हास्यादि १३ सा १० को २ आहारकद्वय-तीर्थमंबी प्रकृतित्रयक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं प्रत्येकं अन्तःकोटीकोटयः अन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितमक्कुं आ २ ती १ सा अन्तः को २ सुरनारकायुष्यंगळगे स्थितिबंधोत्कृष्टं ओघः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमक्कुं— सुरायु १ ना १ सागरोपम ३३ तिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळुत्कृष्टस्थितिबंधं त्रीणि पल्यानि त्रिपल्योपमप्रमाणमक्कुं— ति १ म १ पल्योपम ३ इंतुत्तरप्रकृतिगळु १२० क्कं पेळदीयुत्कृष्टस्थितिबंधंगळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकनोळप्पुवु। एकेंद्रियाद्यसंज्ञिपर्य्यन्तमादुवक्के मुंदे पेळदपरु। तत्तत्प्रकृतिबंधयोग्यनोळें-बिदरिंदमुत्कृष्टस्थितिबंधं संसारकारणमप्पुदरिंदमशुभमप्पुदरिंदं। शुभाशुभकर्म्मंगळगं चतुर्गतिय संक्लिष्टजीवंगळिंदं कट्टल्पडुगुमेंबुदर्त्थं—

असा १ घा १९ सा ३० को २ | सा १ स्त्री १ म २ सा १५ को २ | मि १ सा ७० को २
चारि १६ सा ४० को २ | हु १ अ १ सा २० को २ | वा १ कि १ सा १८ को २ | कु १ अर्द्ध १ सा १६ को २ | स्वा १ ना १ सा १४ को २ | न्य १ वज्र १ सा १२ को २
सम १ वज्र १ सा १० को २ | वि ३ सू ३ सा १८ को २ | अरत्यादि ४१ सा २० को २ | हास्यादि १३ सा १० को २ | आ २ ती १ सा. अन्तः को २
सु १ ना १ सा ३३ | तिर्य १ मनु १ पल्या ३ | अन्तु प्रकृति १२० ॥

अनंतरमी पेळद शुभाशुभप्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिबंधक्के संक्लेशपरिणाममे कारणं। तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुस्त्रयमं कळेदेंदु पेळदपरु :—

तस्यार्धं—दशकोटीकोटिसागरोपमाणि। आहारकद्वयतीर्थकृतोरन्तःकोटीकोटिसागरोपमाणि। सुरनरकायुषोः ओघः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। तिर्यग्मनुष्यायुषोः त्रीणि पल्यानि। अयमुत्कृष्टस्थितिबन्धः संज्ञिपर्याप्तस्यैव असंज्ञ्यंतानामग्रे प्ररूपणात्। योग्ये इत्यनेन अयं संसारकारणत्वात् अशुभत्वात् शुभाशुभकर्मणां चातुर्गतिकसंक्लिष्टैरेव बध्यते इत्यर्थः ॥१२८–१३३॥ आयुस्त्रयवर्जितशुभाशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिकारणं संक्लेश एवेत्याह—

अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति इनका बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। हास्य, रति, उच्चगोत्र, पुरुषवेद, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, प्रशस्त-विहायोगति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वीका उससे आधा अर्थात् दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। आहारकद्विक और तीर्थंकरका अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। देवायु नरकायुका ओघ अर्थात् तेतीस सागर प्रमाण है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका तीन पल्य है। यह उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संज्ञी पर्याप्तकके ही होता है। एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्तका आगे कहा है। 'योग्य' शब्दसे बतलाया है कि यह उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संसारका कारण और अशुभ है। अतः शुभ और अशुभ कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चारों गतियोंके संक्लेशपरिणामी जीवोंके द्वारा ही बाँधा जाता है ॥१२८–१३३॥

आगे कहते हैं कि तीन आयुको छोड़कर अन्य शुभ अशुभ सभी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका कारण संक्लेश ही है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु ॥१३४॥

सर्व्वस्थितीनामुत्कृष्टस्तूत्कृष्टसंक्लेशेन विपरीतेन जघन्यः आयुस्त्रयवर्जितानां तु ॥

तु मत्ते यो पेळ्द आयुस्त्रयवर्जितानां तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुर्व्वर्जितंगळप्प सर्व्वप्रकृतिगळ स्थित्युत्कृष्टंगळु उत्कृष्टसंक्लेशदिदं बंधंगळप्पुवु । तु मत्ते विपरीतेन उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामंगळिदं जघन्यस्थितिबंधंगळप्पुवु । तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळ्गे उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामदिदं उत्कृष्टस्थितिबंधंगळप्पुवु । तद्विपरीतपरिणामदिद जघन्यस्थितिबंधंगळप्पुवु—

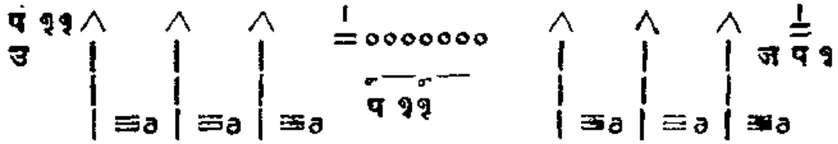

अनंतरमुत्कृष्टस्थितिबंधकके स्वामिगळं पेळ्दपरु :—

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठी दु बंधगो भणिदो ।
आहारं तित्थयरं देवाउं चावि मोत्तूण ॥१३५॥

सर्व्वोत्कृष्टस्थितीनां मिथ्यादृष्टिस्तु बंधको भणितः । आहारं तीर्त्थंकरं देवायुश्चापि मुक्त्वा ॥

आहारद्विकमुं तीर्त्थंकरनाममुं देवायुष्यमुमं कळेदुळिद ११६ रुं प्रकृतिगळ सर्व्वोत्कृष्टस्थितिगळ्गे तु मत्ते मिथ्यादृष्टिस्तु बंधको भणितः मिथ्यादृष्टिजीवने बंधकनेंदु अनादिनिधनार्षदोळु पेळल्पट्टनु । देवायुराहारद्विकतीर्त्थमेंबी ४ प्रकृतिगळ्गे सम्यग्दृष्टिबंधकनेंदु पेळल्पट्टं ॥

अनंतरं देवायुरादि ४ प्रकृतिगळ्गे बंधकरं पेळ्दपरु :—

तु—पुनः तिर्यग्मनुष्यदेवायुर्वर्जितसर्वप्रकृतिस्थितीनां उत्कृष्ट उत्कृष्टसंक्लेशेन भवति । तु—पुनः तासां जघन्यं उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन भवति । तत्त्रयस्य तु उत्कृष्टं उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन जघन्यं तद्विपरीतेन भवति ॥१३४॥ उत्कृष्टस्थितिबन्धकमाह—

आहारकद्विकं तीर्थं देवायुश्चेति चत्वारि मुक्त्वा शेष ११६ प्रकृतिसर्वोत्कृष्टस्थितीनां मिथ्यादृष्टिरेव बन्धको भणितः तच्चतुर्णां तु सम्यग्दृष्टिरेव ॥१३५॥ तत्रापि विशेषमाह—

तिर्यञ्चायु मनुष्यायु देवायुको छोड़कर सब प्रकृतियोंकी स्थितिका उत्कृष्टबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशसे होता है । तथा उनका जघन्यबन्ध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामसे होता है । तीनों आयुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामसे और जघन्यबन्ध उससे विपरीत परिणामोंसे होता है ॥१३४॥

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसके होता है, यह कहते हैं—

आहारकद्विक, तीर्थंकर और देवायु इन चारको छोड़कर शेष एक सौ सोलह प्रकृतियोंकी सर्वोत्कृष्ट स्थितियोंका बन्धक मिथ्यादृष्टिको ही कहा है । किन्तु इन चारका बन्धक सम्यग्दृष्टि ही है ॥१३५॥

उसमें भी विशेष कहते हैं—

---

१. °बन्धमाह ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाउगं पमत्तो अहारयमप्पमत्तविरदो दु ।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ ॥१३६॥

देवायुः प्रमत्तः आहारकमप्रमत्तविरतस्तु । तीर्थंकरं च मनुष्योऽविरतसम्यग्दृष्टिः समर्ज्जयति ॥

देवायुष्योत्कृष्टस्थितिबंधमं प्रमत्तसंयतं माळ्पनेकें दोडे देवायुष्यमप्रमत्तसंयतनोळु व्युच्छित्तियक्कुमप्पोडमल्लियुत्कृष्टस्थितिबंधमागदेकें दोडे—तीव्रविशुद्धनप्प सातिशयाप्रमत्तंगायुर्ब्बंधयोग्यपरिणामं संभविसदु । निरतिशयाप्रमत्तनोळुमुत्कृष्टायुस्थितिबंधं संभविसददु कारणदिं प्रमत्तसंयतने देवायुष्योत्कृष्टस्थितिबंधमनप्रमत्तगुणस्थानाभिमुखं विशुद्धं माळ्पनप्पुदरिदं । आहारकद्वयोत्कृष्टस्थितिबंधमं तु मत्ते प्रमत्तगुणस्थानाभिमुखनप्प संक्लिष्टाप्रमत्तं माळ्कुमेकें दोडायुस्त्रितयवर्ज्जित सर्व्वकर्म्मंगळगुत्कृष्टस्थितिबंधमुत्कृष्टसंक्लेशपरिणामदिंदमेयक्कुमप्पुदरिदं । तीर्त्थंकरनामकर्म्मक्कुत्कृष्टस्थितिबंधमं नरकगतिगमनाभिमुखनप्प मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिये माळ्कुं ॥

अनंतरमा ११६ प्रकृतिगळगुत्कृष्टस्थितितिबंधमं माळ्प मिथ्यादृष्टिगळं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपरु :—

णरतिरिया सेसाउं वेगुव्वियछक्कवियलसुहुमतियं ।
सुरणिरया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ॥१३७॥
देवा पुण एइंदिय आदावं थावरं च सेसाणं ।
उक्कस्ससंकिलिट्ठा चदुगदिया ईसिमज्झिमया ॥१३८॥ गाथाद्वयं

नरतिर्य्यंञ्चः शेषायुर्व्वैक्रियिकषट्कविकल सूक्ष्मत्रयं । सुरनारकाः औदारिकतिर्य्यग्द्विकोद्योतासंप्राप्तं ॥

देवायुः उत्कृष्टस्थितिकं प्रमत्त एवाप्रमत्तगुणस्थानाभिमुखो बध्नाति । अप्रमत्ते तद्व्युच्छित्तावपि तत्र सातिशये तीव्रविशुद्धत्वेन तदबन्धात्, निरतिशये च तदुत्कृष्टासंभवात् । तु—पुनः आहारकद्वयं उत्कृष्टस्थितिकं अप्रमत्तः प्रमत्तगुणस्थानाभिमुखः संक्लिष्ट एव बध्नाति आयुस्त्रयवर्जितानां उत्कृष्टस्थितेः उत्कृष्टसंक्लेशेन इत्युक्तत्वात् । तीर्थंकरं उत्कृष्टस्थितिकं नरकगतिगमनाभिमुखमनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिरेव बध्नाति ॥१३६॥ शेषाणां ११६ उत्कृष्टस्थितिबन्धकमिथ्यादृष्टीन् गाथाद्वयेनाह—

देवायुकी उत्कृष्टस्थिति अप्रमत्तगुणस्थानके अभिमुख प्रमत्तसंयत मुनि ही बाँधता है। यद्यपि देवायुके बन्धकी व्युच्छित्ति अप्रमत्तमें ही होती है तथापि सातिशय अप्रमत्तके तो तीव्रविशुद्ध परिणाम होनेसे देवायुका बन्ध ही नहीं है और निरतिशय अप्रमत्तके बन्ध तो होता है किन्तु उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। आहारकद्वयकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमत्त गुणस्थानके अभिमुख संक्लेश परिणामी, अप्रमत्त ही बाँधता है; क्योंकि तीन आयुको छोड़ शेष कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति उत्कृष्ट संक्लेशसे बँधती है ऐसा कहा है। तीर्थंकरकी उत्कृष्ट स्थिति नरकगतिमें जानेके अभिमुख असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही बाँधता है क्योंकि तीर्थंकरका बन्ध करनेवाले जीवोंमें उसीके तीव्र संक्लेश होता है ॥१३६॥

शेष एक सौ सोलह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक मिथ्यादृष्टियोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाः पुनरेकेंद्रियमातपं स्थावरं च शेषाणामुत्कृष्टसंक्लिष्टाश्चातुर्गतिकाः ईषन्मध्यमकाः ॥

नरतिर्य्यग्गतिद्वयमिथ्यादृष्टिगळु शेषनरतिर्य्यग्मनुष्यायुस्त्रितयक्कं वैक्रियिकषट्कक्कं विकलत्रयक्कं सूक्ष्मत्रयक्कमुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळ्परु । सुरनारकाः देवनारकमिथ्यादृष्टिगळु औदारिकद्वयक्कं तिर्य्यग्द्वयक्कं उद्योतनामक्कमसंप्राप्तसृपाटिकासंहननक्कमुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळ्परु । पुनर्द्देवाः मत्ते देवगतिय मिथ्यादृष्टिगळे एकेंद्रियजातिनाममनातपनाममं स्थावरनाममुमनुत्कृष्टस्थितिकंगळप्पुवन्तु बंधमं माळ्परु । शेषाणां ई कंठोक्तमागि पेळल्पट्ट २४ प्रकृतिगळं कळेदु शेष ९२ प्रकृतिगळुत्कृष्टसंक्लिष्टरुगळुमीषन्मध्यमकरुगळप्प चातुर्गतिकमिथ्यादृष्टिगळुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळ्परु ।

उत्कृष्ट	२४ ९२
देवाः	ए १ आ १ स्था १
सुरनार कौः	औ २ ति २ उ १ अ १
नरतिर्यं	वै ६ आ ३ वि ३ सू ३
म स्य	४
मि ध्या	११६

प ११	२२२	५४	५५	५६	५७	=a
प ११	२१८	५३	५४	५५	५६	=a
०	२१४	५२	५३	५४	५५	=a
२	२१०	५१	५२	५३	५४	=a
प ११	२०६	५०	५१	५२	५३	=a
०	२०२	४९	५०	५१	५२	=a
०	१९८	४८	४९	५०	५१	=a
०	१९४	४७	४८	४९	५०	=a
प ११	१९०	४६	४७	४८	४९	=a
०	१८६	४५	४६	४७	४८	=a
०	१८२	४४	४५	४६	४७	=a
२ ०	१७८	४३	४४	४५	४६	=a
प१	१७४	४२	४३	४४	४५	=a
	१७०	४१	४२	४३	४४	=a
प १	१६६	४०	४१	४२	४३	=a
प १	१६२	३९	४०	४१	४२	=a
स्थिति	=a	ज ई सि	मज्झिमम		उ	

इल्लि उत्कृष्टेषन्मध्यमसंक्लेशपरिणामंगळुपपत्तियं पेळ्वपरु :—

नरकतिर्यग्मनुष्यायूंषि वैक्रियिकषट्कं विकलत्रयं सूक्ष्मत्रयं चोत्कृष्टस्थितिकानि नराः तिर्यञ्चश्च बध्नन्ति औदारिकद्वयं तिर्यग्द्वयोद्योतासंप्राप्तसृपाटिकसंहननानि सुरनारका एव । एकेन्द्रियातपस्थावराणि पुनः देवाः । शेषद्वानवति उत्कृष्टसंक्लिष्टा ईषन्मध्यमसंक्लिष्टाश्च चातुर्गतिकाः । अत्रोत्कृष्टेषन्मध्यमसंक्लेशपरिणामोपपत्तिमाह—

नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, वैक्रियिकषट्क, विकलत्रय, सूक्ष्म आदि तीनकी उत्कृष्ट स्थिति मनुष्य और तिर्यञ्च बाँधते हैं। औदारिकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, उद्योत, असंप्राप्तसृपाटिका संहननकी उत्कृष्ट स्थिति देव और नारकी ही बाँधते है। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावरकी उत्कृष्टस्थिति देव बाँधते हैं। शेष बानबे प्रकृतिकी उत्कृष्टस्थिति उत्कृष्ट संक्लेशवाले या ईषत् मध्यम संक्लेशवाले चारों गतिके जीव बाँधते हैं। यहाँ उत्कृष्ट ईषत् मध्यम संक्लेश परिणामोंकी उपपत्ति कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उत्कृष्टसंक्लिष्टनप्प मिथ्यादृष्टिगं ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा ईषन्मध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिगं मेणु उक्कस्सट्ठिदिबंधो होदि उत्कृष्टस्थितिबंधमक्कुं। उक्कस्सट्ठिदिबंधपाओग्ग असंखेज्जलोगपरिणामाणं उत्कृष्टस्थितिबंधप्रायोग्यासंख्येयलोकपरिणामंगळ्गे पळिदोवमस्स असंखेज्जदि भागमेत्तखंडाणि कादूण पलितोपमासंख्येयभागमात्रखंडंगळं माडि तत्थ आ खंडंगळोळु चरिमखंडस्स चरमखंडक्के उक्कस्ससंकिळेसो णाम उत्कृष्टसंक्लेशव्यपदेशमक्कुं। पढमखंडस्स प्रथमखंडक्के ईसिसंकिळेसो णाम ईषत्संक्लेशव्यपदेशमक्कुं। दोण्हं विच्चाळखंडाणं तद्द्वयान्तरालखंडगळ्गे मज्झिमसंकिळेसो णामेत्ति उच्चदि मध्यमसंक्लेशमें ब व्यपदेशमक्कुमें दिन्तु पेळल्पट्टुदु। एवं सेससव्वट्ठिदिवियप्पेसु वत्तव्वं ई प्रकारदिंदमे शेषसर्वस्थितिविकल्पंगळोळु वक्तव्यमक्कुं। एत्थ सव्वपयडीसु इल्लि सर्व्वप्रकृतिगळोळु सगसगठिदिवियप्पो स्वस्वस्थितिविकल्पं उड्ढगच्छो होदि ऊर्द्धगच्छमक्कुं। तिर्य्यग्गच्छो पळिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि तिर्य्यग्गच्छमुं पलितोपमाऽसं(ख्येयभागमक्कु) गुणहाणि आयामो गुणहान्यायाममुं पळिदोवमस्सासंखेज्जदिभागो होदि पलितोपमासंख्येयभागमक्कुं। णाणागुणहाणिसळागाओ नानागुणहानिशलाकेगळुं पल्लछेदासंखेज्जदिभागे होदि पल्यच्छेदासंख्येयभागमक्कुं। अण्णोण्णब्भरासि अन्योन्याभ्यस्तराशियुं पळिदोवमस्सासंखेज्जदिभागो होदि पलितोपमासंख्येयभागमक्कुं। एत्थ अत्र अणुकड्ढिरयणाविहाणं अधापवत्तकरणंव वत्तव्वं इल्लि अनुकृष्टिरचनाविधानमधःप्रवृत्तिकरणवद्वक्तव्यमक्कुं। अदेंतेंदोडे—धनं ३०७२। पद १६। कदि १६। १६। संखेण ३ भाजिदे ३०७२।
२५६। ३

उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स—उत्कृष्टसंक्लिष्टमिथ्यादृष्टेः, ईसिमज्झिमपरिणामस्स—वा ईषन्मध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टेर्वा, उक्कस्सट्ठिदिबन्धो होदि—उत्कृष्टस्थितिबन्धो भवति उक्कस्सट्ठिदिबंधपाउग्गअसंखेज्जलोगपरिमाणं—उत्कृष्टस्थितिबन्धप्रायोग्यासंख्येयलोकपरिणामानां, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखण्डाणि कादूण पलितोपमासंख्येयभागमात्रखण्डानि कृत्वा, तस्य—तेषु खण्डेषु, चरमखण्डस्स—चरमखण्डस्य, उक्कस्ससंकिलेसो णाम—उत्कृष्टसंक्लेशव्यपदेशो भवति। पढमखण्डस्स—प्रथमखण्डस्य, ईसिसंकिलेसो णाम—ईषत्संक्लेशव्यपदेशो भवति। दोण्हं, विच्चालखण्डाणं—द्वयोरंतरालखण्डानां मज्झिमसंकिलेसो णामेत्ति उच्चदि—मध्यमसंक्लेशव्यपदेश इत्युच्यते। एवं सेससव्वट्ठिदिवियप्पेसु वत्तव्वं—एवं शेषसर्वस्थितिविकल्पेषु वक्तव्यं। एत्थ सव्वपयडीसु—अत्र सर्वप्रकृतिषु, सगसगट्ठिदिवियप्पो—स्वस्वस्थितिविकल्पः, उड्ढगच्छो होदि ऊर्ध्वगच्छो भवति। तिरियगच्छो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि—तिर्यग्गच्छः पलितोपमासंख्येयभागो भवति। गुणहाणि आयामो गुणहान्यायामः पलितोपमस्सासंखेज्जदिभागो होदि—पलितोपमासंख्येयभागो भवति। एत्थ अणुकट्ठिरयणाविहाणं अधापवत्तकरणं व वत्तव्वं—अत्रानुकृष्टिरचनाविधानं अधःप्रवृत्तकरणवद्वक्तव्यं। तद्यथा—

उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टिके अथवा ईषत् मध्यम परिणाम वाले मिथ्यादृष्टिके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। उत्कृष्टस्थितिबन्धके प्रायोग्य असंख्यात लोक परिणामोंके पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र खण्ड करके उन खण्डोंमें चरमखण्डका नाम उत्कृष्ट संक्लेश है और प्रथमखण्डको ईषत्संक्लेश नामसे कहते हैं। दोनोंके बीचके खण्डोंको मध्यमसंक्लेश कहते हैं। इसी प्रकार शेष सब स्थितिके विकल्पोंमें जानना। यहाँ सब प्रकृतियोंमें अपनी-अपनी स्थितिके विकल्प ऊर्ध्वगच्छ है और तिर्यग्गच्छ पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। गुणहानि आयाम पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। यहाँ अनुकृष्टि रचनाका विधान अधःप्रवृत्तकरणकी तरह कहना चाहिए जो इस प्रकार है—

पचयं ४ । व्येकपद १६ । अर्द्धं १५/२ घ्नचय १५/२ ४ । गुणो गच्छ १५/२ ४ । १६ । उत्तरधनं ४८० । चय धनहीनं द्रव्यं २५९२ । पदभजिदे । प्र १६ फ २५९२ । इ १ । लब्ध मादि धनं भवति

अङ्कसंदृष्टौ स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि द्वासप्तत्यधिकत्रिसहस्री ३०७२ स्थितिविकल्पाः षोडश १६ पदकृत्या २५६ संख्यातेन च ३ सर्वधने भक्ते ३०७२/२५६ । ३ चयो भवति ४ । व्येकपदार्धं १५/२ घ्नचयः १५/२ । ४ गुणो गच्छः १५/२ । ४ । १६ । ४८० चयधनं भवति । अनेन सर्वधनं ३०७२ ऊनयित्वा २५९२ पदेन १६ भक्तं सत् जघन्यस्थितिकारणपरिणामसंख्या भवति १६२ । अत्रैकचये ४ वृद्धे सति एकैकसमयाधिकद्वितीयादिस्थितिकारणपरिणामप्रमाणानि भवन्ति । पुनः अनुकृष्टिपदेन ४ ऊर्ध्वचये ४ भक्ते तिर्यक्चयो भवति १ । व्येकपदार्धं ३/२ घ्नचयः ३/२ । १ गुणो गच्छः ३/२ । १ । ४ चयधनं ६ भवति । अनेन जघन्यस्थितिकारणपरिणामप्रमाणं १६२ हीनं कृत्वा अनुकृष्टिगच्छेन भक्तं सत् प्रथमखण्डप्रमाणं स्यात् ३९ । अत्रैकैकतिर्यक्चये वृद्धे द्वितीयादिखण्डानि स्युः ४० । ४१ । ४२ । एवं शेषद्वितीयादिचरमपर्यन्तस्थितिपरिणामा अपि तिर्यग्रच-

---

जैसे जीवकाण्डमें गुणस्थानोंका कथन करते हुए सातिशय अप्रमत्तके अधःप्रवृत्तकरणका स्वरूप कहा है वैसे ही यहाँ अंकसंदृष्टिके कथन द्वारा जानना । जैसे वहाँ अंकसंदृष्टिमें सर्वधनका प्रमाण तीन हजार बहत्तर ३०७२ है वैसे ही यहाँ सर्व स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंका प्रमाण ३०७२ जानना । जैसे वहाँ ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण सोलह कहा, वैसे ही यहाँ विवक्षित कर्मकी जघन्य स्थितिसे लेकर एक-एक समय अधिक उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त जितने स्थितिके भेद हों उतना ऊर्ध्वगच्छ जानना । जैसे गच्छ १६ का वर्ग दो सौ छप्पन और संख्यात तीनका भाग सर्वधन ३०७२ में देनेपर चार पाये सो चयका प्रमाण चार है, वैसे ही यहाँ जो ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण कहा, उसका वर्ग करके संख्यातसे गुणा करें और उसका भाग सर्वधनमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना चय जानना । ऊर्ध्व रचनामें इतनी-इतनी वृद्धि जानना । जैसे एक कम गच्छ पन्द्रहका आधा करके उसे चयके प्रमाण चारसे गुणा करनेपर तीस होता है । उसे गच्छ सोलहसे गुणा करनेपर चार सौ अस्सी होता है । वही चय धनका प्रमाण है । उसे सर्वधन तीन हजार बहत्तरमें-से घटानेपर दो हजार पाँच सौ बानवे २५९२ शेष रहे । उसे गच्छ सोलहसे भाग देनेपर एक सौ बासठ पाये, सो प्रथम स्थान जानना । उसी प्रकार यहाँ जो गच्छका प्रमाण कहा उसमें एक कम करके तथा उसका आधा करके उसे चयसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसे गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना चयधन जानना । इस चयधनको सर्वधनमें-से घटाकर जो प्रमाण रहे उसमें गच्छके प्रमाणसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने अध्यवसाय स्थान जघन्य स्थितिबन्धके कारण हैं । तथा जैसे आदि स्थान एक सौ बासठमें एक चय चार मिलानेपर दूसरा स्थान एक सौ छियासठ होता है, वैसे ही यहाँ जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका जो प्रमाण कहा उसमें पूर्वोक्त चयका प्रमाण मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने अध्यवसाय-स्थान जघन्य स्थितिसे एक समय अधिक दूसरी स्थितिके बन्धके कारण होते हैं । उसमें एक चय मिलानेपर जघन्यसे दो समय अधिक तीसरी स्थितिके बन्धके कारण अध्यवसाय स्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६२। आदिम्मि च य उड्डे पडिसमयधणं तु भावाणं। १६६। १७०। १७४। इत्यादि विधानमं जीवकांडदोळे तनुकृष्टिविधानमंते अर्थसंदृष्टियोळुमरियल्पडुगुं ॥

यितव्याः। एवमर्थसंदृष्टावपि रचनां कृत्वा अधःप्रवृत्तकरणवदुपरितनस्थितिपरिणामखण्डानां अधस्तनस्थितिपरिणामखण्डैः सह संख्यया संक्लेशविशुद्धिभ्यां च सादृश्यादिकं वक्तव्यमित्यर्थः ॥ १३७–१३८ ॥

जानने। इस प्रकार उत्कृष्टस्थिति पर्यन्त एक-एक चय बढ़ाना चाहिए। जैसे अंक संदृष्टिमें १६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२ है वैसे ही जानना। तथा जैसे अंकसंदृष्टिमें तिर्यक् गच्छका प्रमाण चार है वैसे ही यहाँ तिर्यक्गच्छका प्रमाण पल्यका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण जानना। इस तिर्यक्गच्छको अनुकृष्टिगच्छ भी कहते हैं। सो जैसे अनुकृष्टिगच्छ चारका भाग ऊर्ध्वरचनामें चयके प्रमाण चारमें देनेपर एक आता है। वह एक अनुकृष्टिमें चय जानना। वैसे ही यहाँ अनुकृष्टि गच्छका प्रमाण पल्यका असंख्यातवाँ भाग कहा। उसका भाग पूर्वोक्त चयके प्रमाणमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना अनुकृष्टिका चय जानना। तथा जैसे अनुकृष्टिके गच्छ चारमें-से एक कम करके उसका आधा करके उसे चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर छह होते हैं वही अनुकृष्टिका चयधन होता है। उसको अनुकृष्टिके सर्वधन १६२ में-से घटानेपर एक सौ छप्पन १५६ रहे। उसमें अनुकृष्टिके गच्छ चारसे भाग देनेपर उनतालीस ३९ आते हैं वही प्रथम स्थानका प्रथम खण्ड है। वैसे ही यहाँ अनुकृष्टि गच्छमें-से एक घटाकर उसका आधा करके उसे अनुकृष्टि गच्छके चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अनुकृष्टिका चयधन जानना। उसे जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंके प्रमाणमें-से घटानेपर जो शेष रहे उसमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका प्रथम खण्ड जानना। इनकी

१.

प ११	२२२	५४	५५	५६	५७	≡a
१ ── ∩ ──	२१८	५३	५४	५५	५६	≡a
प ११	२१४	५२	५३	५४	५५	≡a
१ ── ∩ ──	२१०	५१	५२	५३	५४	०
प ११	२०६	५०	५१	५२	५३	०
००	२०२	४९	५०	५१	५२	०
००	१९८	४८	४९	५०	५१	०
१ ── ∩ ──	१९४	४७	४८	४९	५०	०
प ११	१९०	४६	४७	४८	४९	a
००	१८६	४५	४६	४७	४८	०
००	१८२	४४	४५	४६	४७	०
०	१७८	४३	४४	४५	४६	०
१ ──── / प १	१७४	४२	४३	४४	४५	०
१ ────	१७०	४१	४२	४३	४४	≡a
प १	१६६	४०	४१	४२	४३	≡a
प १	१६२	३९	४०	४१	४२	≡a
सिति						

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं मूलप्रकृतिगळ्गे जघन्यस्थितिबंधमं पेळ्दपरु :—

बारस य वेयणीये णामागोदे य अट्ठ य मुहुत्ता ।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥१३९॥

द्वादश वेदनीये नामगोत्रे चाष्टौ मुहूर्त्ताः । भिन्नमुहूर्त्ता तु स्थितिर्ज्जघन्या शेषपंचानां ॥

वेदनीयबोळु जघन्यस्थितिबंधं द्वादशमुहूर्त्तंगळप्पुवु । नामगोत्रं गळोळु प्रत्येकमष्टमुहूर्त्तंगळु जघन्यस्थितिबंधमक्कं । शेषपंचमूलप्रकृतिगळ्गे तु मत्ते जघन्यस्थितिबंधमन्तर्म्मुहूर्त्तमात्रं प्रत्येकमक्कुं । ज्ञा २१ । द २१ । वे । मु १२ । मो २१ आ २१ नाम मु ८ । गोत्र मु ८ । अं २१ ॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळ्गे गाथाचतुष्टयदिदं जघन्यस्थितिबंधमं पेळ्दपरु :—

लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओघं दुगेक्कदलमासं ।
कोहतिये पुरिसस्स य अट्ठ य वस्सा जहण्णठिदी ॥१४०॥

लोभस्य सूक्ष्मसप्तदशानामोघः द्वयेक दळमासः । क्रोधत्रये पुरुषस्य चाष्ट वर्षाणि जघन्यस्थितिः ॥

अथ मूलप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धानाह—

जघन्यस्थितिबन्धो वेदनीये द्वादश मुहूर्ताः, नामगोत्रयोरष्टौ, शेषपञ्चानां तु पुनः एकैकोऽन्तर्मुहूर्तः ॥१३९॥ अथोत्तरप्रकृतीनां गाथाचतुष्टयेनाह—

संज्ञा ईषत् है। तथा जैसे उनतालीसमें अनुकृष्टिका एक चय मिलानेपर चालीस होता है। यह दूसरा खण्ड है, उसमें एक चय मिलानेपर तीसरा खण्ड होता है इकतालीस, वैसे ही प्रथम खण्डमें अनुकृष्टिका चय मिलानेपर दूसरा खण्ड होता है। उसमें एक चय मिलानेपर तीसरा खण्ड होता है। इस प्रकार एक कम अन्तिम खण्ड पर्यन्त जितने खण्ड हों उनकी मध्यम संज्ञा है। तथा जैसे अन्तिम खण्ड बयालीस है वैसे ही यहाँ एक-एक चय मिलानेपर अन्तिम खण्डका जो प्रमाण हो उसकी उत्कृष्ट संज्ञा है। इस प्रकार जघन्य स्थिति सम्बन्धी परिणामोंके खण्ड कहे। तथा जैसे दूसरा स्थान एक सौ छियासठ है उसके चार खण्डोंमें ४०, ४१, ४२, ४३ प्रमाण कहा है। वैसे ही यहाँ भी जघन्यसे एक समय अधिक दूसरी स्थितिके कारण अध्यवसाय स्थानोंके खण्डोंका प्रमाण पूर्वोक्त विधानके अनुसार जानना। जैसे अन्तके स्थानमें दो सौ बाईस प्रमाण होता है और उसके खण्डोंका चौवन, पचपन, छप्पन, सत्तावन, ५४, ५५, ५६, ५७ प्रमाण होता है। उसी प्रकार यहाँ एक एक ऊर्ध्वचय बढ़ाते-बढ़ाते उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका जो प्रमाण होता है, उसके पूर्वोक्त विधानसे खण्ड करनेपर प्रथम खण्डकी ईषत् संक्लेश संज्ञा है। मध्यके खण्डोंकी मध्य संक्लेश संज्ञा है और अन्तके खण्डकी उत्कृष्ट संक्लेश संज्ञा है। अधःकरणकी तरह यहाँ भी नीचेकी स्थितिके कारण अध्यवसाय और उनके ऊपरकी स्थितिके कारण अध्यवसायोंमें संख्या, संक्लेश और विशुद्धिसे समानपना जानना। इसीका नाम अनुकृष्टि है ॥१३७-१३८॥

मूल प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध कहते हैं—

जघन्य स्थितिबन्ध वेदनीयमें बारह मुहूर्त है, नाम और गोत्रमें आठ मुहूर्त है। शेष पाँच कर्मोंमें एक-एक अन्तर्मुहूर्त है ॥१३९॥

लोभकषायक्केयुं सूक्ष्मसांपरायन बंधप्रकृतिगळु १७ क्कं मूलप्रकृतिगळगे पेळदोघं जघन्यस्थितिबंधमक्कुं। क्रोधमानमायात्रयक्के यथाक्रमदिदं द्विमासमुमेकमासमुमर्द्धमासमुमक्कुं। पुरुषवेदक्के जघन्यस्थितिबंधमष्टवर्षंगळप्पुवु ॥

तित्थाहाराणंतोकोडाकोडीजहण्णठिदिबंधो ।
खवगे सगसगबंधणछेदणकाले हवे णियमा ॥१४१॥

तीर्थाहाराणामंतःकोटीकोटिर्जघन्यस्थितिबंधः । क्षपके स्वस्वबंधच्छेदनकाले भवेन्नियमात् ॥

तीर्त्थनामप्रकृतिगमाहारद्वयक्कं जघन्यस्थितिबंधमन्तःकोटीकोटिसागरोपममक्कुमी प्रकृतिगळगे जघन्यस्थितिबंधंगळु क्षपकरोळु तंतम्म बंधव्युच्छित्तिकालदोळे तंतम्म गुणस्थानचरमदोळे नियमदिंदमप्पुवु ॥

भिण्णमुहुत्तो णरतिरिआऊणं वासदससहस्साणि ।
सुरणिरय आउगाणं जहण्णओ होदि ठिदिबंधो ॥१४२॥

भिन्नमुहूर्त्तो नरतिर्य्यगायुषोः वर्षदशसहस्राणि। सुरनारकायुषोः जघन्यो भवति स्थितिबंधः ॥

मनुष्यायुष्यक्कं तिर्य्यगायुष्यक्कं जघन्यस्थितिबंधमन्तर्म्मुहूर्त्तमक्कुं। सुरायुष्यक्कं नरकायुष्यक्कं जघन्यस्थितिबंधं दशसहस्रवर्षंगळप्पुवु ॥

सेसाणं पज्जत्तो बादरएइंदियो विसुद्धो य ।
बंधदि सव्वजहण्णं सगसग उक्कस्सपडिभागे ॥१४३॥

शेषाणां पर्य्याप्तो बादर एकेन्द्रियो विशुद्धश्च बध्नाति सर्व्वजघन्यां स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागे ॥

लोभस्य सूक्ष्मसांपरायबन्धसप्तदशानां च जघन्यस्थितिबन्धः मूलप्रकृतिवद्भवति, क्रोधस्य द्वौ मासौ, मानस्यैकमासः, मायाया अर्धमासः, पुंवेदस्याष्टवर्षाणि ॥१४०॥

तीर्थंकराहारकद्विकयोरन्तःकोटीकोटिसागरोपमाणि । अयं जघन्यस्थितिबन्धः सर्वोऽपि क्षपकेषु स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिकाले एव नियमाद् भवति ॥१४१॥

नरतिर्यगायुषोर्जघन्यस्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तो भवति, सुरनारकायुषोः दशसहस्रवर्षाणि ॥१४२॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध चार गाथाओंसे कहते हैं—

लोभ और सूक्ष्म साम्परायमें बँधनेवाली सतरह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध मूल प्रकृतिकी तरह होता है। अर्थात् यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका आठ मुहूर्त, सातावेदनीयका बारह मुहूर्त, शेषका एक-एक अन्तर्मुहूर्त जानना। क्रोधका दो मास, मानका एक मास, मायाका अर्धमास और पुरुषवेदका आठ वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध होता है ॥१४०॥

तीर्थंकर और आहारकद्विकका अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। यह सब जघन्यस्थितिबन्ध क्षपक श्रेणीवालोंके अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके कालमें नियमसे होता है ॥१४१॥

मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा देवायु, नरकायुका दस हजार वर्ष होता है ॥१४२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधप्रकृतिगळु १२० रोळगे जघन्यस्थितिबंधं कंठोक्तमागि २९ प्रकृतिगळ्गे पेळल्पट्टुविन्तु-ळिद ९१ प्रकृतिगळोळु वैक्रियिकषट्कमं कळेवुळिद ८५ रोळं मिथ्यात्वप्रकृतियुमं कळेदु शेष ८४ प्रकृतिगळ्गे जघन्यस्थितियं बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवं सर्व्वजघन्यमं कट्टुगुमेकेंदोडा एकेंद्रियजीवंगा प्रकृतिगळु बंधयोग्यं गळप्पुदरिंदमन्तु कट्टुत्तलुमा प्रकृतिगळ्गे स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागेयोळु कट्टुगुं त्रैराशिकविधानदिदं कट्टुगुमें बुदत्थंमेकेंदोडधिकागमननिमित्तं भागहारः। प्रतिभागहारः एंदिन्तु प्रतिभागहारविधानमुंटप्पुदरिंदं— ज लो १ ज्ञा ५ वि ५ द ४ ज स १ उच्च १ वे १ को १

२१ २१ मु ८ मु १२ मा २

मा १ माया १ पुं १ ति १ आ २ म १ ति १ सु १ ना १ उक्त २९ शेष

मा १ १

मा २ वर्ष ८ सा अन्तः को २ २१ वर्ष १००१० ९१

अनन्तरमी शेषप्रकृतिगळ्गे स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागदिदं जघन्यस्थितिबंधमं साधिसुवुपायमं पेळ्वपरु :—

एयं पणकदि पण्णं सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो ।
इगिविगलाणं अवरं पल्लासंखूणसंखूणं ॥१४४॥

एकः पंचकृतिः पंचाशत् शतं सहस्रं च मिथ्यात्वोत्कृष्टबंधः। एकविकलानामवरः पल्या-संख्योनः संख्योनः ॥

एकेंद्रियजीवंगलु मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमनेकसागरोपममं माळ्पुवु। द्वींद्रिय-जीवंगळुमा मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं पंचविंशतिसागरोपममं माळ्पुवु। त्रींद्रियजीवंगळुमा

उक्ताभ्यः २९ शेषप्रकृतीनां ९१ मध्ये वैक्रियिकषट्कमिथ्यात्वरहितानां ८४ जघन्यस्थितिं बादरैकेन्द्रिय-पर्याप्तः तद्योग्यविशुद्ध एव बध्नाति स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागेन त्रैराशिकविधानेनेत्यर्थः ॥१४३॥ तद्यथा —

[2]एकेन्द्रिया मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितिमेकसागरोपमं बध्नन्ति, द्वींद्रियाः पञ्चविंशतिसागरोपमाणि, त्रीन्द्रियाः

उक्त २९ प्रकृतियोंसे शेष रही ९१ प्रकृतियोंमें-से वैक्रियिकषट्क और मिथ्यात्वके बिना ८४ की जघन्य स्थितिको बादर एकेन्द्री पर्याप्त उसके योग्य विशुद्धताका धारक होकर बाँधता है। सो अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिके प्रतिभाग द्वारा त्रैराशिक विधानके अनुसार बाँधता है ॥१४३॥

वही कहते हैं—

एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण बाँधते हैं। दो-इन्द्रिय

---

१. ब °प्त एक।

२.

	एकें	द्वीं	त्रीं	चतुः	असं	संज्ञि
उ	सा १	सा २५	सा ५०	सा १००	सा १०००	सा ७० को १
ज	सा १	सा २५	सा ५०	सा १००	सा १०००	सा अतः को २
	०—२ / प / a	०—२ / प / १।४	०—२ / प / १।३	०—२ / प / १।२	०—२ / प / १	

मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं पंचाशत्सागरोपममं माळ्पुवु । चतुरिंद्रियजीवंगळुमा मिथ्यात्व-प्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं शतसागरोपमंगळं माळ्पुवु । असंज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळुमा मिथ्यात्व-प्रकृतिगे उत्कृष्टस्थितिबंधमं सहस्रसागरोपमंगळं माळ्पुवु । संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळु सप्तति-कोटीकोटिसागरोपमंगळनुत्कृष्टस्थितिबंधमं मिथ्यात्वप्रकृतिगे माळ्परिंती एकविकलेंद्रियजीवंग-ळी मिथ्यात्वप्रकृतिगे जघन्यस्थितिबंधमं क्रमदिनेकेंद्रियजीवंगळु पल्यासंख्येयभागोनमुं द्वींद्रियादि-जीवंगळु मिथ्यात्व प्रकृतिगे जघन्यस्थितिबंधमं पल्यासंख्येयभागोनक्रमदिदं माळ्परु :—

	एकें	द्वींद्रि	त्रीं	चतु	असं	संज्ञि
उ	सा १	सा २५	सा ५०	सा १००	सा १०००	सा ७० को २
ज	सा १२	सा २५२	सा ५०२	सा १००२	सा १०००२	सा अन्तः को २
	प / a	प १ / ७४	प / ७ । ३	प – । / ७ । २	प – । / ७	

तदनंतरं मुंपेळ्वुत्कृष्टस्थितिबंधमं संज्ञिपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टि माळ्पनें‌दु पेळल्पडुवरिनोगळे-केंद्रियादिजीवंगळगुत्कृष्टस्थितिबंधमुमं जघन्यस्थितिबंधमुमं पेळ्वल्लि त्रैराशिकविधानदिदं पेळ्दपरवें‌तेंदोडे[1] :—

जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं ।
इदि संपादे सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी ॥१४५॥

यदि सप्ततेरेतावन्मात्रं किं भवति त्रैंशत्कादीनां । इति संपाते शेषाणामेकविकलेषूभय-स्थितिः ॥

पञ्चाशत्सागरोपमाणि, चतुरिन्द्रियाः शतसागरोपमाणि, असंज्ञिनः सहस्रसागरोपमाणि, संज्ञिनः पर्याप्ता एव सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि । तज्जघन्यस्तु एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादीनां स्वस्वोत्कृष्टात्पल्यासंख्येयभागोनक्रमो भवति ॥१४४॥ तत्संश्युत्कृष्टेन एकेन्द्रियादीनामुत्कृष्टजघन्यावाह—

पच्चीस सागर प्रमाण बाँधते हैं। त्रीन्द्रिय पचास सागर प्रमाण बाँधते हैं। चौइन्द्रिय सौ सागर प्रमाण बाँधते हैं। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय एक हजार सागर प्रमाण बाँधते हैं। संज्ञीपर्याप्त ही सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बाँधते हैं। तथा मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रिय अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे पल्यके असंख्यातवें भाग कम बाँधता है। और शेष द्वीन्द्रिय आदि अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे पल्यके संख्यातवें भाग हीन बांधते हैं ॥१४४॥

आगे संज्ञी पञ्चेन्द्रियके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा एकेन्द्रियादिके उत्कृष्ट और जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण कहते हैं—

---

१. ई रचनेयोलु जघन्यस्थितियोलिदे रूपन्यूनते मंदे "जेट्ठबाहोवट्टिय" एंब गाथाव्याख्यानदोलु व्यक्तमादपुदु= उक्कस्सट्ठिदीबंधो सण्णि पज्जत्तगे जोग्गे इति गाथांतेन । सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठीदु बंधको भणिदो । इति गाथांशेन प्रागुक्तत्वात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि एत्तलानुं सप्ततेः सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमक्के एतावन्मात्रं यितु प्रमाणं स्थितिबंधमक्कुमप्पोडागळु तीसियादीणं तीसियादिगळगे किं भवति एनितु स्थितिबंधमक्कुं इति इंतिगें दु संपाते अनुपातत्रैराशिकं माडल्पडुत्तिरलु तीसियासीदिगळगमवल्लद शेषाणां शेषोत्तरप्रकृतिगळगेयुं । १८ । १६ । १५ । १४ । १२ । १० कोटीकोटिसागरोपम स्थितिबंधमनुळ्ळुवक्कं यथायोग्यंगळगे एकविकलेषु एकेंद्रियविकलेंद्रियजीवंगळोळु उभयस्थितिः उत्कृष्टस्थितिबंधमु जघन्यस्थितिबंधमुमरियल्पडुवुवदें तें दोडे सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिबंधमनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे एकेंद्रियजीवनों दु सागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागळा एकेंद्रियजीवं षोडशकषायचालीसीयंगळगेनितुं स्थितियं कट्टुगुमें दिन्तनुपातत्रैराशिकं माडि प्र सा ७० को २ । फ सा १ । इ । सा ४० । को २ । गे वंद लब्धमेकेंद्रियजीवं चालीसियंगळगे कट्टुउ उत्कृष्टस्थितिबंधप्रमाणमेकसागरोपमचतुःसप्तभागमक्कुं सा ४/७ मत्तमेंप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपमस्थितिबंधमनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे एकेंद्रियजीवनेकसागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागळा जीवं । असात १ घाति १९ अन्तु विंशतितीसिय प्रकृतिगळगेनितु स्थितियं कट्टुगुमें दिन्तु अनुपातत्रैराशिकमं माडि । प्र सा ७० को २ । फ सा १ । इ सा ३० को २ । लब्धमेकेंद्रियजीवं तीसियंगळगे कट्टुववुत्कृष्टस्थितिबंधप्रमाणमेकसागरोपमत्रिसप्तभागमक्कु सा ३/७ मत्तमेंप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपममुत्कृष्टस्थितिबंधमनुळ्ळ

सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमोत्कृष्टस्थितिकमिथ्यात्वस्य यद्येकसागरोपममात्रं बध्नाति तदा तीसियादीनां किं भवति ? इति लब्धः एकेन्द्रियस्य उत्कृष्टस्थितिबन्धः चालीसियानां षोडशकषायाणां एकसागरोपमचतुःसप्तभागः सा ४/७ । अनेन त्रैराशिकक्रमेण तीसियानामसातवेदनीयैकान्नविंशतिघातिनां एकसागरोपमत्रिसप्तभागः सा ३/७ । वीसियानां हुण्डासंप्राप्तसृपाटिकाऽरतिरतिशोकषंढवेदतिर्यग्द्विकभयद्विकतैजसद्विकौदारिकद्विकातपद्विकनीचै-

---

सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले मिथ्यात्वका यदि एकेन्द्रिय जीव एक सागर प्रमाण बन्ध करता है तो जिन कर्मोंकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर आदि प्रमाण स्थिति है उनका वह कितना बन्ध करता है ऐसा त्रैराशिक करना चाहिए। सो प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि एक सागर, इच्छाराशि जिस कर्मकी ज्ञात करना हो उसकी स्थिति तीस, चालीस, बीस आदि कोड़ाकोड़ी सागर। यहाँ फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी-उतनी उत्कृष्ट स्थिति उस कर्मकी एकेन्द्रिय जीव बाँधता है। सो सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है। इसको पूर्वोक्त प्रकार इच्छाराशि एक सागरसे गुणा करके उसमें प्रमाणराशि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरसे भाग देनेपर लब्ध एक सागरके सात भागोंमें-से चार भाग प्रमाण स्थिति एकेन्द्रियके बँधती है। इसी प्रकार तीस कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थितिवाले असातवेदनीय तथा घातिया कर्मोंकी उन्नीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सात भागोंमें-से तीन भाग होता है। बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, अरति, रति, शोक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्वप्रकृतिगेकेंद्रियजीवनेकसागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागळा जीवं हुंडसंस्थानमुमसंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुमरतिशोकषंढवेदतिर्य्यग्द्विकक भयद्विक तैजसद्विक औदारिकद्विक आतपद्विक नीचैर्ग्गोत्र त्रसचतुष्क वर्णचतुष्क अगुरुलघुउपघातपरघातउच्छ्वास एकेंद्रियपंचेंद्रियस्थावरनिर्म्माण असद्गमन अस्थिरषट्कमें ब ३९ प्रकृतिगळु विसियंगळगेनितुं स्थितियं कट्टुगुमें दितनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र सा ७० को २। फ सा १। इ सा २० को २। गळगे लब्धमेकेंद्रियजीवं विसियंगलगे कट्टुवुत्कृष्टस्थितिबंधप्रमाणमेकसागरोपमद्विसप्तमभागमक्कु— सा $\frac{२}{७}$ मी प्रकारदिवं शेष सात स्त्रीवेद मनुष्ययुगळंगळ। सा १५ को २। स्थितिगं। वामन कीलित विकलत्रय सूक्ष्मत्रयंगळ सा १८ को २ स्थितिगं। कुब्जार्द्धनाराचंगळ सा १६ को २ स्थितिगं। स्वातिनाराचंगळ सा १४ को २ स्थितिगं। न्यग्रोधवज्रनाराचंगळ सा १२ को २ स्थितिगं। समचतुरस्रवज्रऋषभनाराचहास्यरतिउच्चैर्ग्गोत्रपुरुषवेदस्थिरषट्क सद्गमनमें ब १३ प्रकृतिगळ सा १० को २ स्थितिगमिन्तु तिर्य्यग्गतिसंबंधिबंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७। रोळगे वैक्रियिकषट्कमुं सुरनारकायु-

---

र्गोत्रत्रसचतुष्कवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासैकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियस्थावरनिर्माणासद्गमना-स्थिरषट्कानां ३९ एकसागरोपमद्विसप्तभागो भवति सा $\frac{२}{७}$। पुनः अनेन संपातत्रैराशिकक्रमेण शेषाणां सागरपञ्चदशकोटीकोटिस्थितिसातस्त्रीवेदमनुष्ययुग्मानां सागराष्टादशकोटीकोटिस्थितिवामनकीलितविकलत्रयसूक्ष्मत्रयाणां सागरषोडशकोटीकोटिस्थितिकुब्जार्धनाराचयोः सागरचतुर्दशकोटीकोटिस्थितिस्वातिनाराचयोः सागरद्वादशकोटीकोटिस्थितिन्यग्रोधवज्रनाराचयोः सागरदशकोटीस्थितिसमचतुरस्रवज्रर्षभनाराचहास्यरत्युच्चैर्गोत्रपुंवेदस्थिरषट्कसद्गमनानां च उत्कृष्टस्थितिबन्धं एकेन्द्रियस्य साधयेत्। एकं पञ्चविंशतिं पञ्चाशतं शतं सहस्रं सागरोपमाणि चतुरः फलराशीन् कृत्वा चालीसियादीनि पृथक् पृथक् इच्छाराशीन् कृत्वा प्रमाणराशिं प्राक्तनमेव कृत्वा

नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, आतप, उद्योत, नीचगोत्र, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, वर्णादिचार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि छह इन ३९ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सात भागोंमें-से दो भाग प्रमाण होता है। इसी त्रैराशिकके क्रमसे शेष पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले सातवेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यद्विक आदिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सत्तर भागोंमें-से पन्द्रह भाग प्रमाण होता है। अठारह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले वामन संस्थान, कीलितसंहनन, विकलत्रय, सूक्ष्मत्रिकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सत्तर भागोंमें-से अठारह भाग प्रमाण होता है। सोलह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले कुब्जक संस्थान, अर्धनाराचसंहननका एक सागरके सत्तर भागोंमें-से सोलह प्रमाण, चौदह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्टस्थितिवाले स्वातिसंस्थान, नाराच संहननका एक सागरके सत्तर भागोंमें चौदह भाग प्रमाण, बारह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले न्यग्रोधसंस्थान और वज्रनाराच संहननका एक सागरके सत्तर भागोंमें-से बारह भाग प्रमाण, दस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले समचतुरस्र संस्थान वज्रर्षभ नाराच संहनन, हास्य, रति, उच्चगोत्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विकमुमेंब अयोग्यप्रकृत्यष्टकमं कळेदुळिद १०९ प्रकृतिगळ्गी प्रतिभागक्रमदिदं उत्कृष्टस्थितिबंध-मनेकें द्रियजीवंगळ्गे साधिसिदन्ते द्वींद्रियादिगळ्गं साधिसल्पडुवुदु । संदृष्टिरचने

		ए	द्वीं	त्रीं	चतु	असं
उ	चाळीसि	सा ४/७	सा २५ । ४/७	सा ५० ४/७	सा १०० ४/७	सा १००० ४/७
उ	तीसि	सा ३/७	सा २५ । ३/७	सा ५० ३/७	सा १०० ३/७	सा १००० ३/७
उ	विसि	सा २/७	सा २५ । २/७	सा ५० २/७	सा १०० २/७	सा १००० २/७

लब्धानि द्वीन्द्रियादीनां चालीसियादिगतोत्कृष्टस्थितिबन्धप्रमाणानि भवन्ति । एवं जघन्यस्थितिबन्धमप्येकेन्द्रियादीनां साधयेत् ॥१४५॥

पुरुषवेद, स्थिरादि छह और प्रशस्तविहायोगतिका उत्कृष्टस्थिति बन्ध एक सागरके सात भागोंमें-से एक भाग प्रमाण एकेन्द्रिय जीवके साधना चाहिए । इसी प्रकार पच्चीस, पचास, सौ और हजार सागर इन चारको फल राशि करके चालीस आदि कोड़ाकोड़ी सागरको पृथक्-पृथक् इच्छाराशि करके और प्रमाणराशि पूर्वोक्त सत्तर कोड़ाकोड़ीको करके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञि पञ्चेन्द्रियके क्रमसे पच्चीस, पचास, सौ और हजारसे गुणित उक्त एकेन्द्रियके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है ।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार जानना—

दो-इन्द्रिय जीवके सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाला मिथ्यात्व कर्म पच्चीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति लेकर बँधता है तो तीस आदि कोड़कोड़ी सागरकी स्थितिवाले कर्म दो-इन्द्रिय जीवके कितनी स्थिति लेकर बँधते हैं ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पच्चीस सागर और इच्छाराशि विवक्षित कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण, सो फलराशिसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी-उतनी उत्कृष्ट स्थिति दो-इन्द्रिय जीवके बँधती है । सो जिनकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनकी सौ सागरका सातवाँ भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बँधती है । जिनकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनकी पिचहत्तर सागरका सातवाँ भाग प्रमाण बँधती है । इसी प्रकार सब कर्मोंकी एकेन्द्रियसे पचीस गुनी उत्कृष्ट स्थिति दो इन्द्रियके बँधती है । तेइन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर प्रमाण बँधती है । अतः फलराशि पचास सागर करनेपर जो जो प्रमाण आवे उतनी स्थिति अन्य कर्मोंकी बँधती है । दो इन्द्रियकी फल राशि पच्चीस सागरसे तेइन्द्रियकी फलराशि दूनी

१.

		एकें	द्वीं	त्रीं	चतु	असं
उ	चाली	सा ४/७	सा २५ ४/७	सा ५० ४/७	सा १०० ४/७	सा १००० ४/७
उ	तीसि	सा ३/७	सा ५० ३/७	सा ५० ३/७	सा १०० ३/७	सा १००० ३/७
उ	बीसि	सा २/७	सा २५ २/७	सा ५० २/७	सा १०० २/७	सा १००० २/७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्तमी एकेंद्रियादिजीवंगळ्गे तंतम्म योग्योत्कृष्टस्थितिबंधप्रकृतिगळ्गे जघन्यस्थितिबंधमुमी प्रकारदिदं त्रैराशिकदिंदं साधिसल्पडुगुमादोडमा जघन्यस्थितिबंधमुं साधिसुवल्लि विशेषमुंटदाउदेंदोडे पेळल्पडुगु १० ॥

सण्णि असण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
जेट्ठे संखेज्जगुणा आवलिसंखं असंखभागहियं ॥१४६॥

संज्ञिन्यसंज्ञिचतुष्के एकेंद्रिये अंतर्मुहूर्तमाबाधा । ज्येष्ठायां संख्येयगुणा आवलिसंख्यमसंख्यभागाधिका ॥

संज्ञिजीवनोळु जघन्यस्थित्याबाधे अन्तर्मुहूर्तमात्रेयक्कु २११ मेकेंदोडे संज्ञिजीवंगे जघन्यस्थितिबंधमन्तःकोटीकोटिसागरोपममप्पुदरिंदमंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा एंबागमप्रमाणमुंटप्पुदरिंदं असंज्ञिचतुष्करोळु जघन्यस्थित्याबाधे संख्यातगुणहीनमागुत्तलुं तंतम्मुत्कृष्टगुणकारगुणितमक्कुमप्पुदरिंदमसंज्ञिजघन्यस्थित्याबाधे सहस्रगुणितान्तर्मुहूर्तमक्कुं । २१ । १००० । चतुरिंद्रियजघन्यस्थित्याबाधे शतगुणितान्तर्मुहूर्तमात्रेयक्कुं । २१ । १०० । त्रींद्रियजघन्यस्थित्याबाधे पंचाशद्गुणितान्तर्मुहूर्तमात्रेयक्कुं । २१ । ५० । द्वींद्रियजघन्यस्थित्याबाधे पंचविंशतिगुणितान्तर्मुहूर्तमात्रेयक्कुं । २१ । २५ । एकेंद्रियजघन्यस्थित्याबाधे अंतर्मुहूर्तमेयक्कुं । २१ । ई

तत्र संभवद्विशेषमाह—

संज्ञिजीवे जघन्याबाधाऽन्तर्मुहूर्ता २ १ १ तज्जघन्यस्थितेरन्तःकोटीकोटिसागरोपममात्रत्वेन तदाबाधाया अग्रे तत्प्रमाणप्ररूपणात् । असंज्ञिजीवे चतुरिन्द्रिये त्रीन्द्रिये द्वीन्द्रिये एकेन्द्रियेऽपि जघन्याबाधान्त-

---

है। अतः दो इन्द्रियके स्थितिबन्धसे तेइन्द्रियके सब कर्मोंका स्थितिबन्ध दूना-दूना जानना। चौइन्द्रियके प्रमाण राशि और इच्छाराशि पूर्वोक्त ही हैं किन्तु फल राशि सौ सागर है क्योंकि उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागर प्रमाण बँधती है। सो यहाँ भी फलराशि पूर्वोक्त फल राशिसे दूनी है। अतः तेइन्द्रियके स्थितिबन्धसे चौइन्द्रियका स्थितिबन्ध सब कर्मोंका दूना-दूना है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके भी प्रमाण राशि और इच्छाराशि तो पूर्वोक्त ही है किन्तु फलराशि एक हजार सागर है क्योंकि उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति हजार सागर प्रमाण बँधती है। सो यह फलराशि चौइन्द्रियकी फलराशिसे दसगुनी है। अतः चौइन्द्रियके स्थितिबन्धसे असंज्ञी पञ्चेन्द्रियका स्थितिबन्ध सब कर्मोंका दस-दस गुणा जानना। इसी प्रकार जघन्य स्थितिबन्ध भी त्रैराशिक विधान द्वारा जानना ॥१४५॥

जघन्य स्थितिबन्धके सम्बन्धमें विशेष बात कहते हैं—

संज्ञी जीवके जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है क्योंकि उसके जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता और इतनी स्थितिकी आबाधा आगे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही कही है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवमें तथा चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, दो इन्द्रिय और एकेन्द्रियमें भी जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त है किन्तु संज्ञीकी जघन्य आबाधासे इनकी आबाधा क्रमसे संख्यातगुणा हीन है। क्योंकि एकेन्द्रियकी जघन्य आबाधासे द्वीन्द्रियादिककी जघन्य आबाधा क्रमसे पच्चीस, पचास, सौ और हजार गुनी है अतः विपरीत क्रमसे संख्यातगुणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवंगळ उत्कृष्टस्थितिबंधाबाधे यथाक्रमदिदं संज्ञियोळु संख्येयगुणा तन्न जघन्यस्थित्याबाधेयं नोडलु संख्यातगुणमक्कुं । २११ । ४ । असंज्ञिचतुष्कदोळु क्रमदिदं द्वींद्रियपर्य्यंतं आवलिसंख्येयभागं संख्यातगुणहीनक्रमदिदं साधिकमक्कुमदेंतेंदोडे असंज्ञियुत्कृष्टस्थित्याबाधे तन्न जघन्यमं नोडलावळिसंख्येयभागाधिकमक्कुं । २१ । १००० । चतुरिंद्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे तत्संख्यातगुणहीनावलिसंख्येयभागाधिकं तन्न जघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयक्कु— २
११
२१ । १०० त्रींद्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे तत्संख्यातगुणहीनावलिसंख्येयभागाधिकस्वजघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयक्कुं २
१११
२१५० द्वींद्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे तत्संख्येय गुणहीनावलिसंख्येय भागाधिकस्वजघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयक्कुं २
१११
२१२५ एकेंद्रिये एकेंद्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे असंख्यभागाधिका तन्न जघन्यस्थित्याबाधेयं नोडलुत्कृष्टस्थित्याबाधे आवल्यसंख्येयभागाधिकमक्कुं २१ ॥ संज्ञियुत्कृष्टाबाधे उ २ ११ । ४
ज २ ११ । १ असंज्ञिगे उत्कृष्टाबाधे-

२ १ उ २१ । १००० ज २१ । १०००	चतु = २ ११ उ २ १ । १०० ज २ १ । १००	ति २ २१११ उ २११ ज २१ । ५०	द्वीं २ ११११ उ २१ २५ ज २१ २५	ए = २ a उ २१ । १ ज २१ । १

मुहूर्ता । एयं पणकदिपण्णं सयं सहस्समिति स्वस्वोत्कृष्टगुणकारगुणितत्वे संज्ञिजघन्याबाधातः संख्यातगुणहीनक्रमत्वे च तदालापस्यात्यजनात् । उत्कृष्टाबाधा तु स्वस्वजघन्यतः संज्ञिजीवे संख्यातगुणा । असंज्ञिचतुष्के संख्यातगुणहीनक्रमा आवलिसंख्येयभागाधिका । एकेन्द्रिये आवल्यसंख्येयभागाधिका च भवति ।

हीन कही है। उत्कृष्ट आबाधा अपनी-अपनी जघन्य आबाधासे संज्ञी जीवमें संख्यात गुणी, असंज्ञि पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय त्रीन्द्रिय, दो इन्द्रियके आवलीके संख्यातवें भाग अधिक और एकेन्द्रियके आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक है। यह उत्कृष्ट आबाधा भी क्रमसे संख्यातगुणा हीन है। एकेन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आबाधामें-से जघन्य आबाधाको घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उसमें एक मिलानेपर एकेन्द्रिय जीवकी आबाधाके भेद होते हैं। इसी प्रकार दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञीमें अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधामें-से अपनी-अपनी जघन्य आबाधाको घटाकर उसमें एक मिलानेसे आबाधाके भेदका प्रमाण होता है। कहा है आदिको अन्तमें-से घटाकर वृद्धिका भाग दे और एक

१.	संज्ञि	अ	चतु	त्रीं	द्वीं	ए
	२ १ १ । ४	२ १ २ १ १०००	२ १ १ २ १ । १००	२ १ १ १ २ १ ५०	२ १ १ १ १ २ १ २५	२ a २ १ १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई जघन्योत्कृष्टाबाधेगळ जघन्यमनुत्कृष्टदोळकळेवु आदियं २१। अन्त २१ दोळु कळेदोडे २ वृद्धि एकरूपदिंदं भागिसिदोड तावन्मात्रमेयक्कुं । रूपं कूडिदोडे २ स्थानविकल्पंगळिते द्वींद्रियादिगळगमरियल्पडुगुं द्वि १/२ १।४ त्रि १/२ १।३ च १/२ १।२ अस १/२ २११ सं २११।४ इवाबाधाविकल्पंगळु । इवं मनदोळवधरिसिदंगे बळिक्कं जघन्यस्थितिबंधमं साधिसुव करणसूत्रमं पेळ्वपरु :—

जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण ।
आबाहवियप्पहदेणेगूणेणूण जेट्ठमवरठिदी ॥१४७॥

ज्येष्ठाबाधापवर्तिता ज्येष्ठा आबाधाकांडकं तेनाबाधाविकल्पहतेनैकोनेनोनज्येष्ठा अवरस्थितिः ॥

इल्लि एकेंद्रियादि तंतम्मुत्कृष्टस्थित्याबाधेयिदं तंतम्मुत्कृष्टस्थितियं भागिसि दोडेकभागप्रमाणमदु आबाधाकांडकप्रमाणमक्कुमदनाबाधाविकल्पंगळ प्रमाणदिदं गुणिसि लब्धराशियोळेकरूपंकळेदुदनुत्कृष्टस्थितियोळकळेदोडे शेषं जघन्यस्थितियक्कुमदं तें दोडेकेंद्रियोत्कृष्टमिथ्यात्वप्रकृति-

---

आबाधाविकल्पास्तु एकेन्द्रिये आदी २१ अन्ते २ सुद्धे २ वड्ढि १ हिंदे रूवसंजुदे २ ठाणा । एवं २१

द्वीं	त्रींद्रिय	चतुरिंद्रिय	असं	संज्ञि
१–	१–	१–	१–	१–
२	२	२	२	
१।४	१।३	१।२	११	२११४

द्वीन्द्रियादावप्यानेतव्याः ॥१४६॥ अथैतत्सर्वं मनसि धृत्वा जघन्यस्थितिबन्धसाधनकरणसूत्रमाह—

एकेन्द्रियादीनां स्वस्वोत्कृष्टाबाधया भक्तस्वस्योत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकप्रमाणं भवति तेन काण्डकेन

मिलानेपर स्थानोंका प्रमाण होता है। सो यहाँ जघन्य आबाधा आदि है और उत्कृष्ट आबाधा अन्त है। अन्तमें-से आदिको घटाकर उसमें एक-एक समयकी वृद्धि होनेसे एकका भाग देकर एक मिलानेपर विकल्प होते हैं। इसी तरह दो इन्द्रिय आदिमें भी आबाधाके विकल्प लाने चाहिए ॥१४६॥

ये सब मनमें रखकर जघन्य स्थितिबन्धका साधक करण सूत्र कहते हैं—

एकेन्द्रियादिक जीवोंकी अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधासे अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह आबाधा काण्डकका प्रमाण होता है। उस आबाधाकाण्डकको आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करके जो प्रमाण आवे उसमेंसे एक कम करके अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिमें घटाने पर जो शेष रहे उतना अपना-अपना जघन्यस्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थित्याबाधेयिदु २/a/२१ इल्लिगावलिगावळियं तोरि रूपासंख्येयभागमं गुणकारभूतान्तर्म्मुहूर्त्तदं संख्यातदोळु साधिकं माडिदोडिदु २१। इदरिंदमेकेंद्रियजीवन तन्न मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितियेक सागरोपममदं संख्यातपल्यप्रमाणराशियं भागिसि प ११/२१ बंद लब्धप्रमण।माबाधाकांडकप्रमाणमक्कुमदनाबाधाविकल्पप्रमाणराशियिदं २८ गुणिसिदोडिदु प ११।२/२१।a ई आबाधाविकल्पंगळु रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागमें तादुदें दोडे आदी २१ अन्ते २/a/२१ सुद्धे २/a वड्ढिहिदे २/a।१ रूवसंजुदे ठाणा। २/a एंदिन्तु रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागं सिद्धमप्पुदरिंदं। मत्तमा स्थित्याबाधा विकल्पंगळिदं गुणिसलपट्ट स्थित्याबाधाकांडकराशियोळेकरूपं कळेदोडिदु प ११ २/२१ a अपवर्त्तित-

---

आबाधाविकल्पैर्गुणितेन एकरूपोनेन ऊना उत्कृष्टस्थितिः जघन्यस्थितिर्भवति। तथाहि—

एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधेयं २/a/२१ आवलेरावलिं प्रदर्श्य रूपासंख्येयभागेन संख्यातगुणकारं साधिकं २१ कृत्वा अनेन तस्यैकसागरमिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितिः संख्यातपल्यमात्री भक्ता सती प ११/२१ आबाधाकाण्डकं भवति। तच्च तस्याबाधाविकल्पैः २/a गुणयित्वा पं ११/२१। २/a अपवर्त्य प/a रूपेण ऊनयित्वा उत्कृष्टस्थितावपनीतं तदा तस्य मिथ्यात्वजघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा, इमां स्थिति उत्कृष्टस्थितावपनीय शेषे प/a एकेन भक्त्वा प/a १ रूपाधिकीकृते प/a

---

बन्ध जानना। इसका विवरण इस प्रकार है—एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कही है। उसका भाग मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना आबाधाकाण्डकका प्रमाण है। इस आबाधाकाण्डकको एकेन्द्रियकी आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करके जो प्रमाण आवे उसमेंसे एक कम करके जो प्रमाण रहे उसे उत्कृष्ट स्थितिमें घटानेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनिदं प रूपोनपल्यासंख्यातमनुत्कृष्टस्थितियोळ्कळदोडे मुंपेळ्देकेंद्रियमिथ्यादृष्टिजीवनु मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १२ ई जघन्यस्थितियनादियं माडि प / a उत्कृष्टस्थितियनन्तमं माडि आदी अन्ते सुद्धे एंदु आदियनन्तदोळ्कळेदोडे शेषमिदु। प / a इदं वृद्धियिदं a भागिसिदोडे तावन्मात्रमेयक्कु प / a मल्लि एकरूपं कूडिदोडे केंद्रियजीवं मित्यात्व-प्रकृतिगे माळ्प सर्व्वस्थितिविकल्पप्रमाणमक्कुं प / a। द्वींद्रियजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृत्युत्कृष्टाबाधे साधिकपंचविंशत्यंतर्मुहूर्त्तंगळप्पुवु। २ / १११ / २१२५ अपवर्त्तितमप्पिदर २१२५ वमुत्कृष्टस्थितियं भागिसिदोडाबाधाकांडकप्रमाणमक्कुं सा २५ / २१।२५ अपवर्त्तिसिदोडिदु सा / २१ ई आबाधाकांडकम

तस्य मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति प / a। द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधा साधिकपञ्चविंशत्यंतर्मुहूर्ता २ / १११ / २१।२५ अपवर्त्य २१२५ तया भक्ता उत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकं भवति सा २५ / २१२५। तेन अपवर्तितेन सा / २१ आबाधाविकल्प १– / २ / १११ गुणितेन सा १– / २ / २११४ अपवर्तितेन— प / ११११ रूपोनेन प / ११११ उत्कृष्टस्थितिः मिथ्यात्वजघन्यस्थितिः सा २५ (प / ११११) भवति। तां च उत्कृष्टस्थितावपनीय शेषे प / ११११

घटानेपर जो शेष रहे उसमेंसे एकसे भाग देनेपर उतना ही रहा। उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण होता है। अर्थात् जघन्यसे लेकर एक-एक समय बढ़ता उत्कृष्ट पर्यन्त एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके इतने भेद होते हैं। इसी प्रकार दो इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधाका प्रमाण चार बार संख्यातसे भाजित आवली मात्र अधिक पच्चीस अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। यह आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है, तथापि एकेन्द्रिय जीवकी आबाधाके अन्तर्मुहूर्तसे पच्चीस गुणा है, क्योंकि दो इन्द्रियके एकेन्द्रियसे पच्चीस गुना स्थितिबन्ध होता है। सो यहाँ एकेन्द्रियकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाबाधाविकल्पंगळिर्वारिदं २/११११ गुणिसिदोडिदु सा २/२१ । ११११ इदनपवर्त्तिसिदोडिदु प १/११११ इद-

रोळेकरूपं कळेदोडिदु प/११११ इदनुत्कृष्टस्थितिबंधप्रमाणदोळु कळेदोडिदु सा २५ । द्वींद्रियजीवं प/११११

मिथ्यात्वप्रकृतिगे माळ्प जघन्यस्थितिबंधप्रमा २१ । २५ णमक्कु—। मो जघन्यस्थितियनुत्कृष्ट

स्थितियोळ्कळेदोडे शेषमिदु प/११११ वृद्धियिदं भागिसि येकरूपं कूडिदोडे द्वींद्रियजीवंगे

मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वंस्थितिविकल्पंगळप्पुवु प १/११११ त्रींद्रिय जीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिस्थित्युत्कृष्टाबाधे

यिदु २/१११/२१ । ५० संख्यातत्रितयभक्तावल्यभ्यधिकपंचाशदन्तर्म्मुहूर्त्तप्रमाणदिदं भागिसल्पट्टुदुत्कृष्ट-

स्थितियाबाधाकांडकमक्कुमिदं सा ५०/२१ । ५० अपवर्त्तितमिदु सा १/२१ इदनाबाधाविकल्पंगळिदं गुणि-

रूपाधिकीकृते तस्य मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति प/११११ त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधा २/१११/२१ ५०

संख्यातत्रितयभक्तावल्यधिकपञ्चाशदन्तर्मुहूर्ता । तया भक्ता उत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकं भवति सा ५०/२१ ५० तेन

अपवर्तितेन सा/२१ आबाधाविकल्पगुणितेन सा २/२१११११ अपवर्तितेन प/१११ रूपोनेन प/१११

अपेक्षा पच्चीस अन्तर्मुहूर्त कहे हैं, आगे भी ऐसा ही जानना।

इस तरह द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा साधिक पच्चीस अन्तर्मुहूर्त है। उससे द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरमें भाग देनेपर आबाधाकाण्डक होता है। उससे द्वीन्द्रियकी आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करनेसे जो प्रमाण आवे उसमेंसे एक घटानेपर जो शेष रहे उसे उसकी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतनी दो इन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्यस्थिति होती है। उस जघन्यस्थितिको उत्कृष्टस्थितिमें घटाकर शेषमें एक अधिक करनेपर दो इन्द्रियके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा तीन बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक पचास अन्तर्मुहूर्त है। उससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागरमें भाग देनेपर आबाधाकाण्डकका प्रमाण होता है। उसे आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करनेपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिदोडिदु २ सा १ अपवर्त्तितमिदु प इवरोळेकरूपं कळेदु प उत्कृष्टस्थितियोळ्कळे-
११२ । ११ ११२ ११२

दोडे त्रींद्रियजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा ५० ई जघन्यस्थिति-
१–३
४
११२

यनुत्कृष्टस्थितियोळ्कळेदेकरूपं कूडिदोडिदु प त्रींद्रियजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृति सर्व्वस्थितिबंध-
११२

विकल्पंगळप्पुवु । चतुरिंद्रिय जीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिस्थित्युत्कृष्टाबाधेयिदु २ ई संख्यात-
११
२१ । १००

द्वितयभक्तावल्यभ्यधिकशतांतर्म्मुहूर्तप्रमाणविदमुत्कृष्टस्थितियं भागिसिदोडे स्थित्याबाधाकांडक-
प्रमाणमक्कुं सा १०० अपवर्त्तितमिदु सा १ इवनाबाधाविकल्पंगळिदं गुणिसिदोडिदु सा १
२१ । १०० २१ २
२१ । ११

अपवर्त्तितमिदु प इवरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितियोळ्कळेदोडे (सा १०० ० / प / ११) इदु चतुरिंद्रियजीवं
११

ऊना उत्कृष्टस्थितिः तस्य त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वजघन्यस्थितिर्भवति (सा ५० ० / प / ११२) तां च उत्कृष्टस्थितौ अपनीय

रूपे निक्षिप्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिबन्धविकल्पा भवन्ति | चतुरिन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधया २
११२ ११
|
२११००

संख्यातद्वयभक्तावल्यधिकशतांतर्मुहूर्तया भक्ता उत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकं भवति सा १०० तेन अप-
|
२११००

१–
वर्तितेन सा आबाधाविकल्पगुणितेन २ अपवर्त्य प रूपोनेनोत्कृष्टस्थितिस्तस्य मिथ्यात्वस्य
| | ११
२१ २१ | ११

जो प्रमाण हो उसमें एक घटाकर उसे उत्कृष्ट स्थिति पचास सागरमें-से घटानेपर त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें घटाकर शेषमें एक जोड़नेपर तेइन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण होता है। चतुरिन्द्रिय जीवके दो बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक सौ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट

---

१. ब॰ तिमिथ्यात्व ज॰ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १०० (प / ११) इदनुत्कृष्टस्थितियोळ्कळेदे-
करूपं कूडिदोडे चतुरिंद्रियजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळ प्रमाणमक्कुं प / ११
असंज्ञिजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिस्थित्युत्कृष्टाबाधेयिदु २ / १ / २१ । १००० ई आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रां-
तर्म्मुहूर्त्तंगळिदं तन्नुत्कृष्टमिथ्यात्वस्थितियं भागिसिदोडेकभागं स्थित्याबाधाकांडकप्रमाणमक्कुं—
सा १००० / २१ । १००० अपवर्त्तितमिदु सा / २१ ई स्थितिकांडकप्रमाणमं स्थित्याबाधाविकल्पंगळिदं गुणिसिदो-
डिदु सा १ / २ / २१ । १ अपवर्त्तितमिदु प / १ इदरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितियोळ्कळेदोडे असंज्ञिजीवं
मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १००० (प / १) ई जघन्यमनन्तदोळुत्कृष्ट-

---

जघन्यस्थितिर्भवति सा १०० (प / ११) इमामुत्कृष्टस्थितावपनीय रूपे निक्षिप्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति
प / ११ । असंज्ञिनो मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधया २ / १ । / २ १ १००० आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रान्तर्मुहूर्तैर्भक्ता उत्कृष्ट-
स्थितिः आबाधाकाण्डकं स्यात्—सा १००० / २ १ १००० तेन अपवर्तितेन सा / २ १ आबाधाविकल्पगुणितेन सा २ / १— / २ १ । १

आबाधा है। इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना आबाधाकाण्डकका प्रमाण है। उससे चतुरिन्द्रियके आबाधाके भेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक घटाकर जो शेष रहे उसे उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरमें-से घटानेपर चतुरिन्द्रियकी जघन्य स्थितिका प्रमाण होता है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियकी मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीका संख्यातवाँ भाग अधिक एक हजार अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक हजार सागरमें भाग देनेपर आबाधाकाण्डकका प्रमाण होता है। इससे असंज्ञीके आबाधाके भेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति हजार

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

स्थितियो सा १००० ळकळेदडेकरूपं कूडिदोडे असंज्ञिजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिविकल्पप्रमाणमक्कुं $\frac{प}{१}$ ईयर्त्थसंदृष्टि सुव्यक्तमप्पुदादोडं मंदबुध्यनुरोधदिंदमी जघन्यस्थितिबंधानयनदोळं संदृष्टियं तोरिदपरु। अदर विन्यासमिदु —

																				ज
स्थिति	६४	६३	६२	६१	६०	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५
आबाधारहित स्थिति	४८	४७	४६	४५	४५	४४	४३	४२	४२	४१	४०	३९	३९	३८	३७	३६	३६	३५	३४	३३
आबाधा	१६	१६	१६	१६	१५	१५	१५	१५	१४	१४	१४	१४	१३	१३	१३	१३	१२	१२	१२	१२
	उ	४			४					४				४				४		ज

इल्लि स्थित्युत्कृष्टाबाधे यंबुदु १६ इदरिंदमुत्कृष्टस्थितियनिदं ६४ भागिसिदोडे $\frac{६४}{१६}$ स्थितिकांडकं नाल्कक्कुमाबाधाकांडकमेंनेंदोडे विसदृशस्थितिगळ्गे ६४। ६३। ६२। ६१। एकादृशमप्पाबाधेयक्कुं १६। १६। १६। १६। १६। निदनाबाधाकांडकमेंबुदीयाबाधाकांडकमं। ४।

अपवर्तितेन $\frac{प}{१}$ रूपोनेनोनोत्कृष्टस्थितिः तस्य मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिर्भवति सा १००० ($\frac{प}{१}$) तां च उत्कृष्टस्थितौ सा १००० न्यूनयित्वा रूपे निक्षिप्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति $\frac{प}{a}$। इयमर्थसंदृष्टिः सुव्यक्तापि पुनरंकसंदृष्ट्या[1] प्रदर्श्यते—

ज्येष्ठा स्थितिः चतुःषष्टिसमया रूपोनक्रमेण मध्यमविकल्पानतीत्य जघन्या स्थितिः पञ्चचत्वारिंशत्समया। ज्येष्ठाबाधा षोडशसमया तया भक्तज्येष्ठस्थितिः $\frac{६४}{१६}$ आबाधाकाण्डकं भवति। ४। एतावत्सु स्थितिविकल्पेषु

सागरमें-से घटानेपर असंज्ञीके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका प्रमाण होता है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक मिलानेपर असंज्ञीके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है।

यद्यपि यह अर्थ संदृष्टि स्पष्ट है फिर भी इसे अंक संदृष्टि द्वारा बतलाते हैं—

उत्कृष्ट स्थिति चौंसठ समय प्रमाण है। इसमें एक-एक समय घटाते हुए मध्यके सब भेदों तिरसठसे छियालीस पर्यन्त बितानेपर जघन्य स्थितिका प्रमाण पैंतालीस समय है। उत्कृष्ट आबाधा सोलह समय है। उससे उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर $\frac{६४}{१६}$ आबाधा काण्डक ४ होता है। अर्थात् इतने स्थितिके भेदोंमें एक-सी आबाधा होती है। तदनुसार चौंसठसे इकसठ तक स्थिति भेदोंमें सोलह-सोलह समय प्रमाण ही आबाधा होती है।

१. ६४ ६३ ६२ ६१ ६० ५९ ५८ ५७ ५६ ५५ ५४ ५३ ५२ ५१ ५० ४९ ४८ ४७ ४६ ४५
४८ ४७ ४६ ४५ ४५ ४४ ४३ ४२ ४२ ४१ ४० ३९ ३९ ३८ ३७ ३६ ३६ ३५ ३४ ३३
१६ | १६ | १६ | १६ | १५ | १५ | १५ | १५ | १४ | १४ | १४ | १४ | १३ | १३ | १३ | १३ | १२ | १२ | १२ | १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदी । १२ । अंते । १६ । सुद्धे । ४ वड्ढिहिदे । ४ । इगिजुदे ४ ठाणा यॆंबी याबाधाविकल्पंगळि ४ दं गुणिसिदोडे सर्व्वस्थितिविकल्पप्रमितहानिवृद्धिप्रमाणमक्कु २० मल्लि प्रथमस्य हानिर्व्वा नास्ति वृद्धिर्व्वा नास्ति यॆंदेकरूपं हीनं माडि १९ युत्कृष्टस्थितिज्ञातमप्पुदादोडदरोळ्कळेदोडे जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कु । ४५ । मी जघन्यस्थितिज्ञातमादुदादोडिल्लि वृद्धिरूपदिदं कूडिदोडुत्कृष्टस्थितिप्रमाणमक्कु । ६४ । मी प्रकारदिंदमेकेंद्रियादिजीवंगळ सर्व्वप्रकृतिगळ्गे जघन्यस्थितियं साधिसुवुदिन्नु एकेंद्रियादिगळ्गु चाळीसिय तीसिय बीसिय प्रकृतिगळ जघन्यस्थितिबंधमनेनितेनितं माळ्परेकेंबोडे अनुपातत्रैराशिकविधानदिंदं साधिसल्पडुगुमदें तेंदोडे सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितियनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे एकेंद्रियजीवं जघन्यस्थितिबंधमं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोनसागरोपममं स्थितिबंधमं माडुगुमागळु नाल्वत्तुकोटीकोटिसागरोपमस्थितिबंधंगळनुळ्ळ चाळीसियंगळ्गेनितु जघन्यस्थितिबंधमं माळ्पनॆंदितु अनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र । सा ७० । को २ । फ ।

एतादृशी आबाधेत्यर्थः । तेन आबाधाचतुःषष्टितः एकषष्ठयन्तं षोडश षोडश समयैव । षष्टितः सप्तपञ्चाशदन्तं पञ्चदश पञ्चदशसमयैव । षट्पञ्चाशतः त्रिपञ्चाशदंतं चतुर्दश चतुर्दशसमयैव । द्वापञ्चाशतः एकान्नपञ्चाशदंतं त्रयोदश त्रयोदशसमयैव । अष्टचत्वारिंशत्तः पञ्चचत्वारिंशदंतं द्वादश द्वादशसमयैव । तच्च काण्डकं ४ । आदी १२ अन्ते १६ सुद्धे ४ वड्ढिहिदे ४ रूवसंजुदे १ इत्यानीताबाधाविकल्पैर्गुणितं सर्वस्थितिविकल्प-
१ ४
प्रमाणं भवति २० । तत्र प्रथमे हानिर्वा वृद्धिर्वा न इत्येकं त्यक्त्वा शेषे १९ उत्कृष्टस्थितावपनीते जघन्यस्थितिः ४५ वा जघन्यस्थितौ युते उत्कृष्टस्थितिः ६४ भवति । एवमेकेन्द्रियादीनां सर्वप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धं साधयेत् । इदानीं त्रैराशिकैः कृत्वा साध्यते तद्यथा—

सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिकमिथ्यात्वस्य यद्येकेन्द्रियः जघन्यस्थितिबन्धं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोनसागरोपममात्रं बध्नाति तदा चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिकानां किमिति ? प्र–स ७० को २ ।

साठसे सत्तावन पर्यन्त स्थितिके भेदोंमें पन्द्रह-पन्द्रह समय ही आबाधा होती है। छप्पनसे तिरपन पर्यन्त स्थितिके भेदोंमें चौदह-चौदह समय ही आबाधाका प्रमाण होता है। बावनसे उनचास पर्यन्त स्थिति भेदोंमें तेरह-तेरह समय ही आबाधाका प्रमाण होता है। अड़तालीससे पैंतालीस पर्यन्त स्थितिभेदोंमें बारह-बारह समय ही आबाधा होती है। इस प्रकार ये काण्डक चार हैं। आदि जघन्य आबाधा १२ को अन्त उत्कृष्ट आबाधा १६ में घटानेपर चार रहते हैं। प्रतिसमय एककी वृद्धि होनेसे एकसे भाग देनेपर तथा एक जोड़नेपर आबाधाके भेद पाँच होते हैं। इन विकल्पोंसे आबाधा काण्डकको गुणा करनेपर स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण ४×५=२० होता है। इनमें-से प्रथम भेदमें हानि-वृद्धि नहीं होती इसलिए एकको छोड़ शेष १९ को उत्कृष्ट स्थितिमें घटानेपर जघन्य स्थिति ४५ समय होती है। अथवा जघन्य स्थिति ४५ में उन्नीस जोड़नेपर उत्कृष्ट स्थिति ६४ होती है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय आदिके सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धको लाना चाहिए। अब त्रैराशिकोंके द्वारा उसे लाते हैं—

सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिवाले मिथ्यात्व कर्मका यदि एकेन्द्रिय जीव एक कम पल्यके असंख्यातवें भागसे हीन एक सागर प्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध करता है तो चालीस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज सा/प a) २ सा ४० को २ बंद लब्धमिदु सा १/प a) ४/७ एकेंद्रियजीवं चाळीसियंगळोकट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं । मत्तमंते प्र सा ७० को २ । फ ज सा १ । २/प a) इ सा ३० को २ बंद लब्धमेकेंद्रियजीवं तीसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १ । /प a) ३/७ मत्तमन्ते प्र । सा ७० को २ फ । ज सा १ । /प a) इ सा २० । को २ । बंधलब्धमेकेंद्रियजीवं वीसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १ । /प a c) । २/७ द्वींद्रियादिगळ्गेयुमी प्रकारदिंदं चाळीसिय तीसिय वीसियंगळ जघन्यस्थितियननुपातत्रैराशिकदिं साधिसिदपरदेंतेंदोडे सप्ततिकोटीकोटिसाग-

फ–ज । सा/प a) इ–सा ४० को २ । लब्धं सा १ । /प a) ४/७ तस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति । तथा प्र ७० को २ । फ ज सा १/प a) इ सा ३० को २ लब्धं तस्य तीसियानां जघन्यस्थिति-बन्धप्रमाणं भवति सा १/प a) ३/७ पुनस्तथा प्र–सा ७० को २ । फ ज सा १/प a) इ सा २० को २ लब्धं

कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाले कर्मकी जघन्य स्थिति कितनी बाँधेगा । सो प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका प्रमाण, इच्छाराशि चालीस कोड़ाकोड़ी सागर । फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्ध प्रमाण जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है । इसी तरह जिस कर्मकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर और बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है उसका जघन्य स्थिति बन्ध एकेन्द्रिय जीव कितना करता है । यहाँ भी प्रमाण राशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति, इच्छाराशि तीस कोड़ाकोड़ी सागर या बीस कोड़ाकोड़ी सागर । सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिसे भाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोपमस्थितियनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे द्वींद्रियजीवं जघन्यस्थितियं संख्यातचतुष्टयभक्तरूपोनपल्यहीनपंचविंशतिसागरोपमजघन्यस्थितियनवक्कंत्तलानुं कट्टुगुमाळु चत्वारिंशत्सागरोपमकोटीकोटिस्थितियनुळ्ळ चाळीसियंगळगेनितं जघन्यस्थितियं कट्टुगुमें दिन्तु त्रैराशिकमं माडि प्र। सा ७०। को २। फ। ज (सा २५। −प/१।४) इ सा ४०। को २। बंद लब्धं द्वींद्रियजीवं चाळीसियंगळगे माळ्प जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं (सा २५। −प/१।४) ४/७ मतमंते प्र। सा ७०। को २ फ (सा २५। −प/१।४) इ। सा ३०। को २। बंद लब्धं द्वींद्रियजीवं तीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं (सा २५। −प/१।४) ३/७॥ मतमंते प्र। सा ७०। को २। फ (सा २५। −प/१।४) इ। सा २०। कोटि २। बंद लब्धं द्वींद्रियजीवं विसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणं (सा २५। −प/१।४)

तस्य बीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति (सा १ −प/७) २/७ पुनस्तथा प्र–सा ७० को २। फ (सा २५ −प/१ ४) इ–सा ४० को २ लब्धं द्वीन्द्रियस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति। (सा २५ −प/१।४) ४/७ पुनस्तथा प्र–सा ७० को २। फ–ज (सा २५ −प/१।४) इ–सा ३० को २ लब्धं तस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं

देनेपर एकेन्द्रियके उस कर्मकी जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण आता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाला मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध दो इन्द्रियके पल्यके संख्यातवें भाग हीन पच्चीस सागर प्रमाण होता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध दो इन्द्रियके कितना होता है तो प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पल्यके संख्यातवें भागहीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्तमुमंते प्र। सा ७०। को २। फ (सा ५० ॰ / प / १।३) इ। सा ४०। को २। बंद लब्धं त्रींद्रियजीवं चाळीसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं (सा ५०। / प / १।३) ४ मत्तमन्ते प्र। सा ७०। को २। फ (सा ५०। / प / १।३) इ। सा ३०। को २। बंद लब्ध त्रींद्रियजीवं तीसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थिति प्रमाणमक्कुं। (सा ५०। / प / १।३।७) ३॥ मत्तमंते प्र। सा। ७०। को २ फ (सा ५० / प / १।३) इ। सा २०। को २। बंद लब्धं त्रींद्रियजीवं विसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं—

भवति (सा २५ ॰ / प / १।४) ३/७ पुनस्तया प्र—सा ७० को २ फ ज सा (२५ ॰ / प / १।४) इ सा २० को २ लब्धं तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति (सा २५ ॰ / प / १।४) २/७ पुनस्तया प्र—सा ७० को २। फ ज—सा (५० ॰ / प / १।३) इ सा ४० को २ लब्धं त्रींद्रियस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति (सा ५० ॰ / प / १।३) ४/७ पुनस्तया प्र—सा ७० को २। फ ज सा (५० ॰ / प / १।३) इ सा ३० को २ लब्धं त्रीन्द्रियस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति (सा ५० ॰ / प / १।३) ३/७ पुनस्तथा प्र—सा ७० को २ फ—ज — (सा ५० ॰ / प / १।३) इ सा

पच्चीस सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस, बीस आदि। फलसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर द्वीन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्यस्थिति बन्धका प्रमाण होता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाला मिथ्यात्व कर्म यदि त्रीन्द्रिय-के पल्यके संख्यातवें भागहीन पचास सागर प्रमाण बँधता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$\left(\text{सा ५०।}\ \frac{-}{\frac{\text{प}}{\text{१।३।}}}\right)\frac{२}{७}$ मत्तमंते प्र ७०। को २। सा। फ $\left(\text{सा १००।}\ \frac{-}{\frac{\text{प}}{\text{१।२}}}\right)$ इ। सा ४०। को २। बंद लब्धं चतुरिंद्रियजीवं चाळोसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं $\left(\text{सा १००।}\ \frac{-}{\frac{\text{प}}{\text{१।०।}}}\right)\frac{४}{७}$

मत्तमंते प्र सा ७०। कोटि २। फ $\left(\text{सा १००।}\ \frac{-}{\frac{\text{प}}{\text{१।२}}}\right)$ इ ३०। को २। सा। बंद लब्धं चतुरिंद्रिय-जीवं तीसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं $\left(\text{सा १००।}\ \frac{-}{\frac{\text{प}}{\text{१।२।}}}\right)\frac{३}{७}$। मत्तमन्ते प्र। सा। ७०। को २। फ $\left(\text{सा १००।}\ \frac{-}{\frac{\text{प}}{\text{१।२}}}\right)$ इ। सा २०। को २। बंद लब्ध चतुरिंद्रियजीवं विसियंगळ्गे

---

२० को २ लब्धं तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति $\left(\text{सा ५०}\ \frac{-\,२\,-}{\frac{\text{प}}{\text{१।३}}}\right)\frac{२}{७}$ पुनस्तथा प्र—सा ७० को २। फ ज $\left(\text{सा १००}\ \frac{-\,२\,-}{\frac{\text{प}}{\text{१।२}}}\right)$ इ सा ४० को २ लब्धं चतुरिन्द्रियस्य चालीसियानां जघन्यस्थिति-बन्धप्रमाणं भवति $\left(\text{सा १००}\ \frac{-\,२\,-}{\frac{\text{प}}{\text{१।२}}}\right)\frac{४}{७}$ पुनस्तथा प्र सा ७० को २ फ ज $\left(\text{सा १००}\ \frac{-\,२\,-}{\frac{\text{प}}{\text{१ २}}}\right)$ इ—सा ३० को २ लब्धं तस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति। $\left(\text{सा १००}\ \frac{-\,२\,-}{\frac{\text{प}}{\text{१।२}}}\right)\frac{३}{७}$ पुनस्तथा प्र—सा ७० को २। फ ज

स्थिति चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्यस्थितिबन्ध त्रीन्द्रिय जीवके कितना होता है ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पल्यके संख्यातवें भागहीन पचास सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर। फलसे इच्छाको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिसे भाग देनेपर त्रीन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणं $\left(\text{सा } १००। \frac{-}{\frac{प}{१।२।}}\right)\frac{२}{७}$ मत्तमन्ते प्र सा ७०। को २। फ $\left(\text{सा } १०००। \frac{-}{\frac{प}{१}}\right)$ इ सा ४०। को २। बंद लब्धमसंज्ञिजीवं चाळीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कु— $\left(\text{सा } १०००। \frac{-}{\frac{प}{१}}\right)\frac{४}{७}$ मत्तमन्ते प्र सा ७०। को २। फ $\left(\text{सा } १००० \frac{-}{\frac{प}{१}}\right)$ इ सा ३०। को २। बंद लब्धमसंज्ञिजीवं तिसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कुं। $\left(\text{सा } १०००। \frac{-}{\frac{प}{१}}\right)\frac{३}{७}$ मत्तमंते प्र

$\left(\text{सा } १०० \frac{-}{\frac{प}{१ २}}\right)$ इ सा २० को २ लब्धं तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति $\left(\text{सा } १०० \frac{-}{\frac{प}{१।२}}\right)\frac{२}{७}$ पुनस्तथा प्र सा ७० को २। फ ज $\left(\text{सा } १००० \frac{-}{\frac{प}{१}}\right)$ इ सा ४० को २ लब्धं असंज्ञिनः चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति $\left(\text{सा } १००० \frac{-}{\frac{प}{१}}\right)\frac{४}{७}$ पुनस्तथा प्र—सा ७० को २। फ—ज $\left(\text{सा } १००० \frac{-}{\frac{प}{१}}\right)$ इ सा ३० को २ लब्धं असंज्ञिनः तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति $\left(\text{सा } १००० \frac{-}{\frac{प}{१}}\right)\frac{३}{७}$ पुनस्तथा प्र-सा

सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाला मिथ्यात्वकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध यदि चतुरिन्द्रियके पल्यके संख्यातवें भागहीन सौ सागर प्रमाण होता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध चतुरिन्द्रियके कितना होता है इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पल्यके संख्यातवें भागहीन सौ सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर। फलसे इच्छा राशिको गुणा करके प्रमाण राशिसे भाग देनेपर चतुरिन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्य स्थितिका प्रमाण आता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाला मिथ्यात्वकर्म यदि असंज्ञि पञ्चेन्द्रियके पल्यके संख्यातवें भागहीन एक हजार सागर प्रमाण जघन्य स्थितिको लेकर बँधता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस, तीस या बीस सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध असंज्ञीके कितना होता है ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पल्यके संख्यातवें भागहीन हजार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा ७०। को २। फ सा १०००। (–/प/१) इ सा २०। को २। बंद लब्धमसंज्ञिजीवं विसियंगळगे

कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कुं सा १०००। (–/प/१) २/७ उक्तात्थं संदृष्टियिदु।

ए० चाळी। ज सा २५। (–/प/a) ४/७	द्वी० चाळी। ज सा २५। (–/प/१।४) ४/७	त्री० चा०। ज सा ५०। (–/प/१।३) ४/७ →
ति सि ज। सा १। (–/प/a) ३/७	ति सि ज सा २५ (–/प/१।४) ३/७	ती सि। ज सा ५० (–/प/१।३) ३/७
वि सि ज। सा १। (–/प/a) २/७	वि सि। ज। सा २५ (–/प/१।४) २/७	वि सि। ज। सा ५० (–/प/१।२) २/७

← चतु० चा०। ज सा १०० (–/प/१।२) ४/७	असंज्ञि चा०। ज सा १००० (–/प/१) ४/७
ति सि ज। सा १०० (–/प/१।२) ३/७	ती सि। ज। सा १००० (–/प/१) ३/७
वि सि। ज। सा १०० (–/प/१) २/७	वि सि। ज सा १००० (–/प/१) २/७

७० को २। फ ज सा १००० (–ᘏ/प/१) इ सा २० लब्धं असंज्ञिनः वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं

भवति सा १००० (–ᘏ/प/१) २/७ एवं शेषाष्टादशषोडशपञ्चदशचतुर्दशद्वादशदशकोटीसागरोपमस्थितिकानां अपि

---

५ सागर, इच्छाराशि चालीस, बीस या तीस कोड़ाकोड़ी सागर सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाण राशिसे भाग देनेपर असंज्ञी जीवके उस-उस कर्मकी जघन्य स्थितिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषाष्टादश षोडश पंचदश चतुर्द्दश द्वादश दशकोटीकोटिसागरोपम स्थितिय प्रकृतिगळमी प्रकारदिदमेकेंद्रियादिजीवंगळगे त्रैराशिकविधानदिदं जघन्यस्थितिबंधं साधिसल्पडुवुवु। अनंतरमी एकेंद्रियादिगळ मिथ्यात्वादि प्रकृतिगळगे पेळद जघन्योत्कृष्टस्थितिबंधगळनरिदु तरल्पट्ट स्थितिविकल्पंगळं प्रत्येकं स्थापिसि

एके	द्वीं	त्रीं	चतु	असं	संज्ञि
प	प	प	प	प	—
०	१। ४	१। ३	१। २	१। १	१प ११

एकेंद्रियंगल बादरसूक्ष्मपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तंगळ उत्कृष्टजघन्यमं द्वींद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमं त्रींद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमं चतुरिंद्रियपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमं मिथ्यात्वादिप्रकृतिस्थितिबंधविकल्पंगळोळु विभागिसि तोरिदपरु :—

बाद्धप बाद्धअ वरट्ठिदीओ सूबाअ सूबापजहण्णकालो ।
बीबीवरो बीविजहण्णकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं ॥१४८॥

बा। बादरश्च। सू। सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ तयोः प। पर्य्याप्तकौ बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तकौ। बा। बादरश्च। सू। सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ तयोरपर्य्याप्तकौ बादरसूक्ष्मापर्य्याप्तकौ। बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तकौ च बादरसूक्ष्मापर्य्याप्तकौ च बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तकबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तकाः। तेषां वरस्थितयः तास्तथोक्ताः ॥

सू। सूक्ष्मश्च बा बादरश्च सूक्ष्मबादरौ। तयोरपर्य्याप्तकौ सूक्ष्मबादरापर्य्याप्तकौ। सू। सूक्ष्मश्च बा बादरश्च सूक्ष्मबादरौ। तयोः प पर्य्याप्तकौ सूक्ष्मबादरपर्य्याप्तकौ। सूक्ष्मबादराऽ-

---

साधयेत् ॥१४७॥ उक्तैकेन्द्रियादिस्थितिविकल्पान् संस्थाप्य—

एकें	द्वीं	त्रीं	चतु	असं	संज्ञि
प	प	प	प	प	१—
०	१। ४	१। ३	१। २	१। १	—
					प १ १

तेषु बादरसूक्ष्मैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिनां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन चतुर्दशानां उत्कृष्टजघन्यस्थितिबन्धौ विभज्य दर्शयति—

बा-बादरश्च सू-सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ, तयोः प-पर्याप्तकौ बादरसूक्ष्मपर्याप्तकौ। बा-बादरश्च सू-सूक्ष्मश्च

प्रमाण आता है। इसी प्रकार जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति अठारह, सोलह, पन्द्रह, चौदह, बारह और दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनके भी जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण लाना चाहिए ॥१४७॥

उक्त एकेन्द्रिय आदिके स्थितिभेदोंको स्थापित करके उनमें बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी इनके पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे चौदह जीव समासोंमें उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्धका विभाग करके दर्शाते हैं—

'बा' अर्थात् बादर, 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, ये दोनों 'प' अर्थात् पर्याप्तक—बादर पर्याप्तक, सूक्ष्मपर्याप्तक। 'बा' अर्थात् बादर, 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, ये दोनों अपर्याप्तक—बादर अपर्याप्तक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्य्याप्तकौ च सूक्ष्मबादरपर्य्याप्तकौ च सूक्ष्मबादराऽपर्य्याप्तकसूक्ष्मबादरपर्य्याप्तकास्तेषां जघन्यकालः सूक्ष्मबादरापर्य्याप्तक सूक्ष्मबादरपर्य्याप्तकजघन्यकालो जघन्यस्थितिरित्यर्थः ॥

बी द्वींद्रियपर्य्याप्तश्च बी द्वींद्रियापर्य्याप्तश्च द्वींद्रियपर्य्याप्तद्वींद्रियापर्य्याप्तौ। तयोर्व्वरा बी द्वींद्रियापर्य्याप्तश्च। बी द्वींद्रियपर्य्याप्तश्च द्वींद्रियापर्य्याप्तद्वींद्रियपर्य्याप्तौ। तयोर्ज्जघन्यकालः द्वींद्रियापर्य्याप्तद्वींद्रियपर्य्याप्तजघन्यकालः। शेषाणामेवं वचनीयमेतत्।

बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं सूक्ष्मैकेंद्रियाऽपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं। बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं। सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं। बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदितेंदु स्थितिविकल्पंगळेकेंद्रियक्केमिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिविकल्पंगळोळप्पुवु। द्वींद्रियपर्य्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। द्वींद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। द्वींद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं। द्वींद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदितु नाल्कुं स्थितिबंधविकल्पंगळु द्वींद्रियक्के मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळोळप्पुवु। शेषत्रींद्रियादिगळ्ग-

बादरसूक्ष्मौ तयोः, अ-पर्याप्तकौ बादरसूक्ष्मापर्याप्तकौ। बादरसूक्ष्मपर्याप्तकौ च बादरसूक्ष्मापर्याप्तकौ च बादरसूक्ष्मपर्याप्तक-बादरसूक्ष्मापर्याप्तकाः तेषां वरस्थितयः तास्तथोक्ताः। सू-सूक्ष्मश्च बा-बादरश्च सूक्ष्मबादरौ तयोः अ-अपर्याप्तकौ सूक्ष्मबादरापर्याप्तकौ। सू-सूक्ष्मश्च बा-बादरश्च बा-बादरश्च सूक्ष्मबादरौ तयोः प-पर्याप्तकौ सूक्ष्मबादरपर्याप्तकौ। सूक्ष्मबादरापर्याप्तकौ च सूक्ष्मबादरापर्याप्तकौ च सूक्ष्मबादरापर्याप्तक-सूक्ष्मबादरपर्याप्तकाः तेषां जघन्यकालः सूक्ष्मबादरापर्याप्तकसूक्ष्मबादरपर्याप्तकजघन्यकालो जघन्यस्थितिरित्यर्थः। अनेन बादरपर्याप्तोत्कृष्टः सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टः बादरपर्याप्तकोत्कृष्टः सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टः, सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यः बादरापर्याप्तकजघन्यः सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यः बादरपर्याप्तजघन्यश्चेत्येकेन्द्रियस्य अष्टौ स्थितिबन्धविकल्पा उक्ता भवन्ति। बी-द्वीन्द्रियपर्याप्तकश्च बी-द्वीन्द्रियापर्याप्तकश्च द्वीन्द्रियपर्याप्तकद्वीन्द्रियापर्याप्तकौ तयोर्वरः, बी-द्वीन्द्रियापर्याप्तकश्च बि-द्वीन्द्रियपर्याप्तकश्च द्वीन्द्रियापर्याप्तकद्वीन्द्रियपर्याप्तकौ तयोः जघन्यकालः द्वीन्द्रियापर्याप्तकद्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यकालः। अनेन द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टः द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टः द्वीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यः द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यश्चेति द्वीन्द्रियस्य चत्वारः स्थितिबन्धविकल्पा उक्ता भवन्ति। 'सेसाणमेवं वयणीयमेदं' एवं द्वीन्द्रियोक्तरीत्या एतत्पर्याप्तकापर्याप्तकाभ्यां उत्कृष्टजघन्यभेदेन निजनिजविकल्पचतुष्टयं शेषाणां

सूक्ष्म अपर्याप्तक। इनकी उत्कृष्ट स्थितियाँ। तथा 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, 'बा' अर्थात् बादर ये दोनों 'अ' अर्थात् अपर्याप्तक। 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, 'बा' अर्थात् बादर ये दोनों 'प' अर्थात् पर्याप्तक। इन सूक्ष्म अपर्याप्तक, बादर अपर्याप्तक और सूक्ष्म पर्याप्तक बादर पर्याप्तककी जघन्य स्थिति। इस प्रकार १ बादर पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, २ सूक्ष्म पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, ३ बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, ४ सूक्ष्म अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, ५ सूक्ष्म अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, ६ बादर अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, ७ सूक्ष्म पर्याप्तककी जघन्य स्थिति, ८ बादर पर्याप्तककी जघन्य स्थिति ये आठ एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके विकल्प कहे हैं। 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थिति। 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक, 'वि' अर्थात् द्वीन्द्रिय पर्याप्तक इन दोनोंका जघन्य काल। इससे द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति और द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य स्थिति इस प्रकार द्वीन्द्रियके चार स्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिन्ते नाल्कुं नाल्कुं स्थितिबंधविकल्पंगळु तंतम्म मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळोळप्पुवेंदिन्ती मिथ्यात्वप्रकृतिस्थितिबंधं पेळल्पट्टुदु। अदेंतेंदोडे त्रींद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। त्रींद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। त्रींद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं। त्रींद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदितु नाल्कुं ४, चतुरिंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। चतुरिंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। चतुरिंद्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं। चतुरिंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदितु नाल्कु ४, असंज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं असंज्ञ्यपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं असंज्ञ्यपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमसंज्ञिपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदितु नाल्कु ४, संज्ञिपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं संज्ञ्यपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं संज्ञ्यपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं संज्ञिपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमें-

---

त्रीन्द्रियादिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानामपि वचनीयं—कथनीयम्। तद्यथा—

त्रीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टः त्रीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टः त्रीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यः त्रीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यश्चेति त्रीन्द्रियस्य चत्वारः। चतुरिन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टः चतुरिन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टः चतुरिन्द्रियापर्याप्तकजघन्यः चतुरिन्द्रियपर्याप्तकजघन्यश्चेति चतुरिन्द्रियस्य चत्वारः। असंज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टः असंज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टः असंज्ञ्यपर्याप्तकजघन्यः असंज्ञिपर्याप्तकजघन्यश्चेति असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य चत्वारः। संज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टः, संज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टः, संज्ञ्यपर्याप्तकजघन्यः, संज्ञिपर्याप्तकजघन्यश्चेति संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य चत्वारः। अमीषु अष्टाविंशतिस्थितिबन्धविकल्पेषु अन्त्यानां चतुर्णां पृथक्कथनमस्ति इति आदौ आद्यानामायाममानेतुं अन्तरालविकल्पान् त्रैराशिकैर्विभजति—

तत्रैकेन्द्रियस्य यथा मिथ्यात्वस्थितिरुत्कृष्टा एकसागरोपममात्री सा १। जघन्या च रूपोनपल्यासंख्येय-

---

बन्धके विकल्प कहे हैं। इस प्रकार द्वीन्द्रियकी कही उक्त रीतिसे पर्याप्तक, अपर्याप्तक और उनके उत्कृष्ट जघन्यके भेदसे चार विकल्प शेष त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिपञ्चेन्द्रिय तथा संज्ञिपञ्चेन्द्रियके कहना चाहिए। जो इस प्रकार हैं—त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, त्रीन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, त्रीन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य स्थिति इस प्रकार त्रीन्द्रियके चार विकल्प हैं। चतुरिन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य स्थिति, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्यस्थिति इस प्रकार चतुरिन्द्रियके चार विकल्प कर्मोंकी स्थितिके हैं। असंज्ञि पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, असंज्ञि अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, असंज्ञी अपर्याप्तककी जघन्य स्थिति, असंज्ञी पर्याप्तककी जघन्य स्थिति ये चार विकल्प असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी कर्मस्थितिके हैं। संज्ञीपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, संज्ञी अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, संज्ञी अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, संज्ञीपर्याप्तककी जघन्य स्थिति ये चार विकल्प संज्ञी पञ्चेन्द्रियके हैं। स्थितिबन्धके इन अठाईस विकल्पोंमें अन्तिम चारका पृथक् कथन है। इसलिए आदिमें शेष चौबीस भेदोंकी स्थितिका आयाम लानेके लिए अन्तराल भेदोंका त्रैराशिकोंके द्वारा विभाजन करते हैं—

उनमें-से एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है और जघन्यस्थिति एक कम पल्यके असंख्यातवें भागसे हीन एक सागर प्रमाण है। सो करणसूत्रके अनुसार आदि जघन्यस्थितिको अन्त उत्कृष्टस्थितिमें-से घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उसको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विंतिवु नाल्कु ४ ई पेळल्पट्ट त्रींद्रियादिगळ नाल्कुं नाल्कुं स्थितिबंधविकल्पंगळु तंतम्म मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळोळप्पुवल्लि बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदलगोंडु समयोनक्रमदिदमनितु स्थितिविकल्पंगळु नडदु येकेंद्रियसूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते सूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदलगोंडु समयोनक्रमदिंदमनितु स्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु

भागोनतदुत्कृष्टमात्री सा १ (२ / प / a) आदी अन्ते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे' इत्यानीतसमयोत्तरतत्स्थितिविकल्पा एतावन्तः प / a । तत्र एकद्विचतुश्चतुर्दशाष्टाविंशत्यष्टानवतिषण्णवत्यग्रशतशलाकानां मिलितत्वात् त्रिचत्वारिंशदग्रत्रिशतसंख्यानां प्र श ३४३ यद्येतावन्तः फ वि प / a तदा षण्णवत्यग्रशतशलाकानां इ श १९६ कति ? इति बादरपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तं विकल्पा लब्धा भवन्ति प १९६ / a ३४३ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयामः रूपोनैरेतावन्मात्रसमयैर्न्यूनबादरपर्याप्तकोत्कृष्ट-

---

एकका भाग देना, क्योंकि एक-एक स्थितिके भेदमें एक-एक समयकी वृद्धि होती है, अतः वृद्धिका प्रमाण एक है। एकका भाग देनेपर उतने ही रहे। उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेद पल्यके असंख्यातवें भाग होते हैं। इससे आगेकी ही गाथामें उसका अर्थ करते हुए एकेन्द्रिय जीवकी स्थितिके अन्तरालोंमें अंकसदृष्टिकी अपेक्षा एक, दो, चार, चौदह, अठाईस, अठानबे, एक सौ छियानबे शलाका कहेंगे। उन सबका जोड़ तीन सौ तेंतालीस होता है। एकेन्द्रिय जीवके जो पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिके भेद कहे हैं, उनमें तीन सौ ततालीसका भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना एक शलाकामें स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। इस प्रमाणको अपने-अपने शलाका प्रमाणसे गुणा करनेपर अपने-अपने स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। उसे त्रैराशिक द्वारा बतलाते हैं—

यदि तीन सौ तेंतालीस शलाकाओंमें एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं तो एक सौ छियानबे शलाकाओंमें कितने होंगे। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण पल्यके असंख्यातवें भाग। इच्छाराशि एक सौ छियानबे। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर लब्धराशिका जो प्रमाण आया उतने बादर पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्मपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। अर्थात् बादर पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और सूक्ष्म पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरालमें जितने स्थितिके भेद होते हैं उनका यह प्रमाण है। तथा इस अन्तरालकी शलाका एक सौ छियानबे हैं। जितना यहाँ अन्तरालके स्थितिके भेदोंका प्रमाण कहा, उसमें एक कम करके उतने समय बादर पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरमें-से घटानेपर सूक्ष्मपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका

बादरैकेंद्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु समयोनक्रमदिदमेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळं नडदु। सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते सूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडेनितुस्थितिविकल्पंगळं नडदु

स्थित्यायाममात्रो भवति सा (प १९६ / a ३४३) पुनः प्र–श ३४३ फ बि प इ–श २८। इति सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टानंतरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प २८ / a ३४३ एतेषु चरमस्य बादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयामः एतावद्भिरेव समयैः न्यूनसूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति सा (प २२४ / a ३४३) पुनः प्र–श ३४३। फ बि प इ श ४ इति बादरापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प ४ / a ३४३ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयाम एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनबादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति। सा (प २२८ / a ३४३) पुनः प्र—श ३४३। फ बि प इ श १ इति सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यंतविकल्पा लब्धा भवति प १ / a ३४३ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनसूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति सा (प २२९ / a ३४३) पुनः प्र–श

प्रमाण, इच्छाराशि अठाईस शलाका। फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने सूक्ष्म पर्याप्तकके उत्कृष्टके अनन्तरवर्ती स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन स्थिति भेदोंके प्रमाणको सूक्ष्म पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि चार शलाका। सो फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया वह बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेदोंका जितना प्रमाण है उतने समय बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर सूक्ष्म अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिविकल्पमुमन्ते सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिविकल्पं मोदल्गो-

---

३४३ । फ बि प इ श २ (a) इति सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प २ / a ३४३ एतेषु चरमस्य बादरापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैः न्यूनसूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रो भवति । सा (a २ / प २३१ / a ३४३) पुनः प्र-श ३४३ । फ बि प इ श १४ (a) इति बादरापर्याप्तजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति—प १४ / a ३४३ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनबादरापर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रो भवति सा (a २ / प २४५ / a ३४३) पुनः प्र श ३४३ फ बि प (a) इ श ९८ इति सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प ९८ / a ३४३ एतेषु चरमस्य बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव

राशि एक शलाका। फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्टसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेद प्रमाण समयोंको सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें-से घटानेपर सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तैंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि दो शलाका। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्यस्थितिबन्धसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेदप्रमाण समयोंको सूक्ष्म अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिमें घटानेपर बादर अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तैंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि शलाका चौदह। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने बादर अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धके भेदसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद हैं। इन भेद प्रमाण समयोंको बादर अपर्याप्तके जघन्यस्थितिबन्धमें घटानेपर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। प्रमाणराशि तीन सौ तैंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेद, इच्छाराशि शलाका अठानबे। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने सूक्ष्म अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डेनितु स्थितिविकल्पंगळं नडदु बादरापर्य्याप्त जघन्यस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते । बादरैकेंद्रियपर्य्याप्त-

---

समयैर्न्यूनसूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रः—सा (प ३४३ / ७ ३४३) अपवर्तितः स चेदृश एव भवति सा (प / ७)

तथा एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वाबाधा आवल्यसंख्येयभागाधिकसंख्यातावलिमात्री २ / ७ / २१ जघन्या च तदाधिक्योनत्न्मात्री २१ तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पा एतावन्तः २ / ७ एतानेव उक्तसप्तत्रैराशिकानां स्थितिबन्धविकल्पान् अपहाय फलराशीन् कृत्वा तत्तल्लब्धं स्वस्वस्थितिविकल्पानामधः संस्थाप्य तदष्टविकल्पाबाधायामानां प्रथमे रूपोनतल्लब्धमात्रान् परेषु संपूर्णतत्तल्लब्धमात्रानेव समयानपनीयापनीय परम्परमाबाधायामं साधयेत् ।

तत्संदृष्टि :—

इन भेदप्रमाण समयोंको सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्यस्थितिबन्धमें-से घटानेपर बादर पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध होता है। इस प्रकार एकेन्द्रियके सूक्ष्म बादरके पर्याप्त-अपर्याप्त जीव समासोंके जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्धके भेदसे आठ स्थानोंमें स्थितिबन्धका प्रमाण कहा। इन आठोंमें सात अन्तराल होनेसे अन्तरालोंमें स्थितिके भेदोंका प्रमाण जाननेके लिए सात त्रैराशिक किये हैं।

आगे आबाधाकालका प्रमाण दिखाते हैं—

एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके असंख्यातवे भागसे अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त मात्र है। और जघन्य आबाधा आधिक्यके बिना केवल अन्तर्मुहूर्त मात्र है। उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटाकर एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण आता है। जैसे स्थितिबन्धके कथनमें आठ स्थानोंके सात अन्तरालोंमें भेदोंका प्रमाण लानेके लिए सात त्रैराशिक किये वैसे ही आबाधाका प्रमाण लानेके लिए भी करना चाहिए। यहाँ प्रमाणराशि तो सर्वत्र तीन सौ तेंतालीस शलाका प्रमाण है। फलराशिमें वहाँ स्थितिके भेदोंका प्रमाण कहा था यहाँ एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी आबाधाके जघन्यसे लेकर उत्कृष्टपर्यन्त भेदोंका जितना प्रमाण उतना लेना। तथा इच्छाराशि क्रमसे वही एक सौ छियानबे, अठाईस, चार, एक, दो, चौदह और अठानबे शलाका प्रमाण लेना। सर्वत्र फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे सो अपने-अपने अन्तरालोंमें आबाधाके भेदोंका प्रमाण है। सो प्रथम त्रैराशिकमें जितने भेदोंका प्रमाण आया उनमें-से एक घटानेपर जितना रहे उतना समय बादर पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधामें-से घटानेपर सूक्ष्म पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण होता है। उसमें-से दूसरे त्रैराशिकमें जितने भेदोंका प्रमाण आवे उतने समय घटानेपर बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण होता है। इसी प्रकार तीसरे आदि त्रैराशिकमें भी जितने भेदोंका प्रमाण आवे उतने समय घटानेपर उस-उस स्थानमें जो स्थितिबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्यस्थितिबंधविकल्प मोदल्गोंडेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळं नडेवु सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्य-

बा प उ	सू प उ	बा अ उ	सू अ उ	सू अ ज	बा अ ज	सू प ज	बा प ज
२	२	२	२	२	२	२	२
ə	ə २१	ə २१	ə २१	ə २१	ə २१	ə २१	ə
२१	२ १९६	२ २२४	२ २२८	२ २२९	२ २३१	२ २४५	२ २१
	ə ३४३	ə ३४३	ə ३४३	ə ३४३	ə ३४३	ə ३४३	ə ३४३
							३४३

अथ द्वीन्द्रियस्य यथा तन्मिथ्यात्वस्थितिरुत्कृष्टा पञ्चविंशतिसागरोपममात्री सा २५ जघन्या च चतुः-संख्यातभक्तरूपोनपल्योनतदुत्कृष्टमात्री सा २५ (प / १ १ १ १) तथानीतसमयोत्तरविकल्पा एतावन्तः प / १ १ १ १ तत्र एकद्विचतुःशलाकानां मिलित्वा सप्तसंख्यानां प्र–श ७ यद्येतावन्त :—

फ–वि प / १ १ १ १ तदा चतसृणां शलाकानां इ श ४ कति ? इति द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तं विकल्पा लब्धा भवति प ४ / १ १ १ १ ७ एतेषु चरमस्य द्वीन्द्रिया-पर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्यायामो रूपोनैरेतावद्भिः समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति

प्रमाण कहा उस-उस सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण जानना। इस तरह एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्ध और आबाधाके भेदोंका तथा कालका प्रमाण जानना। अब दो-इन्द्रिय जीवके कहते हैं—

दो-इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागर है। जघन्य स्थिति चार बार संख्यातसे भाजित एक हीन पल्यके प्रमाणको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतनी है। उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर जो शेष रहे उसमें एकसे भाग देकर तथा एक जोड़नेपर जो प्रमाण रहे उतने द्वीन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेद होते हैं। दो-इन्द्रियके चार स्थानोंके तीन अन्तरालोंमें एक, दो और चार शलाका प्रमाण हैं। इनका जोड़ सात होता है। यदि सात शलाकाओंमें दो-इन्द्रिय जीवके जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट-स्थितिपर्यन्त मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद चार बार संख्यातसे भाजित पल्य प्रमाण होते हैं तो चार शलाकाओंमें कितने भेद होंगे। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि शलाका सात, फलराशि दोइन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि चार शलाका। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने द्वीन्द्रिय पर्याप्तक-के उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेदोंमें-से एक घटानेपर जो शेष रहे उतने समय द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरमें-से घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका

१. एतस्याः संदृष्टेराकारः श्रीपण्डितटोडरमल्लजीकैः, अपरथैव प्रतिपादितः तत्र रचनायां वैलक्षण्येऽपि नार्थे वैलक्षण्यं। स चाकारोऽत्र १४९ तम संख्यांकितगाथायाष्टिपण्याः आबाधारचनेत्यंशे, कर्मकाण्डसंदृष्टौ च लिखितः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितिबंधविकल्पमुमन्ते। सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडेनितु स्थितिबंध-

---

सा २५) ४ पुनः प्र–श ७ फ बि प इ श १ इति द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादि
०–꠰– ७ १ १ १ १
प
१ १ १ १
कृत्वा द्वीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प १ एतेषु चरमस्य द्वीन्द्रिया-
१ १ १ १ ७
पर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति
सा २५) ५ पुनः प्र–श ७ फ–त्रि प इ श २ इति द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यानन्तरस्थिति-
०–꠰– ७ १ १ १ १
प
१ १ १ १
बन्धमादि कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प २ एतेषु चरमस्य
१ १ १ १ ७
द्वीन्द्रियपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धस्यायाम एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रः
सा २५) ७ स च ईदृश एव भवति सा २५) तथा द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा
०–꠰– ७ ०–꠰–
प प
१ १ १ १ १ १ १ १

प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि सात शलाका, फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि एक शलाका। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आवे उतने दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर भेदसे लगाकर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेद प्रमाण समयोंको दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें-से घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि सात शलाका, फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वके सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि दो शलाका। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लगाकर दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेदप्रमाण समयोंको दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य स्थितिबन्धमें घटानेपर दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। आगे आबाधाका प्रमाण कहते हैं।

दो-इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधा चार बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त पच्चीस प्रमाण है। जघन्य आबाधा उस अधिक बिना केवल पच्चीस अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसमें एक जोड़नेपर आबाधाके भेदोंका प्रमाण होता है। यहाँ भी पूर्वकी तरह तीन त्रैराशिक करना चाहिए। सो प्रमाणराशि और इच्छाराशि तो स्थितिबन्धके कथनके समान ही जानना। फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वकी

---

१. ब रूपोनातीतविकल्पमात्रसमयैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकल्पंगळं नडेवु बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पं पुट्टिदुदेंदितु पर्य्यनुयोगमागुत्तं

चतु:संख्यातभक्तावल्यधिकपञ्चविंशतिगुणितसंख्यातावलिमात्री २ जघन्या च तदाधिक्योनतन्मात्री
१ १ १ १
२ । १ २५

२ १ २५ तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पा एतावन्त: २ एतानेव उक्तत्रैराशिकानां स्थितिबन्धविकल्पा-
१ १ १ १

नपहाय फलराशीन् कृत्वा तत्तल्लब्धं स्वस्वस्थितिविकल्पानामध: संस्थाप्य तच्चतुर्विकल्पाबाधायामानां प्रथमे रूपोनलब्धमात्रान् परेषु संपूर्णतत्तल्लब्धमात्रानेव समयानपनीयापनीय तं तमाबाधायामं साधयेत्, एवमेव त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थिति: उत्कृष्टा पञ्चाशत्सागरोपममात्री सा ५० जघन्या च त्रिसंख्यातभक्तरूपोनपल्योनतदुत्कृष्टमात्री सा ५०
प
१ । ३

तथानीतसमयोत्तरतत्स्थितिविकल्पानिमान् प
१ । ३
तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा त्रिसंख्यातभक्तावल्यधिकपञ्चाशद्गुणितसंख्यातावलिमात्री २
१ ३
जघन्या च तदाधिक्योनतन्मात्री २ १ ५०
२ १ ५०

तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पानिमान् १
२
१ । ३
पुन: चतुरिन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थितिरुत्कृष्टा शतसागरोपम-

आबाधाके जितने भेद हैं उतनी जानना। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जो-जो प्रमाण आवे उतने आबाधाके भेदोंका प्रमाण जानना। सो प्रथम त्रैराशिकमें तो जितना भेदोंका प्रमाण हो उसमें एक घटानेपर जो रहे उतने समय दो-इन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधामें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका आबाधाकाल होता है। इसमें-से दूसरे त्रैराशिकमें जितने भेद आयें उतने समय घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति सम्बन्धी आबाधाका काल होता है। इसमें-से तीसरे त्रैराशिकमें जितने भेद आयें उतने समय घटानेपर दो-इन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य स्थितिबन्ध सम्बन्धी आबाधाकालका प्रमाण होता है।

दो-इन्द्रियके समान ही त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियका कथन जानना। इतना विशेष है कि यहाँ स्थिति और आबाधाका प्रमाण भिन्न-भिन्न है अत: फलराशि भिन्न है। आगे उसका कथन करते हैं—

त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर है। जघन्यस्थिति उत्कृष्टस्थितिमें-से तीन बार संख्यातसे भाजित एक कम पल्यको घटानेपर जो शेष रहे उतनी है। उत्कृष्ट-स्थितिमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़नेपर त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण तीन बार संख्यातसे भाजित पल्यप्रमाण होता है। यही त्रीन्द्रियके स्थितिबन्धका कथन करनेमें तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि है। तथा त्रीन्द्रियके उत्कृष्ट मिथ्यात्व स्थितिकी आबाधा तीन बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त पचास है। और जघन्य आबाधा केवल पचास अन्तर्मुहूर्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरलु तन्मध्यस्थितिद त्रविकल्पंगळुमनवराबाधाविकल्पंगळुमं पेळल्वेडियुमिन्ते द्वींद्रियादिगळ

मात्री सा १०० जघन्या च द्विसंख्यातभक्तरूपोनपल्योनतदुत्कृष्टमात्री सा १०० (प / १ । २) तथानीतसमयोत्तर-

तद्विकल्पानिमान् प / १ । २ तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा द्विसंख्यातभक्तावल्यधिकशतगुणितसंख्यातावलिमात्री

२ / १ । २ / २ १ । १०० जघन्या च तदाधिक्योनोत्कृष्टमात्री २ १ १०० तथानीतसमयोत्तरतद्विकल्पानिमान् २ / १ । २

पुनः असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा सहस्रसागरोपममात्री सा १००० जघन्या च रूपोनपल्य-

संख्येयभागोनतदुत्कृष्टमात्री सा १००० (प / १) तथानीतसमयोत्तरतत्स्थितिविकल्पानिमान् प / १ तन्मिथ्यात्वा-

बाधा उत्कृष्टा आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रगुणितसंख्यातावलिमात्री २ / १ / २ १ । १००० जघन्या च तदाधिक्योनतदु-

त्कृष्टमात्री २ १ १००० तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पान् इमांश्च २ / -१ द्वीन्द्रियोक्तरीत्या त्रैराशिकत्रयस्य

पृथक्-पृथक् फलराशीन् कृत्वा तत्रस्थितिविकल्पलब्धानि तत् तत्त्रिषु अन्तरालेषु संस्थाप्य आबाधाविकल्प-

है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़नेपर त्रीन्द्रियकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है। त्रीन्द्रियके आबाधाके कथन सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें यही फलराशि है। चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति सौ सागर है। जघन्यस्थिति इस उत्कृष्ट स्थितिमें-से दो बार संख्यातसे भाजित पल्यको घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उतनी है। उत्कृष्ट स्थितिमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग देकर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण दो बार संख्यातसे भाजित पल्य प्रमाण होता है। यही चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके कथन सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि जानना। तथा चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट-स्थितिकी आबाधा दो बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त सौ है। और जघन्य आबाधा केवल सौ अन्तर्मुहूर्त है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकका भाग देकर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियके आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है। यही चतुरिन्द्रियके आबाधाके कथनमें तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशिका प्रमाण है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति एक हजार सागर है। इसमें एकहीन पल्यके संख्यातवें भागको घटानेपर जघन्यस्थिति होती है। उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकसे भाजित करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर असंज्ञीके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण एक बार संख्यातसे भाजित पल्य प्रमाण है। यही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु नडदु तदुत्कृष्टस्थितिबंध विकल्पंगळुमवराबाधाविकल्पंगळं पुट्टुगुमेंदोडे पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपरु :—

मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा।
सव्वजुदी संखगुणा हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति ॥१४९॥

मध्ये स्तोकशलाकाः अधः उपरि च संख्यगुणितक्रमाः। सर्व्वयुतिः संख्यगुणा अध उपरि संख्यगुणमसंज्ञिपर्य्यंतं ॥

बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु तज्जघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंतमिर्द्देकेंद्रियंगळ मिथ्यात्वकर्म्मप्रकृतिसर्व्वस्थितिविकल्पंगळोळु मध्यवर्त्तिगळप्प सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्य्यन्तमिर्द्द स्थितिबंधविकल्पंगळं मध्यमेंबुदा मध्यस्थितिबंधविकल्पंगळेनितोळवनितमोंदु शलाकेयं माडिदुदिदु सर्व्वतः स्तोकशलाका संख्येयक्कुं। अधः आ मध्यशलाकासंख्येयिद केळगण सूक्ष्मापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पानंतरस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु बादरापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंत-

लब्धानि तेषामधः संस्थाप्य प्रागुक्ततत्तच्चतुश्चतुर्विकल्पानां प्रथमप्रथमस्य स्थित्यायामाबाधायामयोः रूपोनतल्लब्धमात्रान् द्वितीयतृतीयस्य तयोः सम्पूर्णतत्तल्लब्धमात्रानेव समयानपनीयापनीय परम्परं स्थित्यायाममाबाधायामं च साधयेत् ॥१४८॥ एतत्सर्वं मनसि धृत्वाग्रतनसूत्रमाह—

मज्झे थोवसलागा—बादरपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तेषु एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पेषु मध्ये ये सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तं मध्यविकल्पाः स्तोकाः ते एका शलाका ज्ञातव्या ∧१∧ हेट्ठा सूक्ष्मापर्याप्तक-

असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी स्थितिके कथन सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि होता है। तथा असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके संख्यातवें भागसे अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त हजार है। और जघन्य आबाधा केवल हजार अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकसे भाग देकर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है। वही असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी आबाधाके कथनमें तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि जानना। इतना विशेष कथन है शेष सब कथन दो-इन्द्रियके कथनकी तरह जानना ॥१४८॥

यह सब कथन मनमें रखकर आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

मध्यमें स्तोक शलाका है अर्थात् बादर पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तककी जघन्यस्थितिबन्ध पर्यन्त जो एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके विकल्प हैं उनमें-से सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तकको जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त विकल्प सबसे थोड़े हैं। उनकी एक शलाका जानना। 'हेट्ठा' अर्थात् इसके नीचे सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके

१. म°गलु मेनितेनित स्थितिविकल्पंगलं नडदु नडदु पुट्टुगुमे दोडे तन्मध्यस्थितिबन्ध विकल्पंगलुमनवारबाधा विकल्पंगलुमं पेल° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिद्दं स्थितिबंधविकल्पंगळु । उपरि च आ सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पानंतरोपरितनस्थितिबंधविकल्पं मोदलगोंडु बादरापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्य्यन्तमिद्दं स्थितिबंधविकल्पंगळु क्रमदिदं । संखगुणिलक्रमाः आके ळगण शलाकेगळु मेलण शलाकेगळु संख्यातगुणितंगळप्पुवु वा. अ. उ. सू. अ. उ सू. अ. ज. वा. अ. ज. सर्वयुतिः ई मध्याधस्तनोपरितनसर्व्व-
∧ ४ ∧ १ ∧ २ ∧

शलाकायुतियुं ७ हेट्ठुवरि मुन्निनंते केळगेयुं मेगेयुं संखगुणा संख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु—

सू. प. उ. वा. अ. उ. सू. अ. उ. सू. अ. ज. वा. अ. ज. सू. प. ज.
∧ २८ ∧ ४ ∧ १ ∧ २ ∧ १४ ∧

मत्तमल्ते सूक्ष्मपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पानन्तरस्थितिबंधविकल्पं मोदलगोंडु बादरपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंतमिद्दं स्थितिबंधविकल्पंगळु मेले सूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदलगोंडु बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंतमिद्दं स्थितिबंधविकल्पंगळु क्रमदिद सर्व्वयुतिय ४९ संख्यातगुणितंगळप्पुवु—

बा प उ सू प उ वा अ उ सू अ उ सू अ ज बा अ ज सू प ज बा प ज
∧ १९६ ∧ २८ ∧ ४ ∧ १ ∧ २ ∧ १४ ∧ ९८ ∧

जघन्यस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरापर्याप्तक । जघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाकाः 'उवरि च' सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरोपरितनस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च 'संखगुणिदकमा' संख्यातेन अङ्कसंदृष्टया द्व्यङ्केन गुणितक्रमा भवन्ति ∧४∧१∧२∧ 'सव्वजुदी' सर्वयुतः तदुक्तैक-द्विचतुःशलाकायुतेः सप्तभ्यः सकाशात् 'हेट्ठा' बादरापर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाकाः उवरि बादरापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च प्राग्वत् संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ∧२८∧४∧१∧२∧

जघन्यस्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका उन शलाकाओंसे संख्यात गुणी हैं। और ऊपर सूक्ष्म अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी ऊपरकी शलाका उनसे संख्यात गुणी है। इस प्रकार संख्यातगुणा अनुक्रम कहा। सो संख्यातका प्रमाण तो यथायोग्य हैं। परन्तु यहाँ समझनेके लिए संख्यातका चिह्न दोका अंक जानना। सो एकसे दूना दो होता है, सो नीचे दो शलाका और उससे दुगुना चार, सो ऊपर चार शलाका जानना ४∧१∧२ इन सबको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे नीचे बादर अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर भेदसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी जानना और ऊपर अर्थात् बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अनन्तरसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरितन शलाका उससे संख्यातगुणी जाना। सो पहलेकी शलाका चार, एक दोका जोड़ सात हुआ। उसको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर नीचे तो चौदह शलाका हुई। उन्हें संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर अट्ठाईस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इल्लि तात्पर्य्यात्थंमें तें दोडे अंकसंदृष्टियिदमुमर्त्थसंदृष्टियिदमुं पेळ्वपे मल्लि अंकसंदृष्टियिदमें तें दोडे बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु एकैकसमयहीनक्रमदिदं तन्मध्यस्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु नूरतों भत्तारनेयदु सूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं पुद्दुगुमनंतरस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु समयोनक्रमदिंदस्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु २८ इप्पत्तेंटनेयदु बादरापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमक्कु। मनंतर स्थितिविकल्पं मोदल्गोंडु समयोनक्रमदिंद स्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु नाल्कनेयदु सूक्ष्मापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमक्कुमनंतरसमयोनस्थितिबंधविकल्पमोंदनेयदु सूक्ष्मापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु। मनंतरसमयोनस्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु येरडनेयदु बादरापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु-। मनंतर समयोनस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु समयोनक्रमदिंदं स्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु पदिनाल्कुनेयदु सूक्ष्मपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु-। मनंतरसमयोनस्थितिविकल्पं मोदल्गोंडु समयोनक्रमदिंद स्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु तोंभत्तेंटनेयदु बादरपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कुमर्त्थसंदृष्टियोळु तात्पर्य्यात्थं पेळल्पडुगुमें तें दोडे बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमेकसागरोपमप्रमाणं। सा १। जघन्यस्थितिबंधविकल्पं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोनैकसागरोपमप्रमितमक्कु (सा १ / — / प / a)

१४∧ 'च' शब्दात् पुनरपि सव्वजुदी तदुक्तैकद्विचतुश्चतुर्दशाष्टाविंशतिशलाकायुतैः एकान्न पञ्चाशतः ४९ सकाशात् 'हेट्ठा' सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यान्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाका उवरिं सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च संखगुणं संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति

वा प उ ∧ १९६ ∧ २८ ∧ ४ ∧ १ ∧ २ ∧ १४ ∧ ९८ ∧ वा प ज

पुनरपि मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं 'च संखगुणिदकमा' एतावत्सूत्रं द्वीन्द्रियं प्रत्यपि योज्यम्। तथाहि— मज्झे थोवसलागा द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यस्थिति-

---

शलाका हुई। यथा २८∧४∧१∧२∧१४। इन्हें पुनः जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे नीचे अर्थात् सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्यस्थितिके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तक जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी है और ऊपर सूक्ष्म पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तक उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरितन शलाका संख्यातगुणी है। सो अठाईस, चार, एक, दो और चौदह को जोड़नेपर उनचास हुए। इनको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर अठानबे नीचेकी शलाका जानना और उसे दोसे गुणा करनेपर एक सौ छियानबे ऊपरकी शलाका जानना। यथा १९६∧२८∧४∧२∧१∧१४ ९८ इस प्रकार एकेन्द्रियका कथन किया। आगे इसी गाथाका अर्थ दो इन्द्रियमें लगाते हैं—

मध्य अर्थात् दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त भेदोंमें दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर एक-एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मितागुत्तं विरलु आदी अंते सुद्धे $\frac{प}{a}$ वड्ढिहिदे— $\frac{प}{a \mid १}$ रूवसंजुदे ठाणा यें दितु बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिगे माळ्प सर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळु पल्यासंख्यातैकभागमात्रमक्कुं। $\frac{प}{a}$। इल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमें तें दोडे यिनितु प्रक्षेपयोगशलाकेगळ्गे पल्यासंख्यातैकभागमात्रस्थितिविकल्पमागुत्तं विरलु तंतम्म मध्यादिशलाके प्र ३४३। फ $\frac{प}{a}$। इ १। २। ४। १४। २८। ९८। १९६ गळ्गेनितेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळप्पुवें दितनुपातत्रैराशिकमं माडिदोडे बंद लब्धंगळु तंतम्म स्थितिबंधविकल्पंगळप्पुवु। असण्णित्ति। ई क्रमदिदं द्वींद्रियं मोदल्गों डसंज्ञिपर्य्यंतमाद जीवंगळ पर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधविकल्पंगळुमनाबाधाविकल्पंगळुमं भाविसि स्थापिसुवुदु ॥

बन्धपर्यन्तेषु मध्ये ये द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्ता विकल्पाः स्तोकास्ते एका शलाका ज्ञातव्या। 'हेट्ठा' द्वीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाकाः उवरिं च द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरं स्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च 'संखगुणिदकमा' संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति। एवमेव 'असण्णित्ति' असंज्ञिपर्यन्तं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां ∧४∧१∧२∧ स्वस्वस्थितिबन्धविकल्पेषु अपि व्याख्यातव्यम् ॥१४९॥ अथ संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य तत्प्रागुक्तापर्याप्तकोत्कृष्टापर्याप्तकोत्कृष्टापर्याप्तकजघन्यपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धविकल्पेषु विशेषमाह—

समय घटता दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद हैं वे थोड़े हैं। अतः उनकी एक शलाका जानना। तथा हेट्ठा अर्थात् नीचे दो इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर एक-एक समय घटता दो-इन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी है और ऊपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर दो-इन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरि शलाका उससे संख्यातगुणी है। सो एकको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर अधस्तन शलाका दो होती है। उसे भी दोसे गुणा करनेपर ऊपरकी शलाका चार होती है। यथा ४ १ २। इस प्रकार दो-इन्द्रियकी शलाका कही। इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी शलाका जानना। इनकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण, स्थितिका प्रमाण तथा आबाधाके भेदोंका प्रमाण और आबाधाकालका प्रमाण भी यथासम्भव जानना ॥१४९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बा प उ सा १	सू प उ प १९६ a३४३	बा अ उ प २८ a३४३	सू अ उ प ४ a३४३	सू अ ज प १ a३४३	बा अ ज प २ a३४३	सू प ज प १४ a३४३	बा प ज प ९८ a३४३	सा —— प a) →
२ आ a बा २१ धा = सा १ स्थिति आयाम	२।१९६ a३४३ सा १ —— प १९६ a ३४३	२ २८ a३४३ सा १ —— प २२४ a३४३)	२ ४ a३४३ सा १ —— प २२८ a३४३)	२ १ a३४३ सा १ —— प २२९ a३४३)	२ । २ a३४३ सा १ —— प २३१ a३४३)	२।१४ a३४३ सा १ —— प २४५ a३४३)	२।९८ a३४३ सा १ —— प २४३ a३४३)	२१ अपवर्तित सा १ —— प a)

← [1]त्रि प उ त्रि अ उ त्रि अ ज त्रि प ज सा २५ प ४ प १ प २ सा २५ उ. स्थि. ११११ ११११ ११११ —— प ज ११११)					ति प उ ति अ उ ति अ ज ति प ज सा ५० प ४ प १ प २ सा५० १११ १११ १११ —— प १११) →				
[2]२ ११११, २५२५	२ आ.बा.वि. ४ ११११ । १	२ आ.बा.वि ११११ । १	२ २ ११११।१	२१२५	२ १११ २१५०	२ ४ १११।१	२ १ १ १११।	२ २ १ १११	२१५०

← च प उ च अ उ च अ ज च प ज सा १०० प ४ प १ प २ सा १०० ११ ११।१ ११।१ —— प ११)					अ प उ अ अ उ अ अ ज अ प ज सा १००० प४ प १ प २ सा१००० १।१ १।१ १।१ —— प १)				
२ ११ २११००	२ ४ ११।१	२ १ ११।१	२ २ ११।१	२११००	२ १ २१।१०००	२ । ४ १ । १	२ । १ १ । १	२ । २ १ । १	२१।१०००

ई रचनेय एल्ला कोष्ठवल्लि सागरवोळ्कळेदरेंबुदत्थं । यी रचनेय संपूर्णाभिप्राय मुंदे संज्ञिगे पेळ्वनंतरं व्यक्तमावपुदु ।

---

१. द्वीन्द्रिये समशलाकानां एतावत्सु स्थिति प विकल्पेषु सत्सु चतसॄणां शलाकानां कियन्तः स्थितिविकल्पाः
१ । ४
स्युः इत्येवं सर्वत्र स्थितिविकल्पास्सेद्धव्याः ।

२. द्वीन्द्रिये समशलाकानां एतावत्सु आबाधा विकल्पेषु सत्सु चतसॄणां शलाकानां कियन्त आबाधाविकल्पाः स्युरित्येवं सर्वत्र आबाधाविकल्पास्सेद्धव्याः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्नु संज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधगळ्गे विशेषमं पेळ्वपरु :—

सण्णिस्स दु हेट्ठादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं ।
ठिदिआयामो वि तहा सगठिदिठाणं व आबाहा ॥१५०॥

संज्ञिनस्तु अधस्तात् स्थितिस्थानं संख्यगुणितमुपर्युपरि स्थित्यायामोऽपि तथा स्वस्थितिस्थानमिव आबाधा ॥

संज्ञिपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं सा ७० को २। तज्जघन्यस्थितिबंधविकल्पमन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं । सा अन्तः कोटी २। मल्लि आदी अंते सुद्धे प १ १ वड्ढिहिदे। प १ १/१। रूवसंजुदे ठाणा। प १ १/१। एंदितिउ मिथ्यात्वप्रकृतिस्थितिबंधसर्व्वविकल्पंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु। तु मत्ते संज्ञिनः संज्ञिजीवंगे। अधस्तात् केळगे संज्ञिपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधं मोदलगोंडु उपर्युपरि संज्ञ्यपर्य्याप्तजघन्यस्थिति संज्ञ्यपर्य्याप्तोत्कृष्टसंज्ञिपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पंगळंतराळंगळोळु संभविसुव स्थितिस्थानं स्थितिबंधविकल्पंगळु संख्यगुणितं संख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु। स्थित्यायामोऽपि तथा। संज्ञिपर्य्याप्तजघन्यस्थित्यायाममं नोडलुमपर्य्याप्तसंज्ञिजीवजघन्यस्थितिबंधायाममुमदं नोडलुमपर्य्याप्तसंज्ञिजीवोत्कृष्टस्थितिबंधायाममुमदं नोडलु पर्य्याप्तसंज्ञिजीवोत्कृष्टस्थितिबंधायाममुमा स्थितिबंधविकल्पंगळंतंते उपर्य्युपरि

संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य तत्प्रागुक्तचतुःस्थितिविकल्पेषु तु पूर्वोक्तैकेन्द्रियाद्यसंज्ञ्यंतानां उक्तदष्टचतुर्भ्यो[1] विशेषः। स कथ्यते—

अधस्तात्संज्ञिपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धविकल्पमादिं कृत्वा उपर्युपरि तच्चतुर्विकल्पांतरालेषु स्थितिस्थानं स्थितिविकल्पप्रमाणं संख्यगुणितं संख्यातगुणितक्रमं भवति। स्थित्यायामोऽपि तथा तच्चतुःस्थितिविकल्पानां आयामोऽपि तथा उपर्युपरि संख्यातगुणितक्रमो भवति। तद्यथा—

संज्ञिनो मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि इति द्विसंख्यातगुणितपल्यमात्री प १ १

आगे संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें पूर्वमें कहे पर्याप्तकका उत्कृष्ट, अपर्याप्तकका उत्कृष्ट, अपर्याप्तकका जघन्य और पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके भेदोंमें जो विशेष बात है उसे कहते हैं।

संज्ञी पञ्चेन्द्रियके ऊपर कहे चार भेदोंमें पूर्वोक्त एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी पर्यन्त कहे आठ, चार, चार आदिसे अन्तर है। वही कहते हैं—

'हेट्ठादो' अर्थात् संज्ञी पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धसे लगाकर ऊपर-ऊपर उन चार भेदोंके अन्तरालोंमें स्थितिके भेदोंका प्रमाण क्रमसे संख्यातगुणा-संख्यातगुणा होता है। तथा स्थितिका आयाम अर्थात् समयोंका प्रमाण भी ऊपर-ऊपर क्रमसे संख्यातगुणित होता है। उसे ही आगे कहते हैं—

संज्ञी जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। सो दो बार संख्यातसे पल्यको गुणा करनेपर उतनी होती है। तथा जघन्यस्थिति मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा

---

१. ब तत्तच्चतुर्विकल्पेभ्यो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेगे मेगे संख्यगुणितं संख्यात गुणितक्रमंगळप्पुवु। स्वस्थितिस्थानमिबाबाधा तंतम्म स्थितिबंधस्थानविकल्पंगळेतंते। आबाधा आबाधाविकल्पंगळु मप्पुदरिनिल्लियुं मेगे मेगे संख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु। आ नाल्कुं स्थानंगळगे संदृष्टि—

	सं प उ सा ७० को २ उ. स्थिति	सं अ उ प १ १ ४ ५ स्थि. वि.	स अ ज प १ १ ४ ५।५ स्थि. वि.	सं प ज प १ १ १ ५।५	प १ ज. स्थिति
आबाधा	व ७००० स २ १११	अबा. वि. २१११ ४ ५	२१।११ ४ ५।५	२१। ११ १ ५।५	आबाधा जघन्य २११

यिल्लि स्थितिबंधविषयदोळु बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिगे एकसागरोपमस्थितिबंधमं माळकुमा मिथ्यात्वप्रकृतिगे आ जीवं जघन्यस्थितिबंधमं समयोनक्रमदिदं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोनैकसागरोपमस्थितिबंधमं माळ्कुमदुकारणदिदमा सर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळु पल्यासंख्यातैकभागप्रमितंगळप्पुवु प/a ई सर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळगाबाधाविकल्पंगळुं रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळप्पुवु १/२/a तन्मध्यपतितसूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं। बादरैकेन्द्रि-

---

जघन्या च अन्तःकोटाकोटिसागरोपमाणीति संख्यातपल्यमात्री प १ प्राग्वदानीतसमयोत्तरतत्स्थितिविकल्पा एतावन्तः प १ १ एतेषु संख्यातभक्तबहुभागः संज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा संज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ ४/५ एतेषु चरमस्य [1]संज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्यायामो रूपोनातीतविकल्पमात्रसमयैर्न्यूनसंज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति सा ७० को २ — प १ १ ४/५

कोड़ीके ऊपर और कोड़ाकोड़ीसे नीचे इस तरह अन्तः कोटाकोटि सागर है। सो एक बार संख्यातसे पल्यको गुणा करनेपर होती है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर तथा एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर संज्ञीके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। उसमें संख्यातसे भाग देवें। एक भागके बिना शेष बहुभाग मात्र संज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लगाकर संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेदोंका प्रमाण है। उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उतने समय संज्ञी पर्याप्तकके उत्कृष्ट

---

१. ब संज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं। सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं। बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं। सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुमें ब स्थितिबंधविकल्पंगळगे प्रत्येकं स्थित्यायामप्रमाणमुमनवराबाधाविशेषमुमं तरल्पडुगुमदें तें दोडे जेट्ठाबाहोवट्टिय जेट्ठमित्यादि। उत्कृष्टस्थितियनुत्कृष्टाबाधेयिदं भागिसिदोडाबाधाकांडकमक्कुमदं तंतम्माबाधाविकल्पंगळिदं गुणिसि लब्धदोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितिबंधवोळु कळेदोडे तंतम्म स्थितिबंधस्थानायामप्रमाणमक्कुमल्लि बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायाममेकसागरोपमप्रमाणमं तन्नुत्कृष्टाबाधेयिदं २/a/२१ भागिसिदोडाबाधाकांडकमक्कु प ११/४२१ मिवनुत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदलगोंडु सूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधपर्य्यंतमिद्दं स्थितिविकल्पंगळाबाधाविकल्पंगळिनितरिंदं २ १९६/a ३४३ गुणिसिदुवनिदं प ११/२१ । २ । १९६/a ३४३ आवलिगावलियं भाज्यभागहारंगळं कळेद शेषमपवर्त्तित-

~~~~~~

पुनस्तदेकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागः संज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा संज्ञ्यपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ ४/५ ५ एतेषु चरमस्य संज्ञ्यपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्यूनसंज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायामो भवति सा ७० को २ शेषतदेकभागः संज्ञ्यपर्याप्तक- (प १ १ ४ । /५ ५) जघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा संज्ञिपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ १/५ ५

~~~~~~

स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरमें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका प्रमाण है। तथा जो एक भाग रहा था उसमें संख्यातका भाग दीजिए। उसमें भी एक भाग बिना शेष बहुभाग मात्र संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिबन्धसे लगाकर संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। सो इतने समय संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें-से घटानेपर संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। तथा जो एक भाग

1. ब संज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिदु प १९६ / ə ३४३ इदरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पदोळु कळेदोडे सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायामप्रमाणमक्कु सा ० / प १९६ / ə ३४३ मा स्थित्यायामकाबाधेयुं रूपोनमप्पी यांबाधाविकल्पंगळनुत्कृष्टाबाधाविकल्पदोळु कळेव शेषमाबाधायाममक्कुं।

मुंदेयुमी प्रकारदिदं तंतम्माबाधायाममरियल्पडुगुं मत्तमुत्कृष्टस्थितिबंधायाममनुत्कृष्टाबाधायामदिदं भागिसिव लब्धमात्राबाधाकांडकमनिदं प ११ / २१ उत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदलगोंडु बादरापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंतमिर्द्द स्थितिविकल्पंगळाबाधाविकल्पंगळिदरिदं। २। २२४ / ə ३४३ गुणिसिदुवनिदं प ११। २। २२४ / २१। ə ३४३ भाज्यभागहाररूपविनिर्द्दावळिद्वयमं सरिगळेदपवर्त्तितशेषमिदु प २२४ / ə ३४३ इदरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पदोळु कळेदोडे

एतेषु चरमस्य संज्ञिपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनसंज्ञ्यपर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रो भवति सा ७० को २ स तु अन्तःकोटाकोटिसागरोपमात्र एव सा अन्तः को २।

प १११ / ५। ५

तथा 'सगठिदिठाणं व आबाहा' संज्ञिनो मिथ्यात्वाबाधाविकल्पा अपि 'सगठिदिठाणं व' निजस्थितिविकल्पवद्भवन्ति। तद्यथा—तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा सप्तसहस्रवर्षाणि इति त्रिसंख्यातगुणितावलिमात्री २ १ १ १ जघन्या च समयोनमुहूर्तः इति द्विसंख्यातगुणितावलिमात्री २ १ १ तथानीतसमयोत्तरतद्विकल्पा

रहा था उतना प्रमाण मात्र संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्यसे एक समय कम अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर संज्ञी पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेदोंका प्रमाण है। इस प्रमाणको संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धमें-से घटानेपर संज्ञी पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध होता है। सो यह प्रमाण अन्तःकोटाकोटी सागर जानना। यह स्थितिका कथन हुआ।

अब आबाधाका कथन करते हैं। आबाधाका कथन भी स्थितिस्थानवत् जानना। सो संज्ञीके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा सात हजार वर्ष प्रमाण है। सो तीन बार संख्यातसे गुणित आवली प्रमाण है। और जघन्य आबाधा एक समय कम एक मुहूर्त प्रमाण है। सो दो बार संख्यातसे गुणित आवली प्रमाण है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर उसे एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है। जैसे स्थितिके भेदोंमें संख्यातका भाग दे-देकर बहुभाग, बहुभाग और एक भाग प्रमाण-स्थितिके भेद तीनों अन्तरालोंमें कहे, उसी प्रकार आबाधाके सब भेदोंमें संख्यातसे भाग दे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधायामप्रमाणमक्कुं सा ० / प २२४ ० ३४३) मी प्रकारदिदं शेषसूक्ष्मापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधद्वयबादरापर्य्याप्तजघन्यसूक्ष्मपर्याप्तजघन्य बादरपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पंगळु यथाक्रमदिदमिनितप्पुवु ।

सा १ । / ० प २२८ ० ३४३)	सा १ । / ० प २२९ ० ३४३	सा १ । १ प २३१ । १ ० ३४३	सा १ । १ प २ । ४५ । १ ० ३४३	सा १ प ३४३ । १ ० ३४३	अपवर्तितमन्त्यमिदु

सा १ / प ०) ई प्रकारदिदं शेषद्वींद्रियादिगळ पर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थित्यामंगळुमवराबाधायामंगळुं तरल्पडुवुवु ॥

अनंतरं जघन्यस्थितिबंधस्वामिगळं पेळ्दपरु—

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरोऽपुव्वो ।
छव्वेगुव्वमसण्णी जहण्णमाऊण सण्णी वा ॥१५१॥

सप्तदश पंच तीर्त्थाहाराणां सूक्ष्मबादरापूर्व्वाः । षड्वैगूर्व्वमसंज्ञी जघन्यमायुषां संज्ञी वा ॥

ज्ञानावरणपंचकमुं दर्शनावरणचतुष्कमुमंतरायपंचकमुं यशस्कीर्त्तिनाममुच्चैर्गोत्रमुं सातावेदनीयमुमं बी १७ सप्तदश प्रकृतिगळ्गे जघन्यस्थितिबंधमं सूक्ष्मसांपरायं माळ्कुं । पुरुषवेदमुं

एतावन्तः—२ १ १ १ । एतान् स्थितिविकल्पवत् संख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागं बहुभागं एकभागं स्वस्वस्थितिविकल्पानामधः संस्थाप्य तत्तल्लब्धस्य चरमं चरममाबाधायामं निजस्थितिविकल्पायामवत् साधयेत्[1] ॥१५०॥ अथ जघन्यस्थितिबन्धस्वामिभेदानाह—

पञ्चज्ञानावरणचतुर्दर्शनावरणपञ्चान्तराययशस्कीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानां जघन्यस्थिति सूक्ष्मसाम्पराय

देकर बहुभाग, बहुभाग और एक भाग प्रमाण आबाधाके भेद तीनों अन्तरालोंमें जानना। तथा जैसे स्थितिके भेदोंको घटा-घटाकर स्थितिका प्रमाण कहा वैसे ही यहाँ आबाधाके भेदोंको घटा-घटाकर उस-उस स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण जानना। इस प्रकार संज्ञी पञ्चेन्द्रियके सम्बन्धमें विशेष कथन जानना ॥१५०॥

आगे जघन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंको कहते हैं—

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और सातावेदनीय इन सतरह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव ही

१. ब तत्तच्चरममाबाधायामं साधयेत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुःसंज्वलनमुमें बी प्रकृतिपंचकक्के जघन्यस्थितिबंधमननिवृत्तिकरणं माळकुं । तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुमें बी प्रकृतित्रयक्के जघन्यस्थितिबंधमनपूर्व्वकरणं माळकुं । वैक्रियिकषट्कक्के जघन्यस्थितिबंधमनसंज्ञिजीवं माळकुमायुष्यंगळगे जघन्यस्थितिबंधमं संज्ञियुं वा मेणसंज्ञियुं माळकुं ।

अनन्तरमजघन्यस्थितिबंधाविगळगे संभविसुव साद्याविभेवंगळं पेळवपरु—

अजहण्णट्ठिदिबंधो चदुव्विहो सत्तमूलपयडीणं ।
सेसतिये दुवियप्पो आउचउक्केवि दुवियप्पो ॥१५२॥

अजन्यस्थितिबंधश्चतुर्विधः सप्तमूलप्रकृतीनां । शेषत्रये द्विविकल्पः आयुश्चतुष्केऽपि द्विविकल्पः ॥

आयुर्व्वर्ज्जितज्ञानावरणाद्यष्टविध प्रकृतिगळ्गे अजन्यस्थितिबंधं साद्यनादि ध्रुवाध्रुवभेदर्दि चतुर्व्विधमक्कुं । शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रितयदोळु साद्यध्रुवभेदर्दिदं द्विविकल्पमक्कुमायुश्चतुष्टयदोळमा द्विविकल्पमेयक्कुमपवादविनिर्म्मुक्तमिदक्के विषयमक्कुं । इल्लि विशेषमं पेळवपरु ।

संजलणसुहुमचोद्दसघादीणं चदुविधो दु अजहण्णो ।
सेसतिया पुण दुविहा सेसाणं चदुविधा वि दुधा ॥१५३॥

संज्वलनसूक्ष्मचतुर्द्दशघातीनां चतुर्व्विधस्तु अजघन्यः । शेषत्रितयाः पुनर्द्विविधाः शेषाणां चतुर्व्विधा अपि द्विधा ॥

एव बध्नाति पुंवेदचतुःसंज्वलनानां अनिवृत्तिकरण एव । तीर्थकृत्वाहारकद्वययोरपूर्वकरण एव । वैक्रियिकषट्कस्य असंज्ञ्येव आयुषः संज्ञी वा असंज्ञी वा ॥१५१॥ अथाजघन्यादीनां संभवत्साद्यादिभेदानाह—

आयुर्वर्जितसप्तविधमूलप्रकृतीनां अजघन्यस्थितिबन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विधो भवति शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रितये साद्यध्रुवौ द्वावेव । आयुष्कर्मणः अजघन्यादिबन्धचतुष्केऽपि तावेव द्वौ । अपवादविनिर्मुक्तोऽस्य विषयो भवति ॥१५२॥ अत्र विशेषमाह—

करता है तथा पुरुषवेद, चार संज्वलन कषाय, इन पाँचका जघन्य स्थितिबन्ध अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीव करता है। तीर्थंकर और आहारकद्विकका जघन्य स्थितिबन्ध अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव करता है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग इस वैक्रियिकषट्कका जघन्य स्थितिबन्ध असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय करता है। आयुकर्मकी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध संज्ञी या असंज्ञी जीव करता है ॥१५१॥

आगे अजघन्य आदि स्थितिके भेदोंमें होनेवाले सादि आदि भेदोंको कहते हैं—

आयुको छोड़ सात मूल प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है। और उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट तथा जघन्य स्थितिबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकारके हैं। किन्तु आयुकर्मका चारों ही प्रकारका स्थितिबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकार है। यह कथन सन्देह रहित है अतः इसके विषयमें विशेष नहीं कहा है ॥१५२॥

उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्वलनक्रोधमानमायालोभंगळवं सूक्ष्मसांपरायनबंधचतुर्द्दशघातिगळगमजघन्यस्थितिबंधं तु मत्ते साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेददिदं चतुर्व्विधमक्कुं। शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रयंगळुं पुनः मत्ते द्विविधा साद्यध्रुवभेददिदं द्विविधंगळप्पुवु। शेषाणां शेषप्रकृतिगळेल्लम जघन्य-जघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टभेददिदं चतुर्व्विधंगळनितुं साद्यध्रुवभेददिदं द्विप्रकारस्थितिबंधमनुळ्ळुवक्कुं—

ज्ञा	द	वे	मो	आ	ना	गो	अं	१८	१०२
उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २
अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २
ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २
अ ४	अ ४	अ ४	अ ४	अ २	अ ४	अ ४	अ ४	अ ४	अ २

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणं पि होंति असुहाओ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥१५४॥

सर्व्वास्तु स्थितयः शुभाशुभानामप्यशुभाः। मानुषतिर्य्यग्देवायूंषि च मुक्त्वा शेषाणां॥

मानुषतिर्य्यग्देवायुष्यत्रितयमल्लदुळिदेल्ला शुभाशुभप्रकृतिगळ सर्व्वस्थितिगळुं संसारहेतुत्वद्दिदमशुभंगळे यप्पुवें दरियल्पडुवुवु॥

अनंतरमाबाधे यें बुदें दोडे पेळ्दपरु :—

चतुःसंज्वलनानां सूक्ष्मसांपरायबन्धचतुर्दशघातिनां च अजघन्यस्थितिबन्धः तु—पुनः चतुर्विधो भवति। शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रयमपि[1] साद्यध्रुवभेदात् द्वेधैव। शेषप्रकृतीनां अजघन्यजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टाश्चत्वारोऽपि तथा द्विधा ॥१५३॥

मानुष्यतिर्यग्देवायूंषि मुक्त्वा शेषसर्वशुभाशुभप्रकृतीनां सर्वाःस्थितयः संसारहेतुत्वादशुभा एवेति ज्ञातव्यम् ॥१५४॥ अथाबाधां लक्षयति—

चार संज्वलन कषायोंका तथा सूक्ष्म साम्परायमें बँधनेवाली चौदह घाति प्रकृतियों-का (पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, चार दर्शनावरण) अजघन्य स्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवके भेदसे चार-चार प्रकार है। शेष जघन्यबन्ध, अनुत्कृष्ट बन्ध और उत्कृष्ट बन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकारके हैं। इनके सिवाय शेष प्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट तथा उत्कृष्ट चारों प्रकारका बन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकार हैं ॥१५३॥

ज्ञा.	द.	वे.	मो.	आ.	ना.	गो.	अं.	१८	१०२
उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २
अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २
ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २
अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. २

मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु और देवायुको छोड़कर शेष सभी शुभ और अशुभ प्रकृतियोंकी सब स्थितियाँ संसारका कारण होनेसे अशुभ ही होती हैं। ऐसा जानना चाहिए ॥१५४॥

आगे आबाधाका लक्षण कहते हैं—

---

१. ब °त्कृष्टाः पुनः सा°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण ।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे ॥१५५॥

कर्म्मस्वरूपेणागतद्रव्यं न चैत्युदयरूपेण । रूपेणोदीरणाया वा आबाधा यावत्तावद्भवेत् ॥

कार्म्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पंदलक्षणयोगहेतुविंद कार्म्मण वर्ग्गणायात-पुद्गलस्कंधंगळु ज्ञानावरणादिमूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदंगळिंदं परिणमिसि जीवप्रदेशंगळोळन्योन्य-प्रदेशानुप्रवेशलक्षणबंधरूपदिनिर्द्दवक्के फलदानपरिणतिलक्षणोदयरूपदिनुदेयावळियनेय्ददेयुमपक्व-पाचनलक्षणोदीरणारूपदिनुदयक्केयुं बारदेन्नेवरमिप्पुवुदन्नेवरमाबाधाकालमेंदु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदु ॥

अनंतरमाबाधेयं मूलप्रकृतिगळोळु पेळ्दपरु :—

उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडकोडि उवहीणं ।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥१५६॥

उदयं प्रति सप्तानामाबाधा कोटीकोटच्युदधीनां । वर्षशतं तत्प्रतिभागेन शेषस्थितीनां च ॥

आयुर्व्वर्जितज्ञानावरणादिसप्तप्रकृतिगळ्गाबाधे येनितेनितेंदोडे उदयं प्रति उदयमनाश्र-यिसि कोटीकोटिसागरोपमंगळ्गे शतवर्षप्रमितमक्कुमन्त्तागुत्तं विरलु तत्प्रतिभागदिदं शेषस्थिति-गळ्गेयुमरियल्पडुगुमदेतेंदोडिल्लि त्रैराशिकविधानं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडेककोटीकोटिसागरोपम-स्थितिगे नूरुवर्षमाबाधेयागलु सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमस्थितिगे नितावाधेयक्कुमेंदितनुपात-

---

कार्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगहेतुना कार्मणवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाः मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेण आत्मप्रदेशेषु अन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशलक्षणबन्धरूपेणावस्थिताः फलदानपरिणति-लक्षणोदयरूपेण अपक्वपाचनलक्षणोदीरणारूपेण वा यावन्नायान्ति तावान् काल आबाधेत्युच्यते ॥१५५॥

अथ तां मूलप्रकृतिष्वाह—

आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुदयं प्रति आबाधा कोटीकोटिसागरोपमाणां शतवर्षमात्री भवति तथा सति शेषस्थितीनां तत्प्रतिभागेनैव ज्ञातव्या । तद्यथा—

कार्मण शरीर नामक नामकर्मके उदयसे और जीवके प्रदेशोंकी चंचलतारूप योगके निमित्तसे कार्मण वर्गणारूपसे आये पुद्गलस्कन्ध मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिरूप होकर आत्माके प्रदेशोंमें परस्परमें प्रवेश करते हैं उसीको बन्ध कहते हैं। बन्धरूपसे अवस्थित वे पौद्गलिक कर्म जबतक उदयरूप या उदीरणारूप नहीं होते उस कालको आबाधा कहते हैं। अर्थात् कर्मप्रकृतिका बन्ध होनेपर जबतक उसका उदय या उदीरणा नहीं होती, तबतकका समय उस प्रकृतिका आबाधा काल कहा जाता है। फल देने रूप परिणमनको तो उदय कहते हैं। और असमयमें ही अपक्व कर्मका पकना उदीरणा है ॥१५५॥

आगे मूल प्रकृतियोंमें आबाधा कहते हैं—

आयुको छोड़ सात कर्मोंकी उदयकी अपेक्षा आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिकी एक सौ वर्ष होती है। ऐसा होनेपर शेष स्थितिओंकी आबाधा इसी प्रतिभागसे जानना। वही कहते हैं—एक कोड़ाकोड़ी सागरकी सौ वर्ष आबाधा होती है तो सत्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रैराशिकमं माडि प्र। सा १। को २। फ। व १००। इ। सा ७०। को २। बंद लब्धं मिथ्यात्वप्रकृति उत्कृष्टस्थितिगाबाधे सप्तसहस्रप्रमितमक्कु ७००० मी प्रकारदिदं शेष चालीसिय तीसिय वीसियादिगळगे स्थितिप्रतिभागदिदमाबाधेयक्कुं। सण्णि असण्णि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा

इत्यादि प्र सा २५। फ $\frac{२ \; ११११}{२१ । २५}$ इ। सा २५ $\frac{= \; ४}{७}$ लब्धमाबाधे $\frac{२ \; ११११}{२१ । २५ । \frac{४}{७}}$ इत्यादि ॥

अनंतरमन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिगाबाधेयं पेळदपरु :—

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥१५७॥

अन्तःकोटीकोटिस्थितेरन्तर्मुहूर्त्तमाबाधा। संख्यातगुणविहीना सर्व्वजघन्यस्थितेर्भवेत् ॥

अन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिगे आबाधेयन्तर्मुहूर्त्तमक्कुं। २१। सर्व्वजघन्यस्थितिगाबाधेयदं नोडलु संख्यातगुणहीनमक्कुं $\frac{=}{२१}$ / ४ प्र। मु १०८००००। फ सा १। को २। इ। मु १।

कोटीकोटिसागरोपमस्य शतवर्षं तदा सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्य किमिति ? त्रैराशिके कृते प्र-सा १ को २। फ-व १००। इ सा ७० को २ लब्धं मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधा सप्तसहस्री भवति ७०००। एवं शेषचालीसियतीसियवीसियादीनामप्यानेतव्या। 'सण्णिअसण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा' इत्यादि प्र-सा २५। फ $\frac{२ \; ११११}{२ \; १ \; २५}$ इ सा २५ $\frac{४}{७}$ लब्धा $\frac{२ \; ११११}{२ \; १ । २५ । \frac{४}{७}}$ इत्यादि। अथान्तःकोटीकोटिसागरोपमस्याह—

अन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितेराबाधा अन्तर्मुहूर्तो भवति २ १ सर्वजघन्यस्थितेस्तु ततः संख्यातगुणहीना भवति $\frac{२ \; १}{४}$ प्र—१०,८००००। फ सा १ को २। इ मु १ लब्धस्थितिः ९, २५, ९२, ५९२।

कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिकी आबाधा कितनी होगी? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि सौ वर्ष, इच्छाराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर लब्धराशिका प्रमाण सात हजार वर्ष आता है। वही मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट आबाधा है। इसी प्रकार अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण इच्छाराशि करनेपर अपने-अपने आबाधा कालका प्रमाण आता है। जिनकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनका आबाधा काल चार हजार वर्ष प्रमाण है। जिनकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनकी आबाधा तीन हजार वर्ष है। इसी तरह अन्य भी प्रकृतियोंकी आबाधा जानना। 'सण्णि असण्णि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा।' सो इस गाथाके द्वारा दो-इन्द्रिय आदिके आबाधा कही है उसे भी जान लेना ॥१५६॥

आगे अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थितिकी आबाधा कहते हैं—

अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थितिका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। और सब कर्मोंकी जघन्यस्थितिकी आबाधा उससे संख्यातगुणा हीन है। सौ वर्षके दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त होते हैं। सो इतनी आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागरकी होती है तो एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लब्धस्थिति ९२५९२५९२ ६४/१०८ प्रमाण। सा १। को २। फ आबाधा। १०८००००। इ ९२५९२५९२। ६४/१०८ लब्धं मुहूर्त्तं १। प्र। सा ७०। को २। फ आबाधा व ७०००। इ सा १। लब्धमाबाधे। उच्छ्वा १/१ आयुष्यकाबाधेयं पेळदपरु :—

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेप अद्धवो त्ति हवे।
आउस्स य आबाहा ण ठिदिपडिभागमाउस्स ॥१५८॥

पूर्व्वाणां कोटित्रिभागादासंक्षेपाद्धा पर्य्यन्तं भवेदायुष्यस्य आबाधा न स्थितिप्रतिभागमायुषः ॥

आयुष्कर्म्मक्के पूर्व्वकोटिवर्षंगळ त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुं। जघन्यमन्तर्म्मुहूर्त्तमक्कुं। अथवा पक्षांतरदिदमसंक्षेपाद्धेयक्कुमऽसंक्षेपाद्धे एंबुदाउदेंदोडे—न विद्यते अस्मादन्यः संक्षेपः असंक्षेपः स चासावद्धा च असंक्षेपाद्धा येंदावल्यसंख्यातैकभागमेंबु पेळ्वरा पक्षांतरमनंगीकरिसि पेळल्पट्टुदु। आयुष्यकर्म्मक्की प्रकारदिदमाबाधेयल्लदे स्थितिप्रतिभागदिदमाबाधेयिल्ल। देवनारक-

---

६४/१०८ प्र—सा १ को २। फ—मु १०८००००। इ ९२५९२५९२। ६४/१०८ लब्धो मुहूर्तः १। प्र—सा ७० को २। फ मबाधा ७०००। इ सा १ लब्धं आबाधा उच्छ्वासः १/१ ॥१५७॥ आयुष आह—

आयुःकर्मण उत्कृष्टाबाधा पूर्वकोटिवर्षत्रिभागो भवति जघन्योऽन्तर्मुहूर्तो वा पक्षान्तरेण असंक्षेपाद्धा वा भवति। न विद्यते अस्मादन्यः संक्षेपः असंक्षेपः, स चासौ अद्धा च असंक्षेपाद्धा आवल्यसंख्येयभागमात्रत्वात्।

मुहूर्त आबाधा कितनी स्थितिको होती है। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त, फलराशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, इच्छाराशि एक मुहूर्त। सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर नौ कोटि पच्चीस लाख बानबे हजार पाँच सौ बानबे सागर और एक सागरके एक सौ आठ भागोंमें-से चौंसठ भाग स्थितिकी एक मुहूर्त आबाधा हुई। तथा प्रमाणराशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त, इच्छाराशि नौ कोटि पच्चीस लाख बानबे हजार पाँच सौ बानबे और एक सौ आठ भागोंमें-से चौंसठ भाग प्रमाण सागर। ऐसा करनेपर आबाधा एक मुहूर्त होती है। तथा प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि सात हजार वर्ष, इच्छाराशि एक सागर। ऐसा करनेपर फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध साधिक संख्यात उच्छ्वास आया वही एक सागरकी स्थितिमें आबाधा काल जानना ॥१५७॥

आयुकर्मकी आबाधा कहते हैं—

आयुकर्मकी उत्कृष्ट आबाधा एक कोटि पूर्व वर्षका तीसरा भाग होती है। जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। अन्य किसी आचार्यके मतसे 'आसंक्षेपाद्धा' प्रमाण है। जिससे थोड़ा काल दूसरा नहीं है उसे आसंक्षेपाद्धा कहते हैं सो यह काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है। आयुकर्मकी आबाधा इसी प्रकार है अन्य कर्मोंकी तरह स्थितिके प्रतिभागके अनुसार नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगभूमिजर्गसंख्यातवर्षायुष्यंगळप्पुवरिवर्गे तु पूर्व्वकोटिवर्षत्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुमें दोडे देवनारकर्गे स्वस्थितिषण्मासावसानशेषमाववळिक्कं तत्त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुं। भोगभूमिजर्गे स्वस्थितिनवमासावशेषमादबळिक्कं तत्त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुमवु कारणदिद कर्म्मभूमितिर्य्यंग्मनुष्यरुगळ्गे पूर्व्वकोटिवर्षत्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुमवु मोदलगोंडु असंक्षेपाद्धावसानमादाबाधाविकल्पंगळोळु देवनारकभोगभूमिजरुगळगाबाधेयरियल्पडुगुमसंक्षेपाद्धे यावुदेंदोडे अष्टापकर्षंगळोळेल्लियुमायुर्ब्बंधमागदे भुज्यमानायुष्यमन्तर्म्मुहूर्तविशेषमागुत्तं विरलु उत्तरभवायुष्यं मुन्नमेयंतर्म्मुहूर्त्तमात्रसमयप्रबद्धंगळ बंधं (बद्धं) निष्ठापिसल्पडुगुं। केलंबराचार्य्यरुगळावल्यसंख्यातेकभागमसंक्षेपाद्धेयवशेषमागुत्तिरलुत्तर भवायुष्यं निष्ठापिसल्पडुगुमेंबरु। ई येरडुं प्रवाह्योपदेशंगळप्पुवरिनंगीकृतंगळु। असंक्षेपाद्धेयुमदरिनन्तर्म्मुहूर्तमा पक्षदोळु जघन्यमक्कुमुत्कृष्टांतर्म्मुहूर्त्तं समयोनमुहूर्त्तमेयेंदरिउवु—

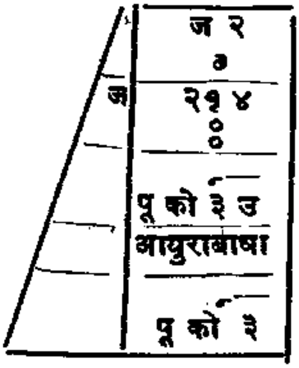

आयुःकर्मण एवमेव भवति न च स्थितिप्रतिभागेन। तर्हि असंख्यातवर्षायुष्काणां त्रिभागे उत्कृष्टा कथं नोक्ता? इति तन्न, देवनारकाणां स्वस्थितौ षण्मासेषु भोगभूमिजानां नवमासेषु च अवशिष्टेषु त्रिभागेन आयुर्बन्धसंभवात्। यद्यष्टापकर्षेषु क्वचिन्नायुर्बद्धं तदावल्यसंख्येयभागमात्रायाः समयोनमुहूर्तमात्राया वा असंक्षेपाद्धायाः प्रागेवोत्तरभवायुरन्तर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् बद्ध्वा निष्ठापयति। एतौ द्वावपि पक्षौ प्रवाह्योपदेशत्वात् अङ्गी-

शंका—असंख्यात वर्षकी जिनकी आयु है उनका त्रिभाग प्रमाण आबाधा क्यों नहीं कही?

समाधान—क्योंकि देव और नारकियोंके तो अपनी स्थितिमें छह मास और भोगभूमियोंमें नौ मास शेष रहनेपर उसके त्रिभागमें आयुका बन्ध होता है। और कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यंचोंमें अपनी पूर्ण आयुके त्रिभागमें आयुबन्ध होता है। कर्मभूमियोंकी उत्कृष्ट स्थिति कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण है। इससे उसीका त्रिभाग उत्कृष्ट आबाधाकाल कहा है। सो त्रिभागसे आठ अपकर्षोंमें आयुबन्ध होता है। यदि कदाचित् किसी भी अपकर्षमें आयुका बन्ध न हो तो किसी आचार्यके मतसे तो आवलीका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण और किसी आचार्यके मतसे एक समय कम मुहूर्त प्रमाण आयुके शेष रहनेसे पहले ही उत्तर भवकी आयुकर्मके अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण समय प्रबद्धोंका बन्ध करके निष्ठापन करता है। ये दोनों मत आचार्य परम्पराका उपदेश होनेसे स्वीकार किये हैं ॥१५८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदीरणेयनाश्रयिसि मूलप्रकृतिगळगाबाधाविशेषमं पेळ्दपरु :—

आवलियं आबाहोदीरणमासेज्ज सत्तकम्माणं ।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण ॥१५९॥

आवलिकाबाधोदीरणामाश्रित्य सप्तकर्म्मणां । परभवायुषश्चोदीरणा नास्ति नियमेन ॥

उदीरणेयनाश्रयिसि आयुर्व्वज्जितसप्तमूलप्रकृतिगळगाबाधेयावलिकामात्रमेयक्कुमदनचळावळि येंबुददं कळिदु प्रथमादिनिषेकं गळोळपकृष्टद्रव्यमनुदयावळियोळमुपरितनस्थितियोळतिच्छापनावळियं कळेवुळिद सर्व्वस्थितिनिषेकंगळोळ "अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि तं रूअण अद्धाण अद्धेण ऊणेण णिसेय भागहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयं तं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं। तत्तो विसेसहीणकम"-मेंदितु प्रथमादिगुणहाणिद्रव्यंगळं तंतम्म प्रथमादिनिषेकंगळं बिट्टु द्वितीयादिनिषेकंगलोळु तंतम्म गुणहानिसंबंधिविशेषहीनक्रमदिंदं

कृतौ ॥१५८॥ उदीरणां प्रत्याह—

उदीरणामाश्रित्य आयुर्वर्जितसप्तमूलप्रकृतीनां आबाधा आवलिकैव भवति, सा चावलिः अचलावलिरित्युच्यते, तां त्यक्त्वा अपकृष्टद्रव्यं उदयावल्यां उपरितनस्थितौ तु चरमे अतिस्थापनावलीं त्यक्त्वा नानागुणहानिषु च सर्वनिषेकेषु, "अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि तं रूऊणद्धाणद्धेण ऊणेण णिसेयभागहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयं तं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं तत्तो विसेसहीणकमं" इति

आगे उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा कहते हैं—

उदीरणाको लेकर आयुके बिना सात मूल प्रकृतियोंकी आबाधा एक आवली प्रमाण ही होती है। अर्थात् जो कर्म उदीरणारूप होता है तो बँधनेके पश्चात् एक आवली प्रमाण-काल बीतनेपर ही उदीरणारूप होता है। इससे उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा एक आवली प्रमाण कही है। कर्म बँधनेपर एक आवली तक तो जैसा बँधा वैसा ही रहता है, उदयरूप या उदीरणारूप नहीं होता। इसीसे इस आवलीको अचलावली कहते हैं। इस अचलावलीको छोड़ पीछे कर्मपरमाणुओंमें-से कितने ही कर्म परमाणुओंका अपकर्षण करके जिन्हें उदयावलीमें देता है, वे तो आवलीकालमें उदय देकर खिर जाते हैं। और जिन्हें ऊपरकी स्थितिमें देता है वे उदयावलीके ऊपरकी स्थितिके अनुसार खिरते हैं। अन्तिम आवली प्रमाण अतिस्थापनावलीको छोड़ जो परमाणु प्राप्त होते हैं वे नानागुण हानिके द्वारा सर्व-निषेकोंमें खिरते हैं। सो उदयावलीमें दिया उदीरणा द्रव्य कैसे खिरता है यह कहते हैं—

विवक्षित कालके समयोंका प्रमाण यहाँ गच्छ है। उससे सर्वधन अर्थात् विवक्षित सर्व परमाणुओंके प्रमाणमें भाग देनेपर मध्यम धन अर्थात् मध्यके समयोंमें जितने खिरते हैं उनका प्रमाण आता है। उस मध्यम धनमें, एक कम गच्छके आधा प्रमाण सो निषेक भाग-हार जो दो गुणहानि उसमें घटानेपर जो प्रमाण रहे उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे सो चयका प्रमाण जानना। उस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथम समयमें जितने परमाणु खिरते हैं उनका प्रमाण आता है। द्वितीय आदि समय सम्बन्धी निषेकोंमें एक-एक चयहीन परमाणु खिरते हैं। इन सबका विशेष स्वरूप पहले कह आये हैं और आगे भी कहेंगे। इस प्रकार असमयमें ही उदीरणाके द्वारा उदयावलीमें प्राप्त कर्मके खिरनेका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निक्षेपिसुवुदु उदीरणाविधानदोळमेंदरिउवु ॥

नानानिषेक स्थिति ।

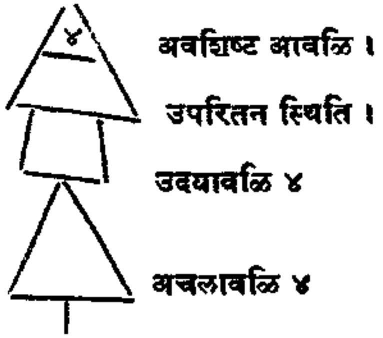

आबाधावर्ज्जितस्थितियं निषेकमेंदु पेळ्दपरु :—

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं ।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥१६०॥

आबाधोनितकर्म्मस्थितिर्निषेकस्तु सप्तकर्म्मणां । आयुषो निषेकः पुनः स्वस्थितिर्भवति नियमेन ॥

आयुर्व्वर्जितज्ञानावरणादि सप्तमूलप्रकृतिगळ्गे आबाधोनित कर्म्मस्थिति । तु मत्ते निषेकमक्कुमायुष्यकर्म्मक्के पुनः मत्ते स्वस्थितियेनितेनितुं निषेकमक्कुं नियमविदं ।[1]

निक्षिपेत् उदीरणाविधाने इति ज्ञातव्यम् ।

∧ ४ अतिस्थापनावलिः
उपरितनस्थितिः
∧ ४ उदयावलिः
∧ ४ अचलावलिः

॥१५९॥ निषेकस्वरूपमाह—

आयुर्वर्जितसप्तमूलप्रकृतीनां आबाधोनितकर्मस्थितिः तु—पुनः निषेकः स्यात् । आयुषः पुनः स्वस्थितिः सर्वैव निषेको भवति नियमेन ॥१६०॥

कथन जानना । आयुकर्ममें उदीरणा जिस आयुको भोग रहे हैं उसी आयुमें होती है । जो आगामी उत्तरभवकी आयु बाँधी है उसकी उदीरणा नियमसे नहीं होती ॥१५९॥

आगे निषेकका स्वरूप कहते हैं—

आयुको छोड़ सात मूल प्रकृतियोंके निषेक उनकी आबाधाकालसे हीन जितनी स्थितिका प्रमाण है उतने हैं । आशय यह है कि प्रति समय जितने कर्मपरमाणु खिरते हैं उनके समूहका नाम निषेक है । सो सात कर्मोंमें-से किसी भी कर्मकी जितनी स्थिति बँधी हो उसमेंसे आबाधाकालमें तो कोई परमाणु खिरता नहीं । आबाधाकाल बीतनेपर प्रति समय कर्मपरमाणु क्रमसे खिरते हैं । अतः कर्मकी स्थितिमें-से आबाधाकाल घटानेपर जो काल शेष रहे उसके समयोंका जितना प्रमाण हो उतना ही निषेकोंका प्रमाण होता है । सो सात कर्मोंके निषेक तो उनकी आबाधाहीन स्थिति प्रमाण जानना । किन्तु आयुकर्मकी

१. क °दिदं । आयुष्य कर्म सर्व निषेकस्थिति ∧ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आबाहं बोलाविय पढमणिसेगम्मि देइ बहुगं तु ।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसेगोत्ति ॥१६१॥

आबाधामपनीय प्रथमनिषेके ददाति बहुकं तु । ततो विशेषहीनं द्वितीयस्याद्यनिषेकपर्य्यंतं ॥

कर्म्मस्थितियोळाबाधेयं कळेदु प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु बहुद्रव्यमं कुडुगुं । तु मत्ते ततो विशेषहीनं अल्लिद मेलण द्वितीयनिषेकं मोदलागि द्वितीयगुणहान्याद्यनिषेकपर्य्यंतं विशेषहीनक्रमदिदं कुडुगुं ॥

बिदिये बिदियणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु ।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि ॥१६२॥

द्वितीये द्वितीयनिषेके हानिः पूर्व्वहानेरर्द्धं तु । एवं गुणहानिं प्रति हानिरर्द्धार्द्धं भवति ॥

तु मत्ते द्वितीये द्वितीयगुणहानियोळु द्वितीयनिषेके द्वितीयनिषेकदोळु हानिः हानि पूर्व्वहानेरर्द्धं प्रथमगुणहानिय हानियं नोडलर्द्धमक्कुमिन्तु गुणहानिं प्रति गुणहानि । गुणहानिदप्पदे हानिः हानी अर्द्धार्द्धं भवति अर्द्धार्द्धक्रममक्कुं । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । द्रव्य ६३०० । गुणहानि ८ । नानागुणहानि ६ । स्थिति ४८ । अन्योन्याभ्यस्तराशि

च १००
२००
४००
८००
१६००
प्र ३२००

कर्मस्थितावाबाधां त्यक्त्वा प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके बहुद्रव्यं ददाति । तु—पुनः तत उपरि द्वितीयादिनिषेकेषु द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकपर्यन्तेषु विशेषहीनक्रमेण ददाति ॥१६१॥

तु—पुनः द्वितीयगुणहानौ द्वितीयनिषेके हानिः पूर्वहानेरर्धं भवति । एवं गुणहानिं गुणहानिं प्रति

स्थितिमें-से आबाधाकाल नहीं घटाना क्योंकि आयुकर्मकी आबाधा तो जिस भवमें उसका बन्ध किया उसी भवमें पूर्ण हो गयी। पीछे जो जन्म धारण किया उसमें प्रथम समयसे लगाकर अन्त समय पर्यन्त प्रतिसमय आयुकर्मके निषेक खिरते हैं। अतः आयुकर्मकी जितनी स्थिति होती है उसके समयोंका जितना प्रमाण होता है उतने ही आयुकर्मके निषेक होते हैं ॥१६०॥

सो आबाधाकालको छोड़कर, क्योंकि आबाधाकालमें तो कोई परमाणु खिरता नहीं, अतः उसके अनन्तर समयमें अर्थात् प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकमें अन्य निषेकोंसे बहुत द्रव्य देना चाहिए। उसमें बहुत परमाणु खिरते हैं। तथा प्रथम गुणहानिके द्वितीय आदि निषेकोंमें द्वितीय गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त एक-एक चयहीन द्रव्य देना चाहिए ॥१६१॥

तथा दूसरी गुणहानिके दूसरे निषेकमें प्रथम निषेकसे पहले प्रत्येक निषेकमें जितना घटाया था उससे आधा घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना द्रव्य देना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे आदि निषेकोंमें तीसरी गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त इतना-इतना ही घटाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानागुणहानिनिषेकरचने णाणावरणादि ७ निषेकस्थिति

आयुष्य कर्म सर्वनिषेकस्थिति

आयुष्यक्के स्वस्थितियेनिजनितुं निषेकमक्कुं

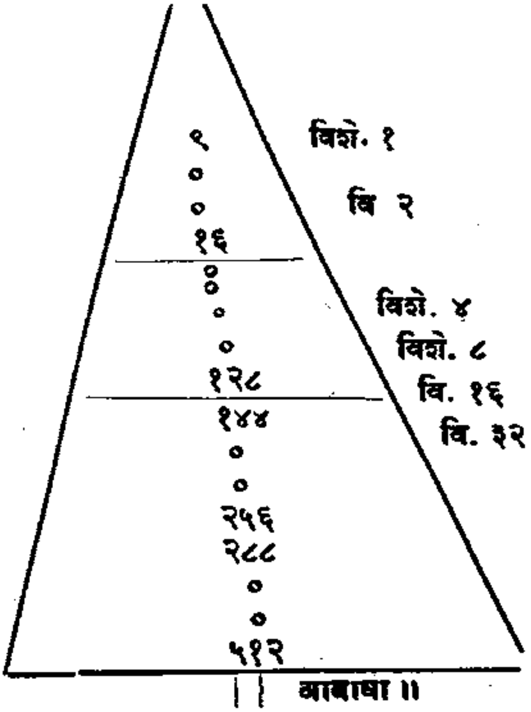

इन्तु स्थितिबंधप्रकरणं समाप्तमावुदु ॥

हानिः अर्धार्धक्रमा भवति । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ द्रव्यं ६३०० । गुणहानिः ८ । नानागुणहानिः ६ । स्थितिः ४८ । अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४ ।

चाहिए। आगे प्रत्येक गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है। इस कथनको अंकसंदृष्टि द्वारा कहते हैं—

विवक्षित कर्मके परमाणु ६३०० तिरसठ सौ। आबाधा बिना स्थितिका प्रमाण अड़तालीस ४८। एक गुणहानि आठ समय प्रमाण। नाना गुणहानि छह। दो गुणहानि सोलह। अन्योन्याभ्यस्त राशि चौंसठ ६४। प्रथम गुणहानिमें परमाणु बत्तीस सौ ३२०० खिरते हैं। द्वितीयादि गुणहानिमें आधे-आधे खिरते हैं—३२००।१६००।८००।४००।२००।१००। एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका परिमाण आता है। उससे दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त जानना। सो प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य बत्तीस सौ। उसमें प्रथम गुणहानिके गच्छके प्रमाण आठसे भाग देनेपर मध्यधन चार सौ आता है। एक कम गच्छका आधा प्रमाण साढ़े तीनको निषेक भागहार सोलहमें-से घटाने पर साढ़े बारह रहे। उस साढ़े बारहका भाग मध्यधनमें देनेपर बत्तीस आये। वही चय जानना। उसको दो गुणहानि सोलहसे गुणा करनेपर पाँच सौ बारह हुए। यही प्रथम निषेक सम्बन्धी द्रव्यका प्रमाण है। उसमें एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरमनुभागबंधमं त्रयोविंशतिगाथासूत्रंगळिदं पेळ्दपरु :—

चरम—१००
२००
४००
८००
१६००
प्रथम—३२००

नानागुणहानिनिषेकरचना

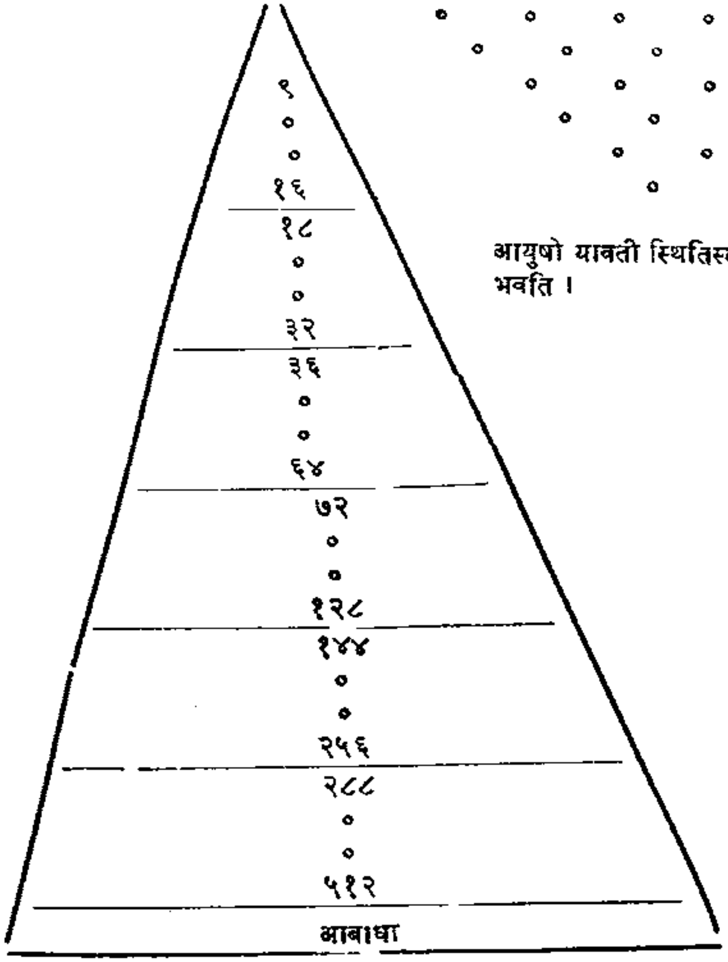

आयुःकर्मसर्वनिषेकस्थितिः ॥१६२॥

आयुषो यावती स्थितिस्तावान् निषेको भवति ।

इति स्थितिबन्धकारणं समाप्तं । अथानुभागबन्धं त्रयोविंशतिगाथाभिराह—

सम्बन्धी द्रव्य होता है—५१२।४८०।४४८।४१६।३८४।३५२।३२०।२८८। इस दो सौ अठासीमें एक चय घटनेपर दो सौ छप्पन होते हैं। यह प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेक पाँच सौ बारहका आधा है। सो यही द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक है। यहाँ हानिरूप चयका प्रमाण पूर्वसे आधा अर्थात् सोलह है। सो तीसरी गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त सोलह-सोलह घटानेपर २५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४ होते हैं। उसमें एक चय घटानेपर एक सौ अठाईस हुए। यह दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेक दो सौ छप्पनसे आधा है। सो यह तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक है। यहाँ चयका प्रमाण पूर्वसे भी आधा आठ है। इस तरह अन्तकी छठी गुणहानि पर्यन्त सर्वधनका, निषेकोंके द्रव्यका और चयका प्रमाण आधा-आधा जानना। इस क्रमसे तरेसठ सौ परमाणु खिरते हैं ॥१६२॥

स्थितिबन्धका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे तेईस गाथाओंसे अनुभाग बन्धका कथन करते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥१६३॥

शुभप्रकृतीनां विशुध्या तीव्रः अशुभानां संक्लेशेन । विपरीतेन जघन्योऽनुभागः सर्व्वप्रकृतीनाम् ॥

शुभप्रकृतीनां सातादि प्रशस्तप्रकृतिगळ्गे । विशुद्धया विशुद्धिपरिणामदिदं । तीव्रः तीव्रानुभागमक्कुमशुभानाम् असाताद्यप्रशस्तप्रकृतिगळ्गे । संक्लेशेन संक्लेशपरिणामदिद तीव्रः तीव्रानुभागमक्कुं । विपरीतेन संक्लेशपरिणामदिद प्रशस्तप्रकृतिगळ्गे जघन्यानुभागमुं विशुद्धिपरिणामदिदमप्रशस्तप्रकृतिगळ्गे जघन्यानुभागमुमक्कु । सर्व्वप्रकृतीनां मूलोत्तरोत्तर प्रकृतिगळ्गेनितोळवनितक्कुं ॥

बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ ।
बासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥१६४॥

द्वाचत्वारिंशत् तु प्रशस्ताः विशुद्धिगुणोत्कटस्य तीव्राः । द्व्यशीत्यप्रशस्ताः मिथ्यादृष्टयुत्कटसंक्लिष्टस्य ॥

प्रशस्ताः सातादिप्रशस्तप्रकृतिगळु द्विचत्वारिंशत्संख्याप्रमितंगळु विशुद्धिगुणोत्कटस्य विशुद्धिगुणदिदमुत्कटनप्प जीवंगे तीव्राः तीव्रानुभागंगळप्पुवु । द्व्यशीत्यप्रशस्ताः असातादिवर्णचतुष्टयोपेतद्व्यशीत्यप्रशस्तप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टयुत्कटसंक्लिष्टस्य मिथ्यादृष्टयुत्कटसंक्लिष्टजीवंगे । तु मत्ते तीव्राः तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

शुभप्रकृतीनां सातादीनां प्रशस्तानां विशुद्धिपरिणामेन, असाताद्यप्रशस्तानां संक्लेशपरिणामेन च तीव्रानुभागो भवति । विपरीतेन संक्लेशपरिणामेन प्रशस्तानां विशुद्धपरिणामेन अप्रशस्तानां च जघन्यानुभागो भवति ॥१६३॥

सातादिप्रशस्ताःद्वाचत्वारिंशद्विशुद्धिगुणेनोत्कटस्य, असातादिचतुर्वर्णोपेताप्रशस्ताःद्व्यशीतिः मिथ्यादृष्टयुत्कटस्य संक्लिष्टस्य च तीव्रानुभागा भवन्ति ॥१६४॥

शुभ प्रकृति अर्थात् साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका विशुद्धि परिणामोंसे तीव्र अर्थात् उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है । और असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका संक्लेश परिणामोंसे तीव्र अर्थात् उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध होता है । और असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका संक्लेश परिणामोसे तीव्र अनुभागबन्ध होता है । तथा विपरीतसे अर्थात् संक्लेश परिणामसे प्रशस्त प्रकृतियोंका और विशुद्धि परिणामसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध होता है । इस प्रकार सब प्रकृतियोंका अनुभाग बन्ध होता है । मन्दकषाय रूप परिणामोंको विशुद्ध और तीव्रकषाय रूप परिणामोंको संक्लेश कहते हैं ॥१६३॥

सातावेदनीय आदि बयालीस प्रशस्त प्रकृतियाँ, जिसके विशुद्धि गुणकी तीव्रता होती है, उसके तीव्र अनुभाग बन्धको लिए हुए बँधती हैं । और असाता आदि बयासी अप्रशस्त प्रकृतियाँ उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टिके तीव्र अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१६४॥

विशेषार्थ—यहाँ शुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्शको प्रशस्त प्रकृतियोंमें गिना है और अशुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्शको अप्रशस्त प्रकृतियोंमें गिना है । इस तरह इन चारकी गणना दोनोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु ।
मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्माइट्ठिस्स सेसाओ ॥१६५॥

आतप उद्योतो मनुष्यतिर्यगायुष्यं प्रशस्तासु । मिथ्यादृष्टेर्भवंति तीव्राः सम्यग्दृष्टेः शेषाः ॥

आतपनामकर्म्ममुमुद्योतनामकर्म्ममुं मानवायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुमें बी नाल्कुं ४ प्रकृतिगळु प्रशस्तप्रकृतिगळोळु विशुद्धमिथ्यादृष्टिगे तीव्रानुभागंगळप्पुवु । शेषाः शेषसातादि अष्टात्रिंशत्प्रशस्तप्रकृतिगळु विशुद्धसम्यग्दृष्टिगळिगे तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

मणुओरालदुवज्जं विशुद्धसुरणिरयअविरदे तिव्वा ।
देवाउ अप्पमत्ते खवगे अवसेसबत्तीसा ॥१६६॥

मनुष्यौदारिकद्वयं वज्रं विशुद्धसुरनारकाविरते तीव्राः । देवायुरप्रमत्ते क्षपके अवशेष द्वात्रिंशत् ॥

सम्यग्दृष्टिगळ तीव्रानुभागप्रकृतिगळु मूवत्तॆंट ३८ रोळु मनुष्यद्विकमुमौदारिकद्विकमुं वज्रऋषभनाराचसंहननमुमेंब प्रकृतिपंचकं अनंतानुबंधियं विसंयोजिसुवनिवृत्तिकरणपरिणामचरमसमयद विशुद्धसुरनारकरुगळसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे तीव्रानुभागंगळप्पुवु । अप्रमत्तनोळु देवायुष्यं तीव्रानुभागमक्कुं । अवशेषद्वात्रिंशत्प्रशस्त प्रकृतिगळु क्षपकनोळु तीव्रानुभागमप्पुवु ॥

प्रशस्तप्रकृतिषु आतपः उद्योतः मानवतिर्यगायुषी चेति चतस्रः विशुद्धमिथ्यादृष्टेः शेषाः सातादयष्टात्रिंशद्विशुद्धसम्यग्दृष्टेश्च तीव्रानुभागा भवन्ति ॥१६५॥

सम्यग्दृष्टिषु उक्ताष्टात्रिंशन्मध्ये मनुष्यद्विकं औदारिकद्विकं च वज्रवृषभनाराचसंहननं चेति पञ्चकं अनन्तानुबन्धिविसंयोजनकानिवृत्तिकरणचरमसमयविशुद्धसुरनारकासंयतसम्यग्दृष्टौ तीव्रानुभागं भवति । देवायुः अप्रमत्ते भवति । अवशिष्टा द्वात्रिंशत् क्षपके एव ॥१६६॥

होनेसे बन्ध प्रकृतियोंकी संख्या १२० में चार बढ़ गयी; क्योंकि किसीको कोई रूप आदि अच्छा लगता है और किसीको वही बुरा लगता है ॥१६४॥

इन बयालीस प्रशस्त प्रकृतियोंमें-से आतप, उद्योत, मनुष्यायु इन चारका तो विशुद्ध मिथ्यादृष्टिके तीव्र अनुभाग बन्ध होता है। और शेष साता आदि अड़तीस प्रकृतियोंका विशुद्ध सम्यग्दृष्टीके तीव्र अनुभागबन्ध होता है ॥१६५॥

किन्तु सम्यग्दृष्टीके तीव्र अनुभाग सहित बँधनेवाली अड़तीस प्रकृतियोंमें-से मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग और वज्रर्षभनाराच संहनन इन पाँचका तीव्र अनुभागबन्ध जो देव या नारकी असंयत सम्यग्दृष्टी अनन्तानुबन्धीके विसंयोजनके लिए तीन करण करते हुए अनिवृत्ति करणके अन्तके समयमें वर्तमान होता है उसके होता है। देवायुका तीव्र अनुभागबन्ध अप्रमत्त गुणस्थानमें होता है। शेष बत्तीस प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध क्षपक श्रेणिवाले जीवके ही होता है ॥१६६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवघाददहीणतीसे अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे ।
सम्मेलिदे हवंति हु खवगस्सवसेसबत्तीसा ॥१६७॥

उपघातहीनत्रिंशत् अपूर्व्वकरणस्योच्चयशः शातान् । सम्मिलिते भवंति खलु क्षपकस्याव-शेषद्वात्रिंशत् ॥

अपूर्व्वकरणस्य अपूर्व्वकरणक्षपकन उपघातनामकर्म्मवर्ज्जितषष्ठभागव्युच्छिन्नत्रिंशत्प्रकृतिगळु 'छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सगगमणपंचिंदी । तेजदु हारदु' इत्यादिगळनू सूक्ष्मसांपरायन उच्चैर्गोत्रमं यशस्कीर्तियुमं सातवेदनीयमुमं कूडुत्तिरलु अवशेषद्वात्रिंशत्प्रकृतिगळु क्षपकनोळु तीव्रानुभागंगळप्पुवेंदु पेळद प्रकृतिगळप्पुवु ॥

मिच्छस्संतिमणवयं णरतिरियाऊणि वामणरतिरिए ।
एइंदिय आदावं थावरणामं च सुरमिच्छे ॥१६८॥

मिथ्यादृष्टयंतिमनवकं नरतिर्य्यगायुर्व्वामनरतिरश्चि । एकेंद्रियमातपस्थावरनाम च सुरमिथ्यादृष्टौ ॥

अप्रशस्तप्रकृतिगळु अशुभवर्णचतुष्कयुक्तंगळ ८२ प्रशस्त प्रकृतिगळु ४ कूडि ८६ प्रकृतिगळगे मिथ्यादृष्टिजीवने तीव्रानुभागमं माळकुमाव प्रकृतिगळगाव मिथ्यादृष्टि माळकुमेंदोडे मिथ्यादृष्टचन्तिमनवकं सूक्ष्मत्रयविकलेन्द्रियत्रयनरकद्विकनरकायुष्यमेंबी मिथ्यादृष्टयंतिम नवकमुं संक्लिष्टरोळु मनुष्यतिर्य्यगायुर्द्वयं विशुद्धमिथ्यादृष्टि मनुष्यतिर्यंचरोळु कूडि ११ प्रकृतिगळु तीव्रानुभागंगळप्पुवु । एकेंद्रियजातिनाममुं स्थावरनाममुं संक्लिष्टरोळु आतपं विशुद्धरोळिन्तु प्रकृतित्रयं स्वस्थिति षण्मासावशेषमागुत्तं विरलु सुरमिथ्यादृष्टियोळु तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

अपूर्वकरणक्षपकस्य उपघातवर्जितषष्ठभागव्युच्छित्तित्रिंशति सूक्ष्मसांपरायस्य उच्चैर्गोत्रयशस्कीर्तिसात-वेदनीयेषु मिलितेषु ताः अवशेषद्वात्रिंशत्प्रकृतयो भवन्ति ॥१६७॥

अप्रशस्तद्व्यशीतिः आतपादयश्चतस्रश्च मिथ्यादृष्टावेव तीव्रानुभागा उक्ताः । तत्र सूक्ष्मत्रयादिमिथ्या-दृष्टयंतिमनवकं नरतिरश्चोः संक्लिष्टयोः नरतिर्यगायुषी च विशुद्धयोर्भवन्ति । एकेन्द्रियं स्थावरं च संक्लिष्टे आतपस्तु विशुद्धे स्वस्थितिषण्मासावशेषे सुरमिथ्यादृष्टौ भवन्ति ॥१६८॥

क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थानके छठे भागमें जिन तीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही है उनमें-से उपघातको छोड़कर उनतीस तथा सूक्ष्म साम्परायमें बँधनेवाली उच्चगोत्र, यशःकीर्ति और सातावेदनीय मिलकर उक्त बत्तीस प्रकृतियाँ होती हैं ॥१६७॥

बयासी अप्रशस्त प्रकृति और आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यंचायु इन छियासीका तीव्र अनुभाग सहित बन्ध मिथ्यादृष्टिके ही होता है। उनमेंसे जिन सोलह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिके कही है उनमेंसे सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण आदि अन्तकी नौ प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध संक्लेश परिणामयुक्त मनुष्य और तिर्यंच करते हैं। और मनुष्यायु तिर्यंचायुका तीव्र अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामवाले देव मनुष्य या तिर्यंच करते हैं तथा एकेन्द्रिय, स्थावरका संक्लेश परिणामवाला और आतपका विशुद्ध परिणामवाला मिथ्यादृष्टि देव अपनी आयुके छह मास शेष रहनेपर तीव्र अनुभाग बन्ध करता है ॥१६८॥

क-२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जोओ तमतमगे सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं ।
तिरियदुगं सेसा पुण चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य ॥१६९॥

उद्योतस्तमस्तमके सुरनारकमिथ्यादृष्टावसंप्राप्तं । तिर्य्यग्द्विकं शेषाः पुनश्चतुर्ग्गतिमिथ्यादृष्टौ क्लिष्टे च ॥

तमस्तमके सप्तमनरकभूमियोळुपशमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिविशुद्धियुतनारकनोळुद्योतनामकर्म्मं तीव्रानुभागमक्कुमेकॆंदोडे अतिविशुद्धंगुद्योतनामकर्म्मबंधमिल्लप्पुदरिदं । मत्तं सुरनारकमिथ्यादृष्टिजीवंगळोळु असंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुं तिर्य्यग्द्विकमेंब त्रिप्रकृतिगळु तीव्रानुभागंगळप्पुवु । शेषाष्टोत्तरषष्टिप्रकृतिगळु ६८ । पुनः मत्ते संक्लिष्टचतुर्ग्गतिमिथ्यादृष्टिजीवनोळु तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

यितुत्कृष्टानुभागमं पेळ्दनंतरं जघन्यानुभागबंधस्वामिगळं पेळ्दपरु :—

वण्णचउक्कमसत्थं उवघादो खवगघादि पणवीसं ।
तीसाणमवरबंधो सगसगवोच्छेदठाणम्मि ॥१७०॥

वर्ण्णचतुष्कमशस्तं उपघातः क्षपकघाति पंचविंशतिः त्रिंशतामवरबंधः स्वस्वव्युच्छित्तिस्थाने ॥

अप्रशस्तवर्णचतुष्कमुं उपघातनाममुं ज्ञानावरणपंचकमुमन्तरायपंचकमुं दर्शनावरणचतुष्कमुं निद्रेयुं प्रचलेयुं हास्यमुं रतियुं भयमुं जुगुप्सेयुं पुंवेदमुं संज्वलन चतुष्कमुमॆंब क्षपकरुगळ पंचविंशतिघातिगळुं कूडि ३० मूवत्तुं प्रकृतिगळ जघन्यानुभागबंधं स्वस्वबंधव्युच्छित्तिस्थानदोळेयक्कुं । अशु० व ४ उ १ णा ५ वि ५ दं ४ नि १ प्र १ हा १ र १ । भ १ जु १ पुं १ सं ४ कूडि ३० ॥

तमस्तमके सप्तमनरके उपशमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिविशुद्धनारके उद्योतः तीव्रानुभागो भवति अतिविशुद्धस्य तदबन्धात् । पुनः सुरनारकमिथ्यादृष्टौ असंप्राप्तसृपाटिकासंहननं तिर्यग्द्विकं च । शेषाः अष्टषष्टिः ६८ पुनः संक्लिष्टचातुर्गतिकमिथ्यादृष्टौ ॥१६९॥ अथ जघन्यानुभागबन्धकानाह—

अप्रशस्तवर्णचतुष्कं उपघातः पञ्चज्ञानावरणपञ्चान्तरायचक्षुर्दर्शनावरणनिद्राप्रचलाहास्यरतिभयजुगुप्सापुंवेदचतुःसंज्वलनाश्चेति त्रिंशतः जघन्यानुभागः स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिस्थाने भवति ॥१७०॥

सातवें नरकमें उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि विशुद्ध नारकी उद्योतका तीव्र अनुभागबन्ध करता है, क्योंकि अतिविशुद्धके उद्योत प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । तथा मिथ्यादृष्टि देव और नारकीके असंप्राप्तासृपाटिका संहनन तिर्यंचगति और तिर्यंचगत्यानुपूर्वीका तीव्र अनुभागबन्ध होता है । शेष अड़सठ प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध चारों गतिके संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ॥१६९॥

आगे जघन्य अनुभागबन्ध करनेवालोंको कहते हैं—

अप्रशस्त वर्णादि चार, उपघात, पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, चार दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, चार संज्वलन कषाय इन तीस प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके स्थानमें होता है अर्थात् जहाँ इनकी बन्धव्युच्छित्ति होती है वहीं जघन्य अनुभागबन्ध होता है ॥१७०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणथीणतियं मिच्छं मिच्छे अयदे हु बिदियकोहादी ।
देसे तदियकसाया संजमगुणपत्थिदे सोलं ॥१७१॥

अनन्तानुबंधिस्त्यानगृद्धित्रयं मिथ्यात्वं मिथ्यादृष्टौ असंयते खलु द्वितीयक्रोधादयः। देशव्रते तृतीयकषायः संयमगुणप्रस्थिते षोडश ॥

अनंतानुबंधिचतुष्कमुं स्त्यानगृद्धित्रयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुमें ब ८ अष्टप्रकृतिगळु संयमगुणप्रास्थितनप्प संयमगुणाभिमुखनप्प विशुद्धमिथ्यादृष्टियोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभंगळु ४ नाल्कुं संयमाभिमुखनप्प विशुद्धासंयतनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभंगळु ४ नाल्कुं संयमाभिमुखनप्प देशसंयतनोळु विशुद्धनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। अदरिनो षोडशप्रकृतिगळुं संयमगुणप्रास्थितरोळे जघन्यानुभागंगळप्पुवेंदु पेळल्पट्टुवु। अ ४ स्त्या ३ मि १ अ ४ प्र ४ ॥

आहारमप्पमत्ते पमत्तसुद्धेव अरदिसोगाणं ।
णरतिरिये सुहुमतियं वियलं वेगुव्वछक्काऊ ॥१७२॥

आहारमप्रमत्ते प्रमत्तसुद्धे एवारतिशोकयोः। नरतिरश्चोः सूक्ष्मत्रयं विकलं वैगुर्व्वंषट्कमायुः ॥

आहारकद्वयं प्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिदं प्रमत्तगुणाभिमुखसंक्लिष्टाप्रमत्तसंयतनोळु जघन्यानुभागमक्कुं। अरतिशोकद्वयमप्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिदमप्रमत्तगुणाभिमुखविशुद्धप्रमत्तसंयतनोळु जघन्यानुभागमक्कुं। सूक्ष्मत्रयमुं विकलत्रयमुं वैक्रियिकषट्कमुमायुश्चतुष्कमुमें ब १६ प्रकृतिगळु नरतिर्य्यंचरोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। आ २। अ १। शो १। सू ३। वि ३। वै ६। आ ४॥

अनन्तानुबन्धिनः स्त्यानगृद्धित्रयं मिथ्यात्वं च मिथ्यादृष्टौ, अप्रत्याख्यानकषायाः असंयते, प्रत्याख्यानकषायाः देशसंयते इतीमाः षोडशप्रकृतयः तत्र तत्र संयमगुणाभिमुखे एव विशुद्धजीवे जघन्यानुभागा भवन्ति ॥१७१॥

आहारकद्वयं प्रशस्तत्वात् प्रमत्तगुणाभिमुखसंक्लिष्टाप्रमत्ते जघन्यानुभागं भवति । अरतिशोकौ अप्रशस्तत्वात् अप्रमत्तगुणाभिमुखविशुद्धप्रमत्ते एव। सूक्ष्मत्रयं विकलत्रयं वैक्रियिकषट्कं आयुश्चतुष्कं च नरतिरश्चोरेव ॥१७२॥

अनन्तानुबन्धी चार कषाय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, और मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टिमें, चार अप्रत्याख्यान कषायोंका असंयतमें, चार प्रत्याख्यान कषायोंका देशसंयतमें, इस प्रकार ये सोलह प्रकृतियाँ अपने-अपने गुणस्थानोंमें संयमगुण धारण करनेके अभिमुख विशुद्ध जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७१॥

आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। अतः इनका जघन्य अनुभागबन्ध प्रमत्तगुणस्थानके अभिमुख हुए संक्लेश परिणामवाले अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवके होता है। अरति और शोक अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। अतः इनका जघन्य अनुभागबन्ध अप्रमत्त गुणस्थानके अभिमुख हुए विशुद्ध प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवके होता है। सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्मि तिरियदुगं ।
णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं ॥१७३॥

सुरनारकेषूद्योतः औदारिकद्विकं तमस्तमे तिर्य्यग्द्विकं । नीचं च त्रिगतिमध्यमपरिणामे स्थावरैकाक्षं ॥

सुरनारकरोळुद्योतमुमौदारिकद्विकमुं जघन्यानुभागंगळप्पुवल्लि देवक्कंळतिविशुद्धरादोडुद्योतनाममं मोदल्गे कट्टुवरल्लवु कारणदिदमुद्योतनामं प्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिदं सुरनारकरुगळु संक्लिष्टरुगळे जघन्यानुभागमनदक्के माळ्परु। तिर्य्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रमुमें ब प्रकृतित्रयं सप्तमपृथ्विय नारकनोळु विशुद्धनोळु जघन्यानुभागमक्कुं। स्थावरनाममुमेकेंद्रियजातिनाममुमें बेरडुं प्रकृतिगळु नरकगतिरहित शेषत्रिगतिजीवंगळ तीव्रविशुद्धि संक्लेशपरिणाममल्लद मध्यमपरिणामदोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। उ १। औ २। ति २। नी १। था १। ए १॥

सोहम्मोत्ति य तावं तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्मि ।
चदुगदिवामकिलिट्ठे पण्णरस दुवे विसोहीये ॥१७४॥

सौधर्म्मपर्य्यन्तमातपः तीर्थकरमविरते मनुष्ये। चतुर्गतिवामक्लिष्टे पंचदश द्वे विशुद्धे ॥

भवनत्रयमादियागि सौधर्म्मद्वयपर्य्यन्तमाद देवक्कंळातपनाममं संक्लिष्टरु जघन्यानुभागमं माळ्परु। नरकगतिगमनाभिमुखनप्प असंयतनोळु मनुष्यनोळु तीर्थकरनाममं जघन्यानुभाग-

---

उद्योतः औदारिकद्विकं च सुरनारके जघन्यानुभागं लभते। तत्र उद्योतः अतिविशुद्धदेवे बन्धाभावात् प्रशस्तत्वात् संक्लिष्टे एव लभते। तिर्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रं च सप्तमपृथ्वीनारके विशुद्धे, स्थावरमेकेन्द्रियं च नारकाद्विना शेषत्रिगतिजे तीव्रविशुद्धिसंक्लेशरहिते मध्यमपरिणामे एव ॥१७३॥

आतपनामकर्म भवनत्रये सौधर्मद्वये च संक्लिष्टे जघन्यानुभागं भवति तीर्थकृत्त्वं नरकगमनाभिमुखा-

---

नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग और चार आयु इन सोलह प्रकृतियोंको मनुष्य और तिर्यंच जघन्य अनुभाग सहित बाँधते हैं ॥१७२॥

विशेषार्थ—गाथामें चार आयु नहीं गिनायी हैं। टीकामें ही गिनायी हैं।

उद्योत और औदारिक द्विक देव और नारकीके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं। उनमें-से उद्योत प्रकृतिका बन्ध अति विशुद्ध परिणामवाले देवके नहीं होता। अत: संक्लेश परिणामीके ही जघन्य अनुभाग सहित बँधती है। तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और नीच गोत्र सातवें नरकमें विशुद्ध परिणामी नारकीके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं। स्थावर, एकेन्द्रिय ये दो प्रकृतियाँ नारकी बिना शेष तीन गतिवाले जीवके, जिसके परिणाम न तो तीव्र विशुद्ध होते हैं और न तीव्र संक्लेशयुक्त होते हैं, किन्तु मध्यम परिणाम होते हैं उसीके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७३॥

आतप प्रकृति भवनत्रिक और सौधर्म ईशान स्वर्गके संक्लेश परिणामवाले देवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती है। तीर्थंकर प्रकृति नरक जानेके अभिमुख असंयत सम्यक्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मक्कं । चतुर्गतिय मिथ्यादृष्टिसंक्लिष्टनोळु मुंपण सूत्रदोळु पेळ्व पंचदश प्रकृतिगळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु । मत्तमेरडु प्रकृतिगळु विशुद्धनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवउवाउवें दोडे पेळ्दपरः—

परघाददुगं तेजदु तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिंदी ।
अगुरुलहुं च किलिट्ठे इत्थिणउंसं विसोहीये ॥१७५॥

परघातद्विकं तैजसद्विकं त्रसवर्णचतुष्कनिर्म्माणपंचेंद्रियाण्यगुरुलघुश्च क्लिष्टे स्त्रीनपुंसके विशुद्धे ॥

परघातमुमुच्छ्वासमुं तैजसशरीरनाममुं कार्म्मणशरीरनाममुं त्रसबादरपर्य्याप्तप्रत्येकशरीरचतुष्कमुं शुभवर्णचतुष्कमुं निर्म्माण पंचेंद्रियजातिनाममुमगुरुलघुनाममुमेंबिवु १५ पंचदशप्रकृतिगळें बुववकुमिवु चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसंक्लिष्टजीवनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु एकें दोडे इवु प्रशस्तप्रकृतिगळप्पुवरिंदं, स्त्रीनपुंसकंगळेरडुमप्रशस्तप्रकृतिगळप्पुवरिंदं चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिविशुद्धनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु । अ १ । ति १ । प १ । उ १ । ते २ । त्र १ । बा १ । प १ । प्र १ । व १ । ग १ । र १ । स्प १ । नि १ । प १ । अगु १ । स्त्री १ । न १ ॥

सम्मो वा मिच्छो वा अट्ठ अपरियट्टमज्झिमो य जदि ।
परिवट्टमाणमज्झिममिच्छाइट्ठी दु तेवीसं ॥१७६॥

सम्यग्दृष्टिर्वा मिथ्यादृष्टिर्वा अष्ट अपरिवर्त्तमानमध्यमश्च यदि । परिवर्तमानमध्यममिथ्यादृष्टिस्तु त्रयोविंशति ॥

संयतमनुष्ये एव । उत्तरसूत्रोक्तपञ्चदशप्रकृतयः चतुर्गतिकमिथ्यादृष्टौ संक्लिष्टौ एव, द्वे प्रकृती विशुद्धे एव ॥१७४॥ अमुमुत्तरार्धमेव[1] स्पष्टयति—

परघातोच्छ्वासौ तैजसकार्मणे त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकानि शुभवर्णचतुष्कं निर्माणं पञ्चेन्द्रियं अगुरुलघु चेति पञ्चदशप्रकृतयः चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ संक्लिष्टे जघन्यानुभागा भवन्ति प्रशस्तत्वात् । स्त्रीषंढवेदौ तस्मिन् विशुद्धे एव अप्रशस्तत्वात् ॥१७५॥

दृष्टी मनुष्यके जघन्य अनुभाग सहित बँधती है। आगे कही गयी। पन्द्रह प्रकृतियाँ चारों गतिके संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टी जीवके और दो प्रकृतियाँ चारों गतिके विशुद्ध परिणामी जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७४॥

आगे उन्हीं प्रकृतियोंको कहते हैं।

परघात, उच्छ्वास, तैजस, कार्मण, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ वर्णादि चार, निर्माण, पंचेन्द्रिय, अगुरुलघु ये पन्द्रह प्रकृतियाँ चारों गतिके संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टी जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं; क्योंकि ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। तथा स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ये दोनों अप्रशस्त हैं अतः इनका चारों गतिके विशुद्ध जीवके जघन्य अनुभागबन्ध होता है ॥१७५॥

---

१. ब °राद्धार्थमेव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दृष्टिमेण्मिथ्यादृष्टियागलु वक्ष्यमाणसूत्रदोळ्पेळ्व ३१ एकाधिकत्रिंशत् प्रकृतिगळोळु प्रथमोक्ताष्टप्रकृतिगळ्गे मध्यमश्च यदि अपरिवर्त्तमानमध्यमपरिणामपरिणतनादोडे जघन्यानुभागमं माळ्कुं। परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामियप्प मिथ्यादृष्टि तु मत्ते शेषत्रयोविंशतिगळ्गे जघन्यानुभागमं माळ्कुमबावुवेंदोडे पेळ्दपरु :—

थिरसुहजससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं।
संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च ॥१७७॥

स्थिरशुभयशःसातद्विकमुभयस्मिन् मिथ्यादृष्टावेवोच्चसंस्थानं संहननं गमनं नरसुभगादेयानां युग्मं च ॥

स्थिरास्थिरशुभाशुभयशस्कीर्त्ययशस्कीर्त्तिसातवेदनीयमसातवेदनीयमेंबी प्रकृत्यष्टकमुभयस्मिन्। सम्यग्दृष्टियोळं मेण्मिथ्यादृष्टियोळागलु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। येत्तलानुमवर्गळु मपरिवर्त्तमानमध्यमपरिणामिगळादोडे मिथ्यादृष्टियोळे परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामपरिणतनोळु उच्चैर्गोत्रमुं संस्थानषट्कमुं संहननषट्कमुं प्रशस्ताप्रशस्तगमनयुग्ममुं। मनुष्ययुग्ममुं सुरयुग्ममुं सुभगयुग्ममुं आदेययुग्ममुमेंबी त्रयोविंशति प्रकृतिगळ्गे जघन्यानुभागंगळप्पुवु। थिर २। शु २। ज २। सा २। उभये। उ १। सं ६। सं ६। विहा २। म २। सु २। सु २। आ २। जघन्यानुभागदोळु पेळ्दी अपरिवर्त्तमानपरिवर्त्तमानमध्यमपरिणामंगळ्गे लक्षणमेंतेंदोडे। अणुसमयं अनुसमयं। केवळं

सम्यग्दृष्टिर्वा मिथ्यादृष्टिर्वा वक्ष्यमाणसूत्रोक्तैकत्रिंशत्प्रकृतिषु प्रथमोक्ताष्टानां यद्यपरिवर्तमानमध्यमपरिणामस्तदा जघन्यानुभागं करोति, शेषत्रयोविंशतेस्तु पुनः परिवर्तमानमध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिरेव करोति ॥१७६॥ ताः काः ? इत्याह—

स्थिरास्थिरशुभाशुभयशोऽयशःसातासातान्यष्टौ उभयस्मिन् सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा जघन्यानुभागानि यद्यपरिवर्तमानमध्यमपरिणामाः संति, मिथ्यादृष्टावेव परिवर्तमानमध्यमपरिणामे उच्चैर्गोत्रं संस्थानषट्कं संहननषट्कं प्रशस्ताप्रशस्तगमने नरसुरसुभगादेययुग्मानीति त्रयोविंशतेर्जघन्यानुभागो भवति ॥१७७॥ तौ अपरिवर्तमानपरिवर्तमानमध्यपरिणामौ लक्षयति—

आगेकी गाथामें कही इकतीस प्रकृतियोंमें-से प्रथम कही आठ प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टि करता है। शेष तेईसका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तन मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टी ही करता है ॥१७६॥

उन इकतीस प्रकृतियोंको कहते हैं—

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, साता, असाता ये आठ अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यादृष्टिके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं। तथा उच्चगोत्र, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय ये तेईस प्रकृतियाँ परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टी जीवके ही जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं। यहाँ प्रसंगवश अपरिवर्तमान और परिवर्तमान मध्यम परिणामका लक्षण कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्ढमाणा हायमाणा च केवलं वर्द्धमाना हीयमानाश्च। जे संकिळेससविसोहि परिणामा ये संक्लेशविशुद्धिपरिणामाः ते अपरियत्तमाणा णाम तेऽपरिवर्त्तमाना नाम। जेत्थ पुण यत्र पुनः। ठाइदूण स्थित्वा परिणामान्तरं गंतूण परिणामांतरं गत्वा। एगदो एकतः। आदिसमये आदिसमये। हि स्फुटं। आगमणं संभवदि आगमनं संभवति। ते परिणामा ते परिणामाः परियत्तमाणा णाम परिवर्त्तमाना नाम। तत्थ तत्र उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णात्ति उत्कृष्टा मध्यमा जघन्या इति तिविहा परिणामा त्रिविधाः परिणामाः। ण न। तत्थ तत्र। सव्वविसुद्धिपरिणामेहि सर्व्वविशुद्धिपरिणामैः जहण्णो अणुभागो होदि जघन्योऽनुभागो भवति। अप्पसत्थपयडि अणुभागादो अप्रशस्तप्रकृत्यनुभागात्। अणंतगुणपसत्थपयडि अणुभागस्स अणंतगुणवड्ढिप्पसंगादो अनन्तगुणप्रशस्तप्रकृत्यनुभागस्यानन्तगुणवृद्धिप्रसंगात्। ण न। सव्वसंकिलिट्ठपरिणामेहिय सर्व्वसंक्लिष्टपरिणामैश्च तिव्वसंकिळिस्सेण तीव्रसंक्लेशेन। असुहाणं पयडीणं अशुभानां प्रकृतीनां अणुभागवड्ढिप्पसंगादो अनुभागवृद्धिप्रसंगात्। तम्हा तस्मात्। जहण्णुक्कस्सपरिणामणिराकरणट्ठं जघन्योत्कृष्टपरिणामनिराकरणार्थं परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेहित्ति उत्तं परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामैरित्युक्तम्।

प्रतिसमयं केवलवर्द्धमानहीयमानंगळु माववु केलवु संक्लेशविशुद्धिपरिणामंगळवनपरिवर्त्तमानंगळेंबुवु। आवुवु केलवु मत्ते परिणामंगळोळिरुतिद्दवु परिणामान्तरमनेय्दि बोंदरत्तणिदमे

अणुसमयं—अनुसमयं, केवलं वड्ढमाणा हीयमाणा च—केवलं वर्धमाना हीयमानाश्च, जे संकिलेसविसोहिपरिणामा—ये संक्लेशविशुद्धिपरिणामाः ते अपरियत्तमाणा णाम—ते अपरिवर्तमाना नाम। जेत्थ पुण—यत्र पुनः, ठाइदूण—स्थित्वा परिणामांतरं गंतूणं—परिणामांतरं गत्वा, एगदो—एकतः आदिसमए हि—आदिसमये हि, स्फुटं आगमणं संभवदि—आगमनं संभवति ते परिणाम—ते परिणामाः परिवर्तमाणा णाम—परिवर्तमाना नाम। तत्थ—तत्र उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णा त्ति—उत्कृष्टा मध्यमा जघन्या इति तिविहा परिणामा—त्रिविधाः परिणामाः ण—न। तत्थ—तत्र सव्वविसुद्धपरिणामेहि—सर्वविशुद्धपरिणामैः, जहण्णो अणुभागो होदि—जघन्योऽनुभागो भवति। अप्पसत्थपयडीअणुभागादो—अप्रशस्तप्रकृत्यनुभागात्, अणंतगुणपसत्थपयडी अणुभागस्स अणंत-

जो संक्लेशरूप या विशुद्धरूप परिणाम प्रतिसमय बढ़ते ही जायें या घटते ही जायें उन्हें अपरिवर्तमान परिणाम कहते हैं क्योंकि वे परिणाम पलटकर पीछेकी ओर नहीं आते। और जिस परिणाममें स्थित हो परिणामान्तरको प्राप्त होकर पुनः उसी परिणाममें आना सम्भव हो उन्हें परिवर्तमान कहते हैं क्योंकि यहाँ पलटकर पुनः उसी परिणाममें आना सम्भव है। परिणाम तीन प्रकारके हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। उनमें-से सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता है। क्योंकि अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागसे प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग अनन्तगुणा होता है। अतः उसमें अनन्तगुणी वृद्धिका प्रसंग आता है। तथा सर्वोत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे भी जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता; क्योंकि तीव्र संक्लेशसे अशुभ प्रकृतियोंके अनुभागकी वृद्धिका प्रसंग आता है। अतः जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंके निराकरणके लिए परिवर्तमान मध्यम परिणामोंमें पूर्वोक्त तेईस प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध कहा है। आशय यह है कि तेईस प्रकृतियोंमें प्रशस्त और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोदल समयदल्लिगे हि स्फुटमागि आगमनं संभविसुगुमा परिणमंगळु परिवर्त्तमानंगल बुवक्कुमल्लि उत्कृष्टंगळुं मध्यमंगळुं जघन्यंगळुमें दितु त्रिविधपरिणामंगळप्पुवल्लि सर्व्वविशुद्धिपरिणामंगळिदं प्रशस्त प्रकृतिगळ्गे जघन्यानुभागमुमागदु। अप्रशस्तप्रकृतिगळनुभागमं नोडलुं प्रशस्तप्रकृतिगळ अनन्तगुणानुभागक्के अनन्तगुणवृद्धिप्रसंगमुमक्कुमप्पुवरिदं सर्व्वसंक्लेशपरिणामंगळिदमुं अप्रशस्त-प्रकृतिगळ्गे जघन्यानुभागमागदु। तीव्रसंक्लेशदिंदमप्रशस्तप्रकृतिगळगनुभागवृद्धिप्रसंगमप्पुदरिद-मन्तुमल्लदु कारर्णादिदं जघन्योत्कृष्टपरिणामनिराकरणनिमित्तमागि परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामंग-ळिदमें दितु पेळल्पट्टुदु ॥

अनन्तरं मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागंगळगे साद्यनादि ध्रुवाध्रुवानु-भागबंधसंभवासंभवमं पेळ्दपरु :—

घादीणं अजहण्णोणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं।
अजहण्णमणुक्कस्सो गोदे चदुधा दुधा सेसा ॥१७८॥

घातिनामजघन्योऽनुत्कृष्टो वेदनीयनाम्नोरजघन्योऽनुत्कृष्टो गोत्रे चतुर्द्धा द्विधा शेषाः ॥

ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीयान्तरायघातिकर्म्मंगळ अजघन्यमुं। वेदनीयनामकर्म्मं-द्वितयद अनुत्कृष्टमुं गोत्रकर्म्मदोळु अजघन्यमुमनुत्कृष्टमुं इंतें दु स्थानंगळोळु साद्यनादि ध्रुवाध्रुवानु-भागबंधभेदर्दिदं चतुर्व्विधंगळप्पुवु। शेषाः शेषजघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टस्थानंगळनितुं मूलप्रकृति-

---

गुणवड्ढिप्पसंगादो–अनन्तगुणप्रशस्तप्रकृत्यनुभागस्य अनन्तगुणवृद्धिप्रसंगात्, ण–न, सव्वसंकिलिट्ठपरिणामेहि य सर्वसंक्लिष्टपरिणामैश्च, तिव्वसंकिलिस्सेण–तीव्रसंक्लेशेन, असुहाणं पयडीणं–अशुभानां प्रकृतीनां अणुभाग-वड्ढिप्पसंगादो–अनुभागवृद्धिप्रसंगात्। तम्हा–तस्मात्, जहण्णुक्कस्सपरिणामणिराकरट्ठं–जघन्योत्कृष्टपरिणा-मनिराकरणार्थम्, परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेहित्ति उत्तं-परिवर्तमानमध्यमपरिणामैरित्युक्तं ॥१७७॥ अथ मूलप्रकृतीनां उत्कृष्टाद्यनुभागानां साद्यादिसंभवासंभवावाह—

घातिनां चतुर्णामजघन्यः, वेदनीयनामकर्मणोरनुत्कृष्टः गोत्रस्याजघन्यानुत्कृष्टौ च साद्यनादिध्रुवाध्रुव-भेदाच्चतुर्धा भवन्ति। शेषाः जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टाः साद्यध्रुवभेदाद् द्वेधैव ॥१७८॥

अप्रशस्त दोनों ही प्रकार की प्रकृतियाँ हैं। यदि सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामोंसे उनका जघन्य अनुभागबन्ध कहते हैं तो अप्रशस्तमें जितना अनुभागबन्ध होगा उससे अनन्तगुणा अनुभाग बन्ध प्रशस्त प्रकृतियोंमें होगा। तब जघन्य अनुभागबन्ध कहाँ रहा। इसी तरह यदि तीव्र संक्लेश परिणामोंसे उनका जघन्य अनुभागबन्ध कहते हैं तो अप्रशस्त प्रकृतियोंमें अनुभाग बढ़ जायेगा। अतः दोनोंको छोड़कर परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे उनका जघन्य अनु-भागबन्ध कहा है ॥१७७॥

अब मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागके सादि आदि भेद होते हैं या नहीं होते, यह कहते हैं—

चारों घातिकर्मोंका अजघन्य अनुभागबन्ध, वेदनीय और नामकर्मका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तथा गोत्रकर्मका अजघन्य और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकारके होते हैं। शेष अर्थात् चारों घातिकर्मोंके अजघन्यके बिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळ्गे द्विप्रकारानुभागबंधंगळे साद्यध्रुव भेदंगळेरडेयप्पुवु—

णा	वं	वे	मो	आ	ना	गो	अं
उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २
अ २	अ २	अ ४	अ २	अ २	अ ४	अ ४	अ २
अ ४	अ ४	अ २	अ ४	अ २	अ २	अ ४	अ ४
ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २

अनंतरं ध्रुवप्रकृतिगळोळु प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतिगळगमध्रुवप्रकृतिगळगं जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानुभागंगळ्गे साद्यादिभेदसंभवासंभवमं पेळ्दपरु—

सत्थाणं धुवियाणमणुक्कस्समसत्थगाण दुवियाणं ।
अजहण्णं च य चदुधा सेसा सेसाणयं च दुधा ॥१७९॥

शस्तानां ध्रुवाणामनुत्कृष्टोऽशस्तानां ध्रुवाणामजघन्यश्च च चतुर्द्धा शेषाः शेषाणां च द्विधाः ॥

तैजसकार्म्मणशरीरनामकर्म्मद्वितयमुमगुरुलघुकमुं निर्म्माणनाममुं प्रशस्तवर्णगंधरसस्पर्शंगळुमेंब ८ अष्ट प्रशस्तध्रुवप्रकृतिगळ अनुत्कृष्टमुं ज्ञानावरणपंचकमुं दर्शनावरणीयनवकमुमन्तरायपंचकमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं षोडशकषायंगळुं भयद्विकमुं वर्णचतुष्कमुं उपघातनाममुमेंब ४३ त्रिचत्वारिंशत् ध्रुवाप्रशस्तप्रकृतिगळ अजघन्यमुं साद्यनादिध्रुवाध्रुवानुभागबंधभेदर्दिदं चतुःप्रकारंगळप्पुवु । शेषाः प्रशस्ताप्रशस्ताध्रुवप्रकृतिगळ जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टंगळुं शेषाणां च

अथ ध्रुवासु प्रशस्ताप्रशस्तानां अध्रुवाणां च जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानां संभवत्साद्यादिभेदानाह—

तैजसकार्मणागुरुलघुनिर्माणवर्णगन्धरसस्पर्शध्रुवप्रशस्तानां अनुत्कृष्ट एकान्नविंशतिज्ञानदर्शनावरणान्तरायमिथ्यात्वषोडशकषायभयद्विवर्णचतुष्कोपघातध्रुवाप्रशस्तानां अजघन्यश्च साद्यादिभेदाच्चतुर्धा भवति, शेषाः

तीन, वेदनीय और नामकर्मके अनुत्कृष्टके बिना तीन गोत्रके अजघन्य और अनुत्कृष्टके बिना दो और आयु कर्मके चारों अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकारके हैं ॥१७८॥

ज्ञा.	द.	वे.	मो.	आ.	ना.	गो.	अं.
उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २
अ. २	अ. २	अ. ४	अ. २	अ. २	अ. ४	अ. ४	अ. २
अ. ४	अ. ४	अ. २	अ. ४	अ. २	अ. २	अ. ४	अ. ४
ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २

आगे ध्रुव प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंमें तथा अध्रुव प्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट, अनुभागबन्धमें सम्भव सादि आदि भेद कहते हैं—

तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, प्रशस्त वर्ण गन्ध रस स्पर्श इन ध्रुवबन्धी प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी उन्नीस, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णादि चार, उपघात इन ध्रुवबन्धी अप्रशस्त प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध सादि अनादि ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्रुवप्रकृतिगळ ७३ त्रिसप्ततिप्रकृतिगळ जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानुभागबंधंगळु द्विधा साद्यध्रुव-भेददिदं द्विविधंगळप्पुवु—

ध्रु = प्र	ध्रु = अप्र	अध्रु प्र.
८	४३	७३
उ २	उ २	उ २
अ ४	अ २	अ २
अ २	अ ४	अ २
ज २	ज २	ज २

अनंतरमनुभागमं बुदेनें दोडे तत्स्वरूपनिरूपणमं घातिकर्म्मंगळोळु माडिदपरु :—

सत्ती य लदादारू अट्ठीसेलोवमाहु घादीणं ।
दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं ॥१८०॥

शक्तयो लतादार्व्वस्थिशैलोपमाः खलु घातीनां । दार्व्वनंतैकभागपर्य्यंतं देशघाति ततः सर्व्वम् ॥

घातीनां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयान्तरायघातिकर्म्मंगळ शक्तयः स्पर्द्धकंगळु लतादार्व्वस्थिशैलोपमाः लतादार्व्वस्थिशैलोपमानंगळु चतुर्व्विभागमागिप्पुंवु । खलु स्फुटमागिप्पुंवुमल्लि दार्व्वनन्तैकभागपर्य्यंतं लताभागमादियागि दारुभागे योळनंतैकभागपर्य्यंतं देशघाति देशघाति-

तासां जघन्यादयः अध्रुवत्रिसप्ततेर्जघन्यादयश्च साद्यध्रुवभेदाद् द्विधैव ॥१७९॥ अनुभागः किमिति प्रश्ने तत्स्वरूपं प्रथमतः घातिष्वाह—

घातिनां ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयान्तरायाणां शक्तयः स्पर्धकानि लतादार्वस्थिशैलोपमचतुर्विभागेन तिष्ठन्ति खलु स्फुटम् । तत्र लताभागमादिं कृत्वा दार्वनन्तैकभागपर्यन्तं देशघातिन्यो भवन्ति । तत उपरि

प्रकार है। इन ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंके शेष तीन अनुभागबन्ध और अध्रुवबन्धी ७३ तेहत्तर प्रकृतियोंके चारों अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकार हैं ॥१७९॥

ध्रुव ८ प्र.	ध्रु. ४३ अ.	अध्रुव ७३
उ. २	उ. ५	उ. २
अ. ४	अ. २	अ. २
अ. २	अ. ४	अ. २
ज. २	ज. २	ज. २

आगे अनुभागका स्वरूप प्रथम घातिकर्मोंमें कहते हैं—

घाति ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंकी शक्तियाँ अर्थात् स्पर्धक लता, दारु, अस्थि और शैलकी उपमाको लिये हुए चार भागरूप होते हैं। लता बेलको कहते हैं। दारुका अर्थ काष्ठ है। अस्थि हड्डीको कहते हैं और शैल पर्वतको कहते हैं। जैसे ये उत्तरोत्तर अधिक कठोर होते हैं वैसे ही कर्मोंके स्पर्धक अर्थात् वर्गणाओंका समूह भी होता है। उनमें फल देनेकी शक्ति रूप अनुभाग उत्तरोत्तर अधिक-अधिक होता है। सो लता भागसे लेकर दारुके अनन्तवें भाग पर्यन्त स्पर्धक तो देशघाती होते हैं। उनके उदय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळप्पुवु। ततः सर्व्वं मेले दार्व्वनन्तबहुभागमादियागि अस्थिशैलभागंगळं सर्व्वंघातियक्कुमल्लि। घातिगळोळुत्तरप्रकृतिगळोळु मिथ्यात्वप्रकृतिगे विशेषमं पेळ्वपरः—

देसोत्ति हवे सम्मं तत्तो दारू अणंतिमे मिस्सं।
सेसा अणंतभागा अत्थिसिलाफड्ढया मिच्छे ॥१८१॥

देशघातिपर्य्यन्तं भवेत्सम्यक्त्वं ततो दार्व्वनन्तैकभागे मिश्रं। शेषाः अनन्तभागाः अस्थिशिलास्पर्द्धकानि मिथ्यात्वे ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामदिदं गुणसंक्रमभागहारदिदं बंधदिनेकविधमेयप्प सत्वरूपमिथ्यात्वप्रकृतिदेशघातिजात्यंतरसर्व्वघाति सर्व्वघातिभेददिदं "कोद्रवं" सम्यक्त्वमिश्रमिथ्यात्वप्रकृतिभेददिदं त्रिविधमागि माडल्पट्टुदप्पुदरिदं लताभागमादियागि दारुविननंतैकभागपर्य्यन्तमाद देशघातिस्पर्द्धकंगळनितुं भवेत्सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृतियक्कुं। शेषदारुविननंतबहुभागम $\frac{दा\ \overline{ख}}{ख}$ ननंतखंडंगळं माडिदल्लि एकखंडं $\frac{दा\ \overline{ख}}{ख\ ख}$। १ जात्यंतरसर्व्वघातिमिश्रप्रकृतियक्कुं। शेषा अनन्तभागाः शेषदारुविननन्तबहुभागबहुभागंगळुमस्थिशिलास्पर्द्धकंगळं सर्व्वघातिमिथ्यात्वप्रकृतियक्कुं $\frac{दा\ \overline{ख}}{ख\ ख}$ $\frac{\overline{ख}}{}$ अ शि।

दार्वनन्तबहुभागमादिं कृत्वा अस्थिशैलभागेषु सर्वत्र सर्वघातिन्यो भवन्ति ॥१८०॥ तासामुत्तरप्रकृतिषु मिथ्यात्वस्य विशेषमाह—

लताभागमादिं कृत्वा दार्वनन्तैकभागपर्यन्तानि देशघातिस्पर्धकानि सर्वाणि सम्यक्त्वप्रकृतिर्भवति, शेषदार्वनन्तबहुभागेषु $\frac{दा\ \overline{ख}}{ख}$ अनन्तखण्डीकृतेषु एकखण्डं $\frac{दा\ \overline{ख}}{ख\ ख}$ १ जात्यंतरसर्वघातिमिश्रप्रकृतिर्भवति। शेषदार्वनन्तबहुभागभागाः अस्थिशिलास्पर्धकानि च सर्वघातिमिथ्यात्वप्रकृतिर्भवति दा $\frac{\overline{ख}}{ख}$ $\frac{\overline{ख}}{ख}$ अ शै ॥१८१॥

होते हुए भी आत्माका गुण प्रकट रहता है। तथा दारुका अनन्त बहुभागसे लेकर अस्थि और शैलरूप सब स्पर्धक सर्वघाती हैं। उनके उदयमें आत्माके गुणका एक अंश भी प्रकट नहीं होता ॥१८०॥

उन कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें-से मिथ्यात्व प्रकृतिके विषयमें कहते हैं—

लता भागसे लेकर दारुके अनन्तवें भाग पर्यन्त सब देशघाति स्पर्धक सम्यक्त्व प्रकृतिरूप हैं। दारुके अनन्तवें भाग बिना शेष बहुभागके अनन्त खण्ड करें। उनमें-से एक खण्ड प्रमाण स्पर्धक जात्यन्तर अर्थात् पृथक् ही जातिकी सर्वघाती मिश्र प्रकृतिरूप हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

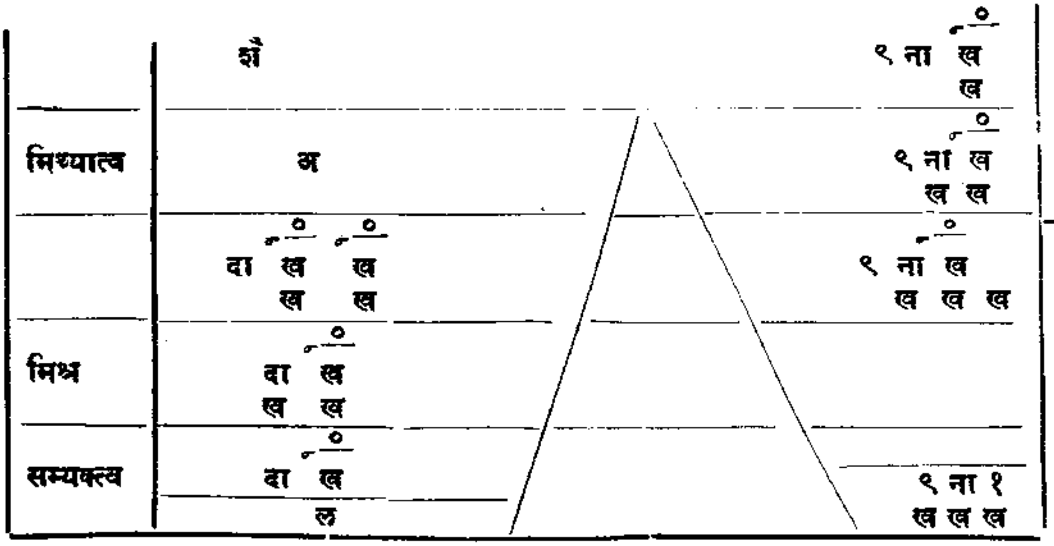

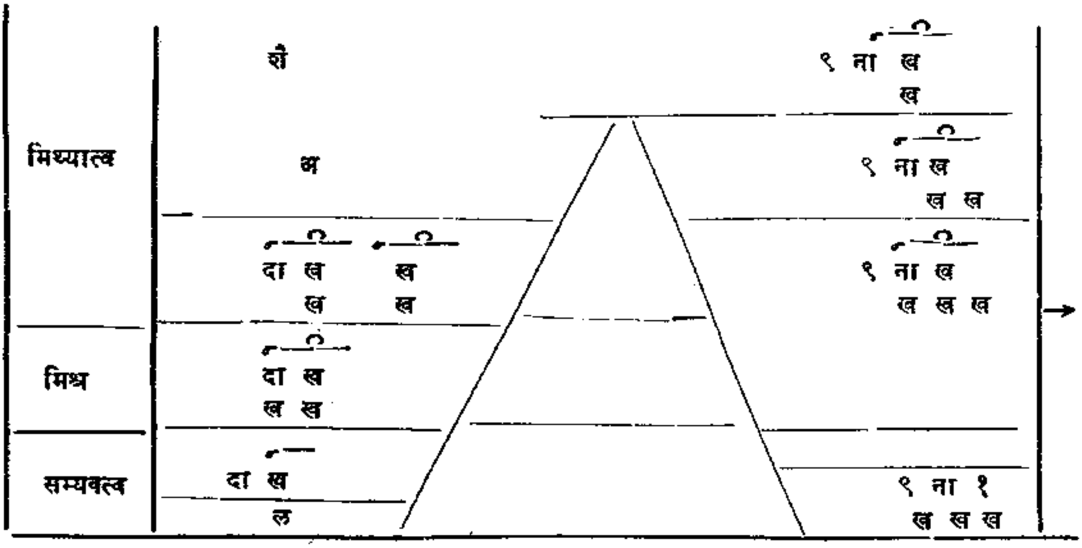

तथा शेष दारुके बहुभाग और अस्थि तथा शैलरूप स्पर्धक सर्वघाति मिथ्यात्व प्रकृति-रूप जानना ॥१८१॥

विशेषार्थ—पूर्वमें कहा था कि बन्ध केवल मिथ्यात्व प्रकृतिका ही होता है। जब किसीको सम्यक्त्वकी प्राप्ति सर्वप्रथम होती है तो मिथ्यात्व प्रकृति तीन रूप हो जाती है। उनमें-से देशघाती अंश देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिको और सर्वघातीमें-से दारुका कुछ भाग जात्यन्तर सर्वघाती मिश्र प्रकृतिको और शेष सब मिथ्यात्व रूप होता है। यही कथन ऊपर किया है ॥१८१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

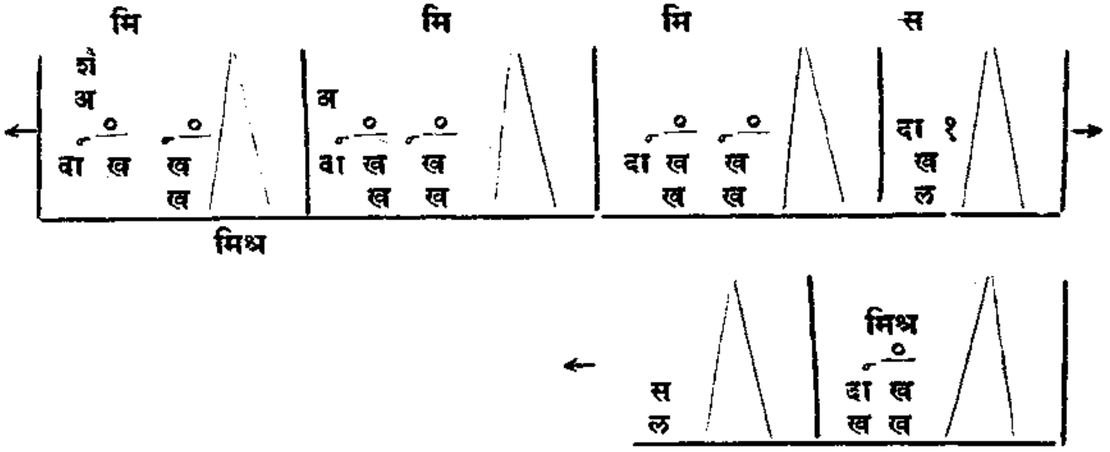

आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं ।
चदुविधभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥१८२॥

आवरणदेशघात्यंतरायसंज्वलनपुरुषसप्रदश । चतुर्विधभावपरिणताः त्रिविधा भावाः खलु शेषाणां ॥

केवलज्ञानावरणरहितज्ञानावरणचतुष्कमुं ४, केवलदर्शनावरणरहितदर्शनावरणत्रितयमुं ३ यी येळुं प्रकृतिगळावरणमध्यदेशघातिगळें बुवकु-। मन्तराय अन्तरायपंचकमुं ५, संज्वलन

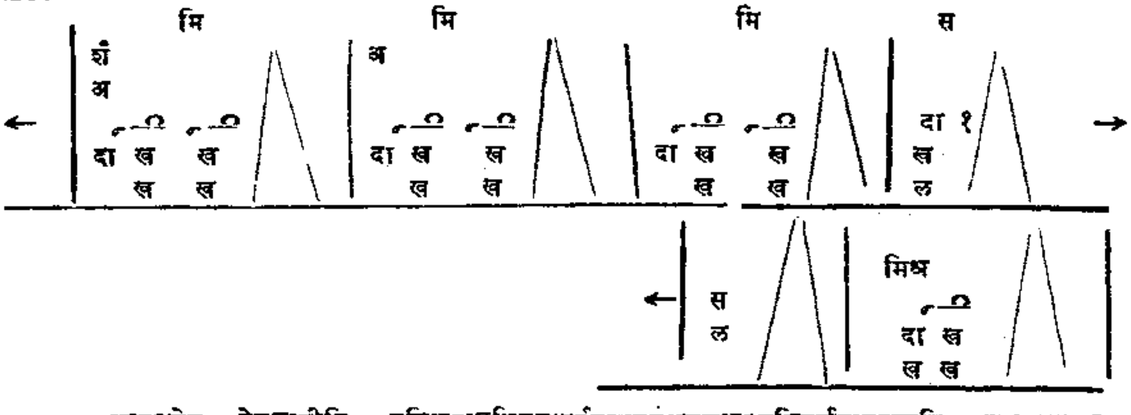

आवरणेषु देशघातीनि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानि पञ्चान्तरायाः

ज्ञानावरण और दर्शनावरणमें-से देशघाती मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, ज्ञानावरण और चक्षु, अचक्षु अवधि दर्शनावरण ये सात, पाँच अन्तराय, चार संज्वलन, और पुरुषवेद ये सतरह प्रकृतियाँ शैल, अस्थि, दारु और लता भागरूप परिणत होती हैं। जहाँ शैल भाग नहीं होता वहाँ अस्थि, दारु और लतारूप परिणत होती हैं और जिनमें दारुभाग भी नहीं होता उनमें केवल लतारूप ही परिणमन होता है। इस तरह सतरह प्रकृतियाँ चार रूप परिणत होती हैं। शेष प्रकृतियोंमें-से मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिके बिना समस्त घाति प्रकृतियाँ तीन भागरूप ही परिणत होती हैं। सो केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्वलनचतुष्कमुं ४, पुरुष पुंवेदमुं इन्तु १७ सप्तदशप्रकृतिगळु चतुर्व्विधभावपरिणताः चतुर्व्विध-शक्तिपरिणतंगळु । लतादारु अस्थिशैलमुं लतादार्व्वस्थियुं लतादारुवुं लताशक्तियुमें दिन्तु :—

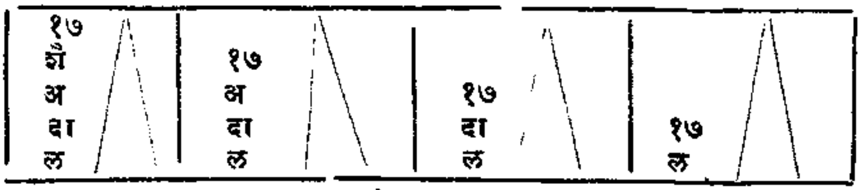

शेषाणां शेषमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिद्वयं पोरगागि घात्यघातिगळनितक्कं प्रत्येकं त्रिविधभावाः खलु त्रिविधशक्तिगळप्पुवुवरोळु घातिगळ्गे नोकषायंगळ्गे :—

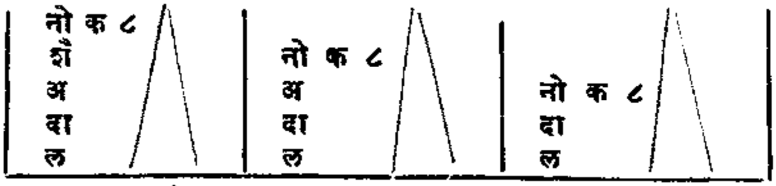

अनंतरं शेषाघातिगळ्गे पेळ्दपरु :—

चतुःसंज्वलनाः पुंवेदश्चेति सप्तदश लतादार्वस्थिशैल-लतादार्वस्थि–लतादारु-लतेतिचतुर्विधभावपरिणता भवन्ति ।

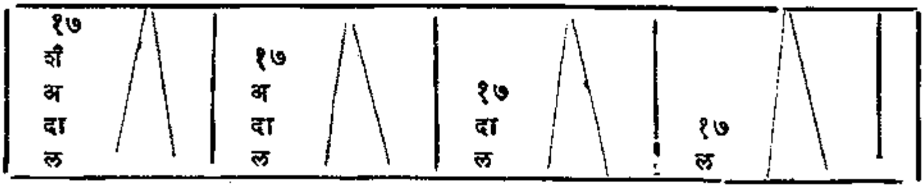

शेषाणां मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती विना घात्यघातिनां सर्वेषां प्रत्येकं त्रिविधा भावाः खलु । तत्र घातिनां—

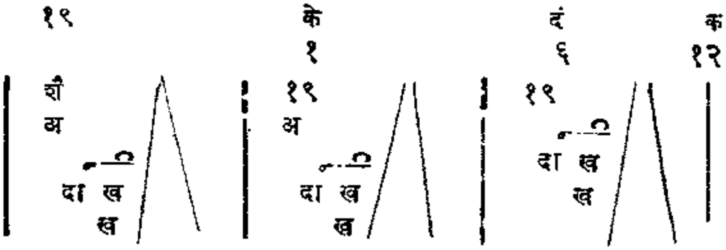

नोकषायाणां—

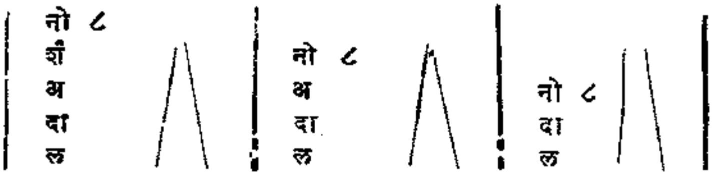

॥१८२॥ शेषाघातिनामाह–

निद्रा, अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण ये बारह कषाय इन उन्नीस प्रकृतियोंके स्पर्धक सर्वघाती ही होते हैं अतः शैल, अस्थि और दारुका अनन्त बहुभाग रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा ।
ता एव पुण्णपावा सेसा पावा मुणेयव्वा ॥१८३॥

अवशेषा प्रकृतयोऽघातिन्यो घातिनीनां प्रतिभागाः । ता एव पुण्यपापानि शेषा पापानि मंतव्याः ॥

शेषघात्यघातिगळगेंदु पेळल्पट्ट घात्यघातिगळोळु केवलज्ञानावरणादिसर्व्वघातिगळगं नोकषायाष्टकदेशघातिगळगं त्रिविधभावंगळु त्रिविधशक्तिगळु पेळल्पट्टुवु । शेषाऽघातिप्रकृतिगळु घातिकर्म्मंगळगे पेळ्दंते प्रतिभागंगळप्पुवु प्रतिविकल्पंगळप्पुवु । त्रिविधशक्तिगळप्पुवेंबुदत्थं । ता एव अवु समस्तमघातिप्रकृतिगळे पुण्यप्रकृतिगळुं पापप्रकृतिगळुमेंदितु द्विविधंगळप्पुवु । शेषाः शेषघातिप्रकृतिगळेनितोळवनितुं पापानि पापंगळेयप्पुवु येंदितु मंतव्यंगळप्पुवु ।

अनंतरं घातिगळेल्ल लतादार्व्वस्थिशैलभेदस्पर्द्धकंगळे येंदु पेळ्द अघातिगळ चतुर्व्विभागस्पर्द्धकंगळगे नामांतरमं प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतिविभागदिदं पेळ्दपरु :—

गुडखंडसक्करामियसरिसा सत्था हु णिंबकंजीरा ।
विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा ॥१८४॥

गुडखंडशर्क्करामृतसदृशाः शस्ताः खलु निंबकांजीर विषहालाहलसदृशाः अशस्ताः खलु अघातिप्रतिभागाः ॥

अघातिप्रतिभागाः अघातिप्रतिविकल्पंगळु अघातिशक्तिविकल्पंगळेंबुदत्थंमवु पेळल्पट्टपुवेंतेंदोडे शस्ताः प्रशस्तप्रकृतिगळु गुडखंडशर्क्करामृतसदृशाः गुडमुं खंडमुं शर्क्करेयुममृतमुमें-

---

शेषाः अघातिप्रकृतयः घातिकर्मोक्तप्रतिभागा भवन्ति त्रिविधशक्तयो भवन्तीत्यर्थः । ता अघातिप्रकृतय एवं पुण्यप्रकृतयः पापप्रकृतयश्च भवन्ति, शेषघातिप्रकृतयः सर्वा अपि पापान्येवेति मन्तव्यम् ॥१८३॥ घातिनां सर्वेषां स्पर्धकानि लतादार्वस्थिशैलनामानीत्युक्तानि । इदानीं अघातिनां तानि प्रशस्ताप्रशस्तानां नामान्तरेणाह—

अघातिनां प्रतिभागाः शक्तिविकल्पाः प्रशस्तानां गुडखण्डशर्करामृतसदृशाः खलु स्फुटं, अप्रशस्तानां

स्पर्धक ही इनमें पाये जाते हैं या शैलके बिना दो प्रकार पाये जाते हैं अथवा अस्थिके बिना एक ही प्रकार पाया जाता है । इस तरह तीनों प्रकार होते हैं । पुरुषवेदके बिना आठ नोकषायोंमें शैल, अस्थि, दारु, लता चारों प्रकारका अनुभाग पाया जाता है । सो उनमें चाररूप, शैलके बिना तीन रूप और अस्थिके बिना दो रूप पाये जाते हैं, केवल लतारूप एक ही भाग नहीं पाया जाता ॥१८२॥

शेष अघातिया कर्मोंकी प्रकृतियाँ घातिकर्मोंकी तरह प्रतिभागयुक्त होती हैं । अर्थात् उनके स्पर्धक भी तीन भागरूप ही होते हैं । पुण्य प्रकृति और पाप प्रकृतिका भेद अघातिकर्मोंकी प्रकृतियोंमें ही है । घतिकर्मोंकी तो सब प्रकृतियाँ पापरूप ही होती हैं ॥१८३॥

सब घाति प्रकृतियोंके स्पर्धक लता, दारु, अस्थि और शैल नामसे कहे हैं, अब अघाति कर्मोंकी प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंके स्पर्धकोंके अन्य नाम कहते हैं—

अघातिकर्मोंके प्रतिभाग अर्थात् शक्तिके भाग प्रशस्त प्रकृतियोंमें तो गुड़, खाँड, शर्करा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिवरोळु सदृशाः वोरन्नंगळप्पुवु सामानानुभागस्पर्द्धकंगळप्पुवुवेंबुदत्थं । खलु स्फुटमागि अशस्ताः अप्रशस्तप्रकृतिगळु निंबकांजीरविषहालाहलसदृशाः बेवुं कांजीरमुं विषमुं हालाहलमुमें दिवरोळो-रन्नंगळप्पुवु खलु स्फुटमागि । सर्व्वप्रकृतिगळु १२२ । इवरोळु घातिगळु ४७ अघातिगळु ७५ । यीयघातिगळोळु प्रशस्तंगळु :—

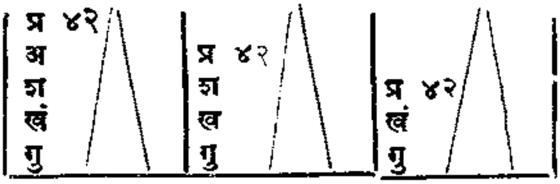

४२ । अप्रशस्तंगळु ३३ । अप्रशस्तवर्ण-चतुष्कमुंटप्पुदरिंदमदु गूडि ३७

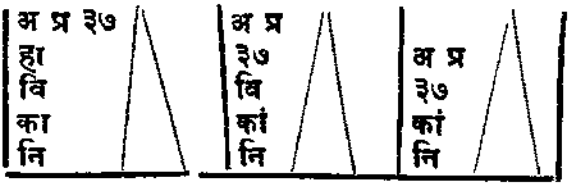

इन्तु भगवदर्हत्परमेश्वर ० कर्म्मकांडप्रकृतिसमुत्कीर्त्तनं अनुभागबंध परिसमाप्तमादुदु ॥

अनंतरं प्रदेशबंधमं त्रयस्त्रिंशत् ३३ गाथासूत्रंगळिंदं पेळ्दपरु :-

---

निंबकाञ्जीरविषहलाहलसदृशाः खलु स्फुटम् । सर्वप्रकृतयः १२२, तासु घातिन्यः ४७, अघातिन्यः ७५ । एतासु प्रशस्ताः ४२ अप्रशस्ताः ३३, अप्रशस्तवर्णचतुष्कमस्तीति तन्मिलिते ३७ ।

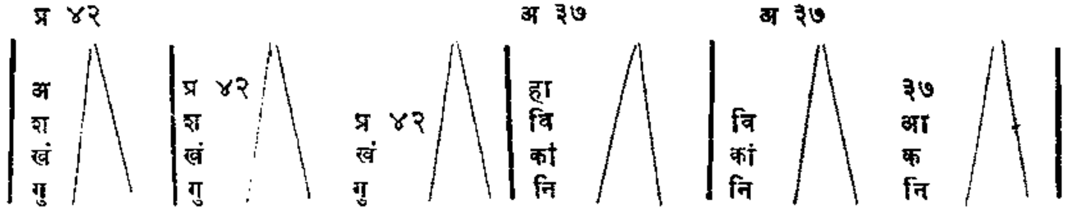

॥१८४॥ इत्यनुभागबन्धः समाप्तः । अथ प्रदेशबन्धं त्रयस्त्रिंशद्गाथासूत्रैराह—

और अमृत समान होते हैं। जैसे ये अधिक-अधिक मिष्ठ होनेसे सुखदायक हैं वैसे प्रशस्त प्रकृतिके स्पर्धक भी होते हैं और अप्रशस्त प्रकृतियोंके शक्तिके भाग नीम, कांजीर, विष और हालाहलके समान होते हैं, जैसे नीम आदि अधिक-अधिक कटुक होनेसे दुःखदायक होते हैं वैसे ही अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग भी होता है। सब प्रकृतियाँ एक सौ बाईस १२२ हैं। उनमें सैंतालीस ४७ घातियाँ हैं और ७५ अघातिया हैं। पचहत्तरमें-से बयालीस ४२ प्रशस्त हैं। तैंतीस अप्रशस्त हैं। उनमें वर्णादि चार अशुभ भी जोड़नेसे सैंतीस होती हैं। सो प्रशस्त प्रकृति तो गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृतरूप या गुड़, खाण्ड, शर्करारूप या गुड़, खाण्ड-रूप इस तरह तीन रूप परिणत होती हैं। और अप्रशस्त प्रकृति नीम, कांजीर, विष, हालाहल-रूप या नीम, कांजीर विषरूप या नीम कांजीर इस प्रकार तीन रूप परिणत होती हैं ॥१८४॥

अनुभागबन्ध समाप्त हुआ।

आगे तेंतीस गाथाओंसे प्रदेशबन्धको कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।
बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं ॥१८५॥

एकक्षेत्रावगाढं सर्व्वप्रदेशैः कर्म्मणो योग्यं । बध्नाति स्वहेतुभिरनादिसाद्युभयं ॥

सूक्ष्मनिगोदशरीरघनांगुलासंख्यातैकभागजघन्यावगाहक्षेत्रमेकक्षेत्रमें बुदक्कुमा क्षेत्रावगाहितमं कर्म्मस्वरूपपरिणमनयोग्यमप्पुदननादियं सादियनुभयमं पुद्गलद्रव्यमं जीवं सर्व्वात्मप्रदेशंगलिदं मिथ्यादर्शनादिस्वहेतुगळिदं बध्नाति कट्टुगुं ॥

एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयखेत्तं तु ।
अवसेसलोयखेत्तं खेत्तणुसारिट्ठियं रूवि ॥१८६॥

एकशरीरावगाहितमेकक्षेत्रमनेकक्षेत्रं तु अवशेषलोकक्षेत्रं क्षेत्रानुसारिस्थितं रूपि ॥

एकशरीरावगाहितं एकशरीरविंदमवष्टंभिसल्पट्टाकाशमेकक्षेत्रमें बुदु । अदुकारणमागि घनांगुलासंख्यातैकभागमुपलक्षणमवावो ६/प/a अंते = सुद्धे = ६/प/a वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा । एंदेकक्षेत्रविकल्पंगळुमिनितप्पुवु ≡६/प/a विवक्षेयिदमनेकक्षेत्रमुमेकक्षेत्रमक्कुमें बुदर्थं । तु मत्ते अवशेषलोकक्षेत्रं एकक्षेत्रशरीरावगाहितमं घनांगुलासंख्यातैकभागमं कळेदुळिद लोकाकाशमनितुम-

सूक्ष्मनिगोदशरीरं घनाङ्गुलासंख्येयभागं जघन्यावगाहक्षेत्रं एकक्षेत्रं, तेनावगाहितं कर्मस्वरूपपरिणमनयोग्यं अनादिकं सादिकं उभयं च पुद्गलद्रव्यं जीवः सर्वात्मप्रदेशैः मिथ्यादर्शनादिहेतुभिर्बध्नाति ॥१८५॥

एकशरीरेणावष्टब्धाकाशप्रदेशं एकक्षेत्रं, तेन घनाङ्गुलासंख्यातैकभाग उपलक्षणं ६/प/a तद्विकल्पाः आदी ६/प/a अंते ≡ सुद्धे ≡ ६/प/a वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा इत्येतावन्तः ≡ ६/प/a विवक्षया अनेकक्षेत्रमप्येकक्षेत्रं

सूक्ष्म निगोदियाका शरीर घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्रवाला होता है। उसे एकक्षेत्र कहते हैं। उस एकक्षेत्रमें स्थित जो कर्मरूप परिणमनके योग्य अनादि, सादि और उभयरूप पुद्गल द्रव्य है उसे जीव मिथ्यादर्शन आदिके निमित्तसे अपने सर्व आत्मप्रदेशोंसे बाँधता है ॥१८५॥

एक शरीरकी अवगाहनासे रोका गया जो आकाशप्रदेश है वह एक क्षेत्र है। इससे एक क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। यद्यपि शरीरकी अवगाहना जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त होती है। उसका आदि भेद तो घनांगुलको पल्यके असंख्यातवें भागका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेकक्षेत्रं अनेकक्षेत्रमं बुदक्कुमिन्तेकक्षेत्रानेकक्षेत्रंगळोळु एकक्षेत्रं ६/प/a अनेकक्षेत्रं ≡६/प/a क्षेत्रनुसारि स्थितं तंतम्म क्षेत्रानुसारियागिर्दं रूपि सर्वपुद्गलद्रव्यं विभागिसल्पट्टोडेकानेकक्षेत्रंगळोळु त्रैराशिकत्तिदंगळिनिंतिनितप्पुवु । प्र ≡ । फ १६ ख । इ ६/प/a लब्धमेकक्षेत्रस्थितरूपि १६ ख ६/≡ प/a प्र ≡ फ १६ ख । इ ≡६/प/a लब्धमनेकक्षेत्रास्थिररूपि १६ ख≡६/≡ प/a

एयाणेयखेत्तट्ठियरूवि अणंतिमं हवे जोग्गं ।
अवसेसं तु अजोग्गं सादि अणादी हवे तत्थ ॥१८७॥

एकानेकक्षेत्रस्थितरूप्यनंतैकभागो भवेद्योग्यं । अवशेषं त्वयोग्यं साद्यनादि भवेत्तत्र ॥

भवतीत्यर्थः । तु पुनः तेनैकक्षेत्रेण ऊनं अवशेषलोकक्षेत्रं अनेकक्षेत्रं ≡ ६/प/a तत्तत्क्षेत्रानुसारितया स्थितं रूपि पुद्गलद्रव्यमेवं सिद्धयति तत्र प्र ≡ फ १६ ख इ ६/प/a लब्धं एकक्षेत्रस्य द्रव्यं १६ ख ६/≡ प/a प्र । ≡ फ १६ ख इ ≡ ६/प/a लब्धं अनेकक्षेत्रस्य द्रव्यं १६ ख ≡ ६/≡ प/a ॥१८६॥

भाग दें, उतना है। अन्तिम भेद समुद्घातकी अपेक्षा लोकप्रमाण है। सो अन्तमें-से आदिको घटाकर एक मिलानेसे अवगाहनाके समस्त भेद होते हैं। तथापि बहुत जीव घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनाके धारक होनेसे मुख्यतासे एक क्षेत्रका प्रमाण घनांगुल-के असंख्यातवें भाग मात्र कहा है। सो इतने क्षेत्रके बहुत प्रदेश हैं। इससे प्रदेशोंकी अपेक्षा यही अनेक क्षेत्र है। तथापि विवक्षावश यहाँ इस क्षेत्रको एकक्षेत्र कहा है। और इस क्षेत्रके परिमाणसे हीन शेष लोकाकाशके क्षेत्रको अनेक क्षेत्र कहा है। सो उस-उस क्षेत्रके अनुसार स्थित रूपी पुद्गल द्रव्यका परिमाण इस प्रकार जानना—

जो समस्त लोकमें सर्व पुद्गल द्रव्य पाया जाता है तो एक क्षेत्रमें कितना पुद्गल द्रव्य पाया जाता है। ऐसा त्रैराशिक करना। उसमें प्रमाणराशि समस्त लोक, फलराशि पुद्गल-द्रव्यका परिमाण, इच्छाराशि एक क्षेत्रका परिमाण। फलसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतना एक क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गल-द्रव्य जानना। तथा इच्छाराशि अनेक क्षेत्र रखनेपर पूर्वोक्त सब विधान करनेसे जो लब्ध-राशिका प्रमाण आवे उतना अनेक क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गलद्रव्य जानना ॥१८६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकानेकक्षेत्रस्थितरूप्यनंतैकभागः भवेद्योग्यं एकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्यानन्तैकभागमेकक्षेत्रस्थितयोग्यरूपिद्रव्यमक्कुं। अनेकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्यानन्तैकभागमनेकक्षेत्रस्थितयोग्यरूपिद्रव्यमक्कुं—

एक = यो	अनेक = योग्य
१६ ख । ६ । १	१६ ख ऋ । ६ । १
= प ख	प ख
८	८

ई येरडु राशिगळिंदं हीनंगळप्प तंतम्म राशिगळेकानेकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपिद्रव्यंगळप्पुवल्लि एकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपि १६ ख ६ ख (०, = प ख, ८) अनेकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपि १६ ख ऋ ६ ख (०, प ख, ८) तत्र अवरोळु एकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यरूपिद्रव्यंगळोळु प्रत्येकं सादिरूपिद्रव्यमेंदुमनादिरूपिद्रव्यमेंदु द्विविधमप्पुवल्लि साद्यनादियोग्यायोग्यद्रव्यप्रमाणंगळगे उपपत्तियं पेळ्दपरु :—

तयोरेकानेकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्ययोरनन्तैकभागः स्वस्वयोग्यरूपिद्रव्यं भवति—एक = योग्यं (१६ ख ६ । = प १, ८ ख) अनेक = योग्यं (१६ ख ऋ ६, = प १, ८ ख) तेन विहीनं स्वस्वावशेषमयोग्यरूपिद्रव्यं भवति। तत्रैकक्षेत्रस्य १६ ख ६ ख (०, = प ख, ८) अनेकक्षेत्रस्य १६ ख = । ६ । ख (०, = प ख, ८) तेष्वेकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यरूपिद्रव्येषु प्रत्येकं सादिरूपिद्रव्यं अनादिरूपिद्रव्यं च भवति ॥१८७॥ तत्र साद्यनादियोग्यायोग्यद्रव्यप्रमाणानामुपपत्तिमाह—

एक क्षेत्र और अनेकक्षेत्रमें स्थित पुद्गलद्रव्यका जितना परिमाण है उसके अनन्तवें भाग तो अपना-अपना योग्य पुद्गलद्रव्य है और शेष अयोग्य पुद्गलद्रव्य हैं। उनमें-से एक क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गल द्रव्यके परिमाणमें अनन्तसे भाग दें। एक भाग प्रमाण कर्मरूप होनेके योग्य पुद्गलोंका प्रमाण है। शेष भाग प्रमाण कर्मरूप होनेके अयोग्य पुद्गलोंका प्रमाण है। इस प्रकार चार भेद हुए—एक क्षेत्रमें स्थित योग्य द्रव्य, एक क्षेत्रमें स्थित अयोग्य द्रव्य, अनेक क्षेत्रस्थित योग्यद्रव्य, अनेक क्षेत्र स्थित अयोग्य द्रव्य। एक-एक भेदमें भी सादि द्रव्य और अनादि द्रव्य जानना। जो अतीतकालमें जीवके द्वारा ग्रहण किया गया वह सादिद्रव्य है। और जो अनादिकालसे जीवके द्वारा ग्रहण नहीं किया गया वह पुद्गलद्रव्य अनादिद्रव्य जानना ॥१८७॥

आगे इनका प्रमाण जाननेके लिए कथन करते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेट्ठे समयपबद्धे अदीदकालाहदेण सव्वेण ।
जीवेण हदे सव्वं सादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१८८॥

जेठ्ठे समयप्रबद्धे अतीतकालाहतेन सर्व्वेण । जीवेन हते सर्व्वं सादी भवतीति निर्द्दिष्टं ॥

उत्कृष्टयोगार्जिजतोत्कृष्टसमयप्रबद्धमनतीतकालदिदं गुणिसल्पट्टु सर्व्वजीवराशियिदं गुणिसुत्तं विरलु सर्व्वजीवसंबंधि सादिद्रव्यमक्कुमेंदु श्रीवीतरागसर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्ट परमागमदोळु पेळल्पट्टुदल्लि त्रैराशिकंगळमाडल्पडुवुवदेंतेंदोडे एकसमयदोळुत्कृष्टसमयप्रबद्धद्रव्यं स्वीकृतमागुत्तं विरलु संख्यातावलिगुणितसिद्धराशिप्रमितमप्प अतीतकालसमयंगळोनितु द्रव्यमक्कुमेंदितु त्रैराशिकमं माडिदोडे प्र । स १ । फ स ३२ इ । अ । बंद लब्धमेकजीवसंबंधि सादिद्रव्यमक्कु । स ३२ । अ । मदं सर्व्वजीवराशियिदं गुणिसिदोडे त्रैराशिकसिद्ध । प्र १ । जी १ । फ स ३२ । अ । । इ । जी १६ । लब्धप्रमितं सर्व्वजीवसंबंधि सादिद्रव्यमक्कुं । स ३२ । अ १६ ॥

अनन्तरमेकानेकक्षेत्रस्थितकर्म्मयोग्यायोग्यद्रव्यंगळोळिरुत्तिर्द्द योग्यायोग्यसादिद्रव्यप्रमाणमं पेळदपरु :—

सगसगखेत्तगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी ।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१८९॥

स्वस्वक्षेत्रगतस्य चानंतैकभागो योग्यद्रव्यगतसादि । शेषमयोग्यसंगतसादि भवतीति निर्द्दिष्टं ॥

उत्कृष्टयोगार्जितोत्कृष्टसमयप्रबद्धे अतीतकालगुणितसर्वजीवराशिना गुणिते सति सर्वजीवसंबन्धि सादिद्रव्यं भवति । तत्रैकसमये यद्युत्कृष्टसमयप्रबद्धद्रव्यं गृह्णाति तदा संख्यातावलिहतसिद्धराशिमात्रातीतकाले कियदिति प्र–स १ फ–स ३२ इ अ, लब्धमेकजीवसंबन्धि सादिद्रव्यं भवति । स ३२ अ । इदं पुनः सर्वजीवराशिना गुणितं सर्वजीवसंबन्धि भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं स ३२ अ १६ ॥१८८॥ अथैकानेकक्षेत्रस्थितकर्मयोग्यायोग्यद्रव्येषु स्थितयोग्यायोग्यसादिद्रव्यप्रमाणमाह—

उत्कृष्ट योगके द्वारा उपार्जित उत्कृष्ट समयप्रबद्धको अतीतकालसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसको सर्व जीवराशिके प्रमाणसे गुणा करनेपर सर्वजीव सम्बन्धी सादिद्रव्यका प्रमाण होता है। संख्यात आवलीसे सिद्धराशिको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना अतीतकालके समयोंका प्रमाण है। यदि एक समयमें उत्कृष्ट समयप्रबद्ध प्रमाण पुद्गलद्रव्यका ग्रहण होता है तो अतीतकालके समयोंमें कितने पुद्गलद्रव्यका ग्रहण हुआ ऐसा त्रैराशिक करो। सो प्रमाणराशि एक समय, फलराशि उत्कृष्ट समयप्रबद्ध, इच्छाराशि अतीतकालके समय। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना सर्वजीव सम्बन्धी सादि पुद्गलद्रव्य जानना। इस प्रमाणको समस्त पुद्गलराशिके प्रमाणमें-से घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उतना अनादि पुद्गलद्रव्य जानना ॥१८८॥

आगे पूर्वोक्त भेदोंमें सादि द्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वस्वक्षेत्रगतस्य एकानेकक्षेत्रस्थितद्रव्यद तंतम्म कर्म्मयोग्यद्रव्यद अनंतैकभागः जीवन दृष्टानंतभागहारदिदं खंडितैकखंडं तंतम्म योग्यद्रव्यस्थितसादिद्रव्यमक्कुं। शेषं तंतम्म अयोग्य-संगतसादि द्रव्यमक्कु—

एकक्षेत्रसर्व्वद्रव्यं १६ ख । ६ ≡ प a	एकक्षेत्रसादि स ३२ । अ १६ । ६ । १ ≡ प a	अनेकक्षेत्रद्रव्यं । १६ ख । ६ ≡ प a
यो = द्रव्य १६ ख ६ । १ योग्यसादि ≡ प ख a द्रव्य स ३२ अ ६ ख १ १६ प ≡ a	६ अयो द्र १६ ख प ख ≡ a ख ६ अयो सा । स ३२अ१६प ख ≡ a ख	यो द्र १६ ख≡६ ख ≡ प a ६ यो सा । स ३२ अ १६≡प ख a
योग्यानादिद्रव्यं १ १६ ख । ६ । ख ≡ प a ६ १ स ३२ अ १६ । प । ख ≡ a	अयोग्यानादि १६ ख ६ । ख प ख ६ । ख स ३२ अ a १६ । ख ≡ प a	योग्यानादि १६ ख≡६ ख ≡ प a ६ स ३२ अ १६≡प ख ≡ a

अनेकक्षेत्र सादि ६ स ३२ अ १६≡प a ≡	सर्वक्षेत्र ≡	सर्वद्रव्य १६ ख
अयो १६ ख≡६ ख प ≡ a ख अयो ।सा।स ३२ अ १६≡६ ख ≡ प ख a	एकक्षेत्र ६ प a	अनेकक्षेत्र ≡ ६ प a
अयोग्यानादि ६ १६ ख≡ प ख ≡ a ख ६ ख स ३२ अ १६≡—प ख ≡ a	समस्त सादिद्रव्यं स ३२ अ १६ समस्त अनादिद्रव्यं १६ ख स ३२ अ १६	

एकानेकक्षेत्रस्थितसादिद्रव्यस्य जिनदृष्टानन्तभक्तैकभागः स्वस्वयोग्यद्रव्यस्थितसादिद्रव्यं भवति शेषं

एक क्षेत्र और अनेक क्षेत्रमें स्थित सादिद्रव्यमें जिनदेवके द्वारा देखे गये अनन्तसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेंवितु परमागमदोळु प्रणीतमादुदेंतेंदोडे इल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । घनलोकसर्व्वप्रदेशंगळोळु सर्व्वजीवसंबंधि सादिद्रव्यमिनितिरुत्तं विरलागळेकजीवावगाहित घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रक्षेत्रदोळं घनांगुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रानेकक्षेत्रदोळमेनितु सादिद्रव्यमिक्कुमेंदितु त्रैराशिकंगळं माडिदोडे । प्र ≡ फ स ३२ । अ १६ । इ ६/प/a प्र ≡ फ स ३२ । अ १६ । इ । ≡ ६/प/a लब्धंगळेकानेकक्षेत्रस्थित सादिद्रव्यंगळप्रमाणंगळप्पुवु । एक क्षे = साद = स ३२ । अ १६ । ६/प/a, ≡ अनेकक्षेत्रसादि = स ३२ । अ १६ ≡ ६/प/a, ≡ ई एकानेकक्षेत्रगत सादिद्रव्यंगळ अनंतैकभागंगळु योग्यसादिद्रव्यंगळप्पुवु—

स्वस्वायोग्यसंगतसादिद्रव्यं भवतीति प्रणीतम् । यदि घनलोकसर्वप्रदेशेषु सर्वजीवसंबन्धिसादिद्रव्यं एतावत् तदा एकजीवावगाहितघनाङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रैकक्षेत्रे घनाङ्गुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रानेकक्षेत्रे च कियत् स्यात् ? इति त्रैराशिके कृते प्र — ≡, फ स ३२ अ १६, इ ६/प/a । प्र ≡, फ स ३२ अ १६, इ ≡ ६/प/a लब्धं एकानेकक्षेत्रस्थितसादिद्रव्यं भवति एकक्षेत्रसादि = स ३२ अ १६ ६/प/a, ≡ अनेकक्षेत्रसादि = स ३२ अ १६ ≡ ६/प/a, ≡ तयोर्द्रव्ययोरनन्तैकभागौ योग्यसादिद्रव्ये भवतः— एकक्षेत्रयोग्यसादि = स ३२ अ १६ । ६/प/a १/ख, ≡ अनेकक्षेत्रयोग्यसादि = स ३२ अ १६ । ≡ ६/प/a १/ख, ≡ शेषौ अनन्तबहुभागौ एकानेकक्षेत्रगतायोग्यसादिद्रव्ये भवतः ॥१८९॥

भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो अपना-अपना योग्य सादिद्रव्य है, शेष अयोग्य सादिद्रव्य है ऐसा कहा है । वही कहते हैं—

जो सर्वलोकके प्रदेशोंमें सर्वजीव सम्बन्धी सादिद्रव्य पूर्वोक्त प्रमाण पाया जाता है तो एक जीवकी अवगाहनारूप घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण एक क्षेत्रमें और एक क्षेत्रके परिमाणसे हीन लोक प्रमाण अनेक क्षेत्रमें कितना पाया जायेगा । इस प्रकार दो त्रैराशिकमें-से एकमें प्रमाणराशि सर्वलोक, फलराशि सादिद्रव्यका प्रमाण, इच्छाराशि एक क्षेत्र । सो फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतना एक क्षेत्र सम्बन्धी सादिद्रव्य जानना । दूसरेमें, प्रमाण सर्वलोक, फल सादिद्रव्यका प्रमाण, इच्छा अनेक क्षेत्र । फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया, उतना अनेक क्षेत्र सम्बन्धी सादि द्रव्य जानना । एक क्षेत्र सम्बन्धी सादिद्रव्यमें अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण एक क्षेत्र सम्बन्धी कर्मरूप होनेके योग्य सादिद्रव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक क्षेत्र योग्यसादि	अनेक क्षेत्र योग्यसादि	शेषानंतबहुभागंगळ-
स ३२ अ १६ । ६ १ ≡ प ख ə	स ३२ अ १६ ≡ ६ ख ≡ प ə	

मेकानेकक्षेत्रगताऽयोग्यसादिद्रव्यंगळप्पुवु	एक क्षेत्र योग्यसादि	अनेकक्षेत्रायोग्यसादि
	स ३२ अ १६ । ६ ख ≡ प ख ə	स ३२ । अ १६ ≡ ६ ख ≡ प ख ə

अनंतरमेकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यअनादिद्रव्यप्रमाणंगळं पेळ्वपरु :—

सगसगसादिविहीणे जोग्गाजोग्गे य होदि णियमेण ।
जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण परिमाणं ॥१९०॥

स्वस्वसादिविहीने योग्यायोग्ये च भवति नियमेन। योग्यायोग्यानां पुनरनादिद्रव्याणां परिमाणं ॥

एकानेकक्षेत्रगतयोग्यायोग्यद्रव्यंगळोळु यथाक्रमदिदं स्वस्वयोग्यायोग्यसादिद्रव्यंगळं कळेयुत्तिरलु एकानेकक्षेत्रस्थित योग्यायोग्यद्रव्यंगळ अनादिद्रव्यपरिमाणंगळप्पुवु :—

एकक्षेत्रायोग्यसादि	अनेकक्षेत्रायोग्यसादि
स ३२ अ १६ ६ ख प ख ≡ ə	स ३२ अ १६ ≡ ६ ख प ख ≡ ə

अथैकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यानादि द्रव्यप्रमाणान्याह—

एकानेकक्षेत्रगतयोग्यायोग्यद्रव्येषु यथाक्रमं स्वस्वयोग्यायोग्यसादिद्रव्येऽवपनीतेषु एकानेकक्षेत्रस्थित-

---

जानना। शेष बहुभाग प्रमाण एक क्षेत्र सम्बन्धी अयोग्य सादि द्रव्य जानना। इसी प्रकार अनेक क्षेत्र सम्बन्धी सादि द्रव्यमें अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण अनेक क्षेत्रमें स्थित योग्य सादिद्रव्य जानना, शेष बहुभाग प्रमाण अनेक क्षेत्रमें स्थित अयोग्य सादि द्रव्य जानना ॥१८९॥

आगे अनादिद्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

एकक्षेत्रमें स्थित योग्यद्रव्य और अयोग्यद्रव्य तथा अनेकक्षेत्रमें स्थित योग्यद्रव्य और अयोग्यद्रव्यका जो परिमाण कहा है उनमें-से अपने-अपने सादिद्रव्यका परिमाण घटानेपर जो शेष प्रमाण रहे उतना-उतना क्रमसे एकक्षेत्रस्थित योग्य अनादि द्रव्यका और एकक्षेत्रस्थित अयोग्य अनादि द्रव्यका तथा अनेकक्षेत्रस्थित योग्य अनादि द्रव्यका और अनेक क्षेत्र स्थित अयोग्य अनादि द्रव्यका प्रमाण होता है। इनमें-से योग्य सादिद्रव्यसे अथवा योग्य अनादि-द्रव्यसे अथवा योग्य उभय द्रव्यसे एक समयप्रबद्ध प्रमाण मूलप्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृति-रूपसे प्रतिसमय प्रदेशबन्ध करता है। इसका भावार्थ यह है कि जीव मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे प्रतिसमय कर्मरूप होनेके योग्य समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओंको ग्रहण करके उन्हें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त समुदायरचना

एक क्षे० यो० अनादि	अनेक क्षेत्र यो० अनादि
१६ ख ६ ख ≡ प ᨱ स ३२ अ १६ । ६ ≡ प ख ᨱ	१६ ख ≡ ६ । १ ≡ प ख ᨱ स ३२ अ १६ ≡ ६ १ ≡ प ख ᨱ
एक क्षे० अयो० अनादि०	**अनेक क्षे० अयो० अ०**
१६ ख । ६ ख ≡ प ख ᨱ स ३२ । अ १६ ६ ख ≡ प ख ᨱ	१६ ख । ≡ ६ ख ≡ प ख ᨱ स ३२ । अ १६ ६ ख ≡ प ख ᨱ

अनंतरमी पेळल्पट्ट योग्यसादिद्रव्यमं मेणु योग्यानादिद्रव्यमं मेणुभयद्रव्यमुमं मेणु कर्म्मपरिणमनयोग्यकार्म्मणवर्ग्गणास्कंधगळनेकसमयप्रबद्धप्रमितमं मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपदिदं प्रतिसमयं प्रदेशबंधमं माळकुमा समयप्रबद्धप्रमाणमुमिनितें दु पेळ्दपरु :—

योग्यायोग्यद्रव्याणां अनादिद्रव्यप्रमाणानि भवन्ति, तस्माद्योग्यसादिद्रव्याद् वा योग्यानादिद्रव्याद् वा योग्योभयद्रव्याद् वा एकसमयप्रबद्धप्रमितं मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेण प्रतिसमयं प्रदेशबन्धं करोति ।

एकक्षेत्र यो = अनादि

१६ ख ६ १
≡ ख प)
ᨱ)
स ३२ अ १६ । ६ १
≡ प ख
ᨱ

अनेकक्षेत्रयोग्य अनादि

१६ ख ≡ ६ १
≡ ख प)
ᨱ)
स ३२ अ १६ । ≡ ६ १
≡ प ख
ᨱ

एकक्षेत्र अयो = अनादि

१६ ख ६ । ख
≡ प)
ᨱ ख)
स ३२ अ १६ । ६ ख
≡ प ख
ᨱ

अनेकक्षेत्र अयो—अनादि

१६ ख ≡ ६ ख
प ख)
≡ ᨱ)
स ३२ अ १६ । ≡ ६ ख
प ख
≡ ᨱ ॥१९०॥

क्रमरूप परिणमाता है । सो किसी समय तो जीवके द्वारा पूर्वमें ग्रहणमें आये सादिद्रव्यरूप परमाणुओंको ही ग्रहण करता है, किसी समय किसी भी जीवके द्वारा पूर्वमें ग्रहण न किये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयलरसरूवगंधेहिं परिणदं चरिमचदुहिं फासेहिं ।
सिद्धादो अभव्वादो अणंतिमभागं गुणं दव्वं ॥१९१॥

सकलरसरूपगंधैः परिणतं चरमचतुर्भिः स्पर्शैः । सिद्धादभव्यादनंतैकभागो गुणं द्रव्यं ॥

सर्व्वरससर्व्वरूपसर्व्वगंधंगळिदमुं चरमशीतोष्णस्निग्धरूक्षचतुःस्पर्शंगळिदमुं परिणतमप्पुदुं सिद्धराशियं नोडलुमनंतैकभागमुमप्पुदु । मभव्यराशियं नोडलुमनन्तगुणमुमप्पुदु । मितप्प समयप्रबद्धद्रव्यं मूलप्रकृतिगळोळेंतु [1]पसल्पडुगुमॆंदोडे पेळ्दपरु :—

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो ।
घादितिये वि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिए ॥१९२॥

आयुर्भागः स्तोकः नामगोत्रयोः समस्ततोऽधिकः । घातित्रयेऽपि च ततो मोहे ततस्तृतीये ॥

आयुर्भागः आयुष्यकर्म्मद भागं स्तोकः एल्लवर भागमं नोडलु किरिदक्कु । ततः आ आयुर्भागमं नोडलुं नामगोत्रयोः नामगोत्रंगळोळु अधिकः अधिकमक्कुमवुवुं समः तम्मोळु समनागि पसल्पडुगुं । ततः आ नामगोत्रद्वयद भागमं नोडलु घातित्रये अन्तराय दर्शनावरणज्ञानावरणत्रयदोळु अधिकः अधिकमक्कु । मवुवुं समः तम्मोळु समनागि पसल्पडुगुं । ततः आ घातित्रयद भागमं नोडलुं मोहे मोहनीयकर्म्मदोळु अधिकः अधिकमक्कुं । ततः आ मोहनीयद भागमं नोडलु

तत्प्रमाणमाह—

सर्वरसरूपगन्धैश्चरमशीतोष्णस्निग्धरूक्षचतुःस्पर्शैश्च परिणतं सिद्धराश्यनन्तैकभागं अभव्यराश्यनन्तगुणं समयप्रबद्धद्रव्यं भवति ॥१९१॥ तन्मूलप्रकृतिषु कथं विभज्यते ? इति चेदाह—

आयुःकर्मणो भागः स्तोकः । नामगोत्रयोः परस्परं समानोऽपि ततोऽधिकः । अंतरायदर्शनज्ञानावरणेषु

गये अनादि द्रव्यरूप परमाणुओंको ग्रहण करता है। और किसी समय कुछ सादि द्रव्यरूप और कुछ अनादिद्रव्यरूप परमाणुओंको ग्रहण करता है ॥१९०॥

आगे उस समयप्रबद्धका प्रमाण कहते हैं—

वह समयप्रबद्धरूप परमाणुओंका समूह सब रस, सब रूप, सब गन्ध किन्तु शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष चार प्रकारके स्पर्शसे युक्त होता है। उसमें गुरु, लघु, मृदु और कठिन ये चार स्पर्श नहीं होते। तथा उस समयप्रबद्धमें सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्यराशिसे अनन्तगुणे परमाणु होते हैं। इतने परमाणुओंको प्रतिसमय ग्रहण करके कर्मरूप परिणमाता है अर्थात् जीवके भावोंका निमित्त पाकर इतने परमाणु प्रतिसमय स्वयं कर्मरूप परिणमते हैं ॥१९१॥

उस समयप्रबद्धका विभाजन मूल प्रकृतियोंमें किस प्रकारसे होता है यह कहते हैं—

सब मूल प्रकृतियोंमें आयुकर्मका भाग थोड़ा है। नाम और गोत्रकर्मका भाग परस्परमें समान होते हुए भी आयुकर्मके भागसे अधिक है। अन्तराय, ज्ञानावरण और दर्शनावरणका भाग परस्परमें समान है तथापि नाम और गोत्रके भागसे अधिक है। उससे

1. हच्चल्पडुगु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीये वेदनीयदोळु अधिकः अधिकमक्कु । मिन्तु पसल्पडुत्तिरलु मिथ्यादृष्टियोळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुर्भेददिदं चतुर्विधमक्कुं ।

सासादननोळ् तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुर्भेददिदं त्रिविधमक्कुं । असंयतनोळ् मनुष्यदेवायुर्भेददिदं द्विविधमक्कं । देशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोळु देवायुष्यभेददिनेकविधमेयक्कु । मायुर्बंधरहितपेक्षेयिदमनिवृत्तिकरणपर्य्यंत ९ गुणस्थानंगळोळु सप्तविधमूलप्रकृतिप्रदेशबंधमक्कुं । सूक्ष्मसांपरायनोळु ६ षड्विधमूलप्रकृतिगळगे प्रदेशबंधमक्कुमुपशांतादिसयोगकेवलिपर्य्यंतमेकमूलप्रकृतिगे सर्व्वसमयप्रबद्धद्रव्यमुदयात्मकप्रदेशबंधमक्कुं ।

वेद स ० ८ / ८।९	मो स ०८ / ८।९	णा स ०८ / ८।९	द स ०८ / ८।९	अन्तराय स ०८ / ८।९	गो स ०८ / ८।९	ना स ०८ / ८।९	आ स ०८ / ८।९
स ०८ / ९९	स ०८ / ९९९	स ०८ / ९९९९।३	स ०८ / ९९९९।३	स ०८ / ९९९९।३	स ०८ / ९९९९९।२	स ०८ / ९९९९९।२	स ० १ / ९९९९९

अनंतरं वेदनीयक्के सर्व्वतोधिकमप्पुदक्के कारणमं पेळ्दपरु :--

सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स ।
सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१९३॥

सुखदुःखनिमित्तात् बहुनिर्ज्जरेति वेदनीयस्य । सर्व्वतो बहुकं द्रव्यं भवतीति निर्द्दिष्टं ॥

वेदनीयस्य वेदनीयक्के सुखदुःखनिमित्तात् सुखदुःखकारणदिदं बहुनिर्ज्जरेति बहुनिर्ज्जरेयुंटेंदिन्तु सर्व्वतः सर्व्वप्रकृतिगळ भागेय द्रव्यमं नोडलु बहुकं द्रव्यं पिरिदु द्रव्यं भवतीति निर्द्दिष्टं

तथा समानोऽपि ततोऽधिकः । ततो मोहनीयेऽधिकः ततो वेदनीयेऽधिकः । एवं भक्त्वा दत्ते सति मिथ्यादृष्टौ आयुश्चतुर्विधम् । सासादने नारकं नेति त्रिविधम् । असंयते तैरश्चमपि नेति द्विविधम् । देशसंयतादित्रये एकं देवायुरेव । उपर्यनिवृत्तिकरणांतेषु सप्तविधमूलप्रकृतीनां प्रदेशबन्धः सूक्ष्मसांपराये षण्णां उपशांतादित्रये एकाया उदयात्मिकायाः ॥१९२॥ अथ वेदनीयस्य सर्वत आधिक्ये कारणमाह—

वेदनीयस्य सुखदुःखनिमित्तत्वात् बहुकं निर्जरयति इति हेतोः सर्वप्रकृतिभागद्रव्यात् बहुकं द्रव्यं भव-

मोहनीयका भाग अधिक है। मोहनीयसे वेदनीयका भाग अधिक है। सो मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारों आयुका बन्ध सम्भव है। सासादनमें नरकायुके बिना तीन आयुका बन्ध होता है। असंयतमें नरक और तिर्यंचके बिना दो आयुका बन्ध होता है। देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तमें एक देवायुका ही बन्ध होता है। ऊपर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त आयुके बिना सात ही कर्मोंका प्रदेशबन्ध होता है। सूक्ष्म साम्परायमें आयु और मोहनीयके बिना छह कर्मोंका बन्ध होता है। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवलीमें एक वेदनीयका बन्ध होता है जो उदयरूप ही है। जहाँ जितने कर्मोंका बन्ध होता है वहाँ समयप्रबद्धमें उतने ही कर्मोंका बँटवारा होता है ॥१९२॥

आगे वेदनीय कर्मका सबसे अधिक भाग होनेका कारण कहते हैं—

वेदनीय कर्म सुख और दुःखमें निमित्त होता है। इससे उसकी निर्जरा बहुत होती

1. ब °षु मूलप्रकृतयः सप्त, सूक्ष्मसांपराये षट् । उपशान्तादित्रये एका उदयात्मिका ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्कुमेंदितु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदु ॥

अनन्तरं शेषप्रकृतिगळ्गे स्थित्यनुसारिद्रव्यविभंजनमक्कुमेंदु पेळ्दपरु :—

सेसाणं पयडीणं ठिदिअणुभागेण होदि दव्वं तु ।
आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ॥१९४॥

शेषाणां प्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन भवति द्रव्यं तु । आवल्यसंख्यभागः प्रतिभागो भवति नियमेन ॥

शेषमूलप्रकृतिगळगेल्लं स्थितिप्रतिभागदिदं द्रव्यमक्कुं । तु मते । अधिकागमननिमित्तमागि । प्रतिभागं प्रतिभागहारं । आवल्यसंख्यभागः आवल्यसंख्यातैकभागमेयक्कुं । नियमेन नियमदिदं । भागहारान्तरनिर्व्वृत्यर्त्थमागि नियमवचनमा भागहारक्के नवांकं संदृष्टियक्कुं ९ ॥

ई आवल्यसंख्यातदिदं भागिसि पसुगेयं माळ्प क्रममं पेळ्दपरु :—

बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देयो दु ॥१९५॥

बहुभागे समभागोऽष्टानां भवत्येकभागे । उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥

तीति परमागमे निर्दिष्टम् ॥१९३॥ अथ शेषाणां स्थित्यनुसारिद्रव्यविभञ्जनमित्याह—

शेषसर्वमूलप्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन द्रव्यं भवति । तु—पुनः तत्राधिकागमननिमित्तं प्रतिभागहारः आवल्यसंख्येयभागो नियमेन । भागहारान्तरनिवृत्यर्थं नियमवचनम् । तत्संदृष्टिर्नवाङ्कः ९ ॥१९४॥ अनेन विभागक्रमं दर्शयति—

है । अतः अन्य सब मूल प्रकृतियोंके भागरूप द्रव्यसे वेदनीयका द्रव्य बहुत है, ऐसा परमागममें कहा है ॥१९३॥

शेष कर्मोंके द्रव्यका विभाग उनकी स्थितिके अनुसार होता है, यह कहते हैं—

वेदनीयके बिना शेष सब मूल प्रकृतियोंका द्रव्य स्थितिके प्रतिभागके अनुसार होता है अर्थात् जिस कर्मकी स्थिति बहुत है उसका द्रव्य अधिक है। जिनकी स्थिति परस्परमें समान है उनका द्रव्य परस्परमें समान जानना । जिसकी स्थिति कम है उसका द्रव्य थोड़ा है। अधिक भाग लानेके लिए प्रतिभागहार आवलीका असंख्यातवाँ भाग नियमसे होता है। 'नियम' पद इसलिए दिया है कि अन्य भागहार नहीं होता । उसकी संदृष्टि 'नौ'का अंक है। इसका भाग देनेपर जो लब्ध आवे सो एक भाग जानना । और एक भागके बिना शेष सब भागको बहुभाग जानना ॥१९४॥

आगे विभागका क्रम कहते हैं—

---

१. ब °सारद्र° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिगळ्गेल्लं बहुभागदोळु समभागमक्कुं । एक्कभागम्मि शेषैकभागदोळु उत्तक्रमः पूर्व्वोक्तक्रममक्कुमल्लि तु मत्ते । बहुभागः बहुभागं । बहुकस्य देयः पिरिदप्पुदक्के देयमक्कुमदेंतेंदोडे सिद्धराशियं नोडलुमनंतैकभागमुमभव्यराशियं नोडलुमनंतगुणमुमप्प कार्म्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमनिदं । स a । पूर्व्वोक्तावल्यसंख्यातैकभागमात्रप्रतिभागहारदिदं भागिसि बहुभागमं स a ८/९ आयुर्बंधकालदोळु मूलप्रकृतिगळें टक्कमेल्लमिनितु द्रव्यमागलोंदु प्रकृतिगेनितु द्रव्यमक्कुमेंदु त्रैराशिकमं माडि बंदलब्धमनें टेडेयोळं प्रत्येकमिरिसि शेषैकभागमनिदं स a १/९ मत्तमावल्यसंख्यातैकभागदिदं भागिसि बहु भागमनिदं स a ८/९९ बहुकस्य देयमेंदु वेदनीयक्के कोट्टु शेषैकभागमं स a १/९९ मत्तमावल्यसंख्यातदिदं भागिसि बहुभागमनिदं स a ८/९९९ मोहनीयक्के कोट्टु शेषैकभागमं स a १/९९९ मत्तमावल्यसंख्यातैकभागदिदं भागिसि बहुभागमं स a ८/९९९९ ज्ञानावरण-दर्शनावरणान्तराय घातित्रयक्कं[1] कोट्टुदं मूररिदं भागिसि समनादुदं स a ८/९९९९।३ प्रत्येकं मूरडेयोळं कोट्टु शेषैकभागमं स a १/९९९९ पूर्व्वोक्तावल्यसंख्यातदिदं भागिसि बहुभागमनिदं स a ८/९९९९९ नामगोत्र-

---

मूलप्रकृतीनामष्टानां बहुभागे समभागो देयः । तत्रैकभागे उत्तक्रमो भवति । तत्र तु पुनः बहुभागः बहुकस्य देयः । तद्यथा—कार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं स a तत् आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स a ८/९ अष्टभिर्भक्त्वा स a ८/९·८ अष्टसु स्थानेषु प्रत्येकं स्थाप्यः, शेषैकभागे स a १/९ आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः स a ८/९९ बहुकस्य वेदनीयस्य देयः । शेषैकभागे स a १/९९ पुनरावल्यसंख्यातभक्तबहुभागः मोहनीयस्य देयः स a ८/९९९ शेषैकभागे स a १/९९९ पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः स a ८/९९९९ त्रिभिर्भक्त्वा स a ८/९९९९ ३

आठ मूल प्रकृतियोंको बहुभाग तो बराबर-बराबर समान देना चाहिए। जो एक भाग रहा उसको उक्त क्रमसे देना। किन्तु उसमें भी जिसका बहुत द्रव्य हो उसको बहुभाग देना चाहिए। वही कहते हैं—

एक समयमें जो कार्माण सम्बन्धी समयप्रबद्ध ग्रहण किया, उसके परमाणुओंका जो प्रमाण है उसे कार्मण समयप्रबद्ध द्रव्य कहते हैं। उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे एक भागको पृथक् रखकर बहुभागके आठ समान भाग करें। भाग देवें। और एक-एक समान भाग आठ स्थानोंमें अलग-अलग रखें। और जो एक भाग अलग रखा है उसमें भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देवें। तथा एक भागको अलग रखकर शेष बहुभाग जिसका बहुत द्रव्य कहा है उस वेदनीय कर्मको देवें। सो पूर्वोक्त आठ समान भागोंमें-से

---

१. ब° °क्कं मूर° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वयक्कं कोट्टुदनेरडरिंदं भागिसि समानावुदं स ७ ८ / ९९९९९।२ प्रत्येकमेरडेडेयोळं कोट्टु शेषैकभागमनिदं स ७ १ / ९९९९९ आयुष्यक्के कोडुवुविन्तु कुडुत्तं विरलु वेदनीयं पोरगागि शेषप्रकृतिगळ्गे तंतम्म स्थित्यनुसारियागि द्रव्यंगळायुष्यकर्म्मक्के सर्व्वतः स्तोकमक्कुं। नामगोत्रंगळोळधिकमागियुं तंतम्मोळु सरियक्कुं। मन्तरायदर्शनावरणज्ञानावरणत्रयक्कधिकमागियुं तम्मोळु सरियक्कुं। मोहनीयदोळु अधिकमक्कुं। वेदनीयदोळमधिकमक्कुमेंदु मुंपेळ्द मूलप्रकृतिगळ पसुगेय द्रव्यंगळु सिद्धमादुवु॥

अनंतरं ज्ञानावरणादिमूलप्रकृतिगळ्गे पेळ्द पिंडद्रव्यमं तंतम्मुत्तरप्रकृतिगळोळु विभागिसि कुडुवे[1] प्रकारमं पेळ्वपरु :—

ज्ञानदर्शनावरणांतरायेषु प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे स ७ १ / ९ ९ ९ ९ पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः द्वाभ्यां भक्त्वा स ७ ८ / ९ ९ ९ ९ ९ २ प्रत्येकं नामगोत्रयोर्देयः। शेषैकभागं स ७ १ / ९ ९ ९ ९ ९ आयुषि दद्यात्। एवं दत्ते आउगभागो थोवो इति गाथोक्तक्रमः सिद्धः ॥१९५॥ अथ मूलप्रकृतीनां उक्तपिण्डद्रव्यं स्वस्योत्तरप्रकृतिषु भक्त्वा दानक्रममाह—

एक समान भागमें उस बहुभागको मिलानेसे जितना प्रमाण हो उतने परमाणु उस समयप्रबद्धमें-से वेदनीय कर्मरूप परिणमते हैं। अब जो एक भाग रहा उसमें भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें। और एक भागको अलग रख शेष बहुभाग मोहनीय कर्मको देवें। इस बहुभागको भी आठ समान भागोंमें-से एक भागमें मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु मोहनीय कर्मरूप परिणमते हैं। अलग रखे एक भागमें भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें और एक भागको अलग रख शेष बहुभागके तीन समान भाग करें। और एक-एक भाग ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायको देवें। इस एक-एक भागको आठ समान भागोंमें एक-एक भागमें मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु क्रमसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मरूप परिणमते हैं। इन तीनोंका द्रव्य परस्परमें समान होता है। अलग रखे एक भागमें भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भागको अलग रख बहुभागके दो समान भाग करके एक-एक भाग नाम और गोत्रको दें। और उन आठ भागोंमें-से एक-एक समान भागमें इस एक-एक भागको मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु क्रमसे नाम और गोत्ररूप परिणमते हैं। इन दोनोंका द्रव्य परस्पर समान होता है। एक भाग जो रहा वह आयु कर्मको देवें और उन आठ समान भागोंमें-से शेष रहे एक भागमें मिला दें। जो प्रमाण हो उतने परमाणु आयुकर्मरूप परिणमते हैं। इस प्रकार जो 'आउगभागो थोवो' आदि गाथामें कहा था वह निष्पन्न हुआ ॥१९५॥

आगे मूल प्रकृतियोंमें जो ऊपर पिण्डद्रव्य कहा है उसे अपनी-अपनी उत्तर प्रकृतियोंमें विभाजित करके देनेका क्रम कहते हैं—

---

१. क °व क्रममं।

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा ।
अहियकमा पुण णामा विग्घा य ण भंजणं सेसे ।।१९६।।

उत्तरप्रकृतिषु पुनर्म्मोहावरणानि भवन्ति हीनक्रमाः । अधिकक्रमाः पुनर्न्नामानि विघ्नाश्च न भंजनं शेषे ॥

उत्तरप्रकृतिगळोळु पुनः मत्ते मोहावरणानि मोहनीयंगळुं ज्ञानावरणंगळुं दर्शनावरणंगळुं हीनक्रमा भवंति हीनक्रमंगळप्पुवु । पुनः मत्ते नामकर्म्मप्रकृतिगळु मन्तरायकर्म्मप्रकृतिगळुं अधिकक्रमा भवंति अधिकक्रमंगळप्पुवु । शेषवेदनीयगोत्रायुष्यंगळोळु द्रव्यविभंजनमिल्लेकेंदोडे तत्प्रकृतिगळुं बंधकालदोळेकैकंगळे बंधमप्पुवितरंगळगे बंधमिल्लप्पुदरिंदं मूलप्रकृतिगळोळु पेळ्द द्रव्यमनितुं विवक्षितबंधप्रकृतिगेयक्कुं । युगपद्विवक्षितबंधंगळगमितरंगळ्गं बंधमिल्लप्पुदरिंदं । सातमुमुच्चैर्ग्गोत्रमुं देवायुष्यमुं बंधमप्पागळु इतरासातं नीचैर्ग्गोत्र नरकतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळ्गे बंधमिल्लदु कारणदिंदं मूलप्रकृतिगळोळु पेळ्द द्रव्यमिवक्केयक्कुमा असातनीचैर्ग्गोत्रादिगळु बंधमप्पागळु सातादिगळ्गे बंधमिल्लप्पुदरिंदं । मूलप्रकृतिद्रव्यमनितुविवक्षकक्कुमें बुदर्त्थं ॥

अनंतरं घातिकर्म्मंगळोळु सर्व्वघातिप्रकृतिगळगं देशघातिप्रकृतिगळगं द्रव्यविभंजनक्रममं पेळ्दपरु :—

सव्वावरणं दव्वं अणंतभागो दु मूलपयडीणं ।
सेसा अणंतभागा देसावरणे हवे दव्वं ।।१९७।।

सर्व्वावरणद्रव्यमनन्तभागस्तु मूलप्रकृतीनां । शेषानंता भागाः देशावरणे भवेत् द्रव्यं ॥

उत्तरप्रकृतिषु पुनः मोहनीयज्ञानदर्शनावरणानि हीनक्रमाणि भवन्ति । नामान्तरायौ पुनः अधिकक्रमौ भवतः । शेषवेदनीयगोत्रायुस्सु द्रव्यविभजनं नास्ति, तेषां एकैकस्या एव तदुत्तरप्रकृतेर्बन्धात् । तेन तन्मूलप्रकृत्युक्तद्रव्यं सर्वमेव स्यात् इत्यर्थः ।।१९६।। अथ घातिकर्मसु सर्वघातिदेशघातिद्रव्यविभञ्जनक्रममाह—

उत्तर प्रकृतियोंमें मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण ये तो हीनक्रम होते हैं अर्थात् क्रमसे घटता-घटता द्रव्य इनकी उत्तर प्रकृतियोंमें दिया जाता है। जैसे ज्ञानावरणमें मतिज्ञानावरणसे श्रुतज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है। उससे अवधि ज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है। उसे मनःपर्ययज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है। तथा नामकर्म और अन्तराय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक द्रव्य दिया जाता है। जैसे अन्तराय कर्ममें दानान्तरायके द्रव्यसे लाभान्तरायका द्रव्य अधिक है। उससे भोगान्तरायका द्रव्य अधिक है। शेष वेदनीय, गोत्र आयुकर्ममें बँटवारा नहीं है क्योंकि इनकी एक-एक ही प्रकृति बँधती है। जैसे वेदनीय कर्मके भेदोंमें-से या तो साताका ही बन्ध होता है या असाताका ही बन्ध होता है। दोनोंका बन्ध एक समयमें नहीं होता। इसी तरह गोत्रकर्ममें-से या तो नीचगोत्रका बन्ध होता है या उच्चगोत्रका बन्ध होता है। आयु भी एक समयमें एक ही बँधती है। अतः इन तीनों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें बँटवारा नहीं है। जिस समयमें इनकी जिस उत्तर प्रकृतिका बन्ध होता है उस समयमें मूल प्रकृतिको जो द्रव्य मिलता है वह सब उसकी उत्तर प्रकृतिका ही होता है ।।१९६।।

आगे घातिकर्मोंमें सर्वघाती और देशघाती द्रव्यका बँटवारा कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलप्रकृतीनां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयमें ब मूलप्रकृतिगळ तंतम्म द्रव्यंगळोळु सर्व्वावरणद्रव्यं सर्व्वघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यं अनंतभागस्तु जिनदृष्टानन्तभागहारभक्तानंतैकभागमक्कुं। तु मत्ते शेषानंता भागाः शेषानन्तबहुभागंगळु देशावरणे भवेत् द्रव्यं स्वस्वदेशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यंगळप्पुवु। तद्यथा—ज्ञानावरणमूलप्रकृतिद्रव्यमिदु स ० । ८ / ९ । ८ यिल्लि विशेषरूपदिनिर्द्द स ० । ८ / ९९९९ । ३ केळगणावल्यसंख्यातैकभागमं तंदु साधिकं माडि स ० । ८ / ८ । ९ गुणकारदोळेकरूपहीनत्वमनवगणिसियपर्वात्तिसि स ० / ८ जिनदृष्टानंतभागहारदिदं भागिसि बंद लब्धमेकभागं ज्ञानावरणसर्व्वघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कु स ० । १ / ८ । ख शेषबहुभागद्रव्यं मतिज्ञानावरणादिदेशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कुं स ० । ख / ८ ख दर्शनावरणमूलप्रकृतिसर्व्वद्रव्यमनिद स ० / ८ ननन्तदिंद भागिसिदेकभागमिदु स ० १ / ८ । ख तत्सर्व्वघातिषट्कसंबंधिद्रव्यमक्कुं। शेषबहुभागद्रव्यं चक्षुर्द्दर्शनादिदेशघातित्रयसंबंधिद्रव्यमक्कुं स ० ख / ८ । ख मोहनीयमूलप्रकृतिद्रव्यं अन्तरायदर्शनावरणज्ञानावरणघातित्रयद्रव्यमं नोडलु साधिकमक्कुमिदं स ० / ८ अनन्तभागहारदिदं भागिसिदेकभागद्रव्यमिदु स ० । १ / ८ । ख मिथ्यात्वद्वादशकषायसर्व्वघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कुं। शेषबहुभागद्रव्यं संज्वलननोकषाय त्रयोदश देशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कु स ० ख / ८ । ख मपवर्त्तितमनिदं स ० / ८ संज्वलनाकषायद्रव्यविभागनिमित्त-

---

ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयमूलप्रकृतीनां स्वस्वद्रव्येषु सर्वावरणद्रव्यं अनन्तैकभागो भवति। तु—पुनः शेषा अनन्ता भागाः देशघातिद्रव्यं भवति। यथा ज्ञानावरणस्य इदं स ० ८ / ९ ८ अधस्तनावल्यसंख्यातैकभागे[1] साधिकी-

---

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय इन मूल प्रकृतियोंके अपने-अपने द्रव्यमें अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाती द्रव्य है और शेष अनन्त बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। जैसे ज्ञानावरणके द्रव्यका जो प्रमाण पहले कहा था, उसमें जिन भगवान्के द्वारा देखे गये अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाती द्रव्य है शेष सर्वभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। ऐसे ही दर्शनावरण और मोहनीयमें भी जानना ॥१९७॥

१. ब °भागेन साधिकं कृत्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मावल्यसंख्यातदिदं भागिसिदेकभागमुं स ७ । १ / ८ । ९ शेषबहुभागद्रव्यमं । स ७ । ८ / ८ । ९ समनागि येरडु भागं माडिदल्लि येकभागमुं । स ७ । ८ । १ / ८ । ९ । २ संज्वलनदेशघातिचतुष्प्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कुं स ७ । ८ । १ / ८ । ९ । २ शेषबहुभागार्द्धद्रव्यमकषायदेशघातिप्रकृतिनवकसंबंधिद्रव्यमक्कुं स ७ । ८ / ८ । ९ । २ अन्तरायपंचकमुं देशघातियेयप्पुदरिदं मूलप्रकृतिसर्व्वद्रव्यमुमक्कुं स ७ / ८ यी नाल्कुं घातिकर्म्मंगळ देशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यंगळगे पेळ्वन्योन्याभ्यस्तराशिये सर्व्वावरणघनात्थं प्रतिभागप्रमाणमें दु पेळ्दपरदेकें दोडे रूपोनान्यान्योभ्यस्तराशियिदं ज्ञानावरणादिघातिकर्म्मंगळ सर्व्वघातिसंबंधिद्रव्यदोळं देशघातिप्रकृतिगळगे भागमुंटप्पुदरिनडु सहितमाद देशघातिसंबंधिसर्व्वद्रव्यमं भागिसिदोडे देशघातिज्ञानावरणचतुष्कमुं त्रिदर्शनावरणमुमन्तरायपंचकमुं संज्वलनचतुष्कनवनो-

---

कृते स ७ ८ / ९ ८ गुणकारस्य एकरूपहीनत्वमवगणय्य अपवर्त्य स ७ / ८ जिनदृष्टानन्तभागहारेण भक्त्वा एकभागः स ७ १ / ८ ख तत्सर्वघातिप्रकृतिसंबन्धी भवति शेषबहुभागः तद्देशघातिसंबन्धी भवति स ७ ख / ८ ख तथा दर्शना-

---

ऊपर जो सर्वघाती द्रव्यका परिमाण कहा है आगे उसका बँटवारा सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियोंमें करेंगे। सो देशघाती मतिज्ञानावरणादिके द्रव्यका जो परिमाण है उसमें सर्वघाति परमाणुओंका प्रमाण लानेके लिए प्रतिभागहारका प्रमाण कहते हैं—

चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, चार संज्वलन और नौ नोकषायके द्रव्यकी नाना गुणहानि शलाका अनन्त है। और जितनी नाना गुणहानि शलाका हैं उतने दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है वह भी अनन्त संख्यावाली है।

जैसे अंक संदृष्टिमें द्रव्य इकतीस सौ ३१००, स्थिति स्थान चालीस ४०, एक-एक गुणहानिका प्रमाण आठ ८, दो गुणहानिका प्रमाण सोलह १६, नाना गुणहानि पाँच ५। नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशि २×२×२×२×२=३२ बत्तीस। सो इसकी रचना पूर्वमें कही है वैसे ही जानना। अस्तु।

सो यहाँ जो अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण है वही सर्वघाती द्रव्यका परिमाण लानेके लिए प्रतिभाग होता है। वही कहते हैं—

मतिज्ञानावरण आदि चार प्रकृतियोंका द्रव्य केवलज्ञानावरणके भागसे हीन अपने सर्वघाती द्रव्य सहित देशघातिद्रव्यका जितना प्रमाण है उतना है। अर्थात् इन देशघाति प्रकृतियोंका देशघाती द्रव्य तो अपना है ही सर्वघाती द्रव्य भी है। वह सर्वघाती द्रव्य केवल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायप्रकृतिगळ शैलभागेय चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमंतादोडे शैलभागे मोदलागि केळगे दारुबहुभागपर्य्यंतं सर्व्वघातित्वमुंटप्पुदरिनो घातिगळ देशघातिद्रव्यं दार्व्वनंतैकभागपर्य्यंतं निक्षेपिसल्पडुगुमप्पुदरिनें तु शैलभागचरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमें दु चोदिसिदंगुत्तरं पेळल्पडुगुमदें तें दोडे—देशघातिप्रकृतिगळ्गे स्वस्वसर्व्वघातिप्रकृतिगळत्तणिदं बंद भागेय द्रव्यं दारुबहुभागं मोदल्गों डु शैलभागचरमपर्य्यंतं निक्षेपिसल्पडुगुं। देशघातिप्रकृतिभागद्रव्यं स्वस्वदार्व्वनंतैकभागपर्य्यंतमे निक्षेपिसल्पडुगुमिन्तुभयद्रव्यमं कूडि लताशक्तिमोदलागि शैलशक्तिपर्य्यंतं निक्षेप्यमक्कुमन्तु निक्षेपमागुत्तिरलेकगोपुच्छरूपदिनिक्कुमें दिन्तु केवलं देशघातिगळप्पन्तरायपंचकदोळु ई रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिगे तद्द्रव्यदोळ प्रतिभागत्वं विरोधिसल्पडुगुमेनल्वेडेकें दोडे "आवरणदेसघादंतरायसंजळणपुरिससत्तरसं। चदुविधभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाण" मेंबी सूत्रप्रमाणदिदमंतरायदेशावरणंगळ्गमुभयसर्व्वदेशघातिशक्तिसंभवमक्कुमप्पुदरिदं।

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणंतसंखमेत्तं खु।
सव्वावरणधणट्ठं पडिभागो होदि घादीणं ॥१९८॥

सर्वघाति	म सु अ म के	शै		स ० ० / ८ । ख ख / स ० २ / ८ ख ख	शैल चरम गुणहानि द्रव्य तद्द्वि चरमगुणहानि द्रव्य
		अ		स ० २ । २ ० / ८ ख ख	तत्त्रि चरम गुणहानि
		दा ख ० / ख		० ० ० / स ० ख ख ० / ८ ख ख २ २ २	दारु बहुभागप्रथम गुणहानि द्रव्य
देशघाति	म सु अ म	दा १ / ख	स	स ० ख ख ० / ८ ख ख २ २	दार्वन्तैक भाग चरमगुणहानि द्रव्य
		ल	दे	० ० ० / स ० ख ख ० / ८ ख ख २	लता प्रथम गुणहानि द्रव्य

वरणमोहनीययोरपि ज्ञातव्यं ॥१९७॥ उक्तसर्वघातिद्रव्येषु तद्देशघातिप्रकृतिभागस्य वक्ष्यमाणत्वात् तत्सहितै घातिद्रव्येषु सर्वावरणधनार्थं प्रतिभागहारप्रमाणमाह—

ज्ञानावरणका जितना भाग है उससे हीन है सब नहीं है। इस तरह देशघाती और सर्वघाती

१. ब तत्सहितदेशघाति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेशावरणान्योन्याभ्यस्तस्त्वनन्तसंख्यमात्रः खलु । सर्व्वावरणधनात्थं प्रतिभागो भवति घातीनां ॥

देशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यनानागुणहानिशलाकेगळनंतप्रमितंगळप्पुदरिवं तावन्मात्रद्विकवर्गितसंवर्गसंजनितमप्पुदरिवमन्योन्याभ्यस्तराशिनानागुणहानिशलाकाराशियं नोडलुमनंतानंतगुणमप्पुदरिदं । तु मत्तमनंतसंख्यावच्छिन्नमक्कुमदु सर्व्वघातिशक्तियुक्तघातिकर्म्मंगळ तत्सर्व्वघातिसंबंधिद्रव्यगुणसंकलितधनप्रमाणावधारणात्थंमागि प्रतिभागमक्कुमवेंतेंदोडे घातिकर्म्मंगळोळु

चतुर्ज्ञानावरणत्रिदर्शनावरणपञ्चान्तरायचतुःसंज्वलननवनोकषायद्रव्याणां नानागुणहानिशलाकाः अनन्ता इति तन्मात्रद्विकसंवर्गजनितोऽन्योन्याभ्यस्तराशिरपि अनन्तसंख्यो भवति । स खलु तेषां सर्वघातिद्रव्यस्य गुणसंकलितघनप्रमाणावधारणार्थं प्रतिभागो भवति । तद्यथा—

द्रव्य मिलकर मतिज्ञानावरणादिका द्रव्य होता है।

शंका—देशघाति प्रकृतियोंमें सर्वघाती परमाणु कैसे कहे हैं?

समाधान—पूर्वमें कहा है कि मतिज्ञानावरणादिका अनुभाग शैल, अस्थि, दारु और लतारूपसे चार प्रकार है। उनमें-से दारुका अनन्तवाँ भाग और लताभाग तो देशघाती है। ऐसे अनुभागवाले परमाणु देशघाती होते हैं। तथा शैल, अस्थि और दारुका बहुभाग सर्वघाती है। ऐसे अनुभागवाले परमाणु सर्वघाती हैं। सर्वघातीके उदयमें किंचित् भी आत्मगुण प्रकट नहीं होता। जैसे एकेन्द्रियादिके चक्षुदर्शनके सर्वघाती परमाणुका उदय होनेसे चक्षुदर्शन नहीं होता। किन्तु देशघातीके उदयमें आत्मगुण प्रकट होता है जैसे चौइन्द्रिय आदि जीवोंके चक्षुदर्शनके देशघाती परमाणुओंका उदय है फिर भी चक्षुदर्शन होता है। इस प्रकार देशघाति प्रकृतियोंमें सर्वघाती और देशघाती द्रव्य होता है। अस्तु,

मतिज्ञानावरणादि चारका वह द्रव्य केवलज्ञानके बिना अपने सर्वघाति द्रव्यसहित देशघातिद्रव्य प्रमाण है सो कुछ अधिक समय प्रबद्धके आठवें भाग है। उसमें एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका परिमाण होता है। पश्चात् नीचेकी ओर एक-एक गुणहानिमें दूना-दूना द्रव्य होते-होते दारु भागके अनन्त भागोंमें-से एक भाग बिना शेष बहुभाग सम्बन्धी द्रव्य उनकी प्रथम गुणहानिमें शैलभागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको यथायोग्य आधे अनन्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। क्योंकि यहाँ तक जितनी गुणहानि हुई वही गच्छ है। सो एक कम गच्छमात्र दोके अंकोको गुणा करनेपर सर्वघाती सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि अनन्त प्रमाण होती है। उसका जो आधा है वही यहाँ गुणकार है। इन सब गुणहानियोंके द्रव्यको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु सर्वघाती सम्बन्धी जानने। इसीसे सर्वघाती द्रव्य लानेके लिए अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रतिभाग कहा है। आगे देशघातीका द्रव्य कहते हैं—

दारुभागके बहुभागकी प्रथम गुणहानिके द्रव्यसे नीचे दारु भागके अनन्त भागोंमें-से एक भागकी अन्तिम गुणहानिका द्रव्य दूना है। तथा नीचे प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता हुआ लताभागकी प्रथम गुणहानिमें एक कम सर्व नाना गुणहानिका जितना प्रमाण है उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अन्योन्याभ्यस्त राशिका है। उसके आधे प्रमाणसे शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर जो प्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्व्वघातिकेवलज्ञानावरणादि प्रकृतिगळ संबंधिद्रव्यमिदरोळु स a । १ / ८ । ख केवलज्ञानावरण भागम-

निदं स a ८ / ८।ख।९।५ कळेदुळिद सर्व्वघातिद्रव्यमनितुं स a ५ / ८ ख।५ मतिज्ञानावरणादि देशघातिचतुष्क-

संबंधि सर्व्वघातिशक्तियुक्तद्रव्यमक्कुमीयनंतैकभाग द्रव्यमं स a / ८ । ख । ९ तंतम्म भागमं हीनक्रमदो-

ळिद्दुवं तंतम्म हीनक्रमदिदमिद्दं शेषघातिसंबंधिद्रव्यदोळ्कूडिदोडे मतिज्ञानावरणादिदेशघातिद्रव्यं

प्रत्येकं समयप्रबद्धानंतैकभागाधिकसमयप्रबद्धाष्टमभागद्रव्यमक्कु स a / ८ मिदं मुंपेळ्वनंतप्रमाणा-

वच्छिन्नान्योन्याभ्यस्तराशियोळेकरूपं होनं माडि भागिसिदोडेक भागमिदु स a । १ / ८ ख ख मतिज्ञाना-

वरणादिदेशघातिगळ सर्व्वघातिशक्तियुक्तसर्व्वोत्कृष्टशैलभागचरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमिदु मोदलगों-

डु कलगे केळगे गुणहानि प्रति गुणहानि प्रति द्विगुण द्विगुणक्रमदिदं बंदु दारु बहुभाग प्रथमगुण-

हानियोळु तद्योग्यानन्तार्द्धगुणितचरमगुणहानिप्रमितद्रव्यमक्कुं स a । ख / ८ ख ख । २ मेकेंदोडे रूपोनगच्छ-

मात्रानन्तद्विक संवर्गसंजनितराशियप्पुदरिंदमल्लि सर्व्वघातिसंबंधि द्रव्यं तीव्रुंवदु कारणदिंदमी

मतिज्ञानावरणादीनां चतुर्णां देशघातिद्रव्यं केवलज्ञानावरणभाग स a ८ १ / ८ ख ९ ५ न्यूनस्वकीयसर्वघातिद्रव्य

स a ८ ५ / ८ ख ९ ५ युतं तत्साधिकसमयप्रबद्धाष्टभागमात्रं a / ८ रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्तं स a / ८ ख ख

शैलभागचरमगुणहानिद्रव्यं भवति । ततोऽधः गुणहानिं गुणहानिं प्रति द्विगुणं द्विगुणं भूत्वा दारुबहुभाग-

प्रथमगुणहानौ तत्तद्योग्यानन्तार्द्धगुणिते भवति स a ख / ८ ख ख २ रूपोनगच्छमात्रानन्तद्विकानां तद्गुणकारत्वात् । अत्र

हो उतना द्रव्य जानना । इन गुणहानियोंको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु देशघाती सम्बन्धी जानने ।

जैसे अंकसंदृष्टिसे सर्वद्रव्य इकतीस सौ ३१०० । इसको एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशि इकतीससे भाग देनेपर सौ आये । यही शैलभागकी अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना । पश्चात् प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता है । यथा २००, ४००, ८०० । एक कम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्व्वावरणगुणसंकलितधनप्रमाणावधारणात्थर्मन्योन्याभ्यस्तराशिघातिगळ्गे प्रतिभागमक्कुमेंतेंदोडे :—

"रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिदवव्वं तु चरिमगुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुणकमं आदिमगुणहाणि दव्वोत्ति ॥"

येंदी गुणसंकलितधनं तरल्पडुगुमप्पुर्दरिदं आ दारु बहुभागप्रथमगुणहानिसर्व्वघातिजघन्यशक्तियुक्तगुणहानिप्रथमवर्ग्गणानन्तराधस्तनदार्व्वनंतैकभागदेशघातिसर्व्वोत्कृष्टचरमगुणहानिद्रव्यमा जघन्यशक्तियुक्तसर्व्वावरणगुणहानिद्रव्यमं नोडलु द्विगुणितमक्कु स a ख। २ / ८। ख ख। २ मी क्रमदिं केळगे केळगे द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि लताभागसर्व्वजघन्यशक्तियुक्तप्रथमगुणहानियोळ् रूपोनसर्व्वनानागुणहानिशलाकाराशिमात्रद्विकंगळ् वर्ग्गितसंवर्गंगळादोडे अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धमक्कुमदरिंगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमात्रं देशघातिसर्व्वजघन्यशक्तियुक्तप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुं स ख ख ख / ८ ख ख। २ इल्लि द्रव्यस्थिति गुणहानि दोगुणहानि नानागुणहानियन्योन्याभ्यस्तराशिगळ्गंकसंदृष्टियुमर्त्थसंदृष्टियुमिवु—

द्र	स्थि	गु	दो	ना	अन्योन्या
१३००	४०	८	१६	५	३२
स a / ८	ख ख ख	ख ख	ख ख ख	ख	ख ख

सर्वघातिद्रव्यं समाप्तं तत एवान्योन्याभ्यस्तराशिः सर्वावरणधनार्थं प्रतिभाग इत्युक्तं तत् दारुबहुभागप्रथमगुणहानिद्रव्यादधस्तनदार्वनन्तैकभागचरमगुणहानिद्रव्यं द्विगुणं भवति स a ख २ / ८ ख ख २ तदधः द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा लताभागप्रथमगुणहानौ द्रव्यं रूपोनसर्वनानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गसंजातान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमात्रं भवति स a ख / ८ ख ख २ । एवं त्रिदर्शनावरणादिद्रव्याणामपि ज्ञातव्यं । अत्र द्रव्य–स्थिति–

नाना गुणहानि चार है। सो उतने दोके अंक रखकर २×२×२×२ परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए। वही अन्योन्याभ्यस्त राशि बत्तीसका आधा प्रमाण है। उससे शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्य सौको गुणा करनेपर सोलह सौ हुए। यही लताभागकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं मुंपेळ्द सर्व्वघातिदेशघातिद्रव्यंगळ्गे विशेषविभंजनक्रममं पेळ्दपरु :—

सव्वावरणं दव्वं विभज्जणिज्जं तु उभयपयडीसु ।
देसावरणं दव्वं देसावरणेसु णेविदरे ॥१९९॥

सर्व्वावरणद्रव्यं विभंजनीयमुभयप्रकृतिषु । देशावरणद्रव्यं देशावरणेषु नैवेतरस्मिन् ॥

गुणहानि—दोगुणहानि—नानागुणहानि—अन्योन्याभ्यस्तराशीनामंकसंदृष्टयर्थं संदृष्टि :—

द्र	स्थि	गु	दो	ना	अन्योन्या
३१००	४०	८	१६	५	३२
स a / ८	ख ख ख	ख ख	ख ख २	ख	ख ख

॥१९८॥ अथ प्रागुक्तसर्वघातिदेशघातिद्रव्ययोर्विशेषविभजनक्रममाह—

प्रथम गुणहानिका द्रव्य जानना। इसी प्रकार दर्शनावरण आदिके द्रव्योंमें भी सर्वघाती और देशघाती द्रव्यका प्रमाण जानना ॥१९८॥

आगे सर्वघाती और देशघाती द्रव्यके विशेष विभागका क्रम कहते हैं—

१. म	श्रु	अ	म	के	शै	स a / ८ ख ख
					अ	स a २ / ८ ख ख
					दा ख / ख	स a २ । २ / ८ ख ख ; स a ख / ८ ख ख २
म	श्रु	अ	म	के	दा ख	स a ख २ / ८ ख ख
					ल	स a ख २ । २ / ८ ख ख २ ; स a ख ख / ८ ख ख २

मूलप्रकृतिघातिकर्म्मंगळ स्वस्वसमस्तद्रव्यंगळोळनन्तैकभागमनंतैकभागंगळु सर्व्वघाति- प्रकृतिसंबंधिद्रव्यंगळप्पुवु :—

		मोह	अन्तरा
।	।	।	।
णा स ∂ । १	दं स ∂ । १	स ∂ । १	स ∂ १
८ । ख	८ । ख	८ । ख	८

बहुभागंगळु देशघातिप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यंगळप्पु

।	०	।	।
णा स ∂ । ख	दं स ∂ । ख	मो स ∂ ख	अन्त स ∂
८ । ख	८ ख	८ । ख	८

वेंदितु मुन्नं पेळल्पट्टुवलिल सर्व्वावरणद्रव्यं सर्व्वघातिगळोळं देशघातिगळोळं हीनक्रमविंदं बिभागिसि कुडल्पडुगुं । देशावरणद्रव्यं देशावरणंगळोळे विभागिसि कुडल्पडुवुदितरसर्व्वघातिगळोळु विभागिसि कुडल्पडदु ॥

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळोळु द्रव्यविभंजनक्रममं पेळदपरु :—

बहुभागे समभागो बंधाणं होदि एक्कभागम्हि।
उत्तक्कमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥२००॥

बहुभागे समभागो [1]बंधानां भवति एकभागे। उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥

[2]बंधानां बंधकालदोळु युगपद्बंधं[3]गळागुत्तं विद्दुत्तरप्रकृतिगळ्गे बहुभागे आवल्यसंख्यातैकभागमात्रप्रतिभागदिंदं भागिसल्पट्टस्वस्वद्रव्यबहुभागदोळु समभागः समनागि भागं कुडल्पडुगुं।

घातिकर्मणां स्वस्वसमस्तद्रव्यस्यानन्तैकभागः सर्वघातिद्रव्याणि बहुभागो देशघातिद्रव्याणि इति प्रागुक्तानि। तत्र सर्वावरणद्रव्यं सर्वघातिषु देशघातिषु च हीनक्रमेण भक्त्वा देयं देशावरणद्रव्यं तु देशावरणेष्वेव न सर्वघातिषु ॥१९९॥ अथोत्तरप्रकृतिषु आह—

सहसंभवद्बन्धोत्तरप्रकृतीनां आवल्यसंख्यातैकभागभक्तस्वस्वद्रव्यस्य बहुभागे समभागो देयः। एकभागे

घातिकर्मोंके अपने-अपने द्रव्यमें अनन्तका भाग देवें। एक भाग प्रमाण तो सर्वघाति द्रव्य है और बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। यह पहले कहा है। उसमें-से सर्वघाति द्रव्य तो सर्वघाति और देशघाति प्रकृतियोंमें हीनक्रमसे विभाग करके देना चाहिए। किन्तु देशघाती द्रव्य देशघाति प्रकृतियोंमें ही देना चाहिए, सर्वघाति प्रकृतियोंमें नहीं देना चाहिए ॥१९९॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें विभाग कहते हैं—

अपने-अपने पिण्डरूप द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग एक साथ बँधनेवाली उत्तर प्रकृतियोंको बराबर-बराबर समभाग करके देना चाहिए। शेष एक

१. म बद्धानां २. बद्धानां ३. मं॰द्वद्धंग।

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

एकभागे शेषैकभागदोळु उक्तक्रमः मुन्नं पेळल्पट्ट मोहावरणंगळोळु हीनक्रममुं नामान्तरायंगळोळधिकक्रममक्कुं । तत्रापि अल्लियुं बहुभागः प्रतिभागभक्तबहुभागं तु मत्ते बहुकस्य देयः पिरिदक्के देयमक्कुमदेंतेंदोडे पेळ्दपरु :—

घादितियाणं सगसगसव्वावरणीयसव्वदव्वं तु ।
उत्तकमेण य देयं विवरीयं णामविग्घाणं ॥२०१॥

घातित्रयाणां स्वस्वसर्व्वावरणीय सर्व्वद्रव्यं तु । उक्तक्रमेण देयं विपरीतं नामविघ्नानां ॥

घातित्रयाणां ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीयमेंब घातित्रयंगळ स्वस्वसर्व्वावरणीयसर्व्वद्रव्यं तंतम्म सर्व्वघातिप्रकृतिगळ सर्व्वद्रव्यं उक्तक्रमेण देयं । मुंपेळ्द क्रमदिदं सर्व्वघातिगळ्गं देशघातिगळ्गं हीनक्रमदिदं देयमक्कुं । नामविघ्नानां नामकर्म्मांतरायकर्म्मंगळ सर्व्वद्रव्यं विपरीतं हीनक्रमक्कधिकक्रममप्प विपरीतविभंजनमक्कुमदेंतेंदोडे ज्ञानावरणीयसर्व्वद्रव्यमपवर्तितमनिदं स ७ / ८ जिनदृष्टानन्तप्रतिभागदिदं विभक्तानंतैकभागं सर्व्वघातिप्रकृतिप्रतिबद्धसर्व्वघातिशक्तियुक्तद्रव्यमक्कु स ७ । १ / ८ । ख मिदनुक्तक्रमदिदं सर्व्वघातिगळोळं देशघातिगळोळं विभागिसि कुडुवल्लि प्रतिभागमावल्यसंख्यातैकभागमात्रमक्कु । ९ । मदरिदं भागिसि बहुभागमं स ७ ८ / ८ । ख । ९ बहुभागे समभागः यें‍बु ज्ञानावरणप्रकृतिपंचकक्कं सममं माडल्वेडियय्दरिदं भागिसि प्रत्येकमिनितिनितं स ७ ८ / ८ । ख । ९ । ५

मोहावरणानि हीनक्रमाणि नामान्तरायौ अधिकक्रमौ इत्युक्तक्रमः कार्यः । तत्र बहुभागः तु—पुनः बहुकस्य देयः ॥२००॥ तद्यथा—

ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयानां स्वस्वसर्वघातिद्रव्यमुक्तक्रमेण देयं, नामविघ्नप्रकृतीनां च विपरीतम् । तद्यथा—

ज्ञानावरणीयसर्वद्रव्यमिदं स ७ / ८ जिनदृष्टानंतेन भक्त्वैकभागः सर्वघातिद्रव्यं स ७ / ८ ख इदमावल्यसंख्या-

---

भागमें-से मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरणकी प्रकृतियोंमें क्रमसे घटता-घटता देना और नामकर्म तथा अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक देना । जिसका बहुत द्रव्य कहा हो उसे बहुभाग देना चाहिए ॥२००॥

वही कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीयका अपना-अपना सर्वघाती द्रव्य उक्त क्रमसे देना चाहिए और नाम तथा अन्तरायका द्रव्य उनकी उत्तर प्रकृतियोंमें विपरीत क्रमसे देना चाहिए । वही कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मका सर्वद्रव्य जो पूर्वमें कहा है उसे जिनदेवके द्वारा देखे गये यथायोग्य अनन्तका भाग दें । एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है । इस सर्वघाती द्रव्यका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ८ / ८।ख।९९ पूर्व्वोक्तक्रमदिदं देयमप्पुदरिंदमिल्लि मत्याद्यावरणदोळु बहुकमप्पुदरिंदं बहुभागमं कोट्टु शेषैकभागदोळु मत्तं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ / ८।ख।९९९ श्रुतावरणक्के कोट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ / ८।ख।९९९९ अवधिज्ञानावरणक्के कोट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ / ८।ख।९९९९९ मनःपर्य्ययावरणक्के कोट्टु शेषैकभागमं केवलज्ञानावरणक्के कोडुउदु स ० १ / ८।ख।९९९९९ मत्तं देशघातिप्रतिबद्धानन्तबहुभागमं स ० ख / ८।ख पूर्व्वोक्तक्रमदिदं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ०। ख ८ / ८।ख।९

तेन भक्त्वा बहुभागः स ० ८ / ८ ख ९ ज्ञानावरणपञ्चकस्यै पञ्चभिर्भक्त्वा प्रत्येकं स ० ८ / ८ ख ९।५ देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ / ८ ख ९।९ मत्यावरणस्य देयः। शेषैकभागे पुनः प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ / ८ ख ९ ९ ९ श्रुतावरणस्य देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ / ८ ख ९९९९ अवधिज्ञानावरणस्य देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ / ८ ख ९९९९९ मनःपर्ययज्ञानावरणस्य देयः। शेषैकभागं केवलज्ञानावरणस्य स ० १ / ८ ख ९९९९९ दद्यात्।

विभाग करते हैं—इस सर्वघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भाग बिना बहुभागके पाँच समान भाग करके पाँचों प्रकृतियोंमें दें। जो एक भाग रहा उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें, और एक भागको अलग रख बहुभाग मतिज्ञानावरणको दें। उस एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाग दें। और बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको दें। शेष एक भागमें भी प्रतिभागका भाग दें और बहुभाग अवधिज्ञानावरणको दें। शेष एक भागमें भी प्रतिभागका भाग दें और बहुभाग मनःपर्ययज्ञानावरणको दें। शेष एक भाग केवल ज्ञानावरणको दें। इस प्रकार जो पूर्वमें समान भाग कहे थे उनमें अपने-अपने पीछेके एक-एक भागको जोड़नेसे मतिज्ञानावरण आदिका सर्वघाती द्रव्य होता है। तथा ज्ञानावरणके द्रव्यके अनन्त भागोंमें-से एक भागके बिना शेष बहुभाग देशघाती द्रव्य है। उसको उसी आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्यावरणादिचतुष्टयक्कं बहुभागे समभागः एंदु चतुर्भागमं स a ख ८ / ८ । ख । ९ । ४ प्रत्येकं नाल्कॆडॆयोळं कॊट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागमं स a ख । ८ / ८ । ख । ९ । ९ बहुकक्के देयमें दु मत्यावरणक्के कॊट्टु शेषैकभागदोळं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स a ख । ८ / ८ । ख । ९ । ९ । ९ । श्रुतावरणक्के कॊट्टु शेषैकभागदोळं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स । a । ख । ८ / ८ । ख । ९९९९ अवधिज्ञानावरणक्के कॊट्टु शेषैकभागमं स । a । ख । १ / ८ ख । ९९९९ मनःपर्य्यावरणक्के कुडुवुदी प्रकारदिदं दर्शनावरणद्रव्यमं सर्व्वंघाति-देशघातिविभागनिमित्तमागियनन्तदिदं भागिसि देकभागमं स a । १ / ८ । ख प्रतिभागभक्तबहुभागमं

पुनर्देशघातिप्रतिबद्धानन्तबहुभागे स a ख / ८ ख पूर्वोक्तक्रमेण प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ख ८ / ८ ख ९ चतुर्भिर्भक्त्वा स a ख ८ / ८ ख ९ । ४ मत्यावरणादिचतुष्कस्य प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ख ८ / ८ ख ९ । ९ मत्यावरणस्य देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ख ८ / ८ ख ९९९ श्रुतावरणस्य देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ख ८ / ८ ख ९९९९ अवधिज्ञानावरणस्य देयः। शेषैकभागं स a ख १ / ८ ख ९९९९ मनःपर्ययज्ञानावरणस्य दद्यात्। एवं दर्शनावरणद्रव्यमपि सर्वघातिदेशघातिविभाग-

---

देवें। और एक भागको अलग रख बहुभागके चार समान भाग करके एक-एक भाग मतिज्ञानावरण आदि चार प्रकृतियोंको देना चाहिए। शेष एक भागमें भी प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अवधिज्ञानावरणको दें। शेष एक भाग मनःपर्ययज्ञानावरणको दें। इन एक-एक भागोंको पहले मिले अपने-अपने समान भागोंमें मिलानेसे मतिज्ञानावरण आदिके देशघाती द्रव्यका परिमाण होता है। अपना-अपना देशघाती तथा सर्वघाती द्रव्य मिलानेपर ज्ञानावरणकी उत्तर प्रकृतियोंके सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है।

इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके सर्वद्रव्यके परिमाणमें अनन्तका भाग दें। एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है। उस सर्वघाती द्रव्यमें प्रतिभागसे भाग दें। एक भागको अलग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला चक्षुर्द्दर्शनावधिदर्शन केवलदर्शनावरणनवकंगळोळु सममागि माडल्वेडि नवमभागम स a । ८ / ८ । ख ।९।९ नों भक्तेडेयोळिरिसि शेषैकभागमं ज्ञानावरणपंचकक्के पेळ्वंतें प्रतिभागभक्त एकैकभागंगळ बहुभागंगळंहीनक्रमदिदं कोट्टु चरमदोळ् द्विचरमदोळेकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागमं अवधिदर्शनावरणक्के कोट्टु शेषैकभागमं केवलदर्शनावरणक्के कुडुवुदु। तद्देशघाति प्रतिबद्धानन्तबहुभागद्रव्यमं स a ख / ८ । ख प्रतिभागभक्तबहुभागमं स a ख । ८ / ८ । ख । ९ समनागि चक्षुर्द्दर्शनाचक्षुर्द्दर्शनावधिदर्शनत्रयक्के सरिमाडि त्रिभागमं स a ख ८ / ८ । ख । ९ । ३ प्रत्येकमित्तु शेषैकभागदोळ् प्रतिभागभक्तबहुभागंगळं चक्षुरचक्षुर्द्दर्शनंगळिगित्तु शेषैकभागमनवधिदर्शनावरणक्के कुडुवुदु। अन्तरायपंचकमुं देशघातियप्पुदरिदं तत्सर्व्वद्रव्यमं स a / ८ प्रतिभागभक्तबहुभागमं सममं माडि पंचमभागमं प्रत्येकं कुडुवुदु। शेषैकभागदोळ् प्रतिभागभक्तबहुभागंगळनधिकक्रमदिदं कोट्टु

निमित्तं अनन्तेन भक्त्वा एकभागस्य स a / ८ ख प्रतिभागभक्तबहुभागो नवभिर्भक्त्वा स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलानिद्राप्रचलाचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानां प्रत्येकं देयः स a ८ / ८ ख ९ । ९ शेषैकभागः ज्ञानावरणपञ्चकवत्प्रतिभागभक्तबहुभागबहुभागान् हीनक्रमेण दत्वा चरमे शेषैकभागं दद्यात्। तद्देशघातिप्रतिबद्धानन्तबहुभागस्य स a ख / ८ ख प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ख ८ / ८ ख ९ त्रिभिर्भक्त्वा स a ख ८ / ८ ख ९ । ३ चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानां प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणयोः

रख शेष बहुभागके नौ समान करके नौ प्रकृतियोंमें दें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग स्त्यानगृद्धिको देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग निद्रानिद्राको देवें। इसी तरह एक भागमें प्रतिभागका भाग दे-देकर बहुभाग क्रमसे प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, और अवधिदर्शनावरणको क्रमसे हीन-हीन देना। शेष रहा एक भाग केवलदर्शनावरणको देना। पहले कहे समान भागमें पीछे कहा अपना-अपना एक भाग मिलानेपर स्त्यानगृद्धि आदिका सर्वघाती द्रव्यका प्रमाण होता है। तथा दर्शनावरण द्रव्यके अनन्त भागोंमें-से एक भाग बिना बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। उसमें प्रतिभागका भाग दें। एक भागको अलग रख बहुभागके तीन समान भाग करें। और चक्षु, अचक्षु तथा अवधिदर्शनावरणको एक-एक समान भाग दें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग चक्षुदर्शनावरणका देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अचक्षु दर्शनावरणको दें। शेष एक भाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरमशेषैकभागमं दानांतरायदोळु कुडुवुवन्तु कुडुत्तिरलधिकक्रमंगळप्पुविवक्के क्रमदिदं संदृष्टि-रचनेयिदु :—

मदिणाण	सुदणाण	ओहिणाण	मणपज्जवणाण	केवळणाण	दे। मदिणाण	दे। सुदणाण
स a । ८ ८।ख।९।५	। स a ८ ८।ख।९।५	। स a ८ ८।ख।९।५	। स a ८ ८ ख ९ । ५	। स a ८ ८ ख ९।५	। ० स a ख ८ ८ ख ९।४	। । स a ख ८ ८। ख ९।४
। स a ८ ८ ख ९९	। स a ८ ८।ख।९९९	। स a ८ ८।ख।९९९९	। स a ८ ८ ख ९९९९९	। स a १ ८ख९९९९९	। ० स a ख ८ ८ ख ९९	। । स a ख ८ ८ ख । ९९९

दे। ओहिणाण	दे। मणपज्जवणाण	थीणगिद्धि	णिद्दाणिद्दा	पयलापयला	णिद्दा
। । स a ख ८ ८ ख । ९ । ४	। । स a ख ८ ८ । ख ९ । ४	। स a ८ ८९ ख ९	। स a ८ ८९ ख ९	। स a ८ ८९ ख ९	। स a ८ ८९ ख ९
। । स a ख । ८ ८ ख ९९९९	। ० स a ख १ ८ ख ९९९९	। स a ८ ८ ख ९९	। स a ८ ८ ख ९९९	। स a ८ ८ ख ९९९९	। स a ८ ८ख९९९९९

पयला	चक्खु	अचक्खु	ओहिदं	केवळदं	चक्खुदंदे	अचक्खुदं दे
। स a ८ ८९ ख ९	। स a ८ ८९ ख ९	। स a ८ ८९ ख ९	। स a ८ ८९ ख ९	। स a ८ ८९ ख ९	। ० स a ख ८ ८। ख ९ । ३	। ० स a ख ८ ८ ख ९ । ३
। स a ८ ८ख९९९९९९	। स a ८ ८ ख ९ । ७	। स a ८ ८ ख ९ । ८	। स a ८ ८ ख ९ । ९	। स a १ ८ ख ९ । ९	। ० स a ख ८ ८। ख । ९ । ९	। — स a ख ८ ८ ख ९९९

अवधिदं दे	विरिदे	उप दे	भोग दे	लाभ दे	दान दे
। ० स a ख ८ ८ ख ९ । ३	। स a ८ ८ । ५ । ९	। स a ८ ८ । ५ । ९	। स a ८ ८ ५ । ९	। स a ८ ८ । ५ । ९	। स a ८ ८ । ५ । ९
। — स a ख १ ८ ख ९९९	। स a ८ ८ ९ ९	। स a ८ ८ ९९९	। स a ८ ८ ९९९९	। स a ८ ८ । ९९९९९	। स a १ ८ । ९९९९९

दत्वा शेषैकभागं अवधिदर्शनावरणस्य दद्यात् । अन्तरायपञ्चकस्य स a ।/८ प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यं पञ्चभि-

अवधिदर्शनावरणको दें । पहले समान भागमें अपना-अपना एक भाग मिलानेपर चक्षु-दर्शनावरण आदिका अपना-अपना देशघाती द्रव्य होता है। चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शनावरणके अपने-अपने सर्वघाती और देशघाती द्रव्योंको मिलानेपर उनके सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है। शेष छह प्रकृतियोंमें सर्वघाती ही द्रव्य होता है।

अन्तराय कर्मके सर्वद्रव्यमें प्रतिभागका भाग दें। एक भागको अलग रख बहुभागके पाँच समान भाग करके एक-एक प्रकृतिको देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर

१. म. °वुदुइंतु ।

अनंतरं मोहनीयदोळु द्रव्यविभंजनक्के विशेषमुंटें दु पेळदपरु :—

मोहे मिच्छत्तादी सत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं ।
संजलणाणं भागेव होदि पणणोकसायाणं ॥२०२॥

मोहे मिथ्यात्वादीनां सप्तदशानां तु दीयते हीनं। संज्वलनानां भागे इव भवति पंच नोकषायाणां ॥

मिथ्यात्वादीनां सप्तदशानां मिथ्यात्व अनंतानुबंधिलोभमायाक्रोधमानं संज्वलनलोभमायाक्रोधमानं, प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानमप्रत्याख्यानलोभमाया क्रोधमानमें बो सप्तदशप्रकृतिगळोळु हीनं दीयते हीनक्रमविंदं कुडल्पडुगुं। संज्वलनानां भागे इव भवति पंच नोकषायाणां

१ २ ३ ४ ५

संज्वलनंगळ भागेयोळें तु वक्ष्यमाणदेयक्रममंते वेदत्रयरत्यरति। हास्यशोक। भय जुगुप्सेयुमें ब पंचप्रकृतिस्थानंगळोळं देयक्रममक्कुमदें तें दोडे पेळदपरु :—

संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं ।
इगिभागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं ॥२०३॥

संज्वलनभागबहुभागार्द्धमकषायसंगतं द्रव्यं। एकभागसहितबहुभागार्द्धं संज्वलनप्रतिबद्धं ॥

भक्त्वा प्रत्येकं देयम्। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं अधिकक्रमेण दत्वा शेषैकभागं दानान्तराये दद्यात्। एवं दत्ते सति अधिकक्रमा भवन्ति ॥२०१॥

अथ मोहनीयस्य विशेषमाह—

मिथ्यात्वानन्तानुबंधिसंज्वलनप्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानानां सप्तदशानां हीनक्रमेण दीयते। संज्वलनानां भागे इव वेदत्रयरत्यरतिहास्यशोकभयजुगुप्सानां देयक्रमो भवति ॥२०२॥ तद्यथा—

बहुभाग वीर्यान्तरायको दें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग उपभोगान्तरायको दे। इसी प्रकार एक भागमें प्रतिभाग दे-देकर बहुभाग भोगान्तरायको फिर लाभान्तरायको दें। शेष एक भाग दानान्तरायको देना। पहले पाँच समान भागोंमें पीछेसे दिये एक-एक भागको मिलानेपर अपने-अपने द्रव्यका प्रमाण होता है। अन्तरायकर्म देशघाती है इससे इसमें सर्वघातीका बँटवारा नहीं है। तथा सर्वत्र प्रतिभागका प्रमाण आवलीका असंख्यातवाँ भाग है ॥२०१॥

मोहनीय कर्ममें कुछ विशेष है उसे कहते हैं—

मोहनीय कर्ममें मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी लोभ, माया, क्रोध, मान, संज्वलन, लोभ, माया, क्रोध मान, प्रत्याख्यानावरण लोभ, माया, क्रोधमान, अप्रत्याख्यानावरण लोभ, माया, क्रोधमान, इन सतरह प्रकृतियोंमें क्रमसे हीन द्रव्य देना। पाँच नोकषायोंका भाग संज्वलनके भागके बराबर होता है। नोकषाय नौ हैं किन्तु एक समयमें उनमें-से पाँच ही बँधती हैं। तीन वेदोंमें-से एक समयमें एक ही वेद बँधता है। रति-अरतिमें-से भी एक समयमें एक ही बँधती है। हास्य और शोकमें-से एक समयमें एकका ही बन्ध होता है। भय और जुगुप्सा दोनों बँधती हैं। इस तरह एक साथ पाँच ही बँधती हैं ॥२०२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इल्लि मोहनीयसर्व्वद्रव्यमिदु स a/८ इदं सर्व्वघातिदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यनिमित्तमागि वीतरागसर्व्वज्ञदृष्टानन्तप्रतिभागदिदं भागिसि बंद लब्धमेकभागमिदु । स a १/८ । ख सर्व्वघातिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कुं । शेषबहुभागद्रव्यं देशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कु स a ख/८ । ख मिल्लि गुणकारभूतानन्तदोळेकरूपहीनतेयनवगणिसि भाज्य भागहार भूतानन्तंगळनपवर्त्तिसि कळेदुळिदुदनिदं स a/८ समयप्रबद्धाष्टमभागप्रमितमनावल्यसंख्यातेकभागमात्र प्रतिभागदिदं भागिसि बहुभागमनिदं स a ८/८ । ९ संज्वलनकषायंगळगमकषायंगळ्गं पसल्वेडि द्विरूपदिं भागिसिदर्द्धमनोंदु भागद्रव्यमनकषायंगळिगत्त स a ८/८ । ९ । २ शेषबहुभागार्द्धद्रव्यमुमेकभागमुं सहितमागि संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कुं-

---

अत्र मोहनीयसर्वद्रव्यमिदं स a/८ अनन्तेन भक्त्वा एकभागः स a १/८ ख सर्वघातिप्रतिबद्धं भवति । शेषबहुभागो देशघातिप्रतिबद्धं भवति स a ख/८ ख । अत्र गुणकारे एकोनतामवगणय्य भाज्यभागहारभूतानन्तयोरपवर्तने स a/८ समयप्रबद्धाष्टमभागः । तमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स a ८/८ ९ द्वाभ्यां भक्त्वा स a ८/८ । ९ । २ अकषायाणां देयः । शेषबहुभागार्द्धमेकभागं संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धं भवति स a ८/८ ९ । २ उक्तत्रि-

---

पूर्वमें जो मोहनीय कर्मका सर्वद्रव्य कहा था, उसमें अनन्तसे भाग दें। उसमें-से एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है और शेष बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। उस देशघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें। जो बहुभाग आवे उसका आधा तो नोकषायोंको दें। तथा बहुभागका आधा और एक भाग संज्वलन सम्बन्धी देशघाती द्रव्य होता है। इस प्रकार ये तीन द्रव्य हुए। उसमें-से प्रथम सर्वघाती द्रव्यका विभाग करते हैं—

सर्वघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रतिभागसे भाग दें। एक भागको अलग रख शेष बहुभागके सतरह भाग करें। और एक-एक समान भाग एक-एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स ० १ / ८ । ९ । २ ई मोहनीयत्रिविधद्रव्यंगळोळु सर्व्वघातिप्रतिबद्धद्रव्यमं स ० १ / ८ । ख मिथ्यात्वादि सप्तदश स ० १ / ८ । ९ सर्व्वघातिगळ्गे हीनक्रमदिदं पसल्वेडि आवल्यसंख्यातप्रमितप्रतिभागदिदं भागिसि बंद लब्धमनेकभागमं बेरिरिसि स ० १ / ८ । ख । ९ बहुभागद्रव्यमनिदं स ० ८ / ८ । ख । ९ बहुभागे समभागो बंधानामें दिन्तु बहुभागमं सरियागि सप्तदशप्रकृतिगळ्गं पसल्वेडि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदें तें दोडे सप्तदशप्रकृतिगळ्गे मेल्लमिनितु द्रव्यमागलागळेकप्रकृतिगेनितु द्रव्यमक्कुमें दिन्तु त्रैराशिकं माडि प्र १७ । फ स ० ८ इ १ / ८ । ख । ९ बंदलब्धमेकप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कु स ० ८ / ८ । ख । ९ १७ मदं प्रत्येकं सप्तदशप्रकृतिगळोळु क्रमदिदमित्तु शेषैकभागदोळु स ० १ / ८ ख ९ मत्तं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ / ८ । ख । ९ । ९ बहुभागो बहुकस्य देयः यें दितु हीनक्रमदिदं देयमप्पुदरिदं मिथ्यात्वप्रकृतिगित्तु शेषैकभागदोळु मत्तं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ / ८ ख ९९९ अनंतानुबंधिलोभदोळितु शेषैकभागदोळमी प्रकारदिदं प्रतिभागभक्तबहुभागंगळननन्तानुबंधिमायाकषायादिगळोळु क्रमदिनीयुत्तं पोगि अप्रत्याख्यानक्रोधदोळु बहुभागमुमिनित्तु । तत्रत्यचरमशेषैकभागमं स ० १ / ८ । ख । ९९ । ०० । १७ अप्रत्याख्यानमानकषा-

---

विधद्रव्येषु सर्वघातीदं स ० १ / ८ ख आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागं स ० १ / ८ ख ९ पृथक् संस्थाप्य बहुभागः स ० ८ / ८ ख ९ सप्तदशभिर्भक्त्वा स ० ८ / ८ ख ९ । १७ प्रत्येकं सप्तदशसु स्थानेषु देयः । शेषैकभागे स ० १ / ८ ख ९ प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं मिथ्यात्वादिषु षोडशसु क्रमेण दत्त्वा एकभागं स ० १ / ८ ख ९ । १७ अप्रत्याख्यानमाने दद्यात् ।

प्रकृतिको देवें। जो एक भाग रहा उसमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग मिथ्यात्वको दें। पुनः शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धी लोभ को दें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धी मायाको दें। इसी प्रकार शेष रहे एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग क्रमसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, संज्वलन लोभ, संज्वलन माया, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, प्रत्याख्यान लोभ, प्रत्याख्यान माया, प्रत्याख्यान क्रोध प्रत्याख्यान मान, अप्रत्याख्यान लोभ, अप्रत्याख्यान माया, अप्रत्याख्यान क्रोध को देना। और अन्तमें शेष रहा एक भाग अप्रत्याख्यान मानको देना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यक्के कुडुवुदु । द्वितीयसंज्वलनप्रतिबद्धदेशघातिद्रव्यमं स्थापिसि स a ८ / ८।९।२ एकभागद्रव्यमनेर- स a १ / ८।९

इरिदं समच्छेदनिमित्तमागि गुणिसि स a २ / ८।९।२ यदरोळेकरूपं तेगवुकोंडु स a १ / ८।९।२

बहुभागार्द्धदोळ्कूडि स a ८ / ८।९।२ आवल्यसंख्यातमनावल्यसंख्यातक्के सरिगळ्दु स a / ८।२

मुन्नमेकरूपं तेगेवुळिदेकभागार्द्धमं स a १ / ८।९।२ असंख्यातैकभागमं साधिकं माडि स a / ८।२ प्रति-

भागभक्तबहुभागमं स a ८ / ८।२।९ बहुभागे समभाग एंदु बहुभागं नाल्करोळं सममप्पुदरिंदं नाल्करि

भागिसि स a ८ / ८।२।९।४ चतुर्थांशंगळं प्रत्येकं नाल्केडेयोळं स्थापिसि शेषैकभागदोळु

स a १ / ८।२।९ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स a ८ / ८।२।९ बहुभागो बहुकस्य देयः एंदिन्तु संज्वलनलोभदो-

---

द्वितीय संज्वलनदेशघातिद्रव्यं स a ८ / ८ ९ २ संस्थाप्य अधस्तनमेकभागद्रव्यं द्वाभ्यां समुच्छिद्य स a २ / ८ ९ २ अत्रैक- स a १ / ८ ९

रूपं गृहीत्वा स a १ / ८ ९ २ बहुभागार्धे निक्षिप्य स a ८ / ८।९।२ आवल्यसंख्यातं आवल्यसंख्यातेन अपवर्त्य स a / ८।२

शेषैकभागार्धं स a १ / ८।२ असंख्यातैकभागं साधिकं कृत्वा स a।१ / ८ २ प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ८ / ८ २ ९ चतु-

भिर्भक्त्वा स a ८ / ८ २ ९ ४ चतुर्षु स्थानेषु प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे स a १ / ८ ९ २ प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ८ / ८ २ ९ ९

सो जो पहले सतरह समान भाग कहे थे उनके एक-एक भागमें पीछे कहे अपने-अपने भागको मिलानेसे अपना-अपना सर्वघाती द्रव्यका प्रमाण होता है ।

दूसरे संज्वलनके देशघाती द्रव्यके प्रमाणमें प्रतिभागसे भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभागके चार समान भाग करके चारोंको दें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग संज्वलन लोभको दें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग संज्वलन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ळित्तु शेषैकभागदोळु स a १ / ८।२।९९ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स a ८ / ८।२।९९९ संज्वलनमायाकषायदक्कित्तु शेषेकभागदोळु स a १ / ८।२।९९९ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स a ८ / ८।२।९९९९ संज्वलनक्रोधकषायदोळित्तु शेषैकभागमं स a १ / ८।२।९९९९ संज्वलनमानकषायक्के कुडुवुदु । अंतु कुडुत्तं विरलु होनक्रमदेयमक्कुं ।

मत्तं तृतीयनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यमनिदं स a ८ / ८।९।२ गुणकारदोळेकरूपहीनतेयनवगणिसि ८।२।९९२ भाज्यभागहारभूतावल्यसंख्यातंगळनपवर्त्तिसि कळदु शेषद्रव्यमनिदं स a / ८।२ प्रतिभागदिदं भागिसि बहुभागद्रव्यमं स a ८ / ८।२।९ बहुभागे समभागो बंधानामेंदु बहुभागदोळु बंधप्रकृति-

---

संज्वलनलोभे देयः । शेषैकभागे स a १ / ८ २ ९ ९ प्रतिभागबहुभागः स a ८ / ८ २ ९ ९ ९ संज्वलनमायायां देयः । शेषैकभागे स a १ / ८ २ ९ ९ ९ प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ८ / ८ २ ९ ९ ९ ९ संज्वलनक्रोधे देयः । शेषैकभागं स a १ / ८ २ ९ ९ ९ ९ संज्वलनमाने दद्यात् । एवं दत्ते सति हीनक्रमेण दत्तं भवति । पुनः तृतीयं नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यमिदं स a ८ / ८ २ ९ गुणकारे एकरूपहीनतामवगणय्य भाज्यभागहारौ आवल्यसंख्यातौ अपवर्त्य स a / ८ २ प्रतिभागेन भक्त्वा बहुभागस्य स a ८ / ८ २ ९ पञ्चशः पञ्चसु स्थानेषु प्रत्येकं स a ८ / ८ २ ९ ५ देयः । शेषैकभागे स a १ / ८ २ ९ प्रतिभागभक्तबहु-

---

मायाको दें । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग संज्वलन क्रोधको दें । शेष एक भाग संज्वलन मानको दें । पहले कहे चार समान भागोंमें पीछे कहा अपना-अपना एक भाग मिलानेसे अपने-अपने देशघाती द्रव्यका प्रमाण होता है सो संज्वलन कषायकी चार प्रकृतियोंके देशघाती और सर्वघाती द्रव्यको मिलानेसे सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है ।

मिथ्यात्व और बारह कषायका द्रव्य सर्वघाती ही है और नोकषायोंका सब द्रव्य अघाती ही है । उनका बँटवारा कहते हैं—पूर्वमें जो नोकषाय सम्बन्धी तीसरा द्रव्य कहा, उसमें प्रतिभागका भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभागके पाँच समान भाग करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळ्गे समभागमक्कुमप्पुदरिदं। वेदत्रितयादिपंचस्थानंगळोळं प्रत्येकं पंचमांशमं स्थापिसि स a ८ / ८।२।९।५ शेषैक भागदोळु स a १ / ८।२।९ प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यमं स a ८ / ८।२।९९ बहुभागो बहुकस्य देय एंदितु वेदत्रितयक्के कोट्टु शेषैकभागदोळु स a १ / ८।२।९९ प्रतिभागभक्तबहु-भागमं स a ८ / ८।२।९९९ रत्यरतिगळिगत्तु शेषैकभागदोळु स a १ / ८।२।९९९ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स a ८ / ८।२।९९९९ हास्यशोकंगळिगत्तु शेषैकभागदोळु स a १ / ८।२।९९९९ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स a ८ / ८।२।९९९९९ भयनोकषायक्कित्तु शेषैकभागमं स a १ / ८।२।९९९९९ जुगुप्सानोकषायक्कित्तु कळेवुदंतीवुत्तमिरलु नोकषायपिंडप्रकृतिद्रव्यक्के विभागविशेषमुंटवावुदें दोडे पेळ्दपरु :—

तण्णोकषायभागो सबंधपणणोकसायपयडीसु ।
हीणकमो होदि तहा देसे देसावरणदव्वं ॥२०४॥

तन्नोकषायभागः सबंधपंचनोकषायप्रकृतिषु । हीनक्रमो भवति तथा देशे देशावरणद्रव्यं ॥

भागः स a ८ / ८२९९ वेदत्रये देयः। शेषैकभागे स a १ / ८२९९ प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ८ / ८२९९९ रत्यरत्योर्देयः। शेषैकभागे स a १ / ८२९९९ प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ८ / ८२९९९९ हास्यशोकयोर्देयः। शेषैकभागे स a १ / ८२९९९९ प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ८ / ८२९९९९९ भये देयः। शेषैकभागं स a १ / ८२९९९९९ जुगुप्सायां दद्यात् ॥२०३॥

एवं दत्ते नोकषायपिण्डप्रकृतिद्रव्यस्य विशेषमाह—

पाँचों प्रकृतियोंको देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग तीनों वेदोंमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें। एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग रति और अरतिमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग हास्य और शोकमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग भयको देना। शेष एक भाग जुगुप्साको देना। पहले कहे समान पाँच भागोंमें से एक-एकमें पीछे कहा अपना-अपना एक भाग मिलानेपर अपने-अपने द्रव्यका प्रमाण होता है ॥२०३॥

इस प्रकार देनेपर नोकषायरूप पिण्ड प्रकृतिके द्रव्यमें कुछ विशेष है वह कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई पेळल्पट्ट नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स a ८ / ८।२।९ सबंधपंचनोकषायप्रकृतिषु सहबंधंगळप्प पुंवेदरतिहास्यभयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळं मिथ्यादृष्टि मोदल्गोंडु अपूर्व्वकरणपर्य्यंतमाद गुणस्थानवर्त्तिगळ्गे हीनक्रमं देयमक्कुं मेणु पुंवेद। अरति। शोक। भय। जुगुप्सा प्रकृतिपंचकदोळु मिथ्यादृष्टिमोदल्गोंडु प्रमत्तपर्य्यन्तमाद षड्गुणस्थानवर्त्तिगळ्गे हीनक्रमं देयमक्कुं। स्त्रीवेदरतिहास्यभयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळं मेणु स्त्रीवेद-अरतिशोक-भयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळं मिथ्यादृष्टिगं सासादनंगं हीनक्रमं देयमक्कुं। नपुंसकवेद रतिहास्य भयजुगुप्सा प्रकृति पंचकदोळं मेणु नपुंसकवेद अरति शोक भय-जुगुप्सा प्रकृतिपंचकदोळं मिथ्यादृष्टियोळे हीनक्रमं देयमक्कुं। अनिवृत्तिकरणदोळु पुंवेद नोकषायमोंदे बंधमप्पुदरिंदमकषायप्रतिबद्धद्रव्यमनितु मनिवृत्तिसवेदभागे पर्य्यन्तमदरोळेयक्कुमेंबी विशेषमरियल्पडुगुं। देशे देशघाति संज्वलनकषायदोळु देशावरणद्रव्यं संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यं स a / ८।२ तथा संबंधप्रकृतिषु अहंगे सहबंधप्रकृतिगळोळु हीनक्रमं देयमक्कुमदेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिमोदल्गोंडु अनिवृत्तिकरणक्रोधबंधभागे पर्य्यंतं सहबंधसंज्वलन चतुष्टयदोळु हीनक्रमं देयमक्कुं। क्रोधबंधोपरतानिवृत्तितृतीयभागदोळु सहबंधसंज्वलन-

---

तन्नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स a ८ / ८२९ संबन्धपञ्चकनोकषायप्रकृतिषु पुंवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु अपूर्वकरणान्तानां वा पुंवेदारतिशोकभयजुगुप्सासु प्रमत्तांतानां स्त्रीवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु स्त्रीवेद-अरति-शोकभय-जुगुप्सासु मिथ्यादृष्टिसासादनयोः नपुंसकवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु वा नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सासु मिथ्यादृष्टेश्च हीनक्रमेण देयम्। अनिवृत्तिकरणे एकः पुंवेद एव बध्यते, तेन अकषायप्रतिबद्धद्रव्यं सर्वं सवेदभागपर्यंतं तत्रैव देयं इति विशेषो ज्ञातव्यः। देशघातिसंज्वलनकषाये देशावरणद्रव्यं स a / ८२ सबन्धप्रकृतिषु हीनक्रमेण देयम्। तद्यथा—

नोकषाय सम्बन्धी द्रव्य एक साथ बँधनेवाली पाँच नोकषायोंमें हीनक्रमसे देना चाहिए। सो मिथ्यादृष्टिसे लगाकर पुरुषवेद, रति, हास्य, भय और जुगुप्साका अपूर्वकरण पर्यन्त अथवा पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका प्रमत्त पर्यन्त एक साथ बन्ध होता है। तथा स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका मिथ्यादृष्टि और सासादनमें एक साथ बन्ध होता है। तथा नपुंसक वेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्साका अथवा नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका मिथ्यादृष्टिमें एक साथ बन्ध होता है। सो नोकषाय सम्बन्धी द्रव्यका बँटवारा जैसे पूर्वमें कहा है उसी प्रकार जिन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध हो उनको क्रमसे हीन-हीन देना। अनिवृत्तिकरणमें एक पुरुषवेदका ही बन्ध होता है अतः वहाँ सवेद भाग पर्यन्त नोकषाय सम्बन्धी सब द्रव्य एक पुरुषवेदको ही देना चाहिए। तथा देशघाती संज्वलन कषायका देशघाती द्रव्य, एक साथ जितनी प्रकृतियाँ बँधे उनको हीनक्रमसे देना चाहिए। सो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायत्रयदोळु हीनक्रमं देयमक्कुं । मानबंधोपरतानिवृत्तिकरणचतुर्थभागदोळु संज्वलनकषायद्वयदोळु हीनक्रमं देयमक्कुं । मायाबंधोपरतानिवृत्तिपंचमभागदोळु संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमनितुं लोभसंज्वलनकषायदोळेयक्कुं ॥

अनंतरं सबंधनोकषायंगळगे निरंतरबंधाद्धा प्रमाणमं पेळ्दपरु :—

पुंबंधद्धा अंतोमुहुत्त इत्थिम्मि हस्सजुगले य ।
अरदिजुगे संखगुणा णउंसगद्धा विसेसहिया ॥२०५॥

पुंबंधाऽद्धाऽन्तर्म्मुहूर्त्तं स्त्रियां हास्ययुगळे च अरतिद्विके संख्यगुणा नपुंसकाद्धा विशेषाधिका ॥

पुंवेदक्के निरंतरबंद्धाद्धे जिनदृष्टान्तर्म्मुहूर्त्तमिदु । २१ । २ । संख्यातगुणितसंख्यातावलिप्रमितमक्कुं । स्त्रियां स्त्रीवेदक्के निरंतरबंधाद्धेयदं नोडलु संख्यातगुणितमक्कु । २१ । ४ मिदं नोडलु हास्ययुगले च हास्यरतिगळगे निरंतरबंधाद्धे संख्यातगुणितमक्कु । २१ । १६ । मिदं नोडलु अरतिद्विके अरतिशोकंगळ निरंतरबंधाद्धे संखगुणा संख्यातगुणितमक्कुं । २१ । ३२ । नपुंसकाद्धा नपुंसकवेदनिरंतरबंधाद्धेयरतिद्विकाद्धेयं नोडलु विषाधिका विशेषाधिकमक्कुं । २१ । ४२ । इल्लि वेदत्रयशलाकेगळं कूडिदोडे अन्तर्म्मुहूर्त्तशलाकेगळु नाल्वत्तेंटप्पुवु । २१ । ४८ । हास्यद्विकारतिद्विकान्तर्म्मुहूर्त्तशलाकेगळं कूडिदोडेयुं तावन्मात्रंगळप्पुवु । २१ । ४८ ॥

मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणक्रोधबन्धभागपर्यंतं सहबन्धसंज्वलनचतुष्टये क्रोधबन्धोपरतानिवृत्तितृतीयभागे सहबन्धसंज्वलनत्रये मानबन्धोपरतानिवृत्तिकरणचतुर्थभागे संज्वलनद्वये च हीनक्रमेण देयम् । मायाबन्धोपरतानिवृत्तिपञ्चमभागे संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यं सर्वं लोभसंज्वलन एव देयम् ॥२०४॥ अथ सबन्धनोकषायाणां निरन्तरं बन्धाद्धां प्रमाणयति—

पुंवेदस्य निरन्तरबन्धाद्धा जिनदृष्टान्तर्मुहूर्तः २ १ । २ स च [1]संख्यातावलिमात्रः । स्त्रीवेदे ततः संख्यातगुणः २ १ । ४ अतो हास्यरत्योः संख्यातगुणः २ १ । १६ अतः अरतिशोकयोः संख्यातगुणः २ १ । ३२ । ततः नपुंसकवेदे विशेषाधिकः २ १ । ४२ । अत्र वेदत्रयस्य मिलित्वा अंतर्मुहूर्तशलाकाः अष्टचत्वारिंशत्

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके दूसरे भाग पर्यन्त चारोंमें बँटवारा करना चाहिए। तीसरे भागमें जहाँ क्रोधका बन्ध नहीं होता वहाँ तीनमें ही बँटवारा करना। चौथे भागमें जहाँ मानका भी बन्ध नहीं होता, दोमें ही बँटवारा करना। पाँचवें भागमें जहाँ मायाका भी बन्ध नहीं होता वहाँ संज्वलनका सब देशघाती द्रव्य एक लोभको ही देना ॥२०४॥

आगे बन्धको प्राप्त नोकषायोंके निरन्तर बन्ध होनेका काल कहते हैं—

पुरुषवेदका निरन्तर बन्धकाल, जैसा जिनदेवने देखा तदनुसार अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। वह संख्यात आवली प्रमाण है। उसकी सहनानी (चिह्न) दो गुणा अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेदका निरन्तर बन्धकाल उससे संख्यात गुणा है। उसकी सहनानी चार गुणा अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रतिका उससे भी संख्यातगुणा है। उसकी सहनानी सोलह गुणा अन्तर्मुहूर्त है। अरति और शोकका उससे भी संख्यातगुणा है। उसकी सहनानी बत्तीसगुणा अन्तर्मुहूर्त

---

१. ब संख्यातगुणितसंख्यातावलिं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यिन्नु त्रैराशिकंगळु माडल्पडुवुवदें तें बोडे वेदत्रयदिनितंतम्र्मुहूर्तंगळगेल्लमिनितुं द्रव्यमागुत्तिरलागळिनितंतम्र्मुहूर्त्तशलाकेगळगेनितु द्रव्यमक्कुमेंदिन्तनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र मु २१ । ४८ । फ- स a (८ । १०) इ । मु २१ । २ । बंद लब्धं पुंवेदप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकमक्कुं स a । २ (८ । १० । ४८) मत्तमिंतें प्र मु २१ । ४८ । फ स a (८ । १०) इ । मु । २१ । ४ । बंद लब्धं स्त्रीवेदप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणितद्रव्यमक्कुं स a । ४ (८ । १० । ४८) मत्तमंते प्र मु २१ । ४८ । फ स a (८ । १०) इ । मु । २१ । ४२ । बंद लब्धं नपुंसकवेद प्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणितमक्कुं स a । ४२ (८ । १० । ४८) मत्तमी प्रकारदिदं हास्यरत्यरतिशोकंगळगं मुहूर्त्तशलाकेगळु प्रमु । २१ । ४८ । फ स a = (८ । १०) इमु । २१ । १६ । बंद लब्धं रतिनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकमक्कुं स a = १६ (८ । १० । ४८) मत्तमंते प्रमु २१ । ४८ । फ स a ≡ (८ । १०) इमु

---

२१ । ४८ । हास्यद्विकारतिद्विकयोरपि तावत्यः २१ । ४८ । यदि वेदत्रयस्य तावतीनां एतावद्द्रव्यं तदा एतावतीनां कियत् ? इति प्र मु २१ । ४८ । फ । स a (८ । १०) इ मु २१ । २ लब्धं पुंवेदप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकं स a । २ (८ । १० । ४८) तथा प्र मु २१ । ४८ फ स a (८ १०) इ मु २१ ४ लब्धं स्त्रीवेदस्य संख्यातगुणं स a ४ (८ १० ४८) तथा प्र मु २१ ४८ । फ स a (८ १०) इ मु २१ । ४२ लब्धं नपुंसकवेदस्य संख्यातगुणं स a । ४२ (८ १० ४८) एवं प्र

है। नपुंसक वेदका उससे कुछ अधिक है। उसकी सहनानी बयालीस गुणा अन्तर्मुहूर्त है। तीनों वेदोंका काल मिलानेपर २+४+४२=अड़तालीस अन्तर्मुहूर्त होता है। हास्य-शोक और रति-अरतिका काल मिलानेपर भी १६+३२ अड़तालीस मुहूर्त होता है। मिले हुए कालको प्रमाण राशि, पिण्डरूप द्रव्यको फलराशि, और अपने-अपने कालको इच्छाराशि करनेपर त्रैराशिक द्वारा लब्धराशिमें अपने-अपने द्रव्यका प्रमाण आता है।

सो तीनों वेदोंके सत्तामें स्थित द्रव्यका जो प्रमाण है उसको तीनोंके मिले हुए कालकी सहनानी अड़तालीस मुहूर्तसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसको पुरुषवेदके कालकी सहनानी दो अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना पुरुषवेद सम्बन्धी द्रव्य जानना। यह सबसे थोड़ा है। तथा स्त्रीवेदके कालकी सहनानी चार अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना स्त्रीवेद सम्बन्धी द्रव्य है। यह पुरुषवेदके द्रव्यसे संख्यातगुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१। ३२। बंद लब्धमरतिनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणमक्कुं। स a≡३२ / ८।१०।४८ मत्तमो प्रका-
रदिदं प्र मु २१।४८। फ स a= / ८।१० इ मु २१। १६। बंद लब्धं हास्यनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं
संख्यातगुणहीनमक्कुं स a १६ / ८।१०।४८ मत्तमन्ते प्रमु २१।४८। फ स a= / ८।१० इ। मु २१ ३२। बंद
लब्धं शोकनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणितमक्कुं स a=३२ / ८।१०।४८ सबंधपंचनोकषायप्रकृति-
गळु क्रमदिद विशेषहीनक्रमंगळादोडं पिडंगळगे तम्मोळु कालसंचयमनाश्रयिसि उक्तप्रकारदिदं
द्रव्यविभंजनं तंतम्म बंधकालदोळप्पुवु ॥

मु २१ ४८। फ स a / ८ १० मु इ २१ १६। लब्धं रतिनोकषायस्य स्तोकं स a १६ / ८ १० ४८ तथा प्र मु २१ ४८।
फ स a / ८ १०–इ मु २१ ३२ लब्धं अरतिनोकषायस्य संख्यातगुणं स a–३२ / ८ १० ४८ एवं प्र मु २१ ४८ फ स a= / ८ १०
इ मु २१ १६ लब्धं हास्यनोकषायस्य संख्यातगुणहीनं स a=१६ / ८।१० ४८ तथा प्र मु २१।४८ फ स a≡ / ८ १०
इ मु २१। ३२ लब्धं शोकनोकषायस्य संख्यातगुणं—स a≡। ३२ / ८ १० ४८ सबन्धपञ्चनोकषायाः विशेषहीनक्रमा
अपि पिण्डानां परस्परं कालसंचयमाश्रित्य उक्तप्रकारेण द्रव्यविभंजनस्वस्वबन्धकाले भवति ॥ २०५ ॥

है। तथा नपुंसक वेदके कालकी सहनानी बयालीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना नपुंसकवेद सम्बन्धी द्रव्य है। यह स्त्रीवेदके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। रति और अरति सम्बन्धी द्रव्यको अड़तालीस अन्तर्मुहूर्तसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसको रतिके काल सोलह अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह रति सम्बन्धी द्रव्य जानना। वह थोड़ा है। तथा अरतिके काल बत्तीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अरति सम्बन्धी द्रव्य जानना। वह रतिके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। तथा हास्य और शोक सम्बन्धी द्रव्यको अड़तालीस अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे हास्यके काल सोलह अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना हास्य सम्बन्धी द्रव्य है। तथा शोकके काल बत्तीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह शोक सम्बन्धी द्रव्य है। वह हास्यके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। इस प्रकार जिनका एक साथ बन्ध होता है उन पाँच नोकषायका द्रव्य पूर्वोक्त क्रमसे हीन-हीन होता है। तथापि पिण्डरूपमें नाना कालमें एकत्र होनेकी अपेक्षा इस प्रकारसे द्रव्यका बँटवारा अपने-अपने बन्ध कालमें होता है। सो तीन वेदोंका एक पिण्ड होता है। रति-अरतिका एक पिण्ड होता है। हास्य-शोकका एक पिण्ड होता है ॥२०५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं पंचविघ्नदोळं सहबंधपिंडापिंडनामबंधस्थानंगळोळं विपरीतदेयक्रममेंदु पेळ्दपरु :—

पणविग्घे विवरीयं सबंधपिंडिदरणामठाणे वि ।
पिंडं दव्वं च पुणो सबंधसगपिंडपयडीसु ॥२०६॥

पंचविघ्ने विपरीतः सबंधपिंडेतरनामस्थानेऽपि । पिंडद्रव्यं च पुनः सबंधस्वपिंडप्रकृतिषु ॥

पंचानां दानादीनां विघ्नः पंचविघ्नस्तस्मिन् । दानादिविघ्नपंचकदोळं विपरीतः मुंपेळ्द-क्रमदिंदमधिकक्रमं देयमक्कुं । सबंधपिंडेतरनामस्थाने पिंडाश्चेतराश्च पिंडेतराः सहबंधोदया सांताः सबंधाः पिंडेतरा यस्मिन् तच्च तन्नामस्थानं च तस्मिन् सबंधपिंडेतरनामस्थानेऽपि विपरीतः पिंडापिंडसबंधनामबंधस्थानदोळं प्रकृतिपाठक्रमदोळु घातिगळोंतु हीनक्रममन्तल्लदधिकक्रमप्पु-दरिदं पंचविघ्नदोळें तंते अधिकक्रममक्कुमदेतेंदोडे नामकर्म्मसर्व्वद्रव्यमिदु स ०।८ / ८।९ यिदं केळगण असंख्यातैकभागमं साधिकमं माडि स ०।८ / ८।९ साधिकबहुभागदोळेकरूपहीनतेयनवगणिसि भाज्य भागहारंगळनपवर्त्तिसि शेषद्रव्यमनिद स ० / ८ नेकविंशतिसहबंध पिंडापिंडप्रकृतिगळु तिर्य्यग्गति

अथ विघ्नपञ्चके नामबन्धस्थानेषु चाह—

पञ्चदानाद्यन्तरायेषु प्रागुक्तक्रमाद्विपरीतोऽधिकक्रमो भवति पुनः सबन्धपिण्डेतरनामस्थानेऽपि विपरीतः । तद्यथा—नामकर्मसर्वद्रव्यमिदं स ० ८ / ८ ९ अधस्तनासंख्यातैकभागं साधिकं कृत्वा स ० ८ / ८ ९ अत्रैकरूपहीनता-मवगणय्य भाज्यभागहारावपवर्त्येदं स ० / ९ ९ ९ ९ ९ । २ स ० / ८ त्रयोविंशतिकस्थानस्य सहबन्धपिण्डप्रकृतिषु तिर्यग्गत्येकेन्द्रियौ-

---

आगे अन्तरायकी पाँच प्रकृति और नामकर्मके बन्धस्थानोंमें कहते हैं—

पाँच दानान्तराय आदिमें पूर्वोक्त क्रमसे विपरीत उत्तरोत्तर अधिक-अधिक द्रव्य जानना। तथा नामकर्मके स्थानोंमें एक साथ बँधनेवाली नामकर्मकी गति आदिरूप पिण्ड प्रकृति और अगुरुलघु आदि अपिण्ड रूप प्रकृतियोंमें भी विपरीत अर्थात् उत्तरोत्तर अधिक द्रव्य जानना। वही कहते हैं—

एक साथ जिनका बन्ध होता है ऐसा नामकर्मका स्थान तेईस प्रकृतिवाला है यथा—तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस कार्मण शरीर, हुण्डक संस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेंद्रियजाति औदारिक तैजसकार्म्मणपिंडहुंडसंस्थानवर्णगंधरसस्पर्शतिर्य्यगानुपूर्व्व्यं अगुरुलघु उपघातस्थावर सूक्ष्म अपर्य्याप्त साधारणशरीर अस्थिरअशुभदुर्बभंग अनादेय अयशस्कीर्त्तिनिर्म्माणमें बी एकविंशतिसबंधपिंडापिंडप्रकृतिस्थानंगळोळु पसल्वेडि आवल्यसंख्यातैकभागप्रमितप्रतिभागदिदं भागिसि बहुभागमं स a । ८ / ८ । ९ बहुभागे समभागो बंधाना स a । ८ / ९९९९ । २ मेंदेकविंशतिस्थानंगळोळमेकविंशति भवतैकभागमं स a । ८ / ८ । ९ । २१ प्रत्येकमिरिसि शेषैकभागदोळु स a । १ / ८ । ९ उत्क्रमः प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यं स a ८ / ८।९।९।१ बहुकस्य देय एंदु प्रकृतिपाठक्रमदोळु तुर्वियिदं मोदल्वरं विपरीतमागि देयं हीनक्रममप्पुदरिंदं निर्म्माणनामकर्म्मदोळु कुडल्पडुगुमन्ते शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यमयशस्कीर्त्तिनामदोळु कुडल्पडुगु स a । ८ / ८।९।९।२ मन्ते शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यमनादेयनामदोळु कुडल्पडुगु स a । ८ / ८।९।९।३ मिन्तु प्रतिभागभक्तशेषैकभागबहुभाग-

---

दरिकतैजसकार्मणहुण्डसंस्थानवर्णगन्धरसस्पर्शतिर्यगानुपूर्व्यागुरुलघूपघातस्थावरसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणास्थिराशुभदुर्भगानादेयायशस्कीर्तिनिर्माणनाम्नीषु दातुं आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स a ८ / ८ ९ एकविंशत्या भक्त्वा स a ८ / ८ ९ २१ प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे स a १ / ८ ९ प्रतिभागभक्तबहुभागः स a ८ / ८ ९ ९ निर्माणे देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः अयशस्कीर्तौ देयः स a ८ / ८ ९ ९ । २ शेषैकभागे प्रतिभागभक्त-

---

अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और निर्माण। इन तेईस प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यंच करता है। सो यह स्थान साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक भवको प्राप्त करनेके योग्य है अर्थात् इसका बन्ध करनेवाला मरकर साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक भवमें उत्पन्न होता है। इनका बँटवारा कहते हैं—

पूर्वमें मूल प्रकृतियोंके बँटवारेमें जो नामकर्मका द्रव्य कहा है उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभागके समान इक्कीस भाग करें। और एक-एक भाग एक-एक प्रकृतिको देवें। यद्यपि बन्धमें तेईस प्रकृतियाँ हैं तथापि औदारिक, तैजस, कार्मण ये तीनों एक शरीर नामक पिण्डप्रकृतिमें आ जाती हैं और पिण्ड प्रकृतियोंमें एक-एक प्रकृतिका ही बन्ध है। इससे यहाँ इक्कीस भाग ही किये हैं। शेष रहे एक भागमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यंगळु क्रमदिदं दुब्भंगनामं मोदलागि एकेंद्रियजातिनामपर्य्यंतं कुडल्पडुवुवु । तत्रत्य चरमशेषैकभागद्रव्यं स ०।१/८।९।९।२० तिर्य्यंग्गतिनामदोळु कुडल्पडुगुमिदुपलक्षणमिन्ते शेषनामबंधस्थानंगळोळमरियल्पडुगुमी पेळल्पट्ट साधारणसूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवभवदोळुदयोचितत्रयोविंशतिप्रकृतिनामबंधस्थानस्वामिगळु तिर्य्यग्मनुष्यगतिद्वयमिथ्यादृष्टिजीवंगळप्परु । पिंडद्रव्यं च पुनः शरीरनामपिंडप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यं मत्ते स्वबंधस्वपिंडप्रकृतिषु सहबंधंगळप्प औदारिकतैजसकार्म्मणशरीरनामस्वपिंडप्रकृतिगळोळु औदारिकं मोदलागि तैजसकार्म्मणंगळोळु तम्मोळधिकक्रममक्कुमिन्तु त्रयोविंशतिनामसबंधपिंडापिंडप्रकृतिस्थानदोळें तु द्रव्यविभंजनमन्ते वक्ष्यमाण शेष । २५।२६।

बहुभागः स ०८/८९९।३ अनादेये देयः । एवं प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं दुर्भगाद्येकेन्द्रियान्तेषु दत्वा चरमशेषैकभागं स ०१/८९९२० तिर्यग्गतौ दद्यात् । इदमुपलक्षणं, तेन शेषनामबन्धस्थानेषु अपि ज्ञातव्यम् । इदं त्रयोविंशतिकं साधारणसूक्ष्मैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकभवोदयोचितं नरतिर्यग्मिथ्यादृष्टिरेव बध्नाति । पिण्डद्रव्यं च पुनः शरीरनामपिण्डप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यं पुनः सहबन्धौदारिकतैजसकार्मणेषु औदारिकतोऽधिकक्रमेण देयम् ।

आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रतिभागसे भाग दें । उसमें-से बहुभाग अन्तमें कही निर्माण प्रकृतिको देवें । शेष रहे एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अयशस्कीर्तिको देना । शेष रहे एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अनादेयको देवें । इसी प्रकार शेष रहे एक भागमें प्रतिभागसे भाग दे-देकर बहुभाग क्रमसे दुर्भग, अशुभ, अस्थिर, साधारण, अपर्याप्त, सूक्ष्म, स्थावर, उपघात, अगुरुलघु, तिर्यंचानुपूर्वी, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, हुण्डक संस्थान, शरीररूप पिण्ड प्रकृति और एकेन्द्रिय जातिको देवें । शेष रहे एक भागको सबसे पहले कही तिर्यंचगतिको दें । सो पूर्वमें जो इक्कीस भाग कहे थे, उन एक-एक भागमें अपना-अपना पीछे कहा भाग मिलानेसे अपनी-अपनी प्रकृतिका द्रव्य होता है । इसी प्रकार जहाँ एक साथ पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध होता है उनका भी बँटवारा कर लेना । जहाँ ऊपरमें एक यशस्कीर्तिका ही बन्ध होता है वहाँ नामकर्मका सब द्रव्य उस एक ही प्रकृतिको देना । इन स्थानोंमें पिण्ड प्रकृतिके द्रव्यका बँटवारा बन्धको प्राप्त पिण्ड प्रकृतिके भेदोंमें करना । जैसे तेईस प्राकृतिक स्थानमें एक शरीर नामक पिण्ड प्रकृतिके तीन भेद हैं । सो बँटवारेमें शरीर प्रकृतिको जो द्रव्य मिला, उसे प्रतिभागसे भाग देकर बहुभागके तीन समान भाग करके तीनोंको देना । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग कार्माणको देना । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग तैजसको देना । शेष एक भाग औदारिकको देना । पूर्वोक्त समान भागमें इन भागोंको मिलानेपर अपना-अपना द्रव्य होता है । इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना । जहाँ पिण्डके भेदोंमें-से एक ही का बन्ध हो वहाँ पिण्ड प्रकृतिका सब द्रव्य उस एक ही प्रकृतिको देना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८।२९।३०। ३१ । १ । स्थानसबंधप्रकृतिगळगेकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळु स्वामित्वमुं पेळल्पडुगुमप्पुदरिंनिल्लि प्रदेशबंधप्रकरणदोळु द्रव्यविभंजनक्रममेकदेशदिंदं सूचिसल्पट्टुदु :—

तिο गति	एकेंद्रि	औ ते का	हुं	वर्ण	गंध	रस
स ७।८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१
स ७ १ ८।९।९।२०	स ७ ८ ८।९।९।२०	स ७ ८ ८।९।९।१९	स ७ ८ ८।९।९।१८	स ७ ८ ८।९।९।१७	स ७ ८ ८।९।९।१६	स ७ ८ ८।९।९।१५

स्पर्श	तिο अनु	अगुरु	उपघात	स्थावर	सूक्ष्म	अपर्या
स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१
स ७ ८ ८।९।९।१४	स ७ ८ ८।९।९।१३	स ७ ८ ८।९।९।१२	स ७ ८ ८।९।९।११	स ७ ८ ८।९।९।१०	स ७ ८ ८।९।९।९	स ७ ८ ८।९।९।८

साधार	अस्थिर	अशुभ	दुर्भग	अनादे	अयशस्की	निर्म्माण
स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१	स ७ ८ ८।९।२१
स ७ ८ ८।९।९।७	स ७ ८ ८।९।९।६	स ७ ८ ८।९।९।५	स ७ ८ ८।९।९।४	स ७ ८ ८।९।९।३	स ७ ८ ८।९।९।२	स ७ ८ ८।९।९।१

एवं वक्ष्यमाण शेष २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । स्थानेष्वप्येकचत्वारिंशज्जीवपदेषु वक्तव्यं इति अत्र प्रदेशबन्धप्रकरणे द्रव्यविभञ्जनक्रमः सूचितः ॥२०६॥

इकतालीस जीवपदोंमें नामकर्मके स्थानोंका बन्ध जिस प्रकारसे होता है उसका कथन आगे करेंगे। इस प्रकार प्रदेशबन्धके कथनमें द्रव्यका बँटवारा कहा। उसका आशय यह है कि समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओंमें जिस प्रकृतिका जितना द्रव्य कहा उतने परमाणु उस प्रकृतिरूप परिणमते हैं।

विशेषार्थ—कोई बहुभाग आदिको न समझता हो तो उसके लिए दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं—जैसे सर्वद्रव्य चार हजार छियानवे ४०९६ है। उसका बँटवारा चार जगह करना है। प्रतिभागका प्रमाण आठ है। सो चार हजार छियानवेको आठसे भाग दें। एक भाग बिना बहुभाग ३५८४ आया; क्योंकि चार हजार छियानवेमें आठका भाग देनेसे लब्ध पाँच सौ बारह आया। उसे चार हजार छियानवेमें घटानेपर ३५८४ रहा। उसके चार समान भाग करनेपर एक-एक भागमें आठ सौ छियानवे आये। शेष एक भाग पाँच सौ बारहमें प्रतिभाग आठका भाग देनेपर चौंसठ आये। सो अलग रख बहुभाग चार सौ अड़तालीस बहुत द्रव्यवालेको देना। शेष एक भाग चौंसठमें प्रतिभागका भाग देनेपर आठ आये। उसे अलग रख बहुभाग छप्पन उससे हीन द्रव्यवालेको देना। शेष एक भाग आठमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरमुत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्य जघन्य प्रदेशबंधंगळ्गे साद्यादिभेदसंभवासंभवविशेषमं मूलप्रकृतिगळोळु पेळ्वपरु :—

छण्हंपि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु।
सेसतिये दुवियप्पो मोहाऊणं च दुवियप्पो ॥२०७॥

षण्णामप्यनुत्कृष्टः प्रदेशबंधस्तु चतुर्व्विकल्पस्तु। शेषत्रये द्विविकल्पो मोहायुषोश्च-तुर्विकल्पः ॥

षण्णां ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीयनामगोत्रान्तरायंगळे बारुं मूलप्रकृतिगळ अनुत्कृष्टः प्रदेशबंधः अनुत्कृष्टप्रदेशबंधं चतुर्व्विकल्पस्तु साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदविदं चतुर्व्विकल्पमक्कुं। तु मत्तमा षड्मूलप्रकृतिगळ शेषत्रये अनुत्कृष्टवज्जितोत्कृष्टाजघन्यजघन्यशेषत्रयदोळु द्विविकल्पः साद्यध्रुभेदद्विविकल्पमेयक्कुं। तु मत्तं मोहायुषोः मोहनीयायुष्यंगळेरडर चतुर्व्विकल्पः उत्कृष्टा-नुत्कृष्टाजघन्यजघन्यमें ब चतुर्व्विकल्पमुं साद्यध्रुवमें बेरडे विकल्पंगळनुळ्ळुवप्पुवु :—

णा	द	वे	मो	आ	ना	गो	अं
उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २
आ ४	आ ४	आ ४	आ ४	आ २	आ ४	आ ४	आ ४
अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २
ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २

अथ उत्कृष्टादीनां साद्यादिविशेषं मूलप्रकृतिष्वाह—

षण्णां ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायाणामनुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदाच्चतु-र्विधो भवति। तु—पुनः शेषोत्कृष्टाजघन्यजघन्येषु साद्यध्रुवभेदाद् द्विविध एव। तु—पुनः मोहायुषोः उत्कृष्टादि-

प्रतिभाग आठसे भाग देनेपर एक आया। उसे अलग रख बहुभाग सात उससे भी हीन द्रव्यवालेको देना। शेष एक भाग एक उससे भी हीन द्रव्यवालेको देना। अपने-अपने समान भागमें इनको मिलानेपर क्रमसे तेरह सौ चवालीस १३४४, नौ सौ बावन ९५२, नौ सौ तीन ९०३ और आठ सौ सत्तानबे ८९७ द्रव्यका प्रमाण आया। इस प्रकार चार हजार छियानबेका बँटवारा हुआ। इसी प्रकार उक्त प्रकृतियोंका भी जानना। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीयकी प्रकृतियोंमें क्रमसे घटता द्रव्य होता है। अन्तराय और नाम-कर्मकी प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक द्रव्य होता है। वेदनीय आयु और उच्च गोत्रकी उत्तर प्रकृति एक समयमें एक ही बँधती है। अतः इनका द्रव्य मूल प्रकृतिवत् होता है ॥२०६॥

इस प्रकारप्रदेश बन्धके प्रकरणमें द्रव्यके विभागका क्रम कहा। आगे मूल प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट आदि प्रदेशबन्धके सादि आदि भेद कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र, अन्तराय इन छह कर्मोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है। इन्हीं छहोंका उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळुत्कृष्टादिगळगे साध्यादि संभवविकल्पंगळं पेळ्दपरु :—

तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो ।
सेसतिये दुवियप्पो सेसचउक्केवि दुवियप्पो ॥२०८॥

त्रिशतामनुत्कृष्ट उत्तरप्रकृतिषु चतुर्विधो बंधः । शेषत्रये द्विविकल्पः शेषचतुष्केपि द्विविकल्पः ॥

उत्तरप्रकृतिषु उत्तरप्रकृतिगळोळु त्रिशतां मूवत्तु प्रकृतिगळ अनुत्कृष्टः अनुत्कृष्टमप्प प्रदेशबंधः प्रदेशबंधं चतुर्विधः चतुर्विधमक्कुमवर शेषत्रये उत्कृष्टाजघन्यजघन्यमेंब शेषत्रयदोळु द्विविकल्पः साध्यध्रुवविकल्पद्वयमक्कुं । शेषचतुष्केपि शेषाणां नवति प्रकृतीनामुत्कृष्टादिचतुष्टयस्तस्मिन् । शेषप्रकृतिगळुत्कृष्टादिचतुर्विकल्पंगळोळु द्विविकल्पः साद्यध्रुव द्विविकल्पमेयक्कुं—

३०	९०
उ २	उ २
अ ४	अ २
अ २	अ २
ज २	ज २

अनंतरमा त्रिशत्प्रकृतिगळावुवेंदोडे पेळ्दपरु :—

णाणंतरायदसयं दंसणछक्कं च मोह चोद्दसयं ।
तीसण्हमणुक्कस्सो पदेसबंधो चदुवियप्पो ॥२०९॥

ज्ञानांतरायदशकं दर्शनषट्कं च मोहचतुर्दशकं । त्रिशतामनुत्कृष्टः प्रदेशबंधश्चतुर्विकल्पः ॥

चतुर्विधोऽपि साद्यध्रुवभेदाद्द्विविधः ॥२०७॥ अथोत्तरप्रकृतीनामाह—

उत्तरप्रकृतिषु त्रिशतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः, चतुर्विधः शेषोत्कृष्टादित्रयेऽपि साद्यध्रुवभेदाद्द्विविकल्पः । शेषनवतिप्रकृतीनामुत्कृष्टादिबन्धचतुष्केऽपि साद्यध्रुवभेदाद् द्विविकल्प एव ॥२०८॥ तां त्रिंशतमाह—

अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार ही है। मोहनीय और आयुके उत्कृष्ट आदि चारों ही प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार हैं ॥२०७॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

उत्तर प्रकृतियोंमें तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है। शेष उत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार है। शेष नब्बे प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार ही हैं ॥२०८॥

वे तीस प्रकृतियाँ कहते हैं—

१

णा	दे	वे	मो	आ	ना	गो	अं
उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २
अ ४	अ ४	अ ४	अ २	अ २	अ ४	अ ४	अ ४
अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २
ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणपंचकममन्तरायपंचकमुं निद्राप्रचलाचक्षुर्द्दर्शनमचक्षुर्द्दर्शनमवधिदर्शनकेवलदर्शनावरणमें ब दर्शनषट्कमुं अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान संज्वलनक्रोधमानमायालोभंगळुं भयमुं जुगुप्सेयुमें ब मोहचतुर्द्दशकममिन्तु त्रिंशत्प्रकृतिगळनुत्कृष्टप्रदेशबंधं चतुर्व्विकल्पः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदविदं चतुर्व्विकल्पमक्कुं।

अनंतरमुत्कृष्टबंधस्वामिसामग्रीविशेषमं पेळ्दपरु :—

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो।
कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीयं ॥२१०॥

उत्कृष्टयोगः संज्ञिपर्य्याप्तः प्रकृतिबंधाल्पतरः। करोति प्रदेशोत्कृष्टं जघन्येन जानीहि विपरीतं॥

प्रदेशोत्कृष्टं प्रदेशोत्कृष्टमं उत्कृष्टयोगः उत्कृष्टयोगमनुळ्ळ संज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिजीवनुं पर्य्याप्तः परिपूर्ण्णपर्य्याप्तिकनुं प्रकृतिबंधाल्पतरः प्रकृतीनां बंधोऽल्पतरो यस्यासौ प्रकृतिबंधाल्पतरः अल्पतरमाद प्रकृतिगळ बंधमनुळ्ळनुं करोति माळकुं। जघन्येन जघन्यदिदं प्रदेशबंधदोळु विपरीतं जानीहि उक्तसामग्रीविशेषविपरीतनं स्वामियें दरियें बु शिष्य संबोधिसल्पट्टं।

जघन्ययोगमनुळ्ळनुमसंज्ञियुमपर्य्याप्तनुं प्रकृतिबंधबहुतरनुं जघन्यप्रदेशबंधमं माळ्पनें बुदर्त्थं।

अनंतरं मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधक्के गुणस्थानदोळु स्वामित्वमं पेळ्दपरु :—

आउक्कस्सपदेसं छण्हं मोहस्स णव दु ठाणाणि।
सेसाणं तणुकसाओ बंधदि उक्कस्सजोगेण ॥२११॥

आयुरुत्कृष्टप्रदेशं षष्ठतोऽस्य मोहस्य नव तु स्थानानि। शेषाणां तनुकषायो बध्नात्युत्कृष्टयोगेन॥

पञ्चज्ञानावरणपञ्चान्तरायाः निद्राप्रचलाचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभभयजुगुप्साश्चेति त्रिंशतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धश्चतुर्विकल्पो भवति ॥२०९॥ अथोत्कृष्टबन्धस्य सामग्रीविशेषमाह—

प्रदेशोत्कृष्टं उत्कृष्टयोगः संज्ञिपर्याप्त एव प्रकृतिबन्धाल्पतरः करोति। जघन्ये विपरीतं जानीहि। जघन्ययोगासंज्ञ्यपर्याप्तप्रकृतिबन्धबहुतर एव जघन्यप्रदेशं बन्धं करोतीत्यर्थः ॥२१०॥ अथ मूलप्रकृतीनां उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य गुणस्थाने स्वामित्वमाह—

पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, निद्रा, प्रचला, चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय और जुगुप्सा इन तीसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि आदि चार प्रकार हैं ॥२०९॥

आगे उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी सामग्री कहते हैं—

जो जीव उत्कृष्ट योगसे युक्त होनेके साथ संज्ञी और पर्याप्त होता है तथा थोड़ी प्रकृतियोंका बन्ध करता है वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। और जो उससे विपरीत होता है अर्थात् जघन्य योगसे युक्त होता है, असंज्ञी और अपर्याप्त होता है तथा बहुत प्रकृतियोंका बन्ध करता है वह जघन्य प्रदेशबन्ध करता है ॥२१०॥

आगे मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामिपना गुणस्थानोंमें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुरुत्कृष्टप्रवेशं आयुष्यकर्म्मक्कुत्कृष्टप्रदेशमं षडतीत्य षड्गुणस्थानंगळनतिक्रमिसि वर्त्तमाननप्प अप्रमत्तं बध्नाति कट्टुगुं। मोहस्य मोहनीयक्के प्रदेशोत्कृष्टमं। तु मत्ते। नव स्थानानि नवगुणस्थानंगळनेय्दिद अनिवृत्तिकरणं बध्नाति कट्टुगुं। शेषाणां ज्ञानावरणदर्शनावरण-वेदनीय नामगोत्रांतरायमें ब शेषषण्मूलप्रकृतिगळ उत्कृष्टप्रदेशमं तनुकषायः सूक्ष्मसांपरायं बध्नाति कट्टुगुमी प्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधक्के कारणमुत्कृष्टयोगमुं प्रकृतिबंधाल्पतरत्वमुमक्कुं। आयुष्य-कर्म्मक्कप्रमत्तं मोहनीयक्कनिवृत्तिकरणं शेषज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायंगळगे सूक्ष्मसांपरायनुमें बी मूरुं गुणस्थानवर्त्तिगळुत्कृष्टयोगमुं प्रकृतिबंधाल्पतरत्वमुं कारणमागुत्तं विरलु तंतम्म बंधप्रकृतिगळगुत्कृष्टप्रदेशबंधमं माळ्परें बुदत्थं।

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळगुत्कृष्टप्रदेशबंधस्वामिगळं गुणस्थानदोळु पेळ्दपरु गाथात्रयदिदं :—

सत्तर सुहुमसरागे पंचअणियट्टिम्मि देसगे तदियं।
अयदे बिदियकसायं होदि हु उक्कस्सदव्वं तु ॥२१२॥

सप्तदश सूक्ष्मसांपराये पंचानिवृत्तौ देशगे तृतीयः। असंयते द्वितीयकषायो भवति खलू-त्कृष्टद्रव्यं तु ॥

छण्णोकसायणिद्दापयलातित्थं च सम्मगो य जदी।
सम्मो वामो तेरं णरसुरआऊ असादं तु ॥२१३॥

षण्णोकषायनिद्रा प्रचलास्तीर्थं च सम्यग्दृष्टिर्य्यंदि। सम्यग्दृष्टिर्व्वामस्त्रयोदश नरसुरायुषी असातं तु ॥

देवचउक्कं वज्जं समचउरं सत्थगमणसुभगतियं।
आहारमप्पमत्तो सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ॥२१४॥

देवचतुष्कं वज्रं समचतुरस्रं शस्तगमनसुभगत्रयं। आहारमप्रमत्तः शेषप्रदेशोत्कटं मिथ्या-दृष्टिः ॥

आयुष उत्कृष्टप्रदेशं षड्गुणस्थानान्यतीत्य अप्रमत्तो भूत्वा बध्नाति, मोहस्य तु पुनः नवमं गुणस्थानं प्राप्य अनिवृत्तिकरणो बध्नाति। शेषज्ञानदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायाणां सूक्ष्मसांपराय एव। अत्रापि स्थानत्रये उत्कृष्टयोगः प्रकृतिबन्धाल्पतरः इति विशेषणद्वयं ज्ञातव्यम् ॥२११॥ अथोत्तरप्रकृतीनां गाथात्रयेणाह—

आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध छह गुणस्थानोंको उलंघकर अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है। मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नौवें गुणस्थानको प्राप्त करके अनिवृत्तिकरण गुण-स्थानवर्ती करता है। शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम-गोत्र और अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवर्ती ही करता है। इन तीनों स्थानोंमें भी उत्कृष्ट योगका धारक और अल्प प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला ये दो विशेषण जानना। अर्थात् उक्त गुणस्थानोंमें भी वही उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है जिसके उत्कृष्ट योग होता है और जो थोड़ी प्रकृतियाँ बाँधता है ॥२११॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणपंचकं दर्शनावरणचतुष्कमुं मन्तरायपंचकमु यशस्कीर्त्तिनाममुच्चैर्ग्गोत्रं सातवेदनीयमें ब सप्तदशप्रकृतिगळु १७ सूक्ष्मसांपरायनोळु । तु मत्ते पुंवेदमुं संज्वलनचतुष्कमें ब पंचप्रकृतिगळु ५ अनिवृत्तिकरणनोळु । तृतीयः प्रत्याख्यानकषायचतुष्कं ४ देशगे देशमेकदेशं व्रतं गच्छतीति देशगस्तस्मिन् । देशसंयतनोळु । द्वितीयकषायः अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कं ४ असंयते असंयतसम्यग्दृष्टियोळु यितो नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु कूडि ३० प्रकृतिगळुत्कृष्टद्रव्यमक्कुं । खलु स्फुटमागि । षण्णोकषायनिद्राप्रचलास्तीर्त्थं च हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साषण्णोकषायंगळुं ६ निद्रादर्शनावरणमु १ प्रचलादर्शनावरणमुं १ तीर्त्थं १ मुमें ब नवप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधमं सम्यग्दृष्टिश्च सम्यग्दृष्टि माळ्कुं । त्रयोदश वक्ष्यमाणत्रयोदशप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधमं सम्यग्दृष्टिश्च सम्यग्दृष्टियुं । यदि एत्तलानुं वामश्च मिथ्यादृष्टियुं माळ्कुमदाउवें दोडे पेळ्दपरु :—नरसुरायुषी मनुष्यायुष्यमुं १ सुरायुष्यमुं १ असातं तु । तु मत्तमसातवेदनीयमुं १ देवचतुष्कमुं देवगति देवगत्यानुपूर्व्व्यं वैक्रियिकशरीर तदंगोपांगमें ब देवचतुष्कमुं ४ । वज्रं वज्रऋषभनाराचसंहननमुं १ । समचतुरस्रं समचतुरस्रशरीरसंस्थानमुं १ । शस्तगमनसुभगत्रयम् प्रशस्तविहायोगतियुं १ । सुभगसुस्वरादेयमें ब सुभगत्रयमुं ३ यें बिवु त्रयोदशप्रकृतिगळप्पुवु । आहारं आहारकद्वयक्के २ अप्रमत्तनुत्कृष्टप्रदेशबंधमं माळ्कुमिन्तु सू १७ । अ ५ । दे ४ । अ ४ । सम्यग्दृष्टिगळ ९ । सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टिगळ १३ । अप्रमत्तन २ अन्तुक्त ५४ प्रकृतिगळं कळेदु शेषदर्शनावरणस्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ मिथ्यात्वमनंतानुबंधिचतुष्कमुं स्त्रीवेदमुं नपुंसकवेदमुमें ब मोहनीयसप्तकमुं ७ । नरकतिर्य्यगायुर्द्वयमु २ । नरकतिर्य्यग्मनुष्यगतित्रितयमुं ३ एकेंद्रियादि जाति पंचकमु ५ । औदारिक तैजसकार्म्मणशरीरत्रयमुं ३ । न्यग्रोधपरिमंडल स्वातिकुब्जवामनहुंडशरीरसंस्थानपंचकमुं ५ ।

पञ्चचतुःपञ्चज्ञानदर्शनावरणान्तराययशस्कीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानामुत्कृष्टद्रव्यं सूक्ष्मसांपराये भवति । तु—पुनः पुंवेदसंज्वलनानां अनिवृत्तिकरणे भवति । प्रत्याख्यानकषायाणां देशसंयते, अप्रत्याख्यानकषायाणामसंयते खलु स्फुटम् । षण्णोकषायनिद्राप्रचलातीर्थानामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिः करोति । वक्ष्यमाणत्रयोदशानां सम्यग्दृष्टिः मिथ्यादृष्टिर्वा यदि । तानि त्रयोदश तु—पुनः नरसुरायुषी असातं देवगतितदानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीरतदङ्गोपाङ्गानि वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं प्रशस्तविहायोगतिः सुभगसुस्वरादेयानि भवन्ति । आहारद्वयस्य अप्रमत्तः उत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । उक्तचतुःपञ्चाशतः शेषाणां स्त्यानगृद्धित्रयमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिस्त्रीनपुंसकवेदनरकतिर्यगायुर्नरकतिर्यग्मनुष्यगतिपञ्चजात्यौदारिकतैजसकार्मणन्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्ज-

---

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, सातावेदनीय इन सतरहका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्म साम्परायमें होता है। पुरुषवेद और चार संज्वलन कषाय इन पाँचका अनिवृत्तिकरणमें होता है। तीसरी प्रत्याख्यान कषायोंका देशविरतमें होता है। दूसरी अप्रत्याख्यान कषायोंका असंयतमें होता है। छह नोकषाय, निद्रा, प्रचला और तीर्थंकरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि करता है। आगे कही गयी तेरह प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टी करता है। वे तेरह इस प्रकार हैं—मनुष्यायु, देवायु, असातावेदनीय, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय। आहारक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिकांगोपांगमुं १ वज्रनाराचनाराच अर्द्धनाराच कीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननपंचकमु ५ वर्णचतुष्कमुं ४। नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रितयमुं ३ अगुरुलघुकमुं १ उपघातमुं १ परघातमुं १ उच्छ्वासमुं १ आतपमुं १। उद्योतमुं १ अप्रशस्तविहायोगतियुं १ त्रसस्थावरद्विकमुं २ बादरसूक्ष्मद्विकमुं २। पर्य्याप्तापर्य्याप्तद्विकमुं २। प्रत्येक साधारणशरीरद्विकमुं २। स्थिरास्थिरद्विकमुं २। शुभाशुभद्विकमुं २। दुर्भगमुं १ दुःस्वरमुं १ अनादेयमुं १ अयशस्कीर्त्तियुं १। निर्म्माणनाममु १ नीचैर्ग्गोत्रमुं मेंब षट्षष्टिप्रकृतिगळगे प्रदेशोत्कटमं मिथ्यादृष्टिये माळ्कु। यितुक्तानुक्त १२० प्रकृतिगळगे प्रदेशोत्कटबंधकारमुत्कृष्टयोगप्रकृतिबंधाल्पतरत्वमनुळ्ळ संज्ञिपर्य्याप्तजीवंगळे प्रदेशोत्कटबंधमं माळ्परु। इल्लि मिथ्यात्वप्रकृतिगे मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तियागलनन्तानुबंधिगे सासादननोळेंकितु अग्रहणमेंदोडे मिथ्यात्वद्रव्यक्के देशघातिगळे स्वामिगळप्पुदरिंदमदु कारणमागिये प्रकृत्यल्पतराभावमप्पुदरिंदं मुन्निनंते सर्वधप्रकृतिगळप्पुदरिनन्तानुबंधिगातनोळग्रहणमक्कुं।

अनंतरं मुन्नं जहण्णए जाण विवरीयमेंदरप्पुदरिंदमा जघन्यप्रदेशबंधस्वामिसामग्रीविशेषमं पेळ्वपरु :—

वामनहुण्डौदारिकाङ्गोपाङ्गवज्रनाराचार्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकाचतुर्वर्णनरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्तिनिर्माणनीचैर्गोत्राणां षट्षष्टेः मिथ्यादृष्टिरेव करोति। एवमुक्तानुक्त १२० प्रकृतीनां उत्कृष्टप्रदेशबन्धकारणमुत्कृष्टयोगादिप्रागुक्तमेवावसेयम्। अत्र मिथ्यात्वस्य मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिद्रव्यमुत्कृष्टमुक्तं, तथानन्तानुबन्धिनः सासादने किमिति नोच्यते ? तन्न मिथ्यात्वद्रव्यस्य देशघातिनामेव स्वामित्वात् ॥२१२–२१४॥ अथ पूर्वं 'जहण्णये जाण विवरीयं' इत्युक्तं तत्सामग्रीविशेषमाह—

द्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अप्रमत्त करता है। इन चौवन प्रकृतियोंसे शेष रहीं स्त्यानगृद्धि आदि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी कषाय चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकायु, तिर्यंचायु, नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान, हुण्डक संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रनाराच, अर्धनाराच, कीलित, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, वर्णादि चार, नरकानुपूर्वी, तिर्यगनुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र इन छियासठका मिथ्यादृष्टि ही करता है। इस प्रकार गाथामें कही गयी और न कही गयी एक सौ बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका कारण पूर्वमें कहे उत्कृष्ट योग आदि जानना।

शंका—यहाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्तिका द्रव्य उत्कृष्ट कहा है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीका सासादनमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—

आगे मूल प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामी कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णए जोगे ।
सत्तण्हं तु जहण्णं आउगबंधेवि आउस्स ॥२१५॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य प्रथमे जघन्येन योगेन । सप्तानां तु जघन्यः आयुर्बंधेप्यायुषः ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन भवप्रथमसमयदोळु जघन्ययोगदिदं ज्ञानावरणादिसप्तमूलप्रकृतिगळ्गे जघन्यमप्प प्रदेशबंधमक्कु । मायुर्ब्बंधदोळमवक्कं जघन्यप्रदेशबंधमक्कुं ।

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळ्गे जघन्यप्रदेशबंधस्वामिविशेषमं पेळ्दपरु :—

घोडणजोगोऽसण्णी णिरयदुसुरणिरय आउगजहण्णं ।
अपमत्तो आहारं अयदो तित्थं च देवचऊ ॥२१६॥

घोटमानयोगोऽसंज्ञिनरकद्वयसुरनारकायुर्ज्जघन्यमप्रमत्त आहारकस्यासंयतस्तीर्त्थस्य च देवचतुष्कस्य ॥

घोटमानयोगः येषां योगस्थानानां वृद्धिहान्यवस्थानं च संभवति । तानि घोटमानयोगस्थाननामानि । परिणामयोगस्थानानीति भणितं भवति । हानिवृद्धयवस्थानंगळिदं परिवर्त्तमानयोगमं परिणममानयोगमं घोटमानयोगमें बुदंतप्प घोटमानयोगस्थानयुतनप्प असंज्ञिजीवनु नरकद्वयसुरायुर्न्नारकायुर्द्वयमेंब ४ नाल्कुं प्रकृतिगळ्गे जघन्यप्रदेशबंधमं माळकुं । आहारद्वयक्कप्रमत्तं जघन्यप्रदेशबंधमं माळकुमेकें दोडपूर्व्वकरणनं नोडलुमप्रमत्तसंयतंगष्टविधकर्म्मबंधसंभवमप्पुदरिदं बहुप्रकृतिबंधं संभविसुगुमप्पुदरिदं असंयतसम्यग्दृष्टियुं भवग्रहणप्रथमसमयजघन्योपपादयोगयुतं तीर्त्थंकरनामक्कं सुरचतुष्कक्केयुं जघन्यप्रदेशबंधमं माळकुमिन्तेकादशप्रकृतिगळं कळेदु शेषनवोत्तरशतप्रकृतिगळ्गे जघन्यप्रदेशबंधमं माळ्प स्वामिविशेषमं पेळ्दपरु :—

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकः स्वभवप्रथमसमये जघन्ययोगेन सप्तमूलप्रकृतीनां जघन्यं प्रदेशबन्धं करोति । आयुर्बन्धे च आयुषोऽपि ॥२१५॥ अथोत्तरप्रकृतीनामाह—

येषां योगस्थानानां वृद्धिः हानिः अवस्थानं च संभवति तानि घोटमानयोगस्थानानि—परिणामयोगस्थानानीति भणितं भवति । तद्योगोऽसंज्ञिनरकद्वयसुरनारकायुषां जघन्यप्रदेशबन्धं करोति । आहारकद्वयस्य अप्रमत्तः करोति, कुतः ? अपूर्वकरणात्तस्य बहुप्रकृतिबन्धसंभवात् । असंयतो भवग्रहणप्रथमसमयजघन्योपपादयोगः तीर्थकरत्वस्य सुरचतुष्कस्य च ॥२१६॥ उक्तैकादशभ्यः शेषाणां विशेषमाह—

सूक्ष्म निगोदिया लब्ध पर्याप्तक जीव अपनी पर्याप्तके प्रथम समयमें जघन्य योगके द्वारा सात मूल प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आयुबन्ध होनेपर आयुका जघन्य प्रदेशबन्ध भी वही करता है ॥२१५॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

जिन योगस्थानोंकी वृद्धि भी होती है, हानि भी होती है और जैसेके तैसे भी रहते हैं उनको घोटमान योगस्थान अथवा परिणाम योगस्थान कहते हैं। ऐसे योगका धारी असंज्ञी जीव नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवायु और नरकायु इन चारोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है। आहारकद्विकका अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है; क्योंकि अपूर्वकरणसे वह अधिक प्रकृतियोंको बाँधता है। भव ग्रहण करनेके प्रथम समयमें जघन्य उपपाद योगस्थानका धारी असंयत सम्यग्दृष्टी तीर्थंकर, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है ॥२१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरिम अपुण्णभवत्थो तिविग्गहे पढमविग्गहम्मि ठियो ।
सुहुमणिगोदो बंधदि सेसाणं अवरबंधं तु ॥२१७॥

चरमापूर्णभवस्थस्त्रिविग्रहे प्रथमविग्रहे स्थितः । सूक्ष्मनिगोदो बध्नाति शेषाणामवरबंधं तु ॥

तु मत्तं चरमापूर्णभवस्थः द्वादशोत्तरषट्सहस्रस्वकीयापर्य्याप्तभवंगळ चरमभवदोळु इरुतिर्द्दु त्रिविग्रहे विग्रहगतिय ,त्रिवक्रंगळोळु प्रथमविग्रहे प्रथमवक्रदोळु स्थितः यिरल्पट्ट सूक्ष्मनिगोदः सूक्ष्मं निगोदजीवं । शेषाणां शेष १०९ नवोत्तरशत प्रकृतिगळ्गे अवरबंधं जघन्यप्रदेशबंधमं बध्नाति कट्टुगुं । इन्ती प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधप्रकरणंगळोळु प्रथमोक्तप्रकृतिबंधदोळु मूलोत्तरप्रकृतिगळनु येकजीवनेकसमयदोळु कट्टुव सबंधज्ञानावरणाद्यष्टविधसर्व्वप्रकृतिस्थानंगळ जघन्योत्कृष्टमध्यमंगळ्गे तद्बंधकालदोळे तद्बंधस्थानगतप्रकृतिगळगे स्थित्यनुभागप्रदेशबंधभेदंगळुमप्पुदरिदं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु रचनाविशेषं वृत्तिकारर्निदं तोरिसल्पड्डुगुं—

अ	५	४	१	५	४।३।२।१।	०	१।
अ	५	६।४	१	९		०	२८।२९।३०।३१।१।
अ	५	६	१	९		१	२८।२९।३०।३१।१।
प्र	५	६	१	९		१	२८।२९।
दे	५	६	१	१३		१	२८।२९।
अ	५	६	१	१७		१	२८।२९।३०।
मि	५	६	१	१७		०	२८।२९।
सा	५	९	१	२१		१	२८।२९।३०।
मि	५	९	१	२२		१	२३।२५।२६।२८।२९।३०।
		दं			२६।२२।२१।१७।		
सात १	णा ५।९।६।४	वे २	मो		१३।९।५।४।३।२।१।	आ ४	ना १२।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।

१	५	२२।२१।२०।१९।१८									
१	५	५५।५६।५७।५८।५६।									
१	५	५६।५७।५८।५९।									
१	५	५६।५७।									
१	५	६०।६१।	आ।०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	५	६४।६५।६६।	स।०	०	१	०	०	०	०	०	१
१	५	६३।६४।	सी।०	०	१	०	०	०	०	०	१
१	५	७१।७२।७३।	उ।०	४	१	०	०	०	०	०	१
१	५	६७।६९।७०।७२।७३।७४।	सू ५	४	१	०	०	१	१	५	१७
गो २	अं ५	अंतु कंगलिवु	णा ५	दं ९	वे २	मो २६	आ ४	ना ९३	गो २	अं ५	बं.कं.

तु—पुनः द्वादशोत्तरषट्सहस्रापर्याप्तभवानां चरमभवस्थो विग्रहगतित्रिवक्रेषु प्रथमवक्रे स्थितः सूक्ष्मनिगोदः शेषनवोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं बध्नाति । अत्र चतुर्षु बन्धेषु प्रथमोक्तप्रकृतिबन्धे मूलोत्तर-

छह हजार बारह क्षुद्रभवोंमें-से अन्तिम क्षुद्रभवमें स्थित तथा विग्रहगतिके तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतीनामेकजीवस्य एकसमये सबन्धप्रकृतिजघन्यादिस्थानानां बन्धकाले उद्गतप्रकृतीनां स्थित्यनुभागप्रदेशबन्धभेदा भवन्ति इति मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु रचनाविशेषो वृत्तिकारेण दर्श्यते—

अ	०	०	०	०	०	०	०	०	०
स	०	०	१	०	०	०	०	०	१
क्षी	०	०	१	०	०	०	०	०	१
उ	०	०	१	०	०	०	०	०	१
सू	५	४	१	०	०	१	१	५	१७
अ	५	४	१	५।४।३।२।१	०	१	१	५	२२।२१।२०।१९।१८
अ	५	६।४	१	९	०	२८।२९।३०।३१।१	१	५	५५।५६।५७।५८।२६
अ	५	६	१	९	१	२८।२९।३०।३१	१	५	५६।५७।५८।५९
प्र	५	६	१	९	१	२८।२९	१	५	५६।५७
दे	५	६	१	१३	१	२८।२९	१	५	६०।६१
अ	५	६	१	१७	१	२८।२९।३०	१	५	६४।६५।६६
मि	५	६	१	१७	०	२८।२९	१	५	६३।६४
सा	५	९	१	२१	१	२८।२९।३०	१	५	७१।७२।७३
मि	५	९	१	२२	१	२३।२५।२६।२८।२९।३०	१	५	६७।६९।७०।७२।७३।७४
	ज्ञा. ५	द. ९।६।४	वे.२	मो.२६।२२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१	आ. ४	ना २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।	गो.२	अ. ५	

मोहोंमें-से प्रथम मोहेमें स्थित सूक्ष्म निगोदिया जीव शेष एक सौ नौ प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

यहाँ चार प्रकारके बन्धोंमें प्रथम कहे प्रकृतिबन्धमें मूल और उत्तर प्रकृतियोंका एक जीवके एक समयमें एक साथ बँधनेवाली प्रकृतियोंके जघन्यादि भेदरूप स्थिति अनुभाग और प्रदेशबन्धके भेद होते हैं। सो मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें टीकाकार रचनाविशेष दिखाते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण.	ज्ञानावरण	दर्शनाव.	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंत.	सब प्रकृतियोंका एक जीवके एक कालमें बन्धका प्रमाण
अ.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
स.	०	०	१	०	०	०	०	०	१
क्षी.	०	०	१	०	०	०	०	०	१
उ.	०	०	१	०	०	०	०	०	१
सू.	५	४	१	०	०	१	१	५	१७
अ.	५	४	१	५।४।३।२।१	०	१	१	५	२२।२१।२०।१९।१८
अ.	५	६।४	१	९	०	२८।२९।३०।३१।१।	१	५	५५।५६।५७।५८।२६
अ.	५	६	१	९	१		१	५	५६।५७।५८।५९
अ.	५	६	१	९	१	२८।२९	१	५	५६।५७
दे.	५	६	१	१३	१	२८।२९	१	५	६०।६१
अ.	५	६	१	१७	१	२८।२९।३०	१	५	६४।६५।६६
मि.	५	६	१	१७	०	२८।२९	१	५	६३।६४
सा.	५	९	१	२१	१	२८।२९।३०	१	५	७१।७२।७३
मि.	५	९	१	२२	१	२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१	१	५	६७।६९।७०।७२।७३।७४
	ज्ञाना. ५	द. ९।६।४	वे. १	२६।२२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१	आ. ४ में १	२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१	गोत्र २ में एक	अं. ५	

इसका आशय यह है कि एक जीवके एक कालमें ज्ञानावरणकी पाँच ही प्रकृतियोंका बन्ध होता है। दर्शनावरणकी नौका, छहका अथवा चारका बन्ध होता है। वेदनीयकी दोमें एकका ही बन्ध होता है। मोहनीयकी छब्बीसमें-से बाइस या इक्कीस या सतरह या तेरह या नौ या पाँच चार दो और एकका बन्ध होता है। आयु चारमें-से एक ही बँधती है। नामकर्मकी तेईस या पच्चीस या छब्बीस या अठाईस या उनतीस या तीस या इकतीस या एक प्रकृतिका बन्ध होता है। गोत्र दोमें-से एक बँधता है। अन्तराय पाँचका ही बन्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यिल्लि मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळ स्थानविकल्पंगळ्गे प्रत्येकं प्रकृतिभेर्दाद भंगंगळु पुट्टुगुमें दें ते दोडे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु ६७/१ स्थानमेकप्रकारमेयक्कुमत्त ६९/९ मरुवत्तो भत्तर स्थानदोळु नवभंगंगळप्पुवु । मत्तं ७०/८ २ स्थानदोळु ८ भंग गळप्पुवु मत्तं ७२/९ स्थानदोळु नव-भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७३/९२१६ २२ स्थानदोळो भत्तुसासिरवइन्नूर हदिनारु ९२१६ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७४/४६०८ २ स्थानदोळु ४६०८ भंगंगळप्पुवु । सासादनन ७१/८ २ स्थानदोळु ८ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७२/६४०० २ स्थानदोळु ६४०० भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७३/३२०० २२ स्थानदोळु ३२०० भंगंगळ-प्पुवु । मिश्रन ७३/८ २२ स्थानदोळु ८ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७४/८ २ स्थानदोळ ८ भंगंगळप्पुवु । असंयतन अरुवत्तनाल्कर ६४/८ २ स्थानदोळु एंदु ८ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ६५/१६ २ स्थानदोळु १६ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ६६/८ २२ स्थानदोळु ८ भंगंगळप्पुवु । देशसंयतन ६०।६१/८।८ एंदेंदु भंग-

---

अत्र गुणस्थानेषु स्थानविकल्पानां प्रकृतिभेदेन भङ्गा उत्पद्यन्ते । तत्र मिथ्यादृष्टौ ६७ स्थाने एको १ भङ्गः । पुनः ६९ स्थाने ९ नवभङ्गाः पुनः ७० स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ७२ स्थाने नव ९ । पुनः ७३ स्थाने नवसहस्रद्विशतषोडश ९२१६ । पुनः ७४ स्थाने ४६०८ । सासादनस्य ७१ स्थाने अष्टौ ८ । पुनः ७२ स्थाने ६४०० । पुनः ७३ स्थाने ३२०० । मिश्रस्य ६३ स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ६४ स्थाने अष्टौ ८ । असंयतस्य ६४ स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ६५ स्थाने १६ । पुनः ६६ स्थानेऽष्टौ ८ । देशसंयतस्य ६० । ६१ अष्टावष्टौ । अप्रमत्तस्य

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ज्ञानावरण पाँच, दर्शनावरण नौ, वेदनीय एक, मोहनीय बाईस, आयु एक, नामकर्म तेईस या पच्चीस या अठाईस या उनतीस या तीसका, गोत्र एक और अन्तराय पाँचका बन्ध होता है। सब प्रकृतियोंको जोड़नेपर सड़सठ या उनहत्तर या सत्तर, या बहत्तर या तेहत्तर या चौहत्तरका बन्ध होता है। इसी प्रकार सासादन आदि गुणस्थानोंमें भी ऊपर कहे अनुसार जानना।

प्रकृतियोंके बदलनेसे भंग होते हैं। जैसे चौहत्तरके बन्धमें वेदनीय कर्मका बन्ध है। उसमें साता या असाताके बन्धकी अपेक्षा दो भंग होते हैं। इसी प्रकार प्रकृतियोंके घटने-बढ़नेसे स्थानभेद होते हैं। और एक ही स्थानमें प्रकृतियोंके बदलनेसे भंग होते हैं। वही कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें सड़सठके स्थानमें एक भंग है। उनहत्तरके स्थानमें नौ भंग हैं। सत्तरके स्थानमें आठ भंग हैं। बहत्तरके स्थानमें नौ भंग हैं। तेहत्तरके स्थानमें बानबे सौ सोलह भंग हैं। चौहत्तरके स्थानमें छियालीस सौ आठ भंग हैं। सासादनमें इकहत्तरके स्थानमें आठ भंग हैं। बहत्तरके स्थानमें चौंसठ सौ भंग हैं। तेहत्तरके स्थानमें बत्तीस सौ भंग हैं। मिश्रमें तिरसठ चौंसठ दोनों स्थानोंमें आठ-आठ भंग हैं। असंयतमें चौंसठ, पैंसठ, छियासठ-के स्थानोंमें आठ-आठ भंग हैं। देशसंयतमें साठ और इकसठके स्थानमें आठ-आठ भंग हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळप्पुवु । प्रमत्तन ५६ । ५७ एंटेंटु भंगंगळप्पुवु । अप्रमत्तन ५६ । ५७ । ५८ । ५९ स्थानंग-
 ८ । ८ १ १ १ १

ळोळु प्रत्येकमोंदोंदप्पुवु । अपूर्व्वकरणन ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । २६ एकैकभंगंगळप्पुवु ।
 १ १ १ १

अनिवृत्तिकरणन २२ । २१ । २० । १९ । १८ एकैकभंगंगळेयप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायन १७ र
 १ १ १ १ १ १

स्थानदोळेकभागमेयक्कुमी भंगंगळु मुंदे नामस्थानकथनदोळु सुव्यक्तमावप्पुवु ॥

अनंतरं प्रकृतिप्रदेशबंधंगळ्गे कारणयोगस्थानंगळ स्वरूपसंख्यास्वामिगळं द्विचत्वारिंशद्गाथासूत्रंगळिदं पेळ्वपरु :

> जोगट्ठाणा तिविहा उववादेयंतवड्ढिपरिणामा ।
> भेदा एक्केक्कंपि य चोद्दसभेदा पुणो तिविहा ॥२१८॥

योगस्थानानि त्रिविधान्युपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदादेकैकमपि च चतुर्द्दशभेदानि पुनस्त्रिविधानि ॥

योगस्थानानि योगस्थानंगळ उपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदात् उपपादएकान्तानुवृद्धिपरिणामभेदर्दिदं त्रिविधानि त्रिप्रकारंगळप्पुवु । च मत्ते एकैकमपि उपपादैकांतवृद्धिपरिणामगळाकैकमुं प्रत्येकं चतुर्दश भेदानि चतुर्द्दशभेदंगळनुळ्ळुवु । पुनः मत्ते त्रिविधानि सामान्यजघन्योत्कृष्ट-

---

५६ । ५७ अष्टावष्टौ । अप्रमत्तस्य ५६ ५७ ५८ ५९ एकैकः । अपूर्वकरणस्य ५५ ५६ ५७ ५८ २६ एकैकः
 १ १ १ १ १

अनिवृत्तिकरणस्य २२ । २१ । २० । १९ । १८ एकैकः । सूक्ष्मसांपरायस्य १७ स्थाने एकः । एते भङ्गा
 १ १ १ १ १ १

अग्रे नामस्थानकथने सुव्यक्तं संति ॥२१७॥ अथ प्रकृतिप्रदेशबन्धकारणयोगस्थानानां स्वरूपसंख्यास्वामिनो द्विचत्वारिंशद्गाथाभिराह—

योगस्थानानि उपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदात्त्रिविधानि । च—पुनः तेषामेकैकमपि प्रत्येकं चतुर्दशभेदं

प्रमत्तमें छप्पन और सत्तावनके स्थानमें आठ-आठ भंग हैं। अप्रमत्तमें छप्पन, सत्तावन, अठावन और उनसठके स्थानोंमें एक-एक भंग है। अपूर्वकरणमें पचपन, छप्पन, सत्तावन, अठावन और छब्बीसके स्थानोंमें एक-एक भंग हैं। अनिवृत्तिकरणमें बाईस, इक्कीस, बीस, उन्नीस और अठारहके स्थानोंमें एक-एक भंग है। सूक्ष्म साम्परायमें सतरहके स्थानमें एक भंग है। ये भंग आगे नामकर्मके स्थानोंमें प्रकट करेंगे ॥२१७॥

आगे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके कारण योगस्थानोंका स्वरूप, संख्या और स्वामी बयालीस गाथाओंसे कहते हैं—

योगस्थान तीन प्रकारके हैं—उपपाद योगस्थान, एकान्तवृद्धि योगस्थान और परिणाम योगस्थान। उनमेंसे एक-एक भेदके चौदह जीव समासोंकी अपेक्षा चौदह-चौदह भेद होते हैं। ये चौदह-चौदह भेद भी सामान्य, जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारके हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेदर्दिदं त्रिविधंगळप्पुवु :

उपपा	एकां	परिणा
१४	१४	१४ सा
२८	२८	२८ सा ज
४२	४२	४२ सा ज उ

अनंतरं सामान्य सामान्य जघन्य सामान्य जघन्योत्कृष्टभेर्दाददं १४। २८। ४२। पदिनाल्कुमिप्पत्तें टु नाल्वत्तेरडुमुपपादयोगस्थानंगलुत्पत्तियं पेळ्वपरु :—

उववादजोगठाणा भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा।
विग्गहउजुगइगमणे जीवसमासेसु णायव्वा ॥२१९॥

उपपादयोगस्थानानि भवादिसमयस्थितस्यावरवराणि। विग्रहर्जुगतिगमने जीवसमासेषु ज्ञातव्यानि ॥

उपपादयोगस्थानानि उपपादयोगस्थानंगळु भवादिसमयस्थितस्य पूर्व्वभवशरीरमं बिट्टुत्तर भवदादिसमयदोळिरुत्तिर्द्दंगे। अवरवराणि जघन्योत्कृष्टयोगंगळु विग्रहर्ज्जुगतिगमने विग्रहगतियिंद-मुत्तरभवक्के सलुवल्लियुं ऋजुगतिगमनदिंदमुत्तरभवक्के सलुवल्लियुं। यथासंख्यमागिजघन्योपपाद-योगस्थानंगळुमुत्कृष्टोपपादयोगस्थानंगळु जीवसमासेषु चतुर्द्दशजीवसमासेगळोळुक्तरचनाविशेषदोळु ज्ञातव्यानि अरियल्पडुवुवु। उपपद्यते प्राप्यते भवप्रथमसमयो जंतुनेत्युपपादः। एंदितु उपपाद-

भवति। तेऽपि भेदाः पुनः सामान्यजघन्योत्कृष्टभेदात्त्रिविधा भवन्ति ॥२१८॥ अथ सामान्यजघन्यसामान्यो-त्कृष्टभेदेन १४। २८। ४२ चतुर्दशाष्टाविंशतिद्वाचत्वारिंशदुपपादयोगस्थानानामुत्पत्तिमाह—

उपपादयोगस्थानानि उत्तरभवस्य आदिसमये स्थितस्य, विग्रहगत्योत्तरभवगमने जघन्यानि, ऋजु-गत्यात्रोत्कृष्टानि भवन्ति। तानि जीवसमासे चतुर्दशसूक्तरचनाविशेषे ज्ञातव्यानि। उपपाद्यते प्राप्यते भव-

सामान्यके भेदसे चौदह भेद हैं, सामान्य और जघन्यके भेदसे अठाईस भेद हैं। तथा सामान्य, जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे बयालीस भेद हैं ॥२१८॥

आगे उपपाद योगस्थानका स्वरूप कहते हैं—

भवके प्रथम समयमें स्थित जीवके उपपाद योगस्थान होता है। जो जीव विग्रह गतिसे जाकर नवीन भव धारण करता है उसके जघन्य उपपाद योगस्थान होता है। और जो बिना मोड़ेवाली ऋजुगतिसे जाकर नवीन भव धारण करता है उसके उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान होता है। वे चौदह जीव समासोंमें होते हैं। 'उपपद्यते' अर्थात् जो जीवके द्वारा

१. ब सामान्यसामान्यजघन्यसामान्यज°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगद सामान्य सामान्यजघन्य सामान्यजघन्योत्कृष्टयोगभेदंगळनितुं भवप्रथमसमयसंभविगळप्पु- वेंबुदर्थमनंतरं परिणामयोगक्के पेळ्दपरु :—

प्रथमसमये जन्तुना इत्युपपादः । तस्य सामान्यादिभेदाः सर्वेऽपि भवप्रथमसमये एव संभवतीत्यर्थः ।

स्थिति । ए । सू । प परि । उ०००ज ० उ २१ ० ० इं २१परि। उ०००ज श २१परि। उ०००ज परि। उ०००ज	स्थिति । ए सू अप परि । उ०००ज ० ० १ । १ ० १८।३ परि । उ००ज	स्थिति । ए । बा । प परि । उ००ज उ ० इं ० ० ० ० श २१परि । उ००ज	स्थिति । ए । बा । अप परि । उ०००ज १ । १ । ० १८ । ३ ० ० परि उ०००ज
शरीर प २१ एकां । उ ० ० १ एकांतानुवृद्धि । ज	एकांतानु उ १।२ ० १८।३ ० १ । एकांतानुवृद्धि ज	श २ १ एकांतानुवृ उ ० ० १ एकांतानुवृद्धि ज	एकांता उ १।२। ० १८।३ ० १ एकांता ज
विग्रह १।ज।उप=० ऋ उ । ०	१ । ज । उप=० ऋ उ । ०	१ । ज । उपपा=० ऋ उ । ०	१ ज उप=० ऋ उ । ०
पूर्व्वभवशरीर	पूर्व्वभवशरीर	पूर्व्वभवशरीर	पूर्व्वभवशरीर

→

←

स्थिति । द्वीं । प भा परि । उ०००ज उ ० इं ० ० ० श २१ परि । उ०००ज	स्थिति । द्वींद्रि । अप परि । उ०००ज १।१ ० १८।३ ० ० परि । उ०००ज	स्थिति । त्रीं प भा परि । उ०००ज उ ० ० इं ० ० श २१ परि उ०००ज
श २ १ एकांत उ ० १ एकांता ० ज	एकांता उ १।२ ० १८।३। ० ० १ । एकांता ज	श २ १ एकांता उ ० १ । एकांतानु ० ज
१ । ज । उपपा ० ऋ उ । ०	१ । ज उपपा ० ऋ उ । ०	१ । ज । उपपा ० ऋ उ । ०
पूर्व्वभवशरीर	पूर्व्वभवशरीर	पूर्व्वभवशरीर

भवके प्रथम समयमें प्राप्त किये जाते हैं वे उपपाद योगस्थान हैं। उसके सब सामान्य आदि भेद भवके प्रथम समयमें ही होते हैं ॥२१९॥ ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणामजोगठाणा सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति ।
लद्धियपज्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोद्धव्वा ।।२२०।।

परिणामयोगस्थानानि शरीरपर्याप्तेस्तु चरमपर्यंतं । लब्ध्यपर्याप्तिकानां चरमत्रिभागे बोद्धव्यानि ॥

परिणामयोगस्थानानि परिणामयोगस्थानंगळु तु मत्त शरीरपर्य्याप्तेः शरीरपर्य्याप्ति-प्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं स्वस्वस्थितिचरमसमयपर्य्यंतं बोद्धव्यानि अरियल्पडुवुवु ।

स्थिति । त्री । अप परि । उ०००ज १ । १ ० १८ । ३ ० ० ० परि । उ०००ज	स्थिति । चप परि । उ०००ज ० भा ० उ ० इं ० श २ १ परि । उ०००ज	स्थिति । च । अप परिणा । उ०००ज १।१। ० १८।३ ० ० ० परि । उ०००ज	स्थिति । असं । प भा परि । उ०००ज ० उ ० ० इं ० श २ १ परि । उ०००ज
उ १।२ एकांता ० १८।३ ० ० १ । एकांतानुवृद्धि ज	२ श २ १ एकांतानु उ ० १ एकांतानु ० ०	१।२ एकांतानु उ १८।३ ० ० ० १ एकांतानु ज	२ श २ १ एकांतानुवृ उ ० १ । एकांतानु ० ज
१ ज उपपा ० ऋ । उ | ०	१।ज।उपपा ० ऋ । उ | ०	१ । ज । उपपा ० ऋ । उ | ०	१।ज । उपपा ० ऋ । उ | ०

→ ←

स्थिति । असं । अप परि । उ०००ज १।१। ० १८।३ ० ० परि । उ०००ज	स्थिति । सं । प म परि । उ०००ज ० भा ० उ ० इं ० श २१ परि । उ०००ज	स्थिति । सं । अप परि । उ०००ज १।१। ० १८।३ ० ० परि । उ०००ज
एकांतानु उ १।२। ० १८।३ ० ० १ । एकांतानु ज	२ श २ १ एकांतानु उ ० १ एकांतानु ० ज	एकांतानु उ १।२। ० १८।३ ० ० १ । एकांतानुवृद्धि ज
१ । ज । उपपा ० ऋ उ | ०	१ । ज । उपपा ० ऋ उ | ०	१ । ज । उपपा ० ऋ । उ | ०

।।२१९।। अथ परिणामयोगस्याह—

परिणामयोगस्थानानि तु-पुनः[1] पूर्णशरीरपर्याप्तिप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यंतं ज्ञात-

परिणाम योगस्थान शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके प्रथम समयसे लेकर अपनी आयुके

१. ब पुनः शरीर° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लब्ध्यपर्य्याप्तकानां लब्ध्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे चरमत्रिभागे स्वस्थितियुच्छ्वासाष्टादशैकभागमक्कुमदर चरमत्रिभागप्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं परिणामयोगस्थानंगळु बोद्धव्यानि अरियल्पडुवुवु ।

सगपज्जत्तीपुण्णे उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं ।
सव्वत्थ होदि अवरं लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठं पि ॥२२१॥

स्वपर्य्याप्तौ पूर्णायामुपरि सर्व्वत्र योग उत्कृष्टः । सर्व्वत्र भवत्यवरो लब्ध्यपर्य्याप्तकस्योत्कृष्टोऽपि ॥

स्वपर्य्याप्तौ पूर्णायां सत्याम् स्वशरीरपर्य्याप्तिपरिपूर्णमागुत्तं विरलु तच्छरीरपर्य्याप्तिप्रथमसमयं मोदल्गोंडु उपरि मेले सर्व्वत्र सर्व्वस्थितिसमयंगळोळु उत्कृष्टयोगः उत्कृष्टयोगमुं सर्व्वत्र सर्व्वस्थितिसमयंगळोळु अवरो योगः जघन्ययोगमुं भवति परिणामयोगवोळक्कुं । लब्ध्यपर्य्याप्तकस्य लब्ध्यपर्य्याप्तकंगे स्वस्थितियुच्छ्वासाष्टादशैकभागचरमत्रिभागप्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं मेले सर्व्वस्थितिसमयंगळोळु उत्कृष्टः उत्कृष्टपरिणामयोगमुं अपि सर्व्वत्र जघन्यपरिणामयोगमुं भवति अक्कुमेकेंदोडे पर्य्याप्तजीवंगळ परिणामयोगस्थानंगळनितुं घोटमानयोगंगळप्पुदरिदं । हानिवृद्ध्यवस्थानरूपेण परिणम्यत इति परिणाम येंदितु निरुक्तिसिद्धमक्कुं ।

अनंतरमेकांतानुवृद्धियोगक्के सामान्यजघन्योत्कृष्टस्थानंगळं जीवसमासेगळं कटाक्षिसि पेळ्दपरु :—

व्यानि । लब्ध्यपर्याप्तकानां च स्वस्थितेरुच्छ्वासाष्टादशकभागस्य चरमत्रिभागप्रथमसमयादि कृत्वा चरमपर्यन्तं ज्ञातव्यानि ॥२२०॥

स्वस्वशरीरपर्याप्तौ पूर्णायां तत्प्रथमसमयात्प्रभृति उपरि सर्वस्थितिसमयेषु परिणामयोगस्य उत्कृष्टमपि सर्वस्थितिसमयेषु जघन्यमपि भवति । लब्ध्यपर्याप्तकस्वस्वस्थितेरुच्छ्वासाष्टादशैकभागस्य चरमत्रिभागप्रथमसमयमादि कृत्वा चरमसमयपर्यन्तं सर्वस्थितिविकल्पेषु उत्कृष्टपरिणामयोगोऽपि जघन्यपरिणामयोगोऽपि भवति । उभयजीवानां तानि योगस्थानानि सर्वाण्यपि घोटमानयोगा एव स्युः, हानिवृद्ध्यवस्थानरूपेण परिणमनात् ॥२२१॥ अथैकान्तानुवृद्धियोगस्याह—

अन्त समय पर्यन्त होते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके उच्छ्वासके अठारहवें भाग प्रमाण अपनी स्थितिके अन्तिम त्रिभागके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त होते हैं ॥२२०॥

अपनी-अपनी शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर उसके प्रथम समयसे लेकर ऊपर आयुके सब समयोंमें परिणाम योगस्थान होता है। तथा सब समयोंमें उत्कृष्ट भी होता है और जघन्य भी होता है। तथा लब्ध्यपर्याप्तककी अपनी स्थिति श्वासके अठारहवें भाग प्रमाण है। उसके अन्तिम त्रिभागके पहले समयसे लगाकर अन्तिम समय पर्यन्त सब स्थितिके समयोंमें उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान भी होता है और जघन्य परिणाम योगस्थान भी होता है। पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों ही प्रकारके जीवोंके वे सब परिणाम योगस्थान घोटमान योग ही होते हैं क्योंकि ये घटते भी हैं, बढ़ते भी हैं और जैसेके तैसे भी रहते हैं ॥२२१॥

आगे एकान्तानुवृद्धि योगस्थानको कहते हैं—

क–३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयंतवड्ढिठाणा उभयठाणाणमंतरे होंति ।
अवरवरट्ठाणाओ सगकालादिम्मि अंतम्मि ॥२२२॥

एकान्तवृद्धिस्थानान्युभयस्थानानामन्तरस्मिन्भवंति । अवरवरस्थानानि स्वकालादावंते ॥

एकान्तवृद्धिस्थानानि एकान्तानुवृद्धियोगस्थानंगळु पर्य्याप्तजीवंगळ रूपोनशरीरपर्य्याप्ति-कालपर्य्यन्तांतर्म्मुहूर्त्त-चरमसमय-पर्य्यंतमुपपादयोग-परिणामयोगंगळेंबुभय-नामयोगंगळंतराळदोळप्पुवु । अवरवरस्थानानि जघन्योत्कृष्टस्थानंगळु स्वकालादावंते तदेकांतवृद्धि योगकालदादियोळु जघन्ययोगमक्कुमन्तदोळु चरमसमयदोळुत्कृष्टयोगमक्कुमदु कारणमागि एकान्तेन नियमेन स्वकालप्रथमसमयाच्चरमसमयपर्य्यंतं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण तद्योग्याविभागप्रतिच्छेद-वृद्धिर्य्यस्मिन् स एकान्तवृद्धियोगः यें दितु निरुक्तिसिद्धमप्प योगमेकान्तवृद्धियोगमें बुदक्कु । मिन्तुक्तयोगविशेषंगळनितुं मुन्नं स्थापिसिद चतुर्द्दसजीवसमासरचनाविशेषदोळतिव्यक्तमप्पुदरिंदमदु भाविसल्पडुगुं ॥

अनंतरं योगस्थानदवयवंगळं पेळ्दपरु :—

अविभागपडिच्छेदो वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं ।
गुणहाणीवि य जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण ॥२२३॥

अविभागप्रतिच्छेदो वर्गः पुनर्व्वर्गणा च स्पर्द्धककं । गुणहानिरपि च जानीहि स्थानं प्रति भवेन्नियमेन ॥

समस्तयोगस्थानंगळु श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुववरोळु अविभागप्रतिच्छेदाः अविभाग-प्रतिच्छेदंगळें दुं वर्गाः वर्गमें दुं पुनः मत्ते वर्गणा च वर्गणयें दुं स्पर्द्धकं स्पर्द्धकमें दुं

एकांतानुवृद्धियोगस्थानानि पर्याप्तजीवानां रूपोनशरीरपर्याप्तिकालस्य अंतर्मुहूर्तचरमसमयपर्यन्तं उपपादपरिणामयोगयोः अंतराले भवति । तस्य जघन्यस्थानानि स्वकालस्य आदौ उत्कृष्टानि च अंते भवन्ति । तत एवैकांतेन नियमेन स्वकालप्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिसमयसंख्यातगुणितक्रमेण तद्योग्याविभागप्रतिच्छेद-वृद्धिर्यस्मिन् स एकांतानुवृद्धिरित्युच्यते । एवमुक्तयोगविशेषाः सर्वेऽपि पूर्वस्थापितचतुर्दशजीवसमासरचनाविशेषे-ऽतिव्यक्तं संभवंतीति संभावयितव्याः ॥२२२॥ अथ योगस्थानस्यावयवानाह —

समस्तयोगस्थानानि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राणि । तेषु अविभागप्रतिच्छेदः, वर्गः पुनः वर्गणा स्पर्धकं

एकान्तानुवृद्धि योगस्थान पर्याप्त जीवोंके एक समय कम शरीर पर्याप्ति काल अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समय पर्यन्त उपपाद और परिणाम योगस्थानोंके मध्यमें होता है। उसका जघन्य स्थान तो अपने कालके आदिमें और उत्कृष्ट अन्तमें होता है। इसीसे एकान्त अर्थात् नियमसे अपने कालके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय असंख्यात गुणे-असंख्यातगुणे अपने योग्य अविभाग प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि जिसमें हो उसे एकान्तानुवृद्धि कहते हैं। इस प्रकार कहे सब योगविशेष चौदह जीव समासोंमें होते हैं ॥२२२॥

आगे योगस्थानके अवयव कहते हैं—

समस्त योगस्थान जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उनमें अविभाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणहानिरपि च गुणहानियुमेंबुं स्थानं प्रति प्रतिस्थानदोळं भवति नियमेन अक्कुं नियमदिदमेंदिदं जानीहि नीनरियेंदु शिष्य संबोधिसल्पट्टनल्लि :—

पल्लासंखेज्जदिमा गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे ।
गुणहाणि फड्डयाओ असंखभागं तु सेढीए ॥२२४॥

पल्यासंख्यातैकभागा गुणहानिशलाका भवंति एकस्थाने । गुणहानिस्पर्द्धकान्यसंख्यभागस्तु श्रेण्याः ॥

एकस्थाने एकयोगस्थानदोळु । पल्यासंख्यातैकभागाः पल्यासंख्यातैकभागप्रमितंगळु गुणहानिशलाका भवन्ति गुणहानिशलाकेगळप्पुवु प ७७ नानागुणहानिशलाकेगळेंबुदत्थं । गुणहानिस्पर्द्धकानि एकगुणहानिस्पर्द्धकंगळु तु मत्ते श्रेण्याः जगच्छ्रेणिय असंख्यभागाः असंख्यातैकभागप्रमितंगळप्पुवु ७७

फड्ढयगे एक्केक्के वग्गणसंखा हु तत्तियालावा ।
एक्केक्कवग्गणाए असंखपदरा हु वग्गाओ ॥२२५॥

स्पर्द्धके एकैकस्मिन् वर्गणासंख्या खलु तावन्मात्रालापा । एकैकवर्ग्गणायामसंख्यप्रतराः खलु वर्ग्गाः ॥

एकैकस्मिन् स्पर्द्धके एकैकस्पर्द्धकदोळु वर्ग्गणासंख्या वर्ग्गणासंख्ये खलु स्फुटमागि तावन्मात्रालापा श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रालापमुळ्ळुदक्कुं ७ एकैकवर्ग्गणायाम् एकैकवर्ग्गणेयोळ् वर्ग्गाः वर्ग्गगळु असंख्यप्रतराः असंख्यातगुणितजगत्प्रतरप्रमितंगळप्पुवु । = ७

गुणहानिरपि च स्थानं प्रति भवतीति नियमेन जानीहि ॥२२३॥

एकस्मिन् स्थाने गुणहानिशलाकाः पल्यासंख्यातैकभागमात्र्यो भवन्ति प ७ ७ नानागुणहानिशलाका इत्यर्थः । एकैकगुणहानिस्पर्धकानि तु पुनः श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितानि ७ ७ ॥२२४॥

एकैकस्मिन् स्पर्धके वर्गणासंख्या खलु स्फुटं तावन्मात्रालापाः श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रालापा भवन्ति ७ एकैकस्या[1] वर्गणायां पुनः वर्गाः असंख्यातजगत्प्रतरप्रमिता भवन्ति = ७ ॥२२५॥

प्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और गुणहानि प्रत्येक योगस्थानमें होते हैं यह नियमसे जानना ॥२२३॥

एक योगस्थानमें गुणहानि शलाका पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। यह नाना गुणहानि शलाका जानना। तथा एक-एक गुणहानिमें स्पर्धक जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ॥२२४॥

एक-एक स्पर्धकमें वर्गणाओंकी संख्या भी उतनी ही अर्थात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है। और एक-एक वर्गणामें असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण वर्ग होते हैं ॥२२५॥

---

१. ब एकैक व ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक्केक्के पुण वग्गे असंखलोगा हवंति अविभागा ।
अविभागस्स पमाणं जहण्णउड्ढी पदेसाणं ॥२२६॥

एकैकस्मिन् पुनर्व्वर्ग्गे असंख्यलोका भवन्त्यविभागाः । अविभागस्य प्रमाणं जघन्यवृद्धिः प्रदेशानां ॥

पुनः मत्ते एकैकस्मिन्वर्ग्गे एकैकवर्ग्गदोळु असंख्यलोका भवन्त्यविभागाः असंख्यात-लोकंगळविभागंगळप्पुवु ≡a अविभागस्य प्रमाणं अविभागद प्रमाणमुं प्रदेशानां जगच्छ्रेणि-घनप्रमितजीवप्रदेशंगळ मध्यदोळु जघन्यवृद्धिः सर्व्वजघन्यवृद्धियेनितनितक्कुं । अविभा-गशक्त्यंशमक्कुमेंबुदत्थं । यितविभागप्रतिच्छेदादिगळु विलोमक्रमदिदं पेळल्पट्टुवदुकारणमागि अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्ग्गः, वर्ग्गसमूहो वर्ग्गणा, वर्ग्गणासमूहः स्पर्द्धकं स्पर्द्धकसमूहो गुणहानिः गुणहानिसमूहःस्थानमेंबु पेळद तेरनक्कुमेकयोगस्थानदोळु गुणहानिशलाकेगळु $\frac{प}{aa}$ एकगुणहानि-स्पर्द्धकंगळु aa एकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकेगळु a एकवर्ग्गणावर्ग्गंगळु =a एकवर्गावि-भागप्रतिच्छेदंगळु ≡a अविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं जीवप्रदेशंगंळोळ जघन्याविभागिशक्त्यंशमक्कुं ॥

अनंतरमेकयोगस्थानगतसर्व्वस्पर्द्धकादिगळ प्रमाणमं पेळ्दपरु :—

इगिठाणफड्ढयाओ वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी ।
सेढि असंखेज्जदिमा असंखलोगा हु अविभागा ॥२२७॥

एकस्थानस्पर्द्धकानि वर्ग्गणासंख्या प्रदेशगुणहानिः । श्रेण्यसंख्येयभागाः असंख्यलोकाः खल्वविभागाः ॥

एकस्थानस्पर्द्धकानि येकयोगस्थानगतसर्व्वस्पर्द्धकंगळुं वर्ग्गणासंख्या अहंगे एकयोगस्थान-गतवर्ग्गणासंख्येयुं प्रदेशगुणहानिः प्रदेशगुणहान्यायाममुं प्रत्येकं श्रेण्यसंख्येयभागाः सामान्यालापदिदं

पुनरेकैकस्मिन् वर्गे असंख्यातलोका अविभागा भवन्ति ≡a अविभागस्य प्रमाणं पुनः आत्मप्रदेशानां सर्वजघन्यवृद्धिः अविभागशक्त्यंशः इत्यर्थः । एवं विलोमगत्योक्तम् । तेन अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्गः । वर्ग-समूहो वर्गणा । वर्गणासमूहः स्पर्धकम् । स्पर्धकसमूहो गुणहानिः । गुणहानिसमूहः स्थानमिति ज्ञातव्यम् ॥२२६॥ अथैकयोगस्थानगतसर्वस्पर्धकादीनि प्रमाणयति—

एकयोगस्थानस्य सर्वस्पर्धकानि सर्ववर्गणासंख्या प्रदेशगुणहान्यायामश्च प्रत्येकं श्रेण्यसंख्येयभागः

एक-एक वर्गमें असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं । अविभागका प्रमाण प्रदेशोंकी जघन्य वृद्धिरूप जानना । परमार्थसे जिसका दूसरा भाग न हो सके ऐसे शक्तिके अंशको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं । गाथाओंमें उलटे रूपसे कहा है । अतः अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं । वर्गोंका समूह वर्गणा है । वर्गणाओंका समूह स्पर्धक है । स्पर्धकोंका समूह गुणहानि है और गुणहानियोंका समूह स्थान है, ऐसा जानना ॥२२६॥

आगे एक योगस्थानमें सब स्पर्धक आदिका प्रमाण कहते हैं—

एक योगस्थानमें सब स्पर्धक, सब वर्गणाओंकी संख्या और असंख्यात प्रदेशोंमें गुण-हानि आयामका प्रमाण ये सब सामान्यसे जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं । किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगच्छ्रेण्यसंख्येयभागंगळप्पुवु । वस्तुवृत्तियिदं हीनाधिक भावंगळप्पुववेंतेंदोडे प्र गु १ प स्प

ɘɘ इ गु प / ɘɘ बंद लब्धमेकस्थानगतसर्व्वस्पर्द्धकंगळ प्रमाणमक्कुं । ≡ɘɘ प / ɘɘ मत्तं । प्र स्प

१ । फ व ɘ इ स्प ɘɘ प / ɘɘ बंद लब्धमेकस्थानगतसर्व्ववर्ग्गणाप्रमाणमक्कुं ɘɘɘɘɘ प मत्तं । प्र

स्प १ । फ । व ɘ इ । स्प । ɘ ɘ बंद लब्धमेकगुणहानिगतवर्ग्गणाप्रमितमक्कुं ɘɘɘ । यिल्लि गुणकारंगळं नोडलु भागहारमधिकंगळो समंगळो मेण हीनंगळो यिंदितु विकल्पत्रयमं माडि श्रेण्य संख्येयभागकथनान्यथानुपपत्तियल्लिंदं भागहारमं नोडलु गुणकारंगळसंख्यातगुणहीनंगळेंदितो गाथासूत्रदिदमे परियल्पडुवुवु । असंख्यलोकाः खल्वविभागाः एकस्थानगतसमस्ताविभागप्रतिच्छेदंगळुमसंख्यातलोकप्रमितंगळेयप्पुवनंतंगळल्तु । कर्म्मपरमाणुगताविभागप्रतिच्छेदंगळुमनंतसंख्यासर्वनिकृष्टज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगळुवच्छिन्नंगळप्पुवी योगस्थानविषयदोळु कर्म्मादानजीवसर्व्वप्रदेशशक्तियसंख्यातलोकमात्रमेयक्कुमेंबुदाचार्य्यन हृद्गतार्थमक्कुं ॥

सामान्यालापेन भवति । वस्तुवृत्त्या तु हीनाधिक्यं भवति । तद्यथा—

प्र गु १ फ स्प ɘ ɘ इ गु प / ɘ ɘ लब्धमेकस्थानगतस्य स्पर्धकानि भवन्ति ___ प / ɘ ɘ ɘ ɘ पुनः प्र

स्प फ १ व ɘ इ स्प ___ प / ɘ ɘ ɘ ɘ लब्धं एकस्थानगतसर्ववर्गणाप्रमाण भवति ___ ___ प / ɘ ɘ ɘ ɘ ɘ पुनः प्र

स्प १ फ व ɘ इ स्प ɘ ɘ लब्धं एकगुणहानिगतवर्गणा भवन्ति ɘ ɘ ɘ अत्र गुणकारो भागहाराद्धीनोऽधिकः समो वा असंख्यातगुणहीनो ज्ञातव्यः, कुतः ? श्रेण्यसंख्येयभागस्य अन्यथानुपपत्तेः । एकस्थानगतसमस्ताविभागप्रतिच्छेदाः खलु असंख्यातलोकप्रमिता एव, न कर्मपरमाणुवत् सर्वनिकृष्टज्ञानवद्वा अनंता

वास्तवमें परस्परमें हीन अधिक हैं। एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण है उसको एक स्थानमें जो गुणहानिका प्रमाण है उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने एक योगस्थानमें स्पर्धक होते हैं। तथा जो एक स्पर्धकमें वर्गणाओंका प्रमाण कहा है उसको, एक योगस्थानमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण कहा है उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना एक योगस्थानमें वर्गणाओंका प्रमाण जानना। तथा एक स्पर्धकमें जो वर्गणाओंका प्रमाण जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र कहा है उसको, एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण कहा है उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना एक गुणहानिमें वर्गणाओंका प्रमाण जानना। यहाँ गुणकारका प्रमाण जगतश्रेणिके भागहारके प्रमाणसे असंख्यातगुणा हीन जानना। ऐसा न होनेसे श्रेणिका असंख्यातवाँ भाग सिद्ध नहीं हो सकता। इसीका नाम गुणहानि आयाम है। सामान्यसे ये सब जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं क्योंकि असंख्यातके भेद बहुत हैं।

---

१. ब वपुवृद्धत्वा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्व्वजीवप्रदेशंगळु । ≡नाना । प/əə अन्योन्याभ्यस्त प/ə एकगुणहानिस्पर्द्धकंगळु । ə ə ।

एकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकेगळु ə एकगुणहानिसर्व्ववर्ग्गणेगळु ə ə ə एकस्थानसर्व्ववर्ग्गणेगळु əə । ə प/ə ə ई राशिगळु नानागुणहानिशलाकेगळादियागुत्तरोत्तरराशिगळुमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु—

अवि	वर्ग	वर्गणा	स्पर्द्ध	गुण प	स्थान
≡ə	= ə	ə	əə	əə	१
S	२५६	४	९	५	१

भवन्ति । एकजीवगतसर्वप्रदेशाः ≡ नानागु प/ə ə अन्योन्याभ्यस्त प/ə एकगुणहानिस्पर्धकानि ə ə एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाः ə एकगुणहानिगतसर्ववर्गणा ə ə । ə एकस्थानगतसर्ववर्गणा ə ə । ə ə ə प एते नानागुणहानिशलाकाद्याः उत्तरोत्तरे असंख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ॥२२७॥

एक योगस्थानमें समस्त अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं, कर्म-परमाणुओं अथवा सबसे जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणकी तरह अनन्त नहीं हैं। जीवके प्रदेश लोक प्रमाण हैं। एक स्थानमें नाना गुणहानिका प्रमाण पल्यमें दो बार असंख्यातका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना है। नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अन्योन्याभ्यस्त राशि है। सो पल्यको एक बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी है। एक गुणहानिमें स्पर्धक जगतश्रेणिमें दो बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने हैं। एक स्पर्धकमें वर्गणा जगतश्रेणिको एक बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी हैं। एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण है उसको, एक स्पर्धकमें जो वर्गणाओंका प्रमाण है उससे गुणा करनेपर एक गुणहानिमें सब वर्गणाओंका प्रमाण होता है। उसको एक योगस्थानमें जो नाना गुणहानिका प्रमाण उससे गुणा करणेपर एक योगस्थानमें सब वर्गणाओंका प्रमाण होता है। ये सब नाना गुणहानिसे लेकर क्रमसे असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे जानना ॥२२७॥

---

१. ब सर्वजीवप्रदेशाः ।

२.

अवि	वर्ग	वर्गणा	स्पर्धक	गुण प	स्थान
≡ə	= ə	ə	ə ə	ə ə	१
व	२५६	४	९	५	१

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सव्वे जीवपदेसे दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा ।
उवरिं उत्तरहीणं गुणहाणिं पडि तदद्धकमं ॥२२८॥

सर्व्वस्मिन् जीवप्रदेशे द्व्यर्द्ध गुणहानिभाजिते प्रथमा । उपर्य्युत्तरहीनं गुणहानिं प्रति तदर्द्धक्रमः ॥

सर्व्वस्मिन् जीवप्रदेशे सर्व्वलोकप्रमितजीवप्रदेशराशियं स्थापिसि—

द्रव्य	स्थिति	गुण	नान	दो गु	अन्योन्य
	—	—	— प	२	प
≡	a	aa	a a	aa	a
३१००	४०	८	५	१६	३२≡

द्व्यर्द्धगुणहानिभाजितेसाधिकद्व्यर्द्धगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु प्रथमाप्रथमवर्गणेयक्कुं ≡। (aa२) मपर्वात्ततमिदु = aa२ (३) उपर्य्युत्तरहीनं यथा भवति तथा कृते मेले चयहीनमें तक्कुमंते माडुत्तं विरलु गुणहानिं प्रति गुणहानि-गुणहानि दव्वदे तदर्द्धार्द्धक्रममक्कुमेंते दोडे मोदलोळंकसंदृष्टितोरल्पडुगुं । सर्व्वद्रव्यं । ३१०० । ई राशियं रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं येंदु रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिदं भागिसिदोडेकभागं चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुं $\frac{३१००}{३१}$ होदि तदो दुगुणकमं आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति अल्लिदं केळगे प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं द्विगुणद्विगुण क्रम द्रव्यंगळप्पुवु । १००।२००।४००।८००।१६००। इंतिंगे गुणहानिं प्रति अर्द्धार्द्धक्रमदिदं गुणहानि-

सर्वस्मिन् लोकमात्रैकजीवप्रदेशे द्व्यर्धगुणहान्या भक्ते सति प्रथमवर्गणा भवति ≡ ($\overline{aa}$ २ / ३) अपवर्तिते एवं = a a २ (३) उपर्युत्तरहीना यथा भवति तथा गत्वा गुणहानिं प्रति अर्धार्धक्रमा भवति । सा च अंकसंदृष्टौ यथा—

सर्वद्रव्ये ३१०० रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते चरमगुणहानिद्रव्यं भवति $\frac{३१००}{३१}$ ततोऽधोधः प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रमं भवति १०० । २०० । ४०० । ८०० । १६०० । एवं प्रतिगुणहानि-

एक जीवके प्रदेश लोक प्रमाण है। उनमें डेढ़ गुणहानिसे भाग देनेपर प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा होती है। उसमें एक-एक विशेष घटानेपर एक-एक वर्गणा होती है। गुणहानि गुणहानि प्रति क्रमसे आधा प्रमाण जानना। उसकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— सर्वद्रव्य ३१०० को एक घाट अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर $\frac{३१००}{३१}$ अन्तिम गुणहानिका द्रव्य आता है। उससे नीचे-नीचे प्रथम गुणहानिपर्यन्त दूना-दूना होता

१

द्रव्य	स्थिति	गुण	नाना	दोगु	अन्योन्या
	—	—	प	— २	प
≡	a	aa	a a	a a	a
३१००	४०	८	५	१६	३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यंगळप्पुवु। सव्वे जीवपदेसे सर्व्वजीवप्रदेशंगळगे मूरु साविरद नूरु संदृष्टियक्कु। ३१००। मिदं द्व्यर्द्धगुणहानिभाजिते साधिकद्व्यर्द्धगुणहानियिंदं भागिसुत्तं विरलु प्रथमा प्रथमवर्ग्गणेयक्कु-। मितल्लियधिकप्रमाणमेनितें दोडे प्र २५६। फ। श १। इ ३१००। एनितु शलाकेगळक्कुमें दोडे लब्धं साधिकद्व्यर्द्धगुणहानिप्रमाणमक्कुं $\frac{१२।७}{६४}$ मिदरिंदं $\frac{७७५}{६४}$ द्रव्यमं भागिसुत्तं विरलु— $\frac{३१००।६४}{७७५}$ प्रथमा प्रथमगुणहानि प्रथमस्पर्द्धक प्रथमवर्ग्गणाप्रमाणमक्कुं। २५६। उपर्य्युत्तरहीनं मेले विशेषहीनमागुत्तं प्रथमगुणहानिचरमस्पर्द्धकचरमवर्ग्गणेपर्य्यंतं पोगि चरम वर्ग्गणेयोळु रूपोनगच्छमात्रविशेषहीनंगळप्पुवु १४४ इल्लि विशेषप्रमाणमेनितें दोडे प्रथमवर्ग्गणेयं दो

१६०
१७६
१९२
२०८
२२४
२४०
२५६

द्रव्याणि अर्धार्धक्रमेण सिद्धानि। पुनः सर्वजीवप्रदेशे शताधिकत्रिसहस्रे ३१०० साधिकद्व्यर्धगुणहान्या भाजिते प्रथमवर्गणा भवति। यद्येतावतः प्र २५६ एका शलाका फ श १ तदैतावतः इ ३१०० किमिति? लब्धं साधिकद्व्यर्धगुणहानिप्रमाणं $\frac{१२।७}{६४}$ अनेन $\frac{७७५}{६४}$ द्रव्ये भक्ते $\frac{३१००।६४}{७७५}$ प्रथमगुणहानिस्पर्धकप्रथमवर्गणा-प्रमाणं भवति २५६। उपर्युत्तरहीनं भूत्वा प्रथमगुणहानिचरमस्पर्धकचरमवर्गणायां रूपोनगच्छमात्रविशेषैर्हीयते—१४४

१६०
१७६
१९२
२०८
२२४
२४०
२५६

है—१००।२००।४००।८००।१६००। इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य क्रमसे आधा-आधा सिद्ध होता है। सब जीवके प्रदेश तीन हजार एक सौमें ३१०० साधिक डेढ़ गुणहानिसे भाग देनेपर प्रथम वर्गणा होती है। यदि २५६ की एक गुणहानि होती है तो ३१०० की कितनी होगी। ऐसा त्रैराशिक करनेपर साधिक गुणहानिका प्रमाण १२ $\frac{७}{६४}$ होता है। इसमें $\frac{७७५}{६४}$ द्रव्यमें भाग देनेपर $\frac{३१०० \times ६४}{७७५}$ प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रमाण २५६ होता है। ऊपर उत्तरोत्तर हीन होकर प्रथम गुणहानिके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणामें एक हीन गच्छमात्र चय घटते हैं। यथा २५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणहानियिदं भागिसिदोडे २५६ / १६ क भागं विशेषप्रमाणमक्कु १६ मिन्तेल्ला गुणहानिगळ प्रथमवर्ग्गणेयं दोगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु तंतम्म गुणहानियोळु विशेषप्रमाणमक्कु १ / २ / ४ / ८ / १६ मवु कारणदिदमी दोगुणहानिगे निषेकहारमें ब पेसरक्कुं। गुणहाणि पडि तदर्द्धकमं गुणहानिगुणहानि- दप्पदे द्रव्यंगळुं वर्ग्गणेगळुं विशेषंगळुमर्द्धार्द्ध क्रमंगळप्पुवें दितु निश्चयि-

७२	३६	१८	९
८०	४०	२०	१०
८८	४४	२२	११
९६	४८	२४	१२
१०४	५२	२६	१३
११२	५६	२८	१४
१२०	६०	३०	१५
१२८	६४	३२	१६

सल्पडुवुवु यितु सामान्यदिदमंकसंदृष्टियिदं गमनिकेयं तोरि विशेषनिर्णयमनर्त्थसंदृष्टियिदं पेळ्दपरु :—

अत्र विशेषप्रमाणं तु प्रथमवर्गणायां दोगुणहानिभक्तायां २५६ / १६ भवति १६। तया सर्वगुणहानीनामपि ज्ञातव्यं १ / २ / ४ / ८ / १६ तत एव दोगुणहानिनिषेकहार इत्युच्यते। एवं गुणहानिं गुणहानिं प्रति द्रव्याणि वर्गणाः विशेषाश्च अर्धार्धक्रमा भवन्ति।

७२	३६	१८	९
८०	४०	२०	१०
८८	४४	२२	११
९६	४८	२४	१२
१०४	५२	२६	१३
११२	५६	२८	१४
१२०	६०	३०	१५
१२८	६४	३२	१६

॥२२८॥ एवं सामान्येन अंकसंदृष्ट्या गमनिकां प्रदर्श्य विशेषनिर्णयं अर्थसंदृष्ट्या आह—

प्रथम वर्गणामें दो गुणहानिसे भाग देनेपर २५६/१६ चयका प्रमाण १६ आता है। इसी तरह सब गुणहानियोंका भी चय जानना १६।८।४।२।१। इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य, वर्गणा और चय आधा-आधा होता है ॥२२८॥

इस प्रकार अंकसंदृष्टिके द्वारा दिखाकर अर्थसंदृष्टिके द्वारा कहते हैं—

क—३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फड्ढयसंखाहि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी ।
बिदियादिवग्गणाणं वग्गा अविभागअहियकमा ॥२२९॥

स्पर्द्धकसंख्याभिर्गुणो जघन्यवर्गस्तु तत्र तत्रादौ । द्वितीयादिवर्गणानां वर्गा अविभागाधिकक्रमाः ॥

स्पर्द्धकसंख्याभिर्गुणो जघन्यवर्गः तत्र तत्रादौ । प्रथमगुणहानि प्रथमस्पर्द्धकं मोदल्गोंडु चरमगुणहानिचरमस्पर्द्धकपर्यंतमाद सर्व्वगुणहानि सर्व्वप्रथमस्पर्द्धकंगळ जघन्यवर्गः कोर्त्थः प्रथमवर्गणेय वर्गं तत्र तत्रादौ अल्लल्लिय आदियोळु स्पर्द्धकसंख्याभिर्गुणः स्पर्द्धकसंख्येगळिदं गुणिसल्पट्टुदक्कुं । तु मत्ते द्वितीयादिवर्गणानां वर्गाः द्वितीयादिवर्गणेगळ वर्गंगळु अविभागाधिकक्रमाः अविभागाधिकक्रमंगळप्पुवु । इल्लिसर्वजघन्ययोगस्थानसर्व्वयोगाविभागप्रतिच्छेदमेलापनविधानं पेळल्पडुगुमल्लि प्रथमदोळु अन्नेवरं प्रथमगुणहानिस्पर्द्धकंगळ धनसंयोजनक्रमं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे जघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणा २५६ प्रदेशसमूहमं । वि १६ जघन्यवर्गदिदं गुणिसि । व वि १६ । मत्ते एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळिदं गुणिसुत्तं विरलु स्थूलरूपदिदं जघन्यस्पर्द्धकं वक्कुं । व वि १६।४। मत्तमा जघन्यस्पर्द्धकमादियुमुत्तरमुमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकागच्छसंकलनमं तरुत्तं विरलु ऋण सहितमप्प प्रथमगुणहानिद्रव्यमिनितक्कु । व वि १६ । ४ । ९/२ । ९/१ मिल्लि ऋणप्रमाणं तरल्पडुगुं । जघन्यवर्गगुणैकविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलने प्रथम-

---

प्रथमगुणहानिमादिं कृत्वा चरमगुणहानिपर्यन्तं सर्वस्पर्धकेषु तत्र तत्र प्रथमवर्गणावर्गः स्पर्धकसंख्याभिर्गुणितो भवति । तु—पुनः द्वितीयादिवर्गणानां वर्गाः अविभागाधिकक्रमा भवन्ति । अत्र सर्वजघन्ययोगस्थानस्य सर्वयोगाविभागप्रतिच्छेदमेलापनविधानमुच्यते—

तत्र तावत् प्रथमगुणहानिस्पर्धकानां धनसंयोजनक्रमोऽयं जघन्यस्पर्धकादिवर्गणा २५६ प्रदेशसमूहेऽस्मिन् वि १६ जघन्यवर्गेण गुणयित्वा व वि १६ एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिर्गुणिते स्थूलरूपेण जघन्यस्पर्धकं भवति व वि १६ । ४ । इदमेवाद्युत्तरं कृत्वा एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छं कृत्वा संकलिते सति ऋणसहितप्रथमगुणहानिद्रव्यं भवति व वि १६ ४ ९/२ ९/१ अत्रत्यं ऋणमानीयते—

प्रथम गुणहानिसे लेकर अन्तिम गुणहानि पर्यन्त सब स्पर्धकोंमें प्रथम वर्गणाके वर्ग स्पर्धकोंकी संख्यासे गुणा करनेपर होते हैं। और द्वितीयादि वर्गणाओंके वर्ग अविभागप्रतिच्छेद अधिक-अधिक लिये होते हैं।

[इससे आगे टीकामें सबसे जघन्य योगस्थानके सब योगोंके अविभागप्रतिच्छेद मिलानेका कथन बहुत विस्तारसे किया है। पं. टोडरमलजी साहबने भी उसे छोड़ दिया है। अतः हम भी उसे छोड़कर उनके अनुसार ही उक्त गाथाओंका आशय स्पष्ट करते हैं।]

1. ब °योग्यवि° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्धकदोळु ऋणमक्कुं। तत्प्रमाणमिदु व वि ३ । ४ इल्लि नवीनमुंटदावुदेंदोडे रूपोनैकस्पर्द्धकव-
२ । १

र्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्र-

३ वि ३ २ वि २ १ वि १ ०	१ वि ३ १ वि २ १ वि १ ०	२ वि ३ १ वि २ ० ०
अधिक ऋण न्यासः	वि ३ । ४ २ १	वि २।२।३।४ ३ २ १

विशेषाधिकंविदमुं मेकविशेषाद्युत्तरद्विरूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलन-
मिदु वि २।२।३।४ ऋणस्य धनं धनराशेः ऋणं भवति यें विदमूनीतमप्पादिवर्गणामात्रप्रदेशा-
३।२।१
द्युत्तररूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाका गच्छ ३ वि १६ संकलनमात्रंगळु वि १६ । ३ । ४—
२ वि १६ २ । १
१ वि १६
०००
एकाद्येकोत्तरकमविनिर्दविभागप्रतिच्छेदंगळु अधिकंगळुंटवक्के जघन्यवर्गद असंख्यातेकभागमात्र-
त्वदिंदमविवक्षेयक्कुमदु कारणदिंदमे द्वितीयादिस्पर्द्धकंगळोळमवक्कविवक्षेयक्कुमीग द्वितीयस्प-
र्द्धकऋणं तरल्पडुगुं। जघन्यवर्गगुणविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छ संकलनमं—

जघन्यवर्गगुणैकविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं प्रथमस्पर्धकऋणं भवति व वि
३ । ४ अत्र नवीनमस्ति रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रं वि ३ । ४ विशेषाधिकम्।
२ १ २ १

३ वि ३ २ वि २ १ वि १ ०	१ वि ३ १ वि २ १ वि १ ०	२ वि ३ १ वि २ ० ०
अधिकधनस्य ऋणन्यासः	वि ३ । ४ २ १	वि २ २ ३ ४ ३ २ १

एकविशेषाद्युत्तरद्विरूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमिदं–वि २ । २ । ३ । ४
३ २ १
धनस्य ऋणं धनराशेः ऋणमिति तद्राश्यूनितो[1] द्विवर्गणाप्रदेशमात्रा[2] द्व्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छ
३ वि १६ संकलनधनमात्राः वि १६ । ३ । ४ एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्थिताविभागप्रतिच्छेदा अधिकाः संति।
२ वि १६ २ १
१ वि १६
०
ते जघन्यवर्गस्यासंख्यातैकभागत्वान्न विवक्षिताः। तथैव द्वितीयादिस्पर्धकेष्वपि ज्ञातव्यम्। इदानीं द्वितीय-
स्पर्धकऋणमानीयते—

---

१. ब °तादिव°। २. ब °त्र्याद्युत्त°।

३ ३	३	३
व २ वि ४	व । २ वि ३	व । २ । वि ४
२ २	२	२
व वि ४	व वि २	व । २ । वि । ४
—		—
व २ । वि ४	व २ वि १	व २ । वि ४
द्वितीय स्पद्‍र्धक	ऋण साधिक	व २ वि. ४
ऋण न्यासः	ऋण न्यासः	पृथक्ताधिक ऋण न्यास

तंदु द्विगुणिसुत्तं विरलिनितक्कुं व । वि । ३ । ४ । २ / २ । १ मत्ते जघन्यवर्गमात्रविशेषमनेक-

स्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणिसि रूपोनस्पद्‍र्धकसंख्या २ गच्छसंकलनेय १।२ / २।१ द्विगुण-

दिदमुं ।१।२। गुणिसुत्तं विरलु इनितक्कुं । व । वि । ४ । ४ । १ । २ । मी एरडु राशिगळु द्वितीय-स्पर्द्धकऋणमक्कुं । मत्तं जघन्यवर्गमात्रविशेषंगळ—

३ ३	३	३
व । ३ । वि । ४ । २	व । ३ । वि । ३	व ३ । वि ४ । २
२ २	२	२
व । ३ । वि । ४ । २	व । ३ । वि २	व । ३ । वि । ४ । २
१ १	१	१
व । ३ । वि । ४ । २	व । ३ । वि । १	व । ३ । वि । ४ । २
१		
व । ३ । वि । ४ । २	०	व । ३ । वि । ४ । २
तृतीय स्पद्‍र्धक सर्व ऋण न्यासः	ऋणस्याधिक न्यासः	पृथक्ताधिक ऋण न्यास

५ जघन्यवर्गगुणितविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं—

३ ३	३	३
व २ वि ४	व २ वि ३	व २ वि ४ ।
२ २	२	२
व २ वि ४	व २ वि २	व २ वि ४ ।
१ १	१	१
व २ वि ४	व २ वि १	व २ वि ४ ।
व २ वि ४	०	व २ वि ४ ।

आनीय द्विगुणितं व वि ३ । ४ । २ / २ १ पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण रूपोन-

स्पर्धकसंख्या २ गच्छसंकलनेन १ । २ / २ । १ द्विगुणेन च १ । २ । गुणितः व वि ४ । ४ । १ । २ एतद्राशिद्वयं

द्वितीयस्पर्धकऋणम् । पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषाणां—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छ संकलनमं त्रिगुणिसुत्तं विरलिनितक्कं । व । वि । ३ । ४ । ३
२ । १

मत्तं जघन्यवर्गमात्रविशेषंगळमेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणिसि रूपोनगच्छसंकलन
३ । ३ द्विगुणदिदं २ । ३ । २ गुणिसुत्तं विरलिनितक्कु । व । वि । ४ । ४ । ३ । २ । मी
२ । १ २ । १

येरडुं राशिगळु तृतीयस्पर्द्धकक्कृणमक्कुमिन्तु प्रथम—

३ ३	३ ३	३ ३
व ३ वि १६—४।२	व ६ वि १६—४।५	व ९ वि १६—४।८
२ २	२ २	२ २
व ३ वि १६—४।२	व ६ वि १६—४।५	व ९ वि १६—४।८
१ १	१ १	१ १
व ३ वि १६—४।२	व ६ वि १६—४।५	व ९ वि १६—४।८
१		
व ३ वि १६—४।२	व ६ वि १६—४।५	व ९ वि १६—४।८
३	३ ३	३ ३
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४।४	व ८ वि १६—४।७
२	२ २	२ २
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४।४	व ८ वि १६—४।७
१	१ १	१ १
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४।४	व ८ वि १६—४।७
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४।४	व ८ वि १६—४।७
३	३ ३	३ ३
व १ वि १६—३	व ४ वि १६—४।३	व ७ वि १६—४।६
२	२ २	२
व १ वि १६—२	व ४ २ १६—४।३	व ७ वि १६—४।६
१	१ १	१ १
व १ वि १६—१	व ४ वि १६—४।३	व ७ वि १६—४।६
व १ वि १६—	व ४ वि १६—४।३	व ७ वि १६—४।६

३ ३	३	३
व ३ वि ४ २	व ३ वि ३	व ३ वि ४ । २
२ २	२	२
व ३ वि ४ २	व ३ वि २	व ३ वि ४ । २
१ १	१	१
व ३ वि ४ २	व ३ वि १	व ३ वि ४ । २
व ३ वि ४ २	०	व ३ वि ४ । २

रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं त्रिगुणितं व वि ३ । ४ । ३ पुनर्जघन्यवर्गमात्रविशेषः— ५
२ । १

एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण रूपोनगच्छसंकलनेन ३ ३ द्विगुणेन च २ । ३ । २ गुणितः व वि ४ । ४ । ३।२
२ १ २ । १

१. ब गुणितः रूपोनैकस्पर्धक एतौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणहानियोळु स्पद्‌र्धकं प्रति रूपोनैकस्पद्‌र्धकवर्ग्गणशलाकासंकलनगुणितजघन्यवर्ग्गमात्रविशेषंगळु गुणकारंगळु गच्छमात्रंगळु प्रथमऋणपंक्तियोळप्पुवु—

व ।	त्रि ।	३ ।	४ ।	९
	२			
व	वि ।	३ ।	४ ।	८
	२			
व	वि ।	३ ।	४ ।	७
	२			
व	वि ।	३ ।	४ ।	६
व	वि ।	३ ।	४ ।	५
	२			
व	वि ।	३ ।	४ ।	४
	२			
व	वि ।	३ ।	४ ।	३
	२			
व	वि ।	३ ।	४ ।	२
व	वि ।	३ ।	४ ।	१

प्रथम पंक्ति ऋण ॥

स्पद्‌र्धकवर्ग्गणशलाकावर्ग्गगुणितजघन्यवर्ग्गमात्रविशेषंगळ रूपोनगच्छद्विगुणसंकलनमात्रगुणकारंगळु द्वितीयऋणपंक्तियोळप्पुवु—

व ।	वि ।	४ ।	४ ।	२ ।	३६
व ।	वि ।	४ ।	४ ।	२ ।	२८
व ।	वि ।	४ ।	४ ।	२ ।	२१
व ।	वि ।	४ ।	४ ।	२ ।	१५
व ।	वि ।	४ ।	४ ।	२ ।	१०
व ।	वि ।	४ ।	४ ।	२ ।	६
व ।	वि ।	४ ।	४ ।	२ ।	३
व ।	वि ।	४ ।	४ ।	२ ।	१ ≝

०

द्वितीयपंक्तिऋण

रूपोनगुणहानिस्पद्‌र्धकशलाकेगळ द्विगुणद्विकवारसंकलनदिदं स्पद्‌र्धकवर्ग्गणा शलाकावर्ग्गगुणितजघन्यवर्ग्गमात्रविशेषंगळं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्ति सर्व्वऋण समासमेतावन्मात्रमक्कुं ।

०

व वि । ४ । ४ । २ । ९ । ९ । ९ । मत्तं गुणहानिस्पद्‌र्धकशलाकासंकलनदिदं रूपोनस्पद्‌र्धकवर्ग्गणा
३ । २ । १

शलाकासंकलनगुणितजघन्यवर्ग्गमात्रविशेषंगळं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिऋणसमासमिनितक्कुं ।

एतौ द्वौ राशी तृतीयस्पर्धकऋणम् । एवं प्रथमगुणहानौ प्रतिस्पर्धकं रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गुणकारा गच्छमात्राः प्रथमपंक्तौ गच्छन्ति । द्वितीयपंक्तौ च स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुणैकवारसंकलनमात्रा गच्छन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व । वि ३/२ । ४ । ९ । ९/२ ई राशियं मेळापिसल्वेडि द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमास चरमगुणकारदोळेकरूप चतुर्थभागमं प्रक्षेपिसुत्तं विरलुभयपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमेतावन्मात्रमक्कुं । व वि ४ ४ । ९ । ९ । ९/३ ई राशियं मुन्नं तंद प्रथम गुणहानिद्रव्यदोळु व वि । १६ । ४ । ९/२ । ९/१ कळेदोडे प्रथमगुणहानि सर्व्वयोगाविभागप्रतिच्छेदंगळु यथास्वरूपदिदं बप्पुवु । तत्प्रमाणमिदु व वि ४४ । ९ ९ ९ । ४/६ यिल्लि इदुवे आदिधनमक्कुमुत्तरधनमिल्ल । मत्तमीगळु द्वितीयगुणहानिद्रव्यं पेळल्पडुगुं । प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणा व २ १६/२ इदं एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळिदमुं रूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिदं गुणिसिदोडे द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकमेतावन्मात्रमक्कुं ।

व वि ३/२ ४ ९	व वि ४ ४ २ ३६
व वि ३/२ ४ ८	व वि ४ ४ २ २८
व वि ३/२ ४ ७	व वि ४ ४ २ २१
व वि ३/२ ४ ६	व वि ४.४ २ १५
व वि ३/२ ४ ५	व वि ४ ४ २ १०
व वि ३/२ ४ ४	व वि ४ ४ २ ६
व वि ३/२ ४ ३	व वि ४ ४ २ ३
व वि ३/२ ४ २	व वि ४ ४ २ १
व वि ३ ४ १	
प्रथमपंक्ति २ ऋणं ।	द्वितीयपंक्तिऋणं ।

रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकानां द्विगुणद्विकवारसंकलनेन स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषेषु गुणितेषु द्वितीयपंक्तिसर्व—ऋणसमासोऽयं व वि ४ । ४ २ ९/३ ९/२ ९/१ पुनः गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलेन रूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनेन च गुणितजघन्यमात्रवर्गविशेषः प्रथमपंक्तिऋणसमासोऽयं व वि ३/२ ४/१ ९/२ ९/१ अस्य मेळनं कर्तुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमासचरमगुणकारे एकरूपचतुर्थभागे प्रक्षिप्ते उभय-

१-२. ब ऋणमिदं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व वि । १६ । ४ । ९ मेतावन्मात्रमं सर्व्वत्र कळदु पृथक्स्थापिसि—

पंक्तिसर्वऋणसंयोगो भवति व वि ४ ४ ९ ९ ९/३ । अस्मिन् प्रागानीतप्रथमगुणहानिद्रव्ये व वि १६ ४ ९/२ ९/१

अपनीते प्रथमगुणहानि—

३ ३	३ ३	३ ३
व ३ वि १६—४ २	व ६ वि १६—४ ५	व ९ वि १६—४ ८
२ २	२ २	२ २
व ३ वि १६—४ २	व ६ वि १६—४ ५	व ९ वि १६—४ ८
१ १	१ १	१ ८
व ३ वि १६—४ २	व ६ वि १६—४ ५	व ९ वि १६—४ ८
व ३ वि १६—४ २	व ६ वि १६—४ ५	व ९ वि १६—४ ८
३ ३	३ ३	३ ३
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४ ४	व ८ वि १६—४ ७
२ २	२ २	२ २
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४ ४	व ८ वि १६—४ ७
१ १	१ १	१ १
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४ ४	व ८ वि १६—४ ७
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४ ४	व ८ वि १६—४ ७
३	३ ३	३ ३
व १ वि १६—३	व ४ वि १६—४ ३	व ७ वि १६—४ ६
२	२ २	२ २
व १ वि १६—२	व ४ वि १६—४ ३	व ७ वि १६—४ ६
१	१ १	१ १
व १ वि १६—१	व ४ वि १६—४ ३	व ७ वि १६—४ ६
व १ वि १६	व ४ वि १६—४ ३	व ७ वि १६—४ ६

प्रथमगुणहानिरचना ।

सर्वयोगाविभागप्रतिच्छेदा यथास्वरूपेण आयांति । व वि ४ ४ ९ ९ ९ ६ इदमादिधनम् । उत्तरधनं

५ नास्ति । इदानीं द्वितीयगुणहानिद्रव्यमुच्यते—

प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणार्थे एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः रूपाधिकगुणहानिसार्द्धकेश्च गुणिते द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकं स्यात् व वि १६ ४ ९/२ एतावन्मात्रं सर्वत्रापनीय पृथक् संस्थाप्य—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । ८ २
व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । ७ २
व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । ६ २
व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । ५ २
व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । ४ २
व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । ३ २
व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । २ २
व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । १ २
व वि १६ । ४ । ९ २	व वि १६ । ४ । ० २
मूल धनं ॥	संकलन धनं ॥

यल्लि प्रथमराशियनु गुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिवं गुणिसुत्तं विरलु सर्व्वसमासमेतावन्मात्रमक्कुं । व । वि । १६ । ४ । ९ । ९ ॥ यिवक्के मूलधनमें ब संज्ञेयक्कुं । मत्तं प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्द्धकाद्युत्तरक्रमदिवं द्वितीयादिस्पर्द्धकंगळोळिर्दु शेषं रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनदिदं गुणिसुत्तं विरलेतावन्मात्रमक्कुं । व वि । १६ । ४ । ९ । ९ । यिवक्के संकलितधनमें ब संज्ञेयक्कुमत्रतनऋणमं । व वि । १६ । ४ । १ । ९ । मूलधनदधिकरूपदोळु कळेवु शेषमुं । व वि । १६ । ४ । १ । ९ । मूलधनदोळे प्रक्षेपिसल्पडुगुमी येरडुं राशिगळु द्वितीयगुणहानियोळु स्थूलधनमक्कुमिल्लि ऋणं तरल्पडुगुं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ २ ३ व। ९। वि १६-४ २	३ ४ ३ व। ९। वि १६-४।३ २	३ ६ ३ व। ९। वि १६-४।५ २	३ ८ ३ व। ९। वि १६-४।७ २
२ २ २ व। ९। वि १६-४ २	२ ४ २ व। ९। वि १६-४।३ २	२ ६ २ २ व। ९। वि १६-४।५ २	२ ८ २ २ व। ९। वि १६-४।७ २
२ व। ९। वि १६-४ २	४ १ व। ९। वि १६-४।३ २	६ १ व। ९। वि १६-४।५ २	८ १ व। ९। वि १६-४।७ २
२ व। ९। वि १६-४ २	४ ० व। ९। वि १६-४।३ २	व। ९। वि १६-४।५ २	८ २ व। ९। वि १६-४।७ २
३ १ व। ९। वि १६-३ २	३ ३ ३ व। ९। वि १६-४।२ २	३ ५ ३ व। ९। वि १६-४।४ २	३ ७ ३ व। ९। वि १६-४।६ २
२ १ व। ९। वि १६-२ २	२ ३ २ व। ९। वि १६-४।२ २	२ ५ २ २ व। ९। वि १६-४।४ २	२ ७ २ व। ९। वि १६-४।६ २
१ व। ९। वि १६-१ २	३ १ व। ९। वि १६-४।२ २	५ १ व। ९। वि १६-४।४ २	७ १ व। ९। वि १६-४।६ २
१ व। ९। वि १६- २	३ व। ९। वि १६-४।२ २	५ व। ९। वि १६-४।४ २	७ २ व। ९। वि १६-४।६ २

द्वितीयगुणहानि
३ ९ ३ व। ९। वि १६-४।८ २
२ ९ २ व। ९। वि १६-४।८ २
← ९ १ व। ९। वि १६-४।८ २
९ व। ९। वि १६-४।८ २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

<table>
<tr>
<td>३ २ ३
व ९ वि १६—४
२ २ २ २
व ९ वि १६—४
१ २ २ १
व ९ वि १६—४
२ २
व ९ वि १६—४
२</td>
<td>३ ४ ३
व ९ वि १६—४ ३
२ ४ २ २
व ९ वि १६—४ ३
१ ४ २ १
व ९ वि १६—४ ३
४ २
व ९ वि १६—४ ३
२</td>
<td>३ ६ ३
व ९ वि १६—४ ५
२ ६ २ २
व ९ वि १६—४ ५
१ ६ २ १
व ९ वि १६—४ ५
६ २
व ९ वि १६—४ ५
२</td>
<td>३ ८ ३
व ९ वि १६—४ ७
२ ८ २ २
व ९ वि १६—४ ७
१ ८ २ १
व ९ वि १६—४ ७
८ २
व ९ वि १६—४ ७
२</td>
</tr>
<tr>
<td>३ १
व ९ वि १६—३
२ १ २
व ९ वि १६—२
१ १ २
व ९ वि १६—१
१ २
व ९ वि १६—१
२</td>
<td>३ ३ ३
व ९ वि १६—४ २
२ ३ २ २
व ९ वि १६—४ २
१ ३ २ १
व ९ वि १६—४ २
३ २
व ९ वि १६—४ २
२</td>
<td>३ ५ ३
व ९ वि १६—४ ४
२ ५ २ २
व ९ वि १६—४ ४
१ ५ २ १
व ९ वि १६—४ ४
५ २
व ९ वि १६—४ ४
२</td>
<td>३ ७ ३
व ९ वि १६—४ ६
२ ७ २ २
व ९ वि १६—४ ६
१ ७ २ १
व ९ वि १६—४ ६
७ २
व ९ वि १६—४ ६
२</td>
</tr>
</table>

<table>
<tr><th>द्वितीयगुणहानिः</th><th>मूलधनं</th><th>संकलितधनं</th></tr>
<tr>
<td>३ ९ ३
व ९ वि १६—४ ८
२
२ ९ २
व ९ वि १६—४ ८
२
१ ९ १
व ९ वि १६—४ ८
२
९
व ९ वि १६—४ ८
२</td>
<td>१–
व वि १६—४ ९
२ १–
व वि १६—४ ९
२ १–
व वि १६—४ ९
२ १–
व वि १६—४ ९
२ १–
व वि १६—४ ९
२ १–
व वि १६—४ ९
२ १–
व वि १६—४ ९
२ १–
व वि १६—४ ९
२ १–
व वि १६—४ ९
२</td>
<td>व वि १६—४ ८
२
व वि १६—४ ७
२
व वि १६—४ ६
२
व वि १६—४ ५
२
व वि १६—४ ४
२
व वि १६—४ ३
२
व वि १६—४ २
२
व वि १६—४ १
२</td>
</tr>
</table>

अत्र प्रथमराशौ गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणिते सर्वसमासः स्यात् व वि १६ ४ ९ ९ अस्य मूलधन-
२

मिति संज्ञा । पुनः प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकाद्युत्तरक्रमेण द्वितीयादिस्पर्धकस्थितशेषे रूपोनगुणहानिस्पर्धक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकागच्छसंकलनधनमं व । वि । ३
२
व । वि । २
२
व वि । १

रूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंदं गुणिसि । व वि ३ । ४ । ९ । अधिकरूपमं कळेदु
२ २
व वि । ३ । ४
२

पृथक् स्थापिसिदोडे प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणंगळिनितप्पुवु । व । वि । ३ । ४ । ९ व वि ३ । ४ ।१
२ २ २ ४

ई एरडु राशिगळु प्रथमस्पर्द्धकऋणमक्कुं । मत्तं पूर्व्वोक्तविशेषाद्युत्तरगच्छसंकलनेयं ।
२ २
व । ९ । वि ३ व । वि । ३ । ४ । ९ द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंदं गुणिसि
ग २ २ २
उ २ वि २
व ९ २
आ २ वि
व । ९ । २ १

शलाकासंकलनेन गुणिते एतावत् व वि १६ ४ १ ९ अस्य संकलितधनमिति संज्ञा । अत्रतनऋणं व वि
२ २ १ २

१६ ४ १ ९ मूलधनस्याधिकरूपे व वि १६ ४ १ ९, अपनीय शेषं व वि १६ ४ १ ९ मूलधने प्रक्षेप्यं व वि
२ २ २ २ २

१६ ४ ९ ९ एतौ द्वौ राशी द्वितीयगुणहानौ स्थूलधनं स्तः । अत्रत्यं ऋणमानीयते—

जघन्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं व वि ३ व वि ३ ४ रूपा-
२ २ २ १
व वि २
२
व वि १
२

धिकगुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिना संगुण्य व वि ३ ४ ९ अधिकरूपेऽपनीय पृथक्संस्थापिते प्रथमद्वितीय-
२ २ १

पंक्तिऋणे स्तः व वि ३ ४ ९ व वि ३ ४ १ एते द्वे प्रथमस्पर्धकऋणम् । पुनः पूर्वोक्तविशेषाद्युत्तरगच्छ-
२ २ १ २ २ १

संकलनं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकरूपद्विकमं तेगदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु क्रमदिदं प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणंगळु एतावन्मात्रंगळप्पु व । वि । ३ । ४ । ९ व । वि । ३ । ४ । २ वु । मत्तमेकस्पर्द्धकवर्ग-
२ २ २ २

णाशलाकावर्गगुणजघन्यवर्ग्गमात्रस्वविशेषंगळं द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिदं गुणिसि—

२ २
व । ९ । वि । ४ व । ९ । वि । ४ । ४ अधिकरूपद्विकमं कळेदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु क्रमदिदं
२ २ २

व । ९ । वि । ४
२ २

व । ९ । वि । ४
२ २

व । ९ । वि । ४

तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणंगळे तावन्मात्रंगळप्पुवु । व वि ४ । ४ । ९ । व । वि । ४ ।
२ २

४ । २ । १ । यी नाल्कुं राशिगळु द्वितीयस्पर्द्धकऋणमक्कुं । मत्तं पूर्व्वोक्ताद्युत्तरगच्छसंकलनेयं

द्वितीयस्पर्धकाधिकऋणन्यासः

	२		
व	९	वि	३
	२	२	
व	९	वि	२
	२	२	
व	९	वि	१
	०	२	

				२
व	वि	३	४	९
	२	२		१

द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिना संगुण्य अधिकरूपद्विकेऽपनीय पृथक्स्थापिते क्रमेण प्रथमद्वितीय-पंक्तिऋणे भवतः व वि ३ ४ ९ व वि ३ ४ २ पुनरेकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषान्
२ २ २ २

द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिः संगुण्य—

अर्पिताधिकरणन्यासो द्वितीयस्पर्धकस्य—

	२		
व	९	वि	४
	२	२	
व	९	वि	४
	२	२	
व	९	वि	४
	२	२	
व	९	वि	४
		२	

	२		
व	९	वि	४ ४
		२	

अधिकरूपद्विकेऽपनीय पृथक् स्थापिते क्रमेण तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः व वि ४ ४ ९ व वि ४ ४ २ १ ।
२ २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमपंक्तिऋण	द्वितीयपंक्तिऋण	तृतीयपंक्तिऋण	चतुर्थपंक्तिऋण
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।९ २ २	व वि ४।४।९।८ २	व वि ४।४।२।३६ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।८ २ २	व वि ४।४।९।७ २	व वि ४।४।२।२८ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।७ २ २	व वि ४।४।९।६ २	व वि ४।४।२।२१ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।६ २ २	व वि ४।४।९।५ २	व वि ४।४।२।१५ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।५ २ २	व वि ४।४।९।४ २	व वि ४।४।२।१० २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।४ २ २	व वि ४।४।९।३ २	व वि ४।४।२।६ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।३ २ २	व वि ४।४।९।२ २	व वि ४।४।२।३ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।२ २ २	व वि ४।४।९।१ २	व वि ४।४।२।१ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।१ २ २	०	०

३ ३
व ९ वि ३ व ९ वि ३।४ त्रिरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसि रूपत्रयमं
२ २ २

३
व ९ वि ३
२

३
व ९ वि १
२

कळेदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणंगळे तावन्मात्रंगळप्पुवु। व वि। ३।४।९
२ २

३ ३
व। वि। ३।४।२ मत्तं जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषंगळं व ९ वि ४।२।व ९।वि।४।४।२
२ २ २ २

३ व ९ वि ४।२ २
३ व ९ वि ४।२ २
३ व ९ वि ४।२ २

तृती. स्प. अंतविऋण न्यासः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणिसि द्विगुणितत्रिरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदमुं गुणिसि अधिकरूपत्रयमं कळेदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु व वि ४। ४। ९। २ व वि ४। ४। २। ३ ई नाल्कुं राशिगळु तृतीयस्पर्द्धकऋणमिन्तु प्रथमपंक्तिऋणंगळवस्थितक्रमदिदं द्वितीयपंक्तिगुणकारंगळु पदमात्रक्रमदिदं तृतीयपंक्तिगुणकारंगळु रूपोनपदमात्रक्रमदिदं चतुर्थपंक्तिगुणकारंगळु द्विगुणरूपोनपदसंकलनक्रमदिदं

२ २

---

३ ३

एते चत्वारो द्वितीयस्पर्धकऋणं पुनः पूर्वोक्तादयुत्तरगच्छसंकलनं व ९ वि ३ व ९ वि ३ ४ त्रिरूपाधिक-

३ २ २ २

तृतीयस्पर्धकाधिक व ९ वि २

ऋणन्यासः ३ २

व ९ वि १

२

गुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिना संगुण्य रूपत्रयेऽपनीय पृथक् स्थापिते प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः—व वि ३ ४ ९। व वि ३ ४ ३ पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषान्—

तृतीयस्पर्धकार्पिताधिक-
ऋणन्यासः

३ व ९ वि ४ २ ३ २
व ९ वि ४ २ ३ २
व ९ वि ४ २ ३ २
व ९ वि ४ २ २

३
व ९ वि ४ ४ २
२

स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणत्रिगुणरूपाधिकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च संगुण्य अधिकरूपत्रयेऽपनीय पृथक्स्थापिते तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः व वि ४ ४ ९ २ व वि ४ ४ २ ३ एते चत्वारः तृतीयस्पर्धक-

२ २

ऋणम् । एवं प्रथमपंक्तिऋणान्यवस्थितक्रमेण द्वितीयपंक्तिगुणकाराः पदमात्रक्रमेण तृतीयपंक्तिगुणकाराः रूपोनपदमात्रक्रमेण चतुर्थपंक्तिगुणकाराः रूपोनपदसंकलनक्रमेण च गच्छन्ति ।

---

१. व त्रिरूपाधिक ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नडेववें वितु प्रथमपंक्तिय प्रथमराशियं स्थापिसि गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कुं । व वि ३ । ४ । ९ । ९ । मत्तं द्वितीयपंक्तिप्रथम-
२ २
राशियं स्थापिसि गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिदं गुणिसिदोडे द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमास-मेतावन्मात्रमक्कुं व वि । ३ । ४ । ९ । ९ मत्तं तृतीयपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि रूपोनगुण-
२ २ २
हानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिदं गुणिसुत्तं विरलु—

प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ४ । ४ । ९ । ८ २	व । वि । ४ । ४ । २ । ३६ २
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । ८ २ २	व । वि । ४ । ४ । ९ । ७ २	व । वि । ४ । ४ । २ । २८ २
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । ७ २ २	व । वि । ४ । ४ । ९ । ६ २	व । वि । ४ । ४ । २ । २१ २
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । ६ २ २	व । वि । ४ । ४ । ९ । ५ २	व । वि । ४ । ४ । २ । १५ २
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । ५ २ २	व । वि । ४ । ४ । ९ । ४ २	व । वि । ४ । ४ । २ । १० २
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । ४ २ २	व । वि । ४ । ४ । ९ । ३ २	व । वि । ४ । ४ । २ । ६ २
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । ३ २ २	व । वि । ४ । ४ । ९ । २ २	व । वि । ४ । ४ । २ । ३ २
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । २ २ २	व । वि । ४ । ४ । ९ । १ २	व । वि । ४ । ४ । २ । १ २
व । वि । ३ । ४ । ९ २ २	व । वि । ३ । ४ । १ २ २	०	०

अत्र प्रथमपंक्तिप्रथमराशौ गुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिना गुणिते प्रथमपंक्तिसर्वऋणसमासो भवति व । वि । ३ । ४ । ९ । ९ पुनर्द्वितीयपंक्तिप्रथमराशौ गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन गुणिते द्वितीयपंक्ति-
२ । २
ऋणसमासो भवति व । वि । ३ । ४ । ९ ९ । पुनस्तृतीयपंक्तिप्रथमराशौ रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाका-
२ २ २

व त्रि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	व वि १६ । ४ । ८ ४
व त्रि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	व वि १६ । ४ । ७ ४
व त्रि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	व वि १६ । ४ । ६ ४
व वि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	व वि १६ । ४ । ५ ४
व त्रि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	व वि १६ । ४ । ४ ४
व त्रि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	व वि १६ । ४ । ३ ४
व वि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	व वि १६ । ४ । २ ४
व वि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	व वि १६ । ४ । १ ४
व त्रि १६ । ४ । ९ । २ १ ४	संकलनधन एषोऽधिको भागः

मूलधन

तृतीयपंक्तिसर्व्वऋणसमाससमेतावन्मात्रमक्कुं । व । वि ४ । ९ । ९ (२ २) मत्तं चतुर्थपंक्ति-प्रथमराशियं स्थापिसि रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेयिदं गुणिसुत्तं विरलु चतुर्थपंक्तिसर्व्वऋणसमाससमेतावन्मात्रमक्कुं व वि । ४ । ४ । २ । ९ । ९ । ९ (२ ३ २ १) इदनपवर्त्तिसि-दोडिदु व । वि ४ । ४ । ९ ९ ९ (२ ३) ई चतुर्थपंक्तिसर्व्वऋणचरमगुणकारदोळु द्वितीयपंक्तिसर्व्व-

---

संकलनेन गुणिते तृतीयपंक्तिऋणसमासो भवति व । वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ (२ २ १) पुनश्चतुर्थपंक्तिप्रथमराशौ रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेन गुणिते चतुर्थपंक्तिऋणसमासो भवति—

व । वि । ४ । ४ । २ । ९ । ९ । ९ । (३ २ १) अयमपवर्तितः व । वि । ४ । ९ ९ ९ । (२ ३ २ १) अस्य चरमगुणकारे द्वितीय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋणमं कूडलवडि एकरूपचतुर्भागमं प्रक्षेपिसिदुदनिदं व वि ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९/३ मुन्नं स्थूलरूपदिदं तंद संकलितधनदोळु व वि १६/२ । ४ । ९ । ९/२ । ई राशिय दोगुणहानियं बिच्चिरिसि शोडिदु । व वि ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९/२ । २ यिदरोळु शोधिसिदोडे द्वितीयगुणहानियोळु शुद्धमादिधनमेतावन्मात्रमक्कुं । व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९/६ । ४/२ मत्तं प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगार्थं तृतीयपंक्तिसर्व्वऋणचरमगुणकारदोळु एकरूपं प्रक्षेपिसिदुदनिदं व वि । ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९/२ मुन्नं स्थूलरूपदिं तंद मूलधनदोळु । व वि । १६/२ । ४ । ९ । ९ । अपवर्त्तितमिदरोळु

व वि ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९ । २ कळेदु शेषमनिदं । व वि ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९/२ । ३

मूररिदं समच्छेदनिमित्तं मेगेयुं केळगेयुं गुणिसिदोडे द्वितीयगुणहानियोळु शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कुं व वि ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९/६ । ९/२ ई येरडुं राशिगळु द्वितीयगुणहानिसर्व्वधनमक्कुमिल्लिदं मुंदे तृतीयगुणहानिधनं पेळल्पट्टपुददेंतें दोडे तृतीयगुणहानिरचनेयिदु ।

पंक्तिसर्वऋणं निक्षेप्तुं एकरूपचतुर्थभागं प्रक्षिप्येदं व । वि । ४/२ । ४ । ९ ९ ९/३ प्राक्स्थूलरूपानीतसंकलितधनं व । वि । १६/२ । ४ । ९ । ९/२ । गतदोगुणहानिःसंभेद्य संस्थाप्य व । वि । ४/२ । ४ । ९ । ९/२ । ९ । २ शोध्यते तदा द्वितीयगुणहानौ शुद्धमादिधनं भवति व । वि । ४/२।४।९।९।९/६ । ४ पुनः प्रथमपंक्तिसर्वऋणसंयोगार्थं तृतीयपंक्तिसर्वऋणचरमगुणकारे एकरूपं प्रक्षिप्येदं व । वि । ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९/२ पूर्वं स्थूलरूपानीतमूलधने व । वि । १६/२ । ४ । ९ । ९ । अपवर्तितेऽस्मिन्—

व । वि । ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९ । २ अपनीय शेषे व । वि । ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९/२ । ३ समच्छेदनिमित्तं उपर्यधस्त्रिभिर्गुणिते द्वितीयगुणहानिशुद्धमुत्तरधनं भवति व । वि । ४/२ । ४ । ९ । ९ । ९ । ९/६ एतौ द्वौ राशी द्वितीयगुणहानिसर्वधनं । इतस्तृतीयगुणहानिधनमुच्यते तद्रचनेयं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ २ ३ व ९।२। वि १६–४ २।२	३ व ९।२। वि १६–४ ३ २।२	३ ६ ३ व ९।२। वि १६–४ ५ २।२	३ ८ ३ व ९।२। वि १६–४ ७ २।२
२ २ २ व ९।२। वि १६–४ २।२	२ व ९।२। वि १६–४ ३ २।२	२ ६ २ व ९।२। वि १६–४ ५ २।२	२ ८ २ व ९।२। वि १६–४ ७ २।२
२ व ९।२। वि १६–४ २।२	व ९।२। वि १६–४ ३ २।२	६ व ९।२। वि १६–४ ५ २।२	८ व ९।२। वि १६–४ ७ २।२
१ व ९।२। वि १६–४ २।२	व ९।२। वि १६–४ ३ २।२	६ व ९।२। वि १६–४ ५ २।२	८ व ९।२। वि १६–४ ७ २।२
३ १ व ९।२। वि १६–३ २।२	३ व ९।२। वि १६–४ २ २।२	३ ५ ३ व ९।२। वि १६–४ ४ २।२	३ ७ ३ व ९।२। वि १६–४ ६ २।२
२ १ व ९।२। वि १६–२ २।२	२ व ९।२। वि १६–४ २ २।२	२ ५ २ व ९।२। वि १६–४ ४ २।२	२ ७ २ व ९।२। वि १६–४ ६ २।२
१ व ९।२। वि १६–१ २।२	व ९।२। वि १६–४ २ २।२	५ व ९।२। वि १६–४ ४ २।२	७ व ९।२। वि १६–४ ६ २।२
१ व ९।२। वि १६— २।२	व ९।२। वि १६–४ २ २।२	५ व ९।२। वि १६–४ ४ २।२	७ व ९।२। वि १६–४ ६ २।२

तृतीय गुणहानिरचने ॥

तृतीय गुणहानि
३ व ९।२। वि १६–४ ८ २।२
२ व ९।२। वि १६–४ ८ २।२
व ९।२। वि १६–४ ८ २।२
व ९।२। वि १६–४ ८ २।२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्द्धकचतुर्थभागमं रूपाधिकद्विगुण गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंदं गुणिसुत्तं विरलु स्थूलरूपदिंदं तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकमेतावन्मात्रमक्कु व वि १६ । ४ । ९ । २ / ४ मी राशियं गुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु सर्व्वमूलधनमेतावन्मात्रमक्कुं

<table>
<tr>
<td>३ २ ३–
व ९ । २ वि १६—४
२ २ २२ २–
व ९ । २ वि १६—४
१ २ २२ १–
व ९ । २ वि १६—४
९ २२
व ९ । २ वि १६—४
२२</td>
<td>३ ४ ३
व ९ । २ वि १६—४ । ३
२ ४ २२ २
व ९ । २ वि १६—४ । ३
१ ४ २२ १
व ९ । २ वि १६—४ । ३
४ २२
व ९ । २ वि १६—४ । ३
२२</td>
<td>३ ६ ३–
व ९ । २ वि १६—४ । ५
२ ६ २२ २–
व ९ । २ वि १६—४ । ५
१ ६ २२ १–
व ९ । २ वि १६—४ । ५
६ २२
व ९ । २ वि १६—४ । ५
२२</td>
</tr>
<tr>
<td>३ १
व ९ २ वि १६—३
२ १ २२
व ९ २ वि १६—२
१ १ २२
व ९ २ वि १६—१
१ २२
व ९ २ वि १६—
२२</td>
<td>३ ३ ३
व ९ २ वि १६—४ २
२ ३ २२ २
व ९ २ वि १६—४ २
१ ३ २२ १
व ९ २ वि १६—४ २
३ २२
व ९ २ वि १६—४ २
२२</td>
<td>३ ५ ३
व ९ २ वि १६—४ ४
२ ५ २२ २
व ९ २ वि १६—४ ४
१ ५ २२ १
व ९ २ वि १६—४ ४
५ २२
व ९ २ वि १६—४ ४
२२</td>
</tr>
</table>

→

<table>
<tr>
<td>३ ८ ३–
व ९ । २ वि १६—४ । ७
२ ८ २२ २–
व ९ । २ वि १६—४ । ७
१ ८ २२ १–
व ९ । २ वि १६—४ । ७
८ २२
व ९ । २ वि १६—४ । ७
२२</td>
</tr>
<tr>
<td>← ३ ७ ३
व ९ २ वि १६—४ ६
२ ७ २२ २
व ९ २ वि १६—४ ६
१ ७ २२ १
व ९ २ वि १६—४ ६
७ २२
व ९ २ वि १६—४ ६
२२</td>
</tr>
</table>

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व वि १६।४।९।२।२ मत्तं प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्द्धकचतुर्थभागाद्युत्तररूपोनगुणहानि-
४

स्पर्द्धकशलाकागच्छधनं तरल्पडुत्तं विरलु संकलितधनमेतावन्मात्रमक्कु व वि १६।४।९।९।
४ २

मी येरडुं राशिगळु तृतीयगुणहानि ऋणसहितधनमक्कुमा ऋणं तरल्पडुगुं। जघन्यवर्ग्गगुणरूपोन-

तृतीयगुणहानिः	मूलधन	संकलितधनं
३ ९ ३— व ९।२ वि १६—४।८	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	व। वि। १६।४।८ ४
२ ९ २२ २— व ९।२ वि १६—४।८	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	व। वि। १६।४।७ ४
१ ९ २२ १— व ९।२ वि १६—४।८	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	व। वि। १६।४।६ ४
९ ९२ व ९।२ वि १६—४।८ २२	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	व। वि। १६।४।५ ४
	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	व। वि। १६।४।४ ४
	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	व। वि। १६।४।३ ४
	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	व। वि। १६।४।२ ४
	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	व। वि। १६।४।१ ४
	१— व। वि। १६।४।९।२।१ ४	

प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकचतुर्भागे व वि १६।४ रूपाधिकद्विगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणिते स्थूल-
४

१—
रूपेण तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकमिदं व वि १६।४।९।२ गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणितं सर्वमूलधनं
४

१—
स्यात् व वि १६।४।९।२।९ पुनः प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकचतुर्भागादयुत्तररूपोनगुणहानिस्पर्धक-
४

शलाकागच्छसंकलनमिदं व वि १६।४।९।२।९ एते द्वे तृतीयगुणहानिऋणसहितधनं भवतः।
४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्द्धक वर्ग्गणाशलाकासंकलनमात्रविशेष व ९ । २ । वि । ३ चतुर्भ्भागमं रूपाधिकद्विगुण-
४

व ९ । २ । वि । २
४

व ९ । २ । वि । १
४

गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसि अधिकरूपनेत्तिकोंडु पृथक्स्थापिसुत्तं विरल्लु प्रथम-
द्वितीयपंक्तिऋणंगळे तावन्मात्रंगळप्पुवु व वि । ३ । ४ । ९ । २ । व वि । ३ । ४ । १ मत्तं द्वितीय-
४ २ ४ २

स्पर्द्धक सर्व्वऋणमिदु व । ९ । २ । वि । ४ (२, ३ / ४) प्रथमद्वितीयोभयपंक्तिसंबंधिऋणमिदु । इदं

व । ९ । २ । वि । ४ (२, २ / ४)

व । ९ । २ । वि । ४ (२ / ४)

व । ९ । २ । वि ४ (२ / ४)

तदृणमानीयते—जघन्यवर्गगुणरूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्रविशेष—

व	९	२	वि	३
	१—		४	
व	९	२	वि	२
	१—		४	
व	९	२	वि	१
			४	

चतुर्भागे रूपाधिकद्विगुणगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिते व वि ३ । ४ ९ २ अधिकरूपे च पृथक् स्थापिते
४ २

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः व वि ३ ४ ९ २ व वि ३ ४ १ पुनर्द्वितीयस्पर्धकसर्वऋणमिदं
४ २ ४ २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलिसि व वि ३।४।९।२ (२ above ९; ४ and २ below) अधिकद्विरूपमं तेगदु पृथक्स्थापिसिदोडे प्रथमस्पर्द्धकप्रथम-
पंक्तिसमानं प्रथमपंक्तिऋणमक्कु व वि ३।४।९।२ (४ below वि)। प्रथमस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणमं नोडलो
द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणं रूपाधिकगुणकारगुणमक्कुं व वि।३।४।२ (४ and २ below) शेषतृतीय-

चतुर्थपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदु

व ९(२)।२।वि/४।४
व ९(२)।२।वि/४।४
व ९(२)।२।वि/४।४
व ९(२)।२।वि/४।४

जघन्यवर्गमात्रस्पर्द्धकवर्गणाशलाका-

अपनीताधिकऋणन्यासः

व	९(२)	२	वि/४	४(३)
व	९(२)	२	वि/४	४(२)
व	९(२)	२	वि/४	४(१)
व	९(२)	२	वि/४	४

प्रथमद्वितीयपंक्तिसंबन्धि ऋणमिदं

व	९(२)	वि/४	३
व	९(२) २	वि/४	२
व	९(२) २	वि/४	१

संकलय्य व वि ३ ४ ९ २ (२ above ९; ४ २ below) ५

अधिकरूपद्वये पृथक्स्थापिते प्रथमस्पर्धकप्रथमपंक्तिसमानं प्रथमपंक्तिऋणं भवति व वि ३ ४ ९ २ (४ २ below) प्रथम-
स्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणादिदं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं रूपाधिकगुणकारगुणं व वि ३ ४ २ (४ २ below) शेषतृतीय-

चतुर्थपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदं

व	९(२)	२	वि/४	४
व	९(२)	२	वि/४	४
व	९(२)	२	वि/४	४
व	९(२)	२	वि/४	४

जघन्यवर्गमात्रस्पर्धकवर्गणाशलाका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ग्गगुणस्वाविशेषंगळं द्विरूपाधिकद्विगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिदं गुणिसि व वि । ४ । ४ । ९ । २ (२ / ४) अधिकद्विरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पर्द्धकतृतीयचतुर्त्थपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रंगळप्पु व वि । ४ । ४ । ९ । २ (४) | व वि ४ । ४ । २ (४) वु । मत्तं तृतीयस्पर्द्धकसर्व्वऋणमिदु

व ९ । २ (३) । वि । ४ । २ (३) (४)
व ९ । २ (३) । वि ४ । २ (२) (४)
व ९ । २ (३) । वि ४ । २ (४)
व ९ । २ । वि ४ । २ (४)

इल्लि प्रथमद्वितीयपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदु

व ९ । २ वि । ३ (४)
व ९ । २ वि । २ (४)
व ९ । २ वि । १ (४)

इदं संकळिसि व वि ३ । ४ । ९ । २ (३) (४ २) अधिकत्रिरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु तृतीयस्पर्द्धक-

---

वर्गगुणस्वविशेषद्विरूपाधिकद्विगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिते व वि ४ ४ ९ २ (२— / ४) अधिकद्वये च पृथक्स्थापिते द्वितीयस्पर्धकतृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः । व वि ४ ४ ९ २ (४) व वि ४ ४ २ । (४)

पुनस्तृतीयस्पर्धकसर्वऋणमिदं

व	९ (३)	२	वि	४ (३)	२
व	९ (३)	२	वि	४ (४ २)	२
व	९ (३)	२	वि	४ (४ १)	२
व	९ (३)	२	वि	४ (४)	२

अत्र प्रथमद्वितीयपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदं

व	९ (३)	२	वि	३ (४)
व	९ (३)	२	वि	२ (४)
व	९ (३)	२	वि	१ (४)

संकलय्य व वि ३ ४ ९ २ (३— / ४ २ १) अधिकरूपत्रये पृथक्स्थापिते तृतीयस्पर्धक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु   व वि ३।४।९।२ (४ २) | व वि ३।४।३ (४ २)

तृतीयचतुर्थपंक्तिसंबंधिऋणमिदु

व ९।^{२}	वि।४।२ (४)
व ९।२^{३}	वि।४।२ (४)
व ९।२^{३}	वि।४।२ (४)
व ९।२^{३}	वि।४।२ (४)

यिदनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळिदं गुणिसि अधिकत्रिरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु तृतीयस्पर्द्धक तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु व वि।४।४।९।२ | व वि।४।४।३ (४) यितु स्पर्द्धकं प्रतिप्रथमपंक्तिगळु अवस्थितक्रमदिदं द्वितीयपंक्तिगळु पदमात्ररूप गुणितक्रमदिदं तृतीयपंक्तिगळु रूपोनपदमात्ररूपगुणितक्रमदिदं चतुर्थपंक्तियोळु द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनगुणितक्रमदिदं नडेवव दितु स्थापिसि

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः व वि ३ ४ ९ २ (४ २ १)। व वि ३ ४ ३ (४ २ १) शेषतृतीयचतुर्थपंक्तिसंबन्धिऋणमिदं

व ९ २^{३}	वि ४ २ (४)
व ९ २^{३}	वि ४ २ (४)
व ९ २^{३}	वि ४ २ (४)
व ९ २^{३}	वि ४ २ (४)

एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः संगुण्य व वि ४ ४ २ ९ २^{३} (४) अधिकरूपत्रये पृथक्स्थापिते तृतीयस्पर्धकतृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः व वि ४ ४ २ ९ २ (४) व वि ४ ४ २ ३ (४) एवं प्रतिस्पर्धकं प्रथमपंक्तयोऽवस्थितक्रमेण द्वितीयपंक्तयः पदमात्ररूपगुणितक्रमेण तृतीयपंक्तयो रूपोनपदमात्ररूपगुणितक्रमेण चतुर्थपंक्तयो रूपोनगच्छसंकलनगुणितक्रमेण च गच्छन्ति । ताः संस्थाप्य—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमपंक्तिऋण	द्वितीयपंक्तिऋण	तृतीयपंक्तिऋण	चतुर्थपंक्तिऋण
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।९ ४ २	व वि ४।४।९।२८ ४	व वि ४।४।२।३६ ४
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।८ ४ २	व वि ४।४।९।२७ ४	व वि ४।४।२।२८ ४
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।७ ४ २	व वि ४।४।९।२६ ४	व वि ४।४।२।२१ ४
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।६ ४ २	व वि ४।४।९।२५ ४	व वि ४।४।२।१५ ४
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।५ ४ २	व वि ४।४।९।२४ ४	व वि ४।४।२।१० ४
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।४ ४ २	व वि ४।४।९।२३ ४	व वि ४।४।२।६ ४
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।३ ४ २	व वि ४।४।९।२२ ४	व वि ४।४।२।३ ४
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।२ ४ २	व वि ४।४।९।२१ ४	व वि ४।४।२।१ ४
व वि ३।४।९।२ ४ २	व वि ३।४।१ ४ २	०	०

यिल्लि प्रथमपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि व वि ३।४।९।२ गुणहानिस्पर्द्धकशलाके-
४ २
गळिवं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमिनितक्कुं व वि।३।४।९।२।९ मत्तं
४ २

प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः
व।ति।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।९ ४ २	व।वि।४।४।९।२८ ४	व।वि।४।४।२।३६ ४
व।वि।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।८ ४ २	व।वि।४।४।९।२७ ४	व।वि।४।४।२।२८ ४
व।वि।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।७ ४ २	व।वि।४।४।९।२६ ४	व।वि।४।४।२।२१ ४
व।वि।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।६ ४ २	व।वि।४।४।९।२५ ४	व।वि।४।४।२।१५ ४
व।वि।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।५ ४ २	व।वि।४।४।९।२४ ४	व।वि।४।४।२।१० ४
व।वि।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।४ ४ २	व।वि।४।४।९।२३ ४	व।वि।४।४।२।६ ४
व।वि।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।३ ४ २	व।वि।४।४।९।२२ ४	व।वि।४।४।२।३ ४
व।वि।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।२ ४ २	व।वि।४।४।९।२१ ४	व।वि।४।४।२।१ ४
व।वि।३।४।९।२ ४ २	व।वि।३।४।१ ४ २	०	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि व वि । ३ । ४ । १ । गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिदं
४ २
गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिऋणसंयोगमिनितक्कु व वि ३ । ४ । ९ । ९ मत्तं तृतीयपंक्ति प्रथम-
४ २ २
राशियं स्थापिसि व वि । ४ । ४ । ९ । २ । १ रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकाशलकासंकलनदिदं गुणिसुत्तं
४
विरलु तृतीयपंक्तिऋणसंयोगमिनितक्कुं व वि । ४ । ४ । ९ । २ । ९ ९ मत्तं चतुर्थपंक्तिप्रथम-
४ २
राशियं स्थापिसि व वि ४ । ४ । २ । १ रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेयिदं
४
गुणिसुत्तं विरलु चतुर्थपंक्तिऋणसमासमिनितक्कुं व वि । ४ । ४ । २ । ९ । ९ ९ ९ ई चतुर्थ-
४ ३ २ १
पंक्तिचरमगुणकारदोळु द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणमेलापनार्थमेकरूपचतुर्थभागमं प्रक्षेपिसि मुन्नं स्थूलरूपदिदं तंद संकलनधनदोळु शोधिसुत्तं विरलु तृतीयगुणहानिशुद्धमादिधनमेतावन्मात्रमक्कुं व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ मत्तं प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगार्थं तृतीयपंक्तिसर्व्वऋणचरम-
४ २ । २
गुणकारदोळु एकरूपं प्रक्षेपिसिदुदुं तंदु मुन्नं स्थूलरूपदि तंद मूलधनदोळु शोधिसि मेलेयुं केळगेयुं त्रिगुणिसिदोडे तृतीयगुणहानियोळु शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कुं व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ९ । २
६ । २ । २
ई येरडुं राशिगळु तृतीय गुणहानिसर्व्वधनमक्कुमी प्रकारदिदं गुणहानि प्रत्यादिधनमर्द्धार्द्धमागि उत्तरधनमर्द्धार्द्धमागियुं रूपोनगच्छगुणमुमागि नडेगुमन्तु नडेदु—

अत्र प्रथमपंक्तिप्रथमराशौ व वि ३ ४ ९ २ गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणिते प्रथमपंक्तिसर्वऋण-
४ २ १
संयोगो भवति व वि ३ ४ ९ २ ९ पुनर्द्वितीयपंक्तिप्रथमराशौ व वि ३ ४ १ गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन
१-४ २ १ ४ २ १
गुणिते द्वितीयपंक्तिऋणसंयोगो भवति व वि ३ ४ ९ ९ | पुनस्तृतीयपंक्तिप्रथमराशौ व वि ४ ४ ९ २ १ रूपोन-
४ २ १ २ १ ४
गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन गुणिते तृतीयपंक्तिऋणसंयोगो भवति व वि ४ ४ ९ २ ९ ९ पुनश्चतुर्थपंक्ति-
४ २
प्रथमराशौ व वि ४ ४ २ १ रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेन गुणिते चतुर्थपंक्तिऋणं भवति व वि
४ ४
४ ४ २ ९ ९ ९ अस्य गुणकारे द्वितीयपंक्तिसर्वऋणमेलापनार्थं एकरूपचतुर्थभागं प्रक्षिप्य प्राक्स्थूलरूपापनीत-
३ २ १
संकलितधने शोधिते तृतीयगुणहानिशुद्धमादिधनमायाति— व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ पुनः प्रथमपंक्तिसर्वऋण-
६ २ २
संयोगार्थं तृतीयपंक्तिसर्वर्णचरमगुणकारे एकरूपं प्रक्षिप्य इदं प्राक्स्थूलरूपानीतमूलधने संशोध्य उपर्यधश्च त्रिभिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व वि । ४४।९।९।९।४ प ६ प ӘӘ ० Ә २ ० व वि ।४।४।९।९।९।४।२।२।२।२।२।२।२।२। ६ व वि ।४।४।९।९।९।४।२।२।२।२।२।२।२। ६ ० ० व वि ।४।४।९।९।९।४।२।२।२ ६ व वि ।४।४।९।९।९।४।२।२ ६ व वि ।४।४।९।९।९।४।२ ६ व वि ।४।४।९।९।९।६। आदिधन	० व वि ।४।४।९।९।९।९। ना ६। प २ Ә ० ० व वि ।४।४।९।९।९।८ ६।२।२।२।२।२।२।२।२। व वि ।४।४।९।९।९।७ ६।२।२।२।२।२।२।२। ० ० व वि ।४।४।९।९।९।३ ६।२।२।२। व वि ।४।४।९।९।९।२ ६।२।२। व वि ।४।४।९।९।९।१। ६।२। ० उत्तरधन

संगुण्य तृतीयगुणहानौ शुद्धमुत्तरधनं स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ एते तृतीयगुणहानिसर्वधनं भवतः । एवं
६ २ २

प्रतिगुणहानि आदिधनं अर्धार्धक्रमं उत्तरधनं अर्धार्धक्रममपि रूपोनगच्छगुणं, तेन चरमगुणहानौ धनद्वये भागहारो रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकः । उत्तरधनगुणकारो रूपोननानागुणहानिमात्रः ।

आदिधनं	उत्तरधनं
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ० ६ प २ ० Ә ०	० व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ना ० ६ प २ ० Ә ०
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ २ २ २ २ २ २ २ २ ६	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ८ २ २ २ २ २ २ २ २ ६
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ २ २ २ २ २ २ २ ६ ० ० ०	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ७ २ २ २ २ २ २ २ ६ ० ० ०
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २ २ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ३ ६ २ २ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ ६ २ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ १ ६ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरमगुणहानियोळु एरडुं धनंगळ्गे रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळु भागहारंगळप्पुवुत्तरधनगुणकारमुं मत्ते रूपोननानागुणहानिमात्रमक्कुं। सर्व्वत्रमेरडुं धनंगळ्गे गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाघनस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकाकृतिगुणजघन्यवर्ग्गमात्रविशेषं गुण्यराशिसमानमक्कुं। गुणकारमुं मत्ते आदिधनक्के चतुःषड्भागादिद्विगुणहीनमक्कुमुत्तरधनक्के नवषड्भागार्द्धादिद्विगुणहीनमक्कुं। रूपोनपदगुणितमुमक्कुमितु गुणहीनाधिकस्वरूपदिदं स्थितिसर्व्वगुणहानिगळ संकलनसूत्रमिदुः—

पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं वैकं सहोत्तराद्यंशगुणं।
विपदघ्नचयं विभजेद्व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना ॥

ई सूत्रदर्थं सुगममक्कु। विपदघ्नचयमेंदितु पदेन घ्नः पदघ्नः गच्छेन हत इत्यर्थः। स चासौ चयश्च पदघ्नचयः विगतः पदघ्नचयो यस्मात्तद्विपदघ्नचयं विभजेद्व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिनेति। विगतमेकेन वैकं वैकं च तत्पदं च वैकपदं। तन्मात्रगुणकाराणामन्योन्याभ्यासस्तेन हतेनाद्यच्छिदिना विभजेदिति संबंधः। येंदितिल्लि नानागुणहानिमात्रद्विकंगळवर्ग्गितसंवर्ग्गदिदं

पुट्टिद राशि अन्योन्याभ्यस्तराशियक्कु प/a मदरोळेकरूपं हीनं माडि प(o)/a आद्युत्तरांशंगळं कूडि

गुणिसिद राशियुमं १३ प(o)/a उत्तरधनपदघ्नचयं ऋणमप्पुदरिना ऋणराशियुमं ९ प(o)/aa रूपोनपदमात्रद्विकंगळ रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळं वर्ग्गितसंवर्ग्गं माडि संजनितान्योन्याभ्यस्त राश्यर्द्धदिदं गुणिसल्पट्ट आद्यच्छेदरूपषट्कदिदं भागिसुत्तं विरलु आद्युत्तरोभयधनमुं ऋणमुमक्कुं—

अत्र सर्वत्र धनद्वये गुणहानिस्पर्धकशलाकाघनस्पर्धकवर्गणाशलाकाकृतिगुणजघन्यवर्गमात्रविशेषो गुण्यं समानं गुणकारः आदिधने चतुःषड्भागादिद्विगुणहीनः। उत्तरधने नवषड्भागार्धादिद्विगुणहीनोऽपि रूपोनपदगुणितो भवति। एवं गुणहीनाधिकरूपस्थितसर्वगुणहानिधनसंकलनसूत्रं—

'पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं व्येकं सहोत्तराद्यंशगुणं विपदघ्नचयं विभजेत् व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना।' अस्यार्थः—[विपदघ्नचयं[1] पदेन घ्नः पदघ्नः गच्छेन हतः इत्यर्थः, स चासौ चयश्च पदघ्नचयः, विगतः पदघ्नचयो यस्मात्तं विपदघ्नचयं। व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विगतं एकेन व्येकं तच्च तत्पदं च व्येकपदं तन्मात्रगुणकाराणामन्योन्याभ्यासः तेन हतेन आद्यच्छिदिना विभजेदिति संबंधः।] पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं

नानागुणहानिमात्रद्विकानां परस्परगुणनं प/a व्येकं—एकरूपोनं प(o)/a सहोत्तराद्यंशगुणं उत्तरधनांशसहिताधिधनांशैर्हतं कृत्वा १३ प(o)/a विपदघ्नचयं पदघ्नोत्तरधनचयः ऋणमस्तीति तं पृथग् न्यसेत् ९ प/aa तौ राशी व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणिताद्यच्छेद-

---

१. कोष्ठांतर्गतपाठो ब प्रतौ नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । धनं प ऋण व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । २ । प मत्तं
१३ a ६ । प aa
६।प। a २
a २

धनस्थितऋणमनुभयांशंगळं तेगदु व वि । ४ ४ ९ ९ ९ । १३ ऋणऋणयोरैक्यमें दितु ऋण-
६ प
a a

राशियगुणकारदोळु रूपोननानागुणहानियोळु कूडुत्तं विरलु सर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कुं—
१३
व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ९ । प–१ बळिक्कं धनद गुणकार भागहारंगळनपवर्त्तिसि भागिसि
६ प a a
a । २

मत्तं ऋणद गुणकारभागहारंगळनपवर्त्तिसि रूपासंख्यातैकभागमं १ कळयुत्तं विरलु किंचिदून-
a

त्रिभागाधिकरूपचतुष्टयगुणकारमक्कुमदक्के संदृष्टि :—

। व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ मत्तमी करणसूत्राभिप्रायप्रकटनार्थं सर्व्वगुणहानिगळ
१
३

मध्यदोळु प्रथमगुणहानिमोदल्गोंडष्टगुणहानिगळ धनं तरल्पडुगुमदें तेंदोडे :—

अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणमें दितु गुणसंकलनसूत्रदिदं तरल्पट्टुदी धनसंदृष्टि—

षट्केन विभजेत् इत्युभयधनऋणे स्यातां । व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ प व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ प तद्धनस्थ-
a a a
६ प ६ प
a २ a २

०
ऋणं पृथक् कृत्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ ऋणऋणयोरैक्यमिति ऋणराशौ प्रक्षिप्य
६ प
a २

०
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ १३ प अपवर्तिते रूपासंख्यातैकभागः १ अपवर्तितधने १३ अपनीतस्तदा किंचिदून-
a a a ३
६ प
a २

त्रिभागाधिकरूपचतुष्टयं गुणकारो भवति । तत्संदृष्टिः व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ पुनः सूत्राभिप्रायप्रकटनार्थं प्रथमा-
१—
३

द्यष्टगुणहानीनां धनमानीयते—

अंतधनं गुणगुणियं आदिविहीणमिति गुणसंकलनसूत्रानीतादिधनं । संदृष्टिः—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व । वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ २५६ उत्तरधनसमासदोळु तत्रतत्रतनगुणकारंगळोळु पृथक्-पृथक्
६ २५६
२
स्थापिसुत्तं विरळु—

९।१। आदिधन ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ० ० ० ९।१ ६।२।२ ९।१ ६।२ अ. ध.	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ० ० ० ९।१ ६।२।२ ९।१ ६।२	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२ ९।१ ६।२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२	→
९।१ ६		९।१ ६।२२	९।१ ६।२२२२	९।१ ६।२२२२२	

←	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२ ऋ । ९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२	ऋ । ९ । १ ६।२२२२२२२२

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ २५६ उत्तरधनसमासे तु तत्र तत्रतनगुणकारेषु पृथक् पृथक् स्थापितेषु—
६ २५६
२

९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	→
९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	
०	०	९।१ ६।२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२		
०	०	९।१ ६।२२२२२	९।१ ६।२२२२२	९।१ ६।२२२२२			
९।१ ६।२२२२	९।१ ६।२२२२	९।१ ६।२२२२	९।१ ६।२२२२				
९।१ ६।२२	९।१ ६।२२	९।१ ६।२२				←	९।१ ६।२२२२२२२२
९।१ ६।२	९।१ ६।२						
९।१ ६।१							

सप्तपंक्तिगळप्पुवु। अवरमध्यदोळु मुन्नमूर्ध्वरूपदिदं चरममं बिट्टु शेषषट्पंक्तिगळं संकलिसि बळिकं चरमदोळु तत्प्रमाणऋणमनिक्कि[1] संकलिसि बळिकं तिर्य्यग्रूपसंकलननिमित्तमागियुमष्टमस्थानदोळं तावन्मात्रऋणमनिक्कि ९।१ / ६।२२२२२२२ तिर्य्यग्रूपदिदं संकलिसि चरमसप्तमस्थानदोळिक्किद ऋणमं कळेयुत्तं विरलु उत्तरधनसमासमेतावन्मात्रमक्कुं—

व वि।४।४।९।९।९।९।२५६ (०) / ६।२५६ / २ आदिविहीनमादिविहीनमेंदु सर्व्वत्र स्थाप्यमागिर्द्द ऋणसमासंदोळमष्टमस्थानदोळं[2] कूडि सर्व्वऋणमेतावन्मात्रमक्कुं व वि।४।४।९।९।९।९।८ / ६।२५६ / २ इन्तु मूरुं सिद्धराशिगळ विषयदोळु गुणहीनाधिक संकलनासूत्रं प्रवर्त्तिसुगुमेंदितु तत्सूत्राभिप्रायं सम्यग्दर्शितमादुदुभयधनयोगमिदु व वि।४।४।९।९।९।१३।२५६ (०) / ६।२५६ / २ अग्रतनहीनरूपं तेगदु ऋणऋणंगळोकत्वमेंदितु कूडुत्तं विरलु अष्टषष्टिसप्तशतहृतपंचाशीतिगुणकारमक्कुमदक्केसंदृष्टि व वि।४।४।९९९।८५ / ७६८ मत्तं धनव गुणकारभागहारंगळनपवर्त्तिसि ४ / १ / ३ ऋणमं कळेयुत्तं

सप्त पंक्तयः स्युः। तासु षडर्धरूपेण संकलय्य सप्तम्यां तत्प्रमाणऋणं प्रक्षिप्य पश्चात्तिर्यक्संकलनार्थं अष्टमस्थाने एतावदृणं ९।१ / ६।२२२२२२२ निक्षिप्य संकलय्य अष्टमस्थाननिक्षिप्तऋणे अपनीते उत्तरधनसमासोऽयं व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २५६ (०) / ६ २५६ / २ आदिविहीनमिति सर्वत्र स्थाप्यतया अवस्थितऋणसमासः अष्टस्थानानामेतावान् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ८ / ६ २५६ / २ एवं त्रयाणामपि सिद्धराशीनां विषये गुणहीनाधिकसंकलनसूत्रं प्रवर्तत इति सूत्राभिप्रायः सम्यग्दर्शितः। उभयधनयोगोऽयं—व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ २५६ (०) / ६ २५६ / २ अग्रतनहीन १३ १ (०) / ६ २५६ / २ रूपमपनीय ऋणार्णयोरैक्यमिति युक्तोऽष्टषष्टिसप्तशतहृतपंचाशीतिचाशीतिगुणकारः स्यात् तत्संदृष्टिः—व वि ४ ४ ९ ९ ९ ८५ / ७६८ पुनः धन-

---

१. म °क्कि बळिकं। २. म °समष्टस्य°।

विरलु किंचिदूनत्रिभागाधिकचतूरूपंगळु गुणकारमक्कुमदक्के संदृष्टि— व वि । ४।४।९।९।९।४
१७१ शेष
२५६ । ३

मत्तमी करणसूत्राभिप्रायदिंदमष्टगुणहानिगळ धनं तंदु तोरल्पडुगुं । पदमात्रगुणगच्छमात्रगुणकारंगळं स्थापिसि २२२२२२२२ अन्योन्याभ्यस्तः परस्परं गुणिसि । २५६ । वैकं एकरूपमं होनं माडि

२५६ बळिक्की राशियं सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तरधनांशंगळं कूडि १३ । गुणिसिदराशियोळु

१३ । २५६ विपदघ्नचयं पदमात्रमुत्तरधनविशेषंगळं । ९ । ८ । कळेवुदंतु कळेयुत्तं विरलु शेषमिदु । ३२४३ । ई राशियं व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विभजेत् । रूपोनपदमात्रगुणकारंगळ २।२।२।२।२।२।२ अन्योन्यगुणपरस्परगुणदिदं पुट्टिद लब्धराशियिदं २५६ हताद्यच्छिदिना गुणिसल्पट्टा-
२

द्यच्छिदर्दिदं ६२५६ विभजेत् भागिसुवुदन्तु भागिसुत्तं विरलु ३२४३ बंद लब्धमष्टगुणहानिगळ
२ ७६८

शुद्धधनमक्कु ४ भागे १७१ मंबुदिदु करणसूत्राभिप्रायमक्कुमिदु किंचिदूनत्रिभागाधिकरूप-
२५६।३

चतुष्टयं गुणकारमक्कुं व वि ४४ । ९ । ९ । ९ । ४ शेषगुणहानिगळ धनानयनदोळु नवमगुण-
१
३

हानियोळु आदिधनदाद्यच्छेदं वेसदच्छप्पण्णहतषट्कमक्कुं ४ उत्तरधनदोळमाद्यच्छेदं तावन्मात्र-
६ । २५६

मयक्कुं ९ । ८ उभयधनांशंगळु कूडि सर्व्वत्र षट्सप्ततिमात्रमक्कुं व वि ४४ । ९९९ । ७६
६ । २५६ ६ । २५६

गुणकारभागहारावपवर्त्य ४ ऋणेऽपनीते किंचिदूनत्रिभागाधिकचतूरूपाणि गुणकारः स्यात् । तत्संदृष्टिः—
१
३

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ पुनरेतत्करणसूत्राभिप्रायेण अष्टगुणहानिधनमानीयते—
१७१
२५६ ३

पदघ्नं च पदमात्रगुणा २ २ २ २ २ २ २ २ न्योन्याभ्यासं २५६ व्येकं २५६ सहोत्तराद्यंशगुणं

१३ २५६ विपदघ्नचयं पदघ्नचयेन ९ ८ रहितं ३२४३ व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विभजेत् ३२४३
६ २५६ ७६८
२

इत्यष्टगुणहानिशुद्धधनं ४ भाग १७१ किंचिदूनत्रिभागाधैकरूपचतुष्टयं गुणकारो भवति व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४
२५६।३ १
३

शेषगुणहानिधनानयने नवमगुणहानौ आदिधनं वेसदछप्पण्णहतषट्कभक्तषट्कसप्ततिः—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेकें बोडे अष्टरूपोननानागुणहानिमात्रसर्व्वपदंगळोळु अष्टरूप गुणितोत्तरक्के ९।८। संयुतरूपचतुष्टयत्वविदं । यितागुत्तं विरलु नवमगुणहानियोळुत्तरधनमिल्लेकें दोडे तत्सर्व्वक्कं स्वकादियोळ संक्रांतत्वदिमंतागुत्तं विरलु दशमगुणहानियोळुभयधनच्छेदं द्विगुणवेसदछप्पण्णहतषट्कमक्कुं । मेलेयुभयधनंगळ हारंगळु द्विगुणद्विगुणंगळागि नडेववन्तु नडेदु चरमदोळु उभयधनंगळोळं द्विगुणबेसदछप्पण्णभाजितान्योन्याभ्यस्तराशिगुणितस्वकादिच्छेदं हारमक्कुमुत्तरधनगुणकारमुमेकाद्येकोत्तरक्रमविदं नडेयल्पडुत्तिर्दुवु । चरमदोळु नवरूपोननानागुणहानिमात्रमक्कुमिल्लि पूर्व्वकरणसूत्रविदमुं मेणु तदभिप्रायक्रमदिंदमुं धनंतरल्पडुगुमल्लि करणसूत्रदिदं धनं तरल्पडुगुमदेंते दोडे पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं पदमात्रगुणकारंगळ अन्योन्याभ्यास-

७६ ६ प a २५६।२	९ प ९ प a a ६ a २५६।२
० ०	० ०
७६ ६।२।२५६	९।१ ६२।२५६
७६ ६।२५६	०

विदं पुट्टिद रासि बेसदछप्पण्ण भक्तान्योन्याभ्यस्तराशियक्कु प / a २५६ मदं वैकं एकरूपदिदं होनं

माडुवुदु । प / a। २५६ (० ऋण) अन्तु माडिद राशियं सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तर धनांशंगळं कूडि गुणिसुदु ७६ ९ / ८५ प / a२५६ (० ऋण)

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ७६ / ६ । २५६ कुतः ? तत्रतना ४ / ६ । २५६ | ९ ८ / ६ २५६ द्युत्तरधनयोराद्यावेव संक्रांतत्वात् तत्रोत्तरधनं नास्ति । दशमगुणहानौ उभयधनच्छेदः द्विगुणवेसदछप्पण्णहतषट्कं उपरि द्विगुणद्विगुणो भूत्वा चरमे द्विगुणवेसदछप्पण्णभक्तान्योन्याभ्यस्तगुणितादिच्छेदः स्यात् । उत्तरधनगुणकारः एकाद्येकोत्तरक्रमेण गच्छेंश्चरमे नवो नानागुणहानिमात्रो भवति । अत्रापि उक्तकरणसूत्रतदभिप्रायाभ्यां धनमानेतव्यम् । तत्र करणसूत्रेण यथा—

७६ ६ प a २५६ । २	९ प—९ ६ प a a a २५६ । २
० ० ०	० ० ०
७६ ६ । २५६ । २	९ । १ ६ । २५६ । २
७६ ६ । २५६	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तु गुणिसिद राशियोळु विपदघ्नचयं पदघ्नोत्तरधनचय। ९ प ८ मिदु कळेयल्वेळकुमेंदु वेरि-
ᴧ ᴧ

रिसिया येरडुं राशिगळं व्येकपदरूपोनगच्छमात्रगुणकारंगळ अन्योन्याभ्यासजनितराशियिदं
प गुणिसल्पट्ट आद्यच्छिदिना आद्यच्छेदंदिदं विभजेत् भागिसुवुदु धनं।
ᴧ २५६ । २

८५ प | ऋणं । ९ प–८ | यितु स्थापिसल्पट्ट धनऋणंगळोळु धनदोळिर्द्द
ᴧ२५६ । प ६ । २५६ | २५६ । ६ प ᴧ ᴧ |
ᴧ२५६।२ | ᴧ२५६। २ |

६।९
ऋणरूपनुभयांशप्रमितमनेत्तिकोंडु वेरिरिसि ८५ । १ ऋणराशियोळिर्द्द ऋणं राशिगे धन-
६ प २५६
ᴧ २५६।२

मक्कुमप्पुदरिंदं। द्विसप्ततिप्रमितांशमं तेगदुकोंडु समच्छेदंगळप्पुदरिंदं पंचाशीतियोळु द्विसप्ततियं
कळेदु शेषऋणम १३ निदं त्रयोदशरूपं ऋणदोळे निक्षेपिसि १३
२५६।६।प ९ । प
ᴧ२५६ । २ २५६।ᴧᴧ६ प
ᴧ २५६ । २

सर्व्वगुणहानिगळ संकलनेयोळु जनितऋणसमानमुमी ऋणमुमक्कुमेंदु निरीक्षिसि धनऋणंगळ

पदामात्रगुणान्योन्याभ्यासं प व्येकं प सहोत्तराद्यंशगुणं ८५ प विपदघ्नचयं पदघ्नोत्तरधनचयः
ᴧ २५६ ᴧ २५६ ᴧ २५६

९ प–८ अपनेतव्योऽस्तीति तं पृथक् संस्थाप्य तौ राशीं व्येकपदान्योन्याभ्यस्त प २५६। हृताद्यच्छिदिना
ᴧ ᴧ ᴧ

विभजेत् इति धनं—८५ प ऋणं—९ प–८ धनस्थं ऋणं पृथक् संस्थाप्य
६ ।२५६ प ᴧ । २५६ ᴧ
ᴧ २ । २५६ ६ । २५६ प ᴧ ᴧ
ᴧ २ । २५६

०
८५ १ ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं भवतीति द्विसप्तति ७२
६ । २५६ प ६ । २५६ प
ᴧ २५६ । २ ᴧ २५६ । २

१३
पंचाशीत्यामपनीय शेषत्रयोदशसु ऋणे निक्षिप्तेषु इदं—९ प निरीक्ष्य धनऋणे अपवर्तयितव्ये।
ᴧ ᴧ
६ । २५६ प
ᴧ २५६ । २

तत्र धने अन्योन्याभ्यस्तेन वेसदछप्पण्णं वेसदछप्पण्णेन द्विकं षड्रूपस्थद्विकेन चापवर्त्य शेषं ८५
२५६ । ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणकारभागहारंगळनपवर्त्तिसुत्तविरलु धनदोळन्योन्याभ्यस्तराशियन्योन्याभ्यस्तराशियोडने बेसदछप्पण्णनं बेसदछप्पण्णनोडनपवर्त्तिसि द्विकमं षड्रूपस्थितद्विकदोडनपवर्त्तिसिदोडे शेषधनमिदु ८५/२५६ । ३ ऋणमं निरीक्षिसियपवर्त्तिसिदोडेकरूपासंख्यातैकभागमक्कु १/a । मिदं कळेयुत्तं विरलु किंचिदूनाष्टषष्टिसप्तशतभक्तपंचाशीतिप्रमितमक्कुमदवस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमक्कु व वि ४४ । ९९२ । ८५/२५६ । ३ मिदनष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकसप्ततयुत्तरशतदोळु मुन्निनष्टगुणहानिद्रव्यगुणकारदोळु ८५ प्रक्षेपिसुवंतु प्रक्षेपिसिदुदिदु २५६/७६८ किंचिदूनत्रिभागमक्कुमी त्रिभागदिदमाधिकमप्प रूपचतुष्टयमेनवस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमं माडुत्तिरलु सर्व्वगुणहानिद्रव्यसमासमेतावन्मात्रमक्कु व वि ४४ । ९९९ । ४ मथवा व्यतिरेकमुखदिदं शेषगुणहानिगळ द्रव्यं तरल्पडुवल्लि १/३ अष्टगुणहानिद्रव्यमं व वि ४४ । ९९९ । ४ सर्व्वगुणहानिगळ द्रव्यदोळु व वि ४४ । ९९९ । ४ १७१/७६८ १/३ कळेयुत्तं विरलु एकरूपासंख्यातैकभागोनाष्टषष्टिसप्तशतभक्तपंचाशीतिगुणकारमक्कुं व वि ४४ । ९९९ । ८५/७६८ ई जघन्ययोगस्थानरचना सर्व्वद्रव्यमनिदं स्थापिसि व वि ४४ । ९९९ । ४ १/३

अपवर्तितऋणेन एकरूपासंख्यातैकभागेन १/a ऊनिते अष्टषष्टिसप्तशतभक्तकिंचिदूनपंचाशीतिः अवस्थितगुण्यस्य गुणकारः स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ ८५/२५६ । ३ अस्मिन् अष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकसप्ततिशते अष्टगुणहानिद्रव्यगुणकारे प्रक्षिप्ते २५६–/७६८ किंचिदूनत्रिभागः । अनेन अधिकरूपचतुष्टये अवस्थितगुण्यस्य गुणकारे कृते सर्वगुणहानिद्रव्यमेतावद्भवति— व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ अथवा व्यतिरेकमुखेन शेषगुणहानिद्रव्यमानीयते — १–/३

तत्राष्टगुणहानिद्रव्ये व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ १७१/७६८ सर्वगुणहानिद्रव्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ १–/३ अपनीते अष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकरूपासंख्यातैकभागोनपंचाशीतिर्गुणकारः स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ८५/७६८ तज्जघन्ययोग-

---

१. म °मवस्थि° ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इल्लि संदृष्टिनिमित्तमागि चारिनवगा अट्ठ एंदितु गुणहानियनुत्पादिसि रूपत्रिभागमं बेरे तेगेदिरिसि व वि ८४९९१ / ३ गुणकारभूतचतुष्कमं भेदेसि द्विकद्वयमं माडि । २ । २ । एकद्विकदिंदमा गुणहानियं गुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कु १६ । मागळु सर्व्वराशिविन्यासमिदु व वि १६ । ४ ।९९।२ ई प्रकारदिंदं त्रिभागेयोळु संदृष्टिनिमित्तमागि द्विकदिंदं मेगेयुं केळगेयुं गुणिसिदोडे तद्विन्यासमिदु व वि १६ । ४ । ९ । ९ । १– / ३ । २ इवनी रूपषड्भागमं व वि । १६ । ४ । ९९ । १– / ६ पूर्व्वराशिय गुणकारद्विकदोळु साधिकमं माडि जघन्यस्पर्द्धकप्रमाणदिंदं प्रमाणिसुत्तं विरलु किंचिदूनषड्भागाधिकद्विरूपदिंदं गुणितैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्ग्गमात्रंगळु जघन्यस्पर्द्धकंगळप्पुवदक्के संदृष्टि । ९ । ९ । २ । एकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाप्रमाणश्रेण्यसंख्यातैकभागवर्ग्गं साधिकद्विगुणमक्कुमदर प्रमाण ० ० मिदेत्तलानुं प्रतरासंख्येयभागमेंदितु संदेहमं जनियिकुमंतादोडं श्रेण्यसंख्येयभागमात्रमे शलाकाराशियक्कुमेंदितु गृहीतव्यमक्कु । ० मेकेंदोडे "इगि ठाण पड्डयाओ वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी । सेढियसंखेज्जदिमा" एंदितु सूत्रोक्तमप्पुदरिंदं चोदकनेंदपनन्तु प्रतरासंख्येयभागमेंब संदेहदिंदं सूत्रविरोधमेकादपुदा श्रेण्यसंख्येयभागत्वमल्लि पडेयल्पडुत्तं विरलेंदोडंतल्तु । प्रतरासंख्येयभागमसंख्यातश्रेणिप्रसंगमप्पुदरिंदमदु कारणदिंदं जघन्यस्पर्द्धकशलाकावर्ग्गप्रविष्टभागहारभूतासंख्यातंगळु गुणिसिकोंडु असंख्यातश्रेणिप्रमितंगळप्पुदरिंदं श्रेण्यसंख्यातैकभागमेयक्कुमेंबुदर्थं । भागहार = ० लब्धं ० ।

स्थानरचनासर्वद्रव्यमिदं संस्थाप्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ / १— / ३ अत्र संदृष्टिनिमित्तं चारिणवगा अट्ठ इति गुणहानिमुत्पाद्य गुणकारभूतचतुष्कं संभेद्य द्विकद्वयं कृत्वा २ । २ । एकद्विकेन तां संगुण्य दोगुणहानौ उत्पादितायां १६ तद्विन्यासोऽयं— व वि १६ ४ ९ ९ २ शेषत्रिभागेन संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो द्विगुणितेन व वि १६ ४ ९ ९ १— / ३ । २ अनेनैकरूपषड्भागेन व वि १६ ४ ९ ९ १— / ६ साधिकीकृत्य व वि १६ ४ ९ ९ २ जघन्यस्पर्धकेन प्रमाणितः किंचिदूनषड्भागाधिकद्विरूपगुणितैकगुणहानिस्पर्धकशलाकावर्गमात्रजघन्यस्पर्धकमात्रो भवति । तत्संदृष्टिः— ९ ९ २ अयं श्रेण्यसंख्येयभागवर्गः ० । ० । २ प्रतरासंख्येय इव दृश्यते तथापि श्रेण्यसंख्येयभाग एव अन्यथा इगिठाणफड्डयाओसेढिअसंखेज्जदिमा इति सूत्रं विरुध्यते तथात्वेऽपि तावत एव लब्धाददोषः ? तन्न, तत्रासंख्यातश्रेणीनामपि प्रसंगात् तेन तद्भागहारभूतासंख्यातद्वयं गुणितमसंख्यातश्रेणिप्रमितं = ० अपवर्तिते श्रेण्यसंख्यातैकभाग एवेत्यर्थः ० । अथ प्रागुक्तमेव—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनंतरं मुन्नं पेळ्लपट्ट "अविभागपडिछेदो वग्गो पुण वग्गणाय पड्ढयगो। गुणहाणी विय-जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण" एंबी सूत्रार्थमिल्लि विशदमवकुमप्पुदरिदं पेळ्लपडुगुमें तें दोडे—किं स्थानं नाम। एकसमये एकस्य जीवस्य संभवद्गुणहानिसमूहः स्थानम्। का गुणहानिः स्पर्द्धकसमूहः। किं स्पर्द्धकं क्रमवृद्धिहानिवर्ग्गणासमूहः। का वर्ग्गणा वर्ग्गसमूहः। को वर्ग्गः अविभागप्रतिच्छेदसमूहः। को विभागप्रतिच्छेदः जीवप्रदेशस्य कर्म्मादानशक्त्यां जघन्यवृद्धिः योगस्याधिकृतत्वात् एंदितिल्लि जघन्यवृद्धिप्रमाणमावुदें दोडे लोकमात्रजीवप्रदेशंगळं स्थापिसि ≡ अल्लि सर्व्वजघन्यशक्तिविशिष्टमप्पेकप्रदेशमं कोंडु। १। तत्प्रदेशगतशक्तियं बुद्धियिदं प्रसारिसि मत्तमा प्रदेशशक्तियं नोडलविभागप्रतिच्छेदोत्तरशक्तिविशिष्टप्रदेशमं कोंडु। १। तत्प्रदेशगतशक्तियं मुन्नं प्रसारितप्रदेशशक्तिय मेले प्रसरितं माडि अधिकप्रमाणदिदं प्रथमप्रसारितप्रदेशशक्तियं खंडिसुत्तिरलु असंख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदंगळप्पुवु |||||||||| ≡ a तत्समूहं वर्ग्गमें बुदक्कुं। मत्तं तज्जघन्यशक्तियुक्तप्रदेशसदृशघनिकंगळुमसंख्यातप्रतरमात्रप्रदेशंगळप्पाववुं श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितद्वयर्द्ध-

---

"अविभागपडिच्छेदो वग्गो पुण वग्गणा य फट्टयगं। गुणहाणीविय जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण॥" इति सूत्रार्थं पुनर्विशदयति—

किं स्थानं? एकसमये एकस्य जीवस्य संभवद्गुणहानिसमूहः। का गुणहानिः? स्पर्धकसमूहः। किं स्पर्धकं? क्रमवृद्धिहानिवर्गणासमूहः। का वर्गणा? वर्गसमूहः। को वर्गः? अविभागप्रतिच्छेदसमूहः। कोऽविभागप्रतिच्छेदः? जीवप्रदेशस्य कर्मादानशक्तौ जघन्यवृद्धिः योगस्याधिकृतत्वात्। किं तज्जघन्यवृद्धिप्रमाणं? लोकमात्रजीवप्रदेशान् संस्थाप्य ≡ एषु सर्वजघन्यशक्तिकमेकं प्रदेशं स्वीकृत्य १ तद्गतशक्तिं बुद्धया प्रसार्य पुनः ततोऽविभागप्रतिच्छेदोत्तरप्रदेशं स्वीकृत्य १ तद्गतशक्तिं पूर्वप्रसारितशक्तेरुपरि प्रसार्य अधिकप्रमाणेन प्रथमप्रसारितप्रदेशशक्तौ खंडितायां असंख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदा भवंति |||||||||| ≡ a तत्समूहो वर्गः। स व इति संदृष्टया लिखितव्यः। तदग्रे तत्सदृशधनिकाः यावंतस्तावंतो लिखितव्याः। ते च असंख्यातलोकप्रतरमात्राः, श्रेण्यसंख्यातैकभागमाश्या

अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि और स्थान ऊपर कहे हैं। एक जीवके एक समयमें होनेवाले गुणहानि समूहको स्थान कहते हैं। स्पर्धकोंके समूहको गुणहानि कहते हैं। क्रमसे वृद्धिहानिरूप वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक कहते हैं। वर्गके समूहको वर्गणा कहते हैं। और अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं। जीवके प्रदेशोंमें कर्मको ग्रहण करनेकी शक्तिमें जो जघन्य वृद्धि होती है उसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। यहाँ योगका अधिकार होनेसे योगरूप शक्तिके अविभागी अंशका ग्रहण किया है। आगे जघन्य वृद्धिका प्रमाण कहते हैं—

जीवके प्रदेश लोकप्रमाण हैं। उनको स्थापन करके इन सब प्रदेशोंमें-से जिस प्रदेशमें योगोंकी जघन्य शक्ति पायी जाये, उस प्रदेशको अलग रखकर उस प्रदेशमें जितनी योगशक्ति हो उसको अपनी बुद्धिसे फैलाइये। उस जघन्य शक्तिसे अधिक और अन्य शक्तिसे हीन शक्ति जिसमें पायी जाये ऐसे किसी अन्य प्रदेशको ग्रहण करके, उसमें जितनी योगशक्ति पायी जाये उसे पहले फैलायी गयी जघन्य शक्तिके ऊपर बुद्धिसे ही फैलाइए। सो उस

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

गुणहानियिंदं लोकमात्रजीवप्रदेशंगळनपवर्त्तिसुत्तं विरला $\overline{\equiv}$ —३ / a a २ आदिवर्ग्गणाजीवप्रदेशागमन-

मुंटप्पुदरिंदं = a a २ / ३ आ वर्ग्गणाविभागप्रतिच्छेदंगळु पृथक् पृथक् वर्ग्गसंज्ञितंगळु मुन्निन

वर्ग्गपार्श्वदोळु रचियिसल्पडुवुवु

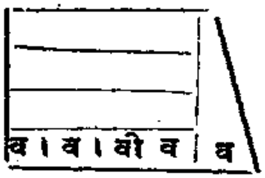

यिंतु रचयिसल्पट्टु संख्यातप्रतरमात्रवर्गंगळसमूहक्के वर्ग्गणेयेंब संज्ञेयक्कुं । मत्तमी रचितवर्गंगळ मेले अविभागप्रतिच्छेदोत्तरंगळप्प पूर्व्ववर्गंगळं नोडलु दोगुणहानिभाजितादिवर्ग्गणाप्रदेशमात्र-विशेष ।–a a a a होनप्रदेशंगळ रचने रचियिसल्पडुगु

मन्तु रचियिसल्पट्टवर्ग्गंगळ्गे द्वितीयवर्ग्गणेयें ब व्यपदेशमक्कुंमितविभागप्रतिच्छेदोत्तरमुं विशेष-हीनक्रमदिंदं श्रेण्यसंख्यातैकभागपर्य्यवस्थितंगळप्प वर्ग्गणेगळ समूहमेकस्पर्द्धकमक्कुं । मत्तविभाग-प्रतिच्छेदोत्तरंगळप्प प्रदेशंगळिल्ल । मत्ते तप्प शक्तियुक्तप्रदेशंगळोळवें दोडे आदिवर्ग्गणेय वर्ग्गमं नोडलु द्विगुणा व । २ विभागप्रतिच्छेदसंयुक्तप्रदेशंगळोळववर सदृशधनिकंगळ्गे पूर्व्वदन्ते प्रथम-स्पर्द्धकचरमवर्ग्गगळ मेळे रचनेयं माडि :—

द्व्यर्धगुणहान्या लोकमात्रजीवप्रदेशेषु भक्तेषु $\overline{\equiv}$ ३ / a a २ आदिवर्गणाजीवप्रदेशागमनात् = a a २ / ३ तद्वर्गणाविभाग-प्रतिच्छेदाः पृथक्पृथक्वर्गसंज्ञाः प्राक्तनपार्श्वे रचयितव्याः । एवं रचिताऽसंख्यातप्रतरमात्रः वर्गसमूहस्य वर्गणेति संज्ञा स्यात्

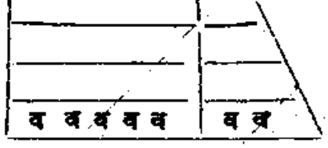

इयं प्रथमा वर्गणा । पुनरेषां वर्गणामुपर्यविभाग-प्रतिच्छेदोत्तरा अपि पूर्ववर्गेभ्यः एकविशेषहीनसंख्याका वर्गा लिखितव्याः

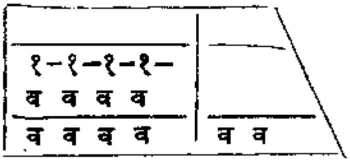

इयं द्वितीया वर्गणा । एवमविभागोत्तरविशेषहीनक्रमेण श्रेण्यसंख्येयभागमात्रवर्गणासमूहः एकं स्पर्धकम् । पुनः द्विगुणादादिवर्गणावर्गात् स्तोकशक्तिकाः प्रदेशा न संति ततस्तेषां द्विगुणानामेव सदृशधनिकानां प्रथमस्पर्धक-

---

जघन्य शक्तिके ऊपर स्थापन की गयी शक्ति जितनी वृद्धिको लिये हुए हो उतनी वृद्धिका नाम योगोंका अविभाग प्रतिच्छेद है। इसका आशय यह है कि जघन्य शक्तिवाले प्रदेशसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यवर मेले अविभागोत्तरमं विशेषहीनक्रममनुमागी सदृश-धनिकंगळगे पूर्व्वदन्ते श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रवर्गणेगळं कोंडु रचियिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पर्द्धक-मक्कुमिन्तु मेले मेले "पड्ढयसंखा हि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी" येंदिती सूत्रोक्तक्रमदिदम-संख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदोत्तरंगळप्प श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रस्पर्द्धकंगळगे प्रथमगुणहानि-योळु अव्यामोहदिदं रचने माडल्पडुगुमल्लिदं मेले प्रथमगुणहान्यादिवर्ग्गणासदृशधनिकंगळं नोडलु द्वितीयगुणहान्यादिवर्ग्गणासदृशधनिकजीवप्रदेशसंख्ये द्विगुणहीनमक्कुमल्लिदं मेले विशेष-हीनक्रमंगळप्पुवु । नवीनमुंटदावुदें दोडे मुन्निन विशेषमं नोडलो द्वितीयगुणहानिविशेषमर्द्धमात्रमे-यक्कुमिन्तप्प गुणहानिगळु पल्लितोपमासंख्यातैकभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलोंदु योगस्थानमक्कुमिदु सर्व्वजघन्ययोगस्थानमक्कुमिन्तु शक्तिप्रधानमागि पेळल्पट्टुदु । मत्तमिवर संकलननिमित्तं प्रदेश-प्रधानरचनास्वरूपं निरूपिसल्पडुगुमदें तें दोडे प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्ग्गणाप्रदेशकलापमं

चरमवर्गणाया उपरि रचना कर्तव्या तस्या

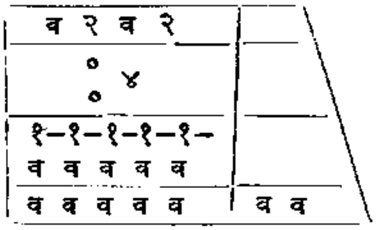

उपरि पुनः प्राग्वद-विभागोत्तरविशेषहीनक्रमेण श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रीषु वर्गणासु रचितासु द्वितीयं स्पर्धकं। एवमुपर्युपरि फड्ढयसंखाहि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थतत्थादीत्युक्तक्रमेण श्रेण्यसंख्येयभागस्पर्धकानि प्रथमगुणहानौ रचितव्यानि। तत उपरि द्वितीयगुणहान्यादिवर्गणा प्रथमगुणहान्यादिवर्गणार्धमात्री उपरि विशेषहीनक्रमेण गच्छति। अयं विशेषोऽपि पूर्वविशेषार्धमात्रः। एवं पलितोपमासंख्यातैकभागमात्रगुणहानिषु गच्छंतीषु एकं योगस्थानं। इदं सर्वजघन्यं शक्तिप्राधान्येनोक्तं। पुनः तदेव प्रदेशप्राधान्येन संकलयति—

एक अविभागी अंश अधिक शक्तिके धारी दूसरे प्रदेशमें उस जघन्य शक्तिसे जितनी शक्ति बढ़ती हुई हो उस बढ़ती हुई शक्तिके प्रमाणको योगका अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। पहले फैलायी गयी प्रदेशकी जघन्य शक्तिके उस अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण, खण्ड करनेपर असंख्यात लोक प्रमाण खण्ड होते हैं। अतः असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं। इसीसे एक वर्गमें असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद कहे हैं। उसकी सहनानी (पहचान) 'व' अक्षर है। उसके आगे जिन प्रदेशोंमें जघन्य शक्ति पायी जाती है वे सब लिखें। इस प्रकार जघन्य शक्तिके धारक जीवके प्रदेश असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण होते हैं क्योंकि लोक प्रमाण जीवके प्रदेशोंमें डेढ़ गुण-हानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने जघन्यशक्ति प्रमाण शक्तिके धारक प्रदेश हैं। सो एक गुणहानिमें जितना वर्गणाका प्रमाण कहा है उसका ड्योढ़ा करनेपर डेढ़ गुणहानिका

=ə ə २/३ दोगुणहानियिदं əə २ । भागिसुत्तं विरलु विशेषमक्कु । –ə ə ə ə/३ मिदु लघुसंदृष्टि-निमित्तं । वि । एंदितु माडल्पट्टुददं मत्ते दोगुणहानियिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानियोळु प्रथमस्पर्द्धकदादिवर्ग्गणेयक्कुं । वि १६ । तंदवस्थंगळेयप्पुवु । हीनाधिकभावमिल्लेंदिद्दुंतिद्दुवें बुदर्त्थं । मत्तं जघन्यवर्ग्गमात्रशक्तियं कुरुत्तु सदृशधनिकत्वदिदं त्रैराशिकविधानदिदं प्र १ । फ । व । इ । वि १६ । बंद लब्धं प्रथमगुणहानियोळु प्रथमस्पर्द्धकदादिवर्ग्गणेयक्कुं । व । वि १६ । मेले सर्व्वत्र विशेषहीनप्रदेशंगळगे अविभागोत्तरादिजघन्यवर्ग्गं त्रैराशिकदिदमुत्पन्नगुणकारं सुगममक्कुं । नवीन-मुंटदावुदें दोडे गुणहानि गुणहानि प्रतियादियं नोडलादियर्द्धार्द्धक्रममक्कुमेकेंदोडे सर्व्वत्र रूपोनगुण-हानिमात्रविशेषहीनविवक्षितगुणहानिप्रथमवर्ग्गणेये तच्चरमवर्ग्गणेयप्पुदरिना चरमवर्ग्गणाप्रदेशं-गळिदं तदुत्तरगुणहान्यादिवर्ग्गणाप्रदेशंगळु पूर्व्वोक्तविशेषहीनत्वदिंदमर्द्धार्द्धंगळप्पुवप्पुदरिदं । यिल्लदं मेले द्वितीयादिगुणहानिगळोळु विशेषमुमर्द्धार्द्ध क्रममक्कुमाउदोंदु कारणदिदं दोगुण-हानियिदं स्वस्वादि भागिसल्पडुत्तिरलागळा विशेषं बक्कुमप्पुदरिदंमा सर्व्वगुणहानिगळोळन्नेवरं

प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशकलापे = ə ə २/३ दोगुणहान्या ə ə २ भक्ते विशेषः स्यात्—ə ə ə ə/३ स एव पुनः लघुसंदृष्टिनिमित्तं वि इति कृत्वा दोगुणहान्या गुणितः प्रथमगुणहानौ प्रथमस्पर्धकादिवर्गणा स्यात् वि १६। इयं तदवस्थैव न च हीनाधिकेत्यर्थः। पुनर्जघन्यवर्गमात्रशक्ति प्रति सदृशधनिकत्वात् त्रैराशिक-विधानेन प्र १ फ व इ वि १६ लब्धं प्रथमगुणहानौ प्रथमस्पर्धकादिवर्गणा भवति व वि १६। एवमुपर्युपरि सर्वत्राविभागोत्तरादिजघन्यवर्गः त्रैराशिकोत्पन्नगुणकारः सुगमः, किंतु गुणहानिं गुणहानिं प्रति आदितः आदिः अर्धार्धक्रमः। कुतः ? पूर्वगुणहान्यादिवर्गणायाः गुणहानिमात्रस्वविशेषैर्हीनायाः उत्तरगुणहान्यादिवर्गणात्वात्। तथा विशेषोऽप्यर्धार्धक्रमः स्वस्वादेः दोगुणहानिभक्तस्य तत्प्रमाणत्वात्। तासु सर्वगुणहानिषु तावत् प्रथम-

---

प्रमाण होता है। वह जगतश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र ही है। उसका भाग जीवके प्रदेशोंमें देनेपर असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण प्रदेशोंका प्रमाण होता है। सो इतने प्रदेशोंके समूहको प्रथम वर्गणा कहते हैं। इसीसे एक वर्गणामें असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण वर्ग कहे हैं।

आगे उस जघन्य शक्तिरूप वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण कहा उससे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद जिनमें पाये जायें ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उतने प्रदेश उसके ऊपर लिख। ये प्रदेश प्रथम वर्गणामें जितने प्रदेश कहे थे उनसे एक चय हीन होते हैं। प्रथम वर्गणामें जो प्रदेशोंका प्रमाण है उसे दो गुणहानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो वही चय या विशेषका प्रमाण जानना। सो विशेषकी सहनानी 'वि' अक्षर जानना। एक गुणहानिमें जो वर्गणाओंका प्रमाण है उसको दूना करनेपर दो गुणहानिका

---

१. म मिल्लदेइद्दंतिप्पुंवुवेंबु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमगुणहानिचरमवर्ग्गणेयेंबुदिदु। व ९ वि १६—४। ८ (३, २) द्वितीयगुणहानिप्रथमवर्ग्गणेयेंबुदिदु। व ९। वि १६–४। ८ (३)। द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्ग्गणेयोळिर्द्द ऋणमनिदं। वि ४। ९। चारि नवगा अट्ठ एंदिन्तु गुणहानियनुत्पादिसि वि ८। दोगुणहानियोळु विशेषमात्रगुणहानिगळगे विशेषमात्रगुणहानिगळं तोरि तोरलिल्लद द्विकदोळात्मप्रमाणमेकरूपं कळेयुत्तिरलु शेषमेकगुणहानिमात्रविशेषंगळेयप्पुवदं वि ८। संदृष्टिनिमित्तं मेलेयुं केळगेयुं द्विगुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्ग्गणाप्रदेशंगळं नोडलो द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशं द्विगुणहीनमागि स्फुटमागि काणल्पट्टुदु। व ९। वि ८। १।२। (२) गुणिसल्पडुत्तिरलिदर न्यासमितिक्कु व ९। वि १६ (२)। मिन्तु सर्व्वत्र नेतव्यमक्कुमिल्लिदं मेले सर्व्वाविभागप्रतिच्छेदमेलापविधानं पेळल्पडुगुमल्लि मुन्नं प्रथमगुणहानिस्पर्द्धकंगळसंयोजनक्रमं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे जघन्यस्पर्द्धकादिवर्ग्गणेयनेकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकेगळिदं गुणिसुत्तं विरलु स्थूलरूपदिदं जघन्यस्पर्द्धकमेता-

---

गुणहानिचरमवर्गणेयं व ९ वि १६–४ ८ (३) द्वितीयगुणहानिप्रथमवर्गणेयं व ९ वि १६–४ ८ (३—)। अत्रस्थमृणमिदं वि ४ ९ (१—) चारिनवगा अट्ठ इति गुणहानिमुत्पाद्य वि ८ दोगुणहानौ विशेषमात्रगुणहानीनां विशेषमात्रगुणहानीः प्रदर्श्य तत्रस्थद्विके आत्मप्रमाणैकरूपेऽपनीते शेषमेकगुणहानिमात्रविशेषमिति। तस्मिन् वि ८ १ संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो द्वाभ्यां गुणिते प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्धकवर्गणाप्रदेशेभ्यो द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशा द्विगुणहीनाः स्फुटं दृश्यंते व ९ वि ८ १ (१—) २ (२) गुणिते तन्न्यासोऽयं व ९ वि १६ (१—, २) एवं सर्वत्र नेतव्यं। इतः परं सर्वाविभागप्रतिच्छेदान् संकलयति—

तत्र जघन्यस्पर्धकस्यादिवर्गणायां एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः गुणितायां स्थूलरूपेण जघन्यस्पर्धकं

प्रमाण होता है। सो प्रथम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणमें-से विशेषको घटानेपर जो प्रमाण रहे उतने प्रदेशोंके समूहको द्वितीय वर्गणा कहते हैं। यहाँ पूर्वोक्त जघन्य शक्तिसे एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिका धारक जो प्रदेश है उसे वर्ग कहते हैं। उनका समूह दूसरी वर्गणा है। द्वितीय वर्गणा सम्बन्धी वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उससे एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक जिसमें हो ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उतने उनके ऊपर लिखें। वे प्रदेश द्वितीय वर्गणामें जितने कहे थे उनमेंसे विशेषका प्रमाण घटानेपर जितना प्रमाण रहे उतने होते हैं। यहाँ द्वितीय वर्गणा सम्बन्धी वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिके धारक प्रदेशको वर्ग कहते हैं। उनका समूह तीसरी वर्गणा है। इसी क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये और एक-एक विशेष हीन प्रमाणको लिये हुए जो वर्ग हैं उनका समूह एक-एक वर्गणा होता है। ऐसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्मात्रमक्कुं व वि १६ । ४। यिवनेयाद्युत्तरमागेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकागच्छसंकलनेयं तरुत्तं विरलु ऋणसहितमागि प्रथमगुणहानिद्रव्यमिनितक्कु व वि १६ । ४ । ९ । ९ । मिलिल प्रथम-
२ । १
स्पर्द्धकदोळु ऋणंतरल्पडुगुमल्लि यन्नेवरं द्वितीयादिवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गद मेले एकाद्येकोत्तरक्रमदिनिर्द्द अविभागप्रतिच्छेदधनमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि :—

वि १६–३ । ३	इल्लिर्द्दऋणमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि	वि । ३ । ३
वि १६–२ । २		वि । २ । २
वि १६–१ । १		वि । १ । १

यिल्लि संकलनानिमित्तं प्रथमपंक्तियगुणकारंगळोळेकैकरूपं सर्व्वत्र तेगदुपृथक् स्थापिसलपडुगुं—

वि २ । ३	ऋणद्वयं	वि १ । ३	धन	वि १६ । १	यिल्लि ऋणद्वयदोळु चरमराशिय
वि १ । २		वि १ । २		वि १६ । २	
०		वि १ । १		वि १६ । ३	
०				०	

एकविशेषादि एकविशेषोत्तररूपोनैकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रमं वि ३ । ४
२ १
द्विरूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमात्रविशेषंगळोळु—

स्यात् । व वि १६ । ४। एतदाद्युत्तरैकगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छसंकलनायां ऋणसहितं प्रथमगुणहानि-
१—
द्रव्यमिदं व वि १६ ४ ९ ९ । अत्र प्रथमस्पर्धके ऋणमानीयते—
२

तत्र तावद् द्वितीयादिवर्गणासु जघन्यवर्गस्योपरि एकाद्येकोत्तराविभागप्रतिच्छेदधनं पृथक् संस्थाप्यं, तत्संदृष्टिः—

वि १६–३ ३	
वि १६–२ २	
वि १६–१ १	

अत्रस्थं ऋणमपि पृथक् संस्थाप्यं, तत्संदृष्टिः

वि ३ । ३	
वि २ । २	
वि १ । १	

अत्र संकलनानिमित्तं प्रथमपंक्तेर्गुणकारेष्वेकैकरूपे सर्वत्र पृथक्स्थापिते ऋणद्वयं-

वि २ ३	वि १ ३	धनं	वि १६ ३
वि १ २	वि १ २		वि १६ २
०	वि १ १		वि १६ १
०	०		

अत्र ऋणद्वये चरमराशेरेकविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रं वि ३ । ४ द्विरूपोनैक-
२ । १

जगत्श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा होनेपर एक स्पर्धक होता है। इसीसे एक स्पर्धकमें जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा कही है। उसकी सहनानी चार ४ का अंक है। इस प्रथम स्पर्धकको जघन्य स्पर्धक कहते हैं।

इस प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके वर्गमें अविभाग प्रतिच्छेदोंका जो प्रमाण है उसके ऊपर प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उनसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद जिनके हों ऐसी शक्तिके धारक पाये जाते हैं। उससे हीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि २।३।४।२ / ३।२।१ साधिकं माडि रूपोनैकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकासंकलनमात्रादिवर्ग्गणाप्रदेशदोळु किंचिदूनितं माडुत्तिरलु शेषधनमेतावन्मात्रमक्कुं वि १६।३।४ / २ मत्तमपनीताधिकाविभागप्रतिच्छेदशेषजघन्यस्पर्द्धकरचनेयिदु व वि १६–३ / व वि १६–२ / व वि १६–१ / व वि १६। इल्लि द्वितीयादिवर्ग्गणेगळोळु स्थितऋणमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि व वि ३ / व वि २ / व वि १ यिदं संकलिसुत्तं विरलु रूपोनैकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्ग्गमात्रं विशेषमक्कु व वि ३।४। / २ एतस्मात्कारणात् यिदु कारणमागि पूर्व्वमानिताधिकाविभागप्रतिच्छेदाधिक धनमिदु। वि १६।३।४।। / २ जघन्यवर्ग्गमात्रासंख्यातलोकगुणकाराभावदिंदमविवक्षितमक्कुमदु कारणमागि द्वितीयादिस्पर्द्धकंगळ द्वितीयादिवर्ग्गणेगळोळेकाद्येकोत्तरक्रमदिंदमिर्द्द अविभागप्रतिच्छेदधनंगळ्गविवक्षेयुमक्कु-

---

स्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमात्रविशेषेषु वि २ ३ ४ २ / ३ २ १ साधिकं कृत्वा वि २ २ ३ ४ / ३ २ १ अनेन रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्रादिवर्गणाप्रदेशेषु किंचिदूनितेषु शेषधनमिदं वि १६ ३ ४ / २ पुनरपनीताधिकाविभागप्रतिच्छेदशेषजघन्यस्पर्धकरचनेयं—

व वि १६-३
व वि १६-२
व वि १६-१
व वि १६

अत्र द्वितीयादिवर्गणास्थं ऋणं पृथक् स्थाप्यं। तत्संदृष्टिः—

व वि ३
व वि २
व वि १

अस्य संकलनं रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषः व वि ३ ४ / २ १ तच्च प्रागानीताधिकाविभागप्रतिच्छेदाधिकधनमिदं वि १६ ३ ४ / २ १ जघन्यवर्गमात्रासंख्यातलोकमात्रगुणकाराभावान्न विवक्षितं तत एव

शक्तिका धारक प्रदेश नहीं पाया जाता। अतः जिनमें जघन्य वर्गसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद पाये जायें ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उनकी रचना प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके ऊपर करें। वे प्रदेश प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणमें-से एक विशेष घटानेपर जो प्रमाण रहें उतने जानना। यहाँ जघन्य वर्गसे दूने अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्तिके धारक प्रदेशको वर्ग जानना। उनका समूह दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणा है। इस प्रथम वर्गणाके वर्गसे एक अविभाग प्रतिच्छेद जिसमें अधिक हो ऐसी शक्तिके धारक

---

१. ब °वर्गश° । २. ब लोकगुण० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मीगळु द्वितीयस्पर्द्धकऋणमेतरल्पडुत्तं विदे अविभागोत्तररहितद्वितीयस्पर्द्धकमिदु—

व २ वि १६–४ (३)	अत्रतन ऋणमं कळेदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलिदु	व २ वि ४ (३)	यिल्लियधिक-	
व २ वि १६–४ (२)		व २ वि ४ (२)		
व २ वि १६–४ (१)		व २ वि ४ (१)		
व २ वि १६–४		व २ वि ४		

रूपुगळ रचनेइदु व २ वि ३ / व २ वि २ / व २ वि १ इदर संकलने जघन्यवर्गमात्रविशेषमादियुमुत्तरमं रूपोनैक-स्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रं द्विगुणितप्रमाणमक्कु व वि ३ । ४ । २ / २ मिदु प्रथम-स्पर्द्धकऋणद मेले स्थापिसल्पडुगुं। शेषमिदु व २ वि ४ / व २ वि ४ / व २ वि ४ / व २ वि ४ त्रैराशिकदिदं सिद्धमप्प राशिय प्रमाणजघन्यवर्गमात्रविशेषमनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणिसल्पट्टुदं रूपोनगच्छ

द्वितीयादिस्पर्धकानां द्वितीयादिवर्गणासु अपि एकाद्येकोत्तरक्रमस्थिताविभागप्रतिच्छेदधनानि न विवक्षितानि।

संप्रति द्वितीयस्पर्धकऋणानयने अविभागोत्तररहितद्वितीयस्पर्धकमिदं

व २ वि १६–४ (३–)
व २ वि १६–४ (२–)
व २ वि १६–४ (१–)
व २ वि १६–४

अत्रस्थमृणं पृथक्संस्थाप्य

व २ वि ४ (३–)
व २ वि ४ (२–)
व २ वि ४ (१–)
व २ वि ४

अधिकरूपरचनेयं—

व २ वि ३
व २ वि २
व २ वि १

अस्याः संकलनाजघन्यवर्गमात्रविशेषा-द्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं द्विगुणितं स्यात्। व वि ३ ४ २ / २ इदं प्रथमस्पर्धकऋणस्योपरि

जो प्रदेश हैं वे ही वर्ग हैं। दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणसे एक विशेष हीन जो प्रदेशरूप वर्ग हैं उनका समूह दूसरे स्पर्धककी दूसरी वर्गणा है। इसी प्रकार क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये हुए और एक-एक विशेष घटते हुए जो वर्ग हैं उनके समूह एक-एक वर्गणा होते होते जगतश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा होती हैं। उनका समूह दूसरा स्पर्धक है।

---

१. ब अस्याधिक०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलनाद्विगुणविदं गुणितमात्रं द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रमक्कुं। व वि ४।४।१।२। स्वकीयपूर्व्वऋण पार्श्वदोळु स्थापिसल्पडुगु। मी येरडुं राशिगळु द्वितीयस्पर्द्धकऋणमक्कुं।

मत्तमविभागप्रतिच्छेदोत्तररहिततृतीयस्पर्द्धकमिदु
३
व ३ वि १६–४ । २
२
व ३ वि १६–४ । २
—
व ३ वि १६–४ । २
व ३ वि १६–४ । २
अत्रतनऋणमं तेगदु

पृथक् स्थापितमिदु
३
व ३ वि ४ । २
२
व ३ वि ४ । २
———
व ३ वि ४ । २
व ३ वि ।४। २
इल्लियधिकरूपंगळ स्थापनेयिदु
व ३ वि ३
व ३ । वि २
व ३ । वि १
यिदर संक-

स्थाप्यं। शेषमिदं

व २ वि ४
व २ वि ४
व २ वि ४
व २ वि ४

त्रैराशिकसिद्धप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनेन च गुणितः द्वितीयपंक्तिऋणमिदं व वि ४ ४ १ २ स्वकीयपूर्वऋणपार्श्वे स्थापयेत्।

एते द्वे द्वितीयस्पर्धकऋणे स्यातां। पुनरविभागप्रतिच्छेदोत्तररहिततृतीयस्पर्धकमिदं

३—
व ३ वि १६—४ २
२—
व ३ वि १६—४ २
१—
व ३ वि १६—४ २
व ३ वि १६—४ २

अत्रस्थमृणं पृथक् संस्थाप्य

३–
व ३ वि ४ २
२–
व ३ वि ४ २
१–
व ३ वि ४ २
व ३ वि ४ २

अस्याधिकरूपस्थापनेयं

व ३ वि ३
व ३ वि २
व ३ वि १

अस्याः संकलना-

उस दूसरे स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके ऊपर प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे तिगुने अविभाग प्रतिच्छेदवाले शक्तिके धारक प्रदेश पाये जाते हैं, उससे कम शक्तिवाले नहीं पाये जाते। अतः जघन्य वर्गसे तिगुने अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्तिके धारक जो प्रदेश हैं वे ही वर्ग हैं। उस द्वितीय स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्रदेशोंसे एक विशेष हीन प्रदेशरूप वर्गोंका जो समूह है वह तीसरे स्पर्धककी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लने जघन्यवर्गमात्रविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनात्रिगुणितप्रमाणमक्कु । व वि ३।४।३ / २ मिदु द्वितीयस्पर्द्धकप्रथमऋणद मेले स्थापिसल्पडुगुं विशेषमिदु । व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२

त्रैराशिकदिदमुत्पन्नराशिप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रविशेषमनेकस्पर्द्धक वर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणितमं रूपोनगच्छसंकलनेय द्विगुणदिदंगुणितमात्रमक्कु । व वि ४।४।२।३। मिदु द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयऋणपंक्तिय मेले स्थापिसल्पडुगमी एरडुं राशिगळुं तृतीयस्पर्द्धकऋणमक्कुमिन्तु प्रथमगुणहानियोळु स्पर्द्धकं प्रतिरूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकासंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळ गुणकारंगळु गच्छमात्रंगळागि नडेववु प्रथमपंक्तिऋणंगळु मत्तं स्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्र विशेषंगळ रूपोनस्पर्द्धकसंख्या गच्छद्विगुणसंकलनमात्रगुणकारंगळु द्वितीयऋणपंक्तियोळप्पुवु—

व वि ३।४।९ २	व वि ४।४।८।९।२ २
व वि ३।४।८ २	व वि ४।४।७।८।२ २
०	०
०	०
व वि ३।४।२ २	व वि ४।४।२।३।२ २
व वि ३।४।१ २	व वि ४।४।१।२।२ २

जघन्यवर्गमात्रविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं त्रिगुणितं स्यात्— व वि ३।४।३ / २ इदं द्वितीयस्पर्धकप्रथमऋणस्योपरि स्थाप्यं । शेषमिदं

व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२

त्रैराशिकोत्पन्नराशिप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनेन च गुणितः व वि ४ ४ ३ २ । इदं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयऋणपंक्तेरुपरि स्थाप्यं । एते द्वे तृतीयस्पर्धकऋणे भवतः । एवं प्रथमगुणहानौ प्रतिस्पर्धकं प्रथमपंक्तौ रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गच्छमात्राः गुणकारा भूत्वा

प्रथम वर्गणा है। इससे ऊपर पूर्ववत् एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये हुए और एक-एक विशेष हीन प्रमाणको लिये हुए वर्गोंके समूहरूप एक-एक वर्गणा

१. ब० सार्धक संकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गच्छमात्राः । द्वितीयपंक्तौ तु स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्र विशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुणऋणे भवतः । एवं प्रथमगुणहानौ प्रतिस्पर्द्धकं प्रथमपंक्तौ रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्राश्च गुणकारा भवन्ति । एषां संकलना० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई प्रथमगुणहानिय प्रथमद्वितीय पंक्तिय ऋणंगळं संकलिसुत्तं विरलु रूपोनगुणहानिस्पर्द्धक-संकलिसुत्तं विरलु रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळु द्विगुणद्विकवार संकलनेयिदं स्पर्द्धकवर्ग्गणा-शलाकावर्ग्गगुणितजघन्यवर्ग्गमात्रविशेषंगळु गुणिसल्पडुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमाससमेता-वन्मात्रमक्कुं। व वि ४।४।९।९।९। (३) मत्तं गुणहानिस्पर्द्धकशलाका संकलनेयिदं रूपोन-रूपोनस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकासंकलनेयिदमुं गुणिसल्पट्ट जघन्य वर्ग्गमात्रविशेषंगळु प्रथमपंक्तिसर्व्व-ऋणसमाससमेतावन्मात्रमक्कु। व वि ३।४।९।९। (२ २) मो राशियं मेलापिसल्वेडि द्वितीयपंक्ति-

प्रथमपंक्तिऋणानि, द्वितीयपंक्तौ तु स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुण-संकलनमात्राश्च गुणकारा द्वितीयपंक्तिऋणानि भवंति—

प्रथमपंक्तिऋणं

व	वि	३	४	९
		२		
व	वि	३	४	८
		२		
		०		
		०		
		०		
व	वि	३	४	३
		२		
व	वि	३	४	२
		२		
व	वि	३	४	१
		२		

द्वितीयपंक्तिऋणं

व	वि	४	४	८	९	२
				२		
व	वि	४	४	७	८	२
			०	२		
			०			
			०			
व	वि	४	४	२	३	२
				२		
व	वि	४	४	१	२	२
				२		
				०		

एषां संकलनायां रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनगुणितस्पर्धकवर्गणाशलाका-वर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाः द्वितीयपंक्तिसर्वऋणं भवति व वि ४।४।९।९।९ (३, १—) पुनर्गुणहानिस्पर्धक-शलाकागच्छसंकलनेन रूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनेन च गुणिते जघन्यवर्गमात्रविशेषाः प्रथमपंक्ति-

होते-होते जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणाओंके होनेपर उनका समूहरूप तीसरा स्पर्धक होता है। इसी अनुक्रमसे जघन्य वर्गको स्पर्धकोंकी संख्यासे गुणा करनेपर प्रथम वर्गणा होती है। प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणसे चौगुना करनेपर चौथे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। पाँच गुना करनेपर पंचम स्कन्धकी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। छह गुणा करनेपर छठे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। इस प्रकार जिस संख्याके स्पर्धककी प्रथम वर्गणा विवक्षित हो जघन्य वर्गसे उतना गुणा करनेपर उस स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। तथा प्रथम वर्गणाके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्व्वऋणसमासचरमगुणकारबोळेकरूपचतुर्त्थांशमं प्रक्षेपिसुत्तं विरलुभयपंक्तिऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ ९ (३) मी प्रथमगुणहानिऋणमं संदृष्टिनिमित्तमागि द्विकदिद मेलेयुं केळगेयुं गुणिसिदुर्दानिदं व वि ४ । ४ । ९ ९ । ९ । २ (२ / ६) मुन्नं सामान्यदिदं तंद प्रथमगुणहानिद्रव्यदोळु— व वि १६ । ४ । ९ । ९ (२) अग्रतनगुणहानियं द्विकदिदं भेदिसि द्विकमं मुंदे स्थापिसि गुणहानियं भेदिसि एकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकागुणितस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकेगळं माडि । ४ । ९ । चतुष्कमं चतुष्कद नवकमं नवकद पार्श्वदोळु स्थापिसल्पट्टुदं मूररिदं समच्छेदमं माडि । व वि ४ । ४ । ९ ९ ९ ६ (६) दी धनराशियोळु कळेयुत्तं विरलु प्रथमगुणहानिशुद्धसर्वाविभागप्रतिच्छेदंगळे तावन्मात्रंगळु यथास्वरूपदिदं बर्प्पुवु । तत्प्रमाणमिदु व वि ४ । ४ । ९९९ । ४ (६) यी प्रथमगुणहानियोळिदेयादिधनमक्कुमुत्तरधनमिल्ल ॥

अनंतरं द्वितीयगुणहानिद्रव्यं पेळल्पडुगुमल्लि प्रथमादिस्पर्द्धकंगळ प्रथमादिवर्ग्गणेगळेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळ मेलिर्द्दधिकरूपंगळं तेगवु मुन्नं संकलिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानिद्रव्य-

---

सर्वऋणं स्यात् व वि ३ ४ ९ ९ (२ २; १—) इदं मेलापयितुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमासचरमगुणकारे एकरूपचतुर्थांशे प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ (३; १—) इदं प्रथमगुणहानिऋणं संदृष्टिनिमित्तं द्विकेन उपर्यधो गुणितं व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ (६; १—) प्राक् सामान्यानीतप्रथमगुणहानिद्रव्य व वि १६ ४ ९ ९ (२; १—) स्थांदोगुणहानि द्विकेन संभेद्य द्विकमग्रे संस्थाप्य गुणहानिं संभेद्य एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणितस्पर्धकवर्गणाशलाकाः कृत्वा ४ । ९ । चतुष्कं चतुष्कस्य नवकं नवकस्य च पार्श्वे संस्थाप्य त्रिभिः समच्छेदीकृते व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ६ (६; १—) तस्मिन् धनराशावपनीतं तदा प्रथमगुणहानिविशुद्धसर्वाविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ (६) इदं प्रथमगुणहानावादिधनं, उत्तरधनं नास्ति । अथ द्वितीयगुणहानिद्रव्यमानीयते—

तत्र प्रथमादिस्पर्धकप्रथमादिवर्गणानां एकगुणहानिस्पर्धकशलाकोपरि स्थिताधिकरूपाणि पृथक्कृत्य

वर्गसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ानेपर द्वितीयादि वर्गणाओंके वर्गोंके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। और आगे प्रत्येक वर्गणामें एक-एक विशेष हीन वर्गोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वद्‌र्धमेतावन्मात्रमेयक्कु । व वि ४।४।९।९।९।४ मिवक्कादिधनसंज्ञेयक्कुमिवु मुन्निन
६।४
प्रथमगुणहानिद्रव्यद मेले स्थापिसल्पडुगुं । प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणार्द्धमनेकस्पद्‌र्धकवर्गणा-
शलाकेगळिंदमेकगुणहानिस्पद्‌र्धकशलाकेगळिंदमुं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पद्‌र्ध-
मेतावन्मात्रमक्कु । व वि १६।४।९। मी राशियं स्पद्‌र्धकं प्रतिगच्छमात्रमवस्थितस्वरूपदिव-
२
मिरुत्तिर्दुदेंदु त्रैराशिकक्रमदिदं गुणहानिस्पद्‌र्धकशलाकेगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानि-
योळु ऋणसहितमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु । व वि १६।४।९९। मीयुत्तरधनद ऋणं तरल्प-
२
डुगुमदेंतेंदोडे उत्तरधनद प्रथमस्पद्‌र्धकसंस्थानमिदु :—

व ९ वि १६–३ यिल्लि द्वितीयादि वर्गणेगळोळिर्द्द ऋणमं तेगदु पृथक् स्थापितमिवु :—
२

व ९ वि १६–२
२

व ९ वि १६–१
२

व ९ वि १६–
२

तेषु पूर्वं संकलितेषु प्रथमगुणहानिद्रव्यस्यार्धं स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ इदमादिधनसंज्ञितं प्राक्तन-
६ २
प्रथमगुणहानिद्रव्यस्योपरि स्थाप्यं । प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणार्धं एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिरेकगुणहानिस्पर्धक-शलाकाभिश्च संगुणितं द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकं स्यात् ।

व वि १६ ४ ९ अयं राशिः प्रतिस्पर्धकं गच्छमात्रमवस्थितरूपेण तिष्ठतीति त्रैराशिकक्रमेण गुणहानिस्पर्धक-
२
शलाकागुणितो द्वितीयगुणहानौ ऋणसहितमुत्तरधनं भवति व वि १६ ४ ९ ९ अस्य ऋणमानीयते—
२

उत्तरधनप्रथमस्पर्धकसंस्थानमिदं व ९ वि १६–३ अत्र द्वितीयादिवर्गणास्थितमृणं पृथक् संस्थाप्य
२

व ९ वि १६–२
२

व ९ वि १६–१
२

व ९ वि १६
२

प्रमाण होता है । तथा जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणाओंके समूहका एक स्पर्धक होता है । इस प्रकार जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्धक होनेपर एक गुणहानि होती है । इसीसे एक गुणहानिमें जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग स्पर्धक कहे हैं । इसकी सहनानी नौका अंक ९ है । उसके ऊपर दूसरी गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व ९ । वि । ३ यिदं संकलिसुत्तं विरलु रूपोनैकस्पद्‌र्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्य-
    २
व ९ । वि । २
    २
व ९ । वि । १
    २

वर्गमात्रस्वविशेषमेकगुणहानिस्पद्‌र्धकशलाकेगळिंदं गुणितमात्रमक्कुं । व वि ३ । ४ । ९ ।
                                                                  २   २

                                                        ३
मत्तमुत्तरधनद्वितीयस्पर्द्धकमिदु   व ९ वि १६–४   यिल्लिद्दं ऋणमं तेगदु पृथक्स्थापितमिदु—
                                    २   २
व ९ वि १६–४
    २
व ९ वि १६–४
    २
व ९ वि १६–४
    २

        ३
व ९ वि ४   अत्रतनाधिकऋणरूपस्थापनेयिदु—
    २ २
व ९ वि ४
    २
व ९ वि ४
    २
व ९ वि ४
    २

व ९ वि ३ संकलितं रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं एकगुणहानि-
    २
व ९ वि २
    २
व ९ वि १
    २

                                                                                              ३
स्पर्धकशलाकागुणितं स्यात्—व वि ३ ४ ९ पुनरुत्तरधनस्य द्वितीयस्पर्धकमिदं—व ९ वि १६—४ अत्रस्थमृणं
                              २ २   २   २
व ९ वि १६—४
    २   १
व ९ वि १६—४
    २
व ९ वि १६—४
    २

वर्गणाके प्रदेशरूप वर्ग हैं। वे प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणासे आगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व ९ वि १ यिवर संकलने रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्व-
२
व ९ वि २
२
व ९ वि ३
२

विशेषमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदमुं गुणितमक्कु । व वि ३ । ४ । ९ । मिदु प्रथम-
२ २

स्पर्द्धक ऋणद मेळे स्थापिसल्पडुगुं । शेषमिदु । व ९ वि । ४ त्रैराशिकदिंदमुत्पन्नराशिप्रमाणं
२
व ९ वि । ४
२
व ९ वि । ४
२
व ९ वि । ४
२

जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदमुं गुणितमात्रं द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रं व वि ४ । ४ । ९ । स्वपूर्व्वऋणपार्श्व-
२

दोळु स्थापिसल्पडुगुमी एरडुं राशिगळु द्वितीयस्पर्द्धकऋणमक्कुं । मत्तमुत्तरधनतृतीयस्पर्द्धकरचना-

---

पृथक् संस्थाप्य व ९ वि ४ (३ ऊपर) अग्रतनाधिकरूपस्थापनेयं व ९ वि ३ संकलिता रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाका-
२ २   २
व ९ वि ४   व ९ वि २
२ १   २
व ९ वि ४   व ९ वि १
२   २
व ९ वि ४
२

गच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषा एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिता व वि ३ ४ ९ प्रथमस्पर्धकऋण-
२ २ १

स्योपरि स्थाप्या शेषमिदं व ९ वि ४ त्रैराशिकोत्पन्नप्रमाणमेकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण एकगुणहानिस्पर्धक-
२
व ९ वि ४
२
व ९ वि ४
२
व ९ वि ४
२

शलाकाभिश्च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ३ स्वपूर्व-
२

होते हैं। इस वर्गणाके वर्गोंमें अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण एक अधिक एक गुणहानिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विन्यासमिदु व ९ वि १६–४ । २ (३ / २) अत्रतनऋणमं तेगदु पृथक्स्थापितमिदु व ९ वि ४ । ३ (२ / २)

व ९ वि १६–४ । २ (२ / २) — व ९ वि ४ । २ (२)

व ९ वि १६–४ । २ (२) — व ९ वि ४ । २ (२)

व ९ वि १६–४ (२) — व ९ वि ४ । २ (२)

अत्रस्थिताधिकरूपऋणविन्यासमिदु व ९ वि ३ (२) इदरसंकलने रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाका-

व ९ वि । २ (२)

व ९ वि । १ (२)

गच्छसंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिदं गुणितमक्कु ।
व वि ३ । ४ । ९ । (२ २) मी राशिद्वितीयस्पर्द्धकप्रथमपंक्तिऋणद मेले स्थापिसल्पडुगुं । शेषमिदु—

ऋणपार्श्वे स्थाप्यं । एतौ द्वौ राशी द्वितीयस्पर्धकऋणं भवतः । पुनरुक्तरचनतृतीयस्पर्धकरचनेऽयं— 5

व ९ वि १६–४ । २ (२ / ३ २) अत्रतनमृणं पृथक्संस्थाप्य—व ९ वि ४ । २ (३ / २ २) अत्रस्थाधिकरूपऋणविन्यासोऽयं—

व ९ वि १६–४ २ (२ १) — व ९ वि ४ । २ (२ १)

व ९ वि १६–४ २ (२) — व ९ वि ४ । २ (२)

व ९ वि. १६–४ २ (२) — व ९ वि ४ । २ (२)

व ९ वि ३ (२) संकलितो रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनेन एकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च गुणित-

व ९ वि २ (२)

व ९ वि १ (२ / ०)

स्पर्धकोंके प्रमाणसे जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना । सो अविभाग प्रतिच्छेदोंका अनुक्रम तो पूर्ववत् ही जानना । और प्रदेशरूप वर्गोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व ९ वि । ४ । २ त्रैराशिकदिंदमुत्पन्नराशिप्रमाण जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमनेकस्पद्‍र्धकवर्गणा-
२
व ९ वि । ४ । २
२
व ९ वि । ४ । २
२
व ९ वि ४ । २
२

शलाकावर्गदिंद द्विगुणितैकगुणहानिस्पद्‍र्धकशलाकगळिंदमुं गुणितमात्रमक्कु । व वि । ४।४।९।२।
२
मी राशि द्वितीयस्पद्‍र्धकद्वितीयऋणद मेळे स्थापिसल्पडुगुमी येरडुं राशिगळुं तृतीयस्पर्द्धकऋण-
मक्कुमल्लदं मुंदे चतुर्थादिस्पर्द्धकंगळोळुत्तरधनदऋणानयनं सुगममेकेंदोडे प्रथमपंक्तिऋणम-
वस्थितरूपदिंदं

व वि ३ । ४ । ९ २ २	व वि । ४ । ४ । ९ । ८ २
व वि ३ । ४ । ९ २ २	व वि । ४ । ४ । ९ । ७ २
० ०	० ०
व वि ३ । ४ । ९ २ २	व वि । ४ । ४ । ९ । २ २
व वि ३ । ४ । ९ २ २	व वि । ४ । ४ । ९ । १ २
व वि ३ । ४ । ९ २ २	

जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः व वि ३ ४ ९ द्वितीयस्पर्धकप्रथमपंक्तिऋणस्योपरि स्थाप्यः शेषमिदं—व ९ वि ४ २
२ २ २
व ९ वि ४ २
२
व ९ वि ४ २
२
व ९ वि ४ २
२

त्रैराशिकेनोत्पन्नप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्धक-शलाकाभिश्च गुणितं व वि ४ ४ ९ २ द्वितीयस्पर्धकद्वितीयऋणस्योपरि स्थाप्यं । उभौ राशी तृतीयस्पर्धक-
२
ऋणं भवतः । अग्रे चतुर्थादिस्पर्धकेषु उत्तरधनस्य ऋणानयनं तु प्रथमपंक्ताववस्थितत्वेन—

प्रमाण प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रमाणसे दूसरी गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रमाण आधा जानना। उसमें एक विशेष घटानेपर दूसरी वर्गणा का प्रमाण होता है। सो इस दूसरी गुणहानिमें विशेषका प्रमाण प्रथम गुणहानिके विशेषके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयपंक्तियोळु रूपोनगच्छगुणकारगुणिततत्त्वविदं गमनदर्शनदिंद मदु कारणमागि रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदमुमेकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकावर्ग्गदिंदमुं जघन्यवर्ग्गमात्रस्वविशेषंगळु गुणिसल्पडुत्तिरलु द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४ । ४ । ९९९ । मत्तमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं रूपोनैकस्पर्द्धकवर्ग्गणा-
२

शलाकासंकलनेयिंदमुं गुणितजघन्यवर्ग्गमात्र स्वविशेषंगळु सर्व्वत्रावस्थितस्वरूपदिंदमिरुत्तिर्द्दपवेंदितु त्रैराशिकक्रमदिंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिऋणमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ३ । ४ । ९ । ९ । मी राशियं मेलापिसल्वेडि द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमासद
२ २

ऋणसहितमागिर्द्द गुणकारदोळेकरूपं प्रक्षिप्तमागुत्तंविरलु उभयपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । मी ऋणमुं मुन्नं स्थूलरूपदिंदं तरल्पट्टुत्तरधनदोळु
२ २

व वि ३ ४ ९ २ २
व वि ३ ४ ९ २ २
० ०
व वि ३ ४ ९ २ २
व वि ३ ४ ९ २ २
व वि ३ ४ ९ २ २
प्रथमपंक्तिऋणं

व वि ४ ४ ९ ८ २
व वि ४ ४ ९ ७ २
० ०
व वि ४ ४ ९ २ २
व वि ४ ४ ९ १ २
०
द्वितीयपंक्तिऋणं

द्वितीयपंक्तौ रूपोनगच्छगुणितत्वेन च गमनदर्शनात् । सुगमं । ततो रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनया एकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः द्वितीयपंक्तिसर्वऋणं स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ पुनरेकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिः रूपोनैकस्पर्धकवर्गणा-
२ २

शलाकासंकलनेन च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः सर्वत्रावस्थितरूपेण तिष्ठति इति त्रैराशिकक्रमेण एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणितः प्रथमपंक्तिऋणं स्यात् । व वि ३ ४ ९ ९ इदं मेलापयितुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणस्य
२ २

ऋणसहितस्थितगुणकारे एकरूपे प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिसर्वऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ इदं पुनः पूर्वं स्थूल-
२ २

प्रमाणसे आधा होता है । इसी प्रकार एक एक विशेष घटानेपर तीसरी आदि वर्गणाओंका प्रमाण होता है । इसी प्रकार दूसरी गुणहानिसे तीसरी गुणहानिकी वर्गणाओंमें वर्गोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व वि १६ । ४ । ९ । ९ । शोधिसि । व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४–१ केलगेयुं मेगेयुं त्रिगु-
२ २

णिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानियोळ् शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कुं । व वि ४ । ४ । ९९ । ९ । ४
६ । २

मत्तं तृतीयगुणहानि द्रव्यं पेळल्पडुगुमल्लि प्रथमादिवर्गणेगळ मध्यदोळ् द्विगुणगुणहानिस्पर्द्धक-शलाकेगळ मेले स्थिताधिकरूपुगळं तेगदु मुन्नं संकलिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानिय आदिधनार्ध-मेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ । मिदु द्वितीयगुणहान्यादिधनद मेळे स्थापि-
६ । २ । २

सल्पडुगुं । मत्तमुत्तरधनं तरल्पडुगुं । प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाचतुर्भागमिमनेकस्पर्द्धकवर्गणा-शलाकेगळिदं द्विगुणगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिदमुं गुणिसुत्तं विरलु तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धक-मेतावन्मात्रमक्कु । व वि १६ । ४ । ९ । २ । मिनितु द्रव्यं स्पर्द्धकं प्रतिगच्छमात्रमवस्थित-
४

स्वरूपदिदमिरुत्तिक्कुमेंदितु त्रैराशिकक्रमदिद गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसुत्तं विरलु ऋणसहितमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु । व वि १६ । ४ । ९९ । २ । मिल्लि ऋणं तरल्पडुगुं ।
४

जघन्यवर्गगुण स्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलने द्विगुणगुणहानिस्पर्द्धक-शलाकेगळिदं गुणिसल्पडुत्तं विरलु प्रथमस्पर्द्धकऋणमेतावन्मात्रमक्कु । व वि । ३ । ४ । ९ । २ ।
४ २

मिनिते ऋणमवस्थितं प्रतिस्पर्द्धकमिरुत्तिक्कुमेंदितु त्रैराशिकक्रमदिदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाके-

---

रूपानीतोत्तरधने व वि १६ ४ ९ ९ संशोध्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४—१ उपर्यधस्त्रिभिर्गुणितं द्वितीय-
२ २ २

गुणहानौ शुद्धमुत्तरधनं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ पुनस्तृतीयगुणहानिद्रव्यमुच्यते—
६ । २

तत्र प्रथमादिवर्गणासु द्विगुणगुणहानिस्पर्धकशलाकानामुपरिस्थिताधिकरूपाणि स्वीकृत्य प्राक् संकलितानि द्वितीयगुणहान्यादिधनार्धं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ इदं द्वितीयगुणहान्यादिधनस्योपरि स्थाप्यं ।
६ २ २

पुनरुत्तरधनमानीयते—

प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाचतुर्भागः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः द्विगुणगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च गुणितः तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकं स्यात् व वि १६ ४ ९ २ एतावत्प्रतिस्पर्धकमस्तीति गुणहानिस्पर्धक-
४

शलाकागुणितं ऋणसहितोत्तरधनं स्यात् व वि १६ ४ ९ ९ २ अत्रत्यमृणमानीयते—
४

जघन्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलना द्विगुणगुणहानिस्पर्धकशलाका-गुणिता प्रथमस्पर्धकऋणं स्यात्—व वि ३ ४ ९ २ एतावत्प्रतिस्पर्धकमस्तीति गुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिते
४ २

प्रमाण तथा विशेषका प्रमाण आधा-आधा जानना । इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग गुणहानियोंके होनेपर एक योगस्थान होता है । इसीसे एक स्थानमें पल्यके असंख्यातवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कु । व वि । ३ । ४ । ९ । २ । ९ ।
४ २
मत्तं जघन्यवर्ग्गगुणस्वविशेषमुमनेकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकावर्ग्गदिदं द्विगुणगुणहानिस्पर्द्धकशला- केगळिदमुं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४।४।९।२।
४
मिन्तु तृतीयादिस्पर्द्धकंगळोळं द्विगुणत्रिगुणादिक्रमदिदं रूपोनगच्छमात्रमिरुत्तिर्कुमें दितु रूपोनैक- गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनदिदं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४ । ४ । ९ । २९९ ।
४ २
मी द्वितीयपंक्तिऋणसमासदोळु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणमं कूडल्वेडि द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणदोळु ऋणसहितमावुदोंदु गुणकारमा गुणकारदोळेकरूपु प्रक्षेपिसल्पडुत्तं विरलु उभयपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमेतावन्मात्रमक्कु । व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । २ ।
४ २
मी ऋणमं मुन्नं स्थूलरूपदिदं तंदुत्तरधनदोळु । व वि १६ । ४ । ९ । ९ । २ ।
४
निरीक्षिसि शोधिसिदोडिदु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । २ । ३ ।
४ २
यिदं मेलेयुं केळगेयुं त्रिगुणितं माडल्पडुत्तं विरलु तृतीय- गुणहानियोळु शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । २
६ । २ । २
मी प्रकारदिदं चतुर्त्थादिगुणहानिगळोळु चरमगुणहानिपर्य्यन्तमुभयधनंगळद्धार्द्धक्रमंगळप्पुवु । विशेषमुंटदावुदें दोडे उत्तरधनदोळु रूपोनपदमात्रगुणकारंगळोळवु चरमगुणहानियोळु येरडुं धनंगळगे रूपोननाना- गुणहानिमात्र प । २ द्विकंगळु भागहारंगळप्पुवु । उत्तरधनगुणकारमुं मत्ते रूपोननानागुणहानि-
 ०
 ७७

प्रथमपंक्तिसर्वऋणं स्यात् व वि ३ ४ ९ २ ९ पुनर्जघन्यवर्गगुणस्वविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुण-
४ २
गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च गुणितो द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ २ एवं तृतीयादिस्पर्धकेषु
४
द्विगुणत्रिगुणादिक्रमेण रूपोनगच्छमात्रमस्तीति रूपोनैकगुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन गुणने द्वितीयपंक्ति- सर्व णं स्यात् । व वि ४ ४ ९ २ ९ ९ अस्मिन् प्रथमपंक्तिसर्वमृणं निक्षेप्तुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणे ऋणसहित-
४ २
स्थितैकगुणकारे एकरूपे प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिसर्वऋणं स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ इदं प्राक्स्थूलरूपानीतोत्तर-
४ २
धने व वि १६ ४ ९ ९ २ संशोध्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ । ३ उपर्यधस्त्रिभिर्गुणिते तृतीयगुणहानौ शुद्ध-
४ ४ २

भाग गुणहानियाँ कही हैं। यह सब कथन जघन्य योगस्थानका है। जो शक्तिकी प्रधानता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्रमक्कुं । सर्व्वंत्रमेरडुं धनंगळो गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाघनस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकावर्ग्गगुणजघन्य-वर्ग्गमात्रविशेषं गुण्यमानराशिसदृशमेयक्कुं । गुणकारमुं मत्ते आदिधनक्के चतुःषड्भागमुपर्य्युपरि द्विगुणहीनमक्कुमुत्तरधनक्के नवषड्भागार्द्धमुपर्य्युपरि द्विगुणहीनमुं रूपोनपदगुणितमुमक्कुमिन्तु गुणहीनाधिकस्वरूपदिदं नडेवर सर्व्वगुणहानिगळ :—

आदिधन	उत्तरधन
व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ ० ६ प ० ७।२	व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ ।९।९।प ० ६ ७७ ० प ७।२
व वि ४।४ ।९९९।४ ६।२।२।२	व वि ४।४।९।९।९।२।३ ६।२।२।२
व वि ।४।४।९।९।९।४ ६।२।२	व वि ४।४।९।९।९।९।२ ६।२।२
व वि ४।४।९।९।९।४ ६।२	व वि ४।४।९।९।९।९।१ ६।२
व वि ४।४।९।९।९।४ ६	०

धनसंकलनासूत्रमिदु ॥ "पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं वैकं सहोत्तराद्यंशगुणं । विपदघ्नचयं विभजेद्व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना ॥" एंदितु मुन्नं संकलितधनं तरल्पट्ट क्रमदिदं समस्त-गुणहानिगळ सर्व्वाविभागप्रतिच्छेदंगळु तरल्पडुगुं । पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं पदं नानागुणहानि

मुत्तरधनं स्यात्— व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ / ४ ६ २ २ एवं चतुर्थादिगुणहानिषु चरमगुणहानिपर्यंतासु उभयधनानि अर्धार्धक्रमाण्यपि उत्तरधनानि रूपोनपदगुणितानि स्युः । संदृष्टिः—

आदिधनं	उत्तरधनं
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ० ६ प २ ० ७ ०	१ — व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ प ० ७ ० ६ प ७ ७ ० ७ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २ २ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ३ ६ २ २ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ ६ २ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ १ ६ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६	०

लेकर किया है । प्रदेशोंकी प्रधानतासे कथन करते हैं । सब जीवके प्रदेश लोक प्रमाण है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पल्यासंख्यातैकभागमक्कुं प/aa एतावन्मात्रद्विकंगळनन्योन्याभ्यासमं माडुत्तं विरलु पुट्टिद राशियुं

पल्यासंख्यातैकभागमात्रमप्प अन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुं प/a व्येकं एकरूपविंदं होनमप्प राशियं

प/a सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तरधनांशंगळं कूडि गुणिसि १३ प/a वी राशियं विपदघ्नचयं पदविंदं

गुणिसल्पट्टुत्तरधनचयविंदं ९ प/aa होनं माडिदी राशियं १३ प ९ प/aaa व्येकपदान्योन्यगुणहृताद्य-

च्छिदिना विभजेत् । रूपहीनपदप्रमित प/aa रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गविंदं पुट्टिद राशि- ५

यन्योन्याभ्यस्तराशयर्द्धमक्कु प/a२ मिदनादिच्छेदविंदं षड्रूपं गळिदं गुणिसि प.६/a।२ व राशियिदं

भागिसुवुदंतु भागिसिद राशियं तत्रस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमाडि व वि ४।४।२।९।९।१३ प-९प/a aa ६ ० / a २

ऋणमं तेगदु पृथक्स्थापिसिदोडे धनऋणराशिद्वयमिन्तिवक्कुं :—

धन

व वि ४।४।९।९।९।१३ प/a ६ प/a २ व वि ४।४९।२९९ प ६ प aa/a २ मिलिल ऋणधनंयोरैक्यमें वितु धन-

---

संकलनसूत्रं पदमात्रं प/aa गुणान्योन्याभ्यासं प/a व्येकं प/a सहोत्तराद्यंशगुणं १३ प/a विपदघ्नचयं १०

१३ प—९ प/a aa व्येकपदा प/aa न्योन्यगुण प/a २ हृताद्यच्छिदिना प ६/a २ विभजेत् इति भक्तराशि स्वावस्थित-

गुण्यस्य गुणकारं कृत्वा व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ प—९ प/a aa ६ प २/a ऋणे पृथक्स्थापिते धन ऋणे एतावती स्यातां

व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ प/a ६ प/a २ व वि ४ ४ ३ ९ ९ ९ प aa/६ प/a २ अत्र ऋणधनयोरैक्यमिति धनस्थं उभयधनगुणकारांश-

---

पीछे अंक संदृष्टिमें ३१०० बताया है। नानागुणहानि पल्यके असंख्यातवें भाग। इसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोळिद्दंतुभयधनगुणकारांशमात्रऋणमं पृथग्भूतं माडि व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । १३ । १ ऋण-
६ प २
a

बोळु कूडिरिसि :— व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ९ । प धनदगुणकारभागहारंगळनपवर्त्तिसि
६ प aa
a २

गुणिसि भागिसिदोडे रूपचतुष्टयगुणकारमुं त्रिभागाधिकमुमक्कु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४
१
३

मी त्रिभागदोळु ऋणमं निरीक्षिसियपवर्त्तिसिदोडेकरूपासंख्यातैकभागमक्कुं १ मेकेंदोडे नाना-
a

गुणहानिगुणकारमं नोडलु भागहारभूतान्योन्याभ्यस्तराशियर्द्धमसंख्यातगुणितमप्पुदरिंदमा रूपासं-
ख्यातयिकभागमं कळेदोडे किंचिदूनत्रिभागाधिकरूपचतुष्टयं गुणकारमक्कु :—
व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ मी सर्व्वजघन्योपपादयोगस्थानद अविभागप्रतिच्छेदंगळं मुन्निनंते
१
३

चारिनवगा अट्ठ एंदु गुणहानियनुत्पादिसि चतुर्ग्गुणकारदोळेकद्विकमं कोंडु गुणिसि दोगुणहानियं माडि चतुष्कदिंदं गुणिसि जघन्यस्पर्द्धकमनुत्पादिसि द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्ग्गदिंदं गुणिसि । व वि १६ । ४ । ९ । ९ । २ । चरमगुणकारद्विकदोळु मुन्निनंते किंचिदूनषड्भागमं—
व वि १६ । ४ । ९ । ९ । १–। २ । साधिकं माडि । प्र । व । वि । १६ । ४ । फ १ । इ व वि १६ ।
३ २

४ । ९ । ९ । २ । लब्धमिनितु स्पर्द्धकंगळप्पुवु । ९ । ९ । २ । इवु गुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्ग्गमं

मात्रं ऋणं पृथक्कृत्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ १ ऋणे प्रक्षिप्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ प अपवर्तितं
६ प aa
a २ ६ प
a २

१
रूपासंख्यातैकभागः स्यात् a धनस्य गुणकारभागहारावपवर्त्य भक्त्वा तृतीयभागे तद्रूपासंख्यातैकभागेऽपनीते किंचिदूनत्रिभागाधिकरूपचतुष्टयगुणकारः स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ । अमी सर्वजघन्योपपादयोगस्थान-
१—
३

स्याविभावप्रतिच्छेदाः प्राग्वत् चारिनवगा अट्ठ इति गुणहानिमुत्पाद्य चतुर्गुणकारे एकद्विकं स्वीकृत्य दोगुणहानिं कृत्वा चतुष्केन संगुण्य जघन्यस्पर्धकमुत्पाद्य द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्धकशलाकावर्गेण संगुण्य व वि १६ ४ ९ ९ २ चरमगुणकारद्विकं प्राग्वत् किंचिदूनषड्भागेन व वि १६ ४ ९ ९ १—२ साधिकं कृत्वा प्र व वि १६ ४ ।
३ २

अंक संदृष्टि पाँच है । एक गुणहानिका आयाम जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग । इसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विगुणिसिदनितकुमवर प्रमाणमिदु a a २ यिदेत्तलानुं प्रतरासंख्येयभागमक्कुमेंदु संकिसल्वेडे केंदोडे "यिगिठाणफड्ढयाओ वग्गणसंखापदेसगुणहाणी। सेडियसंखेज्जदिमा असंखलोगा हु अविभागा ॥" एंबी सूत्राभिप्रायदिदं श्रेण्यसंख्यातैकभागमेयक्कु a मी जघन्ययोगस्थानद मेले सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकंगळु पेर्च्चुत्तं पोगियोंदोंदपूर्व्वस्पर्द्धकंगळु पेर्च्चुत्तं पोगियुत्कृष्टस्थान पुट्टुगुमेंबुदं मुंदणसूत्रद्वयदिदं पेळ्दपरु :—

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तावरफड्ढया उड्ढी।
अंतरछक्कं मुच्चा अवरट्ठाणादु उक्कस्सं ॥२३०॥

अंगुलासंख्यभागप्रमाणमात्रावरस्पर्द्धकवृद्धिरन्तरषट्कं मुक्त्वावरस्थानादुत्कृष्टं ॥

अवरस्थानात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तभवंगळ चरमभवद त्रिविग्रहंगळोळु प्रथमविग्रहदुपपादयोगसर्व्वजघन्यस्थानदत्तणिनन्तरस्थानं मोदल्गोंडु प्रथमस्य हानिर्व्वा नास्ति वृद्धिर्व्वा नास्ति येंबनंतरयोगस्थानदोळु वृद्धियुंटप्पुदरिदमा द्वितीयस्थानं मोदल्गोंडु सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानं पुट्टुवन्नेवरं सांतरनिरंतर सांतरनिरंतरगळेंब त्रिविधयोगस्थानंगळोळु सर्व्वत्र निरंतरक्रमदिदं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्र प्रमितंगळु जघन्यस्पर्द्धकंगळु। युगपत् स्थान स्थानं प्रति पूर्व्वपूर्व्वस्थानंगळ मेले वृद्धियागियुत्तरोत्तरस्थानंगळागुत्तं पोपुवन्तु पेर्च्चुत्तं पोगुत्तं विरलु।

फ १। इ व वि १६ ४ ९ ९ २ लब्धमेतावंति स्पर्धकानि ९ ९ २। साधिकद्विगुणगुणगुणहानिस्पर्धकशलाकावर्गमात्राणि a a २। इमानि प्रतरासंख्येयभाग इति नाशंकनीयं 'इगि ठाणप्फड्डयाओ' इति सूत्रेण श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रतिपादनात्। a ॥२२९॥ तज्जघन्ययोगस्थानस्योपरि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्धकानि वर्धित्वा वर्धित्वा एकैकमपूर्वस्पर्धकं, एवं गत्वोत्कृष्टस्थानमुत्पद्यते इत्यग्रतनसूत्रद्वयेन आह—

तस्मात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य सर्वजघन्यचोपपादयोगस्थानादनंतरस्थानमादिं कृत्वा सर्वोत्कृष्टयोगस्थानोत्पत्तिपर्यंतं सांतरेषु निरंतरेषु सांतरनिरंतरेषु च अमीषु योगस्थानेषु निरंतरं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि जघन्यस्पर्धकानि युगपत्प्रतिस्थानं वर्धंते तदा एकैकमुत्तरोत्तरस्थानमुत्पद्यते ॥२३०॥ तथा सति—

अंक संदृष्टि आठ है। इत्यादि सब पूर्ववत् जानना। ऊपर टीकामें अविभाग प्रतिच्छेदोंके मिलानेका विधान विस्तारसे किया है। यह जघन्य योगस्थानका कथन हुआ ॥२२९॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके सबसे जघन्य उपपाद योगस्थान होता है। उसके अनन्तरवर्ती स्थानसे लेकर सर्वोत्कृष्ट योगस्थानकी उत्पत्ति पर्यन्त सान्तर, निरन्तर और सान्तरनिरन्तर सब ही योगस्थानोंमें-से प्रत्येक योगस्थानमें निरन्तर सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक युगपत् बढ़ते हैं। तब उत्तरोत्तर एक-एक स्थान उत्पन्न होता है ॥२३०॥

विशेषार्थ—जघन्य स्थानमें प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धकमें जितने अविभागी प्रतिच्छेद होते हैं उनसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुने अविभाग प्रतिच्छेद उससे ऊपरके दूसरे योगस्थानमें होते हैं। इसी प्रकार दूसरेसे तीसरेमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरिसायामेणुवरिं सेढिअसंखेज्जभागठाणाणि ।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं फड्ढयमिह जायदे चयदो ॥२३१॥

सदृशायामेनोपरि श्रेण्यसंख्येयभागस्थानानि। चटित्वा एकैकमपूर्वं स्पर्द्धकमिह जायते चयतः ॥

वृद्धिप्रमाणमायामः । इति प्राक्तनप्रतिपदं। सदृशायामेनोपरि सर्व्वजघन्ययोगस्थानायामद समानायामद मेले चयतः सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकंगळु सर्व्वजघन्यदनंतर द्वितीय स्थानं मोदल्गोंडु पेर्च्चुत्तं पेर्च्चुत्तं पोगियोंदेडेयोळु जघन्यस्थानायामद मेळे पेच्चिद चयविदमोंदु अपूर्व्वस्पर्द्धकं पुट्टुगुं। अदेनितु स्थानंगळं नडेदु पुट्टुगुमेंदोडे अनुपातत्रैराशिकविंदमा स्थानंगळ साधिसल्पडुगु। प्र व वि। १६। ४। २। फ। स्था। १। इ। व। वि। १६। ४। ९ ना इनितिनि-
ᴏ अ
तविभागप्रतिच्छेदंगळ्पेंचियोंदु स्थानविकल्पं पुट्टुत्तं विरलागळिनितविभागंगळु पेच्चिदल्लिगेनितु स्थानविकल्पंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकमं माडि बंद लब्धप्रमितं अ ९ ना वि १६। ४ / व वि अ १६। ४। २ ᴏ अपवर्तित-

---

तत्सर्वजघन्ययोगस्थानस्य समानायामस्योपरि उक्तप्रमाणचयेन एकमपूर्वस्पर्धकमुत्पद्यते। कति स्थानानि गत्वा गत्वा ? इति चेत् यद्येतावत्सु अविभागप्रतिच्छेदेषु प्र—व वि १६ ४ २ ᴏ वर्धितेषु एकस्थानं फ स्था १ तदैतावत्सु इ व वि १६ ४ ९ ना (१—) अ वर्धितेषु कति स्थानानि ? इति त्रैराशिकेन लब्धमात्राणि

भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक अधिक होते हैं। तीसरेसे चौथेमें, चौथेसे पाँचवेंमें, इसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट योगस्थान पर्यन्त एक-एक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते-बढ़ते होते हैं। आगे छह अन्तर कहेंगे, उनको छोड़कर जघन्य स्थानसे उत्कृष्ट पर्यन्त जीवोंके योगस्थान होते हैं ॥२३०॥

सबसे जघन्य योगस्थानके समान आयामके ऊपर पूर्वोक्त प्रमाण वृद्धिरूप चयके होनेपर एक-एक अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है। कितने-कितने स्थान जानेपर होता है? इसके उत्तरमें त्रैराशिक करना चाहिए। सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धकोंके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हों उनके बढ़नेपर यदि एक स्थान होता है तो जघन्य स्थानके सब अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें एक गुणहानि सम्बन्धी स्पर्धकोंकी संख्याको नाना गुणहानिसे गुणित उनकी अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने जघन्य स्पर्धक बढ़नेपर कितने स्थान होंगे, ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धराशिका प्रमाण जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग आता है। इसी प्रकार इसके अनन्तर समान आयामको लिये द्वितीय स्थानसे लेकर, सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक एक स्थानमें

१. अ इत्यपूर्व्वस्पर्द्धकं कथयति नायं भागहारः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिनितु ९ ना / अ २ ∂ श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रस्थानंगळप्पुवु । ∂ ।=। मत्तमन्ते तदनंतरसदृशायामद द्वितीयस्थानं मोदलगोंडु श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रतद्योग्ययोगस्थानंगळु सवृद्धिकंगळु नडदु मत्ते वोंदु द्वितीयापूर्व्वस्पर्द्धकं पुट्टुगुमी क्रमदिंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशिप्रमित ∂∂ मपूर्व्वस्पर्द्धमपूर्व्वस्पर्द्धकंगळु पेच्चिदलिल जघन्ययोगस्थानं द्विगुणमक्कु मी क्रमदिदं तद्द्विगुणद्विगुणक्रमदिदं नडदु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसर्व्वोत्कृष्ट योगस्थानं पुट्टुगुमी यर्त्थमं प्रद्योतिसलसमर्त्थमप्प रचनाविशेषसंदृष्टियिदु—

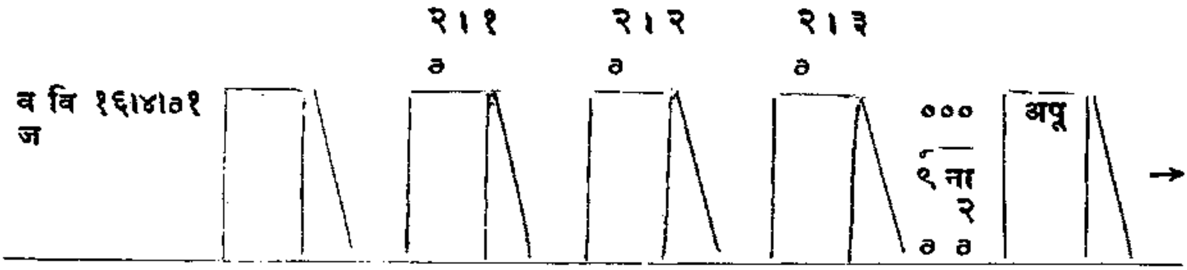

प्र व वि १६।४।२ ∂ । फ स्था १।इ व वि १६।४।∂ लब्धांतरालस्थानविकल्पंगळु एतावन्मात्रंगळु । ७।१ ∂ ∂

व वि १६ ४ ९ ना (१—) / व वि १६ ४ २ अ ∂	अपवर्तितानि	(१—) ९ ना / अ २ ∂

श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राणि भवंति ∂ तथा तदनंतरं सदृशायामं द्वितीयस्थानमादिं कृत्वा श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रतद्योग्ययोगस्थानानि सवृद्धिकानि गत्वा पुनरेकं द्वितीयमपूर्वस्पर्धकमुत्पद्यते । एवमेकहानिगुणस्पर्धकशलाकामात्रे ∂∂ ष्वपूर्वस्पर्धकेषु जघन्ययोगस्थानं द्विगुणं स्यात् । एवं द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवस्य सर्वोत्कृष्टयोगस्थानमुत्पद्यते । अस्य संदृष्टिः—

बढ़ इस प्रकार जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान होनेपर दूसरा अपूर्व स्पर्धक होता है। उसके ऊपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान होनेपर तीसरा अपूर्व स्पर्धक होता है। इसी प्रकार एक गुणहानिमें जितने स्पर्धकोंका प्रमाण कहा था उतने अपूर्व स्पर्धक होनेपर जघन्य योगस्थान दूना होता है। यहाँ अपूर्व स्पर्धक होनेका विधान समझमें न आनेके कारण नहीं लिखा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

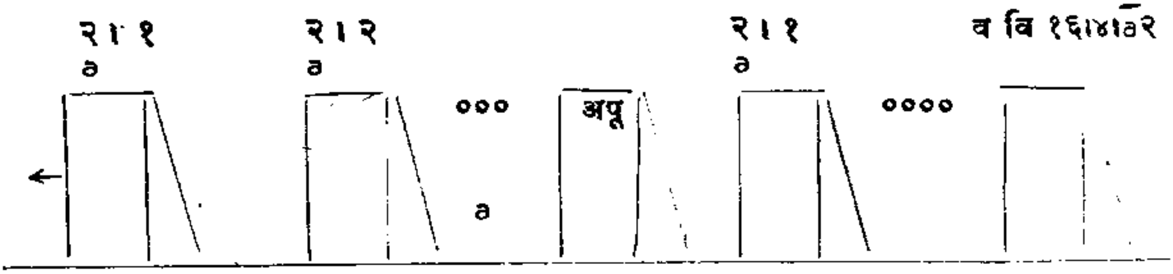

प्र व वि १६।४।२ (ə)   इ व वि १६।४।ə२   प्र व वि १६।४।२ (ə) इ वि १६। ४ । ə २ । २ लब्ध य न-

फ स्था १   लब्ध ə२।२ (ə)   फ स्था १   विकल्प ə २ । २ । २ (ə)

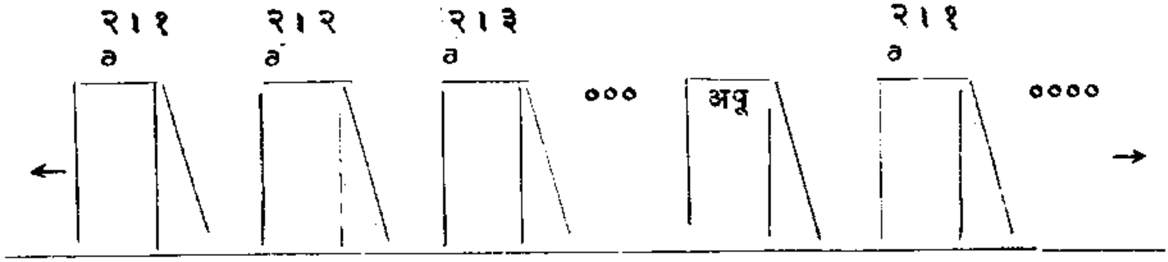

प्र व वि १६।४।२ (ə) फ स्था १ । इ व वि १६।४।ə२।२।२ लब्धस्थानविकल्प ə २ । २ । २ । २।

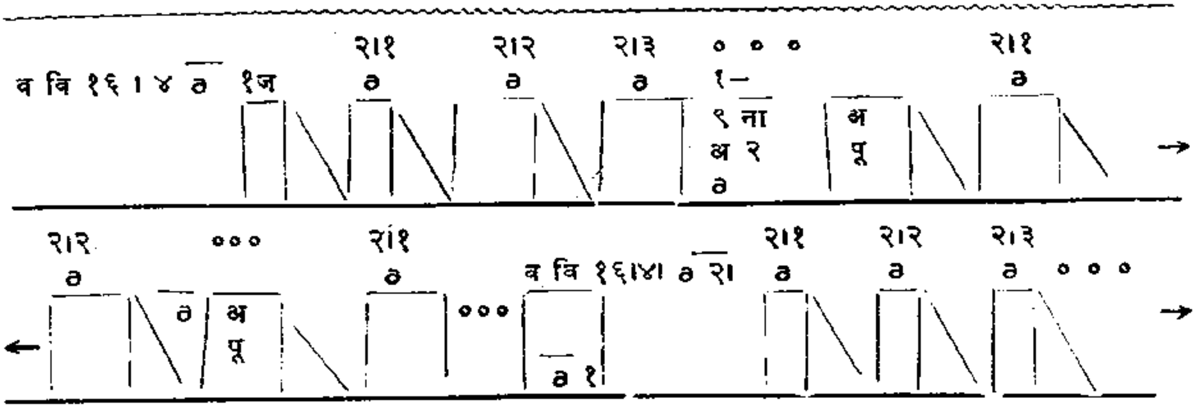

विशेषार्थ—एक गुणहानिमें स्पर्धकोंका प्रमाण जगतश्रेणिमें दो बार असंख्यातका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना कहा था। सो उतने ही अपूर्व स्पर्धक होनेपर जो योगस्थान होता है उसके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं वे जघन्य योगस्थानके अविभाग
५ प्रतिच्छेदसे दूने हैं। उससे ऊपर उतने ही अपूर्व स्पर्धक होनेपर जो योगस्थान होता है वह उस योगस्थानसे भी दूना होता है। इस प्रकार क्रमसे दूना-दूना होते संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

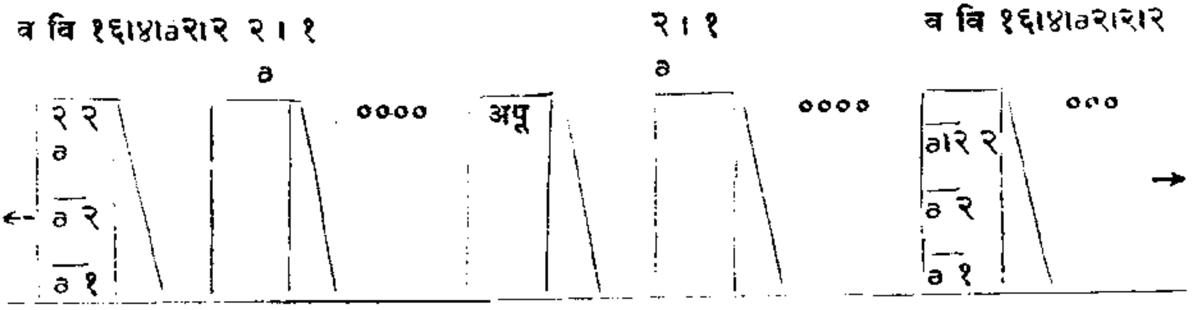

प्र व वि १६।४।२ फ स्था १ इ व वि a २।२।२।२। लब्धस्थानविकल्पं = a २।२।२।२।२।
a a

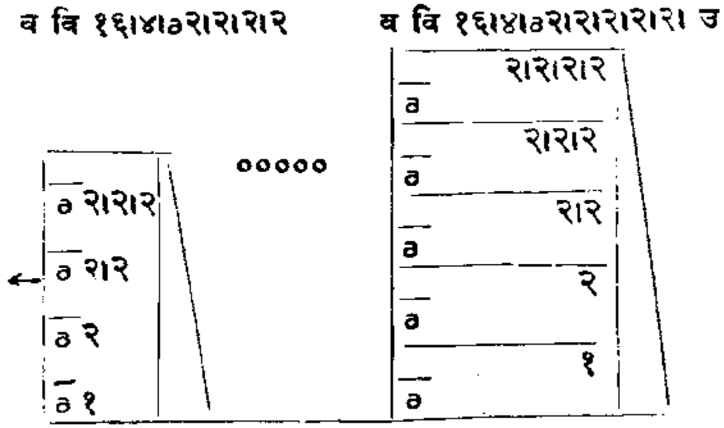

अद्धणं a २२२२२ गुण गुणिय a २२२२२२ आदिविहीणं a २३१ ई ऊणुत्तरभजियं a २३१
a a a a १

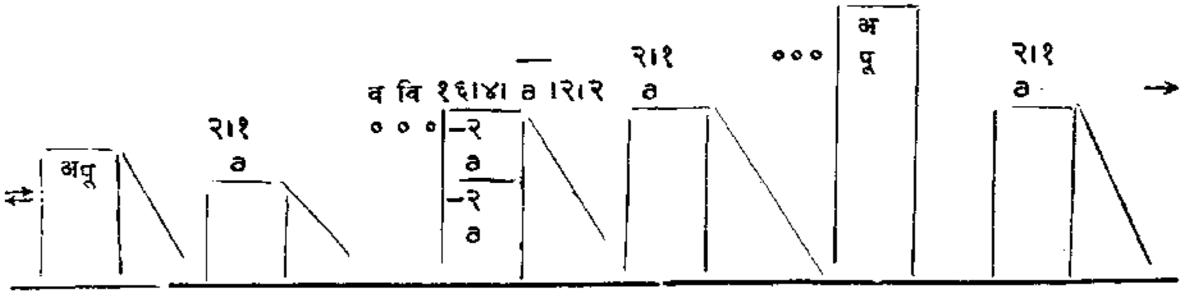

व वि १६।४।a।२।२।२।व वि १६।४।a२।२।२।२।व वि १६।४a२।२।२।२२।उ

जीवका सर्वोत्कृष्ट परिणाम योगस्थान होता है। यहाँ स्थान भेद लानेके लिए त्रैराशिक करना चाहिए। उसमें सर्वत्र प्रमाणराशि सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग मात्र जघन्य स्पर्धक है, फलराशि एक स्थान, इच्छाराशि जगतश्रेणिके असंख्यातवाँ भाग मात्र जघन्य स्पर्धकोंको ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपोनगुणेन हतं गुणितं ∂ २ ३१ । १ प्रभवेण भाजितं ∂ २ ∂∂२ ∂ ३१ सैकं ३२ यतिकृत्वो ∂ गणभक्तं ३२ । रूपं स्यात्तति भवेद्गच्छः । इवन्योन्यभ्यस्तगुणकारशलाकंगळक्कुं । ई प्रति-
२२२२२

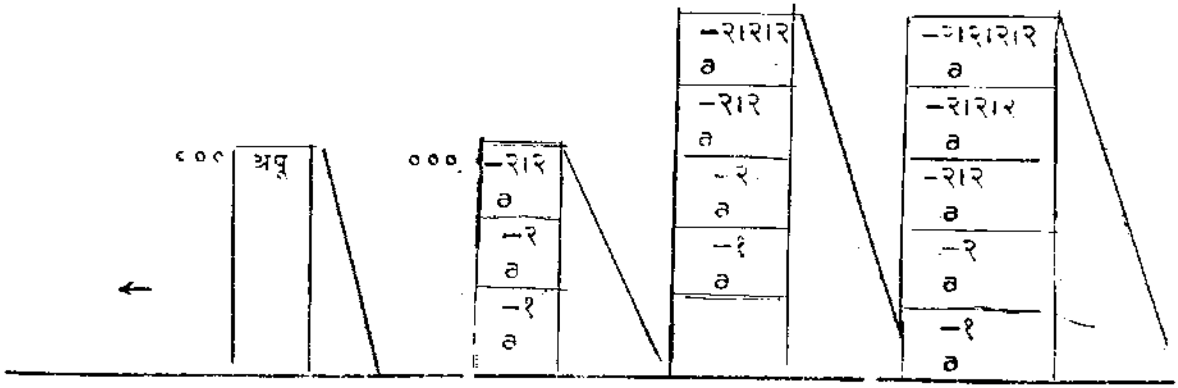

प्र—व वि १६ ४ २ ∂ फ—स्या १ । इ—व वि १६ ४ ∂ लब्धस्थानविकल्पाः ∂ २ ∂ —१ पुनः प्र—व वि १६ ४ २ ∂ फ—स्या १ इ व वि १६ ४ ∂ २ । लब्धस्थानविकल्पाः ∂ २ २ ∂ पुनः प्र–व वि १६ ४ २ ∂ फ— स्या १ इ व वि १६ ४ ∂ २ २ लब्धस्थानविकल्पाः ∂ २ —२ २ ∂ पुनः प्र व वि १६ ४ २ ∂ । फ—स्या १ । इ व वि १६ ४ ∂ २ २ २ । लब्धस्थानविकल्पाः ∂ २ —२ २ २ ∂ पुनः प्र–व वि १६ ४ २ ∂ । फ—स्या १ इ व वि १६ ४ ∂ २ २ २ २ । लब्धस्थानविकल्पाः ∂ २ —२ २ २ २ ∂ अंतधणं ∂ २ २ २ २ २ २ ∂ गुणगुणियं ∂ २ २ २ २ २ २ २ ∂ आदि ∂ २ ∂ विहीणं ∂ २ ३१ रूऊणुत्तरभजियं इतीदं सर्वयोगस्थानविकल्पप्रमाणं भवति ∂ २ १ ∂ —३१ इदं पुनः रूपोनगुणेन हतं गुणितं ∂ २ ३१ १ प्रभवेन भाजितं—∂ २—२ ∂∂∂ —३१ सैकं ३२ : यतिकृत्वो गुणभक्तं ३२ रूपं स्यात्[1] तति भवेत् गच्छः,
२२२२२

क्रमसे एक, दो, चार, आठ, सोलह और बत्तीस गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। यहाँ फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको

१. ब. स्यात्तै = तावान् = यावतो वारान् १ ति भ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पादने मुंदे व्याख्यानदोळु बरेयल्पट्टपुदिदरभिप्रायमेनेंदोडे जघन्ययोगस्थानद ə मेले तावन्मात्रं पेर्चिद ə̄ द्विगुणस्थानं पुट्टिद कारणं प्रथमत्रैराशिकदोळु ə̄ इनितु पेर्च्चुगे यिच्छाराशियें दरि-वुदु । इर्दारि प्रथमांतराळद योगविकल्पंगळु बंदवु मत्ते द्विगुणस्थानद ə̄ २ मेले अनितें ə̄ २ पेर्चिदचतुर्ग्गुणस्थानं ə̄ २ । २ पुट्टिद कारणं द्वितीयत्रैराशिकदल्लि ə̄ २ इदु इच्छाराशि । यिर्दारि द्वितीयांतरालविकल्पंगळु बंदुवु मत्तं मुंदे इदे क्रममेंदु भाविसिकोंबुदु ॥

ई जघन्ययोगस्थानं मोदल्गोंडु सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानपर्य्यंतमिर्द्द समस्तयोगस्थानविकल्पंगळु तरल्पडुगुमवेंतेंदोडे जघन्ययोगस्थानं मोदल्गोंडु सवृद्धिकस्थानंगळु नडेदावुदो देडेयोळ् जघन्ययो-गस्थानं द्विगुणमक्कुमल्लिगेनितु स्थानविकल्पंगळक्कुमेंदोडे त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । इनितविभाग-प्रतिच्छेदंगळु पेर्चिदडोंदु स्थानविकल्पमक्कु मागळेनितविभागप्रतिच्छेदंगळु पेर्च्चिदल्लिगेनितु स्थानविकल्पंगळप्पुवेंदितनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र ə̄/ə फ सा १ इ ə̄ । लब्धस्थानविकल्पंगळि-

---

इत्यन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाः स्युः । जघन्यात् आ उत्कृष्टं सर्वयोगस्थानविकल्पेषु यत्र यत्र जघन्यं द्विगुणं द्विगुणं स्यात् तत्र तत्र कति कति विकल्पाः स्युः ? इति चेत् उच्यते—एतावदविभागप्रतिच्छेदवृद्धौ एको विकल्पः तदा एतावद्वृद्धौ कति इति प्र—व वि १६ ४ २/ə फ—स्था १ इ व वि १६ ४/ə—। लब्धाः स्थान—

सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसको अनुक्रमसे एक, दो, चार आठ और सोलहसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने स्थानभेद होते हैं।

यहाँ अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा सोलह पर्यन्त ही गुणकार कहा है। इनका जोड़ देते हैं—

'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं' इस गणित सूत्रके अनुसार अन्त-का धन जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उससे सोलह गुना है। उसको गुणकार दोसे गुणा करें। उसमें आदिका प्रमाण, जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग दें उतना है। उसको घटानेपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करके इकतीससे गुणा करें, उतना होता है। तथा एक हीन उत्तर एक, उससे भाग देनेपर भी इतना ही रहा। सो इतना सब योगस्थानोंके भेदोंका प्रमाण है। उसको एक हीन गुणकार एकसे भाग देनेपर भी इतना ही रहा। उसको आदिसे भाग देनेपर लब्ध इकतीस आया। उसमें एक मिलानेपर बत्तीस हुए। सो जितनी बार गुणकार दोका भाग देनेपर एक रहता है उतना गच्छ जानना। सो पाँच बार दोका भाग बत्तीसमें देनेपर एक रहता है अतः अन्योन्याभ्यस्त राशिकी गुणकार शलाका पाँच है। पाँच जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण बत्तीस आता है।

इसी प्रकार जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त सब योग स्थानोंके जघन्य भेदोंमें जघन्य योगस्थान जहाँ-जहाँ दूना होता है वहाँ-वहाँ योगस्थानोंके कितने भेद होते हैं सो कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नितप्पुवु —। १ ə। २ ə मत्तं प्र व वि १६। ४। २ ə फ स्था १ इ व वि १६। ४ ə लब्धस्थानविकल्पंगळु —२ ə२ ə मत्तं प्र व वि १६। ४। २ ə। फ स्था १ इ व वि १६। ४।—२२ ə लब्धस्थानविकल्पंगळु ə२। २२ ə मत्तं प्र व वि १६। ४। २ ə। फ स्था १। इ। व वि १६। ४। —२२२ ə लब्धस्थानविकल्पंगळु ə २ २२२ ə। यितु स्थानविकल्पंगळु द्विगुणद्विगुणवृद्धिस्थानंगळंतरळंगळोळ् द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानदोळु पेच्चिद पेच्चुगेयनिच्छाराशियं माडिद त्रैराशिकदलि प्र व वि १६। ४२ ə। फ स्था १। इ। व वि १६। ४। ə ə छे २। लब्धस्थानविकल्पंगळु ə २ छे ə ə २ एतावन्मात्रंगळप्पुवी चरमस्थानविकल्पंगळनन्तधणं गुणगुणियं —छे२ ə २ ə २ ə आदिविहीणं —छे ə २ ə ə रूऊणुत्तरभजियमेकरूपदिंदं भागिसिद राशि तावन्मात्रसंयवकुमी सर्व्वयोग-

---

विकल्पाः एतावंतः ə २ १ ə पुनः प्र— व वि १६ ४ २ ə फ—स्था १। इ व वि १६ ४—२ ə लब्धस्थानविकल्पाः एतावंतः ə २ ə २ पुनः प्र—व वि १६ ४ २ ə फ—स्था १ इ व वि १६ ४—२ २ ə। लब्धाःस्थानविकल्पाः एतावंतः ə २ २ २ ə पुनः प्र—व वि १६ ४ २ ə। फ—स्था १। इ व वि १६ ४—२ २ २ ə। लब्धाःस्थानविकल्पाः एतावंतः ə २ २ २ २ ə एवं गत्वा सर्वोत्कृष्टयोगस्थाने इच्छाराशी कृते प्र—ब वि १६ ४ २ ə फ—स्था १ इ व वि १६ ४ —छे ə ə २ लब्धस्थानविकल्पाः एतावंतः—२ छे ə ə ə २ एते च अंतधणं गुणगुणियं ə २ छे २ ə ə २ आदिविहीणं

प्रमाण फल और इच्छाराशि क्रमसे पूर्वोक्त प्रमाण जानना। इतना ही विशेष है कि यह कथन अंक संदृष्टिकी अपेक्षा न होकर यथार्थ अपेक्षा है। अतः पूर्वमें जैसे अन्तधनमें

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

स्थानविकल्पंगळगे नानागुणहानिशलाकेगळरियल्पडवदु कारणमागि तत्तदन्तरालस्थानंगळु द्विगुण-द्विगुणक्रमदिंदमेनितु स्थानंगळनडेववें बि नानागुणहानिशलाकेगळु गच्छमक्कुमवु तरल्पडुत्तिदे रूपोन गुणेन हतं गुणितं प्रभवे भाजितं सैकं । यतिकृत्वो गुणभक्तं रूपं स्यात्तति भवेद्गच्छं ॥

एंदितो करणसूत्राभिप्रायदिंदं नानागुणहानिशलाकेगळेनितप्पुवेंदोडे केळ्पेळ्वपें :—

रूपोनगुणेन द्विगुणगुणसंकलनविधानमप्पुदरिंदं गुणकारमेरडरोळों दु रूपं कळेदोडों दे रूपमक्कुमदरिंदं हतं गुणितं गुणिसल्पट्ट धनरूपसर्व्वस्थानविकल्पंगळं ∂ २ छे ∂ ∂ प्रभवेण भाजितं प्रभवमेंबुदादियस्थानविकल्पंगळवरिंद भागिसल्पट्ट राशियं ∂ २ छे ∂∂∂ २ ∂ ∂ अपवर्त्तितमिदु छे ∂ सैकं एकरूपं कूडिदुदं छे ∂ यतिकृत्वः वारे कृत्व...एंदु यावतो वारान् यतिकृत्वः एनितु वारंगळनु गुण-भक्तं रूपं गुणकारभूतद्विकदिंदमी यन्योन्याभ्यस्तराशियं छेदासंख्यातैकभागमात्रराशियं भागिसिद वारंगळ रूपं तति तावत्प्रमितं गच्छं स्यात् गच्छमक्कुमेंदितु तिर्य्यग्रूपदिंदं नानागुणहानिशलाकेगळु असंख्यातरूपहीनपल्यवर्ग्गशलाकाप्रमितमप्पु । ∂ । बेकेंदोडे छेदराशिय अर्द्धच्छेदंगळप्प वर्ग्गशला-केगे द्विकमनित्तु संवर्ग्गमं माडुत्तिरलु पल्यच्छेदराशि पुट्टुगुं । विरलनराशीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ एंदा वर्ग्गशलाकेय हीनरूपुगळऽसंख्या-

---

—२ छे ∂ ∂ ∂ रूऊणुत्तरभजियं इति सर्वयोगस्थानविकल्पाः स्युः । त एव पुनः रूपोनगुणेन एकेन हताः ∂ २ छे १ ∂ ∂ प्रभवेन आदिस्थानविकल्पैर्भाजिताः ∂ २ छे १२ ∂ ∂–∂ ∂ अवर्तिताः छे १ ∂ एकरूपसहिताः छे ∂ यावतो वारान् गुणेन द्विकात्मकेन भक्ताः संतो रूपं जायते ते वाराः तिर्यग्रूपेण नानागुणहानिशलाकाः स्युः । ताश्च असंख्यातरूपैर्हीन-

---

सोलहका गुणकार कहा, वैसे ही यहाँ क्रमसे दूना-दूना पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागका आधा प्रमाण मात्र गुणकार जानना। सो 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार जोड़नेपर सब योगस्थानोंके भेदोंका प्रमाण होता है। उसको एक हीन गुणकारसे गुणा करके आदिस्थानसे भाग दें, एक मिलानेपर पल्यके अर्धच्छेदोंका असंख्यातवाँ भाग होता है। उसमें जितनी बार गुणकार दोसे भाग देनेपर एक रहे उतनी नाना गुणहानि शलाका है। सो असंख्यात हीन पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण जानना। क्योंकि पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेद मात्र प्रमाण होता है। और उसमें घटाये असंख्यात। उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर असंख्यातका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तंगळं विरळिसि रूपंप्रति द्विकमं कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलावुदोंदु लब्धराशियदुवुमसंख्यातमेयक्कुमा राशि छेदराशिगे हारमक्कुमप्पुदरिंदमसंख्यातरूपहीनवर्गशलाकेगळे नानागुणहानिशलाकेगळिल्लिगप्पु वेंबुदु निर्व्वाधबोधविषयमक्कुमी सर्व्वयोगस्थानंगळोळगे पदिनाल्कुं जीवसमासंगळ उपपादयोगमेकांतानुवृद्धियोग परिणामयोगमेंबी योगत्रयंगळ जघन्योत्कृष्टविषयंगळ ८४ नेंभत्तनाल्कुं पदंगळिंदमल्पबहुत्वमं गाथानवकदिंदं पेळ्दपरु :—

एदेसिं ठाणाणं जीवसमासाण अवरवरविषयं।
चउरासीदिपदेहिं अप्पाबहुगं परूवेमो ॥२३२॥

एतेषां स्थानानां जीवसमासानामवरवरविषयं। चतुरशीतिपदैरल्पबहुत्वं प्ररूपयामः ॥

ई पेळल्पट्ट सर्व्वयोगस्थानविकल्पंगळ जीवसमासेगळ जघन्योत्कृष्टविषयमं च शब्ददिंदमुपपादयोगमेकान्तानुवृद्धियोग परिणामयोगमेंब योगत्रयमनाश्रयिसि चतुरशीतिपदंगळिंदमल्पबहुत्वमं पेळ्देमेंदु पेळळुपक्रमिसि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपरु :—

सुहुमगलद्धि जहण्णं तण्णिव्वत्ती जहण्णयं तत्तो।
लद्धियपुण्णुक्कस्सं बादरलद्धिस्स अवरमदो ॥२३३॥

सूक्ष्मलब्धिजघन्यं तन्निर्वृत्तेर्जघन्यकं ततः। लब्ध्यपूर्णोत्कृष्टं बादरलब्धेरवरमतः ॥

इल्लि एकेंद्रियसूक्ष्मबादरद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियंगळ्गे संदृष्टि :

पल्यवर्गशलाकामात्र्यो भवंति व—a कुतः पल्यवर्गशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यच्छेदराशेर्हीनरूपासंख्यातमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नासंख्यातस्य हारत्वसंभवात् ॥२३१॥ अथानंतरं अभिधेयस्य प्रतिज्ञासूत्रमाह—

एतेषामुक्तयोगस्थानानां मध्ये चतुर्दशजीवसमासानां जघन्योत्कृष्टविषयमल्पबहुत्वं चशब्दात् उपपादादियोगत्रयमाश्रित्य चतुरशीतिपदैः प्ररूपयामः ॥२३२॥ तद्यथा—

अत्र सूक्ष्मबादरैकेंद्रियद्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाणां संदृष्टिः—

भागहार होता है। आशय यह है कि असंख्यातहीन पल्यकी वर्गशलाकाका जो प्रमाण है उतनी बार जघन्य योगस्थान दूना होनेपर उत्कृष्ट योगस्थान होता है। इससे इसको नाना गुणहानि शलाका कहा है। इस नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। उससे जघन्यको गुणा करनेपर उत्कृष्ट योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। इस तरह योगस्थानोंका प्रमाण होता है ॥२३१॥

आगेके कथनकी प्रतिज्ञा करते हैं—

ऊपर कहे इन योगस्थानोंमें चौदह जीव समासोंके जघन्य-उत्कृष्टकी अपेक्षा और 'च' शब्दसे उपपाद आदि तीन योगोंकी अपेक्षा चौरासी पदोंके द्वारा अल्पबहुत्व कहते हैं ॥२३२॥

यहाँ सूक्ष्म, बादर, एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रियकी संदृष्टि इस प्रकार जानना—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सू	बा	वि	ति	च	अ	सं
०१	∧	०२	०३	०४	०५	०६
		०	०	०	०	०
			०	०	०	०
				०	०	०
					०	०
						०

सूक्ष्मलब्धिजघन्यं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तैकेंद्रियजीवनुपपादजघन्ययोगस्थानं सर्व्वतः स्तोकमक्कु १ मदं नोडलु तन्निवृत्तेर्ज्जघन्यकं आ सूक्ष्मनिगोदनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं ।२। ततः तस्मात् अदं नोडलु लब्ध्यपूर्णोत्कृष्टं सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं ।३। अतः अदं नोडलु बादरलब्धेरवरं बादरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादजघन्ययोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु ।४।

सू	वा	वि	ति	च	अ	सं
०१	०१	०२	०३	०४	०५	०६
		०	०	०	०	०
			०	०	०	०
				०	०	०
					०	०
						०

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उपपादजघन्यं स्थानं सर्वतः स्तोकं १। ततः तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तजघन्यं पल्यासंख्यातगुणं २। ततः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं ३। ततः बादरलब्ध्यपर्याप्तस्य तज्जघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ॥४॥२३३॥

सू.	वा.	वि.	ति.	च.	अ.	सं.
०१	०१	०२	०३	०४	०५	०६
		०	०	०	०	०
			०	०	०	०
				०	०	०
					०	०
						०

सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान सबसे थोड़ा है ।१। उससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यका असंख्यातवाँ भाग गुणा है। अर्थात् पल्यके असंख्यात भागोंमेंसे एक भागके द्वारा पूर्व योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने अविभाग प्रतिच्छेद दूसरे स्थानमें हैं। ऐसे ही आगे भी समझ लेना २। उससे सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भागगुणा है ३। उससे बादर लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ४ ॥२३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु ।
बादरलद्धिस्स वरं बीइंदियलद्धिगजहण्णं ॥२३४॥

निर्वृत्तिसूक्ष्मोत्कृष्टं बादरनिर्वृत्तेरवरं तु । बादरलब्धेर्व्वरं द्वींद्रियलब्धिजघन्यं ॥

निर्वृत्तिसूक्ष्मोत्कृष्टं आ बादरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानमं नोडलु निर्व्वृत्त्यपर्य्याप्तसूक्ष्मजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं ।५। तु पुनः मत्तमदं नोडलु बादरनिर्वृत्तेरवरं बादरनिर्व्वृत्त्यपर्य्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु ।६। मदं नोडलु बादरलब्धेर्व्वरं बादरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पल्यासंख्यातयिकभागगुणितमक्कु ।७। मदं नोडलु द्वींद्रियलब्धेर्जघन्यम् द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादजघन्ययोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं ।८॥

बादरणिव्वत्तिवरं णिव्वत्तिबिइंदियस्स अवरमदो ।
एवं बितिबितितिचतिच चउविमणो होदि चउविमणो ॥२३५॥

बादरनिर्व्वृत्तिवरं निर्वृत्तिद्वींद्रियस्याऽवरं अवरः । एवं द्वित्रिद्वित्रित्रिचतुश्चतुस्त्रिचतुर्व्विमनो भवति चतुर्व्विमनः ॥

आ द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानमं नोडलु बादरैकेंद्रियनिर्व्वृत्तिवरं बादरैकेंद्रियनिर्व्वृत्त्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु ।९॥ मतः अदं नोडलु द्वींद्रियनिर्व्वर्त्तेरवरं निर्व्वृत्त्यपर्य्याप्तद्वींद्रियजीवोपपादजघन्ययोगस्थानं पल्यासंख्यातगुणितमक्कुं ।१०। एवं ई प्रकारदिंदं द्वित्रिलब्ध्यपर्य्याप्त द्वींद्रियत्रींद्रियजीवंगळ यथासंख्यमागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । उ । ज । अवं नोडलु द्वित्रि
११ १२

ततः सूक्ष्मनिर्वृत्त्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं । ५ । तु-पुनः ततो बादरनिर्वृत्त्यपर्याप्तस्य तज्जघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ६ । ततः बादरलब्ध्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं ७ । ततः द्वींद्रियलब्ध्यपर्याप्तस्य तज्जघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ॥८॥ २३४॥

ततो बादरैकेंद्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं ९ । अतः द्वींद्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तस्य तज्जघन्यं पल्यासंख्यातगुणं १० । एवं लब्ध्यपर्याप्तद्वित्रींद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थाने

उससे सूक्ष्म निर्वृत्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ५। उससे बादर निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ६। उससे बादर लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ७। उससे दो इन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ८ ॥२३४॥

उससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ९। उससे दो इन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है १०। इसी प्रकार उससे दो इन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्वृत्यपर्य्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रियजीवंगळ यथासंख्यमागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगंगळु पल्यासंख्यातैक-भागगुणितंगळप्पुवु उ । ज १३ । १४ अवं नोडलु त्रिचतुः लब्ध्यपर्य्याप्तत्रींद्रियचतुरिंद्रियजीवंगळ यथासंख्य-मागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितंगळप्पुवु उ । ज १५ । १६ त्रिचतुः मत्तं निर्वृत्यपर्य्याप्तत्रींद्रियचतुरिंद्रियजीवंगळ यथासंख्यमागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगळु पल्या-संख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु उ । ज १७ । १८ चतुर्व्विमनः मत्तमंते लब्ध्यपर्य्याप्तचतुरिंद्रिय असंज्ञि-पंचेंद्रियजीवंगळ यथासंख्यमागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमं-गळप्पुवु । १९ । २० । अवं नोडलु मत्तमंते चतुर्व्विमनः निर्व्वृत्यपर्य्याप्तचतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रिय-जीवंगळ यथाक्रमदिंदमुपपादयोगोत्कृष्टजघन्यस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । २१ । २२ ॥

तह य असण्णी सण्णी असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं ।
सुहुमेइंदियलद्धिग अवरं एयंतवड्ढिस्स ॥२३६॥

तथा चासंज्ञिसंज्ञ्यसंज्ञिसंज्ञिन संज्ञ्युपपादः । सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यवरमेकांतवृद्धेः ॥

तथा च आ प्रकारदिवमसंज्ञिसंज्ञि असंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ यथा-क्रमदिंदमुपपादयोगोत्कृष्टस्थानमुं जघन्यस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । २३।२४ ॥ मत्तमंते असंज्ञिसंज्ञिनां निवृत्यपर्य्याप्तासंज्ञिसंज्ञिजीवंगळ यथाक्रमदिंदमुपपादयोगोत्कृष्टस्थानमुं

पल्यासंख्यातगुणे भवतः । ११ । १२ । ततः निर्वृत्यपर्याप्तद्वित्रींद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यात-गुणे । १३ । १४ । ततः लब्ध्यपर्याप्तत्रिचतुरिंद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १५ । १६ । पुनः निर्वृत्यपर्याप्तत्रिचतुरिंद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १७ । १८ । तथा लब्ध्यपर्याप्त-चतुरसंज्ञिपंचेंद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १९ । २० । ततः निर्वृत्यपर्याप्तचतुरसंज्ञि-पंचेंद्रिययोर्यथाक्रमं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । २१ । २२ ॥२३५ ॥२३६ ॥

तथा च असंज्ञिसंज्ञिलब्ध्यपर्याप्तयोर्यथाक्रमं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे २३ । २४ । पुनस्तथा

तेइन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग पल्यके असंख्यावें भाग गुणे हैं । ११।१२। उससे निर्वृत्यपर्याप्त दो-इन्द्रियका उत्कृष्ट और निर्वृत्य-पर्याप्त तेइन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।१३।१४। उससे लब्ध्यपर्याप्त तेइन्द्रियका उत्कृष्ट और लब्ध्यपर्याप्त चौइन्द्रियका जघन्य उपपाद योग-स्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।१५।१६। उससे निर्वृत्यपर्याप्त तेइन्द्रियका उत्कृष्ट और निर्वृत्यपर्याप्त चौइन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।१७।१८। उससे लब्ध्यपर्याप्तक चौइन्द्रियका उत्कृष्ट और लब्ध्यपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।१९।२०। उससे निर्वृत्यपर्याप्त चौइन्द्रियका उत्कृष्ट और निर्वृत्यपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।।२१।२२।।२३५।। उससे असंज्ञी लब्ध्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्यस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । २५ । २६ ॥ आ पूर्व्वमं नोडलु संज्ञ्युपपादं लब्ध्यपर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । २७ । मदं नोडलु सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्यमेकान्तानुवृद्धियोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । २८ ॥ मदं नोडलु :—

सण्णिस्सुववादवरं णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स ।
एयंतवड्ढि अवरं लद्धिदरे थूलथूले य ॥२३७॥

संज्ञिन उपपादवरं निर्वृत्तिगतस्य सूक्ष्मजीवस्य । एकान्तानुवृद्धिजघन्यं लब्धीतरस्मिन् स्थूलस्थूले च ॥

संज्ञिनः उपपादवरं निर्वृत्तिगतस्य संज्ञिनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । २९ ॥ अदं नोडलु सुहुमजीवस्स सूक्ष्मनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवन एकान्तानुवृद्धिजघन्यं एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । ३० ॥ मदं नोडलु लब्धीतरस्मिन् लब्ध्यपर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवे स्थूलस्थूले च बादरदोळं बादरदोळं एनें बुदर्थमें-दोडे बादरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्यैकांतानुवृद्धियोगमुं निर्वृत्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजघन्यैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागवृद्धिक्रमंगळें बुदर्थं । ३१ । ३२ ॥

तह सुहुम-सुहुम-जेट्ठं तो बादरबादरे वरं होदि ।
अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे ॥२३८॥

तथा सूक्ष्मसूक्ष्मज्येष्ठं ततो बादरबादरे वरं भवति । अंतरमवरं लब्धिगसूक्ष्मेतरमपि परिणामे ॥

असंज्ञिसंज्ञिनिर्वृत्त्यपर्याप्तयोर्यथाक्रमं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । २५ । २६ । ततः लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिनस्तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं २७ । ततः सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तस्य एकांतानुवृद्धिजघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ।२८। ततः—

संज्ञिनिर्वृत्यपर्याप्तस्योपपादोत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं २९ । ततः सूक्ष्मकेंद्रियनिर्वृत्यपर्याप्तस्य एकांतानुवृद्धिजघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ३० । ततः बादरैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तयोरेकांतानुवृद्धिजघन्ये पल्यासंख्यातगुणितक्रमे । ३१ । ३२ ॥२३७॥

पर्याप्तकका उत्कृष्ट और संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।२३।२४। उससे असंज्ञी निर्वृत्यपर्याप्तका उत्कृष्ट और संज्ञी निर्वृत्यपर्याप्तका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।।२५।२६। उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ।२७। उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ।२८ ।।२३६।।

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है । २९ । उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है । ३० । उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।३१।३२।।२३७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा निर्वृत्त्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजघन्यैकान्तानुवृद्धियोगमं नोडलु सूक्ष्मसूक्ष्मज्येष्ठम् सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं निर्वृत्त्यपर्य्याप्तसूक्ष्मैकेंद्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ३३ । ३४ ॥ ततः अदं नोडलुं बादरबादरे वरं भवति लब्ध्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं निर्वृत्त्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ३५ । ३६ ॥ अनंतरं बळिक्कमंतरमें बुदक्कुमन्तरमेंबुदेनें दोडे निर्वृत्त्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानद सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगस्थानद अन्तराळदोळु श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानंगळु निःस्वामिकंगळगंतरमें ब व्यपदेशमक्कुमा प्रथमांतरमनतिक्रमिसि अवरं लब्धिसूक्ष्मेतरवरमपि परिणामे लब्ध्यपर्य्याप्तकसूक्ष्मबादरंगळ परिणामे परिणामयोगदोळु जघन्यस्थानंगळुमा सूक्ष्मेतरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगळु मिन्तु नाल्कुं स्थानंगळुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ३७ । ३८ । ३९ । ४० ॥

अंतरमुवरीवि पुणो तप्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं ।
एयंत वड्ढिठाणा तसपणलद्धिस्स अवरवरा ॥२३९॥

अंतरमुपर्य्यपि पुनस्तत्पूर्णानां चोपर्य्यंतरितमेकान्तानुवृद्धिस्थानानि त्रसपंचलब्धेरवरवराणि ॥

तथा सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तयोः एकांतानुवृद्ध्युत्कृष्टे पल्यासंख्यातगुणक्रमे ३३ । ३४ । ततः बादरैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तयोरेकांतानुवृद्ध्युत्कृष्टे पल्यासंख्यातगुणितक्रमे । ३५ । ३६ । ततः अंतरमिति बादरैकेंद्रियनिर्वृत्त्यपर्याप्तैकांतानुवृद्ध्युत्कृष्टसूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तपरिणामयोगजघन्ययोरंतराले श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानानि निःस्वामिकानि तानि चातीत्य सूक्ष्मबादरलब्ध्यपर्याप्तयोः परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातगुणक्रमाणि ॥ ३७ । ३८ । ३९ । ४० ॥२३८ ॥

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ३३।३४। उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ३५।३६। उसके पश्चात् अन्तर है। अर्थात् बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानके मध्यमें जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है। ये योगस्थान किसी जीवके नहीं पाये जाते। इससे यह अन्तर पड़ा है। इन स्थानोंको उलंघकर या छोड़कर सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं। यहाँ सूक्ष्मका जघन्य, बादरका जघन्य, सूक्ष्मका उत्कृष्ट, बादरका उत्कृष्ट यह क्रम लेना। ३७।३८।३९।४०। ऐसे ही आगे भी जानना ॥२३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरं तद्‌बादरैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानद सूक्ष्मपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानद द्वितीयांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानविकल्पंगळनतिक्रमिसि उपर्य्यपि पुनः मेलेयुं मत्ते तत्पूर्णानां च आ सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळ बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळ जघन्यपरिणामयोगस्थानंगळुमा सूक्ष्मबादरपर्य्याप्तजीवंगळ परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगळु मिन्तु नाल्कुं स्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ ॥ उपर्य्यंतरितं मेले तृतीयांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगळनंतरिसल्पट्टुदेंतप्पुदें त्रसपंचलब्धेः द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियासंज्ञि पंचेंद्रियसंज्ञि लब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानंगळुमप्पु मवरुत्कृष्टस्थानंगळुमप्पुमिन्तु १० पत्तुं स्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ ॥

लद्धीणिव्वत्तीणं परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ ।
परिणामट्ठाणाओ अंतरियंतरिय उवरुवरिं ॥२४०॥

लब्धिनिर्वृत्तीनां परिणामैकान्तवृद्धिस्थानानि परिणामस्थानानि च अंतरितांतरित्वोपर्य्युपरि ॥

मत्तमा संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवैकान्तानुवृद्धियोगोत्कृष्टस्थानद द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानद चतुर्त्थांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानविकल्पंगळनतिक्रमिसि लब्ध्यपर्य्याप्त द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळ जघन्यपरिणामयोग-

---

तत उपरि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानानि द्वितीयमंतरं । तदतीत्य पुनः तत्सूक्ष्मबादरैकेंद्रियापर्याप्तयोः परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातगुणक्रमाणि ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । उपरि तृतीयांतरं श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानान्यतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तानामेकांतानुवृद्धेर्जघन्योत्कृष्टानि दशपल्यासंख्यातगुणक्रमाणि ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ ॥२३९॥
(पुनः[1] तत्संज्ञिलब्ध्यपर्याप्तैकांतानुवृद्धियोगोत्कृष्टद्वींद्रियलब्ध्यपर्याप्तपरिणामयोगजघन्ययोरंतरगतं)

इसके बाद दूसर अन्तर है अर्थात् बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है। अतः इनको छोड़कर सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान ये चार अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ४१। ४२।४३।४४। उसके ऊपर तीसरा अन्तर है अर्थात् बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं हैं। उनको छोड़कर दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तके जघन्य और उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४ ॥२३९॥

इसके पश्चात् चौथा अन्तर है। अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थानोंका कोई स्वामी नहीं

---

१. कोष्ठकान्तर्गतपाठो नास्ति ब प्रतौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानंगळयिदु मवरुत्कृष्ट परिणामयोगस्थानंगळप्पुदु मिन्तु पत्तुं स्थानंगळुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४। मत्तमा लब्ध्यपर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानद निर्वृत्यपर्य्याप्तद्वींद्रियजीवैकान्तानुवृद्धियोगस्थानद पंचमांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगळनतिक्रमिसि निर्वृत्यपर्य्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियअसंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रिय जीवंगळ एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानंगळप्पुमवरुत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानंगळुमयिदुमिन्तु पत्तुं स्थानंगळु प्रत्येक पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१ । ७२ । ७३ । ७४ ॥ मत्तमा संज्ञिपंचेंद्रियनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवैकान्तानुवृद्धियोगोत्कृष्टस्थानद पर्य्याप्तद्वींद्रियजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानद षष्ठान्तरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगळनतिक्रमिसि पर्य्याप्तद्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रिय जीवंगळ परिणामयोगजघन्यस्थानंगळयिदुमवर परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगळयिदु मिन्तु पत्तुं स्थानंगळुं प्रत्येकं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ ॥ यितु पदिनाल्कुं जीवसमासंगळ उपपादयोगमुमेकान्तानुवृद्धियोगमुं परिणामयोगमुमें ब त्रिविधयोगंगळ जघन्योत्कृष्टविषयंगळप्प चतुरशीतियोगस्थानंगळल्पबहुत्वं सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगजघन्यस्थानद अनंतरोक्तसूक्ष्मैकेंद्रियनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवोपपादजघन्यस्थानं मोदलगोंडु संज्ञिपंचें-

पुनः चतुर्थांतरं श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानान्यतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तानां परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमाणि[1] ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ ।६२।६३।६४। पुनः ([2]तल्लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिपरिणामोत्कृष्टनिर्वृत्यपर्याप्तद्वींद्रियैकांतानुवृद्धियोगजघन्ययोरंतरगत) श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानानि पंचमांतरमतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियनिर्वृत्यपर्याप्तानां एकांतानुवृद्धेर्जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातैकभागगुणक्रमाणि । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । पुनः ([3]तत्संज्ञिनिर्वृत्यपर्याप्तैकांतानुवृद्धियोगोत्कृष्टपर्याप्तद्वीन्द्रियपरिणामयोगजघन्ययोरंतरगत) श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानानि षष्ठांतरमतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तानां परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातगुणक्रमाणि । ७५ ।

है। उनको छोड़कर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४। इसके पश्चात् पाँचवाँ अन्तर है। अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है। उनको छोड़कर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ६५। ६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४। इसके पश्चात् छठा अन्तर है। अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है। सो इनको छोड़कर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट

१. ब. °संख्यातगु° । २.–३. कोष्ठकान्तर्गतपाठो नास्ति ब प्रतौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रियपर्य्याप्तजीव परिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळेंदु पेळदुदनीगळु ग्रंथकारं मुंदण गाथासूत्रदिदं पेळदपं ।

> एदेसिं ठाणाओ पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा ।
> हेट्ठिमगुणहाणिसला अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु ॥२४१॥

एतेषां स्थानानि पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमाणि । अधस्तनगुणहानिशलाकाः अन्योन्याभ्यस्तमात्रं तु ॥

ई पेळल्पट्ट चतुरशीति अल्पबहुत्वयोगस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानं जघन्ययोगस्थानमं नोडलु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणितमप्पुदु । आ जघन्योत्कृष्ट योगस्थानंगळ अधस्तनगुणहानिशलाकेगळु कियत्प्रमितंगळप्पुवेंदोडे पुर्न्नं पेळल्पट्ट असंख्यातरूपोनपल्यवर्ग्गशलाकाप्रमितंगळप्पु । व-ə विवु । अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळें[1]बु-

वप्पुदरिदमवें तेंदोडे :— प्र व वि १६ । ४ । २/ə फ स्थान १ इ । व वि १६ । ४ । ə̄ १ लब्ध

स्थानविकल्पंगळु ə̄२/ə मत्तं :—

प्र व वि १६ । ४ । २/ə फ स्था १ इ । व वि । १६ । ४–छे/əə२ लब्धस्थानविकल्पंगळु ə̄ छे/ə २ । २/ə

अन्तधणं गुणगुणियं ə̄ २ छे २/ə ə २ आदिविहीणं ə̄ २ छे/ə ə रूऊणुत्तर भजियमेंदु तावन्मात्रमप्पकुमन्तागुत्तं विरलु रूपोनगुणेन हतं गुणितं ə̄ २ छे १/ə ə प्रभवेन भाजितं ə̄ २ छे/ə ə ə ə २

७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ ॥२४०॥ इममुक्तगुणकारं ग्रन्थकारः प्राह—

एतेषां चतुर्दशजीवसमासानामुपपादादियोगत्रयस्य जघन्योत्कृष्टचतुरशीतिस्थानानि पल्यासंख्यातगुणितक्रमाण्यपि सर्वोत्कृष्टं जघन्यात् पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणमेव । तयोर्जघन्योत्कृष्टयोरंतरालस्था अधस्तनगुण-

परिणाम योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४। इस तरह ये चौरासी स्थान जानना ॥२४०॥

आगे ग्रन्थकार स्वयं उक्त गुणकारको कहते हैं ।

चौदह जीव समासोंके उपपाद आदि तीन योगोंके जघन्य और उत्कृष्ट भेदसे ये चौरासी स्थान यद्यपि क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं । तथापि जघन्य योगस्थानसे

१. गुणकारशलाकेगळेंबुदर्थं ।

सैकं । छे a । यतिकृत्वो गुणभक्तं रूपं यावतो वारान् । गुणेन भक्तं रूपं । व–a । तति भवेद्गच्छः । एंदितिवु असंख्यातरूपोनपल्यवर्गशलाकामात्रमन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळ प्रमाणमक्कुमवर प्रमाणमधस्तनगुणहानिशलाकेगळप्पुवेंबुदत्थं ॥

अनंतरमुपपादादियोगत्रयक्के जघन्योत्कृष्टदिदं निरंतरप्रवृत्तिकालप्रमाणमं मुंदण गाथासूत्रदिद पेळ्दपरु :—

अवरुक्कस्सेण हवे उववादेयंतवड्ढिठाणाणं ।
एक्कसमयं हवे पुण इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति ॥२४२॥

जघन्योत्कृष्टेन भवेदुपपादैकान्तवृद्धिस्थानानामेकसमयो भवेत्पुनरितरेषां यावदष्टौ समयास्तावत्पर्य्यंतं ॥

उपपादयोगमेकान्तानुवृद्धियोगमेंबी एरडुं योगस्थानंगळगे जघन्योत्कृष्टदिदं येकसमयमे प्रवृत्तिकालप्रमाणमक्कु । मितरेषां इतरंगळप्प परिणामयोगस्थानंगळगे द्विसमयादियोगदष्टसमयंगळेन्नेवरमन्नेवरं निरंतरप्रवृत्तिकाल प्रमाणमक्कुं । उक्तात्र्थोपयोगियोगस्तंभरचनेयिदु :—

अस्यां स्तंभरचनायां शून्यानि त्रिकोणानि च किमर्त्थमिति चेदुच्यते—एकं शून्यं सूक्ष्मजीव इति संज्ञार्त्थं । द्वे शून्ये द्वींद्रियजीव इति संज्ञानिमित्तं । त्रिचतुः पंचषट् शून्यानि त्रिचतुः संज्ञाऽसंज्ञि जीव प्रतिपादकानि लघुसंदृष्टिनिमित्तं शून्यानि कृतानि । अत्र रचनायां त्रिकोणाकारं किमर्त्थं इत्यारेकायां इदमुच्यते त्रिकोणाकारमत्र बादरजीवसंज्ञा निमित्तं । अत्र शून्यावस्थितगोऽाकारं ० शोभार्थमेव शून्यं सूक्ष्मजीव संज्ञा इति अव्यामोहेन इयं स्तंभरचना प्रतिपादनीया ।

हानिशलाकाः कति ? पूर्वोक्ता असंख्यातरूपोनपल्यवर्गशलाकामात्र्यः व–a ता एव अन्योन्याभ्यस्तस्य गुणकारशलाका नाम ॥२४१॥ अथोपपादादीनां जघन्योत्कृष्टेन निरंतरप्रवृत्तिकालप्रमाणमाह—

उपपादैकांतानुवृद्धियोगद्वयस्थानानां प्रवृत्तिकालो जघन्येन उत्कृष्टेन च एकसमय एव स्यात् । इतरेषां परिणामयोगस्थानानां द्विसमयाद्यष्टसमयपर्यंतं स्यात् ॥२४२॥ उक्तार्थोपयोगिनो योगस्तंभरचनेयं—

सर्वोत्कृष्ट योगस्थान पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा है। इन जघन्य और उत्कृष्ट योगस्थानके मध्यमें स्थित अधस्तन गुणहानिशलाका असंख्यात हीन पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण हैं। वे ही अन्योन्याभ्यस्त राशिकी गुणकार शलाका हैं ॥२४१॥

आगे उपपाद आदिके जघन्य और उत्कृष्टसे निरन्तर प्रवर्तनका काल कहते हैं—

उपपाद योगस्थान और एकान्तानुवृद्धि योगस्थानोंके प्रवर्तनेका काल जघन्य और उत्कृष्टसे एक समय ही है। और परिणाम योगस्थानोंके प्रवर्तनेका काल दो समयसे लेकर आठ समय पर्यन्त है ॥२४२॥

विशेषार्थ—उपपाद योगस्थान जन्मके प्रथम समयमें ही होता है और एकान्तानुवृद्धि योगस्थान प्रतिसमय वृद्धिरूप होनेसे अन्य-अन्य होता रहता है। अतः इन दोनोंके प्रवर्तनेका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। एक परिणाम योगस्थान ही ऐसा है जो दो समयसे लेकर आठ समय तक रहता है ॥२४२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

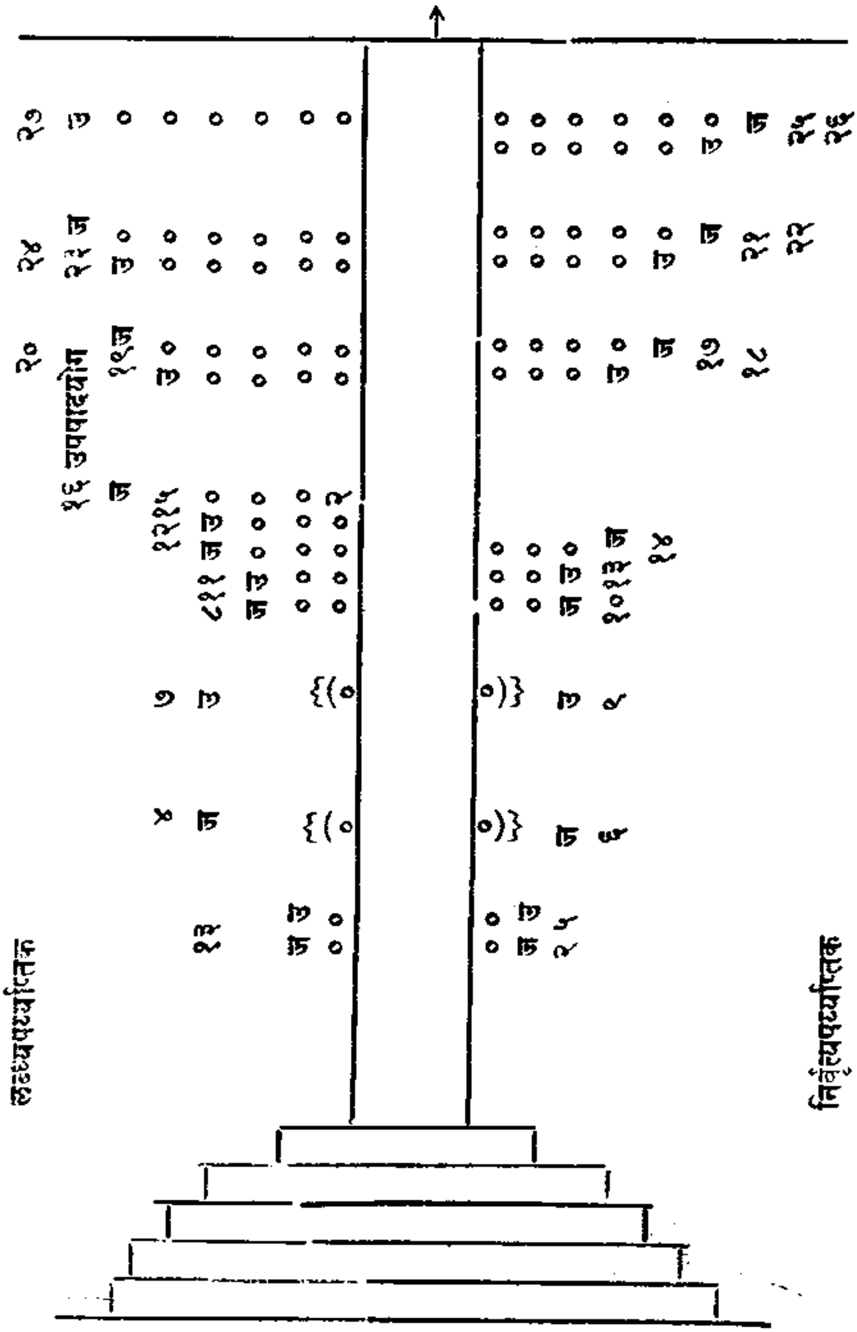
उपपादयोग
लब्ध्यपर्याप्तक
निर्वृत्त्यपर्याप्तक

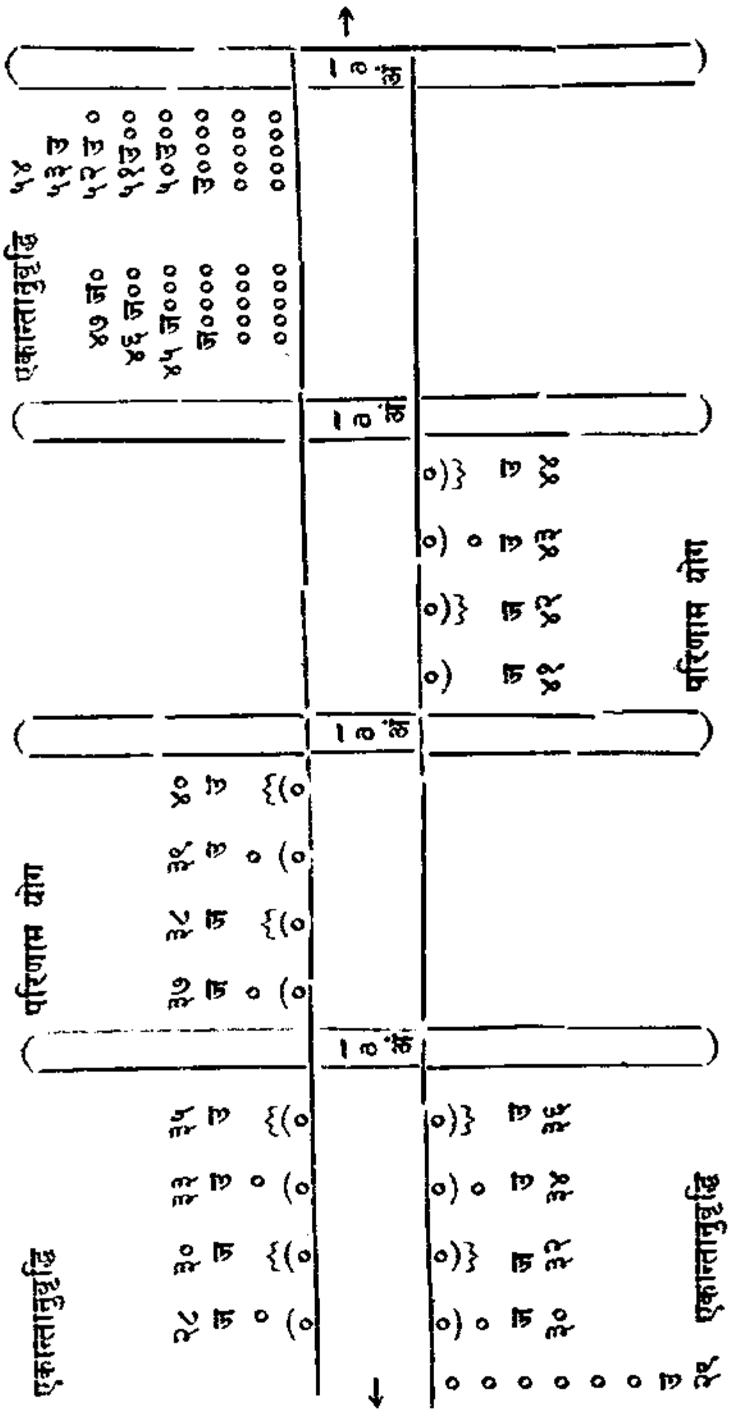

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

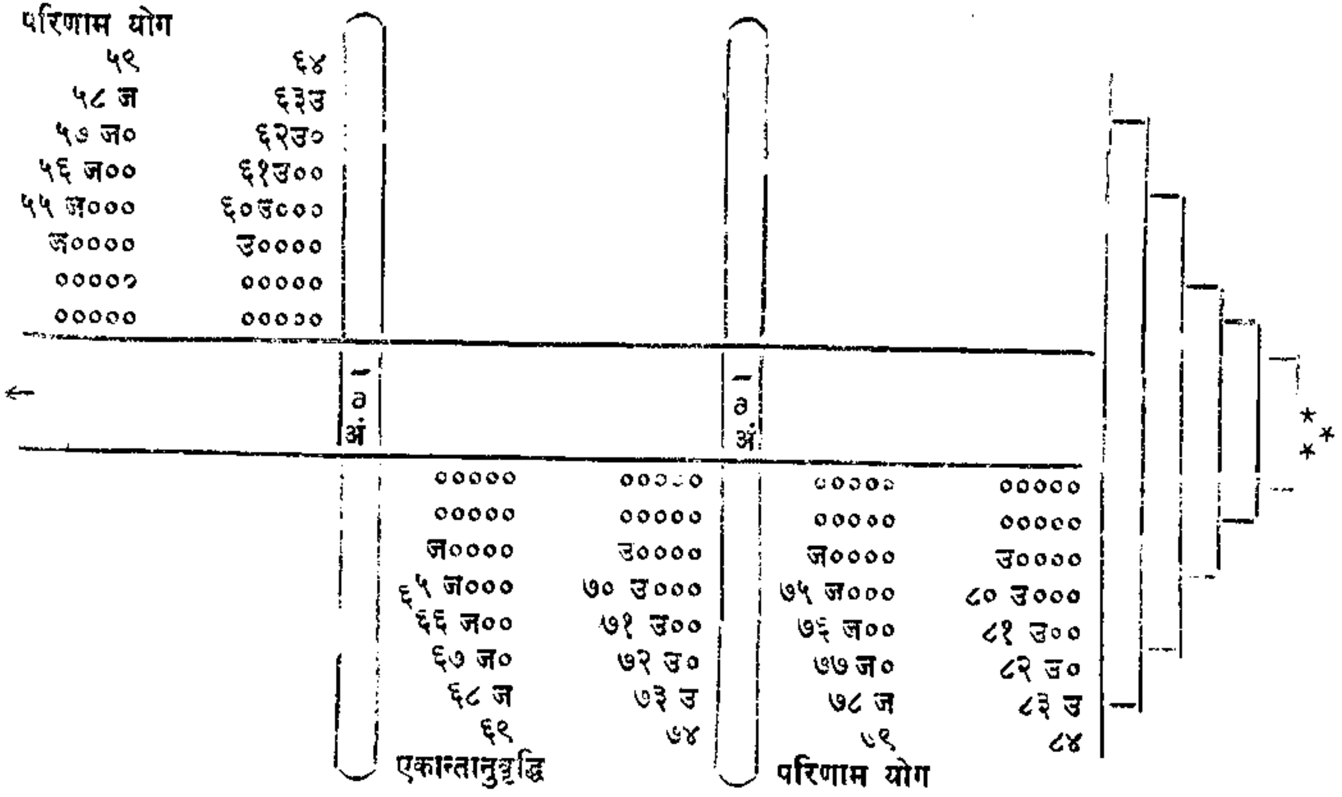
परिणाम योग
५९ ६४
५८ ज ६३उ
५७ ज० ६२उ०
५६ ज०० ६१उ००
५५ ज००० ६०उ०००
ज०००० उ००००
००००० ०००००
००००० ०००००
०
अं
०
अं
००००० ००००० ००००० ०००००
००००० ००००० ००००० ०००००
ज०००० उ०००० ज०००० उ००००
६५ ज००० ७० उ००० ७५ ज००० ८० उ०००
६६ ज०० ७१ उ०० ७६ ज०० ८१ उ००
६७ ज० ७२ उ० ७७ ज० ८२ उ०
६८ ज ७३ उ ७८ ज ८३ उ
६९ ७४ ७९ ८४
एकान्तानुवृद्धि
परिणाम योग

अट्ठसमयस्स थोवा उभयदिसासु वि असंखसंगुणिदा।
चउसमयोत्ति तहेव य उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ ॥२४३॥

अष्टसमयस्य स्तोकाः उभयदिशास्वपि असंख्यसंगुणिताः। चतुःसमयपर्य्यंतं तथैव चोपरि त्रिद्विसमययोग्याः ॥

द्वींद्रियपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानमादियागि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्य्यंतमाद सर्व्वनिरंतर योगस्थानंगळोळु −१ छे / ११ ० पल्यासंख्यातभाजितबहुभागस्थानंगळु २ छे प / १ ० ० / प द्विसमयनिरंतरपरिणामयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळप्पुवु। शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागस्थानविकल्पंगळु त्रिसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिपरिणामस्थानविकल्पंगळप्पुवु —

—२ छे प / ० २ ० ० ० ० / ० प प / ० ० शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्द्धस्थानविकल्पंगळु अधस्तन चतुःसमयनिरंतरयोगप्रतिपत्तिस्थानविकल्पंगळप्पुवु। शेषार्द्धस्थानविकल्पंगळुपरितनचतुःसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थान-

---

द्वींद्रियपर्याप्तपरिणामयोगस्थानादारभ्य संज्ञिपर्याप्तपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्यंतं सर्वेषु निरन्तरयोगस्थानेषु — छे / ०२ ० / ० पल्यासंख्यातभाजितबहुभागः — छे प / ०२ ० ० / ० प / ० द्विसमयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः, शेषैकभागस्य पल्यासंख्यातबहुभागस्त्रिसमय— निरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः — —छे प / ० २० ० / ० प प / ० ० शेषैकभागस्य पल्या-

---

दो-इन्द्रिय पर्याप्त जीवके जघन्य परिणाम योगस्थानसे लगाकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त अन्तररूप योगस्थानोंको छोड़कर जो निरन्तर योगस्थान हैं उनको जौ नामक अन्नके आकार रचना कालकी अपेक्षा करते हैं। जो योगस्थान निरन्तर आठ समय तक होते हैं उन्हें मध्यमें लिखें। जो योगस्थान निरन्तर सात समय तक होते हैं उनमें-से आधे तो आठ समयवालोंके ऊपर लिखें और आधे नीचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकल्पंगळप्पुवु। — छे प । २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागंगळर्द्धार्द्धंगळु मुन्निनंते अधस्तन-
प प प
a २ a aaa a
a

पंचसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळुमुपरितनपंचसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळुम-

प्पुवु :— — छे प प प प प । २ — छे प प प प प । २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागा-
a २ aa १ a a a a २ a a a a a a a

र्द्धार्द्धंगळु मुन्निनंते अधस्तनोपरितनषट्समयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळप्पुवु—

— छे प । २ — छे प । २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्द्धार्द्धंस्थानविकल्पंगळु
a २ प a २
a a a पपपपप aaa पपपपप १
११११ ११११

मुन्निनंते अधस्तनोपरितनसप्तसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळप्पुवु :—

संख्यातबहुभागार्धमधस्तनचतुःसमयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः —२ छे प शेषार्धमुपरितनचतुःसमय-
aa a a
प प प २
a a a

निरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः— २ छे प २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्धमधस्तनपंचसमयनिरंतर-
a a a प प प a
a a a

प्रवृत्तिस्थानविकल्पाः अर्धं चोपरितनपंचसमयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः —२ छे प २
a a a प प प प a
a a a a

—२ छे प २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्धार्धमधस्तनोपरितनषट्समयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः
a a a प प प प a
a a a a

लिखें। जो योगस्थान निरन्तर छह समय तक होते हैं वे आधे तो उनके नीचे और आधे ऊपर लिखें। जो योगस्थान निरन्तर पाँच समय तक होते हैं वे आधे तो नीचे और आधे उनके ही ऊपर लिखें। जो योगस्थान निरन्तर चार समय तक होते हैं, वे आधे उनके नीचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

— छे १ प — १ छे प
१ २१ ० २ १ २ १ ० २
११११११ ० १
 प प प प प प
 ० ० ० ० ० ०

शेषैक भागमष्टसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिमध्यमयोग-

स्थानविकल्पंगळप्पु — छे १ प प प प प प वक्कुकारणमागि अष्टसमयस्य स्थानविकल्पाः स्तोकाः
१ २
० १ ० ० ० ० ० ०

एंदितु पेळल्पट्टुदु। उभयदिशास्वपि असंख्यातगुणिताः अधस्तनोपरितनोभयदिशेगळोळसंख्यात-
गुणित क्रमंगळप्पुविन्तु अधस्तनोपरितनोभयदिशेगळोळं चतुःसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पं-

—२ छे प २ —२ छे प २
० २ ० प प प प प प ० ० ० ० प प प प प प ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्धमधस्तनो-

परितनसप्तसमयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः— —२ छे प २ — २ छे प २
० ० ० प प प प प प ० ० ० ० प प प प प प ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

शेषैकभागोष्टसमयनिरंतरप्रवृत्तिमध्यस्थानविकल्पाः — २ छे प प प प प प १
० ० ० ० ० ० ० ० ०

अत एव अष्टसमयस्य स्तोका इत्युक्तं। उभयदिशासु च असंख्यातगुणिताः। तत्र चतुःसमयनिरंतरप्रवृत्ति-

और आधे ऊपर लिखें। जो योगस्थान निरन्तर तीन समय तक होते हैं वे सब चार समयवालोंके ऊपर ही लिखना। जो योगस्थान निरन्तर दो समय तक होते हैं, वे सब तीन समयवालोंके ऊपर लिखें।

अब इन स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

दो इन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगसे लेकर संज्ञी पर्याप्तके उत्कृष्ट परिणाम योग पर्यन्त योगस्थान—जगतश्रेणिसे असंख्यातवें भागको एक घाटि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागसे गुणा करें और सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग दें। जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़ें—इतने हैं। उनके इस प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें। एक भाग बिना बहुभाग तो निरन्तर दो समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है। उस एक भागमें पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें। एक भाग बिना बहुभाग तीन समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है। उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें। एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके चार समय निरन्तर होनेवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळु पर्य्यंतमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवुपरितनत्रिसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळसंख्यातगुणितंगळप्पुवत्तं नोडलुमुपरितनद्विसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळसंख्यातगुणितंगळप्पुवल्लि कालं विवक्षितमप्पुदरिदं यवाकाररचनेयक्कुमदक्के संदृष्टियिदु :—

स्थानविकल्पपर्यंतमुभयदिशासु असंख्यातगुणितक्रमाः त्रिसमयनिरंतरप्रवृत्तियोग्या द्विसमयनिरंतरप्रवृत्तियोग्याश्च उपर्युपर्यत्र असंख्यातगुणितक्रमा भवंति । अत्र कालो विवक्षितोऽस्तीति यवाकाररचना । तत्संदृष्टिः—

योगस्थानोंका प्रमाण है। और आधा ऊपरके चार समय निरन्तर प्रवर्तनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है। उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें। एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके पाँच समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है और आधा बहुभाग ऊपरके पाँच समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है। उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें। एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके छह समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानका प्रमाण है और आधा ऊपरके छह समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है। उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके निरन्तर सात समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है और आधा ऊपरके निरन्तर सात समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है। शेष जो एक भाग रहा उतने निरन्तर आठ समय तक होनेवाले योगस्थान होते हैं। इसीसे गाथामें आठ समयवालोंका प्रमाण थोड़ा कहा है। और शेषका ऊपर और नीचे असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा कहा है। सो चार समयवालों पर्यन्त नीचे और ऊपर दोनों दिशामें स्थापित किये हैं। किन्तु तीन और दो समयवाले योगस्थान ऊपर की ओर ही स्थापित किये हैं। इस प्रकार यह कालकी अपेक्षा यवाकार रचना है। जैसे यव (जौ) मध्यमें मोटा और ऊपर-नीचेकी ओर पतला होता है। उसी प्रकार मध्यमें आठ समयवाले लिखे और ऊपर नीचे एक-एक कम समयवाले लिखे। ऐसे यवाकार-रचना होती है ॥२४२॥

आगे पर्याप्त त्रस जीवोंके परिणाम योगस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण कहते हैं और उसकी यवाकार रचना रचते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

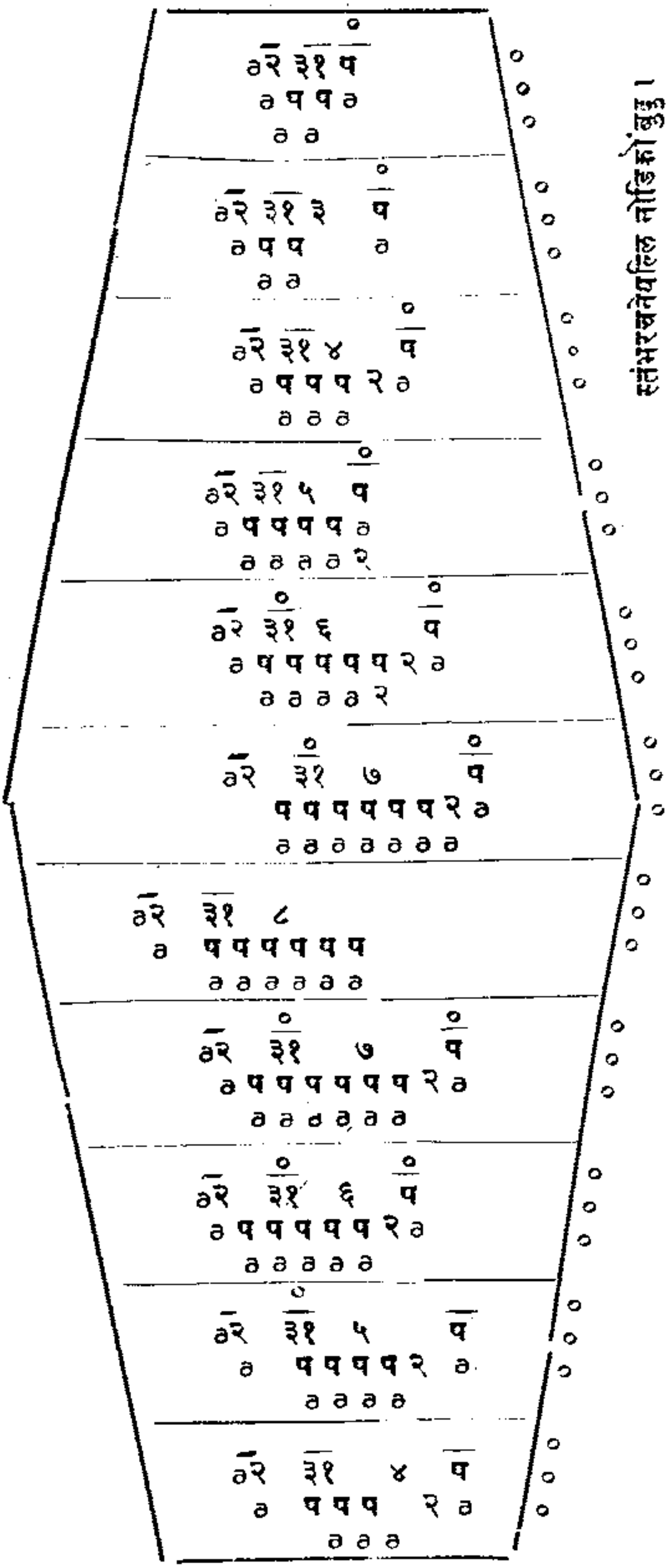

स्तंभरचनेयल्लि नोडिकोंबुदु।

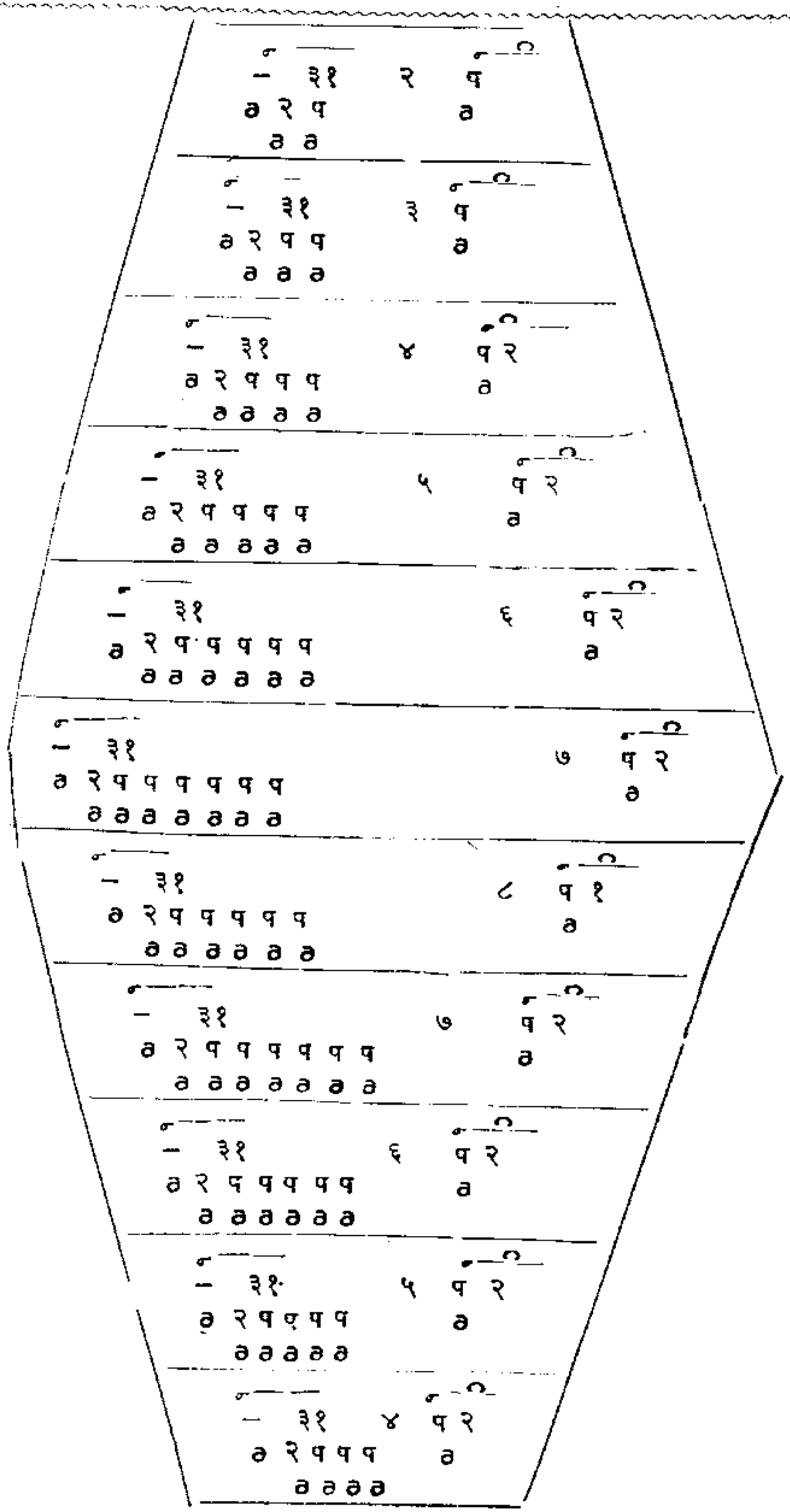

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मज्झे जीवा बहुगा उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता ।
हेट्ठिमगुणहाणिसलागादुवरि सलागा विसेसहिया ॥२४४॥

मध्ये जीवा बहुकाः उभयत्रविशेषहीनक्रमयुक्ताः। अधस्तनगुणहानिशलाकाया उपरि शलाका विशेषाधिकाः। जीवयवमध्यदोळु जीवंगळु बहुकंगळप्पुवु। अधस्तनोपरितनोभयत्र विशेषहीनक्रमयुक्तंगळु अधस्तनगुणहानिशलाकेगळं नोडलुमुपरितनगुणहानिशलाकेगळुं विशेषाधिकंगळप्पुवदेंतेंदोडे :—

दव्वतियं हेट्ठुवरिमदलवारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं ।
जीवजवे चोद्दससयबावीसं होदि बत्तीसं ॥२४५॥

द्रव्यत्रयमधस्तनोपरितनदलवारा द्विगुणमुभयमन्योन्यं। जीवयवे चतुर्द्दशशतद्वाविंशतिर्भवति द्वात्रिंशत् ॥

चत्तारि तिण्णि कमसो पण अड अट्ठं तदो य बत्तीसं ।
किंचूणतिगुणहाणिविभजिद दव्वे दु जवमज्झं ॥२४६॥

चत्वारि त्रीणि क्रमशः पंचाष्टाष्टौ ततश्च द्वात्रिंशत्। किंचिदूनत्रिगुणहानिविभाजिते द्रव्ये तु यवमध्यम् ॥

द्वींद्रियपर्य्याप्त जीवपरिणामयोगजघन्यस्थानमिदु $\overline{a}$ प $\overline{\overline{७५}}$/a इदनपवर्त्तिसिदोडिदु $\overline{a}$। यिदर नंतरस्थानविकल्पमिदु २/a इदु मोदलागि सवृद्धिस्थानंगळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवपरिणाम-

$\overline{a}$

जीवयवमध्ये जीवा बहुकाः अध उपरि च विशेषहीनक्रमयुक्ताः अधस्तनगुणहानिशलाकाभ्यः उपरितनगुणहानिशलाका विशेषाधिकाः ॥२४४॥ तद्यथा—

जीवोंकी संख्याकी अपेक्षा यवाकार रचनामें मध्यमें जीव बहुत हैं। ऊपर और नीचे अनुक्रमसे विशेष हीन-हीन हैं। नीचेकी गुणहानि शलाकासे ऊपरकी गुणहानि शलाकाका प्रमाण कुछ अधिक है ॥२४४॥

विशेषार्थ—जैसे यव (जौका दाना) मध्यमें मोटा होता है और ऊपर-नीचे क्रमसे घटता-घटता होता है। उसी प्रकार पर्याप्त त्रस सम्बन्धी परिणाम योगस्थानोंमें यवाकारमें जो मध्यका स्थान है उसमें जीव बहुत हैं अर्थात् उन योगस्थानोंके धारी जीव बहुत हैं। उस बीचके स्थानसे ऊपरके और नीचेके स्थानोंमें जीवोंका प्रमाण क्रमसे घटता हुआ है। अर्थात् उन योगस्थानोंके धारक जीव क्रमसे घटते हुए हैं। इस तरह यह यवाकार रचना है ॥२४४॥

जीवोंकी संख्याकी यवाकार रचनामें प्रथम अंकसंदृष्टिसे कथन करते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग सर्व्वोत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं निरंतरवृद्धिस्थानंगळु नडदु सर्व्वोत्कृष्ट परिणामयोगस्थानमिदु ‾ə छे ə आदीयंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा येंदु सर्व्वनिरंतरपरिणामयोगस्थानविकल्पंगळितिप्पुंवु

व वि १६ । ४ । ‾ə छे । उ ई योगस्थानंगळगे स्वामिगळु द्वींद्रियादित्रसपर्य्याप्तजीवर शिद्रव्य-
ə ० ० ०

सर्व्व ə ३१ ज
२
ə

व वि १६ । ४ । ə १

मेंबुदक्कुं। स्थितियेंबुदु ई निरंतरपरिणामयोगस्थानविकल्पंगळक्कुं। गुणहानियेंबुदु सामान्य-च्छेदासंख्यातैकभागप्रमितनानागुणहानिभक्तस्थित्येकभागमक्कुं। यितु द्रव्यत्रयमुं अधस्तनोपरितनं-दळवाराः अधस्तनोपरितननानागुणहानिशलाकेगळुं द्विगुणं दोगुणहानियुं उभयमन्योन्यं अधस्तनो-परितनान्योन्याभ्यस्तराशिद्वयमुमी यवाकारजीवसंख्यारचनेयोळु मुन्नमंकसंदृष्टियिंदं मनंबुगि-सल्वेडि यथासंख्यमागि द्रव्यप्रमाणं चतुर्द्दशशतद्वाविंशतिर्भ्भवति साविरद नानूरिप्पत्तेरडु कल्पि-सल्पट्टुदु। स्थितिप्रमाणं द्वात्रिंशत् चत्वारि गुणहान्यायामं नाल्कुं रूपुगळक्कुमधस्तनोपरितननाना-गुणहानिशलाकेगळु क्रमदिदं त्रीणि पंच [1]मूरुरूपंगळुमय्दु रूपंगळप्पुवु। दोगुणहानिप्रमाणं अष्ट येंदु रूपुगळक्कुं। अधस्तनोपरितनान्योन्याभ्यस्तराशिगळु क्रमदिदमेंटुं मूवत्तेरडुमप्पुवु। यितुक्त-

यवाकारजीवसंख्यारचनायां तावदंकसंदृष्ट्या प्रतीत्युत्पादनार्थं द्रव्यं चतुर्दशशतद्वाविंशतिः १४२२, स्थितिः द्वात्रिंशत् ३२, गुणहान्यायामश्चत्वारः ४। अधस्तनोपरितननानागुणहानिशलाकाः क्रमेण तिस्रः पंच।

सो द्रव्य पर्याप्त त्रसजीवोंका प्रमाण चौदह सौ बाईस १४२२ है। और स्थिति अर्थात् पर्याप्त त्रस जीव सम्बन्धी परिणाम योगस्थानोंका प्रमाण बत्तीस ३२ है। गुणहानि आयाम अर्थात् एक गुणहानि स्थानोंका प्रमाण चार ४ है। ऐसी सब गुणहानियाँ आठ ८ हैं। इनको नाना गुणहानि कहते हैं। उनमें-से नीचेकी गुणहानिका प्रमाण तीन ३ और ऊपरकी गुणहानि-का प्रमाण पाँच ५, इस प्रकार आठ नाना गुणहानियाँ हैं।

नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रख उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त-राशिका प्रमाण होता है। सो नीचेकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण आठ और ऊपरकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण बत्तीस ३२, इस प्रकार सब चालीस हैं। द्रव्यके प्रमाणमें कुछ कम तिगुनी गुणहानिका भाग देनेपर यवाकारके मध्यमें जीवोंकी संख्या होती है। सो गुणहानि आयामका प्रमाण चार ४ है। उसको तिगुना करनेपर बारह हुए। कुछ कम कहने-से इसमें-से एकके चौंसठ भागोंमें-से सत्तावन भाग घटानेपर समच्छेद विधानके अनुसार

१. म त्वड्ढि ऽ२ ६।४।२ हिदे। २. म रूपगलुमयिदुरूपुग।

ə

द्रव्यादिराशिगळ विन्यासमिदु :—

द्रव्य	स्थिति	गुण	नाना	दो गुण-	अन्योन्या-
१४२२	३२	४	८	८	२५६
			५		३२
			३		८

यितु स्थापिसल्पट्ट राशिगळोळु तु मत्ते किंचिदूनत्रिगुणहानिविभाजिते द्रव्ये गुणहानियें बुदु नाल्कु रूपुगळप्पुववं त्रिगुणितं माडिदोडे द्वादशरूपुगळप्पुववरोळु किंचिदूनं माडल्पडुगुमा ऊनप्रमाणमेनितेंदोडे सप्तपंचाशच्चतुःषष्टिभागमक्कुमदं त्रिगुणहानियोळु चतुःषष्टिरूपुगळिंदं समच्छेदमं माडि $\frac{७६८}{६४}$ अयिवरोळं कळेदोडे शेषमिदु $\frac{७११}{६४}$ ई किंचिदूनत्रिगुणगुणहानियिदं द्रव्यं भागिसल्पडुत्तिरलु लब्धं जीवयवमध्यमक्कु । १२८ । मदु कारणमागि मज्झे जीवा बहुगा एंदितु पेळल्पट्टुदु । उभयत्थ विसेसहीणकमजुता येंदी यवमध्यप्रथमयोगस्थानस्वामिगळप्प जीवंगळ संख्येयं नोडलु उपरितनानंतरयोगस्थानस्वामिगळ संख्ये मोदल्गोंडु तद्गुणहानिचरमयोगस्थानस्वामिगळ संख्येयपर्य्यंतं विशेषहीनक्रमंगळप्पुवु । तद्यवमध्यानंतराधस्तनगुणहानि प्रथमयोगस्थानस्वामिगळप्प जीवंगळसंख्ये मोदल्गोंडु अधोधस्तनगुणहानिचरमयोगस्थानस्वामिजीवसंख्ये पर्य्यंतं तदुपरितनगुणहानिविशेषप्रमि १६ त विशेषदिदमे :—

३ । ५ । दोगुणहानिः अष्टौ ८ । अधस्तनोपरितनान्योन्याभ्यस्तराशी क्रमेण अष्टौ द्वात्रिंशत् ८ । ३२ । तु—पुनः त्रिगुणगुणहान्या १२ सप्तपंचाशच्चतुःषष्टिभागैः किंचिदूनया $\frac{७११}{६४}$ द्रव्ये भक्ते $\frac{१४२२ \times ६४}{७११}$ जीवयवमध्यं स्यात् । १२८ । तन्मध्ये जीवा बहुकाः इत्युक्तम् । उभयत्थविसेसहीणकमजुत्ता । तेभ्य यवमध्यजीवेभ्यः तन्मध्यात् अधस्तनोपरितनगुणहानिनिषेकेषु जीवाः तत्तद्गुणहानिविशेषेण हीनक्रमयुक्ता भवंति । तत्तद्विशेषप्रमाणं तु तत्तद्गुणहानेरादिनिषेके दोगुणहान्या भक्ते, चरमनिषेके वा रूपाधिकगुणहान्या भक्ते भवति । तेन

सात सौ ग्यारहका चौंसठवाँ भाग हुआ। इसका भाग सर्व द्रव्य चौदह सौ बाईसमें देनेपर एक सौ अट्ठाईस आया। यही यवाकार रचनाके मध्यमें जीवोंका प्रमाण है इसीसे मध्यमें जीव बहुत कहे हैं। मध्यसे ऊपर और नीचेके गुणहानि निषेकोंमें अपनी-अपनी गुणहानिमें जितना विशेषका प्रमाण है उतना क्रमसे घटता जानना। सो अपनी-अपनी गुणहानिके प्रथम निषेकको दो गुणहानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो अथवा अन्तिम निषेकको एक अधिक गुणहानि आयामका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना विशेषका प्रमाण जानना। अतः नीचेकी और ऊपरकी गुणहानिका द्रव्य तथा विशेष क्रमसे आधा-आधा होता है। वही कहते हैं—

ऊपरकी गुणहानि पाँच, उनमें पहली गुणहानिके पहले निषेकका प्रमाण एक सौ अठाईस है। उसको दो गुणहानि आठका भाग देनेपर सोलह आये। वही विशेष है। सो एक-एक निषेकमें सोलह-सोलह घटाइए। अन्तके निषेकमें एक कम गुणहानि आयाम

१. ब उभय तत्रतन्मध्यां ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	५ ६ ७ ८	१२८।४।३ ४।२।२।२।२
२	१० १२ १४ १६	१२८।४।३ ४।२।२।२
४	२० २४ २८ ३२	१२८।४।३ ४।२।२
८	४० ४८ ५६ ६४	१२८।४।३ ४।२
१६	८० ९६ ११२ १२८	१२८।४।३ ४

१६	१६ ऋ ११२ १६ ऋ ९६ १६ ऋ ८० १६ ऋ ६४	धन १२८।४।३ ४ ऋ ६४
८	ऋ ८ ५६ ऋ ८ ४८ ऋ ८ ४० ऋ ८ ३२	धन १२८।४।३ ४।२ ऋ ३२
४	ऋ ४ २८ ऋ ४ २४ ऋ ४ २० ऋ ४ १६	धन १२८।४।३ ४।२।२ ऋ १६

विशेषहीनक्रमंगळप्पुवुमंयत्रमा विशेषप्रमाणमेनितक्कुमेंदोडे हानिविवक्षेइंदं स्वस्वादिनिषेकंगळं- १२८। दोगुणहानियिदं भागिसिदोडे विशेषं बक्कुं। १२८ / ४।२ वृद्धिविवक्षेयिदं स्वस्वादिनिषेकंगळं ८० रूपाधिकगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु ८० / ५ विशेषं बक्कुमदु कारणमागि यवमध्यराशियं दोगुणहानियिदं भागिसिदोडे १२८ / ८ लब्धं विशेषप्रमाणमक्कु १६ मेकेंदोडा विशेषमं दोगुणहानि- यिदं गुणिसिदोडादिवर्गणाप्रमाणमक्कुमप्पुदरिंदमा विशेषदिदं हीनक्रमंगळप्पुवेबुदत्थंमल्लि बळिक्कमधस्तनोपरितनगुणहानि द्रव्यंगळर्द्धार्द्धक्रमंगळप्पुदरिंदमवर विशेषंगळुमर्द्धार्द्धक्रमंगळेय- प्पुवु। अदेंतेंदोडे :—

व्येकपदं चयगुणितं भूमौ मुखे च ऋणधनं च कृते।
मुखभूमियोगदले पदगुणिते पदधनं भवति॥

अधस्तनोपरितनगुणहानीनां द्रव्याणि विशेषाश्च अर्धार्धक्रमेण भवन्ति। तद्यथा —

प्रमाण विशेष घटानेपर आदि निषेक एक सौ अठाईस, मध्य एक सौ बारह और छियानबे, तथा अन्त निषेक अस्सी हुआ १२८।११२।९६।८०। इन सबको जोड़िए। करणसूत्र है—'मुंह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

येंदो रूपोनपदमात्र १६। ४ विशेषंगळं। ४८। भूमियोळु १२८ कळेदोडे शेषमिदु ८० मुखमक्कुमी मुखमं भूमियुमं कूडिदोडे २०८ अष्टोत्तरद्विशतमक्कुमदं दळियिसिदोडे १०४ चतुरुत्तरशतमक्कुमदं पददिदं ४ गुणिसिदोडे १०४। ४। पदधनमक्कु ४१६। इदुपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमिदं संदृष्टिनिमित्तं नाल्करिंदं केळगेयुं मेगेयुं गुणिसि ४१६।४ / ४ मूवत्तेरडरिंदं भेदिसिदोडिदु ३२। १३। ४ / ४ इदं गुणिसिदोडिदु। १२८। १३ / ४ यिल्लि गुणकारभूतत्रयोदशरूपुगळं रूपाधिकत्रिगुणहानियं माडिरिसिदोडिदु १२८। ४। ३ / ४ उपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुं। तदनंतरोपरितनगुणहानिगळोळर्द्धार्द्धक्रमदिदं पोगि चरमगुणहानियोळु रूपोनोपरितननानागुणहानिप्रमाणद्विकंगळु भागहारंगळप्पुवु १२८। ४। ३ / ४। २। २। २। २ अधस्तनगुणहानिगळोळमी प्रकारदिदं यवमध्यदो १२८। ळोंदु स्वविशेषमं कळेदोडे १२८–१६। शेषमधस्तनगुणहानिप्रथमयोगस्थानस्वामिजीवंगळ प्रमाणमक्कु ११२ मिदरोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळं १६। ४।

उपरि प्रथमगुणहानौ मुख ८० भूमि १२८ योग २०८ दले १०४ पद ४ गुणिदे ४१६ इदं संदृष्टिनिमित्तं चतुर्भिरध उपरि संगुण्य ४१६।४ / ४ द्वात्रिंशता संभेद्य ३२। १३। ४ / ४ गुणयित्वा १२८। १३ / ४ गुणकारभूतत्रयोदशसु रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिकृतेषु १२८। ४। ३ / ४ प्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात्। इदं उपरि प्रतिगुणहान्यर्धार्धक्रमेण गच्छत् चरमगुणहानौ रूपोनोपरितननानागुणहानिमात्रद्विकैर्भक्तं स्यात् १२८। ४। ३। / ४। २। २। २। २ अधस्तनगुणहानावप्येवम्। यवमध्ये १२८ एकस्वविशेषेऽपनीते १२८–१६। अधस्तनप्रथमगुणहान्यादिनिषेकः भूमिः ११२।

भूमिजोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि'। यहाँ मुख ८० और भूमि १२८ इनको जोड़ा दो सौ आठ हुए। उन्हें आधा करनेपर एक सौ चार हुए। उन्हें पद अर्थात् गच्छ आयाम चारसे गुणा करनेपर पदधन चार सौ सोलह हुआ। इस प्रकार ऊपरकी प्रथम गुणहानिका सर्वधन चार सौ सोलह जानना। यवमध्यके प्रमाणको एक अधिक तिगुने गुणहानि आयामसे गुणा करें और गुणहानि आयामसे भाग दें। उतना ही प्रथम गुणहानिका द्रव्य होता है। सो यवमध्यका प्रमाण एक सौ अठाईसको तिगुनी गुणहानि बारहमें एक जोड़कर तेरह हुए। उससे गुणा करके और आयाम चारका भाग देनेपर चार सौ सोलह हुए। वही प्रथम गुणहानिका द्रव्य है। आगे एक-एक गुणहानिमें द्रव्यका प्रमाण और विशेषका प्रमाण आधा-आधा होता है। एक कम नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसका भाग प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कळेदोडे मुखमरुवत्तनाल्कक्कु ६४। मी मुखमुमं भूमियुमं ११२। कूडि १७६। दळिसिदोडेण्बत्तेंटक्कु। ८८। मदं पददिंदं गुणिसिदोडे। ८८। ४। इनितक्कुमिदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमदं संदृष्टिनिमित्तमागिकेळगेयुं मेगेयुं नाल्करिंदं गुणिसि ८८।४।४/४ गुण्यभूताष्टाशीतियं गुणकारभूतैकचतुष्कदिदं गुणिसि पदिनारीरदं भेदिसिदोडिदु १६।२२।४/४ ई राशिय गुणकारभूतद्वाविंशतियं द्विकदिदं भेदिसि गुणकारभूतचतुष्कमं द्विगुणिसिदष्टरूपुगळिदं गुण्यभूतपदिनारं गुणिसिदोडेकादशगुणितयवमध्यचतुर्भागमक्कु १२८।११/४ मिदरोळु ऋणमनिनित १२८।२/४ निक्षिकवोडे रूपाधिकत्रिगुणहानिगुणितयवमध्यचतुर्भागप्रमितमक्कु १२८।४।३/४ मधोऽधः अर्द्धार्द्धक्रमंग-

---

अत्र रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषेषु १६।४। अपनीतेषु चरमनिषेकः ६४। मुखभूमियोग १७६ दले ८८ पदगुणिते ८८।४। अधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात्। इदं संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधश्चतुर्भिः संगुण्य ८८।४।४/४ अष्टाशीतिं गुणकारचतुष्केन संगुण्य षोडशभिर्भित्वा १६।२२।४/४ द्वाविंशतिं द्विकेन भित्वा तेन चतुष्कं संगुण्य अष्टभिः षोडशके गुणिते एकादशगुणितयवमध्यचतुर्भागः स्यात् १२८।११/४ अत्रैतावति ऋणे १२८।२/४ निक्षिप्ते रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिगुणितयवमध्यचतुर्भागः स्यात् १२८।४।३/४। अधो-

---

प्रमाण आता है। सो ऊपरकी गुणहानि पाँचमें-से एक घटानेपर चार रहे। चार जगह दोके अंक रखकर २×२×२×२ परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए। उसका भाग प्रथम गुणहानिके द्रव्य चार सौ सोलहमें देनेपर छब्बीस आये। यही अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना। तथा नीचेकी गुणहानि तीनमें-से पहली गुणहानिमें यवमध्यमें जो प्रमाण है उसमें-से एक विशेष घटानेपर प्रथम निषेक होता है। सो यवमध्य एक सौ अठाईसमें-से विशेषका प्रमाण-सोलह घटानेपर एक सौ बारह रहे। यही आदि निषेकका प्रमाण है। इसमें एक-एक निषेकमें एक-एक विशेष घटानेपर अन्तके निषेकमें-से एक कम गुणहानिका आयाम प्रमाण विशेष घटानेपर चौंसठ रहते हैं। सो मुख ६४, भूमि ११२ को जोड़नेपर एक सौ छिहत्तर १७६ हुए। उसका आधा अठासी ८८ को पद चारसे गुणा करनेपर तीन सौ बावन ३५२ हुए। यही नीचेकी प्रथम गुणहानिका सर्व द्रव्य जानना। यवमध्य एक सौ अठाईसमें ग्यारहसे गुणा करके चारसे भाग देनेपर भी तीन सौ बावन होता है। ऊपरकी प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें यवमध्यको दूना करके चारसे भाग देनेपर जो आवे उतना ऋण जानना। सो यवमध्य एक सौ अठाईसको दूना करके चारसे भाग देनेपर चौंसठ आये। इसको ऊपरकी प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें-से घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिका द्रव्य होता है। तथा ऊपरकी गुणहानिके

ळप्पुवंतागुत्तं पोगि चरमाधस्तनगुणहानियोळु रूपोनाधस्तननानागुणहानिप्रमितद्विकंगळु भागहारंगळप्पुवु १२८।४।३ / ४।२।२ ऋणमुं प्रथमाधस्तनगुणहानियोळु निक्षिप्तऋणमं नोडलु गुणहानि प्रतियर्द्धार्द्धंगळप्पु १२८।२ / ४ १२८।२ / ४।२ १२८।२ / ४।२।२ वी ऋणंगळं संकलिसिदोडे अन्तधणं गुणगुणियं १२८।२।२ / ४ आदिविहीणं नाल्करिंदं ४ समच्छेदमं माडि कळेदोडे १२८।१।६।२ / १६ ई सर्व्वऋणप्रमाणं गुणहानिगुणितचरमाधस्तनगुणहानिविशेषदि हीनमप्पयवमध्यराशिप्रमाणमक्कुं ।११२। अन्तधणं १२८।४।३ / ४ गुणगुणियं १२८।१३।२ / ४ आदिविहीणं नाल्करिंदं समच्छेदमं माडि गुणिसि आदियं कळेद शेषमिदु। ७२८ अधस्तनगुणहानिगळ सर्व्वद्रव्यमक्कु। सत्तं अन्तधणं १२८।१३ / ४ गुणगुणियं १२८।१३।२ / ४ आदिविहीणं। ई राशियं पदि-

---

धोऽर्धार्धक्रमेण चरमगुणहानौ रूपोनाधस्तननानागुणहानिमात्रद्विकैर्भक्तः स्यात् १२८।४।३ / ४।२।२ ऋणमपि प्रथमगुणहानिनिक्षिप्तात् प्रतिगुणहान्यर्धार्धं स्यात्। १२८।२ / ४ | १२८।२ / ४।२ | १२८।२ / ४।२।२ संकलिते अतधणं गुण-

---

निषेकोंमें-से नीचेकी गुणहानिके निषेकोंमें ऊपरकी गुणहानिके चय प्रमाण ऋण होता है। जैसे ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेक एक सौ अठाईस है। उसमें-से चयका प्रमाण सोलह घटानेपर नीचेकी गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना। तथा प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य आधा-आधा जानना। एक कम नीचेकी गुणहानि प्रमाण दुओंका भाग आदि गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर अन्तकी गुणहानिका द्रव्य होता है। तथा प्रथम गुणहानिमें जो ऋण कहा है वह भी आगे-आगेकी गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है जैसे ६४।३२।१६। सो 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं' इस सूत्रके अनुसार अन्तधन चौंसठको गुणकार दोसे गुणा करनेपर और आदि सोलह घटानेपर सबसे नीचेकी गुणहानिमें ऋणका प्रमाण होता है। सो गुणहानि आयामके प्रमाणसे नीचेकी अन्तिम गुणहानिमें जो विशेषका प्रमाण है उसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना यवमध्यके प्रमाणमें-से घटानेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। सो गुणहानि आयाम चारसे नीचेकी अन्तिम गुणहानिके विशेष चारको गुणा करनेपर सोलह हुए। सो यवमध्यमें-से घटानेपर एक सौ बारह रहे। सो सर्वऋण होता है। चौंसठ, बत्तीस और सोलहको जोड़नेपर भी एक सौ बारह ही होता है। तथा नीचे की और ऊपरकी सर्वगुणहानियोंका सर्वद्रव्य 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार जोड़नेपर तथा उसमें-से उक्त ऋणको घटानेपर शुद्ध द्रव्य चौदह सौ बाईस १४२२ होता है।

नार्रारिदं समच्छेदमं माडि आदियनदरोळकळेद शेषमिदु । ८०६ । उपरितनगुणहानिगळ समस्त-

धनमक्कुं । कूडिदुभयधनमिदु १५३४ यिदरोळगे अधस्तनगुणहानिगळोळु प्रविष्टऋणमनि-
नितं ११२ कळेदोडे शुद्धद्रव्यप्रमाणमिदु । १४२२ । इन्तु "मज्झेमजीवा बहुगा उभयत्थविसेस
हीणकमजुत्ता । हेट्ठिमगुणहाणिसळादुवरि सळागा विसेसहिया ॥ एंदी गाथा सूत्रात्थं विशदं

गुणियं १२८ । २ । २ / ४ आदिविहीणमिति १२८ / १६ । १६–२ इदं सर्वऋणं गुणहानिगुणितचरमाधस्तनगुणहानि-
विशेषेण हीनयवमध्यराशिमात्रं स्यात्—

१	५ ६ ७ ८	१२८।४।३ ४ २ २ २ २
२	१० १२ १४ १६	१२८।४।३ ४।२।२।२
४	२० २४ २८ ३२	१२८।४।३ ४।२।२
८	४० ४८ ५६ ६४	१२८।४।३ ४।२
१६	८० ९६ ११२ १२८	१२८।४।३ ४

↓

↑

१६	ऋ १६ ११२ ऋ १६ ९६ ऋ १६ ८० ऋ १६ ६४	धन १२८।४।३ ४ ऋ ६४
८	ऋ ८ ५६ ऋ ८ ४८ ऋ ८ ४० ऋ ८ ३२	धन १२८।४।३ ४।२ ऋ ३२
४	ऋ ४ २८ ऋ ४ २४ ऋ ४ २० ऋ ४ १६	धन १२८।४।३ ४।२।२ ऋण १६

गुणहानिके निषेकोंमें घटाये जानेवाले विशेषोंका प्रमाण, योगस्थानरूप निषेकोंमें जीवोंका प्रमाण, गुणहानिमें सर्वद्रव्यका प्रमाण, नीचेकी और ऊपरकी गुणहानिमें घटाये जानेवाले ऋणका प्रमाण ये सब दिखानेके लिए आगे यन्त्र लिखते हैं—

इस यन्त्रका आशय इस प्रकार जानना—

त्रस पर्याप्त सम्बन्धी परिणाम योगस्थान बत्तीस कहे। उनमें ऊपरकी गुणहानिके प्रथम निषेकरूप जो योगस्थान हैं उनके धारक जीव एक सौ अठाईस हैं। उसको यवमध्य कहते हैं। उस स्थानसे पहले और पिछले दो योगस्थानोंके धारी जीव एक सौ बारह, एक सौ बारह हैं। इसी प्रकार सब योगस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण जानना। जैसे अंकोंके द्वारा कथन दिखाया है वैसे ही यथार्थ कथन जानना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माडल्पट्टुदु । यिल्लियुपरितननानागुणहानिशलाकेगळु अधस्तननानागुणहानिशलाकेगळं नोडलु विशेषाधिकंगळेयप्पुवेंबुदं सिद्धमादुवॆंतेदोडधस्तनगुणहानिशलाकेगळु ३ । इवं नोडलु उपरितननानागुणहानिशलाकेगळयिदु ५ अयिदु । अदु कारणमागि द्विगुणंगळल्लवॆरडु रूपुगळिदमधिकंगळप्पुदरिदं विशेषाधिकंगळेयप्पुवॆंबुदरर्थं ॥

एतानि अधस्तनोपरितनगुणहानिद्रव्याणि पृथगंतधनमित्यादिना संकलय्य मेलयित्वा तत्र तदृणेऽपनीते शुद्धद्रव्यं तावन्मात्रमेव स्यात् १४२२ । तदानीयते—

[अंतधणं गुणगुणियं १२८ । १३ । २ / ४ चतुर्भिः समच्छेद्य संगुण्यादिविहीणं ७२८ अधस्तनगुणहानिसर्वद्रव्यं स्यात् । पुनः अंतधणं १२८ । १३ गुण २ / ४ गुणियं १२८ । १३ । २ / ४ षोडशभिः समच्छेद्यादिविहीणं ८०६ उपरितनगुणहानिसमस्तधनं स्यात् । मिलित्वा उभयधनमिदं १५ । ३४ । अत्राधस्तनगुणहानिप्रविष्टऋणे ११२ अपनीते शुद्धद्रव्यं स्यात् । १४२२][1] ॥ २४५–२४६ ॥

नाम	विशेष का प्रमाण	निषेकोंमें जीवों का प्रमाण	गुणहानिमें सर्वद्रव्यका प्रमाण
ऊपरकी पाँचवीं गुणहानि	१	५ ६ ७ ८	२६
ऊपरकी चौथी गुणहानि	२	१० १२ १४ १६	५२
ऊपरकी तीसरी गुणहानि	४	२० २४ २८ ३२	१०४
ऊपरकी दूसरी गुणहानि	८	४० ४८ ५६ ६४	२०८
ऊपरकी प्रथम गुणहानि	१६	८० ९६ ११२ १२८	४१६

↓ ↑

नीचेकी प्रथम गुणहानि	१६	ऊपरकी प्रथम गुणहानिके निषेकोंमें-से ऋण १६ ११२ ९६ ८० ६४	ऊपरकी प्रथम गुणहानिके सर्वद्रव्यमें ऋण ६४ शेष रहे ३५२
नीचेकी दूसरी गुणहानि	८	ऊपरकी दूसरी गुणहानिके निषेकोंमें ऋण ८ ५६ ४८ ४० ३२	ऊपरका द्वितीय गुणहानिके सर्वद्रव्यमें-से ऋण ३२ शेष रहे १७६
नीचेकी तीसरी गुणहानि	४	ऊपरकी तीसरी गुणहानिके निषेकोंमें-से ऋण ४ २८ २४ २० १६	ऊपरकी तीसरी गुणहानिके सर्वद्रव्यमें ऋण १६ शेष रहे ८८

---

१. कोष्ठकान्तर्गतो पाठः ब प्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरमर्त्थसंदृष्टियं तोरिदपरु :—

पुण्णतसजोगठाणं छेदासंखस्ससंखबहुभागे ।
दलमिगिभागं च दलं दव्वदुगं उभयदलवारा ॥२४७॥

पूर्णत्रसयोगस्थानं च्छेदासंख्यस्यासंख्यबहुभागे। दलमेकभागं च दलं द्रव्यद्वयमुभयदलवाराः ॥

अर्त्थसंदृष्टियोळु द्रव्यप्रमाणं पर्याप्तत्रसराशियक्कुं। अदर प्रमाणमुमेनितेंदोडे मुन्नं जीवकांडदोळु पेळ्द "आवळिअसंखसंखेणवहिदपदरंगुळेण हिदपदरं। कमसो तसतप्पुण्णा" येंदितु त्रसपर्य्याप्तराशियुं संख्यातभाजितप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितमक्कुं = ४/५ योगस्थानं द्वींद्रियपर्य्याप्तजीवपरिणाम योगजघन्यस्थानमपवर्तितमिदादियागि व वि १६। ४। ०̄। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्य्यन्तमाद सर्व्वनिरंतरपरिणामयोगस्थानंगळु ०̄। आदी अंते। ०̄ ३२। सुद्धे ०̄ ३१। वड्ढिहिदे ०̄ २ ३१ / ० रूवसंजुदे ठाणा ०̄ २ ३१ / ० एंदितिनितुं योग-

---

यथार्थसंदृष्ट्या आह—

द्रव्यं संख्यातभाजितप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितपर्याप्तत्रसराशिः = ४/५ द्वींद्रियपर्याप्तपरिणामयोग-

जघन्यात् — ० प / ० ० ५ अपवर्तितात् — ० अनंतरस्थानमिदं २ ० / ० आदिकृत्वा प्रागुक्तवृद्धया वर्धितानि संज्ञिपर्याप्तपरिणाम-

योगोत्कृष्टपर्यंतानि ८४ व वि १६। ४। — ० । छे उ ० आदौ — १ ० अंते — ० ३२ शुद्धे — ० ३१ वड्ढिहिदे— ० २ ३१ / ०

सर्व — २ ३१ / ० ०

७५ व वि १६। ४।— ० ज

यथार्थ कथन दिखाने के लिए कहते हैं—

जैसे द्रव्यका प्रमाण चौदह सौ बाईस कहा उसी प्रकार संख्यातका भाग प्रतरांगुलमें देनेपर जो प्रमाण आवे उसका भाग जगत प्रतरमें देनेपर जो प्रमाण हो उतना पर्याप्त त्रस जीवोंका प्रमाण है। इसे ही यहाँ द्रव्य जानना। तथा जैसे स्थितिका प्रमाण बत्तीस कहा था उसी प्रकार दो-इन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगस्थानसे लगाकर संज्ञी पर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त जितने योगस्थान हैं उतनी स्थिति जानना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानंगळिलिगे स्थिति यॆंबुदक्कुमेकॆंदॊडे जघन्यस्थानं मॊदलगॊंडुत्कृष्टस्थानपर्य्यन्तमागिद्दं परिणामयोगसमस्तस्थानविकल्पंगळोळेकैकस्थानं प्रति स्वामित्वदिदं द्वींद्रियादिपर्य्याप्तत्रसराशि पसल्पडुगुमप्पुदरिदं छेदासंख्यस्य पल्यच्छेदासंख्यातैकभागद । छे/ə । असंख्यबहुभागे यथायोग्यमप्प असंख्यातदिदं खंडिसिद बहुभागेयॊळु छे ə / ə ə दळं अर्द्धमुं छे ə / ə ə २ मत्तमिगिभागं च दळं येक भागमुं छे १ / ə ə बहुभागार्द्धमुं छे ə / ə ə २ एकभागयुतबहुभागार्द्धमॆंबुदत्थं छे ə / ə ə २ मिन्तु यथाक्रमदिदं द्रव्यद्वयं द्रव्यमुं स्थितियुमॆंब द्वितयमुं उभयदळवाराः अधस्तनोपरितनदळवारंगळॆंबुवु नानागुणहानिशलाकेगळगे पेसरक्कुमी सूत्रदिदमिन्तु नाल्कुं राशिगळ्पेळल्पट्टुवु ॥

रूवसंजुदे – ə २ ३१ / ə इत्यानीतविकल्पानि योगस्थानानि स्थितिः, पर्याप्तत्रसराशेः तेषु स्वामित्वेन भक्त्वा दीयमानत्वात् । पल्यच्छेदासंख्यातैकभागस्य छे / ə असंख्यातेन उपर्यधोगुणितस्य छे ə / ə ə एकभागं पृथक्संस्थाप्य छे १ / ə ə शेषबहुभागान् छे ə / ə ə द्वाभ्यां भक्त्वा तत्रैकार्धं छे ə / ə ə २ अधस्तननानागुणहानिशलाका भवंति । पृथक्स्थापितैकभागयुतमपरार्धं छे ə / ə ə २ उपरितननानागुणहानिशलाका भवंति ॥ २४७ ॥

ऊपर जो चौरासी स्थान कहे हैं उनमें-से दोइन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगस्थानका प्रमाण जगत श्रेणिके असंख्यातवें भागको पिचहत्तर बार पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करो। अपवर्तन करनेपर जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग ही हुआ। उसमें सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग मिलानेपर उसके अनन्तरवर्ती स्थान होता है। उसको आदि देकर संज्ञी पर्याप्तका उत्कृष्ट योगस्थान संदृष्टि अपेक्षा जघन्यसे बत्तीस गुणा और यथार्थकी अपेक्षा पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा है। वहाँ तक स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

दोइन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगस्थानसे जो अनन्तर स्थान है वह तो आदि हुआ, और संज्ञी पर्याप्तका उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अन्त हुआ। 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा' इस सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाइए। एक-एक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि होती है, अतः उससे भाग दें। जो प्रमाण हो उसमें एक मिलाइए तब त्रस पर्याप्त सम्बन्धी परिणाम योगस्थानोंका प्रमाण होता है। वही स्थितिका प्रमाण जानना।

इन स्थानोंके धारक जीव कितने हैं यह बतलानेके लिए कहते हैं—

जैसे आठ नाना गुणहानियोंमें-से तीन नीचे को कही थीं, पाँच ऊपरकी कही थीं, उसी प्रकार पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण समस्त नाना गुणहानि हैं। उसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणागुणहाणिसला छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ ।
गुणहाणीणद्धाणं सव्वत्थ वि होदि सरिसं तु ॥२४८॥

नानागुणहानिशलाकाः छेदासंख्यातैकभागमात्राः । गुणहानीनामध्वानं सर्व्वत्रापि भवति सदृशं तु ॥

अधस्तनोपरितनोक्त नानागुणहानिशलाकेगळुं कूडि छेदासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवो नानागुणहानिशलाकेगळिंदं स्थितियं त्रैराशिकविधानदिंदं भागिसुत्तं विरलु प्र छे / ० प ० ३१ / २ / ० इ १ बंद लब्धं गुणहान्यायाममक्कु ० ३१ / २ छे / ० ० मीयायाममुभयत्राधस्तनोपरितननानागणहानिगळोळु सदृशं समानं तु नियमदिदं ॥

अण्णोण्णगुणिदरासी पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु ।
हेट्ठिमरासीदो पुण उवरिल्लमसंखसंगुणिदं ॥२४९॥

अन्योन्यगुणितराशिः पल्यासंख्येयभागमात्रस्तु । अधस्तनराशितः पुनरुपरितनोऽसंख्यगुणितः ॥

ता उभयनानागुणहानिशलाका मिलिताश्च्छेदासंख्यातैकभागमात्र्यः । ताभिः स्थितौ भक्तायां प्र छे / ० फ — / ० २ ३१ / ० इ १ लब्धगुणहान्यायामः स्यात् — २ छे ३१ / ० ० ० स च अधस्तनोपरितननानागुणहानिषु सदृशः समानः तु-नियमेन ॥२४८॥

असंख्यातसे भाग दें । एक भागको पृथक् रखकर शेष बहुभागके आधा प्रमाण तो नीचेकी नाना गुणहानि जानना । तथा बहुभागका आधा और अलग रखा एक भाग मिलकर ऊपरकी नाना गुणहानि जानना ॥२४७॥

यही आगे कहते हैं—

नीचे और ऊपरकी नाना गुणहानियाँ मिलानेपर पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग हैं । उससे स्थितिमें भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना एक गुणहानि आयामका प्रमाण जानना । जैसे पूर्वमें स्थिति बत्तीस कही थी । उसको सर्व नाना गुणहानि आठसे भाग देनेपर चार आये । सो चार एक गुणहानि आयामका प्रमाण है । वैसे ही यहाँ भी जानना । गुणहानि आयामका प्रमाण ऊपरकी गुणहानि और नीचेकी गुणहानिमें समान है । एक-एक गुणहानिमें इतने स्थान होते हैं । इस गुणहानि आयामका दूना प्रमाण दोगुणहानिका प्रमाण है ॥२४८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्योन्यगुणितराशिः अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्यासंख्यातैकभागमात्रं सामान्यदिदमक्कुं। प/a तु पुनः मत्ते विशेषदिद अधस्तनराशितः अधस्तनान्योन्याभ्यस्तराशियं नोडलु उपरितनः उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यसंगुणितः असंख्यातसंगुणितमक्कुं। अधस्तनान्योन्याभ्यस्त-राशि प/a ३ a उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशि प/a a इन्तुक्तनवराशिगळगे संदृष्टि :—

द्रव्य	४/५	स्थिति	a ३१/२/a	गुणहानि	a ३ १/२ छे/a a	सामान्यनानागुणहानि	छे/a	सामान्यान्योन्याभ्यस्त	प/a
						उपरि छे	a/a a २	उपरि अन्योन्याभ्यस्त	प/a a
						अधस्त छे	a/a a । २	अधस्तनान्योन्याभ्यस्त	प/a a a

अनंतरं जघन्यपरिणामयोगस्थानस्थितिमोदल्गो डुत्कृष्टपरिणामयोगस्थानस्थितिपर्य्यंतं प्रति स्थिति पर्य्याप्तत्रसराशिविभाजिसल्पडुगुमदें तें दोडे किंचूनत्रिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं एंदु किंचिदूनत्रिगुणहानियिदं द्रव्यं भागिसल्पडुत्तिरलु लब्धं यवमध्यमक्कु ४/५ । गु ३ मो राशियं दो गुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु लब्धं प्रचयप्रमाणमक्कु ४/५ गु ३ गु २ मो प्रचयमं मत्ते दो-

अन्योन्याभ्यस्तराशिः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः सामान्येन भवेत् प/a तु-पुनः विशेषेण अधस्तनान्योन्याभ्यस्तराशितः प/a a a उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशिरसंख्यातगुणितः स्यात् प/a a । अथ जघन्यपरिणामयोगस्थानमादिं कृत्वा उत्कृष्टपरिणामयोगस्थानपर्यंतेषु स्थितिविकल्पेषु पर्याप्तत्रसराशिर्विभज्यते तद्यथा—

नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। जैसे नीचेकी आठ और ऊपरकी बत्तीस अन्योन्याभ्यस्त राशि कही थी वैसे ही सामान्यसे पल्यके असंख्यातवें भाग अन्योन्याभ्यस्त राशि है। तथापि नीचेकी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे ऊपरकी अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यात गुणी है। अब जघन्य परिणाम योगसे लेकर उत्कृष्ट परिणाम योग पर्यन्त योगस्थानोंमें जीवोंका विभाग अंक संदृष्टिकी तरह इस प्रकार जानना—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणहानियिदं गुणिसुत्तं विरलु लब्धं यवमध्यप्रमाणमेयक्कुं = ४ गु ३ गु २ / ५ ‒ गु २ मेले द्वितीयपुंजं मोदल्गोंडु तत्प्रथमगुणहानिचरमपर्य्यन्त मेकैकविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानिमात्रचयंगळु हीनमक्कु = ४ गु ३ गु २ / ५ ‒ गु मा चरमदोळोंदु विशेषमं कळेदोडे उपरितनद्वितीय गुणहानिप्रथमजीवराशिप्रमाणमक्कु = ४ गु ३ गु २ / ५ ‒ गु १ मिल्लि संदृष्टिनिमित्तमागि मेगेयुं कोळगेयुं द्विगुणिसिदोडे जीवयवमध्यप्रमाणदर्द्धप्रमितमक्कुं = ४ गु ३ गु २ । २ / ५ ‒ गु २ मेले मुन्निनंते तद्वितीयगुणहानिचरमपर्य्यंतं स्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानिमात्रचयंगळु हीनमक्कुं । = ४ गु ३ गु २ । २ / ५ ‒ गु मत्तमा चरमदोळु पूर्व्वविशेषमनेयोंदं कळेदोडे उपरितनतृतीयगुणहानि प्रथमजीवराशिप्रमाणमक्कु = ४ गु ३ गु । २ / ५ ‒ गु १ मिल्लियुं मुन्निनंते संदृष्टिनिमित्तमागि कोळगेयुं

किंचिन्न्यूनत्रिगुणगुणहान्या द्रव्ये भक्ते यवमध्यं स्यात् == / ४ गु ३‒ / ५ तच्च दोगुणहान्या भक्तं प्रचयः स्यात् == / ४ गु ३‒ गु २ / ५ स एव पुनः दोगुणहान्या गुणितः यवमध्यं स्यात् == गु २ / ४ गु ३‒ गु २ / ५ उपरि द्वितीयपुंजमादिं कृत्वा तत्प्रथमगुणहानिचरमपर्यंतं एकैकविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानिमात्रचया होनाः स्युः = गु / ४ गु ३‒ गु २ / ५ तस्मिन् पुनः एकविशेषेऽपनीते उपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमजीवराशिप्रमाणं स्यात् = गु / ४ गु ३‒ गु २ / ५ । इदं संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधोद्विकेन गुणिते जीवयवमध्यार्धं

किंचित् न्यून तिगुनी गुणहानि आयामका भाग सर्वद्रव्यको देनेपर यवमध्यका प्रमाण होता है। उसको दो गुणहानिसे भाग देनेपर चयका प्रमाण होता है। चय और विशेषका एक ही अर्थ है। इस चयको दोगुणहानिसे गुणा करनेपर यवमध्यका प्रमाण होता है। ऊपरकी गुणहानिमें प्रथम निषेक तो जितना यवमध्यका प्रमाण है उतना है। उससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेलेयुं द्विगुणिसिदोडे द्वितीयगुणहानिप्रथमद्रव्यमं नोडलो तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्यमर्द्धमक्कु = ० — गु २ / ४ गु ३ गु २। २। २ / ५ मिन्तु मेले चयहीनमागुत्तं पोगि चरमदोळ् रूपोनगुणहानिमात्र-

स्वविशेषंगळुहीनमक्कु = ० — गु / ४ गु ३ गु २। २। २ / ५ मिल्लियोंदु विशेषमं कळेदोडे चतुर्थ-

गुणहानिप्रथमद्रव्यमक्कु–। = ० — गु / ४ गु ३ गु २। २।२ / ५ मिल्लियुं संदृष्टिनिमित्तमागि केळगेयुं मेगेयुं

द्विगुणिसिदोडे तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्यमं नोडलो चतुर्थगुणहानिप्रथमराशिद्रव्यमर्द्धमक्कु–।
= ० — गु / ४ गु ३ गु २। २। २। २ / ५ मिल्लिदं मेले चयहीनमागुत्तं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानिमात्र-

---

स्यात् = गु २ / ४ गु ३ – गु २ २ / ५ उपरि द्वितीयगुणहानिचरमपर्यंतं स्वविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानि-

मात्रचयहीनाः स्युः === ० — गु / ४ गु ३ – गु २ ३ / ५ तस्मिन् पुनः एकविशेषेऽपनीते उपरितनतृतीयगुणहानिप्रथमजीवराशिप्रमाणं

स्यात् = गु / ४ गु ३ – गु २ २ / ५ तच्च उपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं स्फुटं द्वितीयगुणहानिमात्रप्रथमद्रव्यार्धं दृश्यते

= गु २ / ४ गु ३ – गु २ २ २ / ५ उपरि चयहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीनाः स्युः–

= ० — गु / ४ गु ३–गु २ २ २ / ५ अत्रैकविशेषेऽपनीते चतुर्थगुणहानिप्रथमद्रव्यं स्यात् = गु / ४ गु ३– गु २ २ २ / ५ तच्च उपर्यधो-

---

ऊपर द्वितीयादि निषेक एक एक चय हीन जानना। सो एक कम गुणहानिके आयाम प्रमाण चय यवमध्यमें-से घटानेपर प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेकका प्रमाण होता है। उसमें एक चय घटानेपर यवमध्यसे आधा प्रमाण होता है वही द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक होता है। इससे ऊपर एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं। सो एक कम गुणहानि आयाम प्रमाण चयोंके घटानेपर अन्तिम निषेक होता है। यहाँ प्रथम गुणहानिमें जो चयका प्रमाण था उससे आधा दूसरी गुणहानिमें चयका प्रमाण जानना। तथा दूसरी गुणहानिके अन्तिममें-से एक चय घटानेपर दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकसे आधा प्रमाण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वविशेषंगळु हीनमक्कु = a गु / ४ गु ३ (५) गु २।२।२।२ मिन्तु पंचमदिगुणहानिगळोळं तत्तद्गुणहानि प्रथमजीवद्रव्यंगळर्द्धार्द्धक्रमदिदं पोगियुपरितनगुणहानिगळ चरमगुणहानियोळु चरमजीवद्रव्यदोळु उपरितनरूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळु हारंगळप्पुववनन्योन्याभ्यासं माडिदोडे लब्धमुपरितनान्योन्याभ्यस्तराशियर्द्धं हारमक्कुमागि रूपाधिकगुणहानिगुणकारमक्कुं— = a गु / ४ गु ३ (५) गु २ प (ब ब ब २)

मत्तमधस्तनगुणहानिगळोळु यवमध्याधस्तनानंतरप्रथमगुणहानिप्रथमजीवद्रव्यं मोदल्गोंडु गुणहानिगुणहानिं प्रति समस्तस्थितिद्रव्यदोळु चरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यपर्य्यंतमेकैकस्वस्वगुणहानिप्रचयंगळं ऋणमनिक्किदोडे अधस्तननानागुणहानिशलाकाप्रमितोपरितननानागुणहानिगळ स्थितिद्रव्यंगळोळु समानमक्कुमन्तु ऋणमिक्कल्पडुत्तिरलु अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमु-

द्विकेन गुणितं तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्यार्धं स्फुटं स्यात् = गु २ / ४ गु ३—गु २ २ २ २ (५) उपरि चयहीनं सत् चरमे रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषहीनं स्यात् = a गु / ४ गु ३— गु २ २ २ २ (५) एवं पंचमादिगुणहानिषु तत्तद्गुणहानिप्रथमजीवद्रव्याणि अर्धार्धक्रमेण गत्वा चरमगुणहानौ चरमजीवद्रव्ये रूपोनोपरितननानागुणहानिमात्रद्विकानि हारा भवंति तेषामभ्यासे उपरितनान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धं स्यात् । गुणकारो रूपाधिकगुणहानिः स्यात् = a गु / ४ गु ३— गु २ प (५) (ब ब २)

पुनरधस्तनगुणहानिषु यवमध्याधस्तनानंतरप्रथमगुणहानिप्रथमजीवद्रव्यमादिं कृत्वा गुणहानिं गुणहानिं प्रति समस्तस्थितिद्रव्येषु चरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यपर्यंतेषु एकैकस्वस्वगुणहानिप्रचयप्रमितऋणे निक्षिप्ते अधस्तननानागुणहानिशलाकाप्रमितोपरितननानागुणहानिस्थितिद्रव्येण समानं स्यात् तेन अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथम-

वही तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक जानना। यहाँ चयका प्रमाण दूसरी गुणहानिके चयसे आधा जानना। उतना चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं। इस तरह अन्तकी गुणहानि पर्यन्त जानना। प्रत्येक गुणहानिमें जीवोंका प्रमाण आधा-आधा होता जाता है। नीचेकी गुणहानिमें यवमध्यसे नीचे प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकसे लगाकर अन्तकी गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त प्रत्येक गुणहानिके समस्त निषेकोंमें जो-जो ऊपरकी गुणहानिके निषेकोंमें प्रमाण कहा है उनमें-से अपनी-अपनी गुणहानिमें जितना-जितना चयका प्रमाण कहा है उतना-उतना निषेकमें घटानेपर निषेकोंका प्रमाण होता है। वही कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६ परितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यसमानमक्कु ४ गु ३ गु २ / ५ मिल्लिदं केळगेकैक-
११२
विशेषहीनक्रमदिंदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळु हीनमक्कु ४ गु ३ गु २ / ५ मिल्लियोंदु विशेषमं होन माडिदोडेयधस्तनद्वितीयगुणहानियोळु प्रथम-स्थितिद्रव्यमुपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यसमानमक्कु ४ गु ३ गु २ / ५ मिल्लि संदृष्टि-निमित्तं पूर्व्वदंते केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसुत्तं विरलु जीवयमध्यप्रमाणदर्द्धमक्कु ४ गु ३ गु २ / ५ मल्लिदं केळगे केळगे स्वविशेषहीनक्रमदिंदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्व-विशेषंगळु होनमक्कु ४ गु ३ गु २ । २ / ५ मल्लियोंदु विशेषमं होनमं माडिदोडे तृतीयाधस्तन-गुणहानि प्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु ४ गु ३ गु २ । २ / ५ मिल्लियुं संदृष्टिनिमित्तमागि केळगेयुं

स्थितिद्रव्यं उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं च समानं = गु २ / ४ गु ३ – गु २ / ५ इतोऽधः एकैकविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयंते = गु / ४ गु ३ – गु २ / ५ पुनरेकविशेषेऽपनीते अधस्तनद्वितीय-गुणहानौ प्रथमस्थितिद्रव्यमुपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं समानं स्यात् = गु / ४ गु ३ – गु २ / ५ इदं संदृष्टि-निमित्तं उपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं जीवयवमध्यप्रमाणार्धं स्यात् = गु २ / ४ गु ३ – गु २ २ / ५ इतोऽधः विशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयंते = गु / ४ गु ३ – गु २ २ / ५ अत्रैकविशेषहीने तृतीयाधस्तनगुण-

---

ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेक यवमध्य प्रमाण है। उसमें-से प्रथम गुणहानिमें जितना विशेष (चय) का प्रमाण कहा है, उतना घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। तथा ऊपरकी प्रथम गुणहानिके दूसरे निषेकका जो प्रमाण कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेलेयुं द्विगुणिसिदोड उपरितन द्वितीयगुणहानि प्रथमस्थितिद्रव्यार्द्धसमानमागियधस्तनद्वितीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यदर्द्धमात्रमी तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कुं। ४ गु ३ गु २।२।२ यिदरनंतर स्थितिद्रव्यं मोदल्गोंडेकैकस्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिप्रमितस्वविशेषंगळ् हीनमक्कु। ४ गु ३ गु २।२।२ मिल्लियोंदु विशेषमं हीनमं माडिदोडे चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु ४ गु ३ गु २।२।२ मिल्लियुं संदृष्टिनिमित्तमागि केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसिदोडे चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमुपरितन तृतीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्द्धसमानमुमागि तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्द्धमी चतुर्थाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु ४ गु ३ गु २।२।२।२ मल्लिदं केळगे द्वितीयस्थितिद्रव्यं मोदल्गोंडेकैकस्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळु हीनमक्कु। ४ गु ३ गु २।२।२।२ मितु पंचमाद्यधस्तनगुणहानिगळोळं तत्तद्गुणहानि-

हानिप्रथमस्थितिद्रव्यं भवेत् = गु / ४ गु ३ – गु २ २ / ५ इदमपि संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं उपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्धसमानं अधस्तनद्वितीयगुणहानिद्रव्यार्धमात्रं तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं स्यात् = गु २ / ४ गु ३ – गु २ २ ९ / ५ अधः एकैकस्वविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिप्रमितस्वविशेषा हीयंते = गु / ४ गु ३ – गु २ २ २ / ५ अत्रैकविशेषे हीने चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं स्यात् = गु / ४ गु ३ – गु २ २ २ / ५ इदमपि संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधोद्विकेन गुणितं चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं उपरितनतृतीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्धसमानं अधस्तनतृतीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्धमात्रं स्यात् = गु २ / ४ गु ३ – गु २ २ २ २ / ५ इतोधः एकैकस्व-

है उसमें-से प्रथम गुणहानिके चय प्रमाण घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिके दूसरे निषेकका प्रमाण होता है। इस तरह प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त जानना। तथा ऊपरकी दूसरी गुणहानिमें जो प्रथम निषेकका प्रमाण कहा था उसमें-से दूसरी गुणहानिमें जो विशेष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमस्थितिद्रव्यंगळर्द्धार्द्धक्रमदिंदं पोगियधस्तन चरमगुणहानियोळु चरमस्थितिद्रव्यदोळु अधस्तनरूपोन नानागुणहानिमात्रद्विकंगळु हारमागिप्पुववनन्योन्याभ्यासं माडिदोडे लब्धमधस्तनान्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धमागि हारमक्कुं । गुणकारमुं रूपाधिकगुणहानि यक्कु ४̿ गु ३ गु २ प / ५ ७७७ २ मी राशियु मीयधस्तननानागुणहानिगल शलाकाप्रमितोपरितनगुणहानिगळ चरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यदोळु समानमक्कुमिन्तुक्ताधस्तनगुणहानिगळगमवर ऋणंगळगमुपरितनगुणहानिगळगं यथाक्रमदिंदं विन्यासरचनाविशेषमिदु :—

अधस्तनगुणहानि	मुखभूमीत्यादि	ऋणं	उपरितनगुणहानि
प्रथम गुण ४̿ गु ३ गु २ / १ ० गु ० ४̿ गु ३ गु २ / ५	४̿ गु ३ गु २।२ / ५	प्रथमगुणहानि समस्त ऋण ४̿ गु ३ गु २ / ५	चरमगुणहानि ४̿ गु ३ गु २ प / ५ ७७ २ ४̿ गु ३ गु २ प / ५ ७७ २
अधस्तन चरमगुणहानि ४̿ गु ३ गु २ प / ५ ७७७ २ ४̿ गु ३ गु २ प / ५ ७७७ २	मुखभूमीत्यादि ४̿ गु ३ गु प २ / ५ ७७७ २	चरमगुणहानि समस्त ऋण ॥ ४̿ गु ३ गु २ प / ५ ७७७ २	उपरितन ४̿ गु ३ गु २ / ५ प्रथम गु. ४̿ गु ३ गु २ / ५

विशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयंते = गु / ४ गु ३ - गु २ २ २ २ / ५ एवं

पंचमाद्यधस्तनगुणहानिषु तत्तद्गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्याणि अर्धार्धक्रमेण गत्वा अधस्तनचरमगुणहानौ चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनाधस्तननानागुणहानिमात्रद्विकानि हाराः स्युः । तेषामभ्यासे अधस्तनान्योन्याभ्यस्तार्धं स्यात् । गुणकारो रूपाधिकगुणहानिः स्यात् = गु / ४ गु ३ - गु २ प / ५ ७७७ २ अयं राशिः अधस्तननानागुणहानिशलाकाप्रमितो-

का प्रमाण कहा है उतना घटानेपर नीचेकी द्वितीय गुणहानिमें प्रथम निषेकका प्रमाण जानना। उसमें-से उतना ही घटानेपर उसके दूसरे निषेकका प्रमाण जानना। इस तरह अन्तके निषेक पर्यन्त जानना। इसी प्रकार तृतीय आदि गुणहानिमें भी जानना। नीचेकी गुणहानियोंकी रचनामें चयका प्रमाण जोड़ देनेपर नीचेकी गुणहानिका प्रमाण ऊपरकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुखभूमीत्यादि

= गु ३ गु
४ गु ३ गु २ प २
५ a a २

←

मुखभूमीत्यादि

= गु ३ गु
४ गु ३ गु २।२
५

परितनगुणहानिचरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यसमः। उक्ताधस्तनगुणहानीनां तद्गुणानामुपरितनगुणहानीनां क्रमेण विन्यासोऽयं—

अधस्तनप्रथमगुणहानिः	मुखभूमीत्यादिनानीताधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यं	ऋणं उपरि	उपरितनचरमगुणहानिः	मुखभूमीत्यादि
= गु २ ४ गु ३– गु २ ५ ० ० = गु ४ गु ३– गु २ ५	= गु ३– गु ४ गु ३– गु २ २ ५	= गु १ ४ गु ३– गु २ ५	= गु ४ गु ३– गु २ प ५ a a २ ० ० = गु २ ४ गु ३– गु २ प ५ a a २	= गु ३ गु ४ गु ३– गु २ प २ ५ a a २
० ०	० ०	० ०	० ०	० ०
अधस्तनचरमगुण.	मुखभूमीत्यादि	ऋणं चरमगुण	उपरितनप्रथमगुणहानिः	मुखभूमीत्यादि
= गु २ ४ गु ३–गु २ प ५ aaa २ ० ० = गु ४ गु ३– गु २ प ५ a a a २	= गु ३ गु ४ गु ३– गु २ प २ ५ a a a २	= गु १ ४ गु ३–गु २ प ५ aaa२	= गु ४ गु ३– गु २ ५ ० ० = गु २ ४ गु ३– गु २ ५	= गु ३ गु ४ गु ३–गु २ । २ ५

गुणहानिके समान हो जाता है। इस तरह जिस-जिस निषेकमें जितना-जितना प्रमाण हो उस-उस योगस्थानमें उतना-उतना जीवोंका प्रमाण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरमी त्रिविधपंक्तिगळ संकलन पेळल्पडुगुमदेंतेदोडे :—अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदु $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ \overline{गु}\ २}{५}$ गु २ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदु $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ गु\ २}{५}$ गु मुखभूमीजोग $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ गु\ २}{५}$ गु ३ दळे $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ गु\ २।२}{५}$ गु ३ पदगुणिदे $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ गु\ २।२}{५}$ गु ३ पदधणं होदि एंबिदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमधस्तनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदु $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ गु\ २\ प}{५\quad\quad ववव\ २}$ गु २ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदु $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ गु\ २।२}{५}$ गु ३ गु २ मुखभूमीजोगदळे पदगुणिदे पदधनं होदि यंदु तंद धनमिदु । अधस्तनचरमगुणहानि द्रव्यमक्कु $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ गु\ २\ प\ २}{५\quad\quad ववव\ २}$ गु ३ गु अंतधणं गुणगुणियं अपवर्त्तितमिदु $\frac{\overline{\overline{४}}\ गु\ ३\ २}{५}$ गु ३ आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं एंदु आदियं कळेदोडे 5

तेषां संकलनोच्यते—अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं $= \frac{गु\ २}{४\ गु\ ३-गु\ २ / ५}$ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं $= \frac{गु}{४\ गु\ ३-गु\ २ / ५}$ मुहभूमीजोगदले— $= \frac{गु\ ३}{४\ गु\ ३-गु\ २।२ / ५}$ पदगुणिदे $= \frac{गु\ ३\ गु}{४\ गु\ ३-गु\ २\ २ / ५}$ पदधणं होदि इति तदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात् । अधस्तनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं— $= \frac{गु\ २}{४\ गु\ ३-गु\ २\ प / ५\ ववव\ २}$ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं $= \frac{गु}{४\ गु\ ३-गु\ २\ प / ५\ ववव\ २}$ मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि इत्यधस्तनचरमगुणहानिद्रव्यं भवति $= \frac{गु\ ३\ गु}{४\ गु\ ३-गु\ २\ प\ २ / ५\ ववव\ २}$ अंतधणं गुणगुणियं $= \frac{गु\ ३\ गु\ २}{४\ गु\ ३-गु\ २।२ / ५}$ 10

गुणहानियोंमें सब द्रव्यको जोड़नेके लिए 'मुह भूमि जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि' इस सूत्रके अनुसार मुख हुआ अन्तिम निषेक, भूमि हुई आदि निषेक, दोनोंको जोड़कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

= ४ गु ३ २ ० ० ० २ प / ५ (गु ३ प / ० ० ० २) इदु अधस्तनगुणहानिगळ समस्तधनमक्कुमी धनदोळिर्द्द ऋणमेनितेंदोडे प्रथमाधस्तनगुणहानियोळु गच्छमात्रस्वविशेषंगळक्कुं । = ४ गु ३ गु २ / ५ (गु) चरमाधस्तनगुणहानियोळं गच्छमात्रस्वविशेषंगळक्कु = ४ गु ३ गु २ प / ५ ० ० ० २ (गु) मन्तागुत्तं विरलन्तधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुतरभजियमेंदु तंद समस्ताधस्तनगुणहानिगळ ऋणमिनितक्कुं । = ४ गु ३ ० ० ० २ प / ५ ० ० ० २ (प / ०) उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदु = ४ गु ३ गु २ / ५ (गु २) तद्गुणहानिचरमस्थितिद्रव्यमिदु = ४ गु ३ गु २ / ५ (गु) मुखभूमीजोगदळे पदगुणिदे पदधणं होदि एंदु

अपवर्तितं = गु ३ / ४ गु ३–२ / ५ आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं = गु ३ प / ४ गु ३–२ / ५ प / ० ० ० ० ० ० इत्यधस्तनगुणहानिसर्वधनं स्यात् । अत्रस्थं ऋणं तु प्रथमाधस्तनगुणहानौ गच्छमात्रस्वविशेषाः स्युः— = गु / ४ गु ३–गु २ / ५ चरमाधस्तनगुणहानावपि तावंतः स्युः = गु / ४ गु ३–२ / ५ गु प / ० ० ० २ अंतधणं गुणगणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियमित्यधस्तनसर्वगुणहानिऋणं स्यात्— = प / ४ गु ३ – ० ० ० / ५ प / ० ० ० उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं = गु २ / ४ गु ३–गु २ / ५ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं— = गु / ४ गु ३–गु २ / ५ मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं -

आधा करें। फिर उसे गुणहानिके आयामसे गुणा करें। जो-जो प्रमाण हो उतना-उतना अपनी-अपनी गुणहानिमें सब द्रव्यका प्रमाण जानना। सो प्रथम गुणहानिके सब द्रव्यसे दूसरी गुणहानिका द्रव्य आधा है। इस तरह उत्तरोत्तर गुणहानिका द्रव्य आधा-आधा जानना। सब गुणहानियोंके द्रव्यको जोड़नेके लिए 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार प्रथम गुणहानिका द्रव्य अन्तधन, उसको गुणकार दोसे गुणा करो। उसमें अन्तिम गुणहानि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदुपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमिदु = ४ गु ३ गु २।२ / ५ (गु ३ गु १) उपरितनचरमगुणहानिप्रथमस्थिति-

द्रव्यमिदु = ४ गु ३ गु २ प / ५ ७ ७ २ (गु २) तद्गुणहानिचरमस्थितिद्रव्यमिदु = ४ गु ३ गु २ प / ५ ७ ७ २ (गु) मुख-

भूमीजोगदळे = ४ गु ३ गु २ प २ / ५ ७ ७ २ (गु) पदगुणिदे पदधणं होइ एंदु = ४ गु ३ गु १।२ प २ / ५ ७ ७ २ (गु ३ गु १) तंद

चरमोपरितनगुणहानि द्रव्यमक्कुं। मत्तमंतधणं गुणगुणियं = ४ गु ३ गु २।२ / ५ (गु ३ गु २) अपवर्त्तितमिदु

= ४ गु ३ २ / ५ (गु ३) आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियमेंदु आदियं कळेदोडे = ४ गु ३ २ ७ ७ २ प / ५ ७ ७ २ (गु ३ प)

यिदु उपरितनगुणहानिगळ समस्तधनमक्कुमिन्तुक्तमूरुं राशिगळं क्रमदिवं स्थापिसल्पड्डुत्तिरलु उपरि-

होदीति उपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं = ४ गु ३ – गु २।२। / ५ (गु ३ गु) उपरितनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं

= ४ गु ३ – गु २ प / ५ ७ ७ २ (गु २) तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं = ४ गु ३ – गु प २ / ५ ७ ७ २ (गु) मुहभूमीजोगदले = ४ गु ३ – गु २ प २ / ५ ७ ७ २ (गु ३)

पदगुणिदे पदधणं = ४ गु ३ – गु २।२ प / ५ ७ ७ २ (गु ३ गु १) इत्युपरितनचरमगुणहानिद्रव्य भवति। पुनः अंतधणं गुण-

गुणियं = ४ गु ३ – गु २।२ / ५ (गु ३ गु २) अपवर्तितं = ४ गु ३ – २ / ५ (गु ३) आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं = ४ गु ३ – २ प ७ ७ / ५ ७ ७ (गु ३ प)

के द्रव्य आदि धनको घटाकर एकका भाग देनेपर ऊपर और नीचेकी सब गुणहानियोंके द्रव्यका प्रमाण होता है। नीचेकी गुणहानियोंमें जो अपना-अपना विशेष प्रमाण घटाया है उसको गुणहानि आयामसे गुणा करनेपर अपनी-अपनी गुणहानिमें घटाये गये विशेषका प्रमाण होता है। सब घटाये गये ऋणको जोड़नेके लिए 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनगुणहानिद्रव्यमुमधस्तनगुणहानिद्रव्यमुमल्लिय ऋणमुमिन्तुरपुंवु

```
उपरितन-
धन  =         गु ३  प
    ४ गु  ३   २    ०० २
    ५                 प
                      ००
```

```
अधस्तन धन  =        गु ३   प       ऋण मिवु  =   प
            ४ गु  ३ २     ००                 ४ ००० गु ३ प
            ५                                ५        ०००
```

ई मूरुं राशिगळ तंतम्म ऋणरूपुगळं तंतम्म केळगेस्थापिसिदोडे यथाक्रमंविदमितिप्पुंवु :

गु प = ०० प ४ गु ३ २ ०० ५	गु प = ०० प ४ गु ३ २ ००० ५	ऋण = प ४ गु ३ ००० प ५ ०००
= गु ३ १ ४ गु ३ २ प ५ ००	= गु ३ १ ४ गु ३ २ प ५ ०००	= १ ४ गु ३ प ५ ०००

मत्तमी मूरु राशिगळनपवर्त्तिसि स्थापिसिदोडिंतिप्पुंवु

---

५ इत्युपरितनगुणहानिसर्वधनं स्यात् । उत्तरराशित्रयं क्रमेणेदं—उपरिमधनं— = गु ३ प / ४ गु ३—२ प ० ० / ५ ० ० अधस्तन-

धनं— = गु ३ प / ४ गु ३ — २ प ० ० ० / ५ ० ० ० ऋणं = प / ४ गु — ३ प ० ० ० / ५ ० ०० स्वस्वऋणरूपे स्वस्वाधःस्थापिते एवं—

उपरि प १— ० ० = गु ३ ४ गु ३— २ प ५ ० ०	अधस्त प १— ० ० ० = गु ३ ४ गु ३— २ प ५ ० ० ०	ऋणं प = ० ० ० ४ गु ३— प ५ ० ० ०
१— ० = गु ३ १ ४ गु ३ — २ प ५ ० ०	१— ० = गु ३ १ ४ गु ३— २ प ५ ० ० ०	० = १ ४ गु ३ — प ५ ० ० ०

अनुसार प्रथम गुणहानिके ऋणको गुणकार दोसे गुणा करके तथा अन्तिम गुणहानिके ऋणको उसमें-से घटाकर एकका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने ऋणके प्रमाणको ऊपरकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

		ऋण
= ०— गु ३ १ ४ गु ३ २ ५	= ०— गु ३ १ ४ गु ३ २ ५	= १ ४ गु ३ ५
= ०— गु ३ १ ४ गु ३ २ प ५ ७७	= ०— गु ३ १ ४ गु ३ २ प ५ ७७७	= ०— १ ४ गु ३ प ५ ७७७

उभयधनराशिगळं कूडिसियपवर्त्तिसियधिकरूपं केळगे स्थापिसिदोडिवु $\frac{=}{४}$ गु ३ ०— गु ३ (५) केळगे $\frac{=}{४}$ गु ३ ०— १ (५)

स्थापिसिद अधिकरूपिंगे प्रथमऋणं समानमें बु शोधिसि कळेदु मत्तं ऋणस्य ऋणं राशेर्द्धनं भवति

यें दु प्रथमऋणदऋणमं द्विकदिंदं समच्छेदमं माडिदुदनिदं $\frac{=}{४}$ गु ३ ०— प २ २ (५ ७७७) अधस्तनगुणहानि

द्वितीयऋणरूपिनोळु शोधिसिदोडिदु $\frac{=}{४}$ गु ३ ०— गु ३ ० २ प (५ ७७७) ई द्वितीयाधस्तनगुणहानि ऋणरूपि

अपवर्तिते एवं

		ऋणं
१— = गु ३ १ ४ गु ३— २ ५	१— = गु ३ १ ४ गु ३— २ ५	= ४ ३— ५
१— ० = गु ३ १ ४ गु ३ — २ प ५ ७ ७	१— ० = गु ३ १ ४ गु ३— २ प ५ ७ ७ ७	० = १ ४ गु ३— प ५ ७ ७ ७

उभयधने संयोज्य अपवर्तिते अधिकरूपमधः संस्थाप्य $\frac{=}{४}$ गु ३ १— गु ३ (५) | = १—तेन प्रथमऋणं समानमिति ४ गु ३— (५) ५

देयं पुनः ऋणस्य ऋणं राशेर्धनमिति प्रथमऋणस्य ऋणं द्वाभ्यां समच्छिद्य = ४ गु — प २ २ (५ ७ ७ ७) अधस्तनगुण-

---

गुणहानिके द्रव्यमें घटानेपर अथवा नीचेकी गुणहानिके द्रव्यमें मिलानेपर नीचे और ऊपरकी गुणहानियोंका द्रव्य समान हो जाता है। तथा ऊपर और नीचेकी सर्वगुणहानियोंके सब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोळु उपरितनगुणहानिऋणरूपमसंख्यातैकभागमक्कुमेददं साधिकं माडिदोडे शेषऋणमिनितक्कु ।

```
=     —  गु ३ । १
३ गु ३  प  २
५        aaa
```

मिदं रूपस्यासंख्यातैकभागमनुसयधनयुतियोळु गुणकारभूतत्रिगुणहानियोळु किंचिदूनमं माडि

```
=     —  गु ३
४ गु  ३
५
```

किंचिदूनत्रिगुणहानिगे किंचिदूनत्रिगुणहानियनपवर्त्तिसिदोडे सर्व्वद्रव्यप्रमाणं पर्य्याप्तत्रसराशियक्कु ≡४/५ मी संकलनविधानदोळु ग्रंथकारनप्पाचार्य्यनधस्तन-गुणहानिगळोळु संकलनानिमित्तमागि ऋणमनधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमप्पन्तु यव-मध्यप्रमितऋणमनोम्मेयॆ यिक्कि १२८ चरमाधस्तनगुणहानि चरमस्थितिद्रव्यमनिनितं १६ धनमं माडि संकलिसिदनदु कारणमागियधस्तनप्रथमादिगुणहानिगळ प्रथमचरमस्थितिद्रव्यंगळु रूपहीनं-गळुं गुणहानिमात्र गुणकारंगळागि ऋणरहितंगळु सूचिसल्पट्टुवु :—

≡ ४ गु ३ गु २ (ऊपर गु २) / ५	०००	≡ ४ गु ३ गु २ (ऊपर गु) / ५	≡ ४ गु ३ गु २।२ (ऊपर गु २) / ५	०००	→
←	≡ ४ गु ३ २।२ (ऊपर गु २) / ५	०००	≡ ४ गु ३ गु २ प / ५ aaa २ (ऊपर गु); ≡ ४ गु ३ गु २ प / ५ aaa २ (ऊपर गु २)		

हानिद्वितीयऋणरूपे संशोध्यं

```
=   गु ३
४ गु ३ – २ प
५       a a a
```

इदं पुनः उपरितनगुणहानिऋणेन स्वासंख्यातैकभागेन साधिकीकृत्य

```
=   गु ३    १
४ गु ३ –  प २
५         a a a
```

उभयधने गुणकारभूतत्रिगुणगुणहानौ किंचिदूनयित्वा

```
=  गु ३–
४ गु ३–
५
```

अपवर्तिते सर्वद्रव्यं पर्याप्तत्रसराशिः स्यात् । ≡४ अत्र ग्रंथकारेण अधस्तनगुणहानिषु संकलनार्थं अधस्तनप्रथम-गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यभूतयवमध्यप्रमितमृणं युगपदेव निक्षिप्य । १२८ । चरमाधस्तनगुणहानिचरमस्थिति-द्रव्यमिदं । १६ । धनं कृत्वा संकलितं ततोधस्तनप्रथमादिगुणहानीनां प्रथमस्थितिद्रव्याणि रूपोनानि चरम-स्थितिद्रव्याणि गुणहानिमात्रगुणकाराणि ऋणरहितानि सूचितानि—

द्रव्यको जोड़नेपर पर्याप्त त्रस जीवोंका प्रमाण होता है। इस प्रकार पर्याप्त सम्बन्धी परिणाम योगस्थानोंमें पर्याप्त त्रस जीवोंका प्रमाण जानना। सो ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेकरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अदु कारणमागि वृत्तिकारं पेळद संकलनं ग्रंथकारन संकलनेयोळु विरोधिसल्पडुगुमें दु भ्रांतिसल्वेडेकें दोडे धनऋणंगळगे होनाधिकभावमिल्लप्पुदरिंदं।

अनंतरमुक्त द्वींद्रियपर्य्याप्तजीवजघन्यपरिणामयोगस्थानं मोदल्गो ंडु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टपरिणामयोगस्थानावसानमादनिरंतरतमागि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकंगळिदमेकादृशवृद्धिवर्द्धितंगळप्प समस्तयोगस्थानंगळोळु जघन्यस्थानमादियागेकैकस्थानंगळगे स्वामिगळु यवाकाररचनेयप्पंतु स्वस्थानदोळु चयाधिकंगळुं परस्थानदोळु द्विगुणंगळुं चयाधिकंगळुमागुत्तं पोगि यवमध्यदोळु सर्व्वोत्कृष्टंगळुमल्लिदं मेले स्वस्थानदोळु चयहीनंगळु परस्थानदोळु द्विगुणहीनंगळुं चयहीनं हीनंगळुमागुत्तं पोगि सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानदोळु सर्व्वतस्तोकंगळागिर्द्द जीवंगळु तंतम्मयोगस्थानदिंदमेंतप्प प्रदेशबंधमं माळ्पुवें दोडे त्रैराशिकसिद्धमप्प समयप्रबद्ध जयवृद्धिप्रमाणमं निरूपिसिदपरु :—

= गु २ ४ गु ३− गु २ ५	= गु ० ० ० ४ गु ३−गु २ ५	= गु २ ४ गु ३−गु २ । २ ५	= गु ० ० ० ४ गु ३−गु २।२ ५ →

= गु ० ० ० ४ गु ३−गु २ प ५ ७७७ २ ० ० ० ० ०
= गु ४ गु ३−गु २ प ५ ७ ७ ७ २

←

तदुक्तेन वृत्तिकारोक्तसंकलना विरुध्यते तन्न। धनर्णयोर्हीनाधिक्याभावात् ॥ २४९ ॥ अथोक्तं द्वींद्रियपर्य्याप्तपरिणामयोगोत्कृष्टपर्यंतेषु निरंतरं सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रजघन्यस्पर्धकवृद्धया वर्धितेषु समस्तयोगस्थानेषु जघन्यादेकैकस्थानस्वामिनः यवाकाररचनारूपेण स्वस्थाने चयाधिकाः परस्थाने द्विगुणहीनाश्च भूत्वा सर्वोत्कृष्टयोगस्थाने सर्वतः स्तोकाः ते रचिता जीवाः स्वस्वयोगस्थानेन कियंतं प्रदेशबंधं कुर्वंतीति प्रश्ने तद्वृद्धिप्रमाणमाह—

योगस्थानोंके धारक जीव बहुत हैं। उसके नीचे या ऊपर जो योगस्थान हैं उनके धारक जीव पूर्वोक्त क्रमानुसार थोड़े-थोड़े हैं। इसीसे यवके आकार रचना कही है ॥२४९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इगिठाणफड्ढयाओ समयपबद्धं च जोगवड्ढी च ।
समयपबद्धचयट्ठं एदे हु पमाणफल इच्छा ॥२५०॥

एकस्थानस्पर्द्धकानि समयप्रबद्धश्च योगवृद्धिश्च । समयप्रबद्धचयार्थमेताः खलु प्रमाणफलेच्छाः ॥

जघन्ययोगस्थानस्पर्द्धकंगळुं समयप्रबद्धमुं योगवृद्धियुं समयप्रबद्धचयनिमित्तमागिक्रमदिदं प्रमाणफलेच्छाराशिगळप्पुवु

प्र व वि १६ । ४ — ७	फ स	इ व वि १६।४।२ ७

अन्तागुत्तं विरलु लब्धं समयप्रबद्धवृद्धिप्रमाणमिनितक्कु स २ ७ / — ७ मिनितु वृद्धि निरंतरक्रमदिंदमागुत्तं पोगियों दो दंडेयोळु जघन्यसमयप्रबद्धं द्विगुणमुं चतुर्ग्गुणमष्टगुणमी क्रमदिदं द्विगुणद्विगुणमागुत्तं पोगि पोगि चरमदोळु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणितमक्कुमेल्लि योगस्थानं द्विगुणमक्कुमल्लि समयप्रबद्धमुं द्विगुणमक्कुमेल्लि योगस्थानं चतुर्ग्गुणमक्कुमल्लि समयप्रबद्धं चतुर्ग्गुणमक्कुमी क्रमदिदं पोगि चरमदोळु योगस्थानमुं छेदासंख्यातैकभागगुणितमादोडल्लि समयप्रबद्धमुं तावन्मात्रगुणितमेयक्कुमेंबुदत्थं ।

तद्द्वींद्रियपर्याप्तस्य जघन्यपरिणामयोगस्थानस्पर्धकानि समयप्रबद्धः [योगवृद्धिश्चामी त्रयः समयप्रबद्धचयनिमित्तं क्रमेण प्रमाणफलेच्छाराशयो भवंति । प्र = व वि १६ ४ — ७ । फ—स । इ व वि १६ ४ २ ७ इति लब्धसमयप्रबद्धवृद्धिप्रमाणेन स २ / — ७ ७ जघन्यसमयप्रबद्धो निरंतरं वर्धित्वा वर्धित्वा यत्र योगस्थानं द्विगुणं तत्र द्विगुणः, यत्र चतुर्गुणं तत्र चतुर्गुणः एवं गत्वा चरमे छेदासंख्यातगुणः ॥२५०॥

आगे इन योगस्थानोंके धारी जीव कितना-कितना प्रदेशबन्ध करते हैं इस प्रश्नके समाधानके लिए समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण कहते हैं—

दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थान सम्बन्धी स्पर्धक, समयप्रबद्ध और योगोंकी वृद्धि ये तीन एक-एक योगस्थानमें समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण लानेके लिए क्रमशः प्रमाण, फल और इच्छाराशिरूप होते हैं। जघन्य परिणाम योगस्थानमें श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक पाये जाते हैं। यह प्रमाण राशि है। और इस जघन्य योगस्थानके द्वारा जो जघन्य समयप्रबद्ध प्रमाण प्रदेशोंका बन्ध होता है वह फलराशि हुई। और एक-एक योगस्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं यह इच्छाराशि हुई। सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर को लब्धराशि आयी उतना-उतना अधिक प्रदेशोंको लिये हुए ऊपरके एक-एक योगस्थानमें समयप्रबद्ध बँधता है। अर्थात् जघन्य योगस्थानसे तो जघन्य समयप्रबद्ध बँधता है उसके अनन्तरवर्ती योगस्थानसे इतने अधिक प्रदेशों को लिये हुए समयप्रबद्ध बँधता है। इस तरह निरन्तर बढ़ते-बढ़ते जहाँ योगस्थान दूना होता है वहाँ समयप्रबद्ध भी दूना बँधता है। जहाँ वह चौगुना होता है वहाँ समयप्रबद्ध भी चौगुना बँधता है। इस प्रकार संज्ञी पर्याप्तकका उत्कृष्ट योगस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं द्वींद्रियपर्य्याप्तजीवजघन्ययोगस्थानं मोदलागि संज्ञिपर्य्याप्तोत्कृष्टयोगस्थानपर्य्यंतमवस्थितवृद्धियिदं नडेव योगस्थानंगळ क्रमसंगाथापंचकदिदं पेळदपरु :—

बीइंदियपज्जत्तजहण्णट्ठाणा दु सण्णिपुण्णस्स ।
उक्कस्सट्ठाणोत्ति य जोगट्ठाणा कमे उड्ढा ॥२५१॥

द्वींद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थानात्संज्ञिपूर्णस्योत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं च योगस्थानानि क्रमेण वृद्धानि ॥

द्वींद्रियपर्य्याप्तजीव जघन्यपरिणामयोगस्थानमादियागि संज्ञिपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टपरिणामयोगस्थानपर्य्यंतं परिणामयोगस्थानंगळु अवस्थितवृद्धिक्रमदिदमे पेच्चुंत्तलिप्पवु। अन्तु पेच्चुंत्तलिप्प स्थानंगळोळु :—

सेढियसंखेज्जदिमा तस्स जहण्णस्स फड्ढया होंति ।
अंगुलअसंखभागा ठाणं पडि फड्ढया उड्ढा ॥२५२॥

श्रेण्य संख्यातैकभागप्रमितानि तस्य जघन्यस्य स्पर्द्धकानि भवंति। अंगुलासंख्यभागप्रमितानि स्थानं प्रति स्पर्द्धकानि वृद्धानि ॥

तस्य द्वींद्रियपर्य्याप्त जीवजघन्यपरिणामयोगस्थानक्के स्पर्द्धकंगळुश्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु। व वि। १६। ४। ८̄। तज्जघन्यस्थानानंतरस्थानविकल्पं मोदलगोंडु स्थानं प्रति सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकंगळु पेच्चुंत्तलिप्पवंतु पेच्चुंत्तलिप्पवु :—

तत्र छेदासंख्यातगुणः इतीमं क्रमं गाथापंचकेनाह—

द्वीन्द्रियपर्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानात् संज्ञिपर्याप्ततदुत्कृष्टस्थानपर्यंतं परिणामयोगस्थानानि अवस्थितवृद्धिक्रमेण वृद्धानि संति ॥२५१॥

तेषु द्वीन्द्रियपर्याप्तजघन्यपरिणामयोगस्थानं श्रेण्यसंख्येयभागमात्रस्पर्धकं। व वि १६ ४ — ८। तदनंतरविकल्पमादिं कृत्वा प्रतिस्थानं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्धकानि वर्धन्ते ॥२५२॥

जघन्य योगस्थानसे पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवाँ भाग गुणा होता है। तो उससे जो समयप्रबद्ध बँधता है वह जघन्य समयप्रबद्धसे पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा होता है ॥२५०॥

आगे उक्त कथनको पाँच गाथाओं से कहते हैं—

दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानसे लेकर संज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त परिणाम योगस्थान क्रमसे समान वृद्धिको लिये हुए बढ़ते हैं ॥२५१॥

उनमें-से दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानके स्पर्धक जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं। उसके अनन्तरवर्ती स्थानसे लेकर प्रत्येक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं। अर्थात् जघन्य स्पर्धकके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उन्हें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने अविभाग प्रतिच्छेद एक-एक योगस्थानमें बढ़ते हैं ॥२५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धुववड्ढीवीड्ढंतो दुगुणं दुगुणं कमेण जायंते।
चरिमे पल्लच्छेदाऽसंखेज्जदिमो गुणो होदि ॥२५३॥

ध्रुववृद्ध्या वर्द्धमानानि द्विगुणद्विगुणक्रमेण जायमानानि। चरमे पल्यच्छेदासंख्येयभागो गुणो भवति ॥

ध्रुववृद्धियिंदंवर्द्धमानंगळप्प योगस्थानंगळु द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि चरमदोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टपरिणामयोगस्थानदोळु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणकारमक्कुं। संदृष्टि इदु :—

योगस्थानं	व वि १६। ४ ə̄	२। १। २ ə ə̄	२। ə̄ ० ० ०	ə̄ २	२। १ ə ə̄ २	२। २ ə ə̄	० ० ०
समयप्रबद्ध	स	स २ ə̄ ə स	स २। २ ə̄ ə स	० ० स २	स २। १ ə̄ ə स। २	स २। २ ० ० ə̄ ə स २। ० ०। स २। २	

→

← ə̄ २। २	२। १ ə ə̄	२। २ ə ə̄ २। २	० ० ० ० ० ० ə̄ २। २ २	००००००००० छे००० छे ə ə २ ə̄ ə
स २। १ ə̄ ə स २। २	स २। २ ə̄ ə स २। २		० ० ० ० ० ० स। २। २। २	००० स छे०००० स। छे ə २ ə

ध्रुववृद्धया वर्धमानयोगस्थानानि द्विगुणद्विगुणानि भूत्वा चरमे संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टपरिणामयोगस्थाने पल्यच्छेदासंख्यातैकभागमात्रो गुणकारः स्यात्। संदृष्टिः—

योगस्थान	व वि १६ ४— ə	२ १ ə — ə	२। २ ə — २ — ə ə ० ० ०	२। १ ə — ə। २	२। २ — ə २ ००० ə २। २ — ə	२। १ ə — २२ ə
समय प्रबद्ध	स	स २ — ə ə स	स २। २ — ə ə स ००० स २	स २। १ ə — ə स २	स २। २ — ə ə स २ ० ० ० स २ २	स २। १ — ə ə स २। २

→

इस प्रकार ध्रुव अर्थात् एक समान वृद्धिसे बढ़ते-बढ़ते जघन्य योगस्थान दूना होता है फिर उससे भी दूना होता है। इस तरह क्रमसे दूना-दूना होते अन्तके संज्ञी पर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानका गुणकार पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरमी निरंतरस्थानविकल्पंगळेनितक्कुमेंदोडे पेळ्दपरु :—

आदी अंतेसुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा ।
सेढि असंखेज्जदिमा जोगट्ठाणा णिरंतरगा ॥२५४॥

आदावन्ते शुद्धेवृद्धिहृते रूपसंयुते स्थानानि । श्रेण्यसंख्येयानि योगस्थानानि निरंतराणि ॥

आदियप्प जघन्यस्थानमनन्त स्थानदोळु कळेयल्पडुत्तं विरलु शेषममल्लिगे देच्चिद पेच्चुगेय प्रमाणमक्कु छे मदं त्रैराशिकविधानदिदं । प्र व वि १६ । ४ । २ । फ स्था १ । इ व वि १६ । ४ छे प्रमाणराशिभूतवृद्धिप्रमाणदिदं भागिसुत्तं विरलु लब्धं सवृद्धिस्थानसंख्येयक्कुमदरोळु जघन्यस्थानमं कूडुत्तं विरलु समस्तनिरंतरयोगस्थानंगळ प्रमाणमिनितक्कु छे
ə ə । २ ə
ə

२ । २ ə —२ २ ० ० ० ə	—२२२ ə ० ०	० ० ० —छे ० ० ० ० —छे ə ə २ əə
← स २ । २ – ə ə स २।२।०००	स २।२।२	००० स छे ०००० स छे ə २ ə

॥ २५३ ॥ ते स्थानविकल्पाः कति ? इति चेदाह—

आदौ जघन्यस्थाने व वि १६ ४ – । अंते उत्कृष्टस्थाने व वि १६ ४ – छे शुद्धे शोधिते सति शेषे व वि १६ ४ – छे सूच्यंगुलासंख्येभागजघन्यस्पर्धकवृद्धया भक्ते सवृद्धिकस्थानानि । अत्र जघन्यस्थाने निक्षिसे

है। अर्थात् जघन्य योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणको पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने सर्वोत्कृष्ट योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ॥२५३॥

समस्त निरन्तर योगस्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

आदि जघन्य स्थानको अन्त उत्कृष्ट स्थानमेंसे घटाइए। अर्थात् अन्तके उत्कृष्ट स्थानके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उनमें-से जघन्य स्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंको घटानेपर जो प्रमाण आवे उसे वृद्धिसे भाग दें। सो एक-एक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग

मिवु श्रेण्यासंख्यातैकभागप्रमितंगळेयप्पुवु ॥

अनंतरमंतरगतस्थानंगळेनितक्कुमेंदोडे पेळ्दपरु :—

अंतरगा तदसंखेज्जदिमा सेढियसंखभागा हु ।
सांतरणिरंतराणि वि सव्वाणि वि जोगठाणाणि ॥२५५॥

अन्तरगतानि तदसंख्यातैकभागप्रमितानि खलु। सांतरनिरंतराण्यपि सर्व्वाण्यपि योगस्थानानि ॥

अंतरगतयोगस्थानंगळु निरंतरयोगस्थानंगळ असंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवं — छे ∂ ∂ २ ∂ ∂ तादोडं श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळेयक्कुं। सान्तरनिरंतराण्यपि सांतरनिरंतरस्थानंगळुं तदसंखेज्जदिमा अंतरगतस्थानविकल्पंगळ असंख्यातैकभागमक्कु — छे ∂ ∂ २ । ∂ । ∂ ∂ मादोडमवुं श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रंगळेयक्कुं। सर्व्वाण्यपि योगस्थानानि ई निरंतर सान्तर सांतरनिरंतरंगळें ब त्रिविधयोग-

---

समस्तनिरंतरयोगस्थानानि — २ छे ∂ ∂ ∂ एतानि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राण्येव — ∂ ॥२५४॥

अंतरगतयोगस्थानानि निरंतरयोगस्थानानामसंख्यातैकभागोऽपि — २ छे ∂ ∂ ∂ ∂ श्रेण्यसंख्यातैकभाग एव ।

सांतरनिरंतराण्यपि अंतरगतानामसंख्यातैकभागोऽपि — छे ∂ २ ∂ ∂ ∂ ∂ श्रेण्यसंख्यातैकभाग एव । तानि त्रिवि-

---

स्पर्धकोंके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हों उतनी वृद्धि होती है उससे भाग दें। जो प्रमाण आवे उतनी वृद्धि सहित स्थान जानना। उनमें एक जघन्य योगस्थान मिलानेपर जो प्रमाण हो, उतने सर्व निरन्तर योगस्थान होते हैं। वे स्थान जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं ॥२५४॥

अन्तरगत योगस्थान निरन्तर योगस्थानोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेपर भी जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग ही हैं। सान्तर निरन्तर मिश्ररूप योगस्थान अन्तरगत योगस्थानोंके असंख्यातवें भाग हैं। फिर भी वे जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं। निरन्तर, सान्तर और निरन्तरसान्तर ये तीनों योगस्थान मिलकर भी जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानंगळुं कूडियुं श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळेयप्पुवु ० छे ० यिन्तुक्त सर्व्वयोगस्थानंगळो- ० । २ ० ०

ळाद्यंतस्थानंगळं पेळ्दपरः—

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो ।
पज्जत्तसण्णिपंचिंदियस्स उक्कस्सओ होदि ॥२५६॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य प्रथमे जघन्यो योगः । पर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियस्योत्कृष्टो भवति ॥

अन्तुक्तसर्व्वयोगस्थानंगळगे मुन्नं पेळ्द विशेषणविशिष्टनप्प सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तजीवन-चरमभवप्रथमसमयदोळावुदों दुपपादयोगजघन्यस्थानमदादियक्कुं । पर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवपरि-णामयोगोत्कृष्टस्थानमदवसानस्थानमक्कु-॥ मनन्तरमिन्तु पेळल्पट्ट प्रकृतिबंधस्थितिबंधमनुभाग-बंध प्रदेशबंधमें ब चतुर्व्विधबंधंगळगे कारणंगळं पेळ्दपरु :—

जोगा पयडिपदेसा ठिदियणुभागा कसायदो होंति ।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ॥२५७॥

योगात्प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतो भवतः । अपरिणतोच्छिन्नेषु च बंधस्थिति-कारणं नास्ति ॥

यानि मिलित्वापि सर्वाणि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राण्येव— — छे ० ० २ ० ० ० ॥ २५५ ॥ एतेषु आद्यंत-स्थाने आह—

उक्तविशेषणविशिष्टं सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तस्य चरमभवप्रथमसमये यदुपपादयोगजघन्यस्थानं तदाद्यं भवति। पर्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियस्य परिणामयोगोत्कृष्टस्थानं तदंत्यं भवति ॥ २५६ ॥ उक्तचतुर्विधबंधानां कारणान्याह—

हैं। इसका कारण यह है कि असंख्यातके बहुत भेद हैं। अतः यथायोग्य असंख्यातका भाग जानना ॥२५५॥

आगे इन योगस्थानोंमें आदिस्थान और अन्तस्थान कहते हैं—

उक्त सब योगस्थानोंमें सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके अन्तिम क्षुद्रभवके पहले समयमें जो जघन्य उपपाद योगस्थान होता है वह आदिस्थान है। और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकका जो उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान है वह अन्तिमस्थान है ॥२५६॥

आगे चार प्रकारके बन्धके कारण कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगात् योगदिंदं प्रकृतिप्रदेशौ भवतः प्रकृतिबंधमुं प्रदेशबंधमुमप्पुवु। स्थित्यनुभागौ स्थितिबंधमुमनुभागबंधमुमेरडु कषायतो भवतः कषायस्थानोदयदिंदमप्पुवु। अपरिणतजघन्यदिंदमेकसमयमुत्कृष्टदिंदमन्तर्मुहूर्त्तकालपर्य्यंन्तं कषायस्थानोदयापरिणतनप्प उपशांतकषायनोळं उच्छिन्नेषु च क्षपितकषायरुगळप्प क्षीणकषायनोळं सयोगकेवलिजिननोळं बंधस्थितिकारणं नास्ति तात्कालिकबंधक्के स्थितिबंधकारणमिल्ल। च शब्ददिंदमयोगिकेवलिजिननोळं प्रकृतिप्रदेशबंधकारणमप्प योगमुं स्थित्यनुभागबंधकारणमप्प कषायस्थानोदयमुमिल्ल ॥

अनंतरं योगस्थानप्रकृतिसंग्रहस्थितिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायअनुभागबंधाध्यवसायकर्म्मप्रदेशमेंब्विवक्कल्पबहुत्वमं पेळदपरु गाथासूत्रदिदं :—

सेढिअसंखेज्जदिमा जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि।
तेहिं असंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥२५८॥

श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति सर्व्वाणि। तैरसंख्येयगुणः प्रकृतीनां संग्रहः सर्व्वः ॥

प्रकृतिप्रदेशबंधौ योगाद्भवतः। स्थित्यनुभागबंधौ कषायतो भवतः। जघन्यतः एकसमय उत्कृष्टतोऽन्तर्मुहूर्तं अपरिणतकषायस्थानोदयोपशांतकषाये क्षपितकषायक्षीणकषायसयोगयोश्च तात्कालिकबंधस्य स्थितिबंधकारणं नास्ति। चशब्दादयोगकेवलिनि प्रकृतिप्रदेशबंधकारणं योगः स्थित्यनुबंधकारणं कषायस्थानोदयश्च नास्ति[1] ॥२५७॥ अथ योगस्थानप्रकृतिसंग्रहस्थितिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायानुभागबंधाध्यवसायकर्मप्रदेशानामल्पबहुत्वं गाथात्रयेणाह—

प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध योगसे होते हैं। अर्थात् जैसा शुभ या अशुभ योग होता है वैसा ही प्रकृतिबन्ध होता है और जैसा योगस्थान होता है वैसा ही समयप्रबद्ध बँधता है। अतः ये दोनों बन्ध योगसे होते हैं। स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषायसे होते हैं। जैसी कषाय होती है वैसी ही यथायोग्य स्थिति और अनुभाग बँधते हैं। जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त काल तक जिसमें कषाय स्थान उदयरूप नहीं है ऐसे उपशान्त कषाय और कषायरहित क्षीणकषाय और सयोगकेवलीके जो प्रतिसमय बन्ध होता है उसके स्थितिबन्धका कारण नहीं है। 'च' शब्दसे अयोगकेवलीमें प्रकृति और प्रदेशबन्धका कारण योग तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका कारण कषाय दोनों ही नहीं हैं अतः उसके बन्ध नहीं होता ॥२५७॥

आगे योगस्थान, प्रकृतिसंग्रह, स्थितिभेद, स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान, अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान और कर्मोंके प्रदेश, इनका अल्पबहुत्व तीन गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. ब न स्तः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरंतरं,सांतर,निरंतर,सांतरभेदभिन्नसर्व्वयोगस्थानगळु श्रेण्यसंख्येयभागंगळप्पु- ०/ ३१/२। ० ०/० ०

वर्वारिदमुमसंख्यातलोकगुणं (सर्व्वप्रकृतिसंग्रहमक्कु ≡०≡० २ मोयुत्तरोत्तरप्रकृतिसंख्येयेंतादुदे-दोडे पेळल्पडुगुमदेतेंदोडे मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलज्ञानावरणीयमेंदु ज्ञानावरणीयदुत्तरप्रकृतिगळ् ५ अप्पुवु। अवरोळु श्रुतज्ञानावरणीयोत्तरोत्तरप्रकृतिगळसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुवेतेंदोडे मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलज्ञानमेंदु ज्ञानपंचकक्के प्रत्येकं भेदप्रभेदंगळु जीवकांडदोळ्पेळल्पट्ट प्रकारदिदमिवरोळु पर्य्यायश्रुतज्ञानमादियागि लोकबिंदुसारपूर्व्वश्रुतज्ञानमवसानमाद समस्तश्रुतज्ञानविकल्पंगळु पर्य्याय अक्षर पद संघातप्रतिपत्ति अनुयोग प्राभृतक, प्राभृतकप्राभृतक वस्तु पूर्व्वमेंब पत्तुं भेदंगळुमवर समासंगळुं सहितमागि अक्षरानक्षरात्मक क्षायोपशमिकश्रुतज्ञानविकल्पंगळुमसंख्येयलोकमात्रंगळप्पुवु ≡०≡०।१। एनितु ज्ञानविकल्पंगळप्पुवनितेयावरणविकल्पंगळप्पुवल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे पर्य्यायज्ञानं निरावरणज्ञानमक्कुमेकेंदोडदु सर्व्वनिकृष्टज्ञानमप्पुदरिंदमदक्कावरणमुंटक्कुमप्पोडे जीवाभावमागिबक्कुमदुकारणमागिरूपोनश्रुतज्ञानविकल्पमात्रश्रुतज्ञानावरणंगळुत्तरोत्तरप्रकृतिगळप्पुवु। श्रुतं मतिपूर्व्वमेंदितु मतिज्ञानविकल्पंगळुं श्रुतज्ञानविकल्पप्रमितंगळप्पुदरिंदं तदावरणंगळुमुत्तरोत्तरप्रकृतिगळु तावन्मात्रंगळेयप्पुवु। ≡०≡०।१। देशावधि परमावधिज्ञानमेंबरडुमवधिज्ञानंगळुं सविकल्पज्ञानंगळप्पुदरिंदं देशावधिज्ञानविकल्पंगळु विषयभेददिदं त्रैराशिकसिद्धंगळप्पुवा त्रैराशिकमेंतेंदोडे एकप्रदेशं क्षेत्रदोळु वृद्धियागुत्तं विरलु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागद्रव्यविकल्पंगळप्पुवागळु घनांगुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रप्रदेशंगळु क्षेत्रदोळु वृद्धिया-

---

निरंतरसांतरतदुभयभेदभिन्नसर्वयोगस्थानानि श्रेण्यसंख्येयभागमात्राणि ० २ ३१/१ ० ० ० एभ्योऽसंख्यातलोकगुणः सर्वप्रकृतिसंग्रहः। ≡ ० ≡ ० २ तद्यथा—ज्ञानावरणीयस्य उत्तरप्रकृतयः पंच तत्र श्रुतावरणानि पर्यायज्ञानस्य निरावरणत्वात् असंख्यातलोकषट्स्थानवृद्धिवर्धितपर्यायसमासादिभेदमात्राणीत्येतावंति ≡ ० ≡ ० 'श्रुतं मतिपूर्वं' इति मत्यावरणान्यपि तावंति ≡ ० ≡ ० देशावध्यावरणानि घनांगुलासंख्येयभागोने लोके सूच्य-

---

निरन्तर, सान्तर और निरन्तरसान्तरके भेदसे भिन्न सब योगस्थान जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं। उनसे असंख्यात लोक गुना सब प्रकृतियोंका समूह है। अर्थात् सब योगस्थानोंके प्रमाणको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर कर्मोंकी प्रकृतियोंका प्रमाण होता है। वही कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ पाँच हैं। उनमें-से श्रुतज्ञानावरणमें पर्यायश्रुतज्ञानके निरावरण होनेसे असंख्यात लोकबार षट्स्थान वृद्धिसे वर्धित पर्याय समास आदि भेदोंके आवरणकी अपेक्षा असंख्यात लोकको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर जो राशि हो उतने श्रुतज्ञानावरणके भेद हैं। तथा श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है अतः उतने ही मतिज्ञाना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दल्लिगोनितु द्रव्यविकल्पंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकमं माडुत्तं विरलु प्र । १ वृ । फ । २ । इ ≡ ६ वृ लब्धं देशावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पंगळ प्रमाणमक्कुमा द्रव्यविकल्पंगळेनितनिते देशावधिज्ञानविकल्पंगळप्पुवु ≡ ६ । २ परमावधिज्ञानविकल्पंगळुं परमावहिस्सभेदासगओगाहणवियप्पहदतेऊ येंदितु तेजस्कायिकजीवावगाहनविकल्पंगळिदं गुणिसल्पट्ट तत्तेजस्कायिकजीवराशिप्रमाणमक्कु ≡ ६ सर्व्वावधिज्ञानं निर्व्विकल्पकमप्प क्षायोपशमिकज्ञानमप्पुदरिंदमेकविधमेयक्कु १ । सर्व्वावधिदेशावधिज्ञानविकल्पंगळं परमावधिज्ञानविकल्पंगळोळु साधिकमं माडिदोडे मतिज्ञानविकल्पंगळं नोडलुमसंख्यातगुणहीनमक्कुं । ≡ तावन्मात्रंगळे तदावरणोत्तरोत्तरप्रकृतिगळप्पुवु । मनःपर्य्ययज्ञानविकल्पंगळुमसंख्यातकल्पप्रमितंगळप्पुवु । क । तावन्मात्रंगळे तदावरणोत्तरोत्तरप्रकृतिगळप्पु । केवलज्ञानं क्षायिकनिर्व्विकल्पकज्ञानमप्पुदरिंदं तदावरणमुमेकविधमेयक्कुं । केवलज्ञानावरणमनःपर्य्ययज्ञानावरणावधिज्ञानावरणोत्तरोत्तर प्रकृतिगळं तंदु श्रुतज्ञानावरणोत्तरोत्तरप्रकृतिगळोळु साधिकं माडि मतिज्ञानावरणोत्तरोत्तरप्रकृतिगळोळु कूडिदोडे साधिकद्विगुणमक्कु ≡ ≡ २ मप्पुदरिंदं । सर्व्वप्रकृतिगळुं नामप्रत्ययंगळप्पुदरिंदं पूर्व्वशरीराकाराविनाशो यस्ये-

---

गुलासंख्येयभागगुणिते सैके सति यत्प्रमाणं तावंति— ≡ ६ । २ परमावध्यावरणानि स्वावगाहविकल्पहततेजस्कायिकराशिमात्राणि ≡ ६ सर्वावध्यावरणमेकं १ । मनःपर्ययज्ञानावरणान्यसंख्यातकल्पमात्राणि । क । केवलज्ञानावरणमेकं १ मिलित्वा सर्वज्ञानावरणानि अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानावरणाधिकश्रुतावरणयुतमत्यावरणके भेद हैं ।

अवधिज्ञानावरणमें, घनांगुलके असंख्यातवें भागसे हीन लोकको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर देशावधिके भेद होते हैं अतः देशावधि अवधिज्ञानावरणके भेद भी इतने ही हैं । अग्निकायके जीवोंके प्रमाणको उनकी शरीरके अवगाहनाके भेदोंसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने परमावधिके भेद हैं । अतः परमावधिज्ञानावरणके भी इतने ही भेद हैं । सर्वावधिका एक ही भेद है अतः सर्वावधिज्ञानावरणका भी एक ही भेद है । बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कल्पकालको असंख्यातसे गुणा करनेपर मनःपर्ययज्ञानके भेद होते हैं । अतः मनःपर्ययज्ञानावरणके भी इतने ही भेद हैं । केवलज्ञानावरण एक होनेसे केवलज्ञानावरण भी एक है । ये सब मिलकर अवधिज्ञानावरण मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण तथा श्रुतज्ञानावरण सहित मतिज्ञानावरण, प्रमाण ज्ञानावरणकी उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेद होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम एंदितु नामतः सिद्धमप्प क्षेत्रविपाकी सामान्यानुपूर्व्यनामकर्म्म नारकानुपूर्व्यं तिर्य्यगानुपूर्व्यं मनुष्यानुपूर्व्यं देवानुपूर्व्यमेंदितु चतुर्व्विधमक्कुमल्लि नारकानुपूर्व्यं नामकर्म्मं नरकक्षेत्रविपाकियप्पुदरिदं नरकक्षेत्रदोळुदयिसुगुमा नरकक्षेत्रप्रमाणमेनितेंदोडे नारकरेल्लरं त्रसपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळेयप्पुदरिदमा नरकक्षेत्रं त्रसनाळदोळेयागल्वेळकुमप्पुदरिदं त्रसनालप्रमितमेकैकरज्जु भुजकोटिप्रमितमुष्ट्रादिमुखाकारदोळुपरितनोपपादस्थानदोळल्लदे मत्तेल्लियुं बिलदोळुत्पत्तियिल्लप्पुदरिदं प्रमाणसूच्यंगुलासंख्यातैकभागायामगुणितमप्प नरकक्षेत्रदोळेतप्प जीवंगळु बंदु पुट्टुगुमेंदोडे तिर्य्यग्मनुष्यपंचेंद्रियत्रसपर्य्याप्तजीवंगळु पूर्व्वशरीरमं बिट्टु विग्रहगतियिदं स्वयोग्योत्पत्तिनरकस्थानक्के बप्पागळु नरकानुपूर्व्योदयदिदं पूर्व्वाकाराविनाशमुंटप्पुदरिदमा तिर्य्यग्मनुष्यपंचेंद्रियत्रसपर्य्याप्तजीवशरीरजघन्यावगाहनद घनांगुलसंख्यातैकभागदिदं गुणिसिदोडे प्रथमविकल्पमक्कुं = २ । ६ / ४९ । ० । ७ द्वितीयादिविकल्पंगळोळेकैकप्रदेशोत्तरक्रममध्यमविकल्पंगळु नडदु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवावगाहनगुणितक्षेत्रं चरमविकल्पमक्कु = २ । ६ ७ / ४९ ० मिन्तागुत्तं विरलु आदीयंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा । एंदु लब्धं सर्व्वविकल्पंगळिनितप्पुवु = २६ ७ । ७ / ४९ ० । ७ तिर्य्यगानुपूर्व्यनामकर्म्मं तिर्य्यग्गतिक्षेत्रविपाकियप्पुदरिदं तिर्य्यगायु-

---

वरणमात्राणि स्युः ≡ ० ≡ ० २ सर्वा प्रकृतयो नामकर्मप्रत्ययाः इति नारकानुपूर्व्यं नरकक्षेत्रविपाकित्वात्तत्क्षेत्रमेकरज्जुप्रतरमुष्ट्रादिमुखाकारेभ्योऽन्यत्रोत्पत्त्यभावात् प्रमाणसूच्यंगुलासंख्यातैकभागायामगुणितं तिर्यग्मनुष्यपंचेंद्रियपर्याप्तानां तत्र गमनकाले नरकानुपूर्व्योदयेन पूर्वाकाराविनाशाज्जघन्यावगाहघनांगुलसंख्यातैकभागेन गुणिते प्रथमविकल्पः = २ ६ / ४९ ० ९ संख्यातघनांगुलैर्गुणिते चरमः = २ ६ ९ / ४९ ० आदी अंते सुद्धे इत्यादिना

सब प्रकृतियाँ नामकर्मके निमित्तसे होती हैं। अतः नामकर्मकी प्रकृतियोंमें आनुपूर्वी प्रकृतिके उत्तरोत्तर भेद कहते हैं। आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है। अतः क्षेत्रकी अपेक्षा उसके भेद होते हैं। नारकानुपूर्वी नरकक्षेत्र विपाकी है। नरकक्षेत्र एक राजु प्रतरप्रमाण है वहाँ उष्ट्रादि मुखाकारोंके सिवाय अन्यत्र उत्पत्ति नहीं होती। अतः प्रमाणरूप सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आयामसे उसे गुणा करें। तथा पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य जब नरकको जाते हैं तब नारकानुपूर्वीका उदय होता है। उससे पहले तिर्यंच या मनुष्य पर्यायमें जो आकार होता है उसका नाश नहीं होता। इससे वहाँ पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्यकी जघन्य अवगाहना तो घनांगुलके संख्यातवें भाग है। उससे पूर्वोक्त क्षेत्रको गुणा करनेपर जो क्षेत्रका प्रमाण हो सो नरकानुपूर्वीका पहला भेद है। उन्हींकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है। उसको पूर्वोक्त क्षेत्रसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो नरकानुपूर्वीका अन्तिम भेद है। 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा' इस सूत्रके अनुसार अन्तिम भेदमें जितना क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण हो उसमें-से पहले भेदके क्षेत्रके प्रदेशोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तिर्य्यग्गतिनामकर्म्मोदयसहचरिततिर्य्यंगानुपूर्व्यं तिर्य्यग्गतिक्षेत्रक्कुदयिसुगुमा तिर्य्यग्गतिक्षेत्रप्रमाणमेनितें दोडे तिर्य्यंचरु स्थावरंगळुं त्रसंगळुमप्पुदरिंदमा जीवंगळुत्पत्तियोग्यक्षेत्रमुं सर्व्वलोकमक्कुमी तिर्य्यग्लोकक्षेत्रदोळु पुट्टुव जीवंगळुमवावुवें दोडे सर्व्वपृथ्विय नारकरुगळुं स्थावरत्रसभेदतिर्य्यंचरुगळुं कर्म्मभूमिपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुगळुं शतारसहस्रारकल्पद्वयावसानमाद देवर्कळुं पुट्टुवरा जीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतियिंदं तिर्य्यंगतिक्षेत्रदोळ्पुट्टल्वडिवर्प्पागळु तिर्य्यंगायुस्तिर्य्यग्गतिनामकर्म्मोदयसहचरित तिर्य्यंगानुपूर्व्यनामकर्म्मोदयदिदं पूर्व्वशरीरावगाहनाकारापरित्यागभावमप्पुदरिंदमा तिर्य्यंचरोळु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्यावगाहनद घनांगुलासंख्यातैकभागगुणिततिर्य्यग्गतिक्षेत्रं प्रथमविकल्पमक्कुं ≡ ६ ∂ द्वितीयादिविकल्पंगळोळेकैकप्रदेशोत्तरक्रमदिदं पूर्व्वनारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवजीवंगळ शरीरावगाहनविकल्पंगळेल्लमिल्लि मध्यमविकल्पंगळागुत्तं पोगि पर्य्याप्तपंचेंद्रियतिर्य्यग्जीवोत्कृष्टावगाहनसंख्यातघनांगुलगुणितप्रमितमक्कु चरमविकल्पमक्कु ≡ ६ ७ मन्तागुत्तं विरलादी अन्ते सुद्धे वड्ढि हिदे रूवसंजुदे ठाणा येंदिती सूत्रेष्टदिदं तंद सर्व्वावगाहविकल्पगुणितसर्व्वक्षेत्रविकल्पंगळिनितप्पुवु ≡ ६ ७ ∂ ∂ मनुष्यानुपूर्व्यनामकर्म्मं मनुष्यक्षेत्रविपाकियप्पुरिंदं मनुष्यक्षेत्रक्कुदयिसुगुमा मनुष्यक्षेत्रप्रमाणमु-

---

एतावद्विकल्पं स्यात् । = २ ६ । १ । १ (१–, ४९∂१) तिर्यगानुपूर्व्यं तिर्यक्क्षेत्रविपाकीति तत्क्षेत्रं सर्वलोकः । नारकत्रसस्थावरकर्मभूमिमनुष्यसहस्रारपर्यंतदेवानां तत्र गमनकाले आयुर्गतिसहचरिततिर्यगानुपूर्व्योदयात् सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तजघन्यावगाहनेन गुणिते प्रथमविकल्पः ≡ ६ ∂ उत्कृष्टावगाहनेन गुणिते चरमः ≡ ६ १ आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा; इत्येतावद्विकल्पं स्यात् ≡ ६ १ ∂ ∂ । मनुष्यानुपूर्व्यं मनुष्यक्षेत्रविपाकित्वात्

प्रमाणको घटानेपर जो शेष रहे उसमें एकसे भाग देकर एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने नरकानुपूर्वीके उत्तरोत्तर भेद होते हैं। इसी प्रकार तिर्यंचानुपूर्वी तिर्यंच क्षेत्रविपाकी है। सो तिर्यंचका क्षेत्र सर्वलोक है। नारकी, त्रस-स्थावर-तिर्यंच, कर्मभूमिया मनुष्य तथा सहस्रार स्वर्ग तकके देव तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होते हैं। सो वे आनुपूर्वीके उदयसे पूर्व शरीरके आकारको नहीं छोड़ते। अतः सूक्ष्म निगोदिया लब्धपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाणसे पूर्वोक्त क्षेत्रको गुणा करनेपर तिर्यंचानुपूर्वीका प्रथम भेद होता है। तथा उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, उससे गुणा करनेपर अन्तका भेद होता है। सो 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाकर उसे एकसे भाग देकर और उसमें एक मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने भेद तिर्यंचानुपूर्वीके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेनितें दोडेमनुष्यरेल्लरु त्रसपर्य्याप्तापर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळप्पुदरिंदमा जीवंगळ स्वोत्पत्तियोग्य-मनुष्यक्षेत्रप्रमाणमुं पंचोत्तर चत्वारिंशल्लक्षयोजनवृत्तविष्कंभगुणितत्रसनालप्रतरप्रमितमक्कुं = ४५ ल / ४९ नाल्वत्तैदु लक्षयोजनसमचतुरस्रमेके ग्रहिसल्पदें दोडे मानुषोत्तरपर्व्वतदिदं पोरगण-चतुष्कोणमनुष्यक्षेत्रदोळु मनुष्यरगुत्पत्तियिल्लप्पुदरिंदं । ई मनुष्यक्षेत्रदोळु पुट्टुव मनुष्यरुगळा-वावगतिजरप्परें दोडे षष्ठपृथ्विपर्य्यन्तमाद षट्पृथ्विगळ नारकरुगळुं त्रसस्थावरत्रसभेदभिन्नकर्म्म-भूमितिर्य्यंचरुं कर्म्मभूमिपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुगळुं सर्व्वार्त्थसिद्धिविमानावसानमाद देवगतिजरुं पुट्टुवरा जीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतियिंदं मनुष्यगतिक्षेत्रदोळ्पुट्टल्वेडि बप्पागळु मनुष्यायुष्यमनुष्यगतिनामकर्म्मोदयसहचरितमनुष्यानुपूर्व्यनामकर्म्मोदयदिदं पूर्व्वपरित्यक्तशरीरा-वगाहनाकाराऽपरित्यागमुंटप्पुदरिंदं तिर्य्यंचरोळु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तजीवशरीरावगाहनाकार-जघन्यघनांगुलाऽसंख्यातैकभागगुणितमनुष्यक्षेत्रं प्रथमविकल्पमक्कुं = ४५ ल ६ / ४९ a द्वितीयावि-विकल्पंगळुमेकैक प्रदेशोत्तरक्रमदिदं चतुर्ग्गतिजरवगाहनाऽकारंगळु मध्यविकल्पंगळागुत्त पोगि पंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टावगाहनाकारं संख्यातघनांगुलगुणितप्रमितमिदु चरमविकल्पमक्कु ≡ ४५ ल । ६७ / ४९ मिन्तागुत्तं विरलु आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा एंदी सूत्रेष्टदिदं तंद

$$\frac{\qquad\qquad}{\overset{\circ}{\ }}$$

मनुष्यानुपूर्व्यविकल्पंगळिनितप्पुवु = ४५ ल ६ ७ a / ४९ a देवानुपूर्व्यमुं देवगतिक्षेत्रविपाकियप्पुदरिंदं

तत्क्षेत्रं तेषां त्रसपर्याप्तापर्याप्तपंचेंद्रियत्वात् उत्पत्तियोग्यमनुष्यक्षेत्रवृत्तविष्कंभगुणितत्रसनालीप्रतरप्रमितं = ४५ / ४९ ल । तत्समचतुरस्रं कुतो न गृह्यते मानुषोत्तराद्बहिश्चतुःकोणेषु मनुष्याणामनुत्पत्तेः । आद्यषट्पृथ्वीनारकत्रस-स्थावरकर्मभूमितिर्यग्मनुष्यदेवानां तत्र गमनसमये तदायुर्गतिसहचरितानुपूर्व्योदयाज्जघन्यावगाहनेन गुणिते प्रथमविकल्पः = ४५ ल ६ / ४९ a उत्कृष्टावगाहनेन गुणिते चरमः = ४५ ल ६ ९ आदी अंते सुद्धे इत्यादिना

होते हैं। मनुष्यगत्यानुपूर्वी मनुष्यक्षेत्र विपाकी है। मनुष्यक्षेत्र मनुष्योंके पर्याप्त अपर्याप्त पंचेन्द्रियपना होनेसे उनकी उत्पत्तिके योग्य पैंतालीस लाख योजन प्रमाण गोल विष्कम्भसे गुणित त्रसनाली एक राजू प्रतर प्रमाण है। मानुषोत्तरसे बाहर चारों कोनोंमें मनुष्योंकी उत्पत्ति न होनेसे चौकोर क्षेत्र नहीं कहा है। आदिकी छह पृथिवियोंके नारकी, त्रस, स्थावर, कर्मभूमिया तिर्यंच और मनुष्य तथा देव मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। वे मनुष्यानु-पूर्वीके उदयसे अपना पूर्व आकार नहीं छोड़ते। अतः जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर पहला भेद और उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुलसे गुणा करनेपर अन्तिम भेद होता है। अतः 'आदी अंते सुद्धे' सूत्रके अनुसार अन्तमें से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगतिक्षेत्रक्कुदयिसुगुमा देवगतिक्षेत्रप्रमाणमेनितें दोडे देवक्कंळेल्लरुं त्रसपर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळे-यप्पुदरिंदं आ जीवंगळुत्पत्तियोग्य देवगतिक्षेत्रं विवक्षितज्योतिर्लोकावसानमादनवशतयोजन-गुणितत्रसनाळप्रतरमक्कुं = ९००/४९ शेषदेवक्षेत्रनोळु पुट्टुव जीवंगळल्पंगळेयप्पुदरिंदं अविवक्षित-मक्कुमी भवनत्रयदेवगतिक्षेत्रदोळु पुट्टुव जीवंगळावावगतिजरें दोडे कर्म्मभोगभूमितिर्य्यक्पंचेंद्रिय-पर्य्याप्तकरुं कर्म्मभोगभूमिमनुष्यपर्य्याप्तकरुं पुट्टुवरुळिदवावुं जीवंगळुपुट्टुवेकें दोडे तद्गतिक्षेत्र-जननकारणाभावदिदनल्लि पुट्टुव तिर्य्यग्मनुष्यजीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतियिदं भवनत्रयदेवगतिक्षेत्रदोळपुट्टल्बडि बप्पागळु देवायुष्यदेवगतिनामकर्म्मोदयसहचरितदेवानुपूर्व्य-नामकर्म्मोदयदिदं पूर्व्वं परित्यक्तशरीरावगाहनाकारापरित्यागदिदं, पंचेंद्रियपर्य्याप्तत्रसजीवशरीर-जघन्यावगाहनाकारं घनांगुलसंख्यातैकभागगुणितदेवगतिक्षेत्रमदु प्रथमविकल्पमक्कु = ९००/४९ । ६/१ द्वितीयादिविकल्पंगळुमेकैकप्रदेशोत्तरक्रमदिदं पोगि तिर्य्यक्पंचेंद्रियपर्य्याप्तत्रसजीवोत्कृष्टावगाहनाकारं संख्यातघनांगुलदिदं गुणिसल्पट्ट क्षेत्रमदु चरमविकल्पमक्कु = ९००/४९ । ६७ मन्तागुत्तं विरलु आदी अंते सुद्धेत्यादिसूत्रदिदं तरल्पट्ट लब्धं देवानुपूर्व्यविकल्पंगळिनितप्पु = यो ९००/४९ । ६ । १/१ वी

एतावद्विकल्पं = (१— ४५ ल ६ १ ७)/(१— ४९ ७) देवानुपूर्व्यं क्षेत्रविपाकित्वात्तत्क्षेत्रं तेषां त्रसत्वाद्विवक्षितज्योतिर्लोकावसाननवशतयोजनगुणितत्रसनालीप्रतरं = ९००/४९ शेषदेवोत्पत्तिक्षेत्रं स्तोकत्वान्न विवक्षितं पंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्याणामेव तत्र गमनकाले देवायुर्गतिसहचरितानुपूर्व्योदयेन घनांगुलसंख्येयभागेन गुणिते प्रथमविकल्पः = ९००/४९ । ६/१ संख्यातघनांगुलैर्गुणिते चरमः— = ९००/४९ । ६ १ आदो अंते सुद्धे इत्यादिनानीतैतावद्विकल्पं

आदिको घटाकर एकका भाग देकर और एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने भेद मनुष्यानु-पूर्वीके हैं

देवानुपूर्वी देवक्षेत्रविपाकी है। और देव सब त्रस होते हैं अतः उनका क्षेत्र विवक्षित ज्योतिर्लोकके अन्तपर्यन्त नौ सौ योजनसे त्रसनालीके प्रतरक्षेत्रका गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। देवोंका उत्पत्ति क्षेत्र थोड़ा है इससे उसकी विवक्षा यहाँ नहीं की है। ज्योतिषी देवोंकी ही मुख्यतासे कथन किया है। पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य ही देवोंमें जन्म लेते हैं। देवगतिमें गमन करते समय देवायु और देवगतिके उदयके साथ देवानुपूर्वीके उदयसे पूर्व आकारका नाश न होनेसे उनकी जघन्य अवगाहनाको संख्यात घनांगुलसे उक्त क्षेत्रको गुणा करनेपर प्रथम भेद होता है। उत्कृष्ट अवगाहना भी संख्यात घनांगुल प्रमाण है उससे गुणा करनेपर अन्तिम भेद होता है। सो 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाल्कुमानुपूर्व्यंगळगे क्षेत्रविषयभेददिदमुत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पंगळादुविव मुन्निन साधिकद्विगुणाऽसंख्यातलोकमतिज्ञानोत्तरोत्तरप्रकृतिगुणकारदोळु साधिकं माडिदोडे प्रकृतिसंग्रहमिनितु प्रमाणक्कु ≡ ə ≡ ə २ मुळिदुत्तरप्रकृतिगळ उत्तरोत्तर प्रकृतिगळगुपदेशमिल्लदे पोय्दु। इंतु प्रकृतिसंग्रहरचनानुसारमागि व्याख्यानिसल्पट्टुदु। बहुश्रुतरुगळिंदं शोधिसल्पडुवुदु।

अनंतरं स्थितिविकल्पंगळुमनवर स्थितिबंधाध्यवसायंगळगल्प बहुत्वमं पेळदपरु :—

> तेहिं असंखेज्जगुणा ठिदिअवसेसा हवंति पयडीणं।
> ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा तत्तो असंखगुणा ॥२५९॥

तैरसंख्येयगुणा स्थितिविशेषा भवंति प्रकृतीनां। स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि ततोऽसंख्येयगुणितानि भवंति ॥

प्रकृतिगळ सर्व्वस्थितिविकल्पंगळु तैरसंख्येयगुणितानि भवति तत्प्रकृतिसंग्रहभेदंगळं नोडलुमसंख्यातगुणितंगळप्पु। स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळु ततोऽसंख्येयगुणितानि अशेषस्थितिविकल्पंगळं नोडलुमसंख्येयगुणितंगळप्पुवु अदेंतेंदोडे विवक्षितैकज्ञानावरणविशेषोत्तरोत्तरप्रकृतिजघन्यस्थितियन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितमक्कुमदु संख्यातपल्यप्रमितमक्कु। प १। मदर द्वितीयादिस्थितिविकल्पंगळु समयोत्तरवृद्धिक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिविकल्पमदं नोडलु संख्यातगुणमक्कु। प १ १। मन्तागुत्तं विरलु आदी। प १। अन्ते।

स्यात् = ९०० । ६ १ १ अमीभिरानुपूर्व्योत्तरोत्तरभेदैः प्रागानीतज्ञानावरणोत्तरभेदेषु साधिकीकृतेषु
।४९ १

प्रकृतिसंग्रहः एतावान् स्यात् ≡ ə ≡ ə २ शेषोत्तरप्रकृत्युत्तरोत्तरभेदानामुपदेशो नास्ति। इत्ययं संग्रहो रचनानुसारेण व्याख्यातो बहुश्रुतैः शोधितव्यः ॥२५८॥

तेभ्यः प्रकृतिसंग्रहभेदेभ्यः प्रकृतीनां सर्वस्थितिविकल्पा असंख्यातगुणा भवंति। कुतः ? एकप्रकृति-

---

सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाकर एकका भाग देकर एक मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने भेद देवगत्यानुपूर्वीके जानना। आनुपूर्वीके इन उत्तरोत्तर भेदोंको पूर्वोक्त ज्ञानावरणके उत्तरोत्तर भेदोंमें मिलानेसे प्रकृति संग्रह होता है। टीकाकारका लिखना है कि शेष प्रकृतियोंके उत्तरोत्तर भेदोंका उपदेश प्राप्त नहीं है। यह प्रकृतिसंग्रह रचनाके अनुसार किया है। बहुश्रुतोंको इसको शुद्ध कर लेना चाहिए ॥२५८॥

प्रकृतिसंग्रहसे प्रकृतियोंकी स्थितिके भेद असंख्यात गुने हैं। क्योंकि जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटाकर एक समयसे भाग दे और उसमें एक मिलानेसे जघन्य स्थितिसे उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त एक-एक स्थितिके संख्यात पल्य प्रमाण भेद होते हैं। यदि एक स्थितिके भेद संख्यात पल्य प्रमाण होते हैं तो पूर्वोक्त सब उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेदोंकी स्थितिके भेद कितने होंगे ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रकृति संग्रहके प्रमाणसे संख्यात पल्य गुणे स्थितिके भेद होते हैं। इन स्थितिके भेदोंसे स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात गुने हैं। जिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प १ १। सुद्धे। प १ १। वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाण । प १ १। एंदितिनितु मेकप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदें तें दोडेकप्रकृतिविकल्पक्किनितु स्थितिविकल्पंगळागुत्तं विरलिनितु प्रकृतिविकल्पंगळ्गेनितु स्थितिविकल्पंगळक्कुमें दितु माडल्पडुत्तं विरलु प्र १। फ प १ १ इ ≡ a a २ बंद लब्धं सर्व्वप्रकृति सर्व्वस्थितिविकल्पप्रमाणमक्कु ≡ a ≡ २ प १ १ मदु कारणमागि सर्व्वप्रकृतिविकल्पंगळं नोडलुमवर स्थितिविकल्पंगळु संख्यातपल्यगुणितंगळप्पुदरिंदमसंख्यातगुणितंगळें दु पेळल्पट्टुदी स्थितिविकल्पंगळं नोडलुमिवर स्थितिबंधनिबंधनकषायपरिणामस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकगुणितंगळप्पुवदें तें दोडे एकप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळ्गे। प १ १। स्थितिबंधकारणकषायपरिणामस्थानंगळुमसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुववु द्रव्यमक्कु ≡ a मा येकप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळु स्थितियें बुदक्कु। प १ १। मिवर नानागुणहानिशलाकेगळु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागमात्रंगळक्कु छे/a मदक्कन्योन्याभ्यस्त-

विकल्पस्य यद्येतावंतः— प १ १ स्थितिविकल्पाः तदेतावतां ≡ a ≡ a २ प्रकृतिविकल्पानां कति स्थितिविकल्पाः स्युः ? इति त्रैराशिकेन संख्यातपल्यैर्गुणितत्वप्रसिद्धेः— ≡ a ≡ a। २ प १ १ एभ्यः स्थितिविकल्पेभ्यः स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यातगुणितानि तद्यथा—एकप्रकृतिस्थितिबंधकारणकषायपरिणामा असंख्यातलोकाः द्रव्यं ≡ a एकप्रकृतिस्थितिविकल्पाः स्थितिः प १ १ नानागुणहानिशलाकाः

परिणामोंसे स्थितिबन्ध होता है उनके स्थानोंको स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान कहते हैं। इनका कथन अंकसंदृष्टिसे करते हैं—

एक प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण कषाय परिणाम इकतीस सौ ३१००। यह तो द्रव्य हुआ। उस एक प्रकृतिकी स्थितिके भेद चालीस ४०। यह स्थिति स्थान हुए। नाना गुणहानि पाँच ५। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे अन्योन्याभ्यस्त राशि हुई बत्तीस ३२। एक गुणहानिमें स्थितिका जो प्रमाण है वही गुणहानि आयाम है। सो नाना गुणहानि शलाकाका भाग सर्वस्थितिमें देनेपर जो प्रमाण हो उतना ही गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। सो नाना गुणहानि पाँच ५ का भाग स्थिति चालीस ४०में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राशियुं पल्यासंख्यातैकभागमक्कुं प गुणहान्यायाममुं नानागुणहानिशलाकाराशिभक्तस्थित्येक-भागमक्कुमी गुणहान्यायाममं द्विगुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कु प १ १ छे ३ मिन्तागुत्तं विरलु स्थिति-विकल्पंगळोळु सर्व्वजघन्यस्थितिविकल्पस्थितिबंधनिबंधनकषायाध्यवसायस्थानंगळु सर्व्वतस्तोकं-गळप्पुवंतादोडमसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुवु ≡ ३ पदहतमुखमादि धनमें दी राशियं गुणहानियं पदमें बुदा पदर्दिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानियोळादिधनमक्कु ≡ ३ गु । व्येकपद पददोळेक-रूपं कळेदोडे रूपोनगुणहानियक्कु । गु । मिदर्नार्द्धसिदोडे रूपोनगुणहान्यर्द्धमक्कु । गु २ । मदं चयघ्नं माडिदोडेयिनितक्कु गु २ । ≡ ३ मी चयमुं वृद्धिविवक्षेयिंदमादियं रूपाधिकगुणहानियिंदं भागिसि-दोडे चयमक्कुं । हानिविवक्षेयादोडे दोगुणहानियिंदमादियं भागिसिदोडे चयमक्कुमिल्लि वृद्धि-विवक्षितमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानियिंदं भागिसल्पट्टुदें बुदर्थं । गुणो गच्छः गच्छदिंद गुणि-

पल्यच्छेदासंख्येयभागाः छे ३ अन्योन्याभ्यस्तराशिः पल्यासंख्यातैकभागः प ३ गुणहान्यायामः नानागुणहानि-शलाकाभक्तस्थितिमात्रः प १ १ छे ३ अयं द्विगुणितो दोगुणहानिः प १ १ २ छे ३ तेषु स्थितिविकल्पेषु सर्व-जघन्यस्थितेर्निबंधनकषायाध्यवसायाः सर्वतः स्तोका अपि असंख्यातलोकमात्राः ≡ ३ 'पदहतमुखमादिधनं ≡ ३ गु 'व्येकपदा गु र्ध गु २ घ्नेन रूपाधिकगुणहानिभक्तादिमात्रचयेन गु २ ≡ ३ गुणो गच्छश्चयधनं १– गु

देनेपर आठ आये। आठ एक गुणहानि आयाम जानना। उसको दूना करनेपर दो गुणहानि आयाम होता है। उन स्थितिके भेदोंमें-से सबसे जघन्य स्थितिके बन्धके कारण कषाया-ध्यवसाय सबसे थोड़े हैं। उनका प्रमाण नौ ९। 'पदहतमुखमादिधनं' इस सूत्रके अनुसार एक गुणहानि आयाम तो पद हुआ। उससे गुणित मुख अर्थात् आदि स्थान नौ ९ वह आदि-धन है। सो आदिधन ८×९=७२ हुआ। एक अधिक गुणहानिका भाग आदिस्थानको देनेपर जो प्रमाण हो वह चय जानना। सो यहाँ गुणहानिका प्रमाण आठ, उसमें एक अधिक करने पर नौ हुए। उसका भाग आदिस्थान नौमें देनेपर एक आया। वही चय जानना। अतः एक-एक स्थानमें एक-एक बढ़ता कषायाध्यवसाय स्थान प्रथम गुणहानि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सल्पट्टुदादोडे चयधनमक्कुं $\frac{\text{गु}}{२}$ ≡ ७। गु उभयधनमं कूडिदोडिदु प्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कु। $\frac{}{\text{गु}}$ ≡ ७ गु गु ३ द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळु द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि चरमगुणहानियोळु रूपोन- $\frac{}{\text{गु। २}}$ नानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकंगळु गुणकारंगळप्पुववरन्योन्याभ्यासं माडिदोडे अन्योन्याभ्यस्त-राश्यर्द्धं गुणकारमक्कु ≡ ७ गु गु ३ प ७ मिदंतधनमप्पुदरिदमन्तधणं गुणगुणियमें दु द्विगुणक्रम- $\frac{}{\text{गु २}}$ २ मप्पुदरिदं गुणकारमेरडु रूपुगळवरिदं गुणिसिदोडेडिदु ≡ ७ गु गु ३ प २ अपवर्त्तितमिदु $\frac{}{\text{गु}}$ २ ७ २

गु ≡ ७ गु तयोर्योगः प्रथमगुणहानिद्रव्यं ≡ ७ गु। गु ३ इदं प्रतिगुणहानिद्विगुणं द्विगुणं भूत्वा चरम-
२ १–/गु १–/गु २

गुणहानौ रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकगुणमिति अन्योन्याभ्यस्तार्धगुणं स्यात् ≡ ७ गु। गु ३ प १– इदं 'अंतधणं
१–/गु २ ७ २

पर्यन्त जानना। सो व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' एक हीनगच्छके आधेको चयसे गुणा करें। फिर गच्छसे गुणा करें। जो प्रमाण हो उतना सर्व चयधन होता है। यहाँ गच्छ आठमें-से एक घटानेपर सात रहे। उसका आधा साढ़े तीन। उसे चयके प्रमाण एकसे गुणा करनेपर साढ़े तीन ही रहे। उसे गच्छके प्रमाण आठसे गुणा करनेपर अठाईस हुए। यह चयधन जानना। आदिधन और उत्तरधन मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्व-द्रव्य होता है। सो आदिधन बहत्तर और उत्तरधन २८ को मिलानेपर १०० हुए। यही प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य जानना। आगे प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता है— १००, २००, ४००, ८००, १६००। इस तरह एक कम नानागुणहानि प्रमाण बार दूना-दूना होता है। सो अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधेसे प्रथमको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो अन्तका प्रमाण जानना। यहाँ नानागुणहानि पाँच मेंसे एक घटानेपर चार रहे। सो चार जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए। इतना ही अन्योन्याभ्यस्त राशि बत्तीसका आधा प्रमाण है। सोलहसे प्रथम स्थान सौको गुणा करनेपर सोलह सौ हुए। इतना ही अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना। इन सबको जोड़िए—

---

१. म °लवनन्यो°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

≡ a गु गु ३ । प आदिविहीनमं वादियं कळेदोडिदु ≡ a गु गु ३ । प सर्व्वगुणहानिगळ
२ a २ a
गु गु

सर्व्वधनमक्कुमनंतरं त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदें तें दोडे :—एकप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळिनितक्के स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळिनितागुत्तं विरलु इनितु प्रकृतिस्थितिविकल्पंगळ्गेनितु स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळप्पुवें दु त्रैराशिकं माडि प्र प १ १ फ ≡ a गु गु ३ प इ ≡ a ≡ a २ प १ १
२ a
गु

गुणगुणियं ≡ a गु । गु ३ प २ अपवर्तितं ≡ a गु । गु ३ प आदिविहीणमिति ≡ a गु । गु ३ प
१– २ a २ १–२ a १— a
गु गु गु २

सर्वगुणहानिधनं स्यात् । एकप्रकृतिस्थितिविकल्पानामेषां प १ १ यद्येतावंतः ≡ a गु । गु ३ प
१– २ a
गु

स्थितिबंधाध्यवसायाः तदा एतावतां ≡ a ≡ a २ प १ १ स्थितिविकल्पानां कति स्थितिबंधाध्यवसायाः

'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियं' यह सूत्र जहाँ प्रत्येक स्थानका गुणकार समान होता है उनके जोड़ करनेके लिए है। सो गुणा करते-करते अन्तमें जो प्रमाण आवे उसको गुणकारसे गुणा करके उसमें-से आदि घटा दें। जो प्रमाण आवे उसको एक हीन उत्तरसे भाग देनेपर सर्वधन होता है। यहाँ अन्तस्थानका प्रमाण सोलह सौ १६०० और दूना-दूना किया था, इससे गुणकारके प्रमाण दोसे गुणा करनेपर बत्तीस सौ ३२०० सौ हुए। उसमें आदि का प्रमाण सौ घटानेपर इकतीस सौ रहे। यहाँ दूना-दूना किया है इससे उत्तरका प्रमाण दो हुआ। उसमें-से एक घटानेपर एक रहा। उसका भाग देनेपर इकतीस सौ ही रहे। सो पाँचों गुणहानिका जोड़ है। इस तरह एक प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण इकतीस सौ जानना।

यह तो अंक संदृष्टिसे कहा है। अब यथार्थ कथन करते हैं—एक प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण असंख्यातलोक प्रमाण कषायाध्यवसाय हैं सो द्रव्य जानना। एक प्रकृतिकी जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त संख्यात पल्य प्रमाण स्थितिके भेद हैं। सो स्थिति स्थान जानना। नानागुणहानि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग मात्र है। अन्योन्याभ्यस्त राशि पल्यके असंख्यातवें भाग है। नानागुणहानिशलाकाका स्थितिमें भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसे गुणहानि आयाम जानना। उसको दोसे गुणा करनेपर दो गुणहानि होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंद लब्धं सर्व्वप्रकृतिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायप्रमाणमक्कु ≡ a ≡ a २ ≡ a गु गु ३ प
२ a
गु

मवु कारणमागि सर्व्वप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळं नोडलु स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळमसंख्यातलोक-गुणमें दु पेळल्पट्टुदी स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगनुकृष्टिविधानमुंटप्पुदीयल्पबहुत्वकथनदोळ प्रस्तुतमल्लप्पुदरिदं पेळल्पडदु मुंदे पेळल्पडुगु।

अनंतरमनुभागबंधाध्यवसायंगळगं कर्म्मप्रदेशंगळगमल्पबहुत्वमं मुंदण सूत्रदिदं पेळ्दपरु।

अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो।
एत्तो अणंतगुणिदा कम्मपदेसा मुणेदव्वा ॥२६०॥

अनुभागानां बंधाध्यवसायोऽसंख्यलोकगुणितोऽतः। इतोऽनन्तगुणिताः कर्म्मप्रदेशा मन्तव्याः॥

स्युः ? इति त्रैराशिकेन एषां– ≡ a ≡ a २ ≡ a गु । गु ३ प स्थितिविकल्पेभ्योऽसंख्यातलोकगुणि-
१– २ a
गु २
तत्वदर्शनात्। तेषां स्थितिबंधाध्यवसायानामनुकृष्टिविधानमस्त्यपि अत्राप्रस्तुतत्वान्नोक्तम्। अग्रे वक्ष्यति ॥२५९॥

सब स्थितिके भेदोंमें जघन्य स्थितिबन्धके कारण कषायाध्यवसाय स्थान सबसे थोड़े हैं। वे असंख्यात लोकमात्र हैं। 'पदहतमुखमादिधनं' अर्थात् आदिस्थानको गच्छसे गुणा करनेपर आदि धन होता है। एक अधिक गुणहानि आयामका भाग आदिमें देनेपर चयका प्रमाण होता है। आदिधन और चयधनको मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्व द्रव्य होता है। सो प्रत्येक गुणहानिमें दूना-दूना होते-होते अन्तमें एक कम नानागुणहानि प्रमाण दूना होनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधे प्रमाणसे आदिको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अन्तकी गुणहानिका द्रव्य जानना। सो 'अंतधणं गुणगणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियं' इस सूत्र-के अनुसार अन्तमें जो प्रमाण हुआ उसको गुणाकार दोसे गुणा करके उसमें-से आदिका प्रमाण घटावे। उत्तरके प्रमाण दोमें एक घटानेपर एक रहा। उससे भाग देनेपर उतना ही रहा। इस तरह करनेपर जो प्रमाण रहा उसे सर्वगुणहानिका धन जानना। एक प्रकृतिके संख्यातपल्यप्रमाण स्थिति भेद और उनके इतने असंख्यातलोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हुए तो सर्व उत्तरोत्तर प्रकृति संग्रहके भेदोंके कितने स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हुए इस प्रकार त्रैराशिक करनेसे स्थितिके भेदोंसे असंख्यातलोक गुने होते हैं। इन स्थितिबन्धा-ध्यवसाय स्थानोंमें अधःप्रवृत्तकरणकी तरह अनुकृष्टि विधान होता है सो आगे कहेंगे। यहाँ मुख्य कथन न होने से नहीं कहा ॥२५९॥

इन सब स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंसे अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक गुने होते हैं। वही कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः तत्सर्व्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळं नोडलुमनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळुमसंख्यातलोकगुणितंगळप्पुवु । इतः यिदं नोडलुं कर्म्मप्रदेशंगळुमनंतगुणितंगळप्पुवेंदितु अंतव्यंगळप्पुवल्लि जघन्यस्थितिबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळ्गे अनुभागबंधाध्यवसायंगळु असंख्यातलोकगुणितासंख्यातलोकप्रमितंगळु द्रव्यमक्कु ≡a≡a मा जघन्यस्थितिबंधनिबंधनासंख्यातलोकमात्रषट्स्थानगतस्थितिबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळु स्थितियेंबुदक्कुं । ≡ a नानागुणहानिशलाकेगळुमावल्यसंख्यातैकभागमक्कु २/(a a) मी नानागुणहानिशलाकेगळिंदं स्थितियं भागिसिदोडे गुणहान्यायाममक्कु ≡a २/(a a) मी गुणहान्यायाममं द्विगुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कुं ≡a । २ २/(a a) नानागुणहानिशलाकेगळ्गे द्विकमिनित्तु वर्गितसंवर्ग्गं माडुत्तिरलुमन्योन्याभ्यस्तराशियुमावल्यसंख्यातैकभागमेयक्कु । २/a । मिन्तागुत्तं विरलु संकलितधनं तरल्पडुगुमदेंतेंदोडे जघन्यस्थितिबंधकारणस्थितिबंधाध्यवसायंगळ जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानदोळनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकप्रमितंगळु स्तोकंगळिवु ≡a≡a मुखमेंबुदक्कुं । पदहतमुखमादिधनमेंदु मुखमं गुणहानियिदं गुणिसिदोडादिधनमक्कुं । ≡a≡a गु । व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छः उत्तरधनमेंदु गुणहानियोळोंदु रूपं कळेदर्द्धिसि चयदिंदं गुणिसि गुणहानियिदं गुणिसिदोडे चयधनमक्कु ।

एभ्यः सर्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थानेभ्यः अनुभागबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यातलोकगुणितानि । तद्यथा—जघन्यस्थितिबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायसंबंध्यनुभागबन्धाध्यवसायाः असंख्यातलोकगुणितासंख्यातलोकमात्राः। द्रव्यं ≡ a ≡ a जघन्यस्थितिबंधाध्यवसाया असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानगता अप्यसंख्यातलोकाः । स्थितिः ≡ a नानागुणहानिशलाकाः आवल्यसंख्यातैकभागः २/(a a) ताभिर्भक्तस्थितिगुणहान्यायामः ≡ a २/(a a) अयं द्विगुणितो दोगुणहानिः ≡ a २ २/(a a) आवल्यसंख्यातैकभागोऽन्योन्याभ्यस्तराशिः २/a । अत्र जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थाने अनुभागबंधाध्यवसाया असंख्यातलोकाः सर्वतः स्तोकाः ≡ a ≡ a मुखमित्युच्यते । पदहतमुख-

---

जघन्य स्थितिबन्धके कारण जो कषायाध्यवसाय स्थान हैं उन सम्बन्धी अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकसे असंख्यात लोकको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने हैं। वही यहाँ द्रव्य जानना। जघन्य स्थितिबन्धके कारण जो स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकवार षट्स्थान वृद्धिको लिये हुए हैं तथापि असंख्यात लोक मात्र ही हैं। उन्हें यहाँ स्थिति स्थान जानना। नानागुणहानि शलाका आवलीको दो बार असंख्यातसे भाग दें उतनी हैं। नानागुणहानिका भाग स्थिति स्थानमें देनेपर जो लब्ध आवे उतना एक गुणहानिका आयाम होता है। उसको दूना करनेपर दो गुणहानि होती है। आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि है। यहाँ जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानमें अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। वे सबसे थोड़े हैं। उनको मुख कहें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गु/२ ≡ ० ≡ । गु/गु मी चयधनमुमनादिधनमुमं कूडिदोडुभयधनमुं प्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमिदादि-धनमक्कु ≡ ० ≡ ० गु गु ३/२ / गु द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमदिदं पोगि चरम-गुणहानियोळु रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रद्विकंगळु गुणकारंगळप्पुदरिदमवनन्योन्याभ्यासं माडुत्तं विरलु लब्धमावल्यसंख्यातैकभागप्रमितमप्प अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धं गुणकारमक्कु ≡ ० ≡ ० गु गु ३ २/२ ० २ / गु मिदन्तधनमप्पुदरिदमन्तधणं गुणगुणियं एंदु अन्तधनमं गुणकारदिदं गुणिसिदोडिदु ≡ ० ≡ ० गु गु ३ २ २/२ ० २ / गु अपवर्त्तितमिदु ≡ ० ≡ ० गु ३ २/२ ० / गु आदिविहीनमें दि-

मादिधनं ≡ ० ≡ ० गु 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणोगच्छ उत्तरधनं'— गु/२ ≡ ० ≡ ० गु/१— गु तयोर्योगः प्रथमगुण-हानिद्रव्यं ≡ ० ≡ गु । गु ३/१— गु प्रतिगुणहानि द्विगुणद्विगुणक्रमेण चरमगुणहानौ रूपोननानागुणहानिमात्रद्वि-कगुणितमित्यन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धं गुणकारः स्यात् । ≡ ० ≡ ० गु । गु ३ २/१— ० २ गु इदमंतधणं गुणगुणियं ≡ ०/१— गु

'पदहतमुखमादिधनं' अर्थात् पद–गुणहानि आयामसे मुखको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसे आदिधन जानना। 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'—एक हीन पद जो गुण-हानि आयाम है, उसको आधा करें तथा चयसे गुणा करें, जो प्रमाण हो उसको पदसे गुणा करें। ऐसा करनेसे जो राशि आवे उसे चय धन जानो। आदिधन और चयधनको मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य होता है। और आगे क्रमसे प्रत्येक गुणहानिमें दूना-दूना होता जाता है। एक हीन नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका आधा प्रमाण होता है। उससे प्रथम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर अन्तिम गुणहानिका सर्वद्रव्य होता है। तथा 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियं', इस सूत्रके अनुसार अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणाकार दोसे गुणा करें। गुणा करनेसे जो आवे उसमें-से प्रथमगुणहानिका द्रव्य घटावें। तथा उत्तर दोमें-से एक घटानेपर एक शेष रहा, उससे भाग देनेपर उतना ही रहा। ऐसा करनेसे जो प्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दरोळादियं कळेदोडे ≡ a ≡ a गु गु ३ २ ई राशि जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगनु-
भागबंधाध्यवसायस्थानंगळप्पुविन्नु त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदेंतेंदोडे एकजघन्यस्थितिविकल्प-
क्कनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळिनितागुत्तं विरलिनितु स्थितिविकल्पंगळगेनितु अनुभाग-
बंधाध्यवसायस्थानंगळक्कुमेंदिन्तु त्रैराशिकं माडुत्तविरलु प्र १ प ≡ a ≡ a गु गु ३ । २ / गु, २ a
इ ≡ a ≡ a २ प १ १ बंद लब्धं सर्व्वस्थितिविकल्पंगळगनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पं-
गळप्पुवु ≡ a ≡ a २ प १ १ ≡ a ≡ a गु गु ३ २ / गु, २ a अदु कारणमागि सर्व्वस्थितिबंधाध्यव-
सायस्थानविकल्पंगळं नोडलनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकगुणितंगळेंबु परमा-

≡ a गु । गु ३ २ । २ (१—, २ a २) अपवर्तितं ≡ a ≡ a गु । गु ३ २ (१—, गु, २, a) आदिविहीणमिति ≡ a ≡ a गु । (१—, गु)

गु ३ । २ (१—, २ a) जघन्यस्थितेः स्थितिबंधाध्यवसायानां अनुभागबंधाध्यवसायस्थानप्रमाणं स्यात् । एकस्थिति-
विकल्पस्य अनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पा एतावंतः तदा एतावतां स्थितिविकल्पानां कति अनुभागबंधाध्य-
वसायस्थानानीति त्रैराशिकेन—प्र—१ फ— ≡ a ≡ a गु गु ३ २ (१—, गु, २ a) इ — ≡ a ≡ a २ प १ १
लब्धानां एतावन्मात्रत्वात् ≡ a ≡ a २ प १ १ ≡ a ≡ a गु । गु ३ २ (१—, गु, २ a) एभ्योऽनुभागबंधाध्य-

हुआ, उतना सब गुणहानियोंका द्रव्य हुआ। सो जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानसम्बन्धी अनुभागाध्यवसाय स्थानोंका इतना प्रमाण होता है। जो एक स्थिति भेदके अनुभागाध्यवसाय स्थानके भेद इतने हुए तो पूर्वोक्त सब स्थिति भेदोंके अनुभागाध्यवसाय स्थानके कितने भेद हुए। इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर लब्धराशिका जो प्रमाण होता है वह स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंसे असंख्यात गुणा होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गमदोळ्पेळल्पट्टुदिन्नु कर्म्मप्रदेशंगळ प्रमाणमरियल्पड्डुगुमदें ते दोडेमध्यमयोगार्जितसमयप्रबद्धं द्रव्यमाबाधारहितकर्म्मस्थितिसंख्यातपल्यं स्थितिपल्यवर्ग्गशलाकार्द्धंच्छेदराशिहीनपल्यार्द्धच्छेदराशिनानागुणहानिभाजितस्थितिगुणहानिद्विगुणितगुणहानि दोगुणहानि नानागुणहानिप्रमितद्विकसंवर्ग्गसंजनितस्ववर्ग्गशलाकाभक्तपल्यमन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुमिवक्के यथाक्रमदिदमंकसंदृष्टियुमर्थसंदृष्टियुमिदु :—

द्रव्य ६३००	स्थिति । ४८	नाना ६	गुणहानि ८	दोगुण १६	अन्योन्या ६४
स ०	प १	छे-व छे	प १ । २ छे व छे	प १ । २ छे-व छे	प व

अनंतरं त्रिकोणरचनास्वरूपदिदमिद्दं कर्म्मप्रदेशंगळ संकलितधनं तरल्पड्डुगुमा त्रिकोणरचनास्वरूपमें ते दोडनादिबंधनबद्धगळितावशेषसमयप्रबद्धंगळाबाधारहितोत्कृष्टकर्म्मस्थितिसप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितंगळु विवक्षितवर्त्तमानसमयदोळेकैकनिषेकाधिकक्रमदिदं पोगि चरमसमयप्रबद्धदोळाबाधारहितोत्कृष्टकर्म्मस्थितिप्रमितनिषेकंगळप्पुवा समयप्रबद्धचरमगुणहानिचरमनिषेकं

वसायेभ्यः कर्मप्रदेशाः अनंतगुणाः तद्यथा—

अनादिबंधनबद्धगलितावशेषसमयप्रबद्धानां आबाधारहितोत्कृष्टस्थितिः सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमिता, विवक्षितवर्तमानसमये एकैकनिषेकाधिकक्रमेण गत्वा चरमसमयप्रबद्धे आबाधारहितोत्कृष्टस्थितिप्रमित-

---

इन अनुभागाध्यवसाय स्थानोंसे कर्मके प्रदेश अर्थात् कर्मपरमाणु अनन्त गुणे हैं। उसे ही अंक संदृष्टिसे दिखाते हैं—

एक समयमें जितने परमाणु बँधते हैं उसे समयप्रबद्ध कहते हैं। उनका प्रमाण तेरसठ सौ ६३००। कर्मकी स्थितिका प्रमाण अड़तालीस समय सो स्थिति ४८। नानागुणहानि ६। एक-एक गुणहानिमें जितनी स्थिति हो वह गुणहानि आयाम आठ। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रख उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि चौंसठ। गुणहानि आयामको दूना करनेपर दो गुणहानिका प्रमाण सोलह। एक हीन अन्योन्याभ्यस्त राशि त्रेसठका भाग सर्वद्रव्य-तेरसठ सौ में देनेपर सौ आया। सो अन्तकी गुणहानिका प्रमाण है। उससे दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त होता है। सो आधा अन्योन्याभ्यस्त राशिसे अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका द्रव्य आता है। सो बत्तीससे सौको गुणा करनेपर बत्तीस सौ होते हैं यही प्रथम गुणहानिका द्रव्य है। इससे दूसरी आदि गुणहानियोंका द्रव्य आधा-आधा होता है—३२००। १६००। ८००। ४००। २००। १००। प्रथम गुणहानि सम्बन्धी द्रव्यको गुणहानि आयामसे भाग देनेपर मध्यधन होता है। सो बत्तीस सौमें आठसे भाग देनेपर चार सौ आये। यह मध्यधन है। एक हीन गुणहानि आयामके आधे प्रमाणको निषेक भागहाररूप दो गुणहानिमें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे उसका भाग मध्यधनमें देनेपर जो प्रमाण आवे सो चयका प्रमाण जानना। सो एक हीन गुणहानि आयाम सातका आधा साढ़े तीनको दो गुणहानि सोलहमें-से घटानेपर साढ़े बारह

---

१. ब °पमाणि, वि°।

मोदलगोंडधोधोनानागुणहानिगळोळु प्रथमगुणहानिप्रथमोदयनिषेकपर्य्यंन्तमिळिदु तत्प्रथमनिषेकमादियागितिर्य्यंक्सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाबाधारहितकर्म्मस्थिति प्रमितगळितावशेषसमयप्रबद्धंगळोळेकैकनिषेकंगळुदयिसलुदयक्केकसमयप्रबद्धमक्कुमा त्रिकोणरचनासंदृष्टियिदु :—

९।
चरमगुणहानि ९। १०।
९। १०। ११।
९। १०। ११। १२।
९। १०। ११। १२। १३।
९। १०। ११। १२। १३। १४।
९। १०। ११। १२। १३। १४। १५।
९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६।
० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ०
००० १४४।१६०।१७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६। प्र
९। ००० १६०।१७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८। थ
९। १०। ००० १७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०। म
९। १०। ११। ००० १९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४। गु
९। १०। ११। १२। ००० २०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।३८४। ण
९। १०। ११। १२। १३। ००० २२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६। हा
९। १०। ११। १२। १३। १४। ००० २४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८। नि
९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। ००० २५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०।
९।१०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। ००० २८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०।५१२।

निषेका भवंति । तत्समयप्रबद्धचरमगुणहानिचरमनिषेकादारभ्याधोधो नानागुणहानिषु प्रथमगुणहानिप्रथमोदयनिषेकपर्यंतमवतीर्य तत्प्रथमनिषेकमादिं कृत्वा तिर्यगाबाधोनितोत्कृष्टस्थितिप्रमितगलितावशेषसमयप्रबद्धेष्वेकैकनिषेकेषु दीयमानेषु एकनिषेकसमयप्रबद्ध उदेति तत्त्रिकोणरचनासंदृष्टिः—

रहे। उसका भाग मध्यधन चार सौमें देनेपर बत्तीस आये। यही प्रथम गुणहानिमें चयका प्रमाण है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो आदिनिषेक जानना। सो बत्तीसको सोलहसे गुणा करनेपर पाँच सौ बारह प्रथम निषेक जानना। इसमें-से एक चय बत्तीस घटानेपर चार सौ अस्सी दूसरा निषेक हुआ। इसी प्रकार प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त घटाना। प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेकमें-से प्रथम गुणहानि सम्बन्धी चय घटानेपर प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकसे आधा प्रमाण होता है। वही द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक है। इसमें द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं। प्रथम गुणहानिसे द्वितीय गुणहानिमें चयका तथा निषेकोंका प्रमाण आधा होता है। उसके अन्तिम निषेकमें-से द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी एक चय घटानेपर तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक होता है। उसमें एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं। यहाँ भी चय तथा निषेकोंका प्रमाण दूसरी गुणहानिसे आधा जानना। इसी तरह प्रत्येक गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है। गुणहानि यन्त्र इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९।
९। १०।
९। १०। ११।
९। १०। ११। १२।
९। १०। ११। १२। १३।
९। १०। ११। १२। १३। १४।
९। १०। ११। १२। १३। १४। १५।
९ १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६।
० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ०
० ० ० ० ० ० ० ०
९। ००० १६०। १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। २८८।
९। १०। ००० १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। २८८। ३२०।
९। १०। ११। ००० १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। २८८। ३२०। ३५२।
९। १०। ११। १२। ००० २०८। २२४। २४०। २५६। २८८। ३२०। ३५२। ३८४।
९। १०। ११। १२। १३। ००० २२४। २४०। २५६। २८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६।
९। १०। ११। १२। १३। १४। ००० २४०। २५६। २८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६। ४४८।
९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। ००० २५६। २८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६। ४४८। ४८०।
९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। ००० २८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६। ४४८। ४८०। ५१२।

गुणहानि क्रम	चय का प्रमाण	निषेको का प्रमाण	सर्व द्रव्य का प्रमाण
प्रथम गुणहानि	३२	५१२ ४८० ४४८ ४१६ ३८४ ३५२ ३२० २८८	३२००
द्वितीय गुणहानि	१६	२५६ २४० २२४ २०८ १९२ १७६ १६० १४४	१६००
तीसरी गुणहानि	८	१२८ १२० ११२ १०४ ९६ ८८ ८० ↓ ७२	८००
चतुर्थ गुणहानि	४	↑ ६४ ६० ५६ ५२ ४८ ४४ ४० ३६	४००
पंचम गुणहानि	२	३२ ३० २८ २६ २४ २२ २० १८	२००
षष्ठम गुणहानि	१	१६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९	१००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका आशय इस प्रकार है—

समयप्रबद्ध तिरसठ सौ कर्मवर्गणा बन्धरूप हुई। उनका आबाधाकाल रहित शुद्ध स्थिति अड़तालीस समय। पहले समयमें पाँच सौ बारह परमाणु खिरे। पीछे बत्तीस-बत्तीस घटते हुए खिरे। प्रथम गुणहानिके कालमें बत्तीस सौ परमाणु खिरे। द्वितीय गुणहानिके प्रथम समयमें दो सौ छप्पन खिरे। पीछे सोलह-सोलह घटते हुए खिरे। इस तरह द्वितीय गुणहानिमें सर्व परमाणु सोलह सौ खिरे। इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिमें आधे-आधे खिरे। इस तरह सब गुणहानियोंमें त्रेसठ सौ परमाणु खिरते हैं। इसी प्रकारसे यथार्थ रूपमें भी जानना। यहाँ मोहनीय कर्म की अपेक्षा दिखाते हैं—

मोहनीय कर्मके परमाणु एक समयप्रबद्धमें जितने बँधते हैं उतना द्रव्यका प्रमाण जानना। मोहनीय कर्मकी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर। उसमें-से आबाधा काल घटानेपर जो प्रमाण रहे उसमें जितने समय हों उतनी स्थिति जानना। पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतना नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण है। इसका भाग उक्त स्थितिमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना एक गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। उसको दूना करनेपर दो गुणहानि आयाम होता है। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण होता है। सो ऊपर अंकसंदृष्टिमें जैसा कहा है तदनुसार करते हुए गुणहानियोंमें और निषेकोंमें जितना द्रव्यका प्रमाण आवे सो जानना। सो आबाधाकाल बीतनेपर प्रथम समयमें तो प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकमें जितना द्रव्यका प्रमाण हो, उतने परमाणु खिरते हैं। दूसरे समयमें दूसरे निषेकमें जितना द्रव्यका प्रमाण है उतने परमाणु खिरते हैं।

इस प्रकार एक गुणहानिके जितने समय होते हैं उतने समयोंमें प्रथम गुणहानिका जितना द्रव्य होता है उतने परमाणु खिरते हैं। इसी क्रमसे प्रत्येक गुणहानिमें आधे-आधे खिरते हैं। सर्वगुणहानियोंमें सम्पूर्ण समयप्रबद्ध इस क्रमसे खिर जाता है। इस प्रकार जो समयप्रबद्ध बँधता है उसकी निर्जरा होनेका यह विधान है। तथा प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध नवीन बँधता है। जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि होनेसे पूर्वोक्त प्रकारसे प्रतिसमय बन्ध और निर्जरा होते हुए भी जीवके कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध सदा सत्तामें रहता है। अर्थात् गुणहानि आयामके प्रमाणको ड्योढा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें कुछ प्रमाण कम करके उससे समयप्रबद्धके प्रमाणको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने कर्म परमाणुओंकी सत्ता जीवके सदा रहती है।

प्रति समय एक-एक समयप्रबद्धका बन्ध और एक-एक समयप्रबद्धका उदय होते रहते डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धकी सत्ता कैसे रहती है और कैसे एक समयप्रबद्धका उदय होता है, इस बातको अंक संदृष्टिके द्वारा त्रिकोण रचना करके दिखाते हैं—

इस रचनामें नीचेकी पंक्तिमें नौ आदि आठ निषेक लिखे हैं। बीचके बत्तीस निषेक न लिखकर बिन्दीके चिह्न दिये हैं फिर दो सौ अठासी आदि निषेक लिखे हैं। इसी प्रकार ऊपरकी पंक्तियोंके बीचमें भी बिन्दियोंके चिह्नसे बीचके निषेक जानना। आठ पंक्तियोंके ऊपर बिन्दीके चिह्नों द्वारा बत्तीस पंक्तियाँ एक-एक निषेक घटते हुए जानना। जीवकाण्डके योगमार्गणा अधिकारमें यह त्रिकोण रचना सम्पूर्ण दी गयी है। यहाँ संक्षेपमें लिखनेके कारण बीचमें बिन्दियोंके चिह्न दिये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

																९
															९	१०
														९	१०	११
													९	१०	११	१२
												९	१०	११	१२	१३
											९	१०	११	१२	१३	१४
										९	१०	११	१२	१३	१४	१५
									९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
									०	०	०	०	०	०	०	०
									०	०	०	०	०	०	०	०
									०	०	०	०	०	०	०	०
							९	०००	१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८
						९	१०	०००	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०
					९	१०	११	०००	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२
				९	१०	११	१२	०००	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४
			९	१०	११	१२	१३	०००	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६
		९	१०	११	१२	१३	१४	०००	२४०	२५६	२८८	३५०	३५२	३८४	४१६	४४८
	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	०००	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	०००	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२

इस त्रिकोण रचनाका अभिप्राय इस प्रकार है—त्रेसठ सौ परमाणु प्रमाण जो समयप्रबद्ध बँधा, आबाधाकाल छोड़कर वह अड़तालीस समयकी स्थितिमें क्रमसे इस प्रकार खिरता है—५१२।४८०।४४८।४१६।३८४।३५२।३२०।२८८। यह प्रथम गुणहानि हुई। २५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४। यह दूसरी गुणहानि हुई। १२८।१२०।११२।१०४।९६।८८।८०।७२। यह तीसरी गुणहानि हुई। ६४।६०।५६।५२।४८।४४।४०।३६। यह चतुर्थ गुणहानि हुई। ३२।३०।२८।२६।२४।२२।२०।१८। यह पंचम गुणहानि हुई। १६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९। यह षष्ठम गुणहानि हुई। इन छहों गुणहानियोंमें त्रेसठ सौ परमाणु इस प्रकार खिरते हैं। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक अड़तालीस समय हो गये, उससे लगाकर इससे पहले जितने समयप्रबद्ध बँधे थे उनसे तो कोई प्रयोजन नहीं रहा, क्योंकि उनका कोई भी निषेक सत्तामें नहीं रहा। सब उदयमें आकर खिर गये। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक सैंतालीस समय हुए हैं उसके सैंतालीस निषेक तो खिर गये। एक अन्तका निषेक रहा। सो त्रिकोण रचनामें नौ परमाणु रूप अन्तका निषेक ऊपर लिखा है। उसके नीचे जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक छियालीस समय हुए उसके छियालीस निषेक तो खिर गये दो निषेक सत्तामें रहे। सो त्रिकोण रचनामें नौ और दस परमाणुके दो निषेक लिखे। उसके नीचे जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक पैंतालीस समय हुए उसके पैंतालीस निषेक खिर गये तीन निषेक सत्तामें रहे। सो त्रिकोण रचनामें नौ, दस और ग्यारह परमाणुके तीन निषेक लिखे। इसी प्रकार जिस-जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए एक-एक समय कम हुआ है उसके एक-एक घटते हुए समयप्रबद्ध तो खिर गये, शेष एक-एक अधिक निषेक सत्तामें रहे। उनको नीचे-नीचे लिखा। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक एक समय हुआ हो उसका एक निषेक तो खिर गया शेष सैंतालीस निषेक रहे। वे नौ से लगाकर चार सौ अस्सी परमाणुके निषेक पर्यन्त लिखे हैं। उसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई त्रिकोणरचनेय चरमगुणहानिधनं तरल्पडुगुमदे ते दोडे चरमनिषेकमों दु ९ अनंतराधस्तन द्विचरमनिषेकंगळेरडु ९ । १० । तदनंतराधस्तन त्रिचरमनिषेकंगळु मूरु ९ । १० । ११ । इंतेकैकनिषेकंगळ द्विकंगळधिकंगळागुत्तं पोगि चरमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्ध प्रतिबद्धनिषेकंगळु गुणहानिप्रमितंगळप्पुवु । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । यितिरुत्तं विरलु चरमनिषेकसमानमप्पंतु अधस्तनाधस्तननिषेकंगळोळिर्द्द चरमगुणहानिचयंगळं तेगदु तेगदु तंतम्म सदृशनिषेकसंख्येगळ पार्श्वदोळु स्थापिसुत्तं विरलु चरमगुणहानियोळु सदृशनिषेकंगळु गच्छप्रमितंगळागुत्तं पोपुवु । तत्तच्चयंगळुं रूपोनगच्छसंकलनप्रमितंगळागुत्तं पोपुवप्पुदरिदं द्विकवारसंकलनक्रमंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

एकवार द्विकवार

=		। =
९	१	०
९	२	१ । १
९	३	१ । ३
९	४	१ । ६
९	५	१ । १०
९	६	१ । १५
९	७	१ । २१
९	८	१ । २८

अस्याश्चरमगुणहानौ चरमनिषेकः एकः ९ । अस्याधस्तनौ द्विचरमनिषेकौ द्वौ ९ । १० । त्रिचरमास्त्रयः ९ । १० । ११ । एवमेकैकाधिकक्रमेण तत्प्रथमनिषेके नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धा गुणहानिमात्राः स्युः ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । अत्र चरमनिषेकसमानं यथाभवति तथा अधस्तनाधस्तननिषेकस्थितचरमगुणहानिचयान् पृथक्कृत्य स्वस्वसदृशनिषेकसंख्यापार्श्वे स्थापितेषु सदृशधनिकानि गच्छप्रमितानि

नीचे अन्तमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए अबाधाकाल ही हुआ है और एक भी निषेक नहीं खिरा, उसके नौ से लगाकर पाँच सौ बारह पर्यन्त सब अड़तालीस निषेक सत्तामें हैं वे लिखे हैं। इस तरह त्रिकोण रचनामें गलनेके बाद जो शेष निषेक रहे वे क्रमसे लिखे हैं। इस सब त्रिकोण रचनाका जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो उतनी सत्ता जीवके सदा रहती है। इसके जोड़नेका विधान इस प्रकार जानना—

ऊपर जो त्रिकोण रचना दी है उसकी चरमगुणहानिमें चरम निषेक एक ९ है। उसके नीचे द्विचरम निषेक दो हैं ९।१०। इसी तरह त्रिचरम निषेक तीन है ९।१०।११। इस प्रकार एक-एक अधिकके क्रमसे प्रथम निषेकमें नाना समय प्रबद्धोंसे प्रतिबद्ध निषेक गुणहानि प्रमाण होते हैं ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६। यहाँ जोड़नेके लिये सबको चरमनिषेक ९ के समान करनेके लिए नीचे-नीचेके निषेकोंमें स्थित अन्तिम गुणहानिके चयोंको पृथक् करके उन्हें अपनी-अपनी समान निषेक संख्या के पासमें स्थापित करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई येरडुं पंक्तिगळं संकलिसिदोडे यथाक्रमदिंदमिन्तिर्प्पुवु $\overline{८}।८।\frac{\overline{८}}{२}$ $१।८।\frac{\overset{०}{\overline{८}}}{}।\frac{\overline{८}}{६}$ उभयधनयुतियिनितक्कुं $८।८।\frac{८}{६}।४।१$ अनंतरं द्विचरमगुणहानिद्रव्यं तरल्पडुगुमदें तें दोडे द्विचरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्ध प्रतिबद्धनिषेकंगळु चरमगुणहानिप्रथमनिषेक नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकंगळनितुं तच्चरमनिषेकद्विगुणप्रमितमों दु निषेकमुमधिकमक्कुं । ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८। तदनंतराधस्तननिषेकदोळु तावन्मात्रंगळुं द्विचरमगुणहानिविशेषाधिकतच्चरमनिषेकमों दधिकमक्कुं। ९। १०। ११।१२।१३।१४। १५।१६।१८।२०। इंतु पूर्व्वपूर्व्वमं नोडलेकैकद्विचरमगुणहानिविशेषयुतमेकैकनिषेकाधिक क्रमदिंदं पोगि द्विचरमगुणहानिप्रथमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकंगळु गच्छमात्रंगळि-

---

चयाश्च रूपोनगच्छसंकलनमात्रतया द्विकवारसंकलनक्रमा भवंति—

९ १	०
९ २	१ १
९ ३	१ ३
९ ४	१ ६
९ ५	१ १०
९ ६	१ १५
९ ७	१ २२
९ ८	१ २८

अस्मिन् पंक्तिद्वये संकलिते

एवं $\overset{१-}{८}।\overset{१-}{८}।\frac{८}{२}$ $\frac{१}{६}$ । $\overset{\frown}{८}।\overset{१-}{८}।८$ उभयधनयुतावेवं $\overset{१-}{८}।८।\frac{\overset{२-}{८}}{६}$ ४ तथा द्विगुणहानौ चरमे नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धाः चरमगुणहानिप्रथमनिषेका द्विगुणतच्चरमनिषेकाधिकाः ९।१०।११।१२।१३।१४।१५। १६। १८। तदनंतराधस्तनेतावंतोऽपि द्विचरमगुणहानिविशेषाधिकैकनिषेकाधिकाः स्युः ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०। एवमेकैकद्विचरमगुणहानिविशेषाधिकैकनिषेकाधिकक्रमेण

अतः अन्तिम गुणहानिका अन्तिम निषेक ९ लिखकर उसके आगे एक से एक अधिक लिखो। दूसरीमें अन्तमें शून्य लिखो। पीछे संकलन रूप प्रमाण लिखो—

९×१	०
९×२	१×१
९×३	१×३
९×४	१×६
९×५	१×१०
९×६	१×१५
९+७	१×२१
९×८	१×२८

नौको एकसे गुणा करने पर पहला जोड़ नौ हुआ।
नौ दूना अठारह और एक एकम एक। दोनों मिल उन्नीस हुए।
सो ९+१० मिलकर उन्नीस होते हैं २।
नौ ती सत्ताईस और एक तिया तीन। दोनों मिल तीस हुए
सो ९+१०+११ मिलकर तीस होते हैं।

इसी प्रकार सबसे अन्तमें नौ अठ्ठे बहत्तर और अठाईस इकम अठाईस। दोनों मिलकर सौ हुए। सो अन्तिम गुणहानिके सब निषेकोंका जोड़ सौ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नितप्पुवु। ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। यितिरुत्तिर्द्दु त्रिकोणरचनाद्विचरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्ध-निषेकंगळोळु सर्व्वोत्कृष्टनिषेकमिदु । १८ ॥

ई निषेकमादियागि तत्सदृशनिषेकंगळप्पन्तु तदधस्तनाधस्तननिषेकंगळोळिरुतिर्द्द विशेषंगळं मुन्निनंते तेगतेगदु तंतम्म सदृशनिषेकंगळ पार्श्वदोळु पृथक् पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु मुन्निनंते सदृशनिषेकंगळु गच्छमात्रंगळागुत्तं पोपुवु । तद्द्विचरमगुणहानिविशेषंगळं रूपोनगच्छसंकलन-प्रमितंगळप्पुवप्पुदरिदं द्विकवारसंकलनाक्रमभागि द्विचरमगुणहानिद्विचरमनिषेकं मोदल्गोंडु प्रथमनिषेकपर्य्यन्तं पोगि यिती तेरदिनिरुत्तिप्पुंवु ।

९	२	१	०	०
९	२	२	२	१
९	२	३	२	३
९	२	४	२	६
९	२	५	२	१०
९	२	६	२	१५
९	२	७	२	२१
९	२	८	२	२८

गत्वा द्विचरमगुणहानिप्रथमनिषेके नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धाः गच्छमात्राः स्युः । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २६ । २८ । ३० । ३२ । अत्र द्विचरमगुणहानौ चरमे नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकेषु उत्कृष्टोऽयं । १८ । इदमादिं कृत्वा तत्सदृशा निषेका यथा भवंति तथा तदधस्तनाधस्तननिषेकस्थितिविशेषान् प्राग्वदपनीयापनोय स्वस्वसदृशनिषेकपार्श्वे स्थापितेषु प्राग्वत् सदृशघनिका गच्छमात्रक्रमेण विशेषा रूपोनगच्छसंकलनमात्रक्रमेण द्विकवारसंकलनक्रमा भूत्वा द्विचरमगुणहानि-प्रथमनिषेकपर्यंतं गत्वा इत्थं तिष्ठंति—

९	२	१		०
९	२	२	२	१
९	२	३	२	३
९	२	४	२	६
९	२	५	२	१०
९	२	६	२	१५
९	२	७	२	२१
९	२	८	२	२८

द्वितीयादि गुणहानिमें भी प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य तो पूर्ववत् जानना किन्तु दोनों पंक्तियोंमें पहलेसे दूना-दूना प्रमाण जानना। यथा—

९×२×१	०
९×२×२	२×१
९×२×३	२×३
९×२×४	२×६
९×२×५	२×१०
९×२×६	२×१५
९×२×७	२×२१
९×२×८	२×२८

नौ दूना अठारह और अठारह एकम अठारह। यह पहला निषेक हुआ। नौ दूना अठारह। अठारह दूना छत्तीस और दो एकम दो। दोनों मिलकर अड़तीस हुए। सो १८+२० मिलकर अड़तीस होते हैं। इसी तरह अन्तमें नौ दूना अठारह। अठारह अट्ठे एक सौ चवालीस। और अठाईस दूना छप्पन। दोनों मिलकर दो सौ हुए। यही दूसरी गुणहानिके सब निषेकोंका जोड़ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यिवर संकलितधन संदृष्टिगळु ८।२।८।८।८।८।८।२ उभयधनयोगमिदु :— (२, ६)

८।८।८।४।२ (२, ६) यिल्लियुत्तरधनमिनितक्कु । १००।८। मेकेंदोडे सर्व्वत्र गुणहान्यायामदोळु । ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६। एतावन्मात्रनिषेकंगळोळवप्पुदरिंदं । मत्तं त्रिचरमगुणहानिनानासमयप्रबद्धनिषेकात्मक चरमनिषेकदोळु उपरितनगुणहानिप्रथमनिषेकभेदंगळु चरमगुणहानिचतुर्गुण चरमनिषेकमुमों दक्कुं । ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६। अनन्तराधस्तननिषेकदोळु तावन्मात्रनिषेकंगळु तत्त्रिचरमगुणहान्येकविशेषयुतत्तच्चरमनिषेकमुमों दक्कु ।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०। मिन्तु त्रिचरमगुणहानित्रिचरम निषेकादिगळोळु तद्‌गुणहानिविशेषयुतैकैकनिषेकाधिकक्रमदिदं पोगि तत्त्रिचरमगुणहानिप्रथमनिषेकदोळिनितु नानासमयप्रबद्धनिषेकंगळक्कु । ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०।४४।४८।५२।५६।६०।६४। मिन्तिरुत्तिरलो त्रिचरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु चतुर्गुणचरमगुणहानिचरमनिषेकमों वि-

---

अनयोः संकलने संदृष्टिः— ८।२।८।८।४। (१–, १–, २) | ८।८।८।२ (१–, ६) उभययुतिः ।८।८।८।४।२ (१–, २–, ६)

अत्रोत्तरधनं त्वेतावत् १००।८। कुतः ? सर्वत्र गुणहान्यायामे ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६। एतावतां निषेकाणां सद्‌भावात् । पुनः त्रिचरमगुणहानौ चरमनिषेके उपरितनगुणहानिप्रथमनिषेकाः सर्वे चरमगुणहानिचतुर्गुणचरमनिषेकश्चैकः ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६। अनंतराधस्तने तावंतः त्रिचरमगुणहान्येकविशेषाधिकतच्चरमनिषेकश्चैकः । ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०। एवं त्रिचरमगुणहानित्रिचरमादिनिषेकेषु तद्‌गुणहानिविशेषयुतैकैकनिषेकाधिकक्रमेण गत्वा तद्‌गुणहानिप्रथमनिषेके एतावंतः नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धविशेषाः स्युः ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०।४४।४८।५२।६०।६४।

इस दूसरी गुणहानिमें प्रथम गुणहानिका द्रव्य सर्वत्र एक-एक स्थानपर मिलनेपर त्रिकोण रचनाका जोड़ होता जाता है । जैसे प्रथम गुणहानिका द्रव्य सौ मिलानेपर एक सौ अठारह होते हैं । उसके नीचे अड़तीसमें मिलानेपर एक सौ अड़तीस होते हैं । इसी तरह सर्वत्र जानना ।

इसका कारण यह है कि सर्वत्र गुणहानि आयाममें ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६ । ये निषेक होते हैं । इसी प्रकार त्रिचरम गुणहानिके अन्तिम निषेकमें ऊपरकी गुणहानिके प्रथम निषेक सब और अन्तिम गुणहानिका एक अन्तिम निषेक होता है—९।१०।११।१२।१३।१४।१५। १६।१८।२०।२२।२४।२६।२२।३०।३२।३६। इसके अनन्तर नीचे ये सब और त्रिचरम गुणहानिसे एक विशेष अधिक चरम निषेक होता है—९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्तिवकु । ९ । ४ । तत्समानंगळप्पंतु तत्तधस्तननिषेकंगळोळिरुत्तिर्द्द तत्त्रिचरमगुणहानिविशेषंगळं तेगदु तेगदु पृथक् पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु—

९	४	१		
९	४	२	४	१
९	४	३	४	३
९	४	४	४	६
९	४	५	४	१०
९	४	६	४	१५
९	४	७	४	२१
९	४	८	४	२८

यिंतिप्पुविवं संकलिसुत्तं विरलु $\overline{८} । ८ । \frac{८}{२}^{१} । ४ \quad \overset{०}{८} । ८ । \frac{\overline{८}}{६} । ४$ उभयधनयुतियुमि-

नितक्कु $\overset{०}{८} । ८ । \frac{८}{६}^{२} । ४$ । ४ मिलियुत्तरधनमिनितक्कु । ३०० । ८ । में तें दोडे सर्व्वत्र गुणहान्या-

मदोळु । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २६ । २८ । ३० । ३२ । एतावन्मात्रनिषेकंगळोळवप्पुदरिदं यिंतु चतुश्चरमादिगुणहानिगळोळु आदिधनंगळुमुत्तरधनंगळधोऽधोद्विगुणद्विगुणक्रमंगळागुत्तलुमुत्तरधनंगळु मुपरितनगुणहान्युत्तरधनदिंदमधिकंगळागुत्तं पोगि सर्व्वाधस्तनप्रथमगुणहानिचरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धनिषेकंगळुमेतावन्मात्रंगळप्पुवु ।

अत्र त्रिचरमगुणहानौ चरमनिषेके चतुर्गुणचरमगुणहानिचरमनिषेक एकः । ९ । ४ । तत्समाना यथाभवंति तथा तदधस्तननिषेकस्थिताः त्रिचरमगुणहानिविशेषानपनीयापनीय पृथक्स्थापितेषु एवं तिष्ठन्ति—

९ । ४ । १		०		
९ । ४ । २		४ । १		
९ । ४ । ३		४ । ३		
९ । ४ । ४		४ । ६		
९ । ४ । ५		४ । १०		
९ । ४ । ६		४ । १५		
९ । ४ । ७		४ । २१		
९ । ४ । ८		४ । २८		

एतेषु संकलितेषु $\overset{१-}{८}\ \overset{१-}{८}\ \frac{८}{२}\ ४ \mid \overset{१-}{८}\ \overset{२-}{८}\ \frac{८}{६}\ ४$ उभयधनयुतिरियं $\overset{१-}{८}\ \overset{२-}{८} । \frac{८}{६}\ ४ । ४ ।$ अत्रोत्तरधनं तु

३०।३२।३६।४०। इस प्रकार त्रिचरम गुणहानिके त्रिचरम आदि निषेकोंमें उस-उस गुणहानिके विशेषसे युक्त एक-एक निषेकके क्रमसे जाकर उस गुणहानिके विशेषमें इतने नाना समय प्रतिबद्धोंसे प्रतिबद्ध विशेष होते हैं—९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४,२६,२८।३०।३२।३६।४०।४४।४८।५२।६०।६४। यहाँ त्रिचरम गुणहानिके अन्तिम निषेकमें चरम गुणहानिका एक चरम निषेक चतुर्गुणा है ९×४। उसके नीचेके निषेक उसीके समान करनेके लिए

९।१०।११।१२।१३। १४।१५। १६।१८। २०। २२।२४।२६।२८।३०।३२। ३६।४०।४४।४८।५२।५६।६०।६४।७२।८०।८८।९६।१०४। ११२। १२०। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८।२२४।२४०।२५६।२८८। अनन्तराधस्तननिषेकंगळोळेकैकचयोत्तरैकैकसमयप्रबद्धैकैकनिषेकाधिकक्रमदिदं पोगि त्रिकोणरचनासर्व्वाधस्तनप्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु आबाधारहितोत्कृष्टकर्म्मस्थितिमात्र सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितनानासमयप्रबद्धगळितावशेषयथास्थितनिषेकंगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु। ९। १०। ११। १२। १३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४। २६।२८। ३०।३२।३६।४०।४४।४८। ५२।५६। ६०।६४।७२। ८०।८८। ९६।१०४। ११२।१२०। १२८।१४४।१६०। १७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०। ५१२। मिन्तिरुत्तं विरलुमी त्रिकोणरचनाप्रथमगुणहानिधनं तरलपडुगुमदें ते दोडे चरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धनिषेकव्यक्तिगळोळु सर्व्वोत्कृष्टनिषेकं अन्योन्यभ्यस्तराश्यर्द्धगुणितचरमगुणहानि चरमनिषेकप्रमितमक्कुं। ९। ३२। तत्सदृशमप्पंतु तदधस्तननिषेकंगळोळिरुतिर्द्दं प्रथमगुण-

इयत् ३००।८। कुतः? सर्वत्र गुणहान्यायामे ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८। २०।२२।२४।२६।२८।३०।३२। एतावतां निषेकाणां सद्भावात्। एवं चतुश्चरमादिगुणहानिषु आद्युत्तरधनानि अधोधो द्विगुणद्विगुणक्रमाणि अपि उत्तरधनानि उपरितनगुणहान्युत्तरधनाधिकानि भूत्वा सर्वाधस्तनप्रथमगुणहानिचरमनिषेके नानासमयप्रबद्धनिषेका एतावंतः ९। १०।११।१२।१३।१४। १५।१६।१८।२०।२२।२४। २६।२८।३०। ३२।३६।४०।४४।४८। ५२।५६। ६०।६४।७२।८०।८८।९६।१०४। ११२।१२८। १४४।१६०।१७६।१९२। २०८। २२४।२४०।२५६।२८८। अनंतराधस्तननिषेकेषु एकैकचयोत्तरैकसमयप्रबद्धैकैकनिषेकाधिकक्रमेण गत्वा त्रिकोणरचनासर्वाधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके आबाधारहितोत्कृष्टकर्मस्थितिमात्रासप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितनानासमयप्रबद्धगलितावशेषनिषेका एतावंतः। ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८। २०।२२।२४।२६।२८।३०। ३२।३६।४०।४४। ४८।५२।५६। ६०।६४।७२। ८०।८८।९६।१०४। ११२। १२०। १२८।१४४। १६०।१७६।१९२।२०८।२२४।

त्रिचरम गुणहानिके विशेषोंको उसमें-से निकालकर पृथक् स्थापित करनेपर यह स्थिति हुई—

९×४×१	०
९×४×२	४×१
९×४×३	४×३
९×४×४	४×६
९×४×५	४×१०
९×४×६	४×१५
९×४×७	४×२१
९×४×८	४×२८

यहाँ उत्तरधन तीन सौ है। जैसे नौ चौका छत्तीसमें तीन सौ जोड़नेपर तीन सौ छत्तीस तृतीय गुणहानिकी प्रथम पंक्तिका जोड़ होता है। तीन सौ उत्तरधन होनेका कारण यह है कि सर्वत्र गुणहानि आयाममें ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हानिचयंगळं तेगतेगदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु—

९	३२	१	०	
९	३२	२	३२	१
९	३२	३	३२	३
९	३२	४	३२	६
९	३२	५	३२	१०
९	३२	६	३२	१५
९	३२	७	३२	२१
९	३२	८	३२	२८

निन्तिरुत्तिर्प्पुविवं संकलिसुत्तं विरलुभयराशिगळितिर्प्पुवु: ८।८।८/२।३२ ८।८।८/६।३२ मीयुभयधनयुति इनितक्कु ८।८/६।४।३२ (२) मिल्लियुत्तरधनमुमिनितक्कु। ३१००।८।

मेंतें दोडे सर्व्वत्र प्रथमगुणहान्यायामदोळिनितिनितु निषेकंगळु ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२।

२४०। २५६। २८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६। ४४८। ४८०। ५१२। एवं सति तत्त्रिकोणरचनाधनमानीयते—

अथ प्रथमगुणहानौ चरमनिषेके नानासमयप्रबद्धनिषेकव्यक्तिषु सर्वोत्कृष्टचरमनिषेक: अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिचरमनिषेकप्रमित:। ९। ३२। तत्सदृशा यथाभवंति तथा तदधस्तननिषेकस्थितिप्रथमगुणहानिचयानपनीयापनीय पृथक्स्थापितेषु एवं तिष्ठंति।

९	३२	१		०
९	३२	२	३२	१
९	३२	३	३२	३
९	३२	४	३२	६
९	३२	५	३२	१०
९	३२	६	३२	१५
९	३२	७	३२	२१
९	३२	८	३२	२८

एतेषु संकलितेषु उभयराशी एवं ८।८।८/२ ३२ | ८।८/६।८। ३२। उभययुति: ८।८।८/६।४। ३२ अत्रोत्तरधनं तु। एतावत् ३१००।८ कुत:? सर्वत्र प्रथमगुणहान्यायामे एतावतामेतावतां निषेकाणां—

३२। इतने निषेक पाये जाते हैं और इन सबका जोड़ तीन सौ है। इसी प्रकार चतुश्चरमादि गुणहानियोंमें आदिधन और उत्तरधन नीचे-नीचे क्रमसे दुगुने-दुगुने होते जाते हैं। किन्तु

---

१. ब यथा संभवति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०८। २२४। २४०। २५६। बोळवप्पुदरिंदं। इन्तुक्तसर्व्वगुणहानिगळ धनंगळुमुत्तरधनंगळुमितिवर्कुं—

— २ ८।८।८।४।१ ६	०
— २ ८।८।८।४।२ ६	१००।८
— २ ८।८।८।४।४ ६	३००।८
— २ ८।८।८।४।८ ६	७००।८
— २ ८।८।८।४।१६ ६	१५००।८
— २ ८।८।८।४।३२ ६	३१००।८

९।१०।११।१२। १३।१४। १५।१६। १८।२०। २२।२४।२६।२८।३०।३२। ३६।४०।४४।४८। ५२।५६।६०।६४।७२। ८०।८८। ९६।१०४।११२।१२८। १४४।१६०।१७६।१९२।२०८।२२४। २४०। २५६। सद्भावात्।तानि सर्वगुणहान्याद्युत्तरधनानि इमानि—

	२– ८।४।१	० १०० ।८
१– ६ ८।८	२– ८।४।२	३०० ।८
१– ६ ८।८	२– ८।४।४	७०० ।८
१– ६ ८।८	२– ८।४।८	१५०० ।८
१– ६ ८।८	२– ८।४।१६	३१०० ।८
१– ६ ८।८	२– ८।४।३२	
१– ६ ८।८ ६		

उत्तरधनमें ऊपरकी गुणहानियोंको उत्तरधन अधिक-अधिक होता जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मी धनं संकलिसल्पडुगुमदें तें दोडे प्रथमपंक्तियं अन्तधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर-भजियमें दु गुणसंकलितधनमं तंदोडिनितक्कु ८।८।८।४।६।३ (२ / ६) मुत्तरधनमं संकलिसुवडे ऋणमनिक्किदल्लदे संकलिसल्बारदप्पुदरिदं द्विचरमगुणहान्युत्तरधनप्रमित १००।८। मं सर्व्वत्र-नानागुणहानिगळोळु गुणहानिप्रतिविक्कि संकलिसिदोडुत्तरधनमिनितक्कुं। ६३००।८। ऋणंगळुं नानागुणहानिमात्रद्विचरमगुणहान्युत्तरधनप्रमितमक्कु। १००।८।६। मिन्तुक्त मूरुं राशिगळु यथाक्रमदिदमिन्तिप्पुवु। ८।८।८।४।६३।६।३००।८।१००।८।६। (२ / ६) ई मूरुं राशिगळं समयप्रबद्धदिदं प्रमाणिसिदोडिन्तिरत्तिप्पुवु। संदृष्टि :—

आदि	उत्तर	ऋण
८।८।८।४ / ६३००।६	६।३।६३००८ / ६३००।	१००।८।६ / ६३००।
(१ २) स ० ८।८।८।४ / १०० ६	स ०।८	स ०।८।६ / ६३

इल्लियपर्वात्तित शतषट्कविधानदिदं

इदं संकलयति–अत्र प्रथमपंक्तौ अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादिना संकलितायां आदिधनमेतावत् ८।८ (१–) ८।४।६३ (२– / ६) द्वितीयपंक्तौ सर्वत्र द्विचरमगुणहान्युत्तरधनप्रमितं १००।८ ऋणं प्रक्षिप्य संकलितायामुत्तर-धनमियत्। ६३००।८। तानि ऋणानि एतावंति १००।८।६। उक्तराशयः त्रयः क्रमेण अमी—

(१– २–) ८ ८।८ ४।६३ / ६ आदिधनं	उत्तरधनं ६३००।८	तद्‌ णं १०० ८।६

समयप्रबद्धेन प्रमाणिता एवं—

(१– २–) ८ ८।८।४।६३ / ६३००।६	६३०० ८ / ६३००	१००।८।६ / ६३००
(१– २–) स ० ८ ८।८।४ / १०० ६	स ० ८	स ० ८।६ / ६३

इस प्रकार अन्तिम गुणहानि पर्यन्त दोनों पंक्तियोंमें दूना-दूना प्रमाण रखकर तथा उन दोनों पंक्तियोंके एक-एक स्थानका प्रमाण मिलानेपर तथा पहले हुई गुणहानियोंका सर्व-द्रव्य मिलानेपर जो प्रमाण हो उतना-उतना त्रिकोण रचनामें पंक्तियोंका जोड़ होता है। यह जोड़ इस प्रकार जानना।

९।१९।३०।४२।५५।६९।८४।१००।११८।१३८।१६०।१८४।२१०।२३८।२६८। ३००। ३३६। ३७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमधनमिदु स ७।८।८।४ (१ २ ; ८।३।) अधिकरूपं पार्श्वदोळु स्थापितमिदु स ७।८।८।४ (२ ; ३ ; ८।१) स ७।८।४।१ (२ ; ३ ; ८।३)

उभयत्रोपरिस्थितद्विरूपं स्वस्वाधः स्थापिसि

८।८।४ — ३ ८।३।	८ ४ १ — ३ ८।३
स ७ ८।२ — ३ ८।३।	स ७।२ — ३ ८।३।

प्रथमद्विकमं केळगेयुं मेगेयुं त्रिगुणिसियलिल नाल्कु रूपंकोंडु मेलिक्किययपर्वात्ततमिदु ८।४ (३।३) विशेषमिदनु स ७।८।२ (८।३।३।३) परितनपार्श्वदोळु स ७।८।४ (८।३। ३) यिदरोळु कूडल्पडुगुमन्तु कूडुत्तविरलु इनि

अत्र शतषट्कविधानेन अपवर्तितं प्रथमधनमिदं—स ७ ८ ८ ४ (१—२— ; १— ; ८।३।३)। अधिकरूपं पार्श्वे स्थाप्यं

स ७।८।८।४ (२— ; १— ; ८।३।३) | स ७ ८ ४ (२— ; १— ; ८।३।३) उभयत्र उपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः स्थाप्यं—

स ७ ८।८।४ १— ८ ३।३	स ७ ८।४।१ १— ८।३।३
स ७ ८।२ १— ८।३।३	स ७।२ १— ८।३।३

प्रथमद्विकं स ७ ८।२ (१— ; ८।३।३) अघ[1] उपर्यपि त्रिभिः संगुण्य रूपषट्के रूपचतुष्टयं स्वीकृत्य स्वोपरितमराशौ

४२०।४६८।५२०।५७६।६३६।७००।७७२।८५२।९४०। १०३६। ११४०। १२५२। १३७२। १५००। १६४४। १८०४।१९८०।२१७२।२३८०।२६०४।२८४४।३१००। ३३८८। ३७०८। ४०६०। ४४४४। ४८६०। ५३०८। ५७८८।६३००।

विशेषार्थ—त्रिकोण रचनामें अड़तालीस पंक्तियाँ हैं उन सबका जोड़ ऊपर दिया है। पहली पंक्तिमें प्रथम गुणहानिका अन्तिम निषेक नौ है उसका जोड़ नौ है। दूसरी पंक्तिमें

१. ब उपर्यधः त्रि।

तक्कुमिवरोळ् स ७ । ८ । १४ द्वितीयद्विकमनिद स ७ । २ नोंभत्तरिदं केळगेयुं मेगेयुं गुणिसि-
८।३ ३ । ३ ८।३ । ३

यवरोळु पदिनाल्कुरूपुगळं कोंडु कूडुत्तं विरलु इनितक्कु स ७ । ८।३ । १४ मिदनपवर्त्तिसिदोडिदु ।
८ । ३ २१

स ७ । १४ मत्तं पदिनाल्कु रूपं कळेदुळिद ८।३ । ३ । ३ । शेषमिदु स ७ ४ यिदनेकरूपा-
२१
गु ३ २१

संख्येयभागमं । ७ । तंदु भागहारदोळेकरूपहीनत्वमनवगणिसि पदिनाल्कुरूपुगळनिंपवत्तेळरोळप-

वर्त्तिसिदोडेकरूपार्द्धमक्कु । २ मिदरोळु साधिकमं माडि २ दिदं । ऋणमिदु ८ । ६ व तु-
६३

स ७ ८ । ८ । ४ त्रिभिः समच्छिन्ने स ७ ८ । ८ । ३ । ४ निक्षिप्य स ७ ८ । ८ । ३ । ४ अपवर्तिते एवं
८ । ३ । ३ ८ ३ । ३ । ३ १— ८ ३ । ३ । ३

स ७ । ८ । ४ शेषमिदं स ७ ८ । २ उपरितनपार्श्वे स ७ ८ ४ निक्षिप्तं तदिदं स ७ ८ १४ द्वितीयद्विकात्
३ । ३ ८ ३ । ३ । ३ ८ ३ ३ ८ ३ ३ ३

स ७ २ उपर्यधो नवगुणितात् स ७ १८ तद्गृहीतचतुर्दशरूपैर्युतं स ७ । ८ । ३ । १४ अपवर्तितं स ७ १४
८ । ३ । ३ ८ । ३ । ४ । ९ ८ ३ २७ २७

पुनर्भागहारे एकरूपहीनत्वमवगणय्य चतुर्दशभिरपवर्तितमेकरूपार्धं स्यात् स ७ । १ इदं चतुर्दशरूपापनीतशेषेण

चौ और दस है उसका जोड़ उन्नीस है। उसमें ग्यारह जोड़नेपर तीसरी पंक्तिका जोड़ तीस होता है। उसमें बारह जोड़नेपर चौथी पंक्तिका जोड़ बयालीस होता है। इस तरह पूर्व-पूर्वकी पंक्तिके जोड़में आगे-आगेका एक-एक निषेक जोड़नेसे आगे-आगेकी पंक्तिका जोड़ आता जाता है। अन्तिम पंक्तिमें सब अड़तालीस निषेक होनेसे उसका जोड़ त्रेसठ सौ है।

इन सब पंक्तियोंके जोड़ोंको जोड़नेपर त्रिकोण रचनाका जोड़ होता है। यह जोड़ इकहत्तर हजार तीन सौ चार ७१३०४ होता है। सो यह सब जोड़ किंचित् न्यून डेढ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण जानना। गुणहानि आयामका प्रमाण आठ है। उसको ड्योढ़ा करनेपर बारह हुए। उसे त्रेसठ सौसे गुणा करनेपर पचहत्तर हजार छह सौ हुए। किन्तु यहाँ इकहत्तर हजार तीन सौ चार ही है। इससे गुणकारमें किंचित् न्यून कहा है।

जैसे अंक संदृष्टिमें कहा है वैसे ही अर्थ संदृष्टि द्वारा भी जानना। कन्नड़ तथा तदनुसारी संस्कृत टीकामें अर्थसंदृष्टि और अंकसंदृष्टि द्वारा जोड़नेका विधान विस्तारसे कहा है। उससे समझ लेना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपदिंदमिन्तुटक्कु प १ । छे व छे ‍ —— अपवर्त्तिसिदोडेसंख्यातपल्यवर्गशलाकाप्रमित-
छे व छे । प
व
मक्कु । व १ । मिदरोळु किंचिदूनं माडि । व १–। प्रथमधन मिदरोळु स ० । ८ । ४ गुणहान्यष्टा-
९
दशैकभागमं ऋणमनिविक स ० । ८ । ९ अपवर्त्तिसि गुणहान्यर्द्धमं तंदु उत्तरधनदोळेकगुण-
१८
हानियोळु कूडुत्तं विरलु द्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुववरोळु किंचिदूनपल्यसंख्यातवर्ग-
शलाकाराशियं साधिकं माडिद गुणहान्यष्टादशैकभागमात्रद्वितीयऋणदोळु साधिकं माडि स ० ८।१
१८
किंचिदूनमं माडिदोडे जीवप्रदेशंगळोळु सर्व्वदा सत्वरूपदिनिर्द्द कर्म्मप्रदेशंगळु किंचिदून द्वयर्द्ध-
गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळु सर्व्वस्थित्यनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळं नोडलुमनंतगुणितंगळेंबरि-

---

। २
स ० । ४ एकरूपासंख्यातैकभागेन स ० । १ साधिकीकृत्य स ० १ ऋणेऽस्मिन् स ० । ८ । ६ वस्तुत
१— ० ६३
८ । ३ २७ २
ईदृशे स ० प १ अपवर्तिते संख्यातवर्गशलाकामात्रे स ० व १ अपनयेत् स ० । १ –। प्रथमधने स ० ८ ४
—० ९
छे व छेप
०
छे व छे
गुणहान्यष्टादशैकभागं स ० । ८ । १ ऋणं निक्षिप्य स ० । ८ । ९ अपवर्त्य उत्तरधने एकगुणहानौ निक्षिप्ते
१८ १८
द्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धाः स्युः । एते किंचिदूनपल्यसंख्यातवर्गशलाकाधिकगुणहान्यष्टादशैकभागद्वितीयऋणेन
।
स ० ८ । १ किंचिदूनिता एकजीवप्रदेशेषु सर्वदा सत्त्वस्थितकर्मप्रदेशाः किंचिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमय-
१८

इस प्रकार किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्मोंकी सत्ता जीवके सदा पायी जाती है। सो गुणहानि आयामके समयोंके प्रमाणको ड्योढ़ा करके उसमें-से पल्यकी संख्यात वर्गशलाका प्रमाण अधिक गुणहानि आयामका अठारहवाँ भाग घटाकर जो शेष रहे उससे समयप्रबद्धको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने कर्म परमाणु जीवके सदा रहते हैं। इसीसे सब स्थिति सम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे कर्म प्रदेश अनन्तगुणे हैं।

जैसे प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध बँधता है। उसी प्रकार एक समयप्रबद्ध प्रतिसमय उदयरूप होकर खिरता है, सो एक समयमें एक समयप्रबद्धका खिरना कैसे होता है, यह कहते हैं—

वर्तमान विवक्षित समयमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा काल ही पूरा हुआ हो और एक भी निषेक न खिरा हो उसका तो पाँच सौ बारह रूप प्रथम निषेकका ही उदय होता है। शेष निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आवेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यल्पडुवबेंदु पेळल्पट्टुदु। यिंतु प्रदेशबंधं सांगमागि पेळल्पट्टुदनंतरं चतुर्व्विधबंधमं पेळ्दु प्रकृत्युदयप्रकरणमं पेळलुपक्रमिसि प्रथमदोळु गुणस्थानदोळु पेळल्वेडि केलवुप्रकृतिगळ्गे उदयनियमगुणस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

आहारं तु पमत्ते तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से।
सम्मं वेदगसम्मे मिच्छदुगयदेव आणुदओ ॥२६१॥

आहारस्तु प्रमत्ते तीर्थं केवलिनि मिश्रकं मिश्रे। सम्यक्त्वं वेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृग्द्वयासंयतेष्वेवानुपूर्व्व्योदयः॥

तु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नचतुर्व्विधबंधस्वरूपनिरूपणानंतरं मत्ते प्रमत्ते प्रमत्तसंयतनोळु आहारः आहारकशरीरतदंगोपांगनामकर्म्मद्वयोदयमक्कुं। केवलिनि केवलिगळोळे तीर्थं तीर्थकरनामकर्म्मोदयमक्कुं। मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोळे मिश्रं मिश्रकर्म्मोदयमक्कुं।

प्रबद्धमात्राः स ० १२—सर्वस्थित्यनुभागबंधाध्यवसायस्थानेभ्योऽनंतगुणा इति ज्ञातव्यं॥ २६०॥ एवं प्रदेशबंधं प्ररूप्य इदानीमुदयप्रकरणमुपक्रमते—

तु पुनः चतुर्विधबंधनिरूपणानंतरं गुणस्थानेषु उदयनियममाह—आहारकशरीरतदंगोपांगोदयः प्रमत्त-

जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधाकाल पूरा होकर एक समय हुआ हो और जिसका एक निषेक पहले खिर गया हो उसका चार सौ अस्सी रूप दूसरा निषेक वर्तमान समयमें उदयमें आता है। शेष छियालीस निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आवेंगे। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा काल और दो समय हुए हों तथा दो निषेक पूर्वमें खिर चुके हों उसका चार सौ अड़तालीस रूप तीसरा निषेक वर्तमान समयमें खिरता है। शेष पैंतालीस निषेक आगामीमें क्रमसे खिरेंगे। इसी तरह क्रमानुसार जिस-जिस समयप्रबद्धका बन्ध पहले-पहले हुआ है उसका पिछला-पिछला निषेक वर्तमान कालमें उदय आता है। शेष निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आते हैं। अन्तमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधाकाल और सैंतालीस समय हुए हों तथा जिसके सैंतालीस निषेक पूर्वमें उदयमें आ चुके हों उसका अन्तिम निषेक नौ वर्तमानमें उदयमें आता है। उसका कोई निषेक शेष नहीं रहा। उससे पहले जो समयप्रबद्ध बँधे थे उनके सर्वनिषेक इसी क्रमसे पूर्वमें खिर चुके। अतः उनसे कोई प्रयोजन नहीं रहा। इस प्रकार वर्तमान विवक्षित एक समयमें पाँच सौ बारहसे लेकर नौ तक सब निषेक एक समयमें उदयमें आते हैं। ये सब मिलकर एक समयप्रबद्ध होता है। इस प्रकार एक-एक समयमें समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु खिरते हैं और एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु नवीन बँधते हैं। तथा किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध सत्तामें रहते हैं। जैसे अंकसंदृष्टि द्वारा कथन किया है वैसे ही अर्थसंदृष्टि द्वारा जानना। इसीसे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे कर्म परमाणु अनन्तगुणे कहे हैं॥२६०॥ प्रदेशबन्धके साथ बन्धका निरूपण समाप्त होता है।

आगे उदयका निरूपण करते हैं—

चार प्रकार बन्धका कथन करनेके अनन्तर गुणस्थानोंमें उदयका नियम कहते हैं—

आहारक शरीर और आहारक अंगोपांगका उदय प्रमत्त गुणस्थानमें ही होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदकसम्यग्दृष्टौ वेदकसम्यग्दृष्टियोळु, वेदकसम्यग्दृष्टिसामान्यग्रहणदिंदमसंयतादि नाल्कुं गुणस्थानंगळगे ग्रहणमक्कुं । सम्यक्त्वसहचरितत्वदिदं । सम्यक्त्वप्रकृतिगं सम्यक्त्वव्यपदेशमक्कुमदु कारणमागि असंयतादिनाल्कुं गुणस्थानदोळे सम्यक्त्वप्रकृत्युदतमक्कुं ।

मिथ्यादृग्द्वचासंयतेष्वेव मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि यें ब मूरुं गुणस्थानंगळोळे आनुपूर्व्योदयः आनुपूर्व्यनामकर्म्मोदयमक्कुमी प्रकृतिगळगी गुणस्थानंगळोळल्लन्यत्र गुणस्थानांतरंगळोळुदयमिल्लें बो नियममरियल्पडुगु–।

मनंतरं मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टचसंयतसम्यग्दृष्टिगळें बो मूरुं गुणस्थानंगळोळे आनुपूर्व्योदयमें ब नियममप्पुदरिदं सासादनसम्यग्दृष्टियोळु नारकानुपूर्व्याद्यानुपूर्व्य चतुष्कोदयप्रसंगमादोडे विशेषमं सासादनंगे पेळदपरु :—

णिरयं सासाणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू ।
मिच्छादिसु सेसुदओ सगसगचरिमोत्ति णायव्वो ॥२६२॥

नरकं सासादनसम्यग्दृष्टिर्न्न गच्छतीति च न तस्य नारकानुपूर्व्यं । मिथ्यादृष्टयादिषु शेषोदयः स्वस्वचरमपर्य्यन्तं ज्ञातव्यः ॥

नरकं नरकगतियं सासादनसम्यग्दृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिजीवं न गच्छतीति च पुगनें दिंतु न तस्य नरकानुपूर्व्यं सासादननोळानरकानुपूर्व्यनामकर्म्मोदयमिल्लमदक्के नियममो सूत्रमेयक्कुमुळिदंतेल्ला प्रकृतिगळगुदयं मिथ्यादृष्टयादिचतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु स्वस्वचरमपर्य्यंतं तंतम्मुदयगुणस्थानंगळ चरमपर्य्यन्तं ज्ञातव्यः ज्ञातव्यमक्कुं ॥

संयते एव । तीर्थोदयः केवलिन्येव । मिश्रप्रकृत्युदयः सम्यग्मिथ्यादृष्टावेव । सम्यक्त्वप्रकृत्युदयः वेदकसम्यग्दृष्टावेव असंयतादिचतुर्गुणस्थानेषु । आनुपूर्व्योदयः मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेष्वेव अन्यत्र तेषामुदयाभावात् ॥२६१॥
आनुपूर्व्योदयं पुनर्विशेषयति—

नरकगतिं सासादनसम्यग्दृष्टिर्न गच्छति इति हेतोः तस्य सासादनस्य नारकानुपूर्व्योदयो नास्ति । शेषसर्वप्रकृत्युदयः मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानेषु स्वस्वोदयस्थाने चरमसमयपर्यंतं ज्ञातव्यं ॥ २६२ ॥

तीर्थंकर प्रकृतिका उदय सयोगकेवली और अयोगकेवलीके ही होता है। मिश्र मोहनीयका उदय सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है। सम्यक्त्व मोहनीयका उदय असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें वेदक सम्यग्दृष्टीके ही होता है। आनुपूर्वीका उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थानोंमें ही होता है अन्य गुणस्थानोंमें इनका उदय नहीं होता ॥२६१॥

आनुपूर्वीके उदयके विषयमें विशेष नियम कहते हैं—

सासादन सम्यग्दृष्टि मरकर नरकगतिको नहीं जाता, इस कारणसे सासादन सम्यग्दृष्टिके नरकानुपूर्वीका उदय नहीं होता। शेष सब प्रकृतियोंका उदय मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें अपने-अपने उदय स्थानके अन्तिम समय पर्यन्त जानना चाहिए ॥२६२॥

विशेषार्थ—इस उदय प्रकरणमें भी व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय तीन प्रकारसे कथन किया है। जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही हो उन प्रकृतियोंका उस गुणस्थानके अन्त तक उदय जानना और उससे ऊपरके गुणस्थानोंमें उनका अनुदय–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पक्षांतरोक्तक्रममनंगीकरिसि पेळ्दपरु :—

दसचउरिगि सत्तरसं अट्ठय तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्कएक्कदुगदुग चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविही ॥२६३॥

दश चतुरेक सप्तदशाष्ट च तथा पंच चैव चत्वारः। षट् षडेक द्विद्वि चतुर्द्दशैकान्नत्रिंशत्त्रयोदशोदयविधिः॥

अभेदविवक्षेयिनुदय प्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरड १२२ प्पुववरोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु दश पत्तु १० चतुः सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु नाल्कु ४। मिश्रगुणस्थानदोळु एक ओंदु १। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु सप्तदश पदिनेळु १७। देशसंयतगुणस्थानदोळु अष्ट च एंटु ८। प्रमत्तगुणस्थानदोळु पंच अय्दु ५। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु चत्वारः नाल्कु ४। अपूर्व्वकरणस्थानदोळु षट् आरु ६। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु एक ओंदु १। उपशांतकषायगुणस्थानदोळु द्वि एरडु २। क्षीणकषायगुणस्थानदोळु द्वि चतुर्द्दश एरडुं २। पदिनाल्कु १४। सयोगि केवलियोळु

अथ गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिं पक्षांतरक्रमेणाह—

अभेदविवक्षया उदयप्रकृतिषु द्वाविंशत्युत्तरशते उदयविधिः उदयव्युच्छित्तिः उक्तगुणस्थानादुपर्युदयाभावः। स मिथ्यादृष्टौ दश। सासादने चतस्रः। अस्मिन् पक्षे एकेंद्रियस्थावरद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियनामकर्मणां मिथ्यादृष्टावेव उदयच्छेदकथनात्। मिश्रे एका, असंयते सप्तदश, देशसंयतेऽष्टौ, प्रमत्ते पंच, अप्रमत्ते चतस्रः, अपूर्वकरणे षट्, अनिवृत्तिकरणे षट्, सूक्ष्मसांपराये एका, उपशांतकषाये द्वे, क्षीणकषाये द्वे चतुर्दश च,

---

उदयका अभाव जानना। तथा जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका उदय और जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही हो उस गुणस्थानकी उदय प्रकृतियोंमें-से उसी गुणस्थानमें व्युच्छिन्न हुई प्रकृतियोंका प्रमाण जानना। इसमें इतना विशेष है कि यदि कोई प्रकृति ऊपरके गुणस्थानमें उदयमें आनेवाली है और विवक्षित गुणस्थानमें उसका उदय नहीं है तो उसे उदयमें-से घटा देना चाहिए। और यदि पहले गुणस्थानमें जिसका उदय न था और विवक्षित गुणस्थानमें उसका उदय हो तो उसे उदयमें मिला देना चाहिए। यह तो हुई उदयकी बात। जितनी प्रकृतियोंका मूलमें उदय कहा हो उनमें-से विवक्षित गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका उदय कहा हो, उनसे शेष जो प्रकृति रहें उनका उस विवक्षित गुणस्थानमें अनुदय जानना इस प्रकार व्युच्छित्ति, उदय और अनुदयका स्वरूप जानना ॥२६२॥

आगे गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति पक्षान्तर अर्थात् यतिवृषभाचार्यके मतानुसार कहते हैं—

अभेद विवक्षासे उदय प्रकृतियाँ एक सौ बाईस हैं। उनके उदयकी अवधिको उदयव्युच्छित्ति कहते हैं। अर्थात् जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही है, उनका उदय उसी गुणस्थान पर्यन्त होता है उससे ऊपर उनका उदय नहीं होता।

सो मिथ्यादृष्टिमें दसकी और सासादनमें चारकी व्युच्छित्ति जानना। क्योंकि इनके मतानुसार एकेन्द्रिय, स्थावर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, और चौइन्द्रिय नामकर्मकी उदयव्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें कही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकान्नत्रिंशत् ओंदुगुंदे मूवत्तु २९। अयोगिकेवलियोळु त्रयोदश पदिमूरु १३। यिन्तु प्रकृतिगळुदयविधानमवक्कु–। मितुक्तप्रकृतिगळगे तत्तद्गुणस्थानचरमदोळुदयव्युच्छित्तियेंबुदर्त्थमो पक्षदोळु एकेंद्रियजाति नामकर्म्ममुं स्थावरनामकर्म्ममुं द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियजातिनामकर्म्मंगळुमेंबी प्रकृतिपंचकोदयं सासादनसम्यग्दृष्टियोळिल्लेकेंदोडे आप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टियोळक्कुमप्पुदरिंदं। उपरितनगुणस्थानेषूदयाभाव उदयव्युच्छित्तिरिति उपरितनगुणस्थानदोळुदयाभावमक्कुमप्पोडा प्रकृतिगळगे केळगणगुणस्थानदोळुदयक्के विद्यमानत्वदिदमुदयव्युच्छित्तियेंब व्यपदेशमक्कुं। सयोगिकेवलिगुणस्थानदोळेकान्नत्रिंशत्प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियेतेंदोडे पक्षदोळु नानाजीवापेक्षेयिदं सदसद्वेद्यंगळुदय सद्भावदिदमोंदक्कं व्युच्छित्तियिल्लप्पुदरिंद मोंदुगुंदे मूवत्तु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमदु कारणमागि अयोगिकेवलियोळु येकतरोदयमागुत्तं विरलु तत्कडदोळु पदिमूरु प्रकृतिगळुदय मक्कुमितागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळु नूरपदिनेळु ११७। अनुदय प्रकृतिगळु तीर्त्थमुमाहारद्वयमुं मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेंबी अय्दुं प्रकृतिगळप्पुवु ५। सासादनसम्यग्दृष्टियोळु नरकानुपूर्व्यसहितमागि पत्तोंदु प्रकृतिगळकूडिदनुदय प्रकृतिगळु पदिनारप्पुवु १६। उदयप्रकृतिगळु नूरारु १०६। मिश्रगुणस्थानदोळु शेषानुपूर्व्यत्रितयमुमनंतानुबंधिचतुष्कं गूडिदेळुं प्रकृतिगळु सहितमागि अनुदयप्रकृतिगळिप्पत्त मूरप्पुववरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं तेगेदुदयदोळु कूडिदोडनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदय प्रकृतिगळु नूरु १००। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियं तेगदनुदयंगळोळु कूडिदोडिप्पत्तमूरवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमनानुपूर्व्यचतुष्टयमुमं तेगेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिदोडे अनुदयंगळु पदिनेंदु १८। उदय-

सयोगकेवलिन्येकान्नत्रिंशत् कुतः सदसद्वेद्योदययोर्नानाजीवापेक्षया एकस्यापि व्युच्छित्त्यभावात्। अयोगकेवलिनि त्रयोदश। एवं सति मिथ्यादृष्टावुदयः सप्तदशोत्तरशतं। अनुदयः तीर्थाहारकद्वयमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतयः पंच। सासादने नारकानुपूर्व्यं न इत्येकादश मिलित्वा अनुदयः षोडश, उदयः षडुत्तरशतं। मिश्रेऽनुदयः

आगे मिश्रमें एक, असंयतमें सतरह, देशसंयतमें आठ, प्रमत्तमें पाँच, अप्रमत्तमें चार, अपूर्वकरणमें छह, अनिवृत्तिकरणमें छह, सूक्ष्म साम्परायमें एक, उपशान्त कषायमें दो, क्षीण कषायमें दो और चौदह, तथा सयोग केवलीमें उनतीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। क्योंकि सयोग केवलीमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे सातावेदनीय और असातावेदनीयमें-से एककी भी व्युच्छित्ति नहीं होती। अयोगकेवलीमें तेरहकी व्युच्छित्ति होती है।

१. इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदय एक सौ सतरह। तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीयका उदय न होनेसे अनुदय पाँचका।

२. सासादनमें उदय एक सौ छह। क्योंकि मिथ्यात्वमें दसकी व्युच्छित्ति हुई और नरकानुपूर्वीका उदय न होनेसे ५ + १० + १ = सोलहका अनुदय।

३. मिश्रमें उदय सौ का। यहाँ आनुपूर्वीका उदय नहीं होता। तथा मिश्रमोहनीयका उदय होता है। अतः सासादनमें अनुदय सोलह और उदय व्युच्छित्ति चार तथा तीन आनुपूर्वीका अनुदय, सब मिलकर १६ + ४ + ३ = २३ हुई। उनमेंसे मिश्रमोहनीय उदयमें आयी। अतः शेष बाईसका अनुदय रहा।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

प्रकृतिगळु नूर नाल्कु १०४। देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळु प्रकृतिगळकूडिदनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तय्दु ३५। उदयप्रकृतिगळ् एण्भत्तएळु ८७। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु येंटुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तमूरवरोळु आहारकद्वितयमं तेगेदुदयंगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तोंदु ४१। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तोंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तारु ४६। उदयप्रकृतिगळु एप्पत्तारु ७६। अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळय्वत्तु ५०। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तेरडु ७२। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळय्वत्तारु ५६। उदयप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानदोळारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तेरडु ६२। उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोळेकप्रकृतिगूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तमूरु ६३। उदयप्रकृतिगळय्वत्तोंभत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तय्दु ६५। उदयप्रकृतिगळय्वत्तेळु ५७। सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेण्भत्तोंदव-रोळु तीर्त्थंकरनामकर्म्ममं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळेण्भत्तु ८०। उदयप्रकृति-गळु नाल्वत्तेरडु ४२। अयोगिकेवलिगुणस्थानदोळोंदु गुंदे मूवत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नूरोंभत्तु १०९। उदयप्रकृतिगळु पदिमूरु १३॥ यितुक्तोदयव्युच्छित्युदयानुदयप्रकृतिगळ्गे मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदं संदृष्टिः—

शेषानुपूर्व्यत्रयेण अनंतानुबंधिचतुष्कं मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदयाद्द्वाविंशतिः। उदयः शतं। असंयतेऽनुदयः मिश्रप्रकृतिर्मिलित्वा सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयादष्टादश। उदयश्चतुरुत्तरशतं। देशसंयते सप्तदश मिलित्वा अनुदयः पंचत्रिंशत्। उदयः सप्ताशीतिः। प्रमत्तेऽष्टौ मिलित्वाऽनुदयः आहारकद्वयोदयादेकचत्वारिंशत्। उदय एकाशीतिः। अप्रमत्ते पंच मिलित्वा अनुदयः षट्चत्वारिंशत्। उदयः षट्सप्ततिः। अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा अनुदयः पंचाशत्। उदयो द्वासप्ततिः। अनिवृत्तिकरणे षण्मिलित्वा अनुदयः षट्पंचाशत्। उदय षट्षष्टिः।

---

४. असंयतमें एक सौ चारका उदय है क्योंकि यहाँ चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्व मोहनीयका उदय है अतः ये चार उदयमें आ गयीं और मिश्रमोहनीयकी मिश्रमें ही व्युच्छित्ति हो गयी। अतः अनुदयमें अठारह रहीं। २२+१=२३-५=१८।

५. देशसंयतमें उदय सतासीका। क्योंकि असंयतमें १८ का अनुदय था और सत्तरह-की व्युच्छित्ति हुई। अतः दोनों मिलकर १७+१८=३५ पैंतीसका अनुदय रहा।

६. प्रमत्तमें उदय इक्यासीका और अनुदय इकतालीस; क्योंकि देशसंयतमें पैंतीसका अनुदय और आठकी व्युच्छित्ति हुई तथा यहाँ आहारकद्विका उदय है अतः ३५+८=४३-२=४१ रहीं।

७. अप्रमत्तमें उदय छिहत्तर और अनुदय छियालीस, क्योंकि प्रमत्तमें अनुदय इकतालीसका और व्युच्छित्ति पाँच की। दोनों मिलकर छियालीस हुई।

८. अपूर्वकरणमें उदय बहत्तर और अनुदय पचास का, क्योंकि अप्रमत्तमें अनुदय छियालीस और व्युच्छित्ति चार मिलकर पचास हुई।

९. अनिवृत्तिकरणमें उदय छियासठ और अनुदय छप्पन; क्योंकि अपूर्वकरणमें छहकी व्युच्छित्ति हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	१०	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	२९	१३
उ	११७	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१३
अ	५	१६	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	१०९

उदयप्रकृतिगळ्गुदीरणेयुटप्युदरिंदमुदीरणारचनेयोळु प्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतमुदयव्युच्छित्ति-उदयानुदयप्रकृतिगळ्गमुदीरणाव्युच्छित्त्युदीरणानुदीरणाप्रकृतिगळगं विशेषमिल्ल। प्रमत्तगुणस्थानदोळे मनुष्यायुष्यसदसद्वेद्यंगळें ब मूरुं प्रकृतिगळ्गुदीरणेयुंटु। अदु कारणमागियप्रमत्तगुणस्थानदोळेप्पत्तरुमुदीरणाप्रकृतिगळोळा मूरुं प्रकृतिगळं कळेदनुदीरणाप्रकृतिगळोळ्कूडिदोडनुदीरणाप्रकृतिगळु नाल्वत्तो भत्तु ४९। उदीरणाप्रकृतिगळेप्पत्तमूरु ७३। अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदीरणा-प्रकृतिगळय्वत्तेमूरु ५३। उदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तो भत्तु ६९। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडिदनुदीरणाप्रकृतिगळय्वत्तो भत्तु ५९। उदीरणाप्रकृतिगळु अरुवत्तमूरु ६३। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु आरुगूडिदनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तैदु ६५। उदीरणाप्रकृति-

सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयो द्वाषष्टिः उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः त्रिषष्टिः। उदयः एकान्नषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचषष्टिः उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगकेवलिनि षोडश संयोज्य अनुदयः तीर्थकरत्वोदयादशीतिः उदयः द्वाचत्वारिंशत्। अयोगकेवलिनि एकान्नत्रिंशन्मिलित्वा अनुदयः नवोत्तरशतं। उदयः त्रयोदश।

उदीरणारचनायां तु प्रमत्तगुणस्थानपर्यंतं उदयानुदयव्युच्छित्तय एव उदीरणानुदीरणाव्युच्छित्तयः किंतु मनुष्यायुःसदसद्वेद्यानां उदीरणा प्रमत्ते एवास्ति तेन अप्रमत्तेऽनुदीरणा एकान्नपंचाशत्, उदीरणा त्रिसप्ततिः। अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा अनुदीरणा त्रिपंचाशत्, उदीरणा एकोनसप्तति अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदीरणा एकोनषष्टिः। उदीरणा त्रिषष्टिः। सूक्ष्मसाम्पराये षट् संयोज्य अनुदीरणा पंचषष्टिः,

१०. सूक्ष्म साम्परायमें उदय साठका क्योंकि अनिवृत्तिकरणमें छहकी व्युच्छित्ति हुई। अतः अनुदय बासठका।

११. उपशान्त कषायमें उदय उनसठ और अनुदय तिरसठ, क्योंकि सूक्ष्म साम्परायमें एककी व्युच्छित्ति हुई।

१२. क्षीण कषायमें उदय सत्तावन और अनुदय पैंसठ;, क्योंकि उपशान्त कषायमें दो की व्युच्छित्ति हुई।

१३. सयोगीमें उदय बयालीस, अनुदय अस्सी; क्योंकि क्षीणकषायमें सोलहकी व्युच्छित्ति हुई और एक तीर्थंकर प्रकृति उदयमें आ गयी। अत: ६५ + १६ = ८१ − १ = ८० रहीं।

१४. अयोग केवलीमें उदय तेरह, अनुदय एक सौ नौ; क्योंकि सयोगीमें उनतीसकी व्युच्छित्ति हुई अत: ८७ + २९ = १०९ हुई।

उदीरणाकी रचनामें प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त तो उदय, अनुदय और व्युच्छित्तिके समान ही उदीरणा, अनुदीरणा और उदीरणा व्युच्छित्ति जानना। किन्तु मनुष्यायु, सातावेदनीय, असातावेदनीयकी उदीरणा प्रमत्तमें ही होती है। अतः अप्रमत्तमें अनुदीरणा उनचासकी और उदीरणा तिहत्तरकी जानना। यहाँ चारकी व्युच्छित्ति होनेसे अपूर्वकरणमें उदीरणा उनहत्तर की और अनुदीरणा तिरपन। यहाँ छह की व्युच्छित्ति होनेसे अनिवृत्तिकरणमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळय्वत्तेळु ५७। उपशांतकषायगुणस्थानदोळो ंदुगूडिदरुवत्तारु प्रकृतिगळनुदीरणाप्रकृतिगळु ६६। उदीरणाप्रकृतिगळय्वत्तारु ५६। क्षीणकषायगुणस्थानदोळु येरडु गूडिदनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तें दु ६८। उदीरणाप्रकृतिगळय्वत्तनाल्कु ५४। सयोगिकेवलिगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडिदनुदीरणाप्रकृतिगळु एण्भत्तनाल्कु ८४। अवरोळु तीर्थमों दं कळेदुदीरणा प्रकृतिगळोळु कूडिदोडनुदीरणाप्रकृतिगळेण्भत्तमूरु ८३। उदीरणाप्रकृतिगळु ओं दुगुंदे नाल्वत्तु ३९। अयोगिगुणस्थानदोळु ओं दु गुंदे नाल्वत्तु प्रकृतिगळ्कूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२। उदीरणाप्रकृतिगळिल्ल। यितुक्तोदीरणा त्रिभंगिसंदृष्टि :—

०।०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्युच्छि	१०	४	१	१७	८	८	४	६	६	१	२	१६	३९	०
उदी	११७	१०६	१००	१०४	८७	८१	७३	६९	६३	५७	५६	५४	३९	०
अनु	५	१६	२२	१८	३५	४१	४९	५३	५९	६५	६६	६८	८३	१२२

अनंतरं भूतवल्याचार्य्यपक्षदोळुदयप्रकृतिगळ्गे मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

पण णवइगि सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव।
इगि दुग सोलस तीसं बारस उदये अजोगंता ॥२६४॥

पंच नवैक सप्तदशाष्ट पंच च चतुः षट् षडेवैक द्वि षोडश त्रिंशद्द्वादशोदयेऽयोग्यंताः ॥

उदीरणा सप्तपंचाशत्। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदीरणा षट्षष्टिः, उदीरणा षट्पंचाशत्। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदीरणा अष्टषष्टिः, उदीरणा चतुःपंचाशत्। सयोगकेवलिनि षोडश संयोज्य अनुदीरणा तीर्थकृत्वोदीरणात् त्र्यशीतिः, उदीरणा एकान्नचत्वारिंशत्। अयोगिनि एकान्नचत्वारिंशतं संयोज्य अनुदीरणा द्वाविंशत्युत्तरशतं। उदीरणा नहि ॥ २६३ ॥ अथ भूतबल्याचार्यादिप्रवाह्योपदेशेनाह—

उदीरणा तरेसठ, अनुदीरणा उनसठ। यहाँ छहकी व्युच्छित्ति होनेसे सूक्ष्म साम्परायमें उदीरणा सत्तावन, अनुदीरणा पैंसठ। यहाँ एककी व्युच्छित्ति होनेसे उपशान्त कषायमें उदीरणा छप्पन, अनुदीरणा छियासठ। यहाँ दोकी व्युच्छिति होनेसे क्षीणकषायमें उदीरणा चौवन, अनुदीरणा अड़सठ। यहाँ सोलहकी व्युच्छित्ति होनेसे और सयोगकेवलीमें तीर्थंकरके उदयमें आनेसे उदीरणा उनतालीस और अनुदीरणा तिरासी।

सयोगकेवलीमें उनतालीसकी व्युच्छित्ति होनेसे अयोगकेवलीमें उदीरणा नहीं है। केवल अनुदीरणा ही होती है उसकी संख्या एक सौ बाईस है ॥२६३॥

अब आचार्य भूतबलीके उपदेशानुसार उदय व्युच्छित्ति कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदये स्वभावाभिव्यक्तिरुदयस्तस्मिन् स्वकार्य्यमं माडिकर्म्मरूपपरित्यागमुदयमें बुदक्कुमंतप्प कर्म्मोदयदोळु भूतबल्याचार्य्यादिप्रवाह्योपदेशदोळु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतमुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळुमय्दु-। मो भत्तु-। मों दु। पदिनेळ-। में टु। मय्दुं। नाल्कु-। मारु-। मारु-। मों दु-। मेरडुं। पदिनारुं। मूवत्तुं। पन्नेरडुं यथाक्रमदिंदमप्पुववाउवेंदोडें दु गाथासूत्रंगळिदं पेळदपरु :—

मिच्छे मिच्छादावं सुहुमतियं सासणे अणेइंदी ।
थावरवियलं मिस्से मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा ।।२६५।।

मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वातापं सूक्ष्मत्रयं सासादनेनंतानुबंध्येकेंद्रियं स्थावरविकलं मिश्रे मिश्रं च चोदयव्युच्छिन्नाः ।।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यात्वमातपनामकर्म्ममुं सूक्ष्मनामकर्म्ममुमपर्य्याप्तनामकर्म्ममुं साधारणनामकर्म्ममुमें बी अय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु। ५।। सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु अनंतानुबंधिचतुष्टयमुमेकेंद्रियजातिनामकर्म्ममुं स्थावरनामकर्म्ममुं स्थावरनामकर्म्ममुं द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियजातिनामकर्म्मंगळुमितोंभत्तुप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु। ९।।

मिश्रगुणस्थानदोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियों दुदयव्युच्छित्तियक्कुं। १ ।।

स्वभावाभिव्यक्तिः उदयः, स्वकार्यं कृत्वा कर्मरूपपरित्यागो वा। तस्मिन् अंता व्युच्छित्तयः गुणस्थानेषु क्रमशः पंच नव एका सप्तदश अष्टौ पंच चतस्रः षट् षट् एका द्वे षोडश त्रिंशत् द्वादश स्युः ।। २६४ ।। ताः काः ? इति चेदष्टगाथासूत्रैराह—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने मिथ्यात्वमातपः सूक्ष्ममपर्याप्तं साधारणं चेति पंच प्रकृतयः उदयतो व्युच्छिन्ना भवंति। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेंद्रियं स्थावरं द्वींद्रियं त्रींद्रियं चतुरिंद्रियं चेति नव। मिश्रे सम्यग्मिथ्यात्वमित्येका ।। २६५ ।।

अपने अनुभागरूप स्वभावकी अभिव्यक्तिको उदय कहते हैं। अपना कार्य करके कर्मरूपताको छोड़नेका नाम उदय है। और उदयके अन्तको उदय व्युच्छित्ति कहते हैं। अर्थात् जिस गुणस्थानमें जिस प्रकृतिकी उदय व्युच्छित्ति कही है उसके ऊपर उसका उदय नहीं होता। वह उदय व्युच्छित्ति गुणस्थानोंमें क्रमसे पाँच, नौ, एक, सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और बारह प्रकृतियोंकी होती है ।।२६४।।

आगे अठारह गाथाओंके द्वारा उन प्रकृतियोंको कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ये पाँच प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जाति, ये नौ प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। मिश्रमें एक सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति उदयसे व्युच्छिन्न होती है ।।२६५।।

विशेषार्थ—पूर्वपक्षानुसार मिथ्यात्वमें दसकी और सासादनमें चारकी उदय व्युच्छित्ति कही थी। यहाँ मिथ्यात्वमें पाँचकी और सासादनमें नौकी व्युच्छित्ति कही है। पूर्वपक्षानुसार एकेन्द्रिय, स्थावर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियका उदय मिथ्यादृष्टिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयदे बिदियकसाया वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ।
मणुवतिरियाणुपुव्वी दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥२६६॥

असंयते द्वितीयकषायवैक्रियिकषट् नरकदेवायुः। मानवतिर्य्यगानुपूर्व्व्यं दुर्भगानादेयाऽयशः ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभकषायंगळुं वैक्रियिकशरीरतदंगोपांगद्वयमुं नरकगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वयमुं, देवगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वयमुं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं मनुष्यानुपूर्व्यमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं दुर्भगनाममुमनादेयनाममुमयशस्कीर्त्तिनाममुमेंब पदिनेळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु १७।

देसे तदियकसाया तिरियाउज्जोवणीच तिरियगदी।
छट्टे आहारदुगं थीणतियं उदयवोच्छिण्णा ॥२६७॥

देशसंयते तृतीयकषायास्तिर्य्यगायुरुद्योतनीचैर्गोत्रतिर्य्यग्गति षष्ठे आहारद्विकं स्त्यानगृद्धित्रयमुदयव्युच्छिन्नाः ॥

देशसंयतगुणस्थानदोळु प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभकषायंगळुं तिर्य्यगायुष्यमुमुद्योतनाममुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यग्गतियुमें बेंटुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु। ८। षष्ठगुणस्थानवर्त्तिप्रमत्तसंयतनोळु आहारकशरीरतदंगोपांगद्वयमुं स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलात्रयमुमितय्दुं प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु ।५॥

अपमत्ते सम्मत्तं अंतिमतियसंहदी अपुव्वम्मि।
छच्चेव णोकसाया अणियट्टीभागभागेसु ॥२६८॥

अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमत्रयसंहननमपूर्व्वे। षट् चैव नोकषायानिवृत्तेर्भागभागेषु ॥

असंयते प्रत्याख्यानावरणचतुष्के वैक्रियिकशरीरतदंगोपांगनरकदेवगतितदानुपूर्व्याणि नरकदेवायुषी मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये दुर्भगमनादेयमयशस्कीर्तिश्चेति सप्तदश ॥ २६६ ॥

देशसंयते प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं तिर्यगायुरुद्योतो नीचैर्गोत्रं तिर्यगायुश्चेत्यष्टौ। षष्ठगुणस्थाने आहारकशरीरतदंगोपांगस्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाश्चेति पंच व्युच्छिन्नाः इति मध्यदीपकत्वादन्यत्रापि ग्राह्यं ॥ २६७ ॥

ही होता है सासादनके नहीं होता। यहाँ सासादनमें भी इनका उदय माना है, यही अन्तर है ॥२६५॥

असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये सतरह उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२६६॥

देशसंयतमें प्रत्याख्यानावरण चार, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र, और तिर्यंचगति ये आठ तथा छठे गुणस्थानमें आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रमत्तगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमर्द्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननत्रितयमुमें बी नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु ।४।। अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सेगळें बीयारे नोकषायंगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु ।६।।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु प्रकृतिविनाशनक्रममनपेक्षिसि सवेद भागेयुमवेद भागेय क्रोधादिककषाय भागेगळोळं ।

वेदतियकोहमाणं मायासंजलणमेव सुहुमंते ।
सुहुमो लोहो संते वज्जं णारायणारायं ॥२६९॥

वेदत्रयक्रोधमानमायासंज्वलनमेव सूक्ष्मांते । सूक्ष्मो लोभः शान्ते वज्रनाराचनाराचं ॥

सवेदभागेयोळु वेदत्रयं स्त्रीपुन्नपुंसकंगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ३ ।। अवेदभागेयोळु यथाक्रमदिदं क्रोधसंज्वलनमुं मानसंज्वलनमुं मायासंज्वलनमुमें बीयारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ६ । अल्लिये बादरलोभोदयव्युच्छित्तियक्कुं ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानचरमसमयदोळु सूक्ष्मकृष्टिगत लोभकषायोदयव्युच्छित्तियक्कुं । १ ।। उपशांतकषायगुणस्थानदोळु वज्रनाराचनाराचशरीरसंहननद्वयमुदयव्युच्छित्तियप्पुवु । २ ॥

खीणकसायदुचरिमे णिद्दापयला य उदयवोच्छिण्णा ।
णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्मि ॥२७०॥

क्षीणकषायद्विचरमे निद्रा प्रचला चोदयव्युच्छिन्ने । ज्ञानांतरायदशकं दर्शनचत्वारि चरमे ॥

अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतिः अर्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननानि चेति चतस्रः । अपूर्वकरणे हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साः षट् । अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने प्रकृतिविनाशक्रममपेक्ष्य सवेदावेदभागयोः ॥ २६८ ॥

सवेदभागे वेदत्रयं, अवेदभागे क्रमेण क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं चेति षट् । बादरलोभोऽपि तत्रैव । सूक्ष्मसांपरायचरमसमये सूक्ष्मकृष्टिगतलोभः । उपशांतकषाये वज्रनाराचनाराचसंहनने द्वे ॥ २६९ ॥

प्रचलाप्रचला ये पाँच उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। यहाँ आया 'व्युच्छिन्न' शब्द मध्यदीपक होनेसे आगे भी लगा लेना चाहिए ॥२६७॥

अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृति, अर्धनाराच, कीलित और असम्प्राप्तसृपाटिका संहनन ये चार तथा अपूर्वकरणमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग और अवेद भाग हैं ॥२६८॥

सवेद भागमें तीनों वेदोंकी व्युच्छित्ति होती है और अवेद भागमें क्रमसे क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन और मायासंज्वलनकी व्युच्छित्ति होनेसे अनिवृत्तिकरणमें छहकी व्युच्छित्ति होती है तथा बादर लोभकी व्युच्छित्ति भी अनिवृत्तिकरणमें ही होती है। सूक्ष्म साम्परायके अन्तमें सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभकी व्युच्छित्ति होती है। उपशान्त कषायमें वज्रनाराच और नाराचसंहननकी व्युच्छित्ति होती है ॥२६९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षीणकषायगुणस्थानद्विचरमसमयदोळु निद्राप्रचलगळेरडुं व्युच्छित्तिगळप्पुवु । २ ॥ चरमसमयदोळु ज्ञानावरणपंचकमंतरायपंचकदर्शनावरणचतुष्टयमेंब पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । १४ ॥

तदियेक्कवज्जणिमिणं थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं ।
संठाणं वण्णागुरुचउक्कपत्तेय जोगम्मि ॥२७१॥

तृतीयैकवज्रनिर्म्माणं स्थिरशुभस्वरगत्यौदारिकतैजसद्विकं । संस्थानं वर्णागुरुचतुष्कं प्रत्येकं योगिनि ॥

सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु वेदनीयदोळोंदुं वज्रऋषभनाराचसंहननमुं निर्म्माणनाममुं स्थिरास्थिरद्विकमुं शुभाशुभद्विकमुं सुस्वरदुस्वरद्विकमुं प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्विकमुं औदारिकशरीरतदंगोपांगनामद्विकमुं तैजसकार्म्मणशरीरद्विकमुं संस्थानषट्कमुं वर्णचतुष्कमुं अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कमुं प्रत्येकशरीरमुमिन्तु मूवत्तु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ३० ॥

तदिएक्कं मणुवगदी पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं ।
जसतित्थं मणुवाऊ उच्चं च अजोगिचरिमम्मि ॥२७२॥

तृतीयैकं मनुष्यगतिः पंचेंद्रियसुभगत्रसत्रिकादेयं । यशस्तीर्थं मनुष्यायुरुच्चं चायोगिचरमे ॥

अयोगिगुणस्थानचरमसमयदोळु वेदनीयद्वयदोळोंदुं मनुष्यगतियुं पंचेंद्रियजातियुं सुभगनाममुं त्रसबादरपर्य्याप्तत्रयमुमादेयनाममुं यशस्कीर्त्तिनाममुं तीर्थंकरनाममुं मनुष्यायुष्यमुमुच्चैर्गोत्रमुमिन्तु पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । १२ ॥ सर्व्वत्रसंर्व्वकर्म्मंगळिगे नानाजीवापेक्षे-

---

क्षीणकषायगुणस्थानद्विचरमसमये निद्राप्रचले उदयव्युच्छिन्ने । चरमसमये पंचज्ञानावरणपंचांतरायचतुर्दर्शनावरणानि ॥ २७० ॥

सयोगकेवलिगुणस्थाने वेदनीयैकतरं वज्रवृषभनाराचं निर्माणं स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुस्वरदुःस्वरौ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती औदारिकतदंगोपांगे तैजसकार्मणे संस्थानषट्कं वर्णचतुष्कं अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासाः प्रत्येकशरीरं चेति त्रिंशत् ॥ २७१ ॥

अयोगिगुणस्थानचरमसमये वेदनीयैकतरं मनुष्यगतिः पंचेंद्रियं सुभगं त्रसबादरपर्याप्तानि आदेयं

क्षीणकषायके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचला उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं । अन्तिम समयमें पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दर्शनावरण उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२७०॥

सयोगकेवली गुणस्थानमें दोनों वेदनीयमें-से कोई एक वेदनीय, वज्रवृषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, तैजस, कार्मण, छह संस्थान, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात उच्छ्वास, प्रत्येकशरीर इन तीसकी व्युच्छित्ति होती है ॥२७१॥

अयोगी गुणस्थानके अन्त समयमें दोनों वेदनीयमें-से एक, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र ये बारह व्युच्छिन्न होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यिदं व्युच्छित्तियं पेळ्दु सयोगायोगरोळं तदिएक्कं तदियेक्कमेंदितु आवुदों दु कथनमदेकजीवं प्रति साताऽसातंगळाऽन्यतरोदयव्युच्छित्तियागुत्तं विरलु सातदोडनागलसातदोडनागलि मेणु तीसं बारस एंबुदक्कुं । सातासातोदयंगळगे नानाजीवापेक्षेयिदं सयोगकेवलियोंदक्कं व्युच्छित्ति यिल्लेंदितल्लि सयोगायोगिगळोळुगुतीसतेरसुदयविहो येंदितु पेळल्पट्टुदु ॥ किं. । इंतागुत्तं विरलु नानाजीवंगळं कुरुत्तु तदुभयोदयसंभवमप्पुदरिंदं प्राक्तनगुणस्थानवंते सयोगकेवलियोळमेकजीवं प्रति आ एरडर परावर्त्तनोदयशंके यावनोर्व्वनोळक्कुमदं निवारिसल्वेडियं पेळ्दपरु :—

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्मि जदो ।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ॥२७३॥

नष्टौ च रागद्वेषौ इंद्रियज्ञानं च केवलिनि यतस्तेन तु सातासातजसुखदुःखं नास्तींद्रियजं केवलिनि ॥

सयोगकेवलिभट्टारकनोळु रागद्वेषौ नष्टौ रागद्वेषंगळेरडुं नष्टंगळेकेंदोडे रागहेतुगळ् मायाचतुष्कमुं लोभचतुष्कमु वेदत्रितयमुं हास्यरति येंब त्रयोदशप्रकृतिगळं, द्वेषहेतुगळप्प क्रोधचतुष्कमुं मानचतुष्कमुमरतिशोकभयजुगुप्सेगळेंब द्वादशप्रकृतिगळं निरवशेषमागि क्षपिसल्पट्टुवप्पुदरिंदं यिंद्रियज्ञानं च नष्टं यिंद्रियज्ञानमुं नष्टमादुदेकेंदोडे मतिश्रुतज्ञानंगळु परोक्षंगळं क्षायोपशमिकंगळप्पुदरिंदं युगपत्सकलार्थावभासिकेवलज्ञानोपयोगमुळ्ळ केवलियोळु परोक्षज्ञानंगळं क्षायोप-

---

यशस्कीर्तिः तीर्थकरत्वं मनुष्यायुः उच्चैर्गोत्रं चेति द्वादश एता व्युच्छित्तयो नानाजीवापेक्षयैवोक्ताः । सयोगायोगयोस्तु एकं जीवं प्रति असाते साते वा व्युच्छिन्ने त्रिंशत् द्वादश नानाजीवं प्रति उभयच्छेदाभावात् एकान्नत्रिंशत् त्रयोदश ज्ञातव्याः ॥ २७२ ॥ अथ पूर्वगुणस्थानवत् सयोगेऽप्येकजीवं प्रति तदुभयोदयो भविष्यतीति शंकां निराकरोति—

यतः घातिकर्मविनाशात् सयोगकेवलिनि रागहेतुमायाचतुष्कलोभचतुष्कवेदत्रयहास्यरतीनां द्वेषहेतुक्रोधचतुष्कमानचतुष्कारतिशोकभयजुगुप्सानां च निरवशेषक्षयात् रागद्वेषौ नष्टौ । युगपत्सकलावभासिनि

हैं। यह व्युच्छित्ति नाना जीवोंकी अपेक्षा कही है। सयोगी अयोगी गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा साता या असाताकी व्युच्छित्ति कही है। अतः उनमें तीस और बारहकी व्युच्छित्ति एक जीवकी अपेक्षा कही है। नाना जीवोंकी अपेक्षा उनतीस और तेरहकी व्युच्छित्ति है ॥२७२॥

पूर्वके गुणस्थानोंकी तरह सयोगकेवलीमें भी एक ही जीवके साता और असाता दोनोंका उदय होगा, इस शंकाको दूर करते हैं—

क्योंकि सयोगकेवलीके घातिकर्मोंका विनाश हो गया है अतः रागके कारण चार प्रकारकी माया, चार प्रकारका लोभ, तीन वेद, हास्य-रतिका तथा द्वेषके कारण चार प्रकारका क्रोध, चार प्रकारका मान, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका पूर्णरूपसे क्षय होनेसे उनके राग और द्वेष नष्ट हो चुके हैं। तथा एक साथ सब पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानके प्रकट होनेपर परोक्ष तथा क्षायोपशमिक रूप मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सम्भव नहीं हैं ॥२७२॥

अतः केवलीके इन्द्रियज्ञान भी नष्ट हो चुका है। इस कारणसे केवलीके साता और असाताके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सुख-दुःख नहीं होता; क्योंकि वह सुख-दुःख इन्द्रिय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शमिकंगळुपयोग विरुद्धमप्पुदरिंदं यतः आवुदों दु घातिकर्म्मविनाशमाद कारणदिदं। तेन अदु कारणदिदं। तु मत्ते सातासातजसुखदुःखं सातासातोदयजनितसुखमुं दुःखमुं नास्ति इल्लेकेंदोडे इंद्रियजं इंद्रियजत्वात् तत्सातासातवेदोदयजनितसुखदुःखमिंद्रियजनितमप्पुदरिंदं। सहकारिकारण-मोहनीयाभावदिदमा सातासातोदयं विद्यमानवादोडे स्वकार्य्यकारियल्लेंबुदत्थं ॥

अनंतरमा इंद्रियजनितसुखदुःखकारणमों दुमिल्लेंबुदक्कुपपत्तियं तोरिदपरु :—

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स ।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि ॥२७४॥

समयस्थितिको बंधः सातस्योदयात्मको यतस्तस्य। तेनासातस्योदयः सातस्वरूपेण परिणमति ॥

यतस्तस्य सातस्य बंधः समयस्थितिकः आवुदों दुकारणदिदमा सातवेदनीयबंधं समयस्थिति-कमप्पुददरिंदं उदयात्मकमेयक्कुमदु कारणमागि सयोगकेवलियोळसातवेददुदयं सातस्वरूपदिदं परिणमिसुगुमेकेंदोडे विशिष्ट विशुद्धनप्प सयोगभट्टारकनोळुदयिसुत्तं त्रिदर्द असातवेदमनंतगुणहीन-शक्तिकमुं स्वसहायरहितमुमप्पुदरिनव्यक्तोदयमक्कुमदुवुमनंतगुणानुभागयुततात्कालिकोदयात्मक सातबंधमुंटप्पुदरिंदं तत्स्वरूपदिदं परिणमिसुगुमप्पु। यत्तलानुमसातस्वरूपदिदं सातमुदयिसुगु-मागळु सातक्के द्विसमयस्थितिकत्वमक्कुमन्यथा असातक्कये बंधप्रसंगमक्कुं ॥

मतिश्रुतयोः परोक्षयोः क्षायोपशमिकयोरसंभवात् इंद्रियज्ञानं च नष्टं तेन कारणेन तु-पुनः सातासातोदयजं सुखदुःखमपि नास्ति। कुतः ? तस्येंद्रियजत्वात्। सहकारिकारणमोहनीयाभावे तदुदयो विद्यमानोऽपि न स्वकार्य-कारीत्यर्थः ॥ २७ ॥ तस्य तदकारणत्वे उपपत्तिमाह —

यतस्तस्य केवलिनः सातवेदनीयस्य बंधः समयस्थितिकः ततः उदयात्मक एव स्यात्। तेन तत्रासातोदयः सातस्वरूपेण परिणमति। कुतः ? सातस्वरूपे परिणमनस्य विशिष्टशुद्धे तस्मिन् असातस्य अनंतगुणहीनशक्तित्व-सहायरहितत्वाभ्यां अव्यक्तोदयत्वात्। बध्यमानसातस्य च अनंतगुणानुभागत्वात् तथात्वस्यावश्यंभावात्। न च तत्र सातोदयोऽसातस्वरूपेण परिणमतीति शक्यते वक्तुं द्विसमयस्थितिकत्वप्रसंगात् अन्यथा असातस्यैव बंधः प्रसज्यते ॥ २७४ ॥

जन्य होता है। इसका अर्थ यह है कि वेदनीयका सहकारी कारण मोहनीय कर्म है। उसके अभावमें वेदनीयका उदय होते हुए भी वह अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं होता ॥२७३॥

वेदनीयका उदय अपना कार्य करनेमें क्यों असमर्थ है, इसमें उपपत्ति देते हैं—

क्योंकि केवलीके सातावेदनीयका बन्ध एक समयकी स्थितिको लिए हुए होता है अतः वह उदयरूप ही है। इस कारणसे केवलीमें असाताका भी उदय सातारूपसे परिणमन करता है। क्योंकि केवलीमें विशेष विशुद्धता होनेसे असाता वेदनीयकी अनुभाग शक्ति अनन्तगुणी हीन हो जाती है तथा मोहकी सहायता भी नहीं रहती। इससे असातावेदनीय-का उदय अव्यक्त रहता है। तथा बँधनेवाले सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा होता है। क्योंकि केवलीके विशुद्धि विशेष है और विशुद्धतासे अनुभाग अधिक होता है। इसीसे असाताका भी उदय सातारूपसे परिणमन करता है। किन्तु साताका उदय असातारूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि ॥२७५॥

एतेन कारणेन तु सातस्यैव तु निरंतरोदयः। तेनासातनिमित्ताः परीषहा जिनवरे न संति ॥

इदु कारणदिदं तु मत्ते सातबंधमुदयात्मकमप्पुदरिदं सातकेये निरंतरोदयमक्कुमदरिंदम सातदुदयजनितैकादश परीषहंगळु क्षुत् पिपासा शीत उष्ण दंश मशक चर्य्या शय्या वध रोग तृणस्पर्शमलमें बिवु जिनवरे न संति जिनस्वामियोळु घटियिसवु। अंतादोडेकादश जिने 'वेदनीये शेषा' यें दु असातवेदनीयोदयसंभूतैकादश परीषहंगळु जिनरोळें तें दोडे घादिव्व वेयणीयं मोहस्स बळेण घाददे जीवं यें बो वाक्यदिदं मोहनीयकर्म्मबलसहायरहित वेदनीयं फलवंतमल्लें दितुमेकादशपरीषहंगळुं जिणवरे णत्थि यें बी वाक्यविशेषदिदमुं निश्चयनयदिदं जिनरोळों दुं परीषहमिल्लों दुंदु कारणभूतासातवेदनीयोदयसद्भावदिदमुपचारदिदं कार्य्यरूपमप्प परीषहास्तित्वं ॥

अनंतरमभेदविवक्षेयिदमुदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२। मिथ्यादृष्टियागि चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु संभवंगळु पेळल्पडुगुमदें तें दोडे —मिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळु नूर हदिनेळु ११७। अनुदयंगळु तीर्त्थमुमाहारद्वयमु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमें दिवय्दु ५। सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्तिगळय्दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पत्तुं नरकमं सासादनं पुगनप्पुदरिदं नरकानुपूर्व्यमुं सहितमागि पन्नों दु ११। उदयप्रकृतिगळु नूर पन्नों दु १११। मिश्रगुणस्थानदोळों भत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तुं शेषानुपूर्व्यंगळु मूरुं कूडिप्पत्त-

---

एतेन उक्तकारणेन तु पुनः सातस्यैव निरंतरोदयः स्यात्। तेनासातोदयजनिताः परीषहाः क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाख्या जिनवरे न संति। 'एकादश जिने' 'वेदनीये शेषाः' इति सूत्रेणापि कारणे कार्योपचारेणैवोक्तत्वात् मुख्यतस्तेषामभावात्।

अथाभेदविवक्षया उदये द्वाविंशत्युत्तरशतं १२२। तत्र मिथ्यादृष्टावुदयः सप्तदशोत्तरशतं, अनुदयः तीर्थकरत्वाहारकद्वयसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतयः पंच। सासादने पंच नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अनुदयः

परिणमन करता है, ऐसा कहना शक्य नहीं; क्योंकि ऐसा कहनेसे साताका स्थितिबन्ध दो समय मानना होगा। अन्यथा असाताका ही बन्ध प्राप्त होगा ॥२७४॥

उक्त कारणसे केवलीके निरन्तर साताका ही उदय रहता है। अतः असाताके उदयसे उत्पन्न होनेवाली क्षुधा, प्यास, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल परीषह केवलीमें नहीं होतीं। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी जो 'एकादश जिने' 'वेदनीये शेषाः' ऐसा कहा है वह कारणमें कार्यका उपचार करके ही कहा है। मुख्यरूपसे उनका केवलीमें अभाव है।

अभेद विवक्षासे उदय प्रकृतियाँ एक सौ बाईस हैं। उनमेंसे मिथ्यादृष्टिमें उदय एक सौ सतरह ११७, अनुदय तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति पाँच। सासादनमें उक्त पाँचमें पाँच व्युच्छित्ति और एक नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय ग्यारहका ११, उदय एक सौ ग्यारहका। और उदय व्युच्छित्ति नौ। अतः ११+९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूररोळ् सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं तेगवुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पतेरडु २२। उदयप्रकृतिगळ् नूरु १०० ॥ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळों दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तमूररोळ् नाल्कानुपूर्व्यंगळं सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पदिनें दु १८। उदयप्रकृतिगळु नूर नाल्कु १०४ ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तय्दु ३५। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु एंटुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तमूरवरोळु आहारकद्वितयमं तेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तोंदु ४१। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तोंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तारु ४६। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६ ॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळ् नाल्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळ् मय्वत्तु ५०। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तेरडु ७२। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळय्वत्तारु ५६। उदयप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळ् आरुगूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तेरडु ६२। उदयप्रकृतिगळ् अरुवत्तु ६०।

उपशांतकषायगुणस्थानदोळों दु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्त मूरु ६३। उदयप्रकृतिगळय्वत्तों भत्तु ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तय्दु ६५। उदयप्रकृतिगळय्वत्तेळु ५७ ॥

सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेण्भत्तों दवरोळु तीर्त्थंकरनामप्रकृतियं तेगदुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलु अनुदयप्रकृतिगळेण्भत्तु ८०। उदयप्रकृतिगळ् नाल्वत्तेरडु ४२ ॥ अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळ् मूवत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळ् नूर पत्तु

एकादश, उदयः एकादशोत्तरशतं। मिश्रेऽनुदयः नव शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् द्वाविंतिः उदयः शतं। असंयतेऽनुदयः एकां निक्षिप्य चतुरानुपूर्व्यसम्यक्त्वप्रकृत्युदयादष्टादश। उदयः चतुरुत्तरशतं। देशसंयतेऽनुदयः सप्तदश मिलित्वा पंचत्रिंशत्। उदयः सप्ताशीतिः। प्रमत्तेऽनुदयोऽष्टौ मिलित्वा आहारद्वयोदयादेकचत्वारिंशत्। उदयः एकाशीतिः। अप्रमत्तेऽनुदयः पंच संयोज्य षट् चत्वारिंशत्। उदयः षट्सप्ततिः। अपूर्वकरणेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य पंचाशत्। उदयः द्वासप्ततिः। अनिवृत्तिकरणेऽनुदयः षट् संयोज्य षट्पंचाशत्। उदयः षट्षष्टिः। सूक्ष्मसांपराये षट् निक्षिप्य अनुदयो द्वाषष्टि, उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्यानुदयस्त्रिषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे निक्षिप्य अनुदयः पंचषष्टिः। उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगकेवलिनि

और शेष तीन आनुपूर्वीका अनुदय तथा सम्यक् मिथ्यात्वका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय बाईस और उदय सौ १००। तथा व्युच्छित्ति एक। असंयतमें चार आनुपूर्वी और सम्यक्त्व मोहनीयका उदय होनेसे अनुदय अठारह, उदय एक सौ चार। यहाँ व्युच्छित्ति सतरहकी होनेसे देशसंयतमें अनुदय पैंतीस और उदय सत्तासी है। यहाँ व्युच्छित्ति आठकी है। अतः प्रमत्तमें ३५ + ८ = ४३ में-से आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय इकतालीस, उदय इक्यासी है। यहाँ व्युच्छित्ति पाँच है। अतः अप्रमत्तमें अनुदय छियालीस और उदय छिहत्तर है। यहाँ व्युच्छित्ति चार है। अतः अपूर्वकरणमें अनुदय पचास और उदय बहत्तर। यहाँ व्युच्छित्ति छह है। अतः अनिवृत्तिकरणमें अनुदय छप्पन, उदय छियासठ। यहाँ व्युच्छिति छह है। अतः सूक्ष्म साम्परायमें अनुदय बासठ, उदय साठ और व्युच्छित्ति एक। अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११०। उदयप्रकृतिगळु पन्नेरडु १२॥ यितुक्तमिथ्यादृष्टयादि चतुर्दशगुणस्थानंगळोळु उदयव्युच्छित्ति उदयानुदयप्रकृतिगळगे यथाक्रमदिदमयोगिकेवलिगुणस्थानपर्य्यन्तं संदृष्टिरचने :—

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

अनंतरमुदयप्रकृतिगळ संख्येयं गुणस्थानंगळोळु पेळ्दपरु :—

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरी ।
छावट्ठि सट्ठि णवसगवण्णास दुदालबारुदया ॥२७६॥

सप्तदशैकादशखचतुःसहितशतं सप्तैकाशीतिः षड्द्विसप्ततिः। षट्षष्टिः षष्टि नव सप्तपंचाशद्द्विचत्वारिंशद्द्वादशोदयाः ॥

मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदं सप्तैकादशशून्यचतुरधिकशतंगळु सप्तैकाधिकाशीतिगळु षड्द्विकोत्तरसप्ततिगळु षट्षष्टियु षष्टियु नवसप्ताधिकपंचाशत्प्रकृतिगळं द्विचत्वारिंशद्द्वादशप्रकृतिगळुदयंगळप्पुवु।

अनंतरमनुदयप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

पंचेक्कारसबावीसट्ठारसपंचतीस इगिछादालं ।
पण्णं छप्पण्णं बितिपणसट्ठी असीदि दुगुणपणवण्णं ॥२७७॥

पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकषट्चत्वारिंशत् पंचाशत् षट्पंचाशत द्वित्रिपंचषष्टयशीतिद्विगुणपंचपंचाशत् ॥

षोडश संयोज्य तीर्थकरस्योदयादनुदयः अशीतिः। उदयः द्वाचत्वारिंशत्। अयोगकेवलिनि त्रिशतं संयोज्यानुदयः दशोत्तरशतं। उदयः द्वादश ॥ २७५ ॥ अमूनुक्तोदयानुदयान् गाथाद्वयेनाह —

मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानेषु यथाक्रमं सप्तदशैकादशशून्यचतुरधिकशतानि सप्तैकाशीतिः षट्द्व्युत्तरसप्ततिः षट्षष्टिः नवसप्ताधिकपंचाशतौ द्विचत्वारिंशत् द्वादश प्रकृतयः उदये भवंति ॥ २७६ ॥

उपशान्त कषायमें अनुदय तिरसठ, उदय उनसठ और व्युच्छित्ति दो। अतः क्षीणकषायमें अनुदय पैंसठ, उदय सत्तावन, व्युच्छित्ति सोलह। किन्तु तीर्थंकरका उदय होनेसे सयोगकेवलीमें अनुदय अस्सी और उदय बयालीस, व्युच्छित्ति तीस। अतः अयोगकेवलीमें अनुदय एक सौ दस और उदय बारह है ॥२७५॥

ऊपर कहे उदय और अनुदयको दो गाथाओंसे कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें क्रमसे एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, एक सौ, एक सौ चार, सतासी, इक्यासी, छिहत्तर, बहत्तर, छियासठ, साठ, उनसठ, सत्तावन, बयालीस और बारह प्रकृतियोंका उदय होता है ॥२७६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळनुदयप्रकृतिगळु यथाक्रमदिदं पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादश पंचोत्तरत्रिंशदेकषडधिक चत्वारिंशत्पंचाशत् षट्पंचाशत् द्वित्रिपंचाधिकषष्टचशीति द्विगुणपंचाधिक पंचाशत्प्रकृतिगळप्पुवु ।

अनंतरमुदयप्रकृतिगळगुदीरणेयं पेळ्दपरु :—

> उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।
> मोत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य ॥२७८॥

उदयस्योदीरणायाश्च स्वामित्वतो न विद्यते विशेषः मुक्त्वा त्रिस्थानं प्रमत्तयोग्ययोगिनां च ॥

उदयक्कमुदीरणेगं स्वामित्वदिदं विशेषमिल्ल । प्रमत्तसयोगायोगिगळ त्रिस्थानमं बिट्टु ई मूरु गुणस्थानंगळोळु विशेषमुंटल्लदन्यत्र सर्व्वगुणस्थानंगळोळु दयक्कमुदीरणेगं स्वामित्वदिदं विशेषमिल्लेबुदत्थं ॥

अनंतरमा त्रिस्थानदोळु विशेषमावुदेंदोडे पेळ्दपरु :—

> तीसं बारस उदयुच्छेदं केवलिणमेगदं किच्चा ।
> सादमसादं च तहिं मणुवाउगमवणिदं किच्चा ॥२७९॥

त्रिंशद्द्वादशोदयोच्छेदं केवलिनोरेकीकृत्य । सातमसातं च तस्मिन्मनुष्यायुष्य चापनीतं कृत्वा ॥

केवलिनोः सयोगायोगकेवलिगळ उदयोच्छेदं उदयव्युच्छित्तियं त्रिंशद्वादश मूवत्तु पन्नेरडुगळ एकीकृत्य कूडि तस्मिन् अदरोळ ४२ । सातमसातं च सातप्रकृतियुमसातप्रकृतियुमं मनुष्यायुष्यं मनुष्यायुष्यकमुमें ब मूरु प्रकृतिगळिदमपनीतं कृत्वा कळेयल्पट्टुदं माडि ३९ ॥

तेषु अनुदयः यथाक्रमं पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकषडधिकचत्वारिंशत्पंचाशत्षट्पंचाशद्द्वित्रि-पंचाधिकषष्टचशीतिद्विगुणपंचपंचाशत्प्रकृतयो भवंति ॥ २७७ ॥ अथोदयप्रकृतीनामुदीरणामाह—

उदयस्य उदीरणायाश्च स्वामित्वाद्विशेषो न विद्यते प्रमत्तयोग्ययोगित्रयं मुक्त्वा अन्यत्र विशेषो नेत्यर्थः ॥ २७८ ॥ तत्र को विशेषः ? इति चेदाह—

सयोगायोगयोः उदयव्युच्छित्ति त्रिंशद्द्वादश एकीकृत्य ४२ तत्र सातासातमनुष्यायूंषि अपनेतव्यानि ३९ ॥ २७९ ॥

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें क्रमसे पाँच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैंतीस, इकतालीस, छियालीस, पचास, छप्पन, बासठ, तिरसठ, पैंसठ, अस्सी और एक सौ दस प्रकृतियोंका अनुदय होता है ॥२७७॥

आगे उदय प्रकृतियोंकी उदीरणा कहते हैं—

उदय और उदीरणाके स्वामीपनेमें कोई अन्तर नहीं है । प्रमत्त, सयोगी और अयोगी इन तीन गुणस्थानोंको छोड़कर अन्य गुणस्थानोंमें उदयके समान ही उदीरणा जानना ॥२७८॥

इन गुणस्थानोंमें विशेषता कहते हैं—

सयोगी और अयोगीमें उदय व्युच्छित्ति क्रमसे तीस और बारह है । उनको एकत्र करके उनमें-से साता, असाता और मनुष्यायु घटाइए ॥२७९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवणिदतिप्पयडोणं पमत्तविरदे उदीरणा होदि ।
णत्थित्ति अजोगिजिणे उदीरणा उदयपयडीणं ॥२८०॥

अपनीतत्रिप्रकृतीनां प्रमत्तविरते उदीरणा भवति। नास्तीत्ययोगिजिने उदीरणा उदयप्रकृतीनां ॥

अयोगिकेवलिजिननोळुदयप्रकृतिगळ्गुदीरणेयिल्लप्पुदरिंदं सयोगायोगिकेवळिगळ मूवत्तुपन्नेरडुमुदयव्युच्छित्तियं कूडि नाल्वत्तेरडरोळु सातासातप्रकृतिगळं मनुष्यायुष्यमुं कळेदु वप्पुदरिदमा कळेदु मूरुं प्रकृतिगळु प्रमत्तसंयतनोळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु। अदु कारणमागि प्रमत्तसंयतनोळेंटु प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु। शेष मूवतोंभत्तु प्रकृतिगळुदीरणे सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळक्कुं। २९ ॥

अप्रमत्तादिगुणस्थानंगळोळामूरुं प्रकृतिगळ्गुदीरणेयिल्लेकेंदोडे प्रमादरहितरप्पुदरिंदं संक्लिष्टरोळल्लदा मूरुं प्रकृतिगळ्गुदीरणे घटिसदप्पुदरिंदमी विशिष्टशुद्धरोळु तदुदीरणेगसंभवमप्पुदरिंदं ॥

अनंतरं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळुदीरणाव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पेळदपरु : –

पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव ।
इगिदुग सोळगुदालं उदीरणा होंति जोगंता ॥२८१॥

पंच नवैकसप्तदशाष्टाष्टौ च चतुः षट्कं षट्चैव। एक द्विकषोडशैकान्नचत्वारिंशदुदीरणा भवंति योग्यंताः ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानमवसानमादत्रयोदशगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदमुदीरणा व्युच्छित्तिप्रकृतिगळु पंच नव एक सप्तदश अष्ट अष्ट चतुः षट्क षट् च एक द्विक षोडश एकान्नचत्वारिंशत् प्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तं विरलुदीरणाप्रकृतिगळुमनु-

अयोगिजिने उदयप्रकृतीनां उदीरणा नास्ति इति तदपनीतप्रकृतित्रयस्य प्रमत्तसंयते व्युच्छित्तिर्भवति ततः कारणात् प्रमत्तेऽष्टौ व्युच्छिद्यंते। शेषैकोनचत्वारिंशदुदीरणा सयोगे एव नाप्रमत्तादिषु तत्त्रयोदीरणास्ति अप्रमत्तादित्वात्। संक्लिष्टेभ्योऽन्यत्र तदसंभवाच्च ॥ २८० ॥ अथोदीरणाव्युच्छित्तिमाह —

सयोगपर्यंतत्रयोदशगुणस्थानेषु यथाक्रमं उदीरणाव्युच्छित्तिः पंचनवैकसप्तदशाष्टाष्टचतुःषट्कषट्कैक-

अयोग केवलीमें उदय प्रकृतियोंकी उदीरणा नहीं होती। इसलिए घटायी हुई तीन प्रकृतियोंकी उदीरणा व्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमें होती है। अतः प्रमत्तसंयतमें आठकी उदीरणा व्युच्छित्ति होती है। बयालीसमें-से तीन घटानेपर शेष रही उनतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणा व्युच्छित्ति सयोगकेवलीमें ही होती है। उन तीनकी उदीरणा अप्रमत्त आदि गुणस्थानोंमें नहीं होती, क्योंकि वे अप्रमत्तादि रूप हैं। इनकी उदीरणा संक्लेश परिणामोंसे होती है, संक्लेश परिणामोंके बिना इनकी उदीरणा नहीं होती ॥२८०॥

आगे उदीरणा व्युच्छित्ति कहते हैं–

मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगी पर्यन्त तेरह गुणस्थानोंमें क्रमसे उदीरणा व्युच्छित्ति पाँच,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीरणा प्रकृतिगळं योजिसल्पडुगुमदेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदीरणाप्रकृतिगळु नूरहदिनेळु ११७। अनुदीरणाप्रकृतिगळु तीर्थमुमाहारकद्विकमुं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतिगळेंब पंचप्रकृतिगळनुदीरणाप्रकृतिगळप्पुवु। ५॥ सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिय दीरणाव्युच्छित्तिगळय्दुगूडिदनुदीरणा प्रकृतिगळु पत्तु। नारकापूर्व्यमुं सहितमागि पन्नोंदु ११। उदीरणाप्रकृतिगळु नूरपन्नोंदु १११॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु ओंभत्तुगूडिदनुदीरणा प्रकृतिगळु इप्पत्तु। शेषानुपूर्व्यंगळु मूरुसहितमागि अनुदीरणाप्रकृतिगळु यिप्पत्तमूरवरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं कळेदुदीरणाप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदीरणा प्रकृतिगळिप्पत्तेरडु २२। उदीरणाप्रकृतिगळु १००॥ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदीरणाप्रकृतिगळिप्पत्तमूरवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमानुपूर्व्यचतुष्कमुमं कळेददीरणाप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदीरणाप्रकृतिगळु पदिनेंटु १८। उदीरणाप्रकृतिगळु नूरनाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळु गूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु मूवत्तय्दु ३५। उदीरणाप्रकृतिगळेंभत्तेळु ८७॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळु सातासातमनुष्यायुष्यं गूडिदुदीरणाव्युच्छित्तिप्रकृतिगळें टु ८॥ देशसंयतनुदीरणाव्युच्छित्तिगळेंटुगूडिदातननुदीरणाप्रकृतिगळु मूवत्तय्दं गूडि नाल्वत्तमूरवरोळु आहारकद्विकमं कळेदुदीरणाप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदीरणाप्रकृतिगळु नाल्वत्तोंदु ४१। उदीरणा-

द्विकषोडशैकान्नचत्वारिंशत्प्रकृतयः स्युः। तस्यां सत्यां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने उदीरणा सप्तदशोत्तरशतं। अनुदीरणा तीर्थकृदाहारकद्विकसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वानि पंच। सासादनेऽनुदीरणा मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्ति नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा एकादश। उदीरणा एकादशोत्तरशतं। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ अनुदीरणा नव शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदीरणाद्द्वाविंशतिः। उदीरणा शतं। असंयते अनुदीरणा एकां निक्षिप्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदीरणादष्टादश। उदीरणा चतुरुत्तरशतं। देशसंयतेऽनुदीरणा सप्तदश संयोज्य पंचत्रिंशत्। उदीरणा सप्ताशीतिः। प्रमत्तेऽनुदीरणा अष्टौ मिलित्वा आहारकद्विकोदीरणादेकचत्वारिंशत्। उदीरणा

नौ, एक, सतरह, आठ, आठ, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह तथा उनतालीस प्रकृतियोंकी होती है।

१. इस प्रकार व्युच्छित्ति होनेपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदीरणा एक सौ सतरह, अनुदीरणा तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति पाँच की।

२. सासादनमें। अनुदीरणा मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पाँच और नरकानुपूर्वीकी यहाँ उदीरणा न होनेसे ५+५+१ मिलकर ग्यारह। उदीरणा एक सौ ग्यारह। व्युच्छित्ति नौ।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उदीरणा होनेसे तथा शेष तीन आनुपूर्वीकी उदीरणा न होनेसे अनुदीरणा ११+९+३=२३−१=बाईस। उदीरणा सौ। व्युच्छित्ति एक।

४. असंयतमें सम्यक्त्व प्रकृति और चारों आनुपूर्वियोंकी उदीरणा होनेसे २२+१= २३−५=अनुदीरणा अठारह। उदीरणा एक सौ चार, व्युच्छित्ति सतरह।

५. देशसंयतमें अनुदीरणा १८+१७=पैंतीस। उदीरणा सत्तासी, व्युच्छित्ति आठ।

६. प्रमत्तसंयतमें आहारकद्विककी उदीरणा होनेसे अनुदीरणा ३५+८=४३−२= इकतालीस। उदीरणा इक्यासी, व्युच्छित्ति आठ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिगळें णभत्तों दु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळें टुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु नाल्वत्तों भत्तु ४९ । उदीरणाप्रकृतिगळें प्पत्त मूरु ७३ ॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळ-य्वत्तमूरु ५३ । उदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तों भत्तु ६९ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु आरुगूडियनु-दीरणाप्रकृतिगळय्वत्तों भत्तु ५९ । उदीरणाप्रकृतिगळरुवत्त मूरु ६३ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान-दोळारुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तय्दु ६५ । उदीरणाप्रकृतिगळें वत्त एळु ५७ ॥ उपशांतकषाय-गुणस्थानदोळु ओं दुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६ । उदीरणाप्रकृतिगळु अय्वत्तारु ५६ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळु येरडुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु अरुवत्तें दु ६८ । उदीरणाप्रकृतिगळ-य्वत्तनाल्कु ५४ ॥ सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळें भत्त-नाल्कवरोळु तीर्त्थमं कळेदुदीरणाप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदीरणाप्रकृतिगळें भत्त मूरु ८३ । उदीरणाप्रकृतिगळु मूवत्तों भत्तु ३९ ॥ अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मूवत्तों भत्तु-गूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ । उदीरणाप्रकृतिगळिल्लुदीरणे ये बुदेने दोडपक्व-पाचनमुदीरणा ये दुदीरणालक्षणमप्पुदरिंदं दीर्घकालदोळल्लदुदयिसदग्रनिषेकंगळ द्रव्यमनपकर्षि-सिको डल्पस्थितिकंगळप्पधस्तननिषेकंगळोळमुदयावळियोळ पुगिसि उदयमुखदिनवर फलमनतु-भविसियनंतरसमयदोळु दितनिषेकं कर्म्मस्वरूपमं त्यजिसि पुद्गलांतररूपदिदं परिणमिसुवंतु माळ्कुमें बुदत्थं ॥

एकाशीतिः । अप्रमत्तेऽनुदीरणा अष्टौ मिलित्वा एकान्नपंचाशत् । उदीरणा त्रिसप्ततिः । अपूर्वकरणेऽनुदीरणा चतस्रो मिलित्वा त्रिपंचाशत् उदीरणा एकान्नषष्टिः । अनिवृत्तिकरणेऽनुदीरणा षट् संयोज्य एकान्नषष्टिः । उदीरणा त्रिषष्टिः । सूक्ष्मसांपराये नुदोरणा षट् संयोज्य पंचषष्टिः । उदीरणा सप्तपंचाशत् । उपशांतकषायेऽनुदीरणा एकां संयोज्य षट्षष्टिः उदीरणा षट्पंचाशत् । क्षोणकषायेऽनुदोरणा द्विसंयोज्य अष्टषष्टिः, उदीरणा चतुःपंचाशत् । सयोगकेवलिन्यनुदीरणा षोडश संयोज्य तीर्थकृदुदोरणात् त्र्यशीतिः, उदीरणा एकान्नचत्वारिंशत् । अयोगकेवलिनि अनुदोरणा एकोन्नचत्वारिंशत् मिलित्वा द्वाविंशत्युत्तरशतं, उदीरणा नास्ति । उदीरणा नाम अपक्वपाचनं दोर्घकाले उदेष्यतोऽग्रनिषेकानपकृष्य अल्पस्थितिकाधस्तननिषेकेषु उदयावल्यां

---

७. अप्रमत्तमें अनुदीरणा ४१ + ८ = उनचास । उदीरणा तिहत्तर । व्युच्छित्ति चार ।

८. अपूर्वकरणमें अनुदीरणा ४९ + ४ = तरेपन । उदीरणा उनसठ । व्युच्छित्ति छह ।

९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदीरणा ५३ + ६ = उनसठ, उदीरणा तिरसठ । व्युच्छित्ति छह ।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें अनुदीरणा ५९ + ६ = पैंसठ, उदीरणा सत्तावन । व्युच्छित्ति एक ।

११. उपशान्त कषायमें अनुदीरणा ६५ + १=छियासठ । उदीरणा छप्पन । व्युच्छित्ति दो ।

१२. क्षीणकषायमें अनुदीरणा ६६ + २=अड़सठ । उदीरणा चौवन । व्युच्छित्ति सोलह ।

१३. सयोगकेवलीमें तीर्थंकर प्रकृतिकी उदीरणा होनेसे अनुदीरणा ६८ + १६ = ८४ − १ = तेरासी । उदीरणा उनतालीस । व्युच्छित्ति उनतालीस ।

१४. अयोगकेवलीमें अनुदीरणा ८३ + ३९ = एक सौ बाईस । उदीरणा नहीं है । उदीरणाका अर्थ है अपक्वपाचन । अर्थात् दीर्घकालमें उदयमें आनेवाले कर्म परमाणुमें-से अग्रिम निषेकोंका अपकर्षण करके, अल्पस्थितिवाले नीचेके निषेकोंमें देकर उदयावलीमें लाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरमुक्तोदीरणानुदीरणा प्रकृतिगळ संख्येयं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपरु :—

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदितियसदरी ।
णवतिण्णिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदालं ॥२८२॥

सप्तदशैकादशखचतुःसहितशतं सप्तैकाशीतिः त्रिसप्ततिर्न्नव त्रिषष्टिः सप्त षट्पंचाशत् चतुःपंचाशदेकान्न चत्वारिंशत् मिथ्यादृष्टयादिसयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानमवसानमाद पदिमूरुंगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदमुदीरणाप्रकृतिगळु सप्तदश एकादश शून्य चतुःसहितशतंगळुं सप्ताशीति-एकाशीतित्रिसप्तति नवषष्टि त्रिषष्टि सप्तपंचाशत् षट्पंचाशत् चतुःपंचाशत् एकान्नचत्वारिंशत्-संख्याप्रमितंगळप्पुवु ॥

पंचेक्कारसबावीसट्ठारस पंचतीस इगिणवदालं ।
तेवण्णेक्कुणसट्ठी पणछक्कड सट्ठि तेसीदी ॥२८३॥

पंचैकादश द्वाविंशत्यष्टादश पंचत्रिंशदेकनव चत्वारिंशत्त्रिपंचाशदेकान्नषष्टि पंच षडष्टषष्टिस्त्र्यशीतिः ॥

मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळु अनुदीरणाप्रकृतिगलु यथाक्रमदिदं पंच एकादश द्वाविंशति अष्टादश पंचत्रिंशत् एकचत्वारिंशत् नवोत्तरचत्वारिंशत् त्रिपंचाशत् एकान्नषष्टि पञ्चषष्टि षट्षष्टि अष्टषष्टि त्र्यशीतिसंख्याप्रमितंगलप्पुवु ।

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
उदीरणा व्यु.	५	९	१	१७	८	८	४	६	६	१	२	१६	३९	०
उदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७३	६९	६३	५७	५६	५४	३९	०
अनुदीरणा	५	११	२२	१८	३५	४१	४९	५३	५९	६५	६६	६८	८३	१२२

दत्त्वा उदयमुखेन अनुभूय कर्मरूपं त्याजयित्वा पुद्गलांतररूपेण परिणामयतीत्यर्थः ॥ २८१ ॥
अथोक्तोदीरणानुदीरणाप्रकृतिसंख्याः गाथाद्वयेनाह—

चतुर्दशगुणस्थानेषु यथाक्रमं सप्तदशैकादशशून्यचतुःसहितशतानि सप्ताशीतिरेकाशीतिस्त्रिसप्ततिर्नवषष्टिः त्रिषष्टिः सप्तपंचाशत्षट्पंचाशच्चतुःपंचाशदेकान्नचत्वारिंशदुदीरणा भवति । पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकचत्वारिंशन्नवोत्तरचत्वारिंशत्त्रिपंचाशदेकान्नषष्टिपंचषष्टिषट्षष्टयष्टषष्टिस्त्र्यशीतिसंख्या च अनुदी-

उदयरूपसे उनको भोगकर, कर्मरूपसे छुड़ाकर अन्य पुद्गलरूपसे परिणमाता है ।

आगे दो गाथाओंसे उदीरणा और अनुदीरणा प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानोंमें क्रमसे एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, एक सौ, एक सौ चार, सतासी, इक्यासी, तिहत्तर, उनहत्तर, तरेसठ, सत्तावन, छप्पन, चौवन, और उनतालीसकी उदीरणा होती है ॥२८२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यितु गुणस्थानदोलुदयत्रिभंगियुमुदीरणात्रिभंगियुं पेळल्पट्टुविन्ननंतरं गत्यादिमार्ग्गणेगळोलुदयत्रिभंगियं पेळलुपक्रमिसि गत्यादिगळोलु पेळ्व क्रमदिं पेळ्दपरु :—

गदियादिसु जोग्गाणं पयडिप्पहुडीणमोघसिद्धाणं ।
सामित्तं णेदव्वं कमसो उदयं समासेज्ज ॥२८४॥

गत्यादिषु योग्यानां प्रकृतिप्रभृतीनामोघसिद्धानां । स्वामित्वं नेतव्यं क्रमशः उदयं समाश्रित्य ॥

गत्यादिमार्ग्गणेगळोळु योग्यंगळप्प प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशंगळ्गे गुणस्थानदोळु पेळ्दु सिद्धंगळप्पुवक्के स्वामित्वमागमोक्तक्रमदिंदमुदयमनाश्रयिसि नडसल्पडुगुमदें तेंदोडे अल्लि मुन्नं परिभाषेयं गाथापंचकदिंदं पेळ्दपरु :—

गदि आणुआउउदओ सपदे भूपुण्णबादरे ताओ ।
उच्चुदओ णरदेवे थीणतिगुदओ णरे तिरिये ॥२८५॥

गत्यानुपूर्व्यायुरुदयः सपदे भूपूर्णबादरे आतपः । उच्चोदयो नरदेवयोः स्त्यानगृद्धित्रयोदयो नरे तिरश्चि ॥

रणा भवति ॥ २८२–८३ ॥ एवं गुणस्थानेषूदयोदीरणात्रिभंगीमुक्त्वा इदानीं गत्यादिमार्गणासु उदयत्रिभंगीं वक्तुमनास्तावद्गत्यादिषु तत्क्रममाह—

गत्यादिमार्गणासु योग्यानां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां गुणस्थानसिद्धानां स्वामित्वमागमोक्तक्रमेणोदयमाश्रित्य नेतव्यं ॥ २८४ ॥ तत्र तावत्परिभाषां गाथापंचकेनाह—

उदयत्रिभंगी रचना

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	अ	अ.
उदी.व्यु.	५	९	१	१७	८	८	४	६	६	१	२	१६	३९	०
उदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७३	६९	६३	५७	५६	५४	३९	०
अनुदीरणा	५	११	२२	१८	३५	४१	४९	५३	५९	६५	६६	६८	८३	१२२

तथा पाँच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैंतीस, इकतालीस, उनचास, तरेपन, उनसठ, पैंसठ, छियासठ, अड़सठ, तथा तेरासीकी अनुदीरणा होती है ॥२८३॥

इस प्रकार गुणस्थानोंमें उदयत्रिभंगी और उदीरणा त्रिभंगी कहकर अब गति आदि मार्गणाओंमें उदयत्रिभंगी कहनेका विचार रखकर प्रथम गति आदिमें उदयका क्रम कहते हैं—

गुणस्थानोंमें सिद्धयोग्य प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागका—स्वामीपना गति आदि मार्गणाओंमें आगमके अनुसार उदयकी अपेक्षा लाना चाहिए ॥२८४॥

प्रथम पाँच गाथाओंसे परिभाषा कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवक्षितभवप्रथमसमयदोळे गत्यानुपूर्व्व्यायुरुदयः विवक्षितगतितदानुपूर्व्व्यं तत्संबंध्यायुष्योदयं सपदे सदृशस्थाने ओम्मों दळेकजीवनोळुदयिसुगुमें बुदर्त्थं । भूपूर्णबादरे आतपः पृथ्वीकायिकबादरपर्य्याप्तकजीवनोळे आतपनामकर्म्मोदयमक्कुं । उच्चोदयो नरदेवयोः उच्चैर्गोत्रकर्म्मोदयं मनुष्यरोळं देवक्कळेनितुभेदमनितरोळमक्कुं । स्त्यानगृद्धित्रयोदयो नरे तिरश्चि स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचलावरणत्रयोदयं मनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोळमुदयिसुगुमितरगतिद्वयदोळुदयमिल्लें बुदर्त्थं । अल्लियुं :—

संखाउगणरतिरिये इंदियपज्जत्तगादु थीणतियं ।
जोग्गमुदेदुं वज्जिय आहारविगुव्वणुट्ठवगे ॥२८६॥

संख्यातायुर्न्नरतिरश्चोरिंद्रियपर्य्याप्तेस्तु स्त्यानगृद्धित्रयं । योग्यमुदेतुं वर्जित्वाहार विकुर्व्वणोत्थापके ॥

तु मत्ते संख्यातवर्षायुष्यरप्प कर्म्मभूमिसंभूतमनुष्यतिर्य्यंचरुगळोळिंद्रियपर्य्याप्तियिंदं मेले स्त्यानगृद्धित्रयमुदयिसल्के योग्यमक्कुमल्लियुं मनुष्यरोळुमाहारकऋद्धियुं वैक्रियिकऋद्धियुमिल्लदरोळे तदुदयमरियल्पडुगुं ।

अयदापुण्णे ण हि थी-संढो वि य धम्मणारयं मुच्चा ।
थीसंढयदे कमसो णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू ॥२८७॥

असंयतापूर्णे न हि स्त्री, षंडोपि च धर्म्मनारकं मुक्त्वा । स्त्रीषंढाऽसंयते क्रमशो नानुपूर्व्व्यं चत्वारि चरम त्रीण्यानुपूर्व्व्याणि ॥

विवक्षितभवप्रथमसमये एव तद्गतितदानुपूर्व्यतदायुष्योदयः सपदे सदृशस्थाने युगपदेवैकजीवे उदेतीत्यर्थः । भूकायिकबादरपर्याप्ते एव आतपनामोदयः उच्चैर्गोत्रोदयो मनुष्ये सर्वदेवभेदे च । स्त्यानगृद्धित्रयोदयो मनुष्ये तिरश्चि च नेतरत्रेत्यर्थः ॥ २८५ ॥ तत्रापि—

तु पुनः संख्यातवर्षायुष्के कर्मभूमिमनुष्यतिरश्चि इंद्रियपर्याप्तेरुपरि स्त्यानगृद्धित्रयमुदययोग्यं । तत्रापि मनुष्ये आहारकर्धिवैक्रियिकर्द्ध्यभावे एव ॥ २८६ ॥

विवक्षित भवके प्रथम समयमें ही उस भव सम्बन्धी गति, आनुपूर्वी और आयुका उदय एक साथ ही एक जीवके होता है और वह समान रूपसे होता है अर्थात् तीनों भी एक ही गति सम्बन्धी होते हैं। जिस गतिका उदय होगा उसी गति सम्बन्धी आयु और आनुपूर्वीका भी उदय होगा। तथा बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवके ही आतप नामकर्मका उदय होता है। उच्चगोत्रका उदय मनुष्य और सब प्रकारके देवोंमें होता है। स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंका उदय मनुष्य और तिर्यंचोंमें होता है, अन्यत्र नहीं होता ॥२८५॥

संख्यात वर्षकी आयुवाले कर्मभूमिया मनुष्यों और तिर्यंचोंमें इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् स्त्यानगृद्धि आदि तीन उदय होनेके योग्य हैं। किन्तु मनुष्योंमें भी आहारकऋद्धि और वैक्रियिकऋद्धिकी उत्थापना करनेके कालमें स्त्यानगृद्धि आदि तीनका उदय नहीं होता ॥२८६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्वृत्यपर्य्याप्तकनप्पऽसंयत सम्यग्दृष्टियोळु स्त्रीवेदोदयं न हि यिल्लेकें दोडा असंयतसम्यग्दृष्टि स्त्रीयागि पुट्टनप्पुदरिदं, मत्तमपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टियोळु षंडोपि च न हि षंडवेदोदयमुमिल्लेकें दोडातं षंडनागियुं पुट्टनप्पुदरिंदमिदुत्सर्ग्गविधियप्पुदरिंदं प्राग्बद्धनरकायुष्यनप्प मनुष्यतिर्य्यंचाऽसंयतसम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वमं विराधिसदे धर्म्मेयोळु नारकनागि पुट्टुगुमप्पुदरिंदमल्लिय घर्म्मेय नारकापर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टियं बिट्टु शेषापर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळोळ् षंडवेदोदयमिल्लवु कारणवागि स्त्रीवेदिगळं षंडवेदिगळुमप्पऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळोळु यथाक्रमदिंदमानुपूर्व्यचतुष्टयमुमं नरकानुपूर्व्यमं कळेदु चरमानुपूर्व्यत्रितयमुमुदयमिल्लेकें दोडानुपूर्व्यमुत्तरभवप्रथमसमयदोळुदयिसुगुमप्पुदरिंदमा कालदोळा स्त्रीवेदोदयमुं नपुंसकवेदोदयमुमुळ्ळ जीवंगळु स्त्रीयुं षंडरुमक्कुमप्पुदरिंदं ॥

इगिविगलथावरचऊ तिरिये अपुण्णो णरे वि संघडणं ।
ओरालदु णरतिरिए वेगुव्वदु देवणेरइये ॥२८८॥

एकविकलं स्थावर चत्वारि तिरश्चि अपूर्ण नरे पि संहननमौदारिकद्वयं नरतिरश्चोर्व्वैक्रियिकद्वयं देवनारकयोः ॥

एकेंद्रियजातिनामकर्म्मम् द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियजातिनामत्रितयमुं स्थावरसूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणचतुष्कमुमेंबी प्रकृतिगळुदयं तिर्य्यग्गतिजरप्प तिर्य्यंचरोळेयुदयिसुगुं । अपर्य्याप्तनामकर्म्मं मनुष्यगतिजरप्प मनुष्यरोळमुदयिसुगुं । संहननषट्कमुमौदारिकद्वयमुं मनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोळमुदयिसुगुं । वैक्रियिकद्वयं सुररोळं नारकरोळमुदयिसुगुं ।

निर्वृत्त्यपर्याप्तासंयते स्त्रीवेदोदयो नहि असंयतस्य स्त्रीत्वेनानुत्पत्तेः । षंढवेदोदयोऽपि च नहि षंढत्वेनापि तस्यानुत्पत्तेः । अयमुत्सर्गविधिः प्राग्बद्धनरकायुस्तिर्यग्मनुष्ययोः सम्यक्त्वेन समं धर्मायामुत्पत्तिसंभवात् तेन असंयते स्त्रीवेदिनि चतुर्णां, षंढवेदिनि त्रयाणां चानुपूर्वीणां उदयो नास्ति ॥ २८७ ॥

एकद्वित्रिचतुरिंद्रियजातिनामकर्मस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि तिर्यक्षु एव उदययोग्यानि अपर्याप्तमनुष्येऽपि । संहननषट्कमौदारिकद्वयं च तिर्यग्मनुष्येष्वेव । वैक्रियिकद्वयं सुरनारकेष्वेव ॥ २८८ ॥

निर्वृत्यपर्याप्तक असंयतमें स्त्रीवेदका उदय नहीं होता, क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्री पर्यायमें जन्म नहीं लेता। निर्वृत्यपर्याप्तक असंयतमें नपुंसक वेदका भी उदय नहीं होता क्योंकि वह मरकर नपुंसक उत्पन्न नहीं होता। किन्तु यह उत्सर्ग विधि है। क्योंकि जिस मनुष्य या तिर्यंचने पहले नरकायुका बन्ध किया है वह यदि सम्यक्त्वके साथ मरण करता है तो उसकी उत्पत्ति घर्मा नामक प्रथम नरकमें होती है। अतः असंयत स्त्रीवेदीके चारों आनुपूर्वीका और असंयत नपुंसकवेदीके नरक बिना तीन आनुपूर्वीका उदय नहीं होता ॥२८७॥

एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जाति नामकर्म तथा स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण तिर्यंचोंमें ही उदय योग्य हैं। किन्तु अपर्याप्त प्रकृति मनुष्योंमें भी उदययोग्य है। छह संहनन, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग तिर्यंच और मनुष्योंमें ही उदय योग्य है। तथा वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक अंगोपांग देवों और नारकोंमें ही उदय योग्य है ॥२८८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेउतिगूणतिरिक्खेसुज्जोवो बादरेसु पुण्णेसु ।
सेसाणं पयडीणं ओघं वा होदि उदओ दु ॥२८९॥

तेजस्त्रिकोनतिर्य्यक्षूद्योतो बादरेषु पूर्णेषु । शेषाणां प्रकृतीनामोघवद्भवत्युदयस्तु ॥

तेजस्कायिकमुं वायुकायिकमुं साधारणवनस्पतिकायिकमुमें बी जीवत्रितयोनतिर्य्यंचरु बादरपर्य्याप्तजीवंगळोळुद्योतनामकर्म्ममुदयिसुगुं । तु मत्ते शेषप्रकृतिगळुदयक्रमं गुणस्थानदोळु पेळ्दंतेयक्कु-। मनंतरमी परिभाषासूत्रपंचकप्रणीतप्रकृत्युदयनियममं मनदोळव धारिसिदा तंगे नरकादिगतिचतुष्टयदोळुदयप्रकृतिगळं पेळल्वेडि मुन्नं नरकगतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :

थीणतिथीपुरिसूणा घादी णिरयाउणीचवेयणियं ।
णामे सगवचिठाणं णिरयाणू णारयेसुदया ॥२९०॥

स्त्यानगृद्धित्रयं स्त्रीपुरुषोनानि घातीनि नरकायुर्न्नीचवेदनीयं नाम्नि स्वत्राविस्थानं नारकानुपूर्व्यं नारकेषूदयाः ॥

स्त्यानगृद्धित्रय स्त्रीवेद पुंवेदमें बी पंचप्रकृतिगळं कळेदु शेषघातिगळु नाल्वत्तेरडुं ४२। नारकायुष्युमुं १। नीचैर्ग्गोत्रमुं १ सातासातवेदनीयद्वितयमुं २। नामकर्म्मदोळु नारकरुगळ भाषा-पर्य्याप्तिस्थानदिप्पत्तों भत्तुप्रकृतिगळुं २९। नारकानुपूर्व्यमुमें ब षडुत्तरसप्ततिप्रकृतिगळु नारकर्गुदययोग्यप्रकृतिगळप्पुवु ७६ ॥

अनंतरं नारकरुगळभाषापर्य्याप्तिस्थानद यिप्पत्तोंभत्तु प्रकृतिगळावुवें दोडे पेळ्दपरु :—

तेजोवायुसाधारणवनस्पत्यूनशेषबादरपर्याप्ततिर्यक्षु उद्योतः । तु—पुनः शेषप्रकृत्युदयक्रमो गुणस्थानवद् भवेत् ॥ २८९ ॥ एवं पंचपरिभाषा सूत्रैरुदयनियमं परिज्ञाप्य चतुर्गतिषु उदयप्रकृतीर्वक्तुं प्राक् नरकगतावाह—

स्त्यानगृद्धित्रयस्त्रीपुंवेदोनघातीनि द्वाचत्वारिंशत् । नरकायुर्नीचगोत्रसातासातवेदनीयानि नामकर्मणि नारकभाषापर्याप्तिस्थानस्यैकान्नत्रिंशत् नारकानुपूर्व्यं चेति षट्सप्ततिर्नारकोदययोग्यानि ॥ २९० ॥ तदेकान्नत्रिंशतमाह—

तेजस्काय, वायुकाय, साधारण वनस्पतिकायके सिवाय शेष बादर पर्याप्त तिर्यंचोंमें उद्योत प्रकृतिका उदय होता है। शेष प्रकृतियोंके उदयका अनुक्रम गुणस्थानवत् जानना ॥२८९॥

इस प्रकार पाँच परिभाषा सूत्रोंसे उदयका नियम कहकर चार गतियोंमें उदय-प्रकृतियोंका कथन करनेके लिए पहले नरकगतिमें कहते हैं—

स्त्यानगृद्धि आदि तीन, स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बिना घातिकर्मोंकी शेष बयालीस प्रकृतियाँ, नरकायु, नीचगोत्र, साता और असाता वेदनीय, तथा नारकी जीवोंके भाषा-पर्याप्तिके स्थानमें होनेवाली नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियाँ और नरकानुपूर्वी, ये छिहत्तर प्रकृतियाँ नरकगतिमें उदय योग्य हैं ॥२९०॥

उन उनतीस प्रकृतियोंको कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेगुव्वतेजथिरसुहदुग दुग्गदिहुंडणिमिणपंचिंदी ।
णिरयगदि दुब्भगागुरुतसवण्णचऊ य वचिठाणं ॥२९१॥

वैक्रियिकतेजः स्थिरशुभद्विकं दुर्गतिहुंडनिर्म्माणपंचेंद्रियनरकगति दुर्भगागुरुत्रसवर्णचतुष्टयानि च वचः स्थानं ॥

वैक्रियिकद्विकमु २। तैजसद्विकमुं २ स्थिरद्विकमुं २ शुभगद्विकमुं २। अप्रशस्तविहायोगतियुं १ हुंडसंस्थानमुं १ निर्म्माणनाममुं १। पंचेंद्रियजातिनाममुं १ दुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्त्तिचतुष्कमुं ४ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कमुं ४ त्रसबादरपर्य्याप्तप्रत्येकशरीरचतुष्कमुं ४। वर्णगंधरसस्पर्शचतुष्कमुं ४। इन्तु इप्पत्तोंभत्तुप्रकृतिगळु २९ नारकर वचः पर्य्याप्तिस्थानदोळप्पुवु।

अनंतरं घर्म्मेय नारकर्गुदयव्युच्छित्तिगळं पेळदपरु :—

मिच्छमणंतं मिस्सं मिच्छादितिए कमा छिदी अयदे ।
बिदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगाउणिरयचऊ ॥२९२॥

मिथ्यात्वमनंतानुबंधिनो मिश्रं मिथ्यादृष्टयादित्रये क्रमाच्छित्तिरसंयते । द्वितीयकषाया दुर्भगानादेयद्विकायुर्न्नारक चत्वारि ॥

मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्व उदयव्युच्छित्तियक्कुं। सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुदयव्युच्छित्तियक्कुं। मिश्रनोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कु-। मिन्तुक्तक्रमदिदमसंयतसम्यग्दृष्टियोळु द्वितीयकषायोदयमुं दुर्भगमुमनादेयमुमयशस्कीर्त्तियुं नरकायुष्यमुं नरकगतियुं तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यमुं वैक्रियिकशरीरनाममुं तदंगोपांगनाममुमितु कूडि पन्नरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पुवु।

वैक्रियिकद्विकं तैजसद्विकं स्थिरद्विकं शुभद्विकं अप्रशस्तविहायोगतिः हुंडसंस्थानं निर्माणं पंचेंद्रियं नरकगतिः दुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्तयः अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासाः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीराणि वर्णगंधरसस्पर्शाश्च इत्येकान्नत्रिंशन्नारकाणां वचःपर्याप्तिस्थाने भवंति ॥ २९१ ॥ अथ घर्मानारकोदयव्युच्छित्तिमाह—

मिथ्यात्वं अनंतानुबंधिचतुष्कं सम्यग्मिथ्यात्वं च क्रमेण मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानत्रये व्युच्छित्तिः ।

वैक्रियिकद्विक, तैजस कार्माण, स्थिर अस्थिर, शुभ अशुभ, अप्रशस्त विहायोगति, हुण्डक संस्थान, निर्माण, पंचेन्द्रिय, नरकगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास ये चार, त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक ये चार, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श ये चार इस प्रकार ये उनतीस प्रकृतियाँ नारकी जीवोंके वचन पर्याप्तिके स्थानमें उदयमें आती हैं ॥२९१॥

आगे घर्मा नामक प्रथम नरकमें उदय व्युच्छित्ति कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी तथा मिश्रमें सम्यक्मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। और असंयतमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यितु व्युच्छित्तिगळागुत्तं बिरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयप्रकृतिगळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमें बेरडु प्रकृतिगळनुदयंगळप्पुवु २। उदयप्रकृतिगळेप्पत्त नाल्कु ७४॥ सासादनगुणस्थानदोळोंदु मिथ्यात्वं गूडिदनुदयप्रकृतिगळु मूरवरोळु नरकानुपूर्व्यमं कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळु ४। उदयप्रकृतिगळु नरकानुपूर्व्यरहितमेप्पत्तेरडु ७२। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुप्रकृतिगळेंटरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं कळेदुदयदोळु कूडुत्तं बिरलु अनुदयकृतिगळेळु ७। उदयप्रकृतिगळरुवत्तोंभत्तु ६९। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु ओंदुगूडियनुदयप्रकृतिगळेंटवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं नारकानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयदोळु कूडुत्तं बिरलनुदयप्रकृतिगळारु ६। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तु ७०। यितु घर्मेयनारकर्ग्गुदयव्युच्छित्युदयानुदयप्रकृतिगळ्गे मिथ्यादृष्ट्यादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु संदृष्टि:—

गुणस्थान	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	१२
उ	७४	७२	६९	७०
अ	२	४	७	६

अनंतरं द्वितीयादि षट् पृथ्विगळोळु प्रकृत्युदयानुदयोदयव्युच्छित्तिगळं पेळदपरु :—

बिदियादिसु छसु पुढविसु एवं णवरि य असंजदट्ठाणे।
णत्थि णिरयाणुपुव्वी तिस्से मिच्छेव वोच्छेदो ॥२९३॥

द्वितीयादिषु षट्पृथ्वीष्वेवं नवीनमसंयतस्थाने। नास्ति नारकानुपूर्व्यं तस्य मिथ्यादृष्टावेव व्युच्छित्तिः॥

असंयते द्वितीयकषायचतुष्कदुर्भगानादेयायशस्कीर्तिनारकायुर्नरकगतितदानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीरतदंगोपांगानि द्वादश। एवं सति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती उदयः चतुःसप्ततिः। सासादनेऽनुदयः मिथ्यात्वनरकानुपूर्व्ये मिलित्वा चतस्रः, उदयः द्वासप्ततिः। मिश्रेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् सप्त, उदयः एकान्नसप्ततिः। असंयतेऽनुदयः एकां निक्षिप्य सम्यक्त्वप्रकृतिनारकानुपूर्व्योदयात् षट्, उदयः सप्ततिः ॥ २९२ ॥ अथ द्वितीयादिपृथ्वीष्वाह—

अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग इन बारहकी व्युच्छित्ति होती है।

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अनुदय मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका, उदय चौहत्तरका। सासादनमें मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी मिलकर चारका अनुदय। उदय बहत्तर। चारकी व्युच्छित्ति।

३. मिश्रमें—सासादनमें व्युच्छित्ति चार और अनुदय चारमें-से सम्यक् मिथ्यात्वका उदय होनेसे अनुदय सात, उदय उनहत्तर, व्युच्छिति एक।

४. असंयतमें—मिश्रमें एककी व्युच्छित्ति और अनुदय सातमें-से सम्यक्त्व प्रकृति और नरकानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय छह, उदय सत्तर ॥२९२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंशे मोदलागिर्द्दारुं पृथ्विगळोळं घर्म्मेयोळु पेळ्दंते उदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६। असंयतगुणस्थानदोळु विशेषमुंटदावुदें दोडे नरकानुपूर्व्योदयमिल्लेकें दोडे असंयतसम्यग्दृष्टि-प्राग्बद्धनारकायुष्यनादोडं द्वितीयादिपृथ्विगळोळु पुट्टनदुकारणदिदमा नारकानुपव्यंमं तंदु मिथ्या-दृष्टियोळु व्युच्छित्तियं माडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळेरड २ उदयप्रकृतिगळेप्पत्त नाल्कु ७४। अनुदयप्रकृतिगळु। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियु-मेंबेरडु प्रकृतिगळप्पुवु २। सासादनगुणस्थानदोळु एरडुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्कु ४। उदय-प्रकृतिगळेप्पत्तेरडु ७२। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयप्रकृतिगळें टवरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७। उदयप्रकृतिगळरुवत्तों भत्तु ६९। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळें टवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु उदयप्रकृतिगळरुवत्तों भत्तु ६९। यितु वंशादि षट् पृथ्विगळ मिथ्यादृष्टयादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळुक्तोदयव्युच्छित्ति उदयानुदयप्रकृतिगळगे संदृष्टि :—

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	२	४	१	११
उ	७४	७२	६९	६९
अ	२	४	७	७

अनंतरं तिर्य्यग्गतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

वंशादिषु षट् पृथ्वीषु घर्मावत् षट्सप्ततिः उदययोग्याः। असंयते नारकानुपूर्व्योदयो नहि प्राग्बद्ध-नरकायुष्कस्यापि सम्यग्दृष्टेस्तत्रानुत्पत्तेः। ततः नारकानुपूर्व्येण सह मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः द्वयम्। उदयः चतुः-सप्ततिः। अनुदयः सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृती। सासादने द्वयं संयोज्य अनुदयः चतस्रः। उदयः द्वासप्ततिः। मिश्रेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य मिश्रप्रकृत्युदयात्सप्त, उदयः एकान्नसप्ततिः। असंयतेऽनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् सप्त। उदयः एकान्नसप्ततिः॥ २९३॥ अथ तिर्यग्गतावाह—

आगे द्वितीयादि पृथिवियोंमें कहते हैं—

वंशा आदि पृथ्वियोंमें घर्माके समान उदय योग्य प्रकृतियाँ छिहत्तर। किन्तु असंयत गुणस्थानमें नरकानुपूर्वीका उदय नहीं होता, क्योंकि जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध किया है ऐसा सम्यग्दृष्टी भी वंशा आदिमें उत्पन्न नहीं होता। इसलिए मिथ्यादृष्टी गुणस्थानमें नरकानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होनेसे दोकी व्युच्छित्ति होती है और उदय चौहत्तर तथा अनुदय सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिका होता है। इन दोमें दोकी व्युच्छित्ति मिलानेसे सासादनमें अनुदय चारका और उदय बहत्तरका। सासादनमें चारकी व्युच्छित्तिमें चारका अनुदय जोड़नेसे आठ होते हैं। इसमें-से मिश्र प्रकृतिका उदय होनेसे मिश्रगुणस्थानमें अनुदय सातका और उदय उनहत्तरका। मिश्रमें एककी व्युच्छित्ति है उसमें सात मिलानेसे आठ होते हैं। इसमें-से सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय सातका और उदय उनहत्तरका है ॥२९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिए ओघो सुरणिरयाऊ उच्चमणुदुहारदुगं ।
वेगुव्वछक्कतित्थं णत्थि हु एमेव सामण्णे ॥२९४॥

तिरश्चि ओघः सुरनरनरकायूंषि उच्च मनुष्यद्विकमाहारद्विकं। वैक्रियिकषट्कं तीर्त्थं नास्ति खलु एवमेव सामान्ये ॥

तिर्य्यग्गतितिर्य्यंरोळु सामान्यदिदं गुणस्थानदोळु पेळ्दंतेयक्कुमदुकारणमागि नूरिप्पत्तेरडुदय प्रकृतिगळप्पुववरोळु देवायुष्यमुं १। मनुष्यायुष्यमुं नारकायुष्यमुं १। उच्चैग्गोत्रमुं मनुष्य-द्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ वैक्रियिकषट्कमुं ६। तीर्त्थंकरनाममु १ में ब पदिनय्दुं १ प्रकृति-गळ्गुदयमिल्लेकेंदोडे तिर्य्यग्गतिजरोळा पदिनैय्दुं प्रकृतिगळ्गुदयं विरुद्धमप्पुदरिंदमवं कळेदोडुदय योग्यप्रकृतिगळु नूरेळु १०७। सामान्यतिर्य्यंचरुं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरुं पर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं योनिमति-तिर्य्यंचरुं लब्ध्यपर्याप्ततिर्य्यंचरुमें ब पंचविधतिर्य्यंचरोळु सामान्यतिर्य्यंचरुगळ्गे नूरेळुं प्रकृति-गळुदययोग्यंगळप्पुवु १०७। तिर्य्यग्गतिजग्गें गुणस्थानपंचकमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थान-दोळ् तिरिए ओघो यें बिदरिंदं पणणवेत्यादिउदयव्युच्छित्तिगळरियल्पडुगुमप्पुदरिंदं। मिथ्या-दृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळय्दु ५। उदयप्रकृतिगळु नूरय्दु १०५। अनुदयप्रकृतिगळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेंबेरडेयक्कुं २। सासादनगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदय प्रकृतिगळु ७। उदयप्रकृति-गळु नूरु १००। उदयव्युच्छित्तिगळों भत्तु ९। मिश्रगुणस्थादोळों भत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पदिना-

तिर्यग्गतावोघः गुणस्थानवत् द्वाविंशत्युत्तरशतं। तत्र देवमनुष्यनरकायूंषि उच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्विकमाहारद्विकं वैक्रियिकषट्कं तीर्थकरत्वं चेति पंचदश न इत्युदययोग्याः सप्तोत्तरशतं। १०७। सामान्यतिर्यक्षु एवमेव सप्तोत्तरशतमेव। गुणस्थानानि पंच। तिरियो ओघो इति पणणवेत्यादि व्युच्छित्तयः तेन मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः पंच। उदयः पंचोत्तरशतं। अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती। सासादने अनुदयः पंच संयोज्य सप्त।

प्रथम नरक रचना

मि.	सा.	मि.	अ.
१	४	१	१२
७४	७२	६९	७०
२	४	७	६

द्वितीयादि नरक रचना

मि.	सा.	मि.	अ.
२	४	१	११
७४	७२	६९	६९
२	४	७	७

आगे तिर्यंचगतिमें कहते हैं—

तिर्यंचगतिमें ओघ अर्थात् गुणस्थानोंकी तरह उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से देवायु, मनुष्यायु, नरकायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवगति, देवानुपूर्वी तथा तीर्थंकर इन पन्द्रहका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ सात हैं।

सामान्य तिर्यंचोंमें इसी प्रकार उदय योग्य प्रकृतियाँ एक सौ सात हैं। तथा गुण-स्थान पाँच हैं।

१. मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदय एक सौ पाँच, अनुदय दो मिश्र और सम्यक्त्व। व्युच्छित्ति पाँच।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रवरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडियुदयंगळोळ् तिर्य्यगानुपूर्व्यमं तेगदु अनुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पदिनारु १६। उदयप्रकृतिगळ् तोभत्तोंदु ९१। उदयव्युच्छित्तियुं मिश्रप्रकृतियों देयक्कुं १। असंयतगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतिगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पदिनेळवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयप्रकृयिगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळु पदिनय्दु १५। उदयप्रकृतिगळु तोभत्तेरडु ९२। उदयव्युच्छित्तिगळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४। तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १। दुर्भगनाममु १ मनादेयनाममुं मयशस्कीर्त्तिनाममु १ मितेंदु प्रकृतिगळप्पुवु। ८ देशसंयतगुणस्थानदोळा येंटुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तमूरु २३। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तनाल्कु ८४। उदयव्युच्छित्तिगळु मुन्नं गुणस्थानदोळु पेळ्द तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ तिर्य्यगायुष्यमुमुद्योतमुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यग्गतिमेंबेंटुं प्रकृतिगळप्पुवु ८। संदृष्टि :—

सामान्य तिर्यंच १०७

अ	मि	सा	मि	अ	दे
व्यु	५	९	१	८	८
उ	१०५	१००	९१	९२	८४
अ	२	७	१६	१५	२३

अनंतरं पंचेंद्रिय-तिर्य्यंचरोळं तत्पर्य्याप्तकरोळं पेळ्दपरु :—

उदयः शतं। व्युच्छित्तिर्नव। मिश्रगुणस्थानेऽनुदयः नव तिर्यगानुपूर्व्यं च संयोज्य सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् षोडश। उदयः एकनवतिः। व्युच्छित्तिरेका। असंयतेऽनुदयः मिश्रं संयोज्य सम्यक्त्वतिर्यगानुपूर्व्योदयात् पंचदश। उदयः द्वानवतिः। व्युच्छित्तिः द्वितीयकषायचतुष्कतिर्यगानुपूर्व्यदुर्भगानादेयायशस्कीर्तयोऽष्टौ। देशसंयते अनुदयः अष्टौ संयोज्य त्रयोविंशतिः। उदयः चतुरशीतिः। व्युच्छित्तिः गुणस्थानोक्ता अष्टौ ॥ २९४ ॥ अथ पंचेंद्रियतत्पर्याप्तकयोराह—

---

२. मिथ्यादृष्टिके अनुदय और व्युच्छित्तिको मिलानेसे सासादनमें अनुदय सात, उदय सौ, व्युच्छित्ति नौ।

३. सासादनके अनुदय और व्युच्छित्तिको मिलानेसे सोलहमें तिर्यंचानुपूर्वीको मिलानेसे तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय सोलह। उदय इक्यानवे। व्युच्छित्ति एक।

४. मिश्रमें अनुदय सोलह और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे सतरहमें-से सम्यक्त्व प्रकृति और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय पन्द्रह। उदय बानवे। व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, तिर्यंचानु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति इन आठ की।

५. असंयतके अनुदय पन्द्रह और व्युच्छित्ति आठको जोड़नेसे देश संयतमें तेईसका अनुदय। उदय चौरासी। व्युच्छिति पंचम गुणस्थानमें कहीं आठ ॥२९४॥

अब पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पर्याप्तक तिर्यंचोंमें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावरदुगसाहारणतावेगिविगलूण ताणि पंचक्खे ।
इत्थि अपज्जत्तूणा ते पुण्णे उदयपयडीओ ॥२९५॥

स्थावरद्वयसाधारणातपैकविकलोनानि तानि पंचाक्षे । स्त्र्यपर्य्याप्तोनानि तानि पूर्णे उदयप्रकृतयः ॥

स्थावरसूक्ष्मद्वयमुं २ । साधारणशरीरनाममुं १ । आतपनाममुं १ । येकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियजातिनामचतुष्टयमु ४ मितेंदु प्रकृतिगळिदमूनितमप्पमुं पेळद सामान्यतिर्य्यंचरुगळ्गुदययोग्यंगळु नूरेळं प्रकृतिगळे पंचेंद्रियतिर्य्यंचरुगळ्गुदययोग्यप्रकृतिगळु तोंभत्तोंभत्तप्पवु । ९९ ॥ अल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यात्वमुमपर्य्याप्तनाममुमेरडुमुदयव्युच्छित्तिगळु २ । उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तेळु ९७ । मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेंबेरडुमनुदय प्रकृतिगळप्पुवु २ । सासादनगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळनंतानुबंधिचतुष्कमक्कुं ४ । उदय प्रकृतिगळु तोंभत्तय्दु ९५ । एरडुगूडिदनुदय प्रकृतिगळु नाल्कु ४ । मिश्रगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियों देयुदयव्युच्छित्तियक्कु १ । मुदयप्रकृतिगळु तोंभत्तोंदु ९१ । नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळेंटु ८ । असंयतगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळेंटु ८ । ओंदुगूडियनुदयप्रकृतिगळोंभत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७ । उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तेरडु ९२ । देशसंयतगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळेंटु ८ । अनुदयंगळेंटुगूडि पदिनय्दु १५ । उदयप्रकृतिगळेंभत्त नाल्कु ८४ । संदृष्टि :—

स्थावरसूक्ष्मसाधारणातपैकेंद्रियद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियोनसामान्यतिर्यगुक्ताः पंचेंद्रियतिरश्चि उदययोग्याः एकोनशतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वापर्याप्तं २ उदयः सप्तनवतिः । अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । सासादने व्युच्छित्तिरनंतानुबंधिचतुष्कं । उदयः पंचनवतिः । द्वयं संयोज्य अनुदयः चतस्रः । मिश्रे मिश्रं व्युच्छित्तिः । उदयः एकनवतिः, चतस्रः संयोज्य अनुदयोऽष्टौ । असंयते व्युच्छित्तिः अष्टौ एकां निक्षिप्यानुदयः सम्यक्त्वतिर्यगानुपूर्व्योदयात्सप्त । उदयः द्वानवतिः । देशसंयते व्युच्छित्तिरष्टौ, अनुदयः अष्टौ

सामान्य तिर्यंचके उदय योग्य एक सौ सातमें-से स्थावर, सूक्ष्म, सधारण, आतप, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियको घटानेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें उदय योग्य निन्यानवे ९९ हैं । उनमें-से—

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति दो, मिथ्यात्व और अपर्याप्त । उदय सत्तानवे । अनुदय दो मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति ।

२. मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति दो और अनुदय दोको मिलानेसे सासादनमें अनुदय चार । उदय पंचानवें । व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी चार ।

३. सासादनमें अनुदय चार और व्युच्छित्ति चारको मिलानेसे तथा मिश्र प्रकृतिका उदय और तिर्यंचानुपूर्वीका अनुदय होनेसे मिश्रमें अनुदय आठ । उदय इक्यानवे । व्युच्छित्ति एक मिश्रप्रकृति की ।

४. मिश्रमें अनुदय आठ और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे नौ हुए । उनमें-से सम्यक्त्व और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय सात । उदय बानवे । व्युच्छित्ति आठ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेंद्रिय ९९

०	मि	सा	मि	अ	दे
व्यु	२	४	१	८	८
उ	९७	९५	९१	९२	८४
अ	२	४	८	७	१५

स्त्रीवेदमु १ मपर्य्याप्तमुं १ रहितमप्प पंचेंद्रिययोग्यप्रकृतिगळे पर्य्याप्तपंचेंद्रियोदययोग्यप्रकृतिगळु तोंभत्तेळु ९७। अल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिमिथ्यात्वप्रकृतियों देयक्कुं १। अनुदयप्रकृतिगळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुमेरडप्पुवु २। उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तय्दु ९५। सासादनगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमे ४ यक्कुं। ओंदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु मूरु ३। उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तनाल्कु ९४। मिश्रगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्ति मिश्रप्रकृतियों देयक्कुं १। नाल्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडियुदयप्रकृतिगळोळु तिर्य्यगानुपूर्व्यमं कळेदनुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७। उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तु ९०। असंयतगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळेंटु ८। ओंदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेंटरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यगानुपूर्व्यमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळारु ६। उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तोंदु ९१। देशसंयतगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळेंटु ८।

निक्षिप्य पंचदश, उदयश्चतुरशीतिः।

स्त्रीवेदापर्याप्तोनपंचेंद्रियतिर्यगुक्तास्तत्पर्याप्तस्य उदययोग्याः सप्तनवतिः। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वं। अनुदयः सम्यक्त्वमिश्रप्रकृती। उदयः पंचनवतिः। सासादने व्युच्छित्तिरनंतानुबंधिचतुष्कं। एकां संयोज्य अनुदयस्तिस्रः। उदयश्चतुर्नवतिः। मिश्रे व्युच्छित्तिः मिश्रं। अनुदयः चतुष्कं तिर्यगानुपूर्व्यं च संयोज्य मिश्रोदयात् सप्त। उदयः नवतिः। असंयते व्युच्छित्तिः अष्टौ। अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वतिर्यगानुपूर्व्योदयात् षट्, उदयः एकनवतिः। देशसंयते व्युच्छित्तिः अष्टौ। अनुदयः अष्टौ संयोज्य चतुर्दश।

---

५. असंयतके अनुदय सात और व्युच्छित्ति आठको मिलानेसे देशसंयतमें अनुदय पन्द्रह। उदय चौरासी। व्युच्छित्ति आठ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचके उदय योग्य निन्यानबेमें-से स्त्रीवेद और अपर्याप्तको घटानेपर पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंचके उदय योग्य सत्तानवे।

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति एक मिथ्यात्व। अनुदय दो सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति उदय पंचानवे।

२. सासादनमें अनुदय तीन। व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी चतुष्क। उदय चौरानवे।

३. सासादनके अनुदय तीनमें उसकी व्युच्छित्ति चारको मिलानेसे तथा उसमें तिर्यंचानुपूर्वीको जोड़ने और मिश्रके उदयमें आनेसे मिश्रगुणस्थानमें अनुदय सात। उदय नब्बे। व्युच्छित्ति एक मिश्र की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एंदु गूडियनुदयप्रकृतिगलु पदिनाल्कु १४। उदयप्रकृतिगलेण्भत्तमूरु ८३। संदृष्टि :—

पर्य्याप्तपंचेंद्रिय ९७

०	मि	सा	मि	अ	दे
व्युच्छि	१	४	१	८	८
उदी	९५	९४	९०	९१	८३
अनु	२	३	७	६	१४

पुंसंढूणित्थिजुदा जोणिणिए अविरदे ण तिरियाणू।
पुण्णिदरे थी थीणति परघाददु पुण्णउज्जोवं ॥२९६॥

पुंषंढोनस्त्रीयुताः योनिमत्यामविरते न तिर्य्यगानुपूर्व्यं पूर्णेतरस्मिन् स्त्री स्त्यानगृद्धित्रय परघातद्वय पूर्णोद्योतं ॥

योनिमतितिर्य्यंचरोळुदययोग्यप्रकृतिगळु पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यंचरुगळ योग्यप्रकृतिगळु तो भत्तेळरोळु पुंवेदमुमं षंढवेदमुमं कळेदु स्त्रीवेदमुमं कूडुत्तं विरलु तो भत्तारु प्रकृतिगळप्पुवु ९६। अल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्ति मिथ्यात्वप्रकृतियो दयक्कुं १। सासादननोळुदयव्युच्छित्तियनंतानुबंधिचतुष्टयमुं ४ तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं कूडियय्दप्पुवु ।५। एक दोडे जोणिणिए अविरदे ण तिरियाणू एंदु तिर्य्यगानुपूर्व्यं सासादननोळे व्युच्छित्तियागलुवेळकुमप्पुदरिदं। मिश्रनोळुदयव्युच्छित्ति मिश्रप्रकृतियो दयक्कुं १। असंयतननोळु व्युच्छित्तिगळु

उदयस्त्र्यशीतिः ॥ २९५ ॥

योनिमत्तिर्यक्षु उदययोग्याः पंचेंद्रियपर्याप्तोक्तसप्तनवत्यां पुषंढवेदावपनीय स्त्रीवेदे निक्षिप्ते षण्णवतिर्भवति। तत्र व्युच्छित्तयः मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं तिर्यगानुपूर्व्यं चेति पंच। कुतः? अविरदे णतिरियाणिवत्युक्तत्वात्। मिश्रे मिश्रं। असंयते तिर्यगानुपूर्व्याभावात् सप्त। देशसंयते गुण-

४. मिश्रके अनुदय सात और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे आठमें-से सम्यक्त्व और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय छह। उदय इक्यानबे। व्युच्छित्ति आठ।

५. असंयतके अनुदय छहमें उसकी व्युच्छित्ति आठ जोड़नेसे देशसंयतमें अनुदय चौदह। उदय तेरासी। व्युच्छिति आठ ॥२९५॥

पंचेन्द्रिय पर्याप्तके उदययोग्य सत्तानबेमें-से पुरुष वेद और नपुंसक वेदको घटाकर स्त्रीवेदको जोड़नेसे योनिमत तिर्यंचमें उदय योग्य छियानबे होती हैं। उनमें-से।

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्वकी। अनुदय दो सम्यक्त्व और मिश्र। उदय चौरानबे।

२. सासादनमें अनुदय तीन। उदय तिरानबे। व्युच्छित्ति पाँच अनन्तानुबन्धी चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्य्यगानुपूर्व्यरहितमप्पुदरिंदमेळु प्रकृतिगळप्पुवु । ७ ॥ देशसंयतनोळुदयव्युच्छित्तिगळु तन्न गुणस्थानदोळ् पेळ्दे टे प्रकृतिगळप्पुवु ८ ॥ यितु व्युच्छित्तिगळरियल्पडुत्तं विरलु योनिमति तिरश्चि मिथ्यादृष्टियोळानुदयप्रकृतिगळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमवकु २ । उदयप्रकृतिगळु तो भत्तनाल्कु ९४ । सासादनगुणस्थानदोळु ओं दुंगूडियनुदयप्रकृतिगळु मूरु ३ । उदयप्रकृतिगळु तो भत्तमूरु ९३ । मिश्रगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळें टरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७ । उदयप्रकृतिगळें भत्तों भत्तु ८९ । असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयप्रकृतिगळें टरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कलेदुदयप्रकृतिगलोलु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगलेलु ७ । उयदप्रकृतिगळेंभत्तों भत्तु ८९ । देशसंयतगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदयप्रकृतिगलु पदिनाल्कु १४ । उदयप्रकृतिगलेंभत्तेरडु ८२ । संदृष्टि :

योनिमत्तिर्य्यंच ९६

गु	मि	सा	मि	अ	दे
व्यु	१	५	१	७	८
उ	९४	९३	८९	८९	८२
अ	२	३	७	७	१४

पूर्णेतरस्मिन् लब्ध्यपर्य्याप्तपंचेंद्रियतिर्य्यंचरोळुदययोग्यप्रकृतिगळु योनिमतितिरश्चियोळु पेळ्दुदययोग्यप्रकृतिगळतों भताररोळु स्त्रीवेदमुमं स्त्यानगृद्धित्रितयमुमं परघातनाममुमुच्छ्वास-

---

स्थानोक्ता अष्टौ । एवं सति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । उदयः चतुर्नवतिः । सासादनेऽनुदयः एकां संयोज्य तिस्रः । उदयस्त्रिनवतिः । मिश्रेऽनुदयः पंच संयोज्य मिश्रोदयात् सप्त । उदयः एकान्ननवतिः । असंयतेऽनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वोदयात्सप्त । उदयः एकान्ननवतिः । देशसंयतेऽनुदयः सप्त संयोज्य चतुर्दश, उदयो द्व्यशीतिः ।

लब्ध्यपर्याप्तपंचेंद्रियतिरश्चि उदययोग्या योनिमत्तिर्यगुक्तषण्णवत्यां स्त्रीवेदः स्त्यानगृद्धित्रयं परघातः

और तिर्यंचानुपूर्वी । क्योंकि पूर्वमें कहा है कि अविरत सम्यग्दृष्टी मरकर स्त्री तिर्यंच नहीं होता ।

३. सासादनके अनुदय तीनमें उसकी व्युच्छित्ति पाँच मिलानेसे आठमें-से मिश्रका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय सात । व्युच्छिति एक मिश्र । उदय नवासी ।

४. असंयतमें अनुदय सात; क्योंकि मिश्र अनुदयमें गयी और सम्यक्त्व प्रकृति उदयमें आ गयी । उदय नवासी । तिर्यंचानुपूर्वीके न होनेसे व्युच्छित्ति सात ।

५. असंयतके अनुदय सातमें उसकी व्युच्छित्ति सात जोड़नेसे देशसंयतमें अनुदय चौदह । उदय बयासी । व्युच्छित्ति आठ ।

योनिमत तिर्यंचके उदययोग्य छियानबेमें स्त्रीवेद, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, उद्योत, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, यशस्कीर्ति,

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

नाममुमं पर्य्याप्तनाममुमं उद्योतनाममुमं ॥

सरगदिदु जसादेज्जं आदीसंठाणसंहदी पणगं ।
सुभगं सम्मं मिस्सं हीणा तेअपुण्णसंढजुदा ॥२९७।

स्वरगतिद्वयं यशस्कीर्त्यादेयमाद्यसंस्थानसंहननपंचकं सुभगं सम्यक्त्वं मिश्रं हीनास्ताः अपूर्णषंढयुताः ॥

सुस्वरदुस्वरद्वयमुं २ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्वयमुं २ यशस्कीर्त्तियुं १ आदेयनाममुं १ आद्यसंस्थानपंचकमुं ५ आद्यसंहननपंचकमुं ५ सुभगनाममुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ मिश्रप्रकृतियु १ मितिप्पत्तेळु २७ प्रकृतिगळं कळेदपर्य्याप्तनाममुमं षंढवेदमुमं कूडुत्तं विरलेप्पत्तोंदु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ७१ वेकेंदोडे लब्ध्यपर्य्याप्तकजीवनोळी कळेद प्रकृतिगळुदययोग्यंगळल्लप्पुदरिदं। लब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळनितुं मिथ्यादृष्टिगळेयप्पुदरिदमा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोंदेयक्कुं ।

अनंतरं मनुष्यगतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

मणुवे ओघो थावर-तिरियादावदुग-एयवियलिंदी ।
साहरणिदराउतियं वेगुव्वियछक्क परिहीणो ॥२९८॥

मानवे ओघः स्थावरतिर्य्यगातपद्वयैकविकलेंद्रियसाधारणेतरायुस्त्रितयं वैक्रियिकषट्कपरिहीनः ॥

उच्छ्वासः पर्याप्तं उद्योतः ॥ २९६ ॥

सुस्वरदुःस्वरद्वयं प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती यशस्कीर्तिः आदेयं आद्यपंचसंस्थानपंचसंहननानि सुभगं सम्यक्त्वमिश्रप्रकृती चेति सप्तविंशतिमपनीय अपर्याप्तषट्कवेदयोर्निक्षेपे एकसप्ततिः उदययोग्या भवंति। गुणस्थानमाद्यमेव ॥ २९७ ॥ मनुष्यगतावाह—

आदेय, आदिके पाँच संस्थान, आदिके पाँच संहनन, सुभग, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्रप्रकृति, ये सत्ताईस घटाकर अपर्याप्त और नपुंसक वेद मिलानेसे उदययोग्य इकहत्तर होती हैं। गुणस्थान एक प्रथम ही होता है ॥२९६-२९७॥

सामान्य तिर्यंच रचना १०७

मि.	सा.	मि.	अ	दे.
५	९	१	८	८
१०५	१००	९१	९२	८४
		१६	५	२३

पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच ९७

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.
१	४	१	८	८
९५	९४	९०	९१	८३
२	३	७	६	१४

योनिमती तिर्यंच रचना ९६

मि.	सा	मि.	अ.	दे.
१	५	१	७	८
९४	९३	८९	८९	८२
२	३	७	७	१४

आगे मनुष्यगतिमें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यगतियोळु मनुष्यरुं चतुर्विधमप्परल्लि सामान्यमनुष्यरोळुदययोग्यप्रकृतिगळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ स्थावरद्वयमुं २ तिर्य्यग्गतिद्वयमुं २ आतपद्वितयमुं २ एकेंद्रिय द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियजातिचतुष्कमुं ४ साधारणशरीरनाममुं १ नरकतिर्य्यग्देवायुष्यमें-बितरायुस्त्रितयमुं ३ । वैक्रियिकषट्कमु ६ में बी विंशतिप्रकृतिगळं २० कळेदु शेषप्रकृतिगळु नूरेरडप्पु १०२ वल्लि :—

मिच्छमपुण्णं छेदो अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे ।
बिदियकसायणराणू दुब्भगअणादेज्ज अज्जसयं ॥२९९॥

मिथ्यात्वमपूर्ण्णं छेदोऽनंतानुबंधिमिश्रं मिथ्यादित्रिषु असंयते । द्वितीयकषायनरानुपूर्व्यं दुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तिः ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुमें बेरडुं छेदः व्युच्छित्तियक्कु सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्कं छेदमक्कुं ४ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे छेदमक्कु १ । मितु मिथ्यादृष्ट्यादि मूरुं गुणस्थानंगळोळु छेदमरियल्पडुगुमसंयतनोळु द्वितीयकषाय-चतुष्कमुं ४ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगनाममुं १ अनादेयनाममुं १ अयशस्कीर्त्तिनाममु १ मितें टु ८ प्रकृतिगळु छेदमक्कु ॥

देसे तदियकसाया णीचं एमेव मणुससामण्णे ।
पज्जत्तेवि य इत्थीवेदापज्जत्तपरिहीणो ॥३००॥

देशव्रते तृतीयकषाया नीचमेवमेव मनुष्यसामान्ये । पर्य्याप्तेपि च स्त्रीवेदाऽपर्य्याप्त परिहीनं ॥

मनुष्याश्चतुर्विधाः तत्र सामान्यमनुष्ये उदययोग्याः सामान्योदयप्रकृतिषु १२२ स्थावरद्वयं तिर्यग्गति-द्वयं आतपद्वयं एकेंद्रियादिजातिचतुष्कं साधारणशरीरं नरकतिर्यग्देवायूंषि वैक्रियिकषट्कं चेति विंशतिमपनीय शेषद्व्युत्तरशतं १०२ ॥ २९८ ॥ तत्र—

मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वमपर्याप्तं चेति द्वयं व्युच्छित्तिः । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं मिश्रे मिश्रप्रकृतिः । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भगमनादेयमयशस्कीर्तिश्चेत्यष्टौ ॥ २९९ ॥

मनुष्यके चार भेद हैं । उनमें सामान्य मनुष्यमें उदय योग्य सामान्य उदय प्रकृति १२२ में-से स्थावर सूक्ष्म, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, आतप उद्योत, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, साधारण शरीर, नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवगति देवानु-पूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग ये बीस घटानेपर शेष एक सौ दो उदय योग्य हैं ॥२९८॥

तहाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति होती है ।

सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार की, मिश्रमें मिश्रमोहनीय की, असंयतमें अप्रत्या-ख्यानावरण कषाय चार, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय अयशस्कीर्ति इन आठकी व्युच्छित्ति होती है ॥२९९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्क ४ मुं नीचैर्ग्गोत्रमु १ में बप्पुदुं प्रकृतिगळु छेदमक्कुं ५। मेले प्रमत्तसंयतनोळिल्लगोंडु ई प्रकारदिदं सामान्यमनुष्यरोलु छेदमयोगिकेवलिभट्टारकपर्य्यंतमरि-तल्पडुगुं। संदृष्टि :—

सामान्यमनुष्ययोग्याः १०२ ॥

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२	४	१	८	५	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	९७	९५	९१	९२	८४	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	७	११	१०	१८	२१	२६	३०	३६	४२	४३	४५	६०	९०

इल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं आहारकद्वयमुं २ तीर्थंकरनाममुमप्पुदुमनुदयप्रकृतिगळप्पुवु ५। उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तेळु ९७। सासादनगुणस्थानदोळु एरडुगूडियनुदयप्रकृतिगळेळु ७। उदयंगळु ९५ तोंभत्तय्दु। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पन्नोंदरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिमनुष्यानुपूर्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तविरलनुदयप्रकृतिगळु पन्नोंदु ११। उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तोंदु ९१। असंयतगुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयप्रकृतिगळु पन्नेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्त विरलनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १०। उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तेरडु ९२। देशसंयतगुणस्थानदोळु एंटुगूडियनुदयप्रकृतिगळु पदिनेंटु १८। उदयप्रकृति-

देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कं नीचैर्गोत्रं चेति पंच। उपरि प्रमत्तादिषु 'पंच य. चउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलतीसं बारसेति' प्रागुक्त एव छेदो ज्ञातव्यः। तत्र मिथ्यादृष्टौ अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वानि ५, उदयः सप्तनवतिः। सासादने द्वे मिलित्वा अनुदयः सप्त। उदयः पंचनवतिः। मिश्रे अनुदयः चतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकादश। उदयः एकनवतिः। असंयते अनुदयः एकं मिलित्वा सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानुपूर्व्योदयाद् दश। उदयः द्वानवतिः। देशसंयते अष्टौ संयोज्य अनुदयः-अष्टादश उदयश्च-

देशसंयतमें तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय चार और नीचगोत्रकी व्युच्छित्ति होती है। आगे प्रमत्तादिमें पूर्वमें कही व्युच्छित्ति जानना।

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्रप्रकृति, सम्यक्त्व प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थंकर ये पाँच। उदय सत्तानबे।

२. सासादनमें इन पाँचमें दो व्युच्छित्ति मिलनेसे अनुदय सात। उदय ९५।

३. सासादनके अनुदय सातमें उसकी चार व्युच्छित्ति मिलानेपर ग्यारहमें मनुष्यानुपूर्वीके अनुदयमें जानेसे और मिश्रके उदयमें आनेसे मिश्रमें अनुदय ग्यारह। उदय इक्यानबे। व्युच्छित्ति एक।

४. मिश्रके अनुदय ग्यारहमें उसकी एक व्युच्छित्ति मिलनेसे बारहमें सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय दस। उदय बानबे। व्युच्छित्ति आठ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळेण्भत्तनाल्कु ८४। प्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तमूररोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तोंदु २१ उदयप्रकृतिगळेणभत्तोंदु ८१। अप्रमत्त-गुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तारु २६ उदयप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६। अपूर्व्वकरण गुण-स्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तु ३०। उदयप्रकृतिगळु एप्पत्तेरडु ७२। अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तारु ३६ उदयप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपरायगुण-स्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तेरडु ४२। उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुण-स्थानदोळोंदुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तमूरु ४३। उदयप्रकृतिगळय्वत्तोंभत्तु ५९। क्षीणकषाय-गुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयप्रकृतिगळुनाल्वत्तय्दु ४५। उदयप्रकृतिगळय्वत्तेळु ५७। सयोगकेवलि-भट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदयप्रकृतिगळरुवत्तोंदरोळु तीर्थकरनाममं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तु ६०। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थान-दोळु मूवत्तुगूडियनुदयप्रकृतिगळु तोंभत्तु ९०। उदयंगळु पन्नेरडु १२। पज्जत्तेवियपर्य्याप्तक-मनुष्यरोळं स्त्रीवेदमुमनपर्य्याप्तनाममुमं सामान्यमनुष्ययोग्यप्रकृतिगळु नूरेरडरोळु कळेयुत्तं विरलु शेषनूरुं प्रकृतिगळु पर्य्याप्तमनुष्योदययोग्यप्रकृतिगळप्पुवु १००॥ अल्लि मिथ्यादृष्टि-

---

तुरशीतिः। प्रमत्ते अनुदयः पंच संयोज्य आहारकद्वयोदयादेकविंशतिः। उदयः एकाशीतिः। अप्रमत्तेऽनुदयः पंच संयोज्य षड्विंशतिः। उदयः षट्सप्ततिः। अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा अनुदयस्त्रिंशत्। उदयः द्वासप्ततिः। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत्। उदयः (षट्-)षष्टिः। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः द्वाचत्वारिंशत्। उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः त्रिचत्वारिंशत्। उदयः एकान्नषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचचत्वारिंशत् उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगेनुदयः षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयात् षष्टिः। उदयः द्वाचत्वारिंशत्। अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदयः नवतिः। उदयो द्वादश। तथा पर्याप्तमनुष्येऽपि च स्त्रीवेदापर्याप्तोनसामान्यमनुष्योक्तप्रकृतयः उदययोग्या भवंति। १००।

---

५. असंयतके अनुदय दसमें उसकी आठ व्युच्छित्ति मिलानेसे देशसंयतमें अनुदय अठारह। उदय चौरासी। व्युच्छित्ति पाँच।

६. देशसंयतके अनुदय अठारहमें उसकी पाँच व्युच्छित्ति मिलानेसे तेईस हुए। उनमें-से आहारकद्विका उदय होनेसे प्रमत्तमें अनुदय इक्कीस। उदय इक्यासी। व्युच्छित्ति पाँच।

७. अप्रमत्तमें अनुदय २१ + ५ = छब्बीस। उदय छिहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

८. अपूर्वकरणमें अनुदय २६ + ४ = तीस। उदय बहत्तर। व्युच्छित्ति छह।

९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदय ३० + ६ = छत्तीस। उदय छियासठ। व्युच्छित्ति छह।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें अनुदय ३६ + ६ = बयालीस। उदय साठ। व्युच्छित्ति एक।

११. उपशान्तकषायमें अनुदय ४२ + १ = तैंतालीस। उदय उनसठ। व्युच्छित्ति दो।

१२. क्षीणकषायमें अनुदय ४३ + २ = पैंतालीस। उदय सत्तावन। व्युच्छित्ति सोलह।

१३. संयोगीमें अनुदय तीर्थंकरका उदय होनेसे ४५ + १६ = ६१ − १ = साठ। उदय बयालीस। व्युच्छित्ति तीस।

१४. अयोगीमें अनुदय ६० + ३० = नब्बे। उदय बारह। व्युच्छित्ति बारह। तथा पर्याप्त मनुष्यमें भी सामान्य मनुष्यमें उदय योग्य। एक सौ दोमें-से स्त्रीवेद और अपर्याप्तको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानदोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दे छेदमक्कुं १। सासादननोळ् नाल्के ४। मिश्रनोळोंदे १ असंयतनोळें टु ८। देशसंयतनोळय्दु ५। प्रमत्तसंयतनोळय्दु ५। अप्रमत्तसंयतनोळु नाल्कु ४। अपूर्व्वकरणनोळारु ६ अनिवृत्तिकरणनोळय्दु ५ एकें दोडे—स्त्रीवेदंकळेदुदप्पुदरिदं मेलेल्लेडेयोळं सामान्यमनुष्यनोळें तंतेयक्कुमितु व्युच्छेदंगळरियल्पडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं आहारद्विकमुं तीर्त्थंकरनाममुमितय्दुं प्रकृतिगळनुदयंगळप्पुवु ५। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तय्दु ९५। सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयप्रकृतिगळारु ६। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तनाल्कु ९४। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् पत्तरोळ् मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळ् कूडि मनुष्यानुपूर्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १०। उदयप्रकृतिगळुतों भत्तु ९०। असंयतगुणस्थानदोळु ओं दु गूडियनुदयंगळु पत्तों दरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळों भत्तु ९। उदयंगळ् तों भत्तों दु ९१। देशसंयतगुणस्थानदोळें टु गूडियनुदयप्रकृतिगळु पदिनेळु १७। उदयंगळें भत्मूरु ८३। प्रमत्तसंयतनोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तेरडरोळ्

तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वं, सासादने चतस्रः, मिश्रे एका, असंयते अष्टौ, देशसंयते पंच, प्रमत्ते पंच, अप्रमत्ते चतस्रः, अपूर्वकरणे षट्, अनिवृत्तिकरणे पंचैव स्त्रीवेदस्यापनयनात्। उपरि सर्वत्रापि सामान्यमनुष्यवत् छेदो ज्ञातव्यः। एवं सति मिथ्यादृष्टौ अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकतीर्थंकरत्वानि ५। उदयः पंचनवतिः। सासादने एकां संयोज्य अनुदयः षट्। उदयः चतुर्नवतिः। मिश्रे अनुदयः चतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयाद्दश। उदयो नवतिः। असंयते अनुदयः एकां निक्षिप्य सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानुपूर्व्योदयान्नव। उदय एकनवतिः। देशसंयते अष्टौ संयोज्य अनुदयः सप्तदश। उदयस्त्र्यशीतिः। प्रमत्ते

घटानेपर उदययोग्य सौ। व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सासादनमें चार, मिश्रमें एक, असंयतमें आठ, देशसंयतमें पाँच, प्रमत्तमें पाँच, अप्रमत्तमें चार, अपूर्वकरणमें छह, अनिवृत्तिकरणमें भी पाँच क्योंकि स्त्रीवेद उदयमें नहीं है। ऊपर सर्वत्र सामान्य मनुष्यके समान व्युच्छित्ति जानना। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर इन पाँचका। उदय पिचानबे। व्युच्छित्ति एक।

२. सासादनमें अनुदय पाँचमें एक मिलानेसे छह। उदय चौरानबे।

३. मिश्रमें छहमें चार मिलानेसे तथा मिश्रके उदयमें आने और मनुष्यानुपूर्वीके अनुदयमें जानेसे अनुदय दस। उदय नब्बे।

४. असंयतमें दसमें एक मिलानेसे तथा सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीके उदयमें आनेसे अनुदय नौ। उदय इकानबे।

५. देशसंयतमें नौमें आठ मिलानेसे अनुदय सतरह। उदय तेरासी।

१. म मत्तनोलु ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकद्वयमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तु २०। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तु ८०।

अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तय्दु २५। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तय्दु ७५। अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळ् नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तोंभत्तु २९। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तोंदु ७१। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् मूवत्तय्दु ३५। उदयंगळरुवत्तय्दु ६५। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् नाल्वत्तु ४०। उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तोंदु ४१। उदयंगळय्वत्तोंभत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् नाल्वत्तमूरु ४३। उदयंगळय्वत्तेळ् ५७। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळय्वत्तोंभत्तरोळु तीर्त्थमं कलेदुदयदोळ् कूडलनुदयंगळय्वत्तेंटु ५८। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मूवत्तु गूडियनुदयंगळु एण्भत्तेंटु ८८। उदयंगळु पन्नेरडु १२। संदृष्टिः—

पर्य्याप्तमनुष्ययोग्यं १०० ॥

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु.	१	४	१	८	५	५	४	६	५	१	२	१६	३०	१२
उ	९५	९४	९०	९१	८३	८०	७५	७१	६५	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	६	१०	९	१७	२०	२५	२९	३५	४०	४१	४३	५८	८८

अनुदयः पंच संयोज्य आहारकद्वयोदयाद्विंशतिः। उदयः अशीतिः। अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः पंचविंशतिः। उदयः पंचसप्ततिः। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयः एकान्नत्रिंशत्। उदयः एकसप्ततिः। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः पंचत्रिंशत्। उदयः पंचषष्टिः। सूक्ष्मसांपराये पंच संयोज्य अनुदयः चत्वारिंशत्। उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः एकचत्वारिंशत्। उदय; एकान्नषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः त्रिचत्वारिंशत्। उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगे अनुदयः षोडश संयोज्य तीर्थोदयादष्टापंचाशत्। उदयः द्वाचत्वारिंशत्। अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदयः— अष्टाशीतिः, उदयो द्वादश ॥ २०० ॥

६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय बीस। उदय अस्सी। व्युच्छित्ति पाँच।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय पच्चीस। उदय पिचहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय उनतीस। उदय इकहत्तर। व्युच्छित्ति छह।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय पैंतीस। उदय पैंसठ। व्युच्छित्ति पाँच।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें पाँच मिलाकर अनुदय चालीस। उदय साठ। व्युच्छित्ति एक।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय इकतालीस। उदय उनसठ। व्युच्छित्ति दो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसिणि एत्थीसहिदा तित्थयराहारपुरिससंढूणा ।
पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं ॥३०१॥

मनुष्यां स्त्रीसहितास्तीर्थंकराहारपुरुषषंढोनाः । पूर्णेतर इव अपूर्णे स्वानुपूर्व्यगत्यायुर्ज्ञेयं ॥

मानुषियोळुदययोग्यप्रकृतिगळु तोंभत्तारप्पुवेंतेंदोडे पर्य्याप्तमनुष्यनोलु पेळ्दुदययोग्यप्रकृतिगळ्नूररोळु स्त्रीवेदमुं कूडि तीर्त्थंकरनाममुमनाहारकद्वयमुमं पुरुषवेदमुमं षंढवेदमुमंनितप्पु प्रकृतिगळं कळेदोडे तावन्मात्रमेयप्पुदरिंदं । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळुदयच्छेदं मिथ्यात्वप्रकृतियोंदेयक्कुं १ । सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्टयमुमसंयतनोळु मनुष्यानुपूर्व्योदयमिल्लप्पुदरिनदिल्लि व्युच्छित्तियक्कुमंतप्पु ५ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियोंदे छेदमक्कु-१ । मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं ४ दुर्भगमुमनादेयमुमयशस्कीर्त्तियुमितेळु प्रकृतिगळुदयच्छेदमक्कुं । ७ । देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ नीचैर्ग्गोत्रमुमितप्पुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियेंप्पुवु । ५ ।

मानुष्युदययोग्यप्रकृतयः षण्णवतिः पर्याप्तमनुष्योक्तशते स्त्रीवेदं निक्षिप्य तीर्थकरत्वाहारकद्वयपुंषंढवेदानामपनयनात् । तत्र मिथ्यादृष्टौ उदयव्युच्छेदो मिथ्यात्वं । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं च असंयतेऽनुदयात् । मिश्रे मिश्रप्रकृतिः । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कदुर्भगानादेयायशस्कीर्तयः । देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कं नीचैर्गोत्रं च । प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयमेव । अप्रमत्तापूर्वकरणयोः गुणस्थानवत् चतुःषट् । अनिवृत्तिकरणभागभागेषु क्रमेण स्त्रीवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः । उपशांतकषाये वज्रनाराचं नाराचं । क्षीणकषाये षोडश । सयोगे त्रिंशत् । अयोगे तीर्थकृत्त्वाभावात् एकादश । एवं सति मिथ्यादृष्टौ

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय तैंतालीस । उदय सत्तावन । व्युच्छित्ति सोलह ।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय अंठावन । उदय बयालीस । व्युच्छित्ति तीस ।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय अठासी । उदय बारह ॥३००॥

मानुषीके उदययोग्य प्रकृतियाँ छियानवे । क्योंकि पर्याप्त मनुष्यके कही गयी सौ प्रकृतियोंमें-से तीर्थंकर, आहारकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेद घटाकर स्त्रीवेद मिलानेसे छियानवे होती हैं । उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी उदय व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और मनुष्यानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होती है ; क्योंकि यहाँ असंयतके मनुष्यानुपूर्वीका उदय नहीं होता । मिश्रमें मिश्र प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है । असंयतमें दूसरी अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति । देशसंयतमें तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क और नीच गोत्र । प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीन । अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें गुणस्थानोंकी तरह चार और छह । अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें स्त्रीवेद और अवेदभागमें संज्वलन क्रोध मान माया ।

सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्म लोभ । उपशान्त कषायमें वज्रनाराच नाराच । क्षीणकषायमें सोलह । सयोगीमें तीस और तीर्थंकरका अभाव होनेसे अयोगीमें ग्यारह । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका । उदय चौरानवे ।

२. सासादनमें एक मिलानेसे अनुदय तीन । उदय तिरानबे । व्युच्छित्ति पाँच ।

---

१. म °ंगलेयप्पु° । २. म °त्तिगलु ५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तसंयतनोळु स्त्यानगृद्धित्रयमेयुदयव्युच्छित्तियक्कु–३। मप्रमत्तनोळमपूर्व्वकरणनोळं गुणस्थानदोळ्पेळ्द नाल्कु ४ मारु ६ मुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु। अनिवृत्तिकरणन भागभागे गळोळु स्त्रीवेदमुं १ संज्वलनक्रोधमुं १ संज्वलनमानमुं १ संज्वलनमायेयुमेंतु नाल्कुं ४ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पुवु। सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभमों दे व्युच्छित्तियक्कु १ मुपशांतकषायनोळु वज्रनाराचनाराचशरीरसंहननद्वितयमुदयव्युच्छित्तियक्कुं २।

क्षीणकषायनोळु गुणस्थानदोळ्पेळ्द निद्रेयु १ प्रचलेयुं १ ज्ञानावरणपंचकमु ५ मंतरायपंचकमुं ५ दर्शनावरणचतुष्टयमु ४ मिन्तु पदिनारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति गळप्पुवु १६। सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु गुणस्थानदोळ्पेळ्द ३० मूवत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु। ३०। अयोगिकेवलिभट्टारकनोळन्यतरवेदनीयादि पन्नों दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पु ११ वेकें दोडे मानुषियोळु तीर्त्थोदयमिल्लप्पुदरिंदं।। यितुदयव्युच्छित्तिगळरियल्पडुत्तं विरलल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुमनुदयंगळु २। उदयंगळु तों भत्त नाल्कु प्रकृतिगळु, ९४। सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु मूरु ३। उदयंगळुतोंभत्तुमूरु ९३। मिश्रगुणस्थानदोळु अय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळें टरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७ उदयप्रकृतिगळेणभत्तोंभत्तु ८९। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळें टरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कलेदुदयंगलोलु कूडुत्तं विरलनुदयंगलेलु ७ उदयंगलेण्भत्तों भत्तु ८९। देशसंयतगुणस्थानदोळेलुगूडियनुदयप्रकृतिगळु पदिनाल्कु १४। उदयंगलेण्भत्तेरडु ८२। प्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळों दुगुंदिप्पत्तु १९। उदयंगलेप्पत्तेलु ७७। अप्रमत्तगुणस्थानदोलु मूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेप्पत्तनाल्कु–७४। अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळिप्पत्तारु २६। उदयंगळेप्पत्तु ७०। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु मूवत्ते-

---

अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती। उदयः चतुर्नवतिः। सासादने एकं संयोज्यानुदयः त्रीणि। उदयः त्रिनवतिः। मिश्रे अनुदयः पंच संयोज्य मिश्रप्रकृत्युदयात्सप्त। उदयः एकान्ननवतिः। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात्सप्त। उदयः एकान्ननवति। देशसंयते सप्त संयोज्य अनुदयः चतुर्दश उदयः द्व्यशीतिः। प्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः एकान्नविंशतिः। उदयः सप्तसप्ततिः। अप्रमत्ते त्रीणि संयोज्य अनुदयः द्वाविंशतिः उदयः चतुःसप्ततिः। अपूर्वकरणे चत्वारि संयोज्य अनुदयः षड्विंशतिः। उदयः सप्ततिः।

---

३. मिश्रमें पाँच मिलाकर मिश्रप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय सात। उदय नवासी। व्युच्छित्ति एक।

४. असंयतमें एक मिलानेसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय सात। उदय नवासी। व्युच्छित्ति सात।

५. देशसंयतमें सात मिलाकर अनुदय चौदह। उदय बयासी।

६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय उन्नीस। उदय सतत्तर। व्यु. तीन।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय बाईस। उदय चौहत्तर। व्यु. चार।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय छब्बीस। उदय सत्तर। व्यु. छह।

---

१. म° कमुमय्दु ५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रडु ३२। उदयंगळब्वत्तनाल्कु ६४। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोलु नाल्कुगूडियनुदयंगळु मूवत्तारु ३६। उदयंगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोलोंदुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु ३७। उदयंगळय्वत्तोंभत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडियनुदयप्रकृतिगलु मूवत्तोंभत्तु ३९। उदयंगळय्वत्तेळु ५७। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोलु पदिनारुगूडियनुदयंगलय्वत्तय्दु ५५। उदयंगलु नाल्वत्तोंदु ४१। अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळ्मूवत्तुगूडियनुदयंगळेण्भत्तय्दु ८५। उदयंगलु पन्नोंदे ११ कोंदोडे तीर्थोदयमिल्लप्पुदरिदं संदृष्टि :—

योनिमतिमनुष्योदययोगप्रकृतिगळु ९६

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	१	५	१	७	५	३	४	६	४	१	२	१६	३०	११
उ	९४	९३	८९	८९	८२	७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७	४१	११
अ	२	३	७	७	१४	१९	२२	२६	३२	३६	३७	३९	५५	८५

पूर्णेतरवदपूर्णे स्वानुपूर्व्यगत्यायुर्ज्ञेयं। मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टियोलुदययोग्यप्रकृतिगळु तिर्य्यंचमिथ्यादृष्टिलब्ध्यपर्य्याप्तकनोलु पेळ्वंते एप्पत्तोंदु ७१ प्रकृतिगळप्पु वल्लि तिर्य्यगानुपूर्व्यमं तिर्य्यग्गतिनाममं तिर्य्यगायुष्यमुमं कळेदु मनुष्यानुपूर्व्यंममं मनुष्यगतिनाममं मनुष्यायुष्यमं कूडुवुदेंबी विशेषमरियल्पडुगुं।

अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः द्वात्रिंशत्। उदयः चतुःषष्टि। सूक्ष्मसांपराये चत्वारि संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत्। उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः सप्तत्रिंशत्। उदयः एकान्नषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः एकान्नचत्वारिंशत्। उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगे षोडश संयोज्य अनुदयः पंचपंचाशत्। उदयः एकचत्वारिंशत्। अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदयः पंचाशीतिः। उदयः एकादश तीर्थाभावात्।

मनुष्यलब्ध्यपर्याप्ते उदयप्रकृतयः तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तवदेकसप्ततिः। तत्र तिरश्चः आनुपूर्व्यगत्यायूंषि नहि। मनुष्यस्य तानि ज्ञातव्यानि ॥ ३०१ ॥

---

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय बत्तीस। उदय चौंसठ। व्यु. चार।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें चार मिलाकर अनुदय छत्तीस। उदय साठ। व्यु. एक।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतीस। उदय उनसठ। व्यु. दो।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनतालीस। उदय सत्तावन। व्यु. सोलह।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर अनुदय पचपन। उदय इकतालीस।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय पचासी। उदय ग्यारह क्योंकि तीर्थंकरका अभाव है।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकमें उदय प्रकृतियाँ लब्ध्यपर्याप्तककी तरह इकहत्तर। इतनी विशेषता है कि यहाँ तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचगति और तिर्यंचायुके स्थानमें मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यगति और मनुष्यायुका उदय होता है ॥३०१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं भोगभूमिजमनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोलमुदययोग्यप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपरु :—

मणुसोघं वा भोगे दुब्भगचउणीच-संढ-थीणतियं ।
दुग्गदितित्थमपुण्णं संहदि-संठाणचरिमपणं ॥३०२॥
हारदुहीणा एवं तिरिये मणुदुच्चगोदमणुवाउं ।
अवणिय पक्खिव णीचं तिरियदु-तिरियाउ-उज्जोवं ॥३०३॥

मनुष्यौघवद्भोगे दुर्भगचतुर्नीचषंढस्त्यानगृद्धित्रयं दुर्गतितीर्थमपूर्णं संहननसंस्थान चरम पंच ॥

आहारद्वयहीनाः एवं तिरश्चि मनुष्यद्वयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायुरपनीय प्रक्षिप नीचं तिर्य्यग्द्वय तिर्य्यगायुरुद्योतं ॥

भोगभूमिजमनुष्यरुगळ्गुदययोग्य प्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२। स्थावरद्विकमुं २। तिर्य्यग्द्विकमुं २। आतपद्विकमुं २ मेकेंद्रियमुं १। विकलत्रयमुं ३ साधारणशरीरनाममु १ मित-रायुस्त्रितयमुं वैक्रियिकषट्कमु ६ मितिप्पत्तुं प्रकृतिगळं २० कळेदु मनुष्यौघदोळु नूरेरडें तंते इल्लियुमवरोळु दुर्ब्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्तियुं नीचैर्ग्गोत्रमुं षंढवेदमुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुम-प्रशस्तविहायोगतियुं तीर्त्थंकरनाममुमपर्य्याप्तनाममुं चरमसंहनन पंचकमु चरमसंस्थान पंचकमुं माहारकद्वयमुमितिप्पत्तनाल्कु प्रकृतिगळु २४ भोगभूमिमनुष्यरोळुदयिसुववल्लप्पुदरिदमिवं कळेदोडे प्पत्तेंदु प्रकृतिगळप्पुवु ७८ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दे छेदमक्कुं १। सासादननोळ-नंतानुबंधिकषायचतुष्टयमे छेदमक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे १ च्छेदमक्कु १ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयं मनुष्यानुपूर्व्यमुमितय्दुं प्रकृतिगळ्गे व्युच्छित्तियक्कु ५ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितेरडु प्रकृतिगळनुदयंगळु २। उदयं-

अथ भोगभूमिमनुष्यतिरश्चोर्गाथाद्वयेनाह—

भोगभूमिमनुष्याणां मनुष्यौघवदिति द्व्युत्तरशतं। तत्रापि दुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्तिनीचैर्गोत्रषंढ-वेदस्त्यानगृद्धित्रयाप्रशस्तविहायोगतितीर्थकरत्वापर्याप्तचरमपंचसंहननपंचसंस्थानाहारकद्वयं न इत्युदययोग्य-प्रकृतयः अष्टसप्ततिः। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं छेदः। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रप्रकृतिः।

योनिमन्मनुष्य रचना ९६

मि.	आ.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
१	५	१	७	५	३	४	६	४	१	२	१६	३०	११
९४	९३	८९	८९	८२	७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७	४१	११
२	३	७	७	१४	१९	२२	२६	३२	३६	३७	३९	५५	८५

आगे दो गाथाओंसे भोगभूमिके मनुष्य और तिर्यंचोंमें कहते हैं—

भोगभूमिके मनुष्योंमें सामान्य मनुष्यकी तरह एक सौ दो उदययोग्य हैं। किन्तु उन एक सौ दोमें-से भी दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नीचगोत्र, नपुंसकवेद, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, अप्रशस्तविहायोगति, तीर्थंकर, अपर्याप्त, अन्तके पाँच संहनन और

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

गळप्पत्तारु ७६। सासादनगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु मूरु ३। उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडिमत्तमुदयंगळोळु मनुष्यानुपूर्व्यमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७। उदयंगळेप्पत्तोंदु ७१। असंयतगुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयंगळेंटरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६ उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ संदृष्टिः—

	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	५
उ	७६	७५	७१	७२
अ	२	३	७	६

"एवं तिरश्चि मनुष्यद्वयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायुष्य" मेंबी नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदु नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यग्द्वयमुं तिर्य्यगायुष्यमुमुद्योतमुमेंब प्रकृतिपंचकमं कूडुत्तं विरलु भोगभूमितिर्य्यंचरोळुदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तो भत्तु ७९। मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियोंदे व्युच्छित्तियक्कु १। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमे व्युच्छित्तियक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियोंदे व्युच्छित्तियक्कु-१। मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमितय्दे प्रकृतिगळु व्युच्छित्तियेक्कु ५। मितागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडु मनुदयंगळु २ उदयंगळेप्पत्तेळु ७७। सासादनगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु ३। उदयंगळेप्पत्तारु

असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं मनुष्यायुश्च ५। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती अनुदयः। उदये षट्सप्ततिः। सासादने एकां संयोज्य अनुदये त्रीणि। उदये पंचसप्ततिः। मिश्रे अनुदये चतुर्भिर्मनुष्यानुपूर्व्यं संयोज्य मिश्रोदयात्सप्त। उदये एकसप्ततिः। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानुपूर्व्योदयात् षट्। उदये द्वासप्ततिः।

पाँच संस्थान तथा आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य प्रकृतियाँ अठहत्तर हैं। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वको व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, मिश्रमें मिश्रप्रकृति और असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार मनुष्यायु इन पाँचकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुदय। उदय छिहत्तर। व्यु. १।

२ सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन। उदय पचहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

३. मिश्रमें सासादनमें अनुदय तीनमें चार व्युच्छित्ति तथा मनुष्यानुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्रका उदय होनेसे एक घटाकर सातका अनुदय है। उदय इकहत्तरका।

४. असंयतमें एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे दो घटाकर अनुदय छह। उदय बहत्तर।

---

१. म °ष्यंगलं कलेदु नीचैर्गोत्र तिर्यग्द्विक तिर्यगायुरुद्योतमुमेंब। २. म °यक्कु मिथ्या°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयंगलोलु तिर्य्यंगानुपूर्व्यमं कळेदनुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळेलु ७। उदयंगलेप्पत्तेरडु ७२। असंयतगुणस्थानदळों दुगूडियदयंगळें रोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यगानुपूर्व्यमं कळेदुदयंगळोलु विरलनुदयंगळारु ६। उदयप्रकृतिगळेप्पत्त मूरु ७३। संदृष्टिः

भोगभूमि तिर्यंच योग्य ७९

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	५
उ	७७	७६	७२	७३
अ	२	३	७	६

एवं तिरश्चि मनुष्यद्वयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायूंष्यपनीय नीचैर्गोत्रतिर्यग्द्वयतिर्यगायुरुद्योतेषु निक्षिप्ते भोगभूमितियक्षु उदययोग्या एकोनाशीतिः। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रप्रकृतिः। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं तिर्यगायुश्च ५। एवं सति मिथ्यादृष्टौ | मिश्रसम्यक्त्वे अनुदयः। उदये सप्तसप्ततिः। सासादने एकां संयोज्य अनुदये त्रयं। उदये षट्सप्ततिः। मिश्रे अनुदयः चतुर्भिस्तिर्यगानुपूर्व्यं संयोज्य मिश्रोदयात्सप्त। उदयो द्वासप्तति। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृतितिर्यगानुपूर्व्योदयात् षट् उदयः त्रिसप्ततिः ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥

इसी प्रकार तिर्यंचमें मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र और मनुष्यायु घटाकर नीचगोत्र तिर्यंचगति तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत मिलानेपर भोगभूमि तिर्यंचोंमें उदययोग्य उन्यासी ७९ हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, मिश्रमें मिश्रप्रकृति और असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार तथा तिर्यंचायु पाँचकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय सतहत्तर। व्युच्छित्ति एक।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन। उदय छिहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

३. मिश्रमें तीनमें चार व्युच्छित्ति और तिर्यंचानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय सात। उदय बहत्तर। व्युच्छित्ति एक।

४. असंयतमें सातमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय छह। उदय तिहत्तर ॥३०२-३०३॥

भोगभूमि मनुष्य रचना ७८

मि.	सा.	मि.	अ.
१	४	१	५
७६	७५	७१	७२
२	३	७	६

भोगभूमि तिर्यंच रचना ७९

मि.	सा.	मि.	अ.
१	४	१	५
७७	७६	७२	७३
२	३	७	६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं देवगतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

भोगं व सुरे णरचउणराउवज्जूण सुरचउसुराउं ।
खिव देवे णेवित्थी इत्थिम्मि ण पुरिसवेदो य ॥३०४॥

भोगवत्सुरे नरचतुर्णरायुर्वज्रोनं सुरचतुः सुरायुः । क्षिप देवे नैव स्त्री स्त्रियां न पुरुषवेदश्च ॥

भोगभूमिजरोळ् पेळ्दंते सुररोळमुदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तें टप्पुववरोळु मनुष्यगतिद्वयमुमौदारिकद्वयमुमें ब नरचतुष्टयमुमं नरायुष्यमुमं वज्रऋषभनाराचशरीरसंहननमुमंतारुं प्रकृतिगळोळं कळेदोडेप्पत्तेरडवरोळु देवगतिद्वितयं वैक्रियिकद्वितयमुमें ब सुरचतुष्कमुं सुरायुष्यमितेवुं प्रकृतिगळं कूडुत्तं विरलु सामान्यदेवोदययोग्य प्रकृतिगळेप्पत्तेळु ७७। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दे व्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमे व्युच्छित्तियक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे छेदमक्कुं १। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं सुरचतुष्कमुं सुरायुष्यमुमितों भत्तु ९ प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगप्पुवितागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुमनुदयंगळु २। उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५। सासादनगुणस्थानदोळों दु गूडियनुदयंगळु मूरु ३। उदयप्रकृतिगळेप्पत्त नाल्कु ७४। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडिदेवानुपूर्व्यमं उदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तु ७०। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयप्रकृतिगळें टरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं देवानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनु-

अथ देवगतावाह—

सुरेषु भोगभूमिवदिति अष्टसप्ततिः । तत्र मनुष्यगतिद्वयौदारिकद्वयनरायुर्वज्रऋषभनाराचसंहनान्यपनीय देवगतिद्वयवैक्रियिकद्वयसुरायुस्सु निक्षिप्तेषु सामान्यदेवोदययोग्याः सप्तसप्ततिः । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं । मिश्रे मिश्रं । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कसुरचतुष्कसुरायूंषि । एवं सति मिथ्यादृष्टौ अनुदये मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । उदये पंचसप्ततिः । सासादने एकां संयोज्य अनुदयस्तिस्रः ।

आगे देवगतिमें कहते हैं—

देवोंमें भोगभूमिकी तरह अठहत्तर उदययोग्य है। किन्तु उनमें-से मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यायु, वज्रर्षभनाराच संहनन घटाकर देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग और देवायु मिलानेसे सामान्य-देवमें उदययोग्य सतहत्तर ७७ होती हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, मिश्रमें मिश्र, असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार, देवायु, वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक अंगोपांगकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुदय। उदय पचहत्तर।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन। उदय चौहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

१ म °मुमनितारुं प्रकृतिगलं कले°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयंगळारु ६ उदयंगळेप्पत्तोंदु संदृष्टि :—

देवसामान्ययोग्य ७७

०	मि	सा	मि	अ
व्युच्छि	१	४	१	९
उदी	७५	७४	७०	७१
अनु	२	३	७	६

यिल्लि देवगतियोळ् देवर्क्कळोळु पुंवेदोदयमे देवियरोळ् स्त्रीवेदोदयमे नियतोदयमक्कुमप्पुदरिंदं देवर्कळोळ् स्त्रीवेदमं कळेदोडे सौधर्म्माद्युपरिमग्रैवेयकावसानमाद सुररोळुदययोग्य प्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६। यिल्लियुं सामान्यसुररोळावुदोंदु कथनमविल्लियुमरियल्पडुगुं सुगमं। संदृष्टि :—

सौधर्म्माद्युपरिमग्रैवेयकयोग्य ७६

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	९
उ	७४	७३	६९	७०
अ	२	३	७	६

उदये चतुःसप्ततिः। मिश्रे अनुदयः चतुर्भिर्देवानुपूर्व्यं संयोज्य मिश्रोदयात् सप्त। उदये सप्ततिः। असंयते अनुदय एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृतिदेवानुपूर्व्योदयात् षट्। उदये एकसप्ततिः।

देवेषु पुंवेदस्यैवोदयः। देवीषु स्त्रीवेदस्यैवेति नियमात् स्त्रीवेदेऽपनीते सौधर्माद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषूदययोग्यप्रकृतयः षट्सप्ततिः। अन्यत्सर्वं सामान्यसुरवत् ज्ञातव्यं। संदृष्टिः—

सौधर्माद्युपरिमग्रैवे = यो ७६				
व्यु	१	४	१	९
उ	७४	७३	६९	७०
अ	२ मि	३ सा	७ मि	६ अ

---

३. मिश्रमें चार और देवानुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्रका उदय होनेसे अनुदय सात। उदय सत्तर। व्यु. एक।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और देवानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय छह। उदय एकहत्तर। तथा देवोंमें पुरुषवेदका ही उदय होता है और देवांगनाओंमें स्त्री-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुदिशानुत्तर चतुर्द्दशविमानंगळोळु पेळदपरु :—

अविरदठाणं एक्कं अणुद्दिसादिसु सुरोघमेव हवे ।
भवणतिकप्पित्थीणं असंजदे णत्थि देवाणू ॥३०५॥

अविरतस्थानमेकमनुदिशादिषु सुरौघ एव भवेत्। भवनत्रयकल्पस्त्रीणामसंयते नास्ति देवानुपूर्व्यं ॥

अनुदिशानुत्तरविमानंगळोळु असंयतगुणस्थानमो देयक्कुमप्पुदरिंदमुदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेयप्पुवु ७०। भवनत्रयदेवदेवियर्गं कल्पजस्त्रीयर्गं सुरौघमेयक्कुमदुकारणदिंदमुदययोग्यप्रकृतिगलेप्पत्तेळरोळु ७७ देवर्कळ्गेल्लं पुंवेदमं देवियर्गेल्लं स्त्रीवेदमंयक्कुमदु कारणदिंदं विवक्षित देवदेवियरोळुदयप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६। ई भवनत्रयजरोळं कल्पजस्त्रीयरोळं सम्यग्दृष्टिगळपुट्टरप्पुदरिंदमसंयतगुणस्थानदोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदु सासादननोळुदयव्युच्छित्तियं माडुत्तं विरलु सासादनसम्यग्दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळय्दु ५। असंयतसम्यग्दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळें टु ८। शेषकथनमनितुं सुगममक्कुं। संदृष्टि :—

भवन ३ कल्प स्त्रीयोग्य ७६

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	५	१	८
उ	७४	७३	६९	६९
अ	२	३	७	७

॥ ३०४ ॥ अनुदिशादिष्वाह—

अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानेषु असंयतगुणस्थानमेव स्यात् । तेन उदययोग्याः सप्ततिरेव । भवनत्रयदेवदेवीनां कल्पस्त्रीणां च सुरौघ एव इत्युदययोग्याः सप्तसप्ततिः ॥७७॥ केवलदेवेषु देवीषु वा षट्सप्ततिः ॥७६॥ भवनत्रये कल्पस्त्रीषु च सम्यग्दृष्ट्यनुत्पत्तेरसंयतगुणस्थाने देवानुपूर्व्यं नास्तीति सासादने व्युच्छित्तिः पंच ५ । असंयते अष्टौ ८ । शेषं सर्वं सुगमं ।

वेदका ही उदय होता है । अतः देवोंमें स्त्रीवेदके बिना सौधर्मसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त स्त्रीवेदके बिना छिहत्तर उदययोग्य है । अन्य सब सामान्य देवोंकी तरह जानना ॥३०४॥

अनुदिश आदिमें कहते हैं—

नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानोंमें एक असंयत गुणस्थान ही होता है अतः वहाँ उदययोग्य सत्तर ही हैं। भवनत्रिकके देव और देवियोंमें तथा कल्पवासी देवांगनाओंमें सामान्यदेवकी तरह उदययोग्य सतहत्तर ७७ हैं। केवल देव और देवियोंमें उदययोग्य छिहत्तर हैं। भवनत्रिक और कल्पवासी देवियोंमें सम्यग्दृष्टि मरकर जन्म नहीं लेता इसलिए असंयत गुणस्थानमें देवानुपूर्वीका उदय नहीं होता। उसकी व्युच्छित्ति सासादनमें होनेसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरमिंद्रियमार्ग्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं गाथात्रयदिदं पेळ्दपरु :—

तिरिय अपुण्णं वेगे परघादचउक्क-पुण्ण-साहरणं ।
एइंदियजसथीणतिथावरजुगलं च मिलिदव्वं ॥३०६॥

तिर्य्यगपूर्णवदेकेंद्रिये परघातचतुष्कपूर्णसाधारणमेकेंद्रिययशः स्त्यानगृद्धित्रितयस्थावरयुगळं च मिलितव्यं ॥

रिणमंगोवंगतसं संहदिपंचक्खमेवमिह वियले ।
अवणिय थावरजुगलं साहरणेयक्खमादावं ॥३०७॥

ऋणमंगोपांगत्रससंहननपंचेंद्रियमेवमिह विकले। अपनीय स्थावरयुगलं साधारणैकाक्षमातपं ॥

खिव तसदुग्गदिदुस्सरमंगोवंगं सजादिसेवट्टं ।
ओघं सयले साहारणिगिविगलादावथावरदुगूणं ॥३०८॥

क्षिप त्रसदुर्ग्गतिदुःस्वरमंगोपांगं स्वजाति सृपाटिकासंहननं ओघः सकले साधारणैकविकलातपस्थावरद्विकोनः ॥

भवनत्रयकल्पस्त्रीयोग्य ७६

व्यु	१	५	१	८
उ	७४	७३	६९	६९
अ	२	३	७	७
	मि	सा	मि	अ

३०५। अथेंद्रियमार्गणायां गाथात्रयेणाह—

पाँचकी व्युच्छित्ति होती है और असंयतमें आठकी व्युच्छित्ति होती है। शेष सब सुगम है ॥३०५॥

सौधर्मादि उपरिग्रै० ७६

	मि.	सा.	मि.	अ.
व्यु.	१	४	१	९
उदय	७४	७३	६९	७०
अनुदय	२	३	७	६

भवनत्रिक-कल्पस्त्री—७६

	मि.	सा.	मि.	अ.
व्यु.	१	५	१	८
उदय	७४	७३	६९	६९
अनुदय	२	३	७	७

आगे तीन गाथाओंसे इन्द्रिय मार्गणामें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेंद्रिये एकेंद्रियमार्ग्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळु तिर्य्यंगपर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळगे पेळदेप्पत्तोंदु ७१ प्रकृतिगळप्पुववरोळ परघातातपोद्योतोच्छ्वासमें ब परघातचतुष्कमुमं पर्य्याप्तनाममुमं साधारणशरीरनाममुमनेकेंद्रियजातिनाममुमं यशस्कीर्त्तिनाममुमं स्त्यानगृद्धित्रयमुमं स्थावरमुमं सूक्ष्ममुमेंनितु पदिमूरुं प्रकृतिगळं १३ कूडिदोडेण्भत्तनाल्कप्पुव ८४ वरोळु मत्ते ऋणं अंगोपांगमुं त्रसनाममुं सृपाटिकासंहननमुं पंचेंद्रियजातिनाममुमें ब नाल्कु प्रकृतिगळप्पु ४ ववं कळेदोडेण्भत्तु प्रकृतिगळप्पुवु । यिल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमातपनाममुं सूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणशरीरमेंब सूक्ष्मत्रयमुमितु तन्न गुणस्थानदोळु पेळद प्रकृतिपंचकमुं मत्तं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं परघातनाममुं उद्योतनाममुच्छ्वासनाममुमितारु ६ प्रकृतिगळु सासादननोळुदयमिल्लप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टियोळवं कूडिदोडुदयव्युच्छित्तिगळु पन्नोंदेयप्पुवु ११ । सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्कमुमेकेंद्रियजातिनाममुं स्थावरनाममुमितारुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं । ६ । यिल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमक्कुमुदयप्रकृतिगळेण्भत्तु ८० । सासादनगुणस्थानदोळनुदयंगळु पन्नोंदु ११ उदयंगळरुवत्तोंभत्तु ६९ । संदृष्टि :—

एकेंद्रिय योग्य ८०

०	मि.	सा.
व्यु	११	६
उ	८०	६९
अ	०	११

एकेंद्रियमार्गणायां उदययोग्याः तिर्यगपर्याप्तपंचेंद्रियवदित्येकसप्ततिः । तत्र परघातातपोद्योतोच्छ्वासपर्याप्तसाधारणैकेंद्रिया यशस्कीर्तिस्त्यानगृद्धित्रयस्थावरसूक्ष्माणि मेलयित्वा अंगोपांगत्रससृपाटिकासंहननपंचेंद्रियेष्वपनीतेष्वशीतिः स्युः । तत्र मिच्छादावं सुहुमतियमिति पंच पुनः स्त्यानगृद्धित्रयपरघातोद्योतोच्छ्वासाः सासादनानुदयात् षट् च मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः ११ । सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कैकेंद्रियस्थावराणि षट् । तथासति मिथ्यादृष्टौ अनुदयः शून्यं । उदयः अशीतिः ८० । सासादने अनुदये एकादश ११ । उदये एकोनस-

एकेन्द्रिय मार्गणामें उदय योग्य तिर्यंचलब्ध्यपर्याप्तकी तरह इकहत्तर ७१ । किन्तु उसमें परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, पर्याप्त, साधारण, एकेन्द्रिय, अयशस्कीर्ति, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, स्थावर और सूक्ष्म मिलाकर औदारिक अंगोपांग, त्रस, सृपाटिका संहनन और पंचेन्द्रिय घटानेपर अस्सी होती हैं । उसमें मिथ्यादृष्टिमें ग्यारहकी व्युच्छित्ति होती है—मिथ्यात्व, आताप और सूक्ष्म आदि तीन ये पाँच तथा स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वासका सासादनमें अनुदय होनेसे छहकी व्युच्छित्ति भी मिथ्यादृष्टिमें होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर छहकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य, उदय अस्सी ८० । सासादनमें अनुदय ग्यारह ११ । उदय उनहत्तर ६९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमिह वियळे विकलत्रयदोळमिते एणभत्तुं ८०। प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवल्लि स्थावरमुं सूक्ष्ममुं साधारणशरीरमेकेंद्रियजातिनाममुमनातपनाममुमितय्दुं ५ प्रकृतिगळं कळेदोडे प्पत्तय्दप्पु ७५ ववरोळु त्रसनाममुमं अप्रशस्तविहायोगतियुमं दुःस्वरनाममुं अंगोपांगनाममुमं स्वजातिनाममुं सृपाटिकासंहननमुमेंनितारुं ६ प्रकृतिगळं प्रक्षेपिसुत्त विरलेण्भत्तों दुदयप्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ८१ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं परघातमुच्छ्वासमुद्योतमप्रशस्तविहायोगतियुं दुःस्वरनाममुमितु पत्तुं प्रकृतिगळ्गे सासादननोळुदयमिल्लप्पुदरिंदमा प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु १०। सासादननोळु अनंतानुबंधिचतुष्कमुमं द्वींद्रियादिजातिनामनामत्रितयदोळु स्वजातिनाममों दं तु पंच प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पु ५ वंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयंगळेण्भत्तों दु ८१। सासादन-गुणस्थानदोळनुदयंगळ पत्तुं १० उदयंगळेप्पत्तों दु ७१। संदृष्टि :—

विकले ३ यो० ८१

०	मि	सा
व्यु	१०	५
उ	८१	७१
अ	०	१०

सतिः ६९। एवमिह वियले-विकलत्रये अशीतिं संस्थाप्य तत्र स्थावरसूक्ष्मसाधारणैकेंद्रियातपानपनीय त्रसाप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वरांगोपांगस्वजातिसृपाटिकासंहननेषु प्रक्षिप्तेषु एकाशीतिरुदययोग्या भवंति। तत्र मिथ्यात्वपर्याप्तस्त्यानगृद्धित्रयं पुनः परघातोच्छ्वासोद्योताप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वराः सासादने अनुदयात् मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः। १०। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं स्वैकतरजातिश्चेति पंच। एवं सति मिथ्यादृष्टावनुदये शून्यं। उदये एकाशीतिः ८१। सासादने अनुदये १०। उदये एकसप्ततिः ७१।

इसी प्रकार विकलत्रयमें अस्सीमें-से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय और आतपको घटाकर त्रस, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर औदारिक अंगोपांग, सृपाटिका संहनन और अपनी-अपनी जाति (दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय) मिलानेपर उदययोग्य इक्यासी होती हैं।

विकलत्रयमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त तथा स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वरका सासादनमें अनुदय होनेसे मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति दस १०। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और अपनी-अपनी जाति इस तरह पाँच। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय इक्यासी। सासादनमें अनुदय दस और उदय इकहत्तर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकलेंद्रियंगळोळु ओघः सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ साधारणैकेंद्रिय विकलत्रयातपस्थावरसूक्ष्ममें बें टुं ८ प्रकृतिगळं कळेवोडुवययोग्यप्रकृतिगळु नूरपदिनाल्कप्पु ११४ अल्लि पंचेंद्रियत्वं चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं चतुर्द्दशगुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वमुमपर्य्याप्तनाममुमें बेरडुं प्रकृतिगळगुदयच्छेदमक्कुं २। सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्कमे छेदमक्कुं ४। मिश्रनोळं मिश्रप्रकृतिये च्छेदमक्कु-१ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयादिपदिनेळुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं १७। देशसंयतनोळु एंटु प्रकृतिगळ्गुदयच्छेदमक्कुं ८। मेले प्रमत्तादि नवगुणस्थानंगळोळु सामान्यगुणस्थानदोळपेळदंतप्पुं ५ नाल्कु ४ आरु ६ आरु ६ ओं दु १ एरडु २ पदिनारुं १६ मूवत्तुं ३० पन्नेरडुं १२ प्रकृतिगळ्गे यथाक्रमदिंदमुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुं तीर्त्थमुमितप्पुवुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं ५। उदयप्रकृतिगळु नूरों भत्तु १०९। सासादनगुणस्थानदोळु एरडु गूडियनुदय प्रकृतिगळेळु ७। अवरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळें टु ८। उदयंगळु नूरारु १०६। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडिदनुदयंगळु पन्नेरडरोळु शेषानुपूर्व्यंगळु मूरुमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु [1]कूडुत्तंमनुदयंगळोळु मिश्रप्रकृतियनुयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनाल्कु १४। उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडिदनुदयंगळु पदिनय्द-

सकलेंद्रियेषु ओघः द्वाविंशत्युत्तरशतं १२२। तत्र च साधारणैकेंद्रियविकलत्रयातपस्थावरसूक्ष्मेष्वपनीतेषु उदययोग्यं चतुर्दशोत्तरशतं ११४। गुणस्थानानि चतुर्दश। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वापर्याप्तद्वयं छेदः २। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रप्रकृतिः १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कादिसप्तदश १७। देशसंयतेऽष्टौ। प्रमत्तादिषु गुणस्थानवत् पंच ५ चत्वारि ४ षट् ६ षट् ६ एकं १ द्वे २ षोडश १६ त्रिंशत् ३० द्वादश १२। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वाऽनुदयः। उदये नवोत्तरशतं १०९। सासादनेऽनुदयः द्वयं नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अष्टौ ८। उदयः षडुत्तरशतं १०६। मिश्रेऽनुदयः चत्वारि ४ शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयाच्चतुर्दश १४। उदये शतं। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य

पंचेन्द्रियोंमें गुणस्थानकी तरह उदय योग्य एक सौ बाईस १२२ में से साधारण, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, स्थावर, सूक्ष्म घटानेपर उदययोग्य एक सौ चौदह ११४। गुणस्थान चौदह। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति २। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार ४। मिश्रमें मिश्र प्रकृति १। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण आदि सतरह १७। देशसंयतमें आठ ८। प्रमत्त आदिमें गुणस्थानकी तरह पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, अहारकद्विक और तीर्थंकरका अनुदय। उदय एक सौ नौ १०९। व्युच्छित्ति दो।

२. सासादनमें पाँचमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ। उदय एक सौ छह १०६। व्यु० ४

३. मिश्रमें आठमें चार तथा शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय चौदह। उदय सौ। व्यु. एक।

१. म कूडिमत्तमनुदयंगं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोळु चतुर्ग्गतिगळोळमसंयतसम्यग्दृष्टि पुट्टुगुमप्पुदरिंदमानुपूर्व्यचतुष्कमुमं सम्यक्त्वप्रकृतियुमनितप्पुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तुं १०। उदयप्रकृतिगळु नूरनाल्कु १०४ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळु २७। उदयंळेण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तगुणस्थानदोळु एंटुगूडियनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तप्पदरोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवत्तमूरु ३३। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेंटु ३८। उदयंगळेप्पत्तारु ७६। अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तेंटु ४८। उदयगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळय्वत्त नाल्कु ५४। उदयंगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळय्वत्तय्दु ५५। उदयंगळय्वत्तोंभत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळु एरडुगूडियनुदयंगळय्वत्तेळु ५७। उदयंगळुमय्वत्तेळु ५७। सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळेप्पत्तमूररोळु तीर्त्थंकरनाममं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेप्पत्तेरडु ७२। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। अयोगिकेवलिभट्टारक-

---

चतुरानुपूर्व्यसम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्दश १०। उदयः चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयः सप्तविंशतिः २७। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्ते अनुदयः अष्ट संयोज्य आहारकद्वयोदयात्त्रयस्त्रिंशत् ३३। उदय एकाशीतिः। ८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयोऽष्टात्रिंशत् ३८। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चत्वारि संयोज्य अनुदयः द्वाचत्वारिंशत् ४२। उदयः द्वासप्ततिः ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः अष्टाचत्वारिंशत् ४८। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः चतुःपंचाशत् ५४। उदयः षष्टिः ६०। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदये पंचपंचाशत् ५५। उदये एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदये सप्तपंचाशत् ५७। उदयेऽपि सप्तपंचाशत् ५७। संयोगे अनुदयः षोडश संयोज्य तीर्थंकरत्वोदयाद् द्वासप्ततिः ७२। उदये द्वाचत्वारिंशत् ४२। अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदये

---

४. असंयतमें एक मिलाकर तथा चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय दस। उदय एक सौ चार। व्यु. सतरह।

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय सत्ताईस। उदय सतासी। व्यु. आठ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय तैंतीस, क्योंकि आहारकद्वयका उदय है। उदय इक्यासी। व्यु. पाँच।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय अड़तीस। उदय छिहत्तर। व्यु. चार।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय बयालीस। उदय बहत्तर। व्यु. छह।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय अड़तालीस। उदय छियासठ।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें छह मिलाकर अनुदय चौवन। उदय साठ। व्यु. एक।

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय पचपन। उदय उनसठ। व्यु. दो।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय सत्तावन। उदय भी सत्तावन। व्यु. सोलह।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर अनुदय बहत्तर क्योंकि तीर्थंकरका उदय है। उदय बयालीस। व्यु. तीस।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानदोळ् मूवत्तुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् नूरेरडु १०२। उदयंगळ् पन्नेरडु १२। संदृष्टि :—

सकलेंद्रिययोग्य ११४

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	८	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७	७२	१०२

अनंतरं कायमार्ग्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं द्व्यर्द्धगाथासूत्रदिदं पेळ्दपरु :—

एयं वा पणकाए ण हि साहारणमिणं च आदावं ।
दुसु तद्दुगमुज्जोवं कमेण चरिमम्मि आदावं ॥३०९॥

एकेंद्रियवत्पंचकाये न हि साधारणमिदं चातपः द्वयोस्तद्वयमुद्योतः क्रमेण चरमे आतपः ॥

एकेंद्रियवत्पंचकाये एकेंद्रियमार्ग्गणेयोळु पेळ्दंते अय्दुं कायमार्ग्गणेगळोळुदययोग्यप्रकृतिगळेंभत्तप्पुवु ८०। अदेंतेंदोडे सामान्योदयप्रकृतिगळ् १२२। नूरिप्पत्तेरडरोळु नारकायुष्यमुमं १। देवायुष्यमुमं १। मनुष्यायुष्यमुमं १। उच्चैर्ग्गोत्रमुमं १ मनुष्यद्विकमुमं २। आहारकद्विकमुमं २। वैक्रियिकषट्कमुमं ६। तीर्त्थमुमं १। विकलत्रयमुमं ३। स्त्रीवेदमुमं १। पुरुषवेदमुमं १। स्वरद्वयमुमं २। विहायोगतिद्वयमुमं २। आदेयनाममुमं १। संस्थानाद्यपंचकमुमं ५। संहननषट्कमुमं ६। सुभगनाममुमं १। सम्यक्त्वप्रकृतियुमं १। मिश्रप्रकृतियुमं १। औदारिकांगोपांगमुमं १। त्रसनाममुमं १। पंचेंद्रियजातिनाममुम १ मंतितु नाल्वत्तेरडु प्रकृतिगळं कळेदोडेतावन्मात्रंगळप्पुदरिंदं। अल्लि साधारणमं कळेदोडे पृथ्वीकायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तोंभत्तप्पुवु ७९। (८०) मत्तमा एंभत्तुप्रकृतिगळोळु ई साधारणमुमं आतपनाममुमं कळेदोडप्कायिकोदययोग्यप्रकृति-

द्व्युत्तरशतं १०२। उदयो द्वादश। ३०६–३०८॥ अथ कायमार्गणायामाह—

एकेंद्रियमार्गणावत् पंचकायमार्गणायामशीतिः ८०। तत्र साधारणेऽपनीते पृथ्वीकायिकोदययोग्या

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय एक सौ दो। उदय बारह ॥३०६-३०८॥

विकलत्रय रचना

मि	सा
१०	५
८१	७१
०	१८

सकलेन्द्रिय योग्य ११४

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.	अ.
२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
५	८	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७	७२	१०२

आगे कायमार्गणामें कहते हैं—

एकेन्द्रिय मार्गणाकी तरह पाँच कायमार्गणामें उदययोग्य अस्सी ८०। उसमें-से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(८०)

गळेप्पत्तें टप्पुवु ७८। मत्तमा एण्भत्तुं प्रकृतिगळोळु असाधारणातपद्वयसहितमागि उद्योतनाममुमं कळेदोडे तेजस्कायिकवायुकायिकमेंबेरडेडेयोळमेप्पत्तेळुमेप्पत्तेळु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु। ते ७७। वा ७७। मत्तं कमेण चरिमम्मि आदावं ण हि वनस्पतिकायिकंगळोळाएण्भत्तरोळातपनाममों दं कलेदोडुदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तों भत्तप्पुवु ७९। अंतागुत्तं विरलु पृथ्वीकायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तों भत्तु ७९। गुणस्थानंगळेरडप्पुवेंतेंदोडे ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेजदुगे एंदितु पारिशेषिक न्यायदिदं पृथ्वीकायिकंगळोळं अप्कायिकंगळोळं वनस्पतिकायिकंगळोळं सासादनसम्यग्दृष्टि पुट्टुगुमप्पुदरिंदमल्लि पुट्टुवसासादनंगवस्थानकालमुत्कृष्टदिंदमारावलि जघन्यदिंदमेकसमयमेयप्पुदरिंदं तद्गुणस्थानदोळुदययोग्यमल्लद मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतपनाममुं १ सूक्ष्मनाममुं १ अपर्याप्तनाममुमेंब नाल्कुं ४ प्रकृतिगळुं यिंद्रियपर्याप्तियिदं मेलुदयिसुव स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३। उच्छ्वासपर्याप्तियिदं मेलुदयिसुव उच्छ्वासनाममुं १ शरीरपर्याप्तियिदं मेलुदयिसुव परघातनाममु १ मुद्योतनाममुं १ मितु पत्तुं प्रकृतिगळ्गं मिथ्यादृष्टियोळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १०। सासादननोळु अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममु १ मितारुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कु ६ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयप्रकृतिगळेप्पत्तों भत्तु ७९। सासादनगुणस्थानदोळनुदयंगळु पत्तु १० उदयंगळरुवत्तों भत्तु ६९। संदृष्टि :

एकान्नाशीतिः। ७९। पुनस्तत्राशीत्यां साधारणातपद्वयेऽपनीतेऽप्कायिकोदययोग्या अष्टसप्ततिः ७८। पुनस्तत्राशीत्यां साधारणातपोद्योतत्रयेऽपनीते तेजोवातकायिकयोरुदययोग्याः सप्तसप्ततिः ७७। पुनः क्रमेण चरिमम्हि आतपेऽपनीते वनस्पतिकायिके उदययोग्याः एकान्नाशीतिः ७९। तथासति पृथ्वीकायिकोदययोग्या एकान्नाशीतिः ७९। गुणस्थानद्वयं कुतः? णहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहमगे य तेउदुगे। इति पारिशेष्यात् पृथ्व्यप्प्रत्येकवनस्पतिषु सासादनस्योत्पत्तेः। तत्रोत्पन्नसासादनस्य तद्गुणस्थाने उदययोग्यानि मिथ्यात्वातपसूक्ष्मापर्याप्तानि इंद्रियपर्याप्त्युपर्युदययोग्यस्त्यानगृद्धित्रयं उच्छ्वासपर्याप्त्युपर्युदययोग्योच्छ्वासः शरीरपर्याप्त्युपर्युदययोग्यपरघातोद्योतौ एवं दश मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १०। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेंद्रियस्थावरं

साधारण घटानेपर पृथ्वीकायिकमें उदययोग्य उन्यासी ७९। पुनः अस्सीमें-से साधारण और आतप घटानेपर अप्कायिकमें उदययोग्य अठहत्तर। पुनः अस्सीमें-से साधारण, आतप और उद्योत घटानेपर तेजकाय और वायुकायमें उदययोग्य सतहत्तर। पुनः क्रमसे अन्तिममें आतप घटानेपर वनस्पतिकायिकमें उदययोग्य उन्नासी। ऐसा होनेपर पृथ्वीकायिकके उदययोग्य उन्नासी। गुणस्थान दो क्योंकि आगममें कहा है कि सासादन मरण करके अपर्याप्तक, साधारणकाय, सूक्ष्मकाय, तेजकाय और वायुकायमें उत्पन्न नहीं होता। अतः वह पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक वनस्पतिमें ही उत्पन्न होता है। उनमें उत्पन्न सासादनके उस गुणस्थानमें ये दस प्रकृतियाँ उदययोग्य नहीं हैं—मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त ये चार। तथा सासादन तो निर्वृत्यपर्याप्त दशामें ही रहता है और स्त्यानगृद्धि आदि तीन इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही उदययोग्य होती हैं। इसी तरह उच्छ्वासका उदय भी उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही होता है। परघात और उद्योत शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही उदययोग्य है अतः इन छहका उदय भी यहाँ सासादनमें नहीं होता। इससे इनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वी० यो० ७९

०।०	मि	सा
व्यु	१०	६
उ	७९	६९
अ	०	१०

अप्कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेंटु ७८। मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ सूक्ष्मनाममुं १ अपर्य्याप्तनाममुं १ स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ परघातनाममुं १ उद्योतनाममुं १ उच्छ्वासनाममु १ मितोभत्तुं ९ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्कमुं नाल्कु ४ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ मितारुं ६ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयप्रकृतिगळेप्पत्तेंटु ७८। सासादनगुणस्थानदोळनुदयंगळोभत्तु ९। उदयंगळरुवत्तोंभत्तु ६९। संदृष्टि :—

अ० यो० ७८

०	मि	सा
व्यु	९	६
उ	७८	६९
अ	०	९

चेति षट् ६। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं। उदयः एकान्नशीतिः ७९ सासादने अनुदयो दश १०। उदयः एकान्नसप्ततिः ६९ अप्कायिकोदययोग्याष्टसप्तत्यां ७८ मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वं सूक्ष्ममपर्याप्तं स्त्यानगृद्धित्रयं परघातोद्योतोच्छ्वासाश्चेति नव। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कैकेंद्रियस्थावराणि षट्। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं उदयोऽष्टसप्ततिः ७८। सासादने अनुदयः नव ९। उदयः एकान्नसप्ततिः ६९।

व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें होती है। अतः मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति दस। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय और स्थावर छह। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय उनासी ७९। सासादनमें अनुदय दस। उदय उनत्तर ६९।

अप्कायिकमें उदययोग्य अठत्तर ७८। मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, सूक्ष्म अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास इन नौकी। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार एकेन्द्रिय स्थावर छह। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय अठहत्तर ७८। सासादनमें अनुदय नौ ९। उदय उनहत्तर ६९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्कायिकयोग्य ७८ तेजस्कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पतेळु ७७ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोंदे-वायुकायिकोदययोग्यप्रकृतिगळु मेप्पत्तेळु ७७। यिल्लियुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोंदे वनस्पति-कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तों भत्तु ७९। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १। सूक्ष्म-नाममुं १ अपर्य्याप्तनाममुं १ साधारणनाममुं १ स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३। परघातनाममुं १। उच्छ्वास-नाममुं १ उद्योतनाममुं १ यितु पत्तुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं १०। सासादनदोळु अनंतानु-बंधिचतुष्कमुमं ४ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ मितारुं ६ प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्ति-यक्कु ६ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयं गळेप्पत्तों भत्तु ७९। सासादन-सम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १०। उदयप्रकृतिगळरुवत्तों भत्तु ६९। संदृष्टि :—

वनस्पतियोग्य ७९

०	मि	सा
व्यु	१०	६
उ	७९	६९
अ	०	१०

अनंतरं त्रसकायमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळदपरु :—

तेजोवातकायिकोदययोग्याः सप्तसप्ततिः ७७। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं। वनस्पतिकायिकोदययोग्यैकान्नाशीत्यां मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणस्त्यानगृद्धित्रयपरघातोच्छ्वासोद्योताः व्युच्छित्तिः १०। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कैकेंद्रियस्थावराणि ६९ तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं उदयः एकान्नाशीतिः ७९। सासादनेऽनुदयः दश १०। उदयः एकान्नसप्ततिः। ६९ ॥ ३०९ ॥ अथत्रसकायमार्गणायामाह—

तेजकायिक, वायुकायिकमें उदययोग्य सतहत्तर ७७। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि एक।

वनस्पतिकायिकमें उदययोग्य ७९ उन्यासी। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सूक्ष्म अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास इन दसकी व्युच्छित्ति। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार स्थावर सूक्ष्म छहकी व्युच्छित्ति। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय उन्यासी ७९। सासादनमें अनुदय दस १०। उदय उनहत्तर ६९ ॥३०९॥

पृथ्वीकाय रचना ७९

मि.	सा.
१०	६
७९	६९
०	१०

अप्काय रचना ७८

मि.	सा.
९	६
७८	६९
०	९

तेजोवातकाय रचना ७७

मि.
०
७७
०

आगे त्रसकाय मार्गणामें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं तसे ण थावरदुग-साहरणेयतावमथ ओघं ।
मणवयणसत्तगे ण हि ताविगिविगलं च थावराणुचऊ ।।३१०।।

ओघस्त्रसे न स्थावरद्विक साधारणैकेंद्रियातपं अथ ओघः। मनोवचनसप्तके न हि आतपैक विकलेंद्रियं च स्थावरानुपूर्व्यं चत्वारि ।।

त्रसकायमार्ग्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळु नूर पदिनेळ ११७ प्पुवदेंतेंदोडे केवलमेकेंद्रियोदययोग्यंगळप्प स्थावरनाममुं १ सूक्ष्मनाममुमं १ साधारणशरीरनाममुमं १ एकेंद्रियजातिनाममुमं १ आतपनाममुमं १ नितय्दुं ५ प्रकृतिगळं सामान्योदयप्रकृतिगळ नूरिप्पत्तेरडरोळु कळेदोडे तावन्मात्रंगळप्पुदरिंदं। चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं त्रसकायमार्ग्गणेयोळु गुणस्थानंगळु पदिनाल्कुमप्पुवल्लि १४ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुमितरडे प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं २। सासादननोळु अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ विकलत्रयमुं ३ मितेळु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियोंदे व्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतमोदल्गोंडु मेलेल्लेडेयोळं गुणस्थानदोळु पेळ्दंतेयुदयव्युच्छित्तिगळु पदिनेळुं एंटुमय्दुं नाल्कुमारुमारुमोंदुमेरडुं पदिनारुं मूवत्तुं पन्नेरडुगळप्पुवंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ आहारकद्विकमुं २ तीर्त्थमुं १ मितय्दुं प्रकृतिगळनुदयमक्कुं ५। उदयंगळु नूर पन्नेरडु ११२। सासादनगुणस्थानदोलेरडु गूडियनुदयंगळेळरोळु नारकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगलेंटु ८। उदयंगळु नूरोंभत्तु १०९। मिश्रगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदयंगळु पदिनय्दरोळु शेषानुपूर्व्यत्रयमं कूडुत्तमल्लि मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनेळु १७। उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळोंदुगूडियनु-

त्रसकायिकोदययोग्यं सप्तदशोत्तरशतं ११७। कुतः ? स्थावरसूक्ष्मसाधारणैकेंद्रियातपानामेकेंद्रियेष्वेवोदयात्। गुणस्थानानि चतुर्दश १४। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वापर्याप्तिद्वयं व्युच्छित्तिः सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं विकलत्रयं च। मिश्रे मिश्रं १। असंयतादिषु गुणस्थानवत् सप्तदशाष्ट पंच चत्वारि षट् षडेकं द्वे षोडश त्रिंशत् द्वादश। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वानि ५। उदयः द्वादशोत्तरशतं ११२। सासादने अनुदयः द्वे नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अष्टौ ८। उदयः नवोत्तरशतं। मिश्रे अनुदयः

त्रसकायिकमें उदययोग्य एक सौ सतरह ११७। क्योंकि स्थावर, सूक्ष्म, साधारण एकेन्द्रिय और आतपका उदय एकेन्द्रियोंमें ही होता है। गुणस्थान चौदह १४। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्तकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और विकलत्रय। मिश्रमें मिश्र। असंयत आदिमें गुणस्थानोंकी तरह सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिश्र सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थंकर पाँचका अनुदय। उदय एक सौ बारह ११२। सासादनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ। उदय एक सौ नौ। मिश्रमें सात और शेष तीन आनुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्र प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय ८ + ७ + ३ = १८ – १=

१. म कूडिमत्तमल्लि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयंगळु पदिनें टरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमं ४ कळदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिमूरु १३। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४। देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेलुगूडियनुदयंगलु ३० मूवत्तु, उदयंलंण्भत्तेलु ८७। प्रमत्तगुणस्थानं मोदलगोंडु मेलेल्लेडेयोलनुदयोदयंगलु गुणस्थानदोळ्पेळदंतेयप्पुवु। संदृष्टि :—

त्रसकाय योग्य० ११७

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२	७	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११२	१०९	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	८	१७	१३	३०	३६	४१	४५	५१	५७	५८	६०	७५	१०५

अथ मनोवचनसप्तके ओघः सत्यासत्योभयानुभयमनोयोगंगलु नाल्कुं सत्यासत्योभयवाग्योगंगलु मूरुमितेलुं ७ योगंगळुवयोग्यप्रकृतिगलु सामान्योदयप्रकृतिगलु नूरिप्पत्तेरडप्पु १२२ वबरोलातपनाममुमेकेंद्रियजातियुं विकलत्रयमुं स्थावरमुं सूक्ष्ममुं अपर्य्याप्तनाममुं साधारण-

सप्त शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयात् सप्तदश १७। उदयः शतं १००। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयात् त्रयोदश १३। उदयश्चतुरुत्तरशतं। १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्य अनुदयः त्रिंशत् ३०। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तादिषु अनुदयोदयौ गुणस्थानवत्। संदृष्टिः—

त्रसकाययोग्य ११७।

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२	७	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११२	१०९	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	८	१७	१३	३०	३६	४१	४५	५१	५७	५८	६०	७५	१०५

अथ सत्यादिषु चतुर्षु मनोयोगेषु त्रिषु वाग्योगेषु च ओघः १२२, तत्र आतपैकेंद्रियविकलत्रयस्थावर-

सतरह। उदय सौ। असंयतमें एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व प्रकृति और चारों आनुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय तेरह। उदय एक सौ चार। देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय तीस। उदय सतासी। प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें अनुदय और उदय गुणस्थानवत् जानना ॥२१०॥

त्रसकाययोग्य ११७

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	मि.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.	अ.
व्यु.	२	७	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ.	११२	१०९	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अनु.	५	८	१७	१३	३०	३६	४१	४५	५१	५७	५८	६०	७५	१०५

योगमार्गणामें सत्य आदि चार मनोयोगोंमें और सत्य असत्य उभय वचनयोगमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरमुमेंब स्थावरचतुष्टयमुं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमितु पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळेदोडे नूरोंभत्तु प्रकृतिगळुदययोग्यंगलप्पु १०९ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियोंदेयुदयव्युच्छित्तियक्कं १। सासादनोळु अनंतानुबंधिचतुष्टयमुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतनोळु भाषापर्य्याप्तियिंदं मेलणयोगंगळप्पुदरिंदं नाल्कुमानुपूर्व्यंगळं कळेदु शेष पदिमूरुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३। देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं तिर्य्यगायुष्यमुं उद्योतनाममुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यग्गतिनाममुमितेंटुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८। प्रमत्तगुणस्थानं मोदलागि सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानपर्य्यंतं पंच य चउरं छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस तीसमेंदितुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवयोगिकेवलिगुणस्थानदोळु योगमिल्लप्पुदरिंदमल्लिय पन्नेरडुं प्रकृतिगळ्गे सयोगिकेवलिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमदु कारणमागि सयोगकेवलिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळु नाल्वत्तेरडुप्रकृतिगळप्पुवु ४२। अंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुमितय्दुं प्रकृतिगळ्गनुदयमक्कुं ५। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ सासादनगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयगळु आरु ६। उदयंगळु नूर मूरु १०३। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयंगळु हत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगलोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोंभत्तु ९ उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोंभत्तु ९। उदयंगळु नूरु १००॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेण्भत्तेलु ८७। प्रमत्तगुणस्थान-

सूक्ष्मपर्याप्तसाधारणचतुरानुपूर्व्याणि उदययोग्यानि नेति नवोत्तरशतं ॥ १०९ ॥ तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिश्रे मिश्रं १। असंयते भाषापर्याप्तेरुपरि योग्यसंभवात् आनुपूर्व्यचतुष्कं विना त्रयोदश १३। देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कं तिर्यगायुरुद्योतनीचैर्गोत्रतिर्यग्गतयोष्टौ ८। प्रमत्तादिसयोगपर्यंतं पंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलसतीसमिति। अयोगे योगाभावात् तद्द्वादशानां सयोगे एव व्युच्छित्तेर्द्वाचत्वारिंशत्। ४२। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वतीर्थाहारकद्वयमनुदयः ५। उदयः चतुरुत्तरशतं १०४। सासादने एकसंयोगादनुदयः षट् ६ उदयः त्र्युत्तरशतं १०३। मिश्रेऽनुदयः चतुष्कं

गुणस्थानकी तरह एक सौ बाईसमें-से आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और चार आनुपूर्वी इन तेरहके उदय बिना उदययोग्य एक सौ नौ १०९। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें चार आनुपूर्वीके बिना तेरह, क्योंकि आनुपूर्वीका उदय तो नवीन भवको गमन करते समय होता है और मनोयोग वचनयोग अपनी पर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् होते हैं। इससे यहाँ आनुपूर्वीका उदय नहीं कहा। देससंयतमें तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय चार तिर्यंचायु उद्योत नीचगोत्र और तिर्यंचगति ये आठ ८। प्रमत्तसे सयोगीपर्यन्त क्रमसे पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह। अयोगकेवलीमें योगका अभाव होनेसे उसमें व्युच्छिन्न होनेवाली बारह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति सयोगकेवलीमें ही होनेसे सयोगीमें बयालीसकी व्युच्छित्ति जानना।

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, तीर्थंकर, आहारकद्वय पाँचका अनुदय। उदय एक सौ चार १०४। सासादनमें एक मिलनेसे अनुदय छह। उदय एक सौ तीन १०३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोळें दुगूडियनुदयंगळु मूवतरोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तें दु २८। उदयंगलेण्भत्तों दु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानमादियागि यथायोग्यमागियमनुदयंगलुमुदयप्रकृतिगलुमो प्रकारदिदं नडेयुत्तं विरलु रचनेयितुटक्कं संदृष्टि :—

मनो ४ वा ३ योग्यप्रकृति नूरवों भत्तु १०९ ॥

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०४	१०३	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	६	९	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

अनुभयवाग्योगदोलुमौदारिककाययोगदोलमुदययोग्यप्रकृतिगलं पेळ्दपरु :—

अणुभयवचि वियलजुदा ओघमुराले ण हारदेवाऊ।
वेगुव्वछक्कणरतिरियाणु अपज्जत्तणिरयाऊ ॥३११॥

अनुभयवाचि विकलयुत ओघः औदारिके नाहारदेवायुर्व्वैक्रियिकषट् नरतिर्य्यगानुपूर्व्यापर्याप्तनरकायः ॥

संयोज्य मिश्रोदयान्नव ९ उदयः शतं । १०० । देशसंयते त्रयोदशसंयोगे अनुदयो द्वाविंशतिः २२ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्ते अष्ट संयोज्य आहारकद्वयोदयादनुदयः अष्टविंशतिः २८ । उदयः एकाशीतिः ८१ । अप्रमत्तादिषु अनुदयोदययोरेवं गच्छतोः संदृष्टिः—

मनो ४ वा ३ योग्यप्रकृतयः १०९ ।

स	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	स	उ	क्षी	स
व्यु	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०४	१०३	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	६	९	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

॥ ३१० । अनुभयवागौदारिककाययोगयोराह—

मिश्रमें चार मिलनेसे तथा मिश्रका उदय होनेसे अनुदय नौ ९। उदय सौ १००। देशसंयतमें तेरह मिलनेपर अनुदय बाईस २२। उदय सत्तासी ८७। प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय अट्ठाईस २८। उदय इक्यासी ८१। अप्रमत्तादिमें अनुदय और उदय इसी प्रकार जानना ॥३१०॥

मनोयोग ४ वचनयोग ३ योग्य प्रकृतियाँ १०९

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.
व्यु.	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उदय.	१०४	१०३	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अनु.	५	६	९	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुभयवाचि अनुभयवाग्योगदोळु विकलेंद्रियजातिनामत्रितयमं कूडि नूर पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवेके दोडनुभयवाग्योगं विकलत्रयजीवंगळगमुंटप्पुदरिदं। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियो वक्कमुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयवकुव...... .... यकमुदयमप्पुदरिंदमेळु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियो वक्कमुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतनोळु पदिमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिक्कुं १३॥ देशसंयतादिगुणस्थानंगळोळड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस बादाल प्रकृतिगळगे यथाक्रमदिंदमुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृत्यादि पंचप्रकृतिगळनुदयमक्कुं ५। उदयंगळु नूरेळु १०७। सासादनगुणस्थानदोळु ओंदु गूडियनुदयंगळारु ६ उदयंगळु नूरारु १०६। मिश्रगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदयंगळु पदिमूररोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नेरडु १२ उदयंगळु नूरु १००।

असंयतगुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयंगळु पदिमूररोलु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नेरडु १२। उदयंगळु नूरु १००। देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तय्दु २५। उदयंगळेंभत्तेळु ८७। प्रमत्तगुणस्थानदोळेंटुगूडि यनुदयंगळु मूवत्तमूररोळु आहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवत्तोंदु ३१। उदयंगळेंभत्तोंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडि यनुदयंगळु मूवत्तारु ३६। उदयंगळेप्पत्तारु ७६। अपूर्वकरण-

अनुभयवाग्योगे विकलेंद्रियत्रये मिलिते द्वादशोत्तरशतं उदययोग्यं विकलत्रयजीवेष्वपि तद्योगसंभवात्। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः १। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं विकलत्रयं च ७। मिश्रे मिश्रं १। असंयते त्रयोदश १३। देशसंयतादिषु अष्ट पंच चत्वारि षट् षडेकं द्वे षोडश द्वाचत्वारिंशत्। तथा सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रप्रकृत्यादिपंचकमनुदयः, उदयः सप्तोत्तरशतं १०७। सासादने एकं संयोज्य अनुदयः षट् ६। उदयः षडुत्तरशतं १०६। मिश्रे सप्त संयोज्य मिश्रोदयादनुदयो द्वादश १२। उदयः शतं १००। असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयः द्वादश १२। उदयः शतं १००। देशसंयते त्रयोदश संयोज्य अनुदयः पंचविंशतिः २५। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्ते अष्टौ संयोज्य आहारकद्वयोदयादनुदयः एकत्रिंशत् ३१। उदयः एकाशीतिः

अनुभय वचनयोगमें तीन विकलेन्द्रिय मिलानेपर उदययोग्य एक सौ बारह क्योंकि विकलत्रय जीवोंमें अनुभय वचनयोग होता है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और विकलत्रय इस तरह व्युच्छित्ति सात। मिश्रमें मिश्र एक। असंयतमें तेरह १३। देशसंयत आदिमें क्रमसे आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, बयालीस। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र प्रकृति आदि पाँचका अनुदय। उदय एक सौ सात। व्यु. एक।
२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय छह। उदय एक सौ छह १०६। व्यु. सात।
३. मिश्रमें सात मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय बारह। उदय सौ।
४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे अनुदय बारह। उदय सौ।
५. देशसंयतमें तेरह मिलाकर अनुदय पच्चीस। उदय सत्तासी।
६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्वयका उदय होनेसे अनुदय इकतीस। उदय इक्यासी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानदोळ् नाल्कुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तु ४०। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तारु ४६। उदयंगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान-दोळारुगूडि यनुदयंगळय्वत्तेरडु ५२। उदयंगळरुवत्तु ६०॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळों दु-गूडिय नुदयंगळु अय्वत्तमूरु ५३। उदयंगळय्वत्तों भत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनु दयंगळय्वत्तय्दु ५५। उदयंगळय्वत्तेळु ५७॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनु-दयंगळेप्पत्तों दरोळु तीर्त्थमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु एप्पत्तु ७०। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। संदृष्टि :—

अनुभयवाग्योग प्र० ११२॥

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु	१	७	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०७	१०६	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	६	१२	१२	२५	३१	३६	४०	४६	५२	५३	५५	७०

८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत् ३६। उदयः षट्सप्तति: ७६। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयः चत्वारिंशत् ४०। उदयः द्वासप्ततिः ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः द्वापंचाशत् ५२ उदयः षष्टिः ६०। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः त्रिपंचाशत् ५३ उदयः एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचपंचाशत् ५५। उदयः सप्तपंचाशत् ५७। सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयात् अनुदयः सप्ततिः ७०। उदयः द्वाचत्वारिंशत् ४२।

---

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय छत्तीस ३६। उदय छियत्तर ७६।
८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चालीस ४०। उदय बहत्तर ७२।
९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस। उदय छियासठ।
१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय बावन। उदय साठ ६०।
११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय तिरपन। उदय उनसठ ५९।
१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय पचपन ५५। उदय सत्तावन ५७।
१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय सत्तर ७०। उदय बयालीस ४२।

अनुभय वचनयोगमें ११२

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.
व्यु.	१	७	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उदय	१०७	१०६	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अनुदय	५	६	१२	१२	२५	३१	३६	४०	४६	५२	५३	५५	७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिके ओघः औदारिककाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडप्पु १२२ ववरोळु आहारकद्वयमुं देवायुष्यमुं वैक्रियिकषट्कमुं मनुष्यानुपूर्व्यमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १ अपर्य्याप्तनाममुं नरकायुष्यमुं कूडि पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळेयुत्तं विरलु शेष नूरों भत्तु प्रकृतिगळौदारिककाययोगयोग्योदयप्रकृतिगळप्पु १०९ वल्लि तिर्य्यग्मनुष्यगतिद्वयसंबंधियोगमप्पुदरिं पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळपर्य्याप्तनामवर्जितचतुःप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमेकेंद्रियस्थावरविकलत्रयंगळें बों भत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। ९॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं। १॥ असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं दुर्भगत्रयमुमितु एळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७॥ देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं तिर्य्यगायुष्यमुं उद्योतनाममुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यग्गतियुमें बेंटुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळु आहारकद्वयोदयमिल्लेकें दोडे औदारिककाययोगप्रवृत्तंगाहारककाययोगप्रवृत्तियिल्लप्पुदरिदं स्त्यानगृद्धित्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३। अप्रमत्तादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदं चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस बादाळप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळाहारकद्वयवर्जितानुदयंगळु मिश्रप्रकृतिसम्यक्त्वप्रकृतितीर्त्थनाममुमितु मूरुं प्रकृतिगळप्पुवु। ३। उदयप्रकृतिगळु नूरारु १०६॥ सासादनगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळु ७ उदयंगळु नूरेरडु १०२॥ मिश्रगुणस्थानदोळों भत्तु-

औदारिककाययोगे द्वाविंशत्युत्तरशतमध्ये १२२ आहारकद्वयं देवायुः वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये अपर्याप्तं नरकायुश्च उदययोग्यं नेति नवोत्तरशतं १०९। गुणस्थानानि त्रयोदश। तत्र मिथ्यादृष्टौ अपर्याप्तवर्जितव्युच्छित्तिः चत्वारि ४। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कैकेंद्रियस्थावरविकलत्रयाणि नव। मिश्रे मिश्रं। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं दुर्भगत्रयं च। देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कतिर्यगायुरुद्योतनीचैर्गोत्रतिर्यग्गतयोऽष्टौ। अस्मिन् योगे आहारकयोगप्रवृत्तिर्नास्तीति प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयं। अप्रमत्तादिषु क्रमेण 'चउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलसबादालं' एवं सति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वतीर्थंकरत्वानि ३। उदयः षडुत्तरशतं १०६। सासादने चतस्रः संयोज्य अनुदयः सप्त ७। उदयो द्व्युत्तरशतं १०२। मिश्रे नव संयोज्य मिश्रोदया-

औदारिक काययोगमें एक सौ बाईसमें-से आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, देवायु, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, अपर्याप्त, नरकायु उदययोग्य नहीं हैं अतः एक सौ नौ १०९ उदययोग्य हैं। गुणस्थान तेरह। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें अपर्याप्तको छोड़ चारकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर और विकलत्रय नौकी व्युच्छित्ति है। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, दुर्भग आदि तीन। देशसंयतमें प्रत्याख्यानावरण कषाय चार, तिर्यंचायु, उद्योत, तिर्यंचगति, नीचगोत्र ये आठ। औदारिक काययोगमें आहारक काययोगकी प्रवृत्ति न होनेसे प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी व्युच्छित्ति होती है। अप्रमत्तादिमें क्रमसे चार, छह, छह, एक, दो, सोलह और बयालीसकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और तीर्थंकर तीनका अनुदय। उदय १०६।

२. सासादनमें चार मिलाकर अनुदय सात। उदय एक सौ दो १०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गूडि[illegible]प्रकृतिगळु पदिनाररोळु मिश्रप्रकृतियं कलेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनय्दु १५। उदयंगळु तोंभत्त नाल्कु ९४ ॥ असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु पदिनाररोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कलेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनय्दु १५। उदयंगळु तोंभत्तनाल्कु ९४। देशसंयतगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तगुणस्थानदोळें टुगूडियनुदयंगळु मूवत्तु ३०। उदयंगळेप्पत्तों भत्तु ७९। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मूरुगूडियनुदयंगळु मूवत्तमूरु। ३३। उदयंगळेप्पत्तारु ७६। अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु ३७। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तमूरु ४३। उदयंगळरुवत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तों भत्तु ४९। उदयंगळरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळय्वत्तु ५०। उदयंगळय्वत्तों भत्तु ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडिदनुदयंगळय्वत्तेरडु ५२। उदयंगळय्वत्तेळु ५७ ॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळरुवत्तें टरोळु तीर्त्थमं कळेवुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तेळु ६७। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। संदृष्टि :

दनुदयः पंचदश १५। उदयः चतुर्नवतिः ९४। असंयते एकां संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयः पंचदश १५। उदयः चतुर्नवतिः ९४। देशसंयते सप्त संयोज्य अनुदयः द्वाविंशतिः २२। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्ते अष्ट संयोज्य अनुदयः त्रिंशत् ३०। उदयः एकोनाशीतिः। अप्रमत्ते तिस्रः संयोज्य अनुदयः त्रयस्त्रिंशत् ३३। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयः सप्तत्रिंशत् ३७। उदयः द्वासप्ततिः ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः त्रिचत्वारिंशत् ४३। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः एकान्नपंचाशत् ४९। उदयः षष्टिः ६०। उपशांते एकां संयोज्य अनुदयः पंचाशत् ५० उदयः एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयो द्वापंचाशत् ५२। उदयः सप्तपंचाशत् ५७। सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थोदयादनुदयः सप्तषष्टिः ६७। उदयः द्वाचत्वारिंशत् ४२। ३११।

---

३. मिश्रमें नौ मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह १५। उदय चौरानबे ९४।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह। उदय चौरानबे।

५. देशसंयतमें सात मिलाकर अनुदय बाईस २२। उदय सत्तासी ८७। व्युच्छित्ति आठ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय तीस ३०। उदय उन्यासी ७९। व्युच्छित्ति तीन।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय तैंतीस ३३। उदय छियत्तर ७६। व्युच्छित्ति चार।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७। उदय बहत्तर ७२। व्युच्छित्ति छह।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय तैंतालीस ४३। उदय छियासठ। व्युच्छित्ति छह।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय उनचास ४९। उदय साठ। व्युच्छित्ति एक।

११. उपशान्तमें एक मिलाकर अनुदय पचास। उदय उनसठ ५९। व्युच्छित्ति दो।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बावन। उदय सत्तावन। व्युच्छित्ति सोलह।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय सड़सठ ६७। उदय बयालीस ॥३११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदारिककाययोगोदययोग्य प्रकृतिगळु १०९।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु.	४	९	१	७	८	३	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०६	१०२	९४	९४	८७	७९	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	३	७	१५	१५	२२	३०	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

अनंतरमौदारिकमिश्रकाययोगदोळुदययोग्यप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपरु :—

तम्मिस्सेऽ पुण्णजुदा ण मिस्सथीणतियसरविहायदुगं।
परघादचऊ अयदे णादेज्जदुदुभगं ण संढित्थी ॥३१२॥

तन्मिश्रे अपूर्णयुता न मिश्रस्त्यानगृद्धित्रितयस्वरविहायोगतिद्वयं। परघातचतुष्कमसंयतेऽनादेयद्विकदुर्भगं न षंढस्त्रीवेदौ ॥

साणे तेसिं छेदो वामे चत्तारि चोद्दसा साणे।
चउदालं वोच्छेदो अयदे जोगिम्मि छत्तीसं ॥३१३॥

सासादने तासां छेदो वामे चतस्रः चतुर्द्दश सासादने। चतुश्चत्वारिंशद्विच्छेदोऽसंयते योगिनि षट्त्रिंशत् ॥

तन्मिश्रे अपूर्णयुताः औदारिकमिश्रकाययोगिगळोळौदारिककाययोगिगळोळु पेळ्द नूरों भत्तु प्रकृतिगळोळु अपर्य्याप्तनाममं कूडि नूरहत्तुप्रकृतिगळप्पुववरोळु मिश्रप्रकृतियुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं स्वरद्विकमुं विहायोगतिद्विकमुं परघातातपोद्योतोच्छ्वासचतुष्कमुमितु पन्नेरडुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषउदयप्रकृतिगळु तों भत्तें टुदययोग्यप्रकृतिगळप्पुवु ९८। गुणस्थानंगळुं नाल्कप्पुवु ४। सामान्यो-

---

अथौदारिकमिश्रकाययोगस्य गाथाद्वयेनाह—

तन्मिश्रयोगे औदारिकयोगोक्तनवोत्तरशते अपर्याप्तिं निक्षिप्य मिश्रप्रकृतिः स्त्यानगृद्धित्रयं स्वरद्विकं विहायोगतिद्विकं परघातातपोद्योतोच्छ्वासाश्चेति द्वादशस्वपनीतेषु अष्टानवतिरुदययोग्याः ९८। गुणस्थानानि

औदारिक काययोग रचना

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.
व्यु.	४	९	१	७	८	३	४	६	६	१	२	१६	४२
उदय	१०६	१०२	९४	९४	८७	७९	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अनुदय	३	७	१५	१५	२२	३०	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

औदारिक मिश्रकाययोगमें दो गाथाओंसे कहते हैं—

औदारिक मिश्रकाययोगमें औदारिकयोगमें कही एक सौ नौमें अपर्याप्त मिलाकर मिश्र प्रकृति, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळाहारकद्विकमुं २। देवायुष्यमु १। वैक्रियिकषट्कमुं ६। मनुष्यतिर्य्यगानुपूर्व्यद्वितयमु २। नरकायुष्यमुं १। मिश्रप्रकृतियुं १। स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३। स्वरद्वयमुं २। विहायोगतिद्वयमुं २ परघातचतुष्कमु ४ मितु चतुव्विंशतिप्रकृतिगळं कळेदु शेषतोंभत्तेंदु प्रकृतिगळेंबुदत्थं। ई प्रकृतिगळिप्पत्तनाल्कुमेकेंकळेदुवेंदोडे नरकगति देवगतिसंबंधिगळु पर्य्याप्तकाल संबंधिगळुं विग्रहगत्युदययोग्यंगळुमप्पुदरिनो औदारिकमिश्रकाययोगिगळुदययोग्यंगळल्लप्पुदरिदं। असंयते असंयतगुणस्थानदोळनादेयायशस्कीत्तिदुब्भंगषंढस्त्रीवेदंगळेंबी पंचप्रकृतिगळुदयमिल्ला प्रकृतिगळगे सासादननोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टियोळु पर्य्याप्तियिदं मेलुदयिसुगुमप्पुदरिदमातपनाममं कळेदु शेषमिथ्यात्वप्रकृतिसूक्ष्मत्रितयमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४। चतुर्द्दश सासादने सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुमेकेंद्रिय स्थावरविकलत्रय अनादेय अयशस्कीत्ति दुब्भंगषंढवेद स्त्रीवेदमेंब चतुर्द्दशप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं ४। देशसंयतादिक्षीणकषायपर्य्यंतमाद गुणस्थानवत्तिगळौदारिकमिश्रकाययोगमिल्लप्पुदरिंदमा गुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिंद देशसंयतनोळुद्योतवर्जितसप्तप्रकृतिगळं ७ प्रमत्तनोळु एनुमिल्लेकेंदोडे आहारकद्विकमुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं कळेदुवप्पुदरिदं। अप्रमत्तनोळु नाल्कु ४। अपूर्व्वकरणनोळारुं ६। अनिवृत्तिकरणन षंढस्त्रीवेदद्वयरहित-

---

चत्वारि ४। सामान्योदयप्रकृतिषु आहारकद्विकं देवायुर्वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये नरकायुः मिश्रप्रकृतिः स्त्यानगृद्धित्रयं स्वरद्वयं विहायोगतिद्वयं परघातचतुष्कं चेति चतुर्विंशतिः कुतो नेति चेत् नरकदेवगतिपर्याप्तकालविग्रहगतिसम्बन्धिनीनामत्रानुदयात्। असंयते अनादेयायस्कीर्तिदुर्भगषंढस्त्रीवेदानामुदयो नहि सासादने एव व्युच्छित्तेः। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं सूक्ष्मत्रयं च व्युच्छित्तिः आतपस्य पर्याप्तेरुपर्युदयात्। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेन्द्रियस्थावरविकलत्रयानादेयायशस्कीर्तिदुर्भगषंढस्त्रीवेदाश्चेति चतुर्दश १४। असंयते स्वस्य द्वितीयकषायचतुष्कं तथा क्षीणकषायांतेषु अस्य योगस्याभावाद्देशसंयतस्योद्योतं विना सप्त। प्रमत्तस्य

परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास ये बारह घटानेपर उदययोग अठानबे ९८। गुणस्थान चार।

शंका—सामान्य उदय प्रकृतियोंमें-से आहारकद्विक, देवायु, वैक्रियिकषट्, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, नरकायु, मिश्रप्रकृति, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, सुस्वर, दुःस्वर, दो विहायोगति, परघातादि चार, इन चौबीसका उदय यहाँ क्यों नहीं है?

समाधान—यहाँ नरकगति, देवगति, पर्याप्तकाल और विग्रहगति सम्बन्धी प्रकृतियोंका उदय नहीं होता।

असंयतमें अनादेय, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, नपुंसक और स्त्रीवेदका उदय नहीं होता। अतः उनकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही हो जाती है। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और सूक्ष्म आदि तीनकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि आतपका उदय पर्याप्ति पूर्ण होनेपर होता है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, अनादेय, अयशःकीर्ति, दुर्भग, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद इन चौदहकी व्युच्छित्ति है। असंयतमें अपनी अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार तथा क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त औदारिक मिश्रयोगका अभाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुःप्रकृतिगळु ४ सूक्ष्मसांपरायनोळु लोभमुं १ उपशांतकषायन वज्रनाराचनाराचद्वयमुं २। क्षीणकषायन पदिनारुं १६ यितसंयतनोळु चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४४। योगिनि षट्त्रिंशत् सयोगिकेवलिभट्टारकंगे कवाटसमुद्घातदोळौदारिकमिश्रकाययोगमुंटप्पुदरिंदमल्लि नाल्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोळु स्वरद्विकमुं विहायोगतिद्विकमुं परघातमुमुच्छ्वासमुमितारुं प्रकृतिगळुदयमिल्लप्पुदरिंदमवं कवाटसमुद्घातयोगियोळु कळेदु शेषप्रकृतिगळु मूवत्तारक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुमागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं तीर्थंकरनाममुमेरडुमनुदयंगळप्पुवु। उदयंगळु तोंभत्तारु ९६। सासादनगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदयंगळारु ६। उदयंगळु तोंभत्तेरडु ९२॥ असंयतगुणस्थानदोळु पदिनाल्कुगूडियनुदयंगळिप्पत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हत्तोंभत्तु। १९। उदयंगळेप्पत्तोंभत्तु ७९॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु नाल्वत्तनाल्कुगूडियनुदयंगळरुवत्त मूररोळु तीर्थंकरनाममं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळरुवत्तेरडु ६२। उदयप्रकृतिगळु मूवत्तारु ॥३६॥ संदृष्टि :

औदारिक मिश्र० योग्य ९८।

०	मि	सा	अ	स
व्यु	४	१४	४४	३६
उ	९६	९२	७९	३६
अ	२	६	१९	६२

आहारकद्वयस्त्यानगृद्धित्रयं विना शून्यं। अप्रमत्तस्य चतस्रः। अपूर्वकरणस्य षट्। अनिवृत्तिकरणस्य षंढस्त्रीवेदौ विना चतस्रः, सूक्ष्मसांपरायस्य लोभः उपशांतकषायस्य वज्रनाराचनाराचद्वयं। क्षीणकषायस्य षोडश चेति चतुश्चत्वारिंशत् ४४। योगिनि षट्त्रिंशत्। कपाटसमुद्घातकाले स्वरद्वयविहायोगतिद्वयपरघातोच्छ्वासानामनुदयात्। तथासति मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वं तीर्थं चानुदयः, उदयः षण्णवतिः। सासादनेऽनुदयः चतुःसंयोगात् षट्। उदयः द्वानवतिः ९२। असंयते चतुर्दश संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् अनुदयः एकान्नविंशतिः १९। उदयः एकान्नाशीतिः ७९। सयोगे अनुदये चतुःचत्वारिंशतं संयोज्य तीर्थोदयात् द्वाषष्टिः ६२। उदयः

होनेसे देशसंयतकी उद्योतके बिना सात, प्रमत्तकी आहारकद्वय और स्त्यानगृद्धि आदि तीनके न होनेसे शून्य, अप्रमत्तकी चार, अपूर्वकरणकी छह, अनिवृत्तिकरणकी नपुंसकवेद स्त्रीवेदके बिना चार, सूक्ष्म-साम्परायका लोभ, उपशान्तकषायकी वज्रनाराच, नाराच दो, क्षीणकषायकी सोलह इस प्रकार चवालीसकी व्युच्छित्ति होती है। सयोगीमें छत्तीसकी व्युच्छित्ति होती है; क्योंकि औदारिक मिश्रयोग कपाट समुद्घातके समय होता है और उस समय सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति, परघात और उच्छ्वासका उदय नहीं होता।

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थंकरका अनुदय, उदय छियानबे। सासादनमें चार मिलानेसे अनुदय छह, उदय बानबे। असंयतमें चौदह मिलानेसे तथा सम्यक्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं वैक्रियिककाययोगिगळगुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

देवोघं वेगुव्वे ण सुराणू पक्खिवेज्ज णिरयाऊ ।
णिरयगदिहुंडसंढं दुग्गदि दुब्भगचउण्णीचं ॥३१४॥

देवौघो वैक्रियिके न सुरानुपूर्व्यं प्रक्षिपेन्नरकायुर्न्नरकगतिहुंडषंढं दुर्ग्गतिदुर्भग चतुर्न्नीचं ॥

देवौघो वैक्रियिके वैक्रियिककाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२। आ नूरिप्पत्तेरडरोळु स्थावरद्विकमु २। तिर्य्यग्द्विकमुं २। आतपद्विकमुं २। एकेंद्रियजातिनाममुं १। विकलत्रयमुं ३। साधारणशरीरमुं १। मनुष्यायुष्यमुं १। तिर्य्यगायुष्यमुं १। नरकायुष्यमुं १। नारकद्विकमुं २। अपर्य्याप्तनाममुं १। आहारकद्विकमुं २। तीर्त्थंकरनाममुं १। षंडवेदमुं १। दुर्ब्भगचतुष्कमुं ४। नीचैर्ग्गोत्रमुं १। स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३। अप्रशस्तविहायोगतियुं १। संहननषट्कमुं ६। चरमसंस्थानपंचकमुं ५। औदारिकद्विकमुं २। मनुष्यद्विकमु २। मितु नाल्वत्तय्दुं प्रकृतिगळं ४५। कळेदुशेषमेप्पत्तेळु प्रकृतिगळु देवगतिसामान्योदययोग्यप्रकृतिगळप्पुवु ७७। देवौघो वैक्रियिके देवगतिसामान्योदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेळरोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदेप्पत्ताररोळु नरकायुष्यमुं १ नरकगतियुं १ हुंडसंस्थानमुं १ षंढवेदमुं १ अप्रशस्तविहायोगतियुं १। दुर्ब्भगचतुष्कमुं ४। नीचैर्ग्गोत्रमुं-१ मितुं पत्तुं प्रकृतिगळं १० प्रक्षिपेत् कूडुवुवंतु कूडुत्तं विरलु वैक्रियिककाययोगोदययोग्यप्रकृतिगळेण्भत्तारु ८६। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियोंदक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं १॥ सासादननोळु अनंतानुबंधिचतुष्टयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कु १ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ देवगतियुं १ नरकगतियुं १ वैक्रियिकद्विकमुं २। नारकायुष्यमुं १ देवायुष्यमुं १ दुर्ब्भगत्रयमु ३ मितु पदिमूरुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कु १३। मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितेरडुं १ प्रकृतिगळ्गनुदयमक्कुं। उदयंगळेण्भत्तनाल्कु ८४। सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनु-

षट्त्रिंशत् ३६। ३१२। ३१३। अथ वैक्रियिककाययोगस्याह—

देवगतिसामान्योक्तसप्तसप्ततयां देवानुपूर्व्यमपनीय नरकायुः नरकगतिहुंडसंस्थाने षंढवेदः अप्रशस्तविहायोगतिर्दुर्भगचतुष्कं नीचैर्गोत्रं चेति दशसु प्रक्षिप्तेषु वैक्रियिककाययोगोदययोग्याः षडशीतिः ८६। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिर्मिथ्यात्वं १ सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रं। असंयते द्वितीयकषायचतुष्क-

प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय उन्नीस। उदय उन्यासी ७९। सयोगीमें अनुदयमें चवालीस मिलानेसे तथा तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय बासठ ६२। उदय छत्तीस ३६ ॥३१२-३१३॥

आगे वैक्रियिक काययोगमें कहते हैं—

देवगति सामान्यमें कही गयी सतहत्तर प्रकृतियोंमें-से देवानुपूर्वीको घटाकर नरकायु, नरकगति, हुण्डसंस्थान, नपुंसकवेद, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र मिलानेपर वैक्रियिक काययोगमें उदययोग्य छियासी ८६ हैं। उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार, देवगति, नरकगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयंगळु मूरु ३। उदयंगळें भत्त मूरु ८३। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेवुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६। उदयंगळेंभत्तु ८०॥ असंयतगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळेळरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६। उदयंगळेंभत्तु ८०।

वैक्रियिककाययोग्य ८६—

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	१३
उ	८४	८३	८०	८०
अ	२	३	६	६

अनंतरं वैक्रियिकमिश्रकाययोगयोग्योदयप्रकृतिगळं द्व्यर्द्धगाथासूत्रदिदं पेळ्दपरु :—

वेगुव्वं वा मिस्से ण मिस्स-परघाद-सरविहायदुगं।
साणे ण हुंडसंढं दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥३१५॥

वैक्रियिकवन्मिश्रे न मिश्र परघातस्वरविहायोगतिद्विकं। सासादने न हुंडषंढं दुर्भगानादेयाऽयशः ॥

णिरयगदि आउणीचं ते खित्तयदेऽवणिज्ज थीवेदं।
छट्ठगुणं वाहारे ण थीणतिय-संढथीवेदं ॥३१६॥

नरकगतिरायुर्नीचं ताः क्षिप्त्वाऽसंयतेऽपनयेत्। स्त्रीवेदं षष्ठगुणवदाहारे न स्त्यानगृद्धित्रयं षंढस्त्रीवेदं ॥

देवनरकगतिवैक्रियिकद्विकदेवनारकायुर्दुर्भगत्रयाणि १३। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं चानुदयः २। उदयश्चतुरशीतिः ८४। सासादने अनुदये एकसंयोगात्त्रयं ३ उदयस्त्र्यशीतिः ८३। मिश्रे चत्वार्यनुदये संयोज्य सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयात् षट् ६। उदयः अशीतिः ८०। असंयते अनुदये एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् षट्। उदयः—अशीतिः ८०. ॥३१४॥ अथ वैक्रियिकमिश्रयोगस्य द्व्यर्धगाथासूत्रेण आह—

देवायु, नरकायु, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय तेरह १३ की व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय चौरासी ८४।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन। उदय तेरासी ८३।

३. मिश्रमें चार मिलाकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अनुदय होनेसे अनुदय छह। उदय अस्सी।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय छह। उदय अस्सी ८० ॥३१४॥

डेढ़ गाथासे वैक्रियिक मिश्रयोगमें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकवन्मिश्रे वैक्रियिककाययोगदोळ्तंते वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळमेण्भत्तारप्पुववरोळु मिश्रप्रकृतियु १। परघातद्विकमुं २। स्वरद्विकमुं २। विहायोगतिद्विकमुं २। मितेळुं प्रकृतिगळु न नास्ति यिल्लवु कारणमागियवं कळेयुत्तिरलु येप्पत्तों भत्तु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ७९ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियोंदे व्युच्छित्तियक्कुं १॥ सासादने सासादननोळु हुंडसंस्थानमुं षंडवेदमुं दुर्भगत्रयमुं ३ नरकगतियुं १ नरकायुष्यमुं १ नीचैर्गोत्रमुं १। मितेंटुं प्रकृतिगळुदयमिल्लेकेंदोडे :—

णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य येंब नियममुंटप्पुदरिन्दं वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनारकं सासादननिल्लप्पुदरिंदमवनातनोळनुदयंगळं माडि यसंयतनोळु कूडुवुदु मत्तमसंयतनुदयप्रकृतिगळोळु स्त्रीवेदमुं कळेदु सासादननोळुदयव्युच्छित्तियं माडुत्तं विरलु सासादननोळनंतानुबंधि चतुष्टयमुं स्त्रीवेदमुं मितय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४। वैक्रियिकद्विकमुं २। नरकगतियुं १ नरकायुष्यमुं १। देवगतियुं १ देवायुष्यमुं १। दुर्भगत्रयमुं ३। मितु पदिमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु १३। मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतिगनुदयमक्कुं १। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तेंटु ७८। सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळेरडु २। मत्तमुं पेळद हुंडसंस्थानाद्यष्टप्रकृतिगळनुदयदोळु कळेदनुदयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तु १०। उदयंगळरुवत्तों भत्तु ६९॥ असंयतगुणस्थानदो-

वैक्रियिकयोगवत्तन्मिश्रयोगे इति षडशीत्यां मिश्रं परघातद्विकं स्वरद्विकं विहायोगतिद्विकं चेत्येकोनाशीतिरुदययोग्याः ७९। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादने नरकगमनाभावात् हुंडसंस्थानषंढवेददुर्भगत्रयनरकगतिनरकायुर्नीचैर्गोत्राण्यनुदयं कृत्वा असंयते निक्षिप्य असंयतोदयाच्च स्त्रीवेदमनंतानुबंधिचतुष्कं च व्युच्छित्तिं कुर्यात् ५। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं वैक्रियिकद्विकं देवनारकगती तदायुषी दुर्भगत्रयं चेति त्रयोदश। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः सम्यक्त्वप्रकृतिः १ उदयः अष्टसप्ततिः ७८। सासादनेऽनुदयः सम्यक्त्वप्रकृतौ मिथ्यात्वं प्रागुक्तहुंडसंस्थानाद्यष्टकं च मिलित्वा दश १०। उदयः एकान्नसप्ततिः ६९। असंयते

वैक्रियिक मिश्रयोगमें वैक्रियिक योगकी तरह छियासी प्रकृतियाँ हैं किन्तु उसमें-से मिश्र, परघात, उच्छ्वास, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति ये सात न होनेसे उदययोग्य उन्यासी ७९ हैं। उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादन मरकर नरकमें नहीं जाता इसलिए सासादनमें हुण्ड संस्थान, नपुंसकवेद, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नरकगति, नरकायु और नीचगोत्रका उदय नहीं होता। इसलिए इन्हें असंयतमें रखना। वहीं इनका उदय होता है। अतः सासादनमें स्त्रीवेद और अनन्तानुबन्धी चार मिलकर पाँचकी व्युच्छित्ति होती है। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, नरकगति, देवायु, नरकायु, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय इन तेरहकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय सम्यक्त्व प्रकृति एक। उदय अठहत्तर।

२. सासादनमें सम्यक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व और पूर्वमें कही हुण्डसंस्थान आदि आठ मिलकर अनुदय दस। उदय उनहत्तर ६९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ळप्दुगूडियनुदयंगळु पदिनय्वरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं हुंडसंस्थानाद्यष्टप्रकृतिगळमंतु ओंभत्तुं प्रकृतिगळं कळेवुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६। उदयंगळेप्पत्त मूरु ७३। संदृष्टि :

वैं० मि० योग्य ७९

०	मि	सा	अ
व्यु	१	५	१३
उ	७८	६९	७३
अ	१	१०	६

षष्ठगुणवदाहारे आहारककाययोगदोळुदययोग्यप्रकृतिगळु प्रमत्तगुणस्थानदोळु पेळ्देण्भत्तोंदे प्रकृतिगळप्पुववरोळु स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३ षंढवेदमुं १ स्त्रीवेदमुं १।

दुग्गदिदुस्सरसंहदि ओरालदु चरिमपंचसंठाणं ।
ते तम्मिस्से सुस्सर परघाददुसत्थगदिहोणा ॥३१७॥

दुर्गतिदुस्वरसंहननौदारिकद्विक चरम पंचसंस्थानं । ताः तन्मिश्रे सुस्वरपरघातद्विकशस्तगतिहीनाः ॥

अप्रशस्तविहायोगतियुं १। दुःस्वरनाममुं १। संहननषट्कमुं ६ औदारिकद्विकमुं २। चरमपंचसंस्थानंगळु ५ मितु विंशतिप्रकृतिगळाहारककाययोगिप्रमत्तसंयतनोळुदयायोग्यंगळप्पुदरिंदमवं कळेदोडे शेषमरुवत्तोंदु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ६१। तास्तन्मिश्रे आहारकमिश्रकाययोगिप्रमत्तसंयतनोळा प्रकृतिगळरुवत्तोंदयप्पुवरोळु सुस्वरमुमं १ परघातोच्छ्वासद्वितयमुमं २। प्रशस्तविहायोगतियु १। मनितु नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदोडे शेषप्रकृतिगळय्वत्तेळुदययोग्यंगळप्पुवु ५७ ॥

अनुदयः पंच मिलित्वा सम्यक्त्वप्रकृतिहुंडसंस्थानाद्यष्टकोदयात् षट् ६। उदयस्त्रिसप्ततिः ७३। आहारककाययोगे षष्ठगुणस्थानोक्तैकाशीत्यां ८१ स्त्यानगृद्धित्रयं षंढवेदः स्त्रीवेदः नास्ति ॥ ३१५–३१६ ॥

अप्रशस्तविहायोगतिः दुःस्वरं संहननषट्कमौदारिकद्विकं चरमपंचसंस्थानानीति विंशतिर्नह्युदययोग्याः एकान्नषष्टिः ६१। तन्मिश्रयोगे ता एवैकषष्टिः सुस्वरपरघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगत्यूनाः सप्तपंचाशद्-

३. असंयतमें मिथ्यात्व और सासादनमें व्युच्छित्ति पाँच मिलकर अनुदय छह। क्योंकि यहाँ सम्यक्त्व प्रकृति और हुण्ड संस्थान आदि आठका उदय है। अतः उदय तिहत्तर।

आहारक काययोगमें छठे गुणस्थानमें उदययोग्य इक्यासी ८१ में-से स्त्यानगृद्धि आदि तीन, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर, संहनन छह, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, अन्तके पाँच संस्थान ये बीस उदय योग्य नहीं हैं। अतः उदययोग्य इकसठ। आहारक मिश्रयोगमें इकसठमें-से सुस्वर, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगतिका उदय न होनेसे उदययोग्य सत्तावन हैं ॥३१५-३१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं कार्म्मणकाययोगोदययोग्यप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळदपरु :—

ओघं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग मिस्सं ।

उवघादपणविगुव्वदु थीणतिसंठाण-संहदी णत्थि ॥३१८॥

ओघः कार्म्मणे स्वरगतिप्रत्येकाहारौदारिक द्विकमिश्रं उपघातपंचवैक्रियिकद्विकस्त्यानगृद्धित्रितयसंस्थानसंहननं नास्ति ॥

कार्म्मणे ओघः कार्म्मणकाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडप्पुववरोळ् सुस्वर-दुस्वरद्विकमुं २। प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्विकमुं २। प्रत्येकसाधारणशरीरद्विकमुं २। आहारकाहारकांगोपांगद्विकमुं २। औदारिकौदारिकांगोपांगद्विकमुं २। मिश्रप्रकृतियुं १। उपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासपंचकमुं ५ वैक्रियिकशरीरतदंगोपांगद्विकमुं २। स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३। संस्थानषट्कमुं ६। संहननषट्कमु ६ मितु मूवत्तमूरुं प्रकृतिगळं ३३ कळेदोडे शेषप्रकृतिगळेण्भत्तो भत्तुदययोग्यंगळप्पुवु ८९ वल्लि। अनादिसंसारदोळु विग्रहगतियोळमविग्रहगतियोळं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगकेवलिगुणस्थानमवसानमागि पदिमूरुं गुणस्थानंगळोळु कार्म्मणशरीरक्के निरंतरोदयमुंटागुत्तं विरलु विग्रहगतौ कर्म्मयोगः एंबितु सूत्रारंभमेकें दोडे सिद्धे सत्यारंभो नियमाय एंदु विग्रहगतौ कर्म्मयोग एव नान्यो योगः एंदितीयवधारणमरियल्पडुगुमदु कारणमागि पूर्व्वभवशरीरत्यागदिदमुत्तरभवविग्रहग्रहणार्त्थमागि गतिविग्रहगतियप्पुदरिंदमा विग्रहगतियोळु वर्त्तिसुवरु मिथ्यादृष्टि सासादनासंयतसम्यग्दृष्टिगळेंब मूरुं गुणस्थानवर्त्तिगळागळे वेळकुमा विग्रहगतियोळु

वंति । ५७ ॥३१७॥ अथ कार्मणयोगस्य गाथाद्वयेनाह—

कार्मणयोगे उदयप्रकृतयः द्वाविंशत्युत्तरशते सुस्वरदुःस्वरे प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती प्रत्येकसाधारणे आहारकतदंगोपांगे औदारिकतदंगोपांगे मिश्रप्रकृतिः उपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासाः वैक्रियिकतदंगोपांगे स्त्यानगृद्धित्रयं संस्थानषट्कं संहननषट्कं च नेत्येकान्ननवतिः ८९।

ननु अनादिसंसारे विग्रहाविग्रहगत्योर्मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतगुणस्थानेषु कार्मणस्य निरंतरोदये सति 'विग्रहगतौ कर्मयोगः' इति सूत्रारंभः कथं ? सिद्धे सत्यारभ्यमाणो[1] विधिर्नियमायेति विग्रहगतौ कर्मयोग एव

आगे दो गाथाओंसे कार्मण काययोगमें कहते हैं—

कार्मण काययोगमें सामान्य उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मिश्रप्रकृति, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, संस्थान छह, संहनन छह इन तैंतीसका उदय न होनेसे उदययोग्य नवासी ८९।

शंका—अनादि संसारमें विग्रहगति हो या अविग्रह गति हो उनमें मिथ्यादृष्टि आदि सयोगकेवली पर्यन्त सब गुणस्थानोंमें कार्मणका निरन्तर उदय रहता है। तब तत्त्वार्थ सूत्रमें विग्रहगतिमें कर्मयोग होता है ऐसा कथन क्यों किया ?

समाधान—'सिद्ध होते हुए भी जो विधि आरम्भ की जाती है वह नियमके लिए होती

१. ब सत्यारम्भो नि॰ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्त्तिसद सयोगकेवलि भट्टारकगुणस्थानमिल्लि येंतक्कुमेंदडे 'कर्म्मयोगो विग्रहगतावेव' एंबी नियममिल्लप्पुदरिंदमा विग्रहगतियोळ् वर्त्तिसद प्रतरलोकपूरणत्रिसमयसमुद्घातसयोगकेवलि-भट्टारकगुणस्थानदोळं कार्म्मणकाययोगमेयक्कुमप्पुदरिंदमी कार्म्मणकाययोगदोळु नाल्कुं गुण-स्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १। सूक्ष्मनाममुं १। पर्य्याप्तनाममुमितु मूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३।

सासादननोळु पेळ्दपरु :—

साणे थीवेदछिदी णिरयदुणिरयाउगं ण तियदसयं।
इगिवण्णं पणवीसं मिच्छादिसु चउसु वोच्छेदो ॥३१९॥

सासादने स्त्रीवेदच्छेदः नरकद्विकनरकायुर्न्न त्रिकं दशकमेकं पंचाशत्पंचविंशतिर्म्मिथ्यादिषु चतुर्षु विच्छेदः ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोळनंतानुबंधिचतुष्टयमु ४ मेकेंद्रियजातिनाममुं १। स्थावरनाममुं १ विकलत्रयमुं ३ स्त्रीवेदमुमितु पत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु १०।

असंयतनोळु वैक्रियिकद्विकवर्ज्जितमागि पदिनय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १५। मेळे देशसंयताद्यक्षीणकषायावसानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळोळु केवलकार्म्मणकाययोगमिल्लप्पु-दरिंदमा देशसंयतनोळुद्योतरहितप्रकृतिसप्तकमुं ७। आहारकद्वितयमुं २। स्त्यानगृद्धित्रयमु ३ मी योगदोळु कलेदुवप्पुदरिंदं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु शून्यमक्कु। मप्रमत्तगुणस्थानदोळंतिम-संहननत्रयवर्ज्जितसम्यक्त्वप्रकृतियोंदु १ अपूर्व्वकरणन षण्णोकषायंगळुं ६ अनिवृत्तिकरणन स्त्रीवेदं

नान्यो योगः, इत्यवधारणार्थः। तेन पूर्वभवशरीरं त्यक्त्वोत्तरभवग्रहणार्थं गच्छतोऽपि तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतगुणस्थानानि स्युः। तर्हि सयोगगुणस्थाने कथं कर्मयोगः? विग्रहगतावेवेत्यनियमात् प्रतरलोकपूरणत्रिसमयेऽपि तत्संभवात् ॥ ३१८ ॥

तन्मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिः—। मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं सूक्ष्ममपर्याप्तं चेति त्रयं। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं स्त्रीवेदश्चेति दश। असंयते वैक्रियिकद्विकं विना

है' इस नियमके अनुसार यह कथन 'विग्रहगतिमें कार्मणयोग ही होता है, अन्य योग नहीं होता' यह अवधारण करनेके लिए किया है।

शंका—पूर्वभवका शरीर त्यागकर आगामी भव धारण करनेके लिए जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। विग्रहगतिमें मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थान होते हैं। तब सयोगकेवली गुणस्थानमें कार्मणयोग कैसे है?

समाधान—विग्रहगतिमें ही कार्मणयोग होता है ऐसा नियम नहीं किया है अतः प्रतर और लोक पूरण समुद्घातके तीन समयोंमें कार्मण योग होता है ॥३१८॥

उसमें मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सूक्ष्म अपर्याप्त इन तीनकी होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, स्त्रीवेद दसकी होती है। असंयतमें वैक्रियिकके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादननोळ् व्युच्छित्तियागुदप्पुदरिंदं तद्वर्जितप्रकृतिपंचकमुं ५। सूक्ष्मसांपरायन लोभमोंदुं १। उपशांतकषायन येरडुं वज्रनाराचनाराचसंहननंगळ् २ कळेदुवप्पुदरिंदमल्लि शून्यमक्कुं। क्षीणकषायन पदिनारु १६ मितु गूडियसंयतसम्यग्दृष्टियोळु एकपंचाशत्प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५१। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळ् नाल्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोळु वज्रर्षभनाराचसंहननमुं १ स्वरद्विकमु २। विहायोगतिद्विकमुं २। औदारिकद्विकमुं २। संस्थानषट्कमुं ६। उपघातपरघातोच्छ्वासत्रितयमुं ३। प्रत्येकशरीरमु १ मितु पदिनेळुं १७ प्रकृतिगळं कळेवु शेषपंचविंशतिप्रकृतिगळगुदय व्युच्छित्तियक्कुं २५। अंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ् सम्यक्त्वप्रकृतियुं तीर्थमुमेरडुमनुदयंगळ् २ उदयंगळेंभत्तेळु ८७। सासादनगुणस्थानदोळ् मूरु गूडियनुदयंगळप्पुववरोळ् णिरयदुणिरयाउगं णत्थि एंदु नरकद्विकमुमं नरकायुष्यमुमंनितु मूरुं ३ प्रकृतिगळनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदु अनुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळेंटु ८। उदयंगळेंभत्तोंदु ८१। असंयतगुणस्थानदोळ् पत्तु गूडियनुदयंगळु पदिनेंटरोळ् सम्यक्त्वप्रकृतियुमं नरकद्विकमुमं नरकायुष्यमुमंनितु नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ् पदिनाल्कु १४। उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळेकपंचाशत्प्रकृतिगळकूडि-

---

स्वरस्य पंचदश। पुनः क्षीणकषायांतानां केवलतद्योगाभावादुद्योतं विना सप्त। आहारकद्विकस्त्यानगृद्धित्रयं विना शून्यं अंतिमसंहननत्रयं विना सम्यक्त्वप्रकृतिः षण्णोकषायाः स्त्रीवेदस्य सासादने छेदात् पंच, लोभः वज्रनाराचनाराचाभावात् शून्यं षोडश च मिलित्वा एकपंचाशत्। सयोगे वज्रर्षभनाराचसंहननस्वरद्विकविहायोगतिद्विकौदारिकद्विकसंस्थानषट्कोपघातपरघातोच्छ्वासप्रत्येकशरीराणि राशौ नेति पंचविंशतिः। तथा सति मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वतीर्थकृत्वे अनुदयः २। उदयः सप्ताशीतिः। सासादने अनुदयः त्रयं 'णिरयदु णिरयाउगं णत्थीति त्रयं च मिलित्वाष्टौ। उदयः एकाशीतिः। असंयते दश मिलित्वा सम्यक्त्वनरकद्विकनरकायुरुदयाच्चतु-

---

बिना अपनी शेष पन्द्रह। पुनः क्षीणकषाय पर्यन्त कार्मण काययोग नहीं होता इससे ऊपरके गुणस्थानोंकी व्युच्छित्ति यहाँ ही करनी चाहिए। सो देशविरतकी उद्योत बिना सात, प्रमत्तकी आहारकद्विक और स्त्यानगृद्धि आदि तीनके न होनेसे शून्य, अप्रमत्तकी तीन संहननके बिना केवल एक सम्यक्त्व प्रकृति, अपूर्वकरणकी छह नोकषाय, अनिवृत्तिकरणकी पाँच क्योंकि स्त्रीवेदकी व्युच्छित्ति सासादनमें हो जाती है, सूक्ष्मसाम्परायका लोभ, उपशान्त मोह सम्बन्धी वज्रनाराच और नाराचका अभाव होनेसे शून्य, क्षीणकषायकी सोलह इस तरह सब मिलकर असंयतमें इक्यावनकी व्युच्छित्ति होती है। सयोगीमें बयालीसमें-से वज्रर्षभनाराच संहनन, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थान, उपघात, उछ्वास और प्रत्येक शरीरके न होनेसे पच्चीसकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थंकर दोका अनुदय। उदय सत्तासी। व्यु. तीन।

२. सासादनमें नरकगतिद्विक और नरकायुका उदय न होनेसे पाँचमें तीन मिलाकर आठका अनुदय। उदय इक्यासी।

३. असंयतमें दस मिलाकर सम्यक्त्व, नरकद्विक और नरकायुका उदय होनेसे अनुदय चौदह। उदय पचहत्तर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यनुदयंगळप्पवल्लदरनोळ् तीर्त्थमं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४। उदयंगळिप्पत्तय्दु २५। संदृष्टि :—

कार्म्मण० काय यो० योग्य ८९

०	मि	सा	अ	स
व्यु	३	१०	५१	२५
उ	८७	८१	७५	२५
अ	२	८	१४	६४

अनंतरं वेदमार्ग्गणेयं पेळ्दपरु :—

मूलोघं पुंवेदे थावरचउणिरयजुगलतित्थयरं।
इगिविगलं थीसंढं तावं णिरयाउगं णत्थि ॥३२०॥

मूलोघः पुंवेदे स्थावरचतुर्न्नरकयुगळ तीर्त्थकरं। एकविकलं स्त्रीषंढमातपो नरकायुर्न्नास्ति ॥

पुंवेददोळु मूलौघं नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ स्थावरसूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणचतुष्कमुं ४। नरकद्विकमुं २ तीर्त्थंरनाममुं १। एकेंद्रियजातियुं १। विकलत्रयमुं ३। स्त्रीवेदमुं १ षंढवेदमुं १ मातपनाममुं १ नरकायुष्यमुमंतु पदिनय्दु १५ प्रकृतिगळुदयमिल्लद कारणमवं कळेदु शेषनूरेळु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु १०७ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतिगों दक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं

दश १४। उदयः पंचसप्ततिः। सयोगे-अनुदयः एकपंचाशतं मिलित्वा तीर्थोदयाच्चतुःषष्टिः ६४। उदयः पंचविंशतिः ॥ ३१९ ॥ अथ वेदमार्गणायामाह—

पुंवेदे मूलौघः द्वाविंशत्युत्तरशतं। तत्र स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि नरकद्विकं तीर्थकरत्वमेकेंद्रियं विकलत्रयं स्त्रीषंढवेदौ आतपो नरकायुर्नेति सप्तोत्तरशतमुदययोग्यं १०७। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं

१३ सयोगीमें इक्यावन मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय चौंसठ। उदय पच्चीस ॥३१९॥

औदारिक मिश्रकाययोग ९८

मि.	सा.	अ.	स.
४	१४	४४	३६
९६	९२	७९	३६
२	६	१९	६२

वैक्रियिक मिश्र ७९

मि.	सा.	अ.
१	५	१३
७८	६९	७३
१	१०	६

कार्मणकाययोग ८९

मि.	सा	अ.	स.
३	१०	५१	२५
८७	८१	७५	२५
२	८	१४	६४

अब वेदमार्गणामें कहते हैं—

पुरुषवेदमें गुणस्थानकी तरह एक सौ बाईसमें-से स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकद्विक, तीर्थंकर, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, आतप और नरकायु इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ ।। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ।। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ वैक्रियिकद्विकमुं २। सुरद्विकमुं २ सुरायुष्यमुं १। मनुष्यानुपूर्व्यमुं १। तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १। दुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तित्रितयमु ३ मितु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४ ।। देशसंयतं मोदलागियपूर्व्वकरणगुणस्थानपर्य्यंतमड ८ पंच य ५ चउर ४ छक्क ६ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु। अनिवृत्तिकरण सवेदप्रथमभागेयोळु पुंवेदमुं १। संज्वलनक्रोधमुं १। संज्वलनमानमुं १। संज्वलनमायेयु १ मितु नाल्कुं ४। सूक्ष्मसांपरायन लोभमुं १। उपशांतकषायन वज्रनाराचसंहननद्वितयमुं २। क्षीणकषायन पदिनारुं १६। सयोगायोगिकेवलिभट्टारकद्वितयतीर्त्थरहित नाल्वत्तोंदु प्रकृतिगळु कूडियनिवृत्तिकरणनोळुदयव्युच्छित्तिगळरुवत्तनाल्कु ६४। एकेंदोडे पुंवेदोदयमेल्लिवरमंटल्लिवरमा मार्ग्गणेयप्पुदरिंदं मेलण प्रकृतिगळेल्लमनिवृत्तिकरणनोळे व्युच्छित्तिगळप्पुवप्पुदरिंदं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुमितु नाल्कुं प्रकृतिगळनुदयमक्कुं ४। उदयंगळु नूर मूरु १०३। सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळय्दु ५। उदयप्रकृतिगळु नूररडु १०२। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळों भत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नोंदु ११। उदयंगळु तोंभत्तारु ९६। असंययगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु पन्नेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं १ तिर्य्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्यंगळु मूरुम-

व्युच्छित्तिः १। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिश्रे मिश्रं। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं वैक्रियिकद्विकं सुरद्विकं सुरायुः मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये दुर्भगानादेयायशस्कीर्तयश्चेति चतुर्दश १४। देशसंयतादिचतुर्षु क्रमेणाष्टौ पंच चत्वारि षट्। अनिवृत्तिकरणसवेदप्रथमभागे पुंवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः सूक्ष्मलोभः वज्रनाराचनाराचे षोडश तीर्थकरत्वं विनैकचत्वारिंशच्चेति चतुःषष्टिः ६४। मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयान्यनुदयः ४ उदयः त्र्युत्तरशतं। १०३। सासादने एकां संयोज्य अनुदयः पंच ५। उदयो द्व्युत्तरशतं १०२। मिश्रेऽनुदयः चतुष्कमानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकादश ११। उदयः षण्णवतिः। ९६। असंयतेऽनुदयः एकं

पन्द्रहका उदय न होनेसे उदय योग्य एक सौ सात हैं। उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति ये चौदह १४। देशसंयत आदि चार गुणस्थानोंमें क्रमसे आठ, पाँच, चार और छह। अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेद भागमें पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध मान माया, सूक्ष्म लोभ, वज्रनाराच नाराच संहनन, क्षीणकषाय सम्बन्धी सोलह और तीर्थंकरके बिना केवली सम्बन्धी इकतालीस इन चौंसठकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि अनिवृत्तिकरणके सवेद भागसे आगे वेदका उदय न होनेसे वेदमें नौ ही गुणस्थान होते हैं। अतः—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विक चार ४ का अनुदय। उदय १०३।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय पाँच। उदय एक सौ दो १०२।

३. मिश्रमें अनुदय चार और तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे ग्यारह ११। उदय छियानबे ९६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नंतु नाल्कु प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ् कूडिदोडनुदयंगळेंदु ८। उदयंगळु तोंभोंभत्तु ९९॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनाल्कुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेण्भत्तय्दु ८५। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळेंटुगूडियनुदयंगळु मूवत्तरोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तेंदु २८। उदयंळेप्पत्तोंभत्तु ७९॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तमूरु ३३। उदयंगळेप्पत्तनाल्कु ७४॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु ३७। उदयंगळेप्पत्तु ७०॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु प्रथमसवेदभागेयोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तमूरु ४३। उदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४॥ संदृष्टि :—

पुंवेदयोग्यं १०७।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
व्यु	१	४	१	१४	८	५	४	६	६४
उ	१०३	१०२	९६	९९	८५	७९	७४	७०	६४
अ	४	५	११	८	२२	२८	३३	३७	४३

अनंतरं स्त्रीवेददोळुदययोग्यंगळं षंडवेदक्के सहितमागि पेळ्दपरु :—

मिलित्वा सम्यक्त्वतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्योदयादष्टौ। उदयो नवनवतिः। देशसंयते चतुर्दश संयोज्यानुदयो द्वाविंशतिः २२। उदयः पंचाशीतिः। ८५। प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्वयोदयादनुदयोऽष्टाविंशतिः २८। उदय एकोनाशीतिः ७९। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रयस्त्रिंशत् ३३। उदयः चतुःसप्ततिः। ७४। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्यानुदयः सप्तत्रिंशत् ३७। उदयः सप्ततिः ७०। अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे षट् संयोज्यानुदयः त्रिचत्वारिंशत् ४३। उदयः चतुःषष्टिः। ६४। ३२०। अथ स्त्रीषंढवेदयाराह—

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वीका उदय होनेसे आठ ८। उदय निन्यानबे।

५. देशसंयतमें चौदह मिलाकर अनुदय बाईस २२। उदय पिचासी।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय अठाईस २८। उदय उनासी।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तैंतीस ३३। उदय चौहत्तर ७४।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७। उदय सत्तर ७०।

९. अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें छह मिलाकर अनुदय तेंतालीस। उदय चौंसठ ६४ ॥३२०॥

पुरुषवेद रचना १०७

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
१	४	१	१४	८	५	४	६	६४
१०३	१०२	९६	९९	८५	७९	७४	७०	६४
४	५	११	८	२२	२८	३३	३७	४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थीवेदेवि तहा हारदु-पुरिसूणमित्थिसंजुत्तं ।
ओघं संढे ण हि सुरहारदुथीपुंसुराउतित्थयरं ॥३२१॥

स्त्रीवेदेपि तथा आहारकद्विक पुरुषोन स्त्रीवेदसंयुतं । ओघः षंढे न हि सुराहारद्वय स्त्रीपुरुषसुरायुस्तीर्थंकरं ॥ स्त्रीवेदेपि तथा स्त्रीवेददोळं पुरुषवेददोळु पेळ्द नूरेळु प्रकृतिगळप्पुववरोळाहारकद्विकं पुंवेदमुं मूरुं प्रकृतिगळं कळेदु स्त्रीवेदमं कूडुत्तं विरलुदययोग्यप्रकृतिगळु नूरय्दु १०५। मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वमोंदे व्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधि कषायचतुष्टयमुं ४ देवमनुष्यतिर्य्यगानुपूर्व्यत्रयमु ३ मितेळु प्रकृतिगळु दयव्युच्छित्तियक्कुं। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ देवगतियुं १ वैक्रियिकद्विकमुं २। देवायुष्यमुं १ दुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तित्रयमु ३ मितु पन्नोंदुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ११। देशसंयतनोळु तन्न गुणस्थानदोळपेळदेंटुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळाहारकद्विकमिलेल्केंदोडे स्त्रीवेदोदयसंक्लिष्टरोळाहारकऋद्धिपुट्टदप्पुदरिंदं। स्त्यानगृद्धित्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३। अप्रमत्तनोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतिमसंहननत्रयमु ३ मंतु नाल्कुं ४ प्रकृतिगळ्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४। अपूर्व्वकरणनोळु षण्णोकषायंगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६। अनिवृत्तिकरणनोळरुवत्तनाल्कुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६४। मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमें बेरडुं प्रकृतिगळुगुदयमक्कुं २। उदयंगळु नूर मूरु १०३। सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु मूरु ३। उदयंगळु नूरेरडु १०२। मिश्रगुणस्थानदोळेळुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळों-

स्त्रीवेदेऽपि तथा पुंवेदोक्तं सप्तोत्तरशतं। तत्र चाहारकद्विकं पुंवेदं चापनीय स्त्रीवेदे निक्षिप्ते उदययोग्याः पंचोत्तरशतं १०५। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्व्याणि चेति सप्त ७। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायाः देवगतिः वैक्रियिकद्वयं देवायुः दुर्भगानादेयायशस्कीर्तयश्चेत्येकादश ११। देशसंयते स्वकीयाष्टौ ८। प्रमत्ते संक्लिष्टत्वादाहारकद्धर्यनुद्गमात् स्त्यानगृद्धित्रयमेव ३। अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं च। ४। अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६। अनिवृत्तिकरणे चतुःषष्टिः ६४। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं चानुदयः २। उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३। सासादने

आगे स्त्रीवेद और नपुंसक वेदमें कहते हैं—

स्त्रीवेदमें भी पुरुषवेदकी तरह एक सौ सातमें-से आहारकद्विक और पुरुषवेदको घटाकर स्त्रीवेद मिलानेपर उदय योग्य एक सौ पाँच हैं। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार तथा देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी मिलकर सात। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, वैक्रियिकद्विक, देवायु, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति ये ग्यारह। देशसंयतमें अपनी आठ। प्रमत्तमें संक्लेश परिणाम होनेसे स्त्रीवेदके साथ आहारक ऋद्धिका उदय न होनेसे स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी ही व्युच्छित्ति होती है। अप्रमत्तमें सम्यक्त्व और अन्तके तीन संहनन चार। अपूर्वकरणमें छह नोकषाय। अनिवृत्तिकरणमें चौंसठ ६४। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व दोका अनुदय। उदय एक सौ तीन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भत्तु ९ । उ ंगळु तोभत्तारु ९६ । असंयतगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळो भत्तु ९ । उदयंगळु तो भत्तारु ९६ ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पन्नो दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तु २० । उदयंगळेण्भत्तय्दु ८५ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळें टु गूडियनुदयंगळिप्पत्तें टु २८ । उदयंगळेप्पत्तेळु ७७ अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मूरुगूडियनुदयंगळु मूवत्तो दु ३१ । उदयंगळेप्पत्तनाल्कु ७४ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु मूव त्त्यदु ३५ । उदयंगळप्पत्तु ७० । अनिवृत्तिकरणन सवेदभागेयोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तो दु ४१ । उदयंगळरुवत्त नाल्कु ६४ । संदृष्टि :—

स्त्रीवेदयोग्यं १०५

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
व्यु	१	७	१	११	८	३	४	६	६४
उ	१०३	१०२	९६	९६	८५	७७	७४	७०	६४
अ	२	३	९	९	२०	२८	३१	३५	४१

ओघः षंढे षंढवेददोळु सामान्योदयंगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ सुरद्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ । स्त्रीवेदमुं १ । पुंवेदमुं १ । देवायुष्यमुं १ । तीर्त्थंकरनाममुमिंतें टु ८ प्रकृतिगळं कळेदु नूर पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ११४ ववरोलु मिथ्यादृष्टियोलु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १

एकं संयोज्य अनुदयः त्रयं ३ । उदयो द्व्युत्तरशतं १०२ । मिश्रेऽनुदयः सप्त संयोज्य मिश्रोदयान्नव ९ । उदयः षण्णवतिः ९६ । असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयान्नव । उदयः षण्णवतिः । देशसंयते एकादश संयोज्य अनुदयो विंशतिः २० । उदयः पंचाशीतिः ८५ । प्रमत्तेऽष्टसंयोज्यानुदयोऽष्टाविंशतिः २८ । उदयः सप्तसप्ततिः ७७ । अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयः एकत्रिंशत् ३१ । उदयश्चतुःसप्ततिः ७४ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्य अनुदयः पंचत्रिंशत् ३५ । उदयः सप्ततिः ७० । अनिवृत्तिकरणसवेदभागे षट् संयोज्य अनुदय एकचत्वारिंशत् ४१ । उदयश्चतुःषष्टिः ।

ओघः षंढे—तत्र सुरद्विकमाहारकद्विकं स्त्रीवेदः पुंवेदो देवायुस्तीर्थकरत्वं च नेति चतुर्दशोत्तरशतमुदय-

---

२. सासादनमें अनुदय दोमें एक मिलाकर तीन। उदय एक सौ दो।

३. मिश्रमें सात मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय नौ। उदय छियानवे ९६।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय नौ। उदय छियानबे। व्युच्छित्ति ग्यारह।

५. देशसंयतमें ग्यारह मिलाकर अनुदय बीस। उदय पिचासी। व्यु. ८।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय अठाईस। उदय सतहत्तर ७७। व्यु. ३।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय इकतीस ३१। उदय चौहत्तर ७४। व्यु. ४।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय पैंतीस ३५। उदय सत्तर ७०। व्यु. ६।

९. अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें छह मिलाकर अनुदय इकतालीस। उदय ६४।

नपुंसकवेदमें गुणस्थानवत् एक सौ बाईसमें-से देवगति, देवानुपूर्वी, आहारकद्विक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतपमुं १ सूक्ष्मत्रयमुं ३ मितय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५। सासादनोनलनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४। एकेंद्रियजातियुं १। स्थावरमुं १। विकलत्रयमुं ३। मनुष्यानुपूर्व्यमुं १। तिर्य्यगानुपूर्व्यमु १ मितु पन्नों दु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ११। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे व्युच्छित्तियक्कु १। असंयतनोळु द्वितीयकषायमुं नाल्कु ४ वैक्रियिकद्विकमुं २ नरकद्विकमुं २। नरकायुष्यमुं १। दुर्भगत्रयमु ३ मितु पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२। देशसंयतगुणस्थानदोळु तन्न गुणस्थानदें टुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळु स्त्यानगृद्धित्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३॥ अप्रमत्तनोळु तन्न गुणस्थानद सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतिमसंहननत्रयमुमितु नाल्कु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ अपूर्व्वकरणनोळु षण्णोकषायंगळुदयव्युच्छित्तियक्कु ६॥ अनिवृत्तिकरणन षंढवेदभागेयोळु अरुवत्त नाल्कुंप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु ६४। मितागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळु मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिद्वयमनुदयमक्कुं २। उदयंगळु नूर हन्नेरडु ११२। सासादनगुणस्थानदोळु अय्दु गूडियनुदयंगळेळु मत्तं नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळें टु ८ उदयंगळु नूरारु १०६। मिश्रगुणस्थानदोळु पन्नों दुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनें टु १८। उदयंगळु तों भत्तारु ९६॥ असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं नरकानुपूर्व्यमं कळें दुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनेळु १७। उदयं-

योग्याः ११४। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वमातपः सूक्ष्मत्रयं चेति व्युच्छित्तिः पंच। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कमेकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये चेत्येकादश ११। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं, वैक्रियिकद्विकं नरकगतिः तदानुपूर्व्यं नरकायुर्दुर्भगत्रयं चेति द्वादश १२। देशसंयते स्वकीयाष्टौ ८। प्रमत्ते स्त्यानगृद्धत्रयं ३। अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतिः अंतिमसंहननत्रयं च ४। अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६। अनिवृत्तिकरणे षंढवेदभागे [1]चतुःषष्टिः। ६४। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वद्वयमनुदयः उदयो द्वादशोत्तरशतं। ११२। सासादनेऽनुदयः पंच नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वाष्टौ ८। उदयः षडुत्तरशतं १०६। मिश्रेऽनुदय एकादश मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयादष्टादश १८। उदयः षण्णवतिः ९६। असंयते एकां संयोज्य

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, देवायु और तीर्थंकर न होनेसे उदययोग्य एक सौ चौदह ११४। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, आतप और सूक्ष्मादि तीन मिलकर पाँचकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी ग्यारह। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, वैक्रियिकद्विक, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, दुर्भग आदि तीन सब बारह १२। देशसंयतमें आठ। प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीन। अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृति, अन्तिम तीन संहनन सब चार। अपूर्वकरणमें छह नोकषाय। अनिवृत्तिकरणके नपुंसक वेद भागमें चौंसठ ६४। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय एक सौ बारह।

२. सासादनमें पाँच तथा नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ। उदय एक सौ छह।

३. मिश्रमें अनुदय ग्यारह मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अठारह। उदय ९६।

१ ब °भागे चतुभागे चतुः°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळु तों भत्तेळु ९७। देशसंयत गुणस्थानदोळु पन्नेरडुगूडियनुदयंगळिप्पत्तों भत्तु २९। उदयंगळे-ण्भत्तय्दु ८५। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळें टुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु ३७। उदयंगळेप्पत्तेळु ७७॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळु गूडियनुदयंळु नाल्वत्तु ४०। उदयंगळु येप्पत्तनाल्कु ७४। अपूर्व्वकरण-गुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तनाल्कु ४४। उदयंगळेप्पत्तु ७०। अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानदोळारु गूडियनुदयंगळय्वत्तु ५०। उदयंगलरुवत्त नाल्कु ६४। संदृष्टि :—

षंडयोग्यं ११४

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
व्यु	५	११	१	१२	८	३	४	६	६४
उ	११२	१०६	९६	९७	८५	७७	७४	७०	६४
अ	२	८	१८	१७	२९	३७	४०	४४	५०

अनंतरं कषायमार्ग्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळदपरु :—

सम्यक्त्वप्रकृतिनरकानुपूर्व्योदयादनुदयः सप्तदश १७। उदयः सप्तनवतिः। ९७। देशसंयते द्वादश संयोज्यानुदयः एकान्नत्रिंशत् २९। उदयः पंचाशीतिः ८५। प्रमत्तसंयतेऽष्ट संयोज्यानुदयः सप्तत्रिंशत् ३७। उदयः सप्तसप्ततिः ७७। अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४०। उदयश्चतुःसप्ततिः ७४। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४। उदयः सप्ततिः ७०। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः पंचाशत् ५० उदयश्चतुःषष्टि। ६४। ३२१। अथ कषायमार्गणायामाह—

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और नरकानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय सतरह। उदय सत्तानवे। व्यु. १२।

५. देशसंयतमें बारह मिलाकर अनुदय उनतीस २९। उदय पिचासी।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय सैंतीस। उदय सतहत्तर ७७। व्यु. ३।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय चालीस ४०। उदय चौहत्तर ७४। व्यु. ४।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चवालीस ४४। उदय सत्तर ७०। व्यु. ६

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय पचास ५०। उदय चौंसठ ॥३२१॥

स्त्रीवेद रचना १०५

मि.	सा.	मि	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
१	७	१	११	८	३	४	६	६४
१०३	१०२	९६	९६	८५	७७	७४	७०	६४
२	३	९	९	२०	२८	३१	३५	४१

नपुंसकवेद रचना ११४

मि.	सा.	मि	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
५	११	१	१२	८	३	४	६	६४
११२	१०६	९६	९७	८५	७७	७४	७०	६४
२	८	१८	१७	२९	३७	४०	४४	५०

कषाय मार्गणामें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तित्थयरमाणमायालोह चउक्कूणमोघमिह कोहे ।
अणरहिदे णिगिविगलं तावअण कोहाणुथावरचउक्कं ॥३२२॥

तीर्थंकरमानमायालोभचतुष्कोन ओघ इह क्रोधे । अनंतानुबंधि रहितेनैकविकलत्रयातपानंतानुबंधिक्रोधानुपूर्व्यस्थावर चतुष्कं ॥

इह ई क्रोधकषायमार्ग्गणेयोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ यितर कषायद्वादशप्रकृतिगळं तीर्थंकरनाममु १ मितु पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरों भत्तु १०९ प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०९ ।

अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तन्न गुणस्थानद पंचप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । सासादननोळनंतानुबंधि क्रोधमुं १ एकेंद्रियजातियुं १ स्थावरनामभुं १ विकलत्रयमु ३ मितारुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ । असंयतनोळप्रत्याख्यानक्रोधमुं १ वैक्रियिकषट्कमुं ६ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १ । सुरायुष्यमुं १ नारकायुष्यमुं १ दुर्भगत्रयमुं ३ मितु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४ । देशसंयतनोळु प्रत्याख्यानक्रोधमुं १ तिर्य्यगायुष्यमुं १ उद्योतमुं १ नीचैर्ग्गोत्रमुं २ तिर्य्यग्गतिमुं २ मितय्दुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । प्रमत्तसंयतनोळाहारकद्वयमुं २ स्त्यानगृद्धित्रयमु ३ मंतय्दुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । अप्रमत्तनोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं २ अंतिमसंहननत्रितयमुं ३ मितु नाल्कुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ अपूर्वकरणनोळु नोकषायषट्कक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ ॥ अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागवेदत्रयमुं ३ । द्वितीयक्रोधकषायभागेयोळु संज्वलनक्रोधमुं १ मंतु नाल्कुं ४ सूक्ष्मसांपरायन लोभं कळेवुदप्पुदरिंदमल्लि शून्यमुं उपशांतकषायन वज्रनाराचनाराच-

इह क्रोधकषायमार्गणायां[1] सामान्योदयः इतरद्वादशकषायतीर्थन्यूनः, तेन नवोत्तरशतं भवति । तत्र मिथ्यादृष्टौ स्वकीया पंच व्युच्छित्तिः । सासादनेऽनंतानुबंधिक्रोधः एकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं चेति षट् ६ । मिश्रे मिश्रं १ । असंयतेऽप्रत्याख्यानक्रोधो वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये सुरनारकायुषी दुर्भगत्रयं चेति चतुर्दश १४ । देशसंयते प्रत्याख्यानक्रोधः तिर्यगायुरुद्योतो नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेति पंच ५ । प्रमत्तसंयते आहारकद्वयं स्त्यानगृद्धित्रयं चेति पंच ५ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं चेति चतुष्कं ४ । अपूर्वकरणे नोकषायषट्कं ६ । अनिवृत्तिकरणे प्रथमभागस्य वेदत्रयं । द्वितीयभागस्य संज्वलनक्रोधः । सूक्ष्मसांपरायस्य

– क्रोध कषाय मार्गणामें सामान्य उदय एक सौ बाईसमें-से अन्य बारह कषाय और तीर्थंकर घटानेपर एक सौ नौ १०९ है। उसमें मिथ्यादृष्टीमें अपनी पाँचकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, एकेन्द्रिय, स्थावर और विकलत्रय छह। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें अप्रत्याख्यान क्रोध, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, देवायु, नरकायु, दुर्भग आदि तीन चौदह १४। देशसंयतमें प्रत्याख्यान क्रोध, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र और तिर्यंचगति पाँच। प्रमत्तसंयतमें आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, पाँच। अप्रमत्तमें सम्यक्त्व, अन्तिम तीन संहनन सब ४।

१. ब °कषाये सां°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संहननद्वयमुं २। क्षीणकषायन पदिनारुं १६ सयोगायोगकेवलिगळ तीर्त्थरहितमप्प नाल्वत्तोंदु प्रकृतिगळु ४१ अंतरुवत्तमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६३। अंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोलु मिश्रप्रकृतियुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियुं १। आहारकद्विकमुं २ मितु नाल्कुं प्रकृतिगळनुदयंगळप्पुवु ४। उदयंगळु नूरय्दु १०५। सासादनगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळों भत्तरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयदोळ्कळेदनुदयंगळोळु कूडिदोडनुदयंगळु पत्तु १०। उदयंगळु तोंभत्तोंभत्तु ९९। मिश्रगुणस्थानदोलारुगूडियनुदयंगळु पदिनाररोलु मिश्रप्रकृतियं कलेदुदयंगलळोळु कूडि मत्तमुदयंगळोळु शेषानुपूर्व्यत्रितयमं कलेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगलु पदिनेंटु १८। उदयंगळु तोंभत्तोंदु ९१। असंयतगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळु पत्तोंभत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमानुपूर्व्यचतुष्कमंतय्दु प्रकृतिगळं गलेदुदयंगलोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनाल्कु १४। उदयंगळु तोंभत्तय्दु ९५॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनाल्कुगूडियनुदयंगलिप्पत्तेंटु २८। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तमूररोळु आहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवत्तोंदु ३१। उदयंगळु एप्पत्तेंटु ७८॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु ३६ मूवत्तारु। उदयंळेप्पत्त मूरु ७३॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थान-

लोभापनयनात् शून्यं। उपशांतकषायस्य वज्रनाराचनाराचौ। क्षीणकषायस्य षोडश। सयोगस्य तीर्थं विनैकचत्वारिंशच्चेति त्रिषष्टिः ६३। तथासति—मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकान्यनुदयः। उदयः पंचोत्तरशतं १०५। सासादने पंच नरकानुपूर्व्यं चेत्यनुदयो दश १०। उदयः एकान्नशतं ९९। मिश्रे अनुदयः षट् शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादष्टादश १८ उदय एकनवतिः। असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयाच्चतुर्दश, उदयः पंचनवतिः ९५। देशसंयते चतुःसंयोज्यानुदयेऽष्टाविंशतिः। उदयः एकाशीतिः। ८१। प्रमत्तसंयते पंच संयोज्याहारकद्विकोदयादेकत्रिंशत् ३१। उदयोऽष्टासप्ततिः। ७८। अप्रमत्ते पंच

अपूर्वकरणमें नोकषाय छह। अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें तीन वेद। दूसरे भागमें संज्वलन क्रोध। सूक्ष्म साम्परायके लोभको मूलमें न रखनेसे शून्य, उपशान्त कषायके वज्रनाराच नाराच, क्षीणकषायकी सोलह, सयोगीकी तीर्थंकरके बिना इकतालीस ये सब ६३। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय। उदय एक सौ पाँच।

२. सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय दस। उदय निन्यानबे। व्युच्छित्ति छह।

३. मिश्रमें छह और तीन आनुपूर्वी मिलाकर मिश्रप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय अठारह १८। उदय इकानबे ९१।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय चौदह। उदय पिचानवे ९५। व्यु. १४।

५. देशसंयतमें चौदह मिलाकर अनुदय अठाईस। उदय इक्यासी ८१।

६. प्रमत्त संयतमें पाँच मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय इकतीस ३१। उदय अठहत्तर ७८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोळ् नाल्कुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तु ४० । उदयंगळरुवत्तो भत्त् ६९ ॥ अनिवृत्तिकरणन द्वितीयक्रोधकषायभागेयोळ् आरुगूडियनुदयंगलु नाल्वत्तारु ४६ । उदयंगलरुवत्तमूरु ६३ । अनंतानुबंधिरहिते अनंतानुबंधिरहितनोलु एकेंद्रियजातिनाममुं १ विकलत्रयमु ३ मातपनाममु १ अनंतानुबंधिक्रोधमु १ मानुपूर्व्यचतुष्कमु ४ स्थावरसूक्ष्माऽपर्याप्तसाधारणचतुष्कमु ४ मितु पदिनाल्कु प्रकृतिगळ मिथ्यादृष्टियुदयप्रकृतिगळ् नूरय्दरोळ् १०५ कळेदु शेष तो भत्तो दु प्रकृतिगळनंतानुबंधिरहितमिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळप्पुवु ९१ । संदृष्टि :—

क्रोधमानमायेगळगे योग्य १०९

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
व्युच्छि	५	६	१	१४	५	५	४	६	६३
उद	१०५	९९	९१	९५	८१	७८	७३	६९	६३
अनु	४	१०	१८	१४	२८	३१	३६	४०	४६

लो ४ यो १०९

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू
व्यु	५	६	१	१४	५	५	४	६	३	६०
उ	१०५	९९	९१	९५	८१	७८	७३	६९	६३	६०
अ	४	१०	१८	१४	२८	३१	३६	४०	४६	४९

संयोज्यानुदयः षट्त्रिंशत् ३६ । उदयः त्रिसप्तति: ७३ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० । उदय एकान्नसप्ततिः ६९ । अनिवृत्तिकरणे द्वितीयक्रोधकषायभागे षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६ । उदयस्त्रिषष्टिः । अनंतानुबंधिरहिते तु एकेंद्रियविकलत्रयातपानंतानुबंधिक्रोधानुपूर्व्यचतुष्कस्थावरसूक्ष्मापर्याप्त-

---

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय छत्तीस ३६ । उदय तिहत्तर ७३ ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चालीस ४० । उदय उनहत्तर ६९ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें दूसरे क्रोधकषाय भागमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस । उदय त्रेसठ ।

अनन्तानुबन्धि रहित क्रोधमें मिथ्यादृष्टिमें उदययोग्य एक सौ पाँचमें-से एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, अनन्तानुबन्धी क्रोध, आनुपूर्वी चार, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ये चौदह नहीं होतीं । अतः उदय प्रकृतियाँ इक्यानबे ९१ हैं ।

विशेषार्थ—जो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं माणादितिये मदिसुद अण्णाणगे दु सगुणोघं ।
वेभंगेवि ण ताविगिविगलिंदी थावराणुचऊ ॥३२३॥

एवं मानादित्रये मतिश्रुताज्ञानके तु स्वगुणौघः । विभंगेपि नातापैकविकलेंद्रियस्थावरानुपूर्व्यं चत्वारि ॥

एवं मानादित्रये क्रोधचतुष्कदोळेंतंते मानचतुष्कदोळं मायाचतुष्कदोळुमितरकषायद्वादशप्रकृतिगळुं तीर्त्थमुमंतु पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळेदु नूरों भत्तु नूरों भत्तु गळप्पुवु । १०९ । १०९ । अदु कारणमागि क्रोधदोळे रचने पेळल्पट्टुदु । लोभमदकुमंते यितरकषायद्वादशप्रकृतिगळुं तीर्त्थमुं कळेदु योग्यंगळु नूरों भत्तु प्रकृतिगळप्पुवु १०९ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानावसानमागि पत्तुं गुणस्थानंगळप्पुवु । मतिश्रुताऽज्ञानयोस्तु मत्ते कुमतिकुश्रुतज्ञानंगळोळु सामान्यदिदं पेळ्द नूरिप्पत्तेरडरोळाहारकद्विकमुं २ तीर्त्थमुं १ मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळु २ मंतय्दुं कळेदु शेषप्रकृतिगळुदययोग्यंगळु नूर हदिनेळु ११७ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतपनाममुं १ सूक्ष्मत्रयमुं ३ नरकानुपूर्व्यमुं १ मंताऱुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । सासादननोळु तत्र

साधारणानि मिथ्यादृष्ट्युदयपंचोत्तरशते नेत्येकनवतिरुदयप्रकृतयो[1] भवंति ॥३२२॥

एवं क्रोधचतुष्कवन्मानचतुष्के मायाचतुष्के च द्वादश, इतरकषायतीर्थं नेति नवोत्तरशतं तेन तद्रचना क्रोधरचनैव ज्ञातव्या । लोभेऽपि तथैव तत्त्रयोदशप्रकृत्यभावात् उदययोग्यं नवोत्तरशतं । सूक्ष्मसांपरायांतानि गुणस्थानानि । १०९ । कुमतिकुश्रुतज्ञानयोः पुनः द्वाविंशत्युत्तरशते आहारकद्वयतीर्थमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतयो नेति

उसके कुछ काल तक अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता। उसके उस कालमें इक्यानवे प्रकृतियोंका उदय होता है ॥३२२॥

क्रोधकषाय रचना १०९

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
५	६	१	१४	५	५	४	६	६३
१०५	९९	९१	९५	८१	७८	७३	६९	६३
४	१०	१८	१४	२८	३१	३६	४०	४६

क्रोधचतुष्ककी तरह मानचतुष्क और माया चतुष्कमें भी अन्य बारह कषाय और तीर्थंकरके न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं। अतः उनकी रचना क्रोध कषायकी रचनाकी तरह ही जानना। लोभमें भी तेरह प्रकृतियोंका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं। किन्तु गुणस्थान सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त होते हैं।

कुमति और कुश्रुतज्ञानमें एक सौ बाईसमें-से आहारकद्विक, तीर्थंकर, मिश्र और

१.

मि
१
९१
०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानदोंभत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ९। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयंगळिल्लं। उदयंगळु नूर हदिनेळु ११७। सासादनगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळारेप्पुवु ६। उदयंगळु नूर हन्नोंदु १११। संदृष्टि :—

कु० कु० योग्य ११७

०	मि	सा
व्यु	६	९
उ	११७	१११
अ	०	६

विभंगे वि विभंगज्ञानदोळं आतपनाममुं १। एकेंद्रियजातिनाममुं १। विकलेंद्रियत्रयमुं ३। स्थावर सूक्ष्मापर्य्याप्त साधारणचतुष्कमुं ४ आनुपूर्व्यचतुष्कमु ४ मंतु पदिमूरुप्रकृतिगळुमं पेळ्व कुमतिकुश्रुतज्ञानयोग्यंगळु नूर हदिनेळरोळु ११७ कळेदोडे नूर नाल्कुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०४॥ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वमोंदे व्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधिकषाय-चतुष्टयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयमिल्ल। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ सासादनगुणस्थानदोळोंदनुदयमक्कुं १। उदयंगळु नूर मूरु १०३॥ संदृष्टि :—

सप्तदशोत्तरशतमुदययोग्यं। ११७। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वातपसूक्ष्मत्रयनारकानुपूर्व्याणि व्युच्छित्तिः ६। सासादने स्वस्य नव। मिथ्यादृष्टावनुदयो नास्ति। उदयः सप्तदशोत्तरशतं। ११७। सासादनेऽनुदयः षट् ६। उदय एकादशोत्तरशतं १११।

विभंगेऽप्येवमेव तथापि मातपैकेंद्रियविकलत्रयस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानुपूर्व्यचतुष्कानीति चतुरुत्तर-शतमुदययोग्यं। १०४। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिथ्यादृष्टा-वनुदयो नास्ति। उदयः चतुरुत्तरशतं १०४। सासादने एकमनुदयः १। उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३॥ ३२३॥

सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ सतरह ११७ हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मादि तीन और नरकानुपूर्वी इन छहकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अपनी नौकी व्युच्छित्ति होती है।

१. मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अनुदय नहीं है। उदय एक सौ सतरह ११७।

२. सासादनमें अनुदय छह। उदय एक सौ ग्यारह १११।

विभंगमें भी ऐसा ही जानना। किन्तु आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और चार आनुपूर्वीका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ चार १०४।

मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी और सासादनमें अनन्तानुबन्धी चारकी व्युच्छित्ति होती है। मिथ्यादृष्टिमें अनुदय नहीं है। उदय एक सौ चार १०४।

सासादनमें एकका अनुदय। उदय एक सौ तीन १०३॥३२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभंगयोग्य १०४

०।०	मि	सा
व्यु	१	४
उ	१०४	१०३
अ	०	१

सण्णाणपंचयादी दंसणमग्गणपदोत्ति सगुणोघं ।
मणपज्जवपरिहारे णवरि ण संढित्थिहारदुगं ।।३२४।।

संज्ञानपंचकादिदर्शनमार्गणापदपर्य्यंतं स्वगुणौघः । मनःपर्य्ययपरिहारयोः नवीनं न षंडस्त्र्याहारद्विकं ॥

सम्यग्ज्ञानपंचकादि दर्शनमार्गणास्थानपर्य्यंतं स्वगुणौघमेयक्कुमदें तें दोडे मतिश्रुतावधिज्ञानत्रितयंगळोळसंयतादिक्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं नवगुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदुदयव्युच्छित्तिगळय्दुं ५ सासादनननवकमुं ९ । मिश्रन मिश्रप्रकृतियुं १ । तीर्थंकरनाममु १ मितु पदिनारुं प्रकृतिगळं कळेद शेषनूरारु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु । १०६ । अल्लि असंयतनोळु तन्न गुणस्थानदोळु पेळद द्वितीयकषायादिपदिनेळु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु १७ । देशसंयतादिगळोळु अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पु-

संज्ञानपंचकाद् दर्शनमार्गणापर्यंतं स्वगुणौघ एव तद्यथा—मतिज्ञानादित्रये गुणस्थानानि असंयतादीनि नव । उदयप्रकृतयः मिथ्यादृष्ट्यादित्रयस्य व्युच्छित्तिः पंचदश तीर्थकरत्वं च नेति षडुत्तरशतं १०६ । तत्रासंयते स्वस्य सप्तदश व्युच्छित्तिः १७ । तत्र देशसंयतादिषु 'अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलस' तथासति

कुमति-कुश्रुत रचना

मि.	सा.
६	९
११७	१११
०	६

विभंग रचना

मि.	सा.
१	४
१०४	१०३
०	१

पाँच सम्यग्ज्ञानसे लेकर दर्शनमार्गणा पर्यन्त अपने गुणस्थानवत् जानना। जो इस प्रकार है—

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञानमें गुणस्थान असंयतसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त नौ। उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति ५ + ९ + १ = पन्द्रह और तीर्थंकरका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ छह १०६ ।

वहाँ असंयतमें अपनी सतरहकी व्युच्छित्ति होती है । देशसंयत आदिमें आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलहकी व्युच्छित्ति है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विकक्कनुदमवकुं २। उदयंगळ् नूर नाल्कु १०४॥ देश-संयतगुणस्थानदोळ् पदिनेळ् गूडियनुदयंगळ् हत्तों भत्तु १९। उदयंगळेण्भत्तेळ् ८७। प्रमत्तसंयत-गुणस्थानदोळें टुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळरोळ् २७ आहारकद्विकमं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनु-दयंगळिप्पत्तय्दु २५। उदयंगळेण्भत्तों दु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळ् मूवत्तु ३०। उदयंगळेप्पत्तारु ७६॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळ् नाल्कु गूडियनुदयंगळ् मूवत्त नाल्कु ३४। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तु ४०। उदयंगळरु-वत्तारु ६६॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तारु ४६। उदयंगळरुवत्तु ६०॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तेळ् ४७। उदयंगळय्वत्तों भत्तु ५९॥ क्षीण-कषायगुणस्थानदोळेरडु गूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तों भत्तु ४९। उदयंगळय्वत्तेळ् ५७। संदृष्टि :—

मतिश्रुतावधि यो० १०६

०	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	२	१९	२५	३०	३४	४०	४६	४७	४९

असंयते आहारकद्विकमनुदयः २ उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयः एकान्नविंशतिः। उदयः सप्ताशीतिः। ८७। प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदये पंचविंशतिः २५। उदय एकाशीतिः। ८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रिंशत् ३०। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्यानुदय-श्चतुस्त्रिंशत् ३४। उदयो द्वासप्ततिः। अनिवृत्तिकरणे षट्संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४०। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६। उदयः षष्टिः ६०। उपशांतकषाये एकां संयोज्यानुदयः सप्तचत्वारिंशत् ४७। उदय एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयः एकान्नपंचाशत् ४९। उदयः सप्तपंचाशत् ५७।

४. असंयतमें आहारकद्विकका अनुदय। उदय एक सौ चार १०४।

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय उन्नीस। उदय सत्तासी ८७।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विका उदय होनेसे अनुदय पच्चीस। उदय इक्यासी ८१।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तीस ३०। उदय छिहत्तर ७६।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चौंतीस ३४। उदय बहत्तर ७२।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चालीस। उदय छियासठ।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस। उदय साठ।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतालीस। उदय उनसठ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनचास। उदय सत्तावन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनःपर्य्ययज्ञानोळ् मणपज्जवे णवरि ण संढित्थी हारदुगं एंदितु नाल्कुं प्रकृतिगळं प्रमत्तसंयतनुदयप्रकृतिगळेण्भत्तोंदरोळु ८१ कळेदोडुदययोग्य प्रकृतिगळेप्पत्तेळु ७७। गुणस्थानंगळु प्रमत्तादिसप्तप्रमितंगळप्पुवल्लि प्रमत्तसंयतनोळु स्त्यानगृद्धित्रयंक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळु तन्न गुणस्थानद नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ अपूर्व्वकरणनोळु तन्न गुणस्थानद षण्णोकषायंगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ ॥ अनिवृत्तिकरणनोळु पुंवेदमुं संज्वलनक्रोधादित्रितयमुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। ४ ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। उपशांतकषायनोळु तन्न गुणस्थानद वज्रनाराचनाराचद्वयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं २ ॥ क्षीणकषायनोळु तन्न गुणस्थानद द्विचरमसमयदोळु निद्राप्रचलेगळुं २ चरम समयदोळु ज्ञानावरणपंचकमु–५। मंतरायपंचकमुं ५ दर्शनचतुष्कमुं नाल्कु ४ मंतु पदिनारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु। १६। मंतागुत्तं विरलु प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळनुदयं शून्यं उदयंगळेप्पत्तेळु ७७ ॥ अप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळनुदयंगळु मूरु ३। उदयगळेप्पत्तनाल्कु ७४ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळु ७। उदयंगळेप्पत्तु ७० ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु पदिमूरु १३। उदयंगळरुवत्त नाल्कु ६४ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु पदिनेळु १७। उदयंगळु अरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयंगळु हदिनेंटु

---

[1]मनःपर्ययज्ञाने—संढित्थीहारदुगं णेति तच्चतुष्के प्रमत्तोदयैकाशीत्यामपनीते सप्तसप्ततिः ७७। गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि सप्त। तत्र प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयं व्युच्छित्तिः ३। अप्रमत्ते स्वस्य चतुष्कं ४। अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६। अनिवृत्तिकरणे पुंवेदः संज्वलनक्रोधादित्रयं च ४। सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः। उपशांतकषाये वज्रनाराचनाराचद्वयं २। क्षीणकषाये द्विचरमसमये निद्राप्रचले, चरमे ज्ञानावरणपंचकं अंतरायपंचकं दर्शनावरणचतुष्कं च मिलित्वा षोडश १६। एवं सति प्रमत्तेऽनुदयः शून्यं। उदयः सप्तसप्ततिः ७७। अप्रमत्तेऽनुदयस्त्रयं ३। उदयश्चतुःसप्ततिः ७४। अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयः सप्त ७। उदयः सप्ततिः ७०। अनिवृत्तिकरणे षट्संयोज्यानुदयस्त्रयोदश १३। उदयश्चतुःषष्टिः ६४। सूक्ष्मसांपराये चतुष्कं संयोज्या-

---

मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्त संयममें उदययोग्य इक्यासीमें-से नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य सतहत्तर ७७। गुणस्थान प्रमत्तादि सात। उनमें-से प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी व्युच्छित्ति। अप्रमत्तमें अपनी चारकी व्युच्छित्ति। अपूर्वकरणमें छह नोकषाय। अनिवृत्तिकरणमें पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध आदि तीन। सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्मलोभ। उपशान्तकषायमें वज्रनाराच और नाराच। क्षीण कषायमें द्विचरम समयमें निद्रा प्रचला, चरम समयमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय मिलकर सब सोलह १६। ऐसा होनेपर—

६. प्रमत्तमें अनुदय शून्य। उदय सतहत्तर ७७।

७. अप्रमत्तमें अनुदय तीन। उदय चौहत्तर ७४।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सात। उदय सत्तर ७०।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय तेरह। उदय चौसठ।

---

१. ब. मनःपर्ययज्ञानिनां।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८ । उदयंगळय्वत्तों भत्तु । ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयंगळिप्पत्तु २० । उदयंगळय्वत्तेळु ५७ ॥ संदृष्टि–मनःपर्य्ययज्ञानयोग्य ७७ ।

०	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	३	४	६	४	१	२	१६
उ	७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७
अ	०	३	७	१३	१७	१८	२०

केवलज्ञानदोळु योग्योदय प्रकृतिगळु नाल्वत्तेरडु ४२ । गुणस्थानद्वितयमल्लि सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळु मूवत्तु ३० । अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पन्नेरडु १२ । संदृष्टिः–केवलिद्वययोग्य ४२ ।

०	स	अ
व्यु	३०	१२
उ	४२	१२
अ	०	३०

नुदयः सप्तदश १७ । उदयः षष्टिः ६० । उपशांतकषाये एकं संयोज्यानुदयोऽष्टादश १८ । उदय एकान्नषष्टिः ५९ । क्षीण कषाये द्वे संयोज्यानुदयो विंशतिः २० । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ ।

केवलज्ञाने उदययोग्या द्वाचत्वारिंशत् ४२ । तत्र सयोगे व्युच्छित्तिः त्रिंशत् । अयोगे द्वादश । संदृष्टिः–

केवलिद्वययोग्यः ४२

	स	अ
व्यु	३०	१२
उ	४२	१२
अ	०	३०

१०. सूक्ष्म साम्परायमें चार मिलाकर अनुदय सतरह । उदय साठ ६० ।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय अठारह । उदय उनसठ ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बीस । उदय सत्तावन ।

केवलज्ञानमें उदययोग्य बयालीस । उसमें-से सयोगीमें व्युच्छित्ति तीस । अयोगीमें बारह ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयममार्ग्गणेयोळु सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयदोळु योग्यंगळु प्रमत्तगुणस्थानदेण्भत्तोंदु प्रकृतिगळप्पु ८१ वल्लि गुणस्थानंगळुं नाल्कु। प्रमत्तसंयतादिव्युच्छित्तिगळु पंच य चउर छक्क छच्चेव एंदो उदयव्युच्छित्तिगळु। प्रमत्तगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमक्कुं। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१॥ अप्रमत्तगुणस्थान दोळय्दु प्रकृतिगळनुदयंगळु ५। उदयंगळेप्पत्तारु ७६॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कूगूडियनुदयंगळोंभत्तु ९। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु पदिनय्दु १५। उदयंगळरुवत्तारु ६६। संदृष्टि। सा० छे० योग्य ८१।

०	प्र	अ	अ	अ
व्यु	५	४	६	६
उ	८१	७६	७२	६६
अ	०	५	९	१५

परिहारविशुद्धिसंयमदोळु परिहारे ण्णवरि ण संढित्थिहारदुगं एंदिती नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषप्रकृतिगळेप्पत्तेळुदययोग्यंगळं ७७। प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वितयमेयक्कुं संदृष्टि :—

संयममार्गणायां सामायिकछेदोपस्थापनयोरुदययोग्याः प्रमत्तस्यैकाशीतिः ८१। गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि चत्वारि। व्युच्छित्तयः पंचयचउरछक्कछच्चेव। प्रमत्तेऽनुदयः शून्यं। उदय एकाशीतिः ८१। अप्रमत्तेऽनुदयः पंच ५। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयो नव ९। उदयो द्वासप्ततिः। ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः पंचदश १५ उदयः षट्षष्टिः ६६। परिहारविशुद्धौ संढित्थीहारदुगं णेति तच्चतुष्केऽपनीते सप्तसप्ततिरुदययोग्याः ७७। प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थाने द्वे। संदृष्टिः—

सम्यग्ज्ञानत्रय रचना १०६

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी
१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
२	१९	२५	३०	३४	४०	४६	४७	४९

मनःपर्ययज्ञान रचना ७७

प्र.	अ	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
३	४	६	४	१	२	१६
७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७
०	३	७	१३	१७	१८	२०

केवलज्ञान रचना ४२

स.	अ.
३०	१२
४२	१२
०	३०

संयममार्गणामें सामायिक और छेदोपस्थापनामें उदययोग्य प्रमत्तसंयमकी इक्यासी ८१। गुणस्थान प्रमत्त आदि चार। व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, चार, छह, छह। प्रमत्तमें अनुदय शून्य। उदय इक्यासी। अप्रमत्तमें अनुदय पाँच, उदय छिहत्तर। अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय नौ। उदय बहत्तर ७२। अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय पन्द्रह। उदय छियासठ ६६।

परिहार विशुद्धिमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिहारयो ७७		
०	प्र	अ
व्यु	३	४
उ	७७	७४
अ	०	३

सूक्ष्मसांपरायसंयमोदययोग्यप्रकृतिगळरुवत्तु ६०। सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमोंदेयक्कुं। यथाख्यातसंयमोदयप्रायोग्य प्रकृतिगळु उपशांतकषायगुणस्थानदय्वत्तोंभत्तरोळु तीर्त्थमंकूडियरु वत्तु प्रकृतिगळप्पुवु ६० गुणस्थानंगळु नाल्कप्पुवल्लियुपशांतकषायनोळु वज्रनाराचशरीरसंहनन-द्वयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं २ ॥ क्षीणकषायनोळु तन्न गुणस्थानद पदिनारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति-यक्कु ११६ ॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु तद्गुणस्थानद मूवत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति-यक्कुं ३० ॥ अयोगिकेवलिभट्टारकनोळं तद्गुणस्थानद पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु-मंतागुत्तं विरलुपशांतकषायगुणस्थानदोळु तीर्त्थमोंदनुदयमक्कुं १। उदयंगळय्वत्तोंभत्तु ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयंगळु ३। उदयंगळय्वत्तेळु ५७ ॥ सयोगिकेवलिभट्टारक-गुणस्थानदोळु परिनारुगूडियनुदयंगळु हत्तोंभत्तरोळु तीर्त्थमं कळेदुवय प्रकृतिगळोळु कूडुत्तं

---

१ परि = यो ७७

	प्र	अ
व्यु	३	४
उ	७७	७४
अ	०	३

सूक्ष्मसांपरायस्योदयः षष्टिः ६०। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानम्। यथाख्यातसंयमस्योदयः उपशांतकषायस्य एकान्नषष्ट्यां तीर्थं मिलित्वा षष्टिः ६०। गुणस्थानान्युपशांतकषायादीनि चत्वारि। तत्रोपशांतकषाये वज्रना-राचनाराचद्वयं व्युच्छित्तिः। क्षीणकषाये षोडश। सयोगे त्रिंशत्। अयोगे द्वादश। तथा सति उपशांतकषाये तीर्थमनुदयः १। उदय एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयस्त्रयं। ३। उदयः सप्तपंचाशत् ५७।

सतहत्तर ७७। गुणस्थान दो प्रमत्त और अप्रमत्त। सूक्ष्मसाम्परायमें उदय साठ। एक गुण-स्थान सूक्ष्म साम्पराय। यथाख्यातसंयममें उपशान्तकषायमें उदययोग्य उनसठमें तीर्थंकर मिलाकर उदययोग्य साठ। गुणस्थान उपशान्तकषाय आदि चार। उनमेंसे उपशान्त कषायमें वज्रनाराच और नाराच दोकी व्युच्छित्ति। क्षीण कषायमें सोलह। सयोगीमें तीस। अयोगीमें बारह। ऐसा होनेपर—

उपशान्तकषायमें तीर्थंकरका अनुदय। उदय उनसठ ५९। क्षीणकषायमें दो मिलाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरलनुदयंगळु पदिनेंटु १८। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२॥ अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मूवत्तुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेंटु ४८। उदयंगळु पन्नेरडु १२॥ संदृष्टि :—

यथाख्यात योग्य ६०

०	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२	१६	३०	१२
उ	५९	५७	४२	१२
अ	१	३	१८	४८

देशसंयमदोळु देशसंयतगुणस्थानदुदयप्रकृतिगळेण्भत्तेळु ८७ उदययोग्यंगळप्पुवु॥ गुणस्थानमुमा देशसंयतगुणस्थानमों देयक्कुं। असंयमदोळु तीर्त्थंकरनाममुमाहारकद्वयमुममंतु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषप्रकृतिगळु नूर हत्तोंभत्तुदययोग्यंगळप्पुवु ११९ वल्लि मिथ्यादृष्ट्यादियागि नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि तंतम्म गुणस्थानद पण णव इगि सत्तरस प्रकृतिगळमे यथासंख्यमागियुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुमनुदयंगळु २। उदयंगळु नूरहदिनेळु ११७। सासादनगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळेळरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेंटु ८। उदयंगळु नूर हन्नोंदु १११॥ मिश्रगुणस्थानदोळों भत्तुं गूडियनुदयंगळु हदिनेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयंगळोळु शेषानुपूर्व्यत्रयमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हत्तोंभत्तु १९। उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तरोळु सम्यक्त्व-

सयोगे अनुदयः। षोडश संयोज्य तीर्थोदयादष्टादश १८। उदयो द्वाचत्वारिंशत् ४२। अयोगे त्रिंशत् संयोज्यानुदयोऽष्टाचत्वारिंशत् ४८। उदयो द्वादश १२। देशसंयमे तद्गुणस्थानस्य सप्ताशीतिरुदययोग्याः ८७। गुणस्थानं तदेव। असंयमे तीर्थकरत्वमाहारकद्वयं विना शेषैकान्नविंशत्युत्तरशतमुदययोग्यं ११९। मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानानि चत्वारि। व्युच्छित्तयः 'पणणव इगिसत्तरसं'। तथा सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं चानुदयः। उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। सासादनेऽनुदयः पंच नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वाष्टौ ८। उदय एकादशोत्तरशतं १११। मिश्रेऽनुदयो नव शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकान्नविंशतिः १९।

अनुदय तीन। उदय सत्तावन। सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय अठारह। उदय बयालीस। अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय अड़तालीस ४८। उदय बारह १२।

देशसंयममें उसी गुणस्थानमें उदययोग्य सतासी। वही एक गुणस्थान होता है। असंयममें तीर्थंकर और आहारकद्विक बिना उदय योग्य एक सौ उन्नीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार। व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, नौ, एक, सतरह। ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय एक सौ सतरह। सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी मिलाकर अनुदय आठ। उदय एक सौ ग्यारह। मिश्रमें नौ और शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतियुमं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमितय्दुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ् पदिनय्दु १५। उदयंगळ् नूर नाल्कु १०४॥ संदृष्टि :—

असं० योग्य ११९॥

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	५	९	१	१७
उ	११७	१११	१००	१०४
अ	२	८	१९	१५

दर्शनमार्ग्गणेयोळ् चतुर्द्दर्शनयोग्योदयप्रकृतिगळु सामान्योदययोग्यप्रकृतिगळ् नूरिप्पत्तेरड-रोळ् :—

चक्खुम्मि ण साहारणताविगिबितिजाइ थावरं सुहुमं।
किण्णदुगे सुगुणोघं मिच्छे णिरयाणु वोच्छेदो ॥३२५॥

चक्षुषि न साधारणातपैकद्वित्रिजातिस्थावरं सूक्ष्मं कृष्णद्विके स्वगुणौघः मिथ्यादृष्टौ नारकानुपूर्व्यव्युच्छेदः॥

साणे सुराउ सुरगदिदेवतिरिक्खाणु वोच्छिदी एवं।
काओदे अयदगुणे णिरयतिरिक्खाणुवोच्छेदो ॥३२६॥

सासादने सुरायुः सुरगतिदेवतिर्य्यगानुपूर्व्यव्युच्छित्तिरेवं। कापोते असंयतगुणस्थाने निरयतिर्य्यगानुपूर्व्यव्युच्छित्तिः॥

साधारणनाममुं १। आतपनाममुं १। एकेंद्रियजातियुं १। द्वींद्रियजातियुं १। त्रींद्रियजातियुं १। स्थावरनाममुं १। सूक्ष्मनाममुं १। तीर्त्थकरनाममुं १ मितेंदुं ८। न न संति येंदिवं

उदयः शतं १००। असंयते एकं मिलित्वा सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयात्पंचदश १५। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४॥ ३२४।

दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शने साधारणमातप एकेंद्रियं द्वींद्रियं त्रींद्रियं स्थावरं सूक्ष्मं तीर्थकरत्वं च नेति

मिश्रका उदय होनेसे अनुदय उन्नीस। उदय सौ। असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और आनुपूर्वी चारका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह। उदय एक सौ चार ॥३२४॥

दर्शनमार्गणामें चक्षुदर्शनमें साधारण, आतप, एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय,

सामायिक छेदोप. ८१

	प्र.	अ.	अ.	अ.
व्यु.	५	४	६	६
उदय	८१	७६	७२	६६
अनु.	०	५	९	१५

परि. वि. ७९

प्र.	अ.
३	४
७९	७४
०	३

यथाख्यात ६०

उ.	क्षी	स.	अ.
२	१६	३०	१२
५९	५७	४२	१२
१	३	१८	४८

असंयम ११९

मि.	सा.	मि.	अ
५	९	१	१७
११७	१११	१००	१०४
२	८	१९	१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कळेयलु शेष नूर पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ११४। गुणस्थानंगळुं मिथ्यादृष्टियादियागि क्षीणकषायावसानमागि पन्नेरडप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुमितेरडुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं २॥ सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुं ४ चतुरिंद्रियजातिनाममुमितय्दुं ५ प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५॥ मिश्रं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं यथासंख्यमागि इगि सत्तरसं अडपंचय चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुमितु नाल्कुं प्रकृतिगळ्गनुदयमक्कुं ४। उदयंगळु नूर हत्तु ११०॥ सासादनगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयंगळाररोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७। उदयंगळु नूरेळु १०७॥ मिश्रगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु पन्नेरडरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयप्रकृतिगळोळु शेषानुपूर्व्यत्रयमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनाल्कु १४। उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु पदिनय्दरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमनंतय्दुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळुं पत्तुं १०। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळु २७। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळें टुगूडियनुदयंगळु मूवत्तय्दरोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवत्तमूरु ३३। उदयंगळेण्भत्तों दु ८१॥

चतुर्दशोत्तरशतमुदययोग्यं ११४। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश १२। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वापर्याप्तव्युच्छित्तिः २। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं चतुरिंद्रियं च ५। मिश्रात् क्षीणकषायपर्यंत इगिसत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेवइगिदुगसोलस व्युच्छित्तयः। तथा सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं आहारकद्वयं चानुदयः, उदयो दशोत्तरशतं ११०। सासादने द्वे नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वानुदयः सप्त ७। उदयः सप्तोत्तरशतं १०७। मिश्रेऽनुदयः पंच शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयाच्चतुर्दश १४। उदयः शतं १००। असंयतेऽनुदयः एकं संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयाद्दश १०। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयः सप्तविंशतिः २७। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्वयोदयादनुदयस्त्र-

---

स्थावर, सूक्ष्म और तीर्थंकरके न होनेसे उदययोग्य एक सौ चौदह ११४ हैं। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि बारह हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और चौइन्द्रिय पाँच। मिश्रसे क्षीणकषायपर्यन्त क्रमसे एक, सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो और सोलहकी व्युच्छिति होती है।

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय है। उदय एक सौ दस ११०।

२. सासादनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय सात। उदय एक सौ सात।

३. मिश्रमें अनुदय पाँच और शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर तथा मिश्रका उदय होनेसे चौदह १४। उदय एक सौ १००।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और चारों आनुपूर्वीका उदय होनेसे दस १०। उदय एक सौ चार १०४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं केलगण गुणस्थानंगळुदयव्युच्छित्तिगळु-मनुदयंगळुमं कूडिदोडे मेलण मेलण गुणस्थानदप्रकृतिगळक्कुं। केळगण गुणस्थानदुदयव्युच्छित्तिगळं कळेदुदयप्रकृतिगळु मेलण गुणस्थानदुदयप्रकृतिगळप्पुवेंब व्याप्तियरियल्पडुगुं। संदृष्टियोळी व्याप्तियतिव्यक्तमल्लि भाविसुवुदु ॥ संदृष्टि :—

चक्षुर्द्दर्शनयोग्य ११४

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु.	२	५	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	११०	१०७	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	४	७	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७

यस्त्रिंशत् ३३ उदयः एकाशीतिः ८१। अप्रमत्तात्क्षीणकषायपर्यंतमधस्तनव्युच्छित्त्यनुदययोग उपरितनानुदयः स्यात्। अधस्तनव्युच्छित्तौ स्वोदयेऽपनीतायामुपरितनोदयः स्यात् इति व्याप्तिर्ज्ञातव्या। संदृष्टि :—

चक्षुर्दर्शनोदययोग्यः ११४ ॥

	मि	सा	मि	अ	द	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	२	५	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	११०	१०७	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	४	७	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय सत्ताईस। उदय सत्तासी।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय तैंतीस ३३। उदय इक्यासी ८१।

७. अप्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त नीचेकी व्युच्छित्ति और अनुदयको मिलानेपर ऊपरका अनुदय होता है। और नीचेकी व्युच्छित्तिको अपने उदयमें घटानेपर ऊपरका उदय होता है। ऐसी व्याप्ति जानना चाहिये। उसकी संदृष्टि—

चक्षुदर्शनमें उदययोग्य ११४

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
व्यु.	२	५	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ.	११०	१०७	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अनु.	४	७	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचक्षुर्द्दर्शनमार्ग्गणेयोळु तीर्त्थंकरनामरहितसामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तों दु १२१। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिमोदलागि पन्नेरडुं गुणस्थानंगळप्पुवु। मिथ्यादृष्ट्यादिगळोळु यथाक्रमदिदमुदयव्युच्छित्तिगळु पण णव इगि सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं।४। उदयंगळु नूरहदिनेळु ११७। सासादननोळय्दुं कूडियनुदयंगळु ओंभत्तरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तुं १०। उदयंगळु नूर हन्नों दु १११॥ मिश्रगुणस्थानदोळों भत्तुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडिमत्तमुदयप्रकृतिगळोळानुपूर्व्यत्रितयमं कळेदनुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तों दु २१। उदयंगळु नूरु १००॥ असंयतगुणस्थानदोळु ओं दुगूडियनुदयंगळु यिप्पत्तेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमनानुपूर्व्यचतुष्कमुमनंतु पंचप्रकृतिगळं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनेळु १७। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुगूडियनुदयंगळु मूवत्तनाल्कु ३४। उदयंगळें भत्तेळु ८७। प्रमत्तगुणस्थानदोळेंदुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेरडरोळु आहारकद्विकमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु नाल्वत्तु ४०। उदयंगळु यें भत्तों दु ८१॥ अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गों डु क्षीणकषायगुण-

---

अचक्षुर्दर्शने तीर्थंकरत्वं नेत्युदयप्रकृतयः एकविंशत्युत्तरशतं १२१। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश, व्युच्छित्तयः 'पण्णवइगिसत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलस' एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयान्यनुदयः ४। उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। सासादनेऽनुदयः पंच नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा दश १०। उदय एकादशोत्तरशतं १११। मिश्रेऽनुदयो नवानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकविंशतिः २१। उदयः शतं १००। असंयतेऽनुदय एकां संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयात्सप्तदश १७। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् ३४ उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयश्चत्वारिंशत्। उदय एकाशीतिः ८१। अप्रमत्तात् क्षीणकषायपर्यंतमनुदयः

अचक्षुदर्शनमें तीर्थंकरका उदय न होनेसे उदय प्रकृतियाँ एक सौ इक्कीस १२१ हैं। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि बारह। व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, नौ, एक, सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय ४। उदय एक सौ सतरह।

२. सासादनमें अनुदय पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर दस १०। उदय एक सौ ग्यारह।

३. मिश्रमें अनुदय नौ और तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे इक्कीस। उदय सौ १००।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे सतरह १७। उदय एक सौ चार १०४।

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय चौंतीस ३४। उदय सतासी ८७।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय चालीस। उदय ८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानपर्य्यंतमनुदयंगळु यथाक्रमदिद नाल्वत्तय्दु ४५। नाल्वत्तोंभत्तु ४९। अय्वत्तय्दु ५५। अरुवत्तोंदु ६१। अरुवत्तेरडुं ६२। अरुवत्तनाल्कु ६४ मप्पुवु। उदयंगळु छसदरिदुसदरि छावट्ठिसट्ठी णव वण्णास सगवण्णास मुमप्पुवु। संदृष्टिरचने। अचक्षुदर्शनयोग्य १२१।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	४	१०	२१	१७	३४	४०	४५	४९	५५	६१	६२	६४

अवधिदर्शनमार्गणेयोळु अवधिज्ञानदोळें तंते मिथ्यादृष्टिय अय्दुं ५ सासादननोंभत्तुं ९ मिश्रनोंदुं १ तीर्थमु १ मंतु पदिनारुं १६ प्रकृतिगळं कळेदुळिद नूरारुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०६। अल्लियसंयतादिगुणस्थानंगळोंभत्तप्पुवसंयतं मोदलागि यथाक्रमदिदमुदयव्युच्छित्तिगळु सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानं मोदलगोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं यथाक्रमदिदमनुदयंगळेरडुं २। पत्तोंभत्तु १९। यिप्पत्तय्दु २५। मूवत्तुं ३०। मूवत्तनाल्कु ३४। नाल्वत्तुं ४०। नाल्वत्तारुं ४६। नाल्वत्तेळुं ४७। नाल्वत्तोंभत्तुं ४९। प्रकृतिगळप्पुवु। उदयंगळु चवुसहियसयं नूरनाल्कु १०४। सगसीदि ८७। इगिसीदि

पंचचत्वारिंशत् ४५। एकान्नपंचाशत् ४९। पंचपंचाशत् ५५। एकषष्टिः। द्वाषष्टिः ६२ चतुःषष्टिः ६४। उदयाः छसदरीदुसदरीछावट्ठिसट्ठिणवचण्णाससगवण्णास।

अवधिदर्शनमार्गणायां अवधिज्ञानवत् षडुत्तरशतमुदययोग्यं। गुणस्थानानि नव। व्युच्छित्तयः सत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेवइगिदुगसोलस। तथा सति अनुदयाः द्वयं २। एकोनविंशतिः १९। पंचविंशतिः २५। त्रिंशत् ३०। चतुस्त्रिंशत् ३४। चत्वारिंशत् ४०। षट्चत्वारिंशत् ४६। सप्तचत्वारिंशत्। ४७।

अप्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त अनुदय क्रमसे पैंतालीस ४५, उनचास ४९, पचपन ५५, इकसठ ६१, बासठ ६२, चौंसठ ६४। उदय क्रमसे छियत्तर ७६, बहत्तर ७२, छियासठ ६६, साठ ६०, उनसठ ५९, सत्तावन ५७। संदृष्टि—

अचक्षुदर्शन रचना १२१

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
४	१०	२१	१७	३४	४०	४५	४९	५५	६१	६२	६४

अवधिदर्शन मार्गणामें अवधिज्ञानकी तरह एक सौ छह उदययोग्य हैं। गुणस्थान चारसे बारह तक नौ होते हैं। व्युच्छित्तियाँ क्रमसे सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह। ऐसा होनेपर अनुदय क्रमसे दो २, उन्नीस १९, पच्चीस २५, तीस ३०, चौंतीस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१ । छसदरी ७६ । दुसदरी ७२ । छावट्ठी ६६ । सट्ठी ६० । णवपण्णास ५९ । सगवण्णास ५७ । प्रकृतिगळप्पुवु । संदृष्टि । अवधिदर्शनयो० १०६ :—

०	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	२	१९	२५	३०	३४	४०	४६	४७	४९

केवलदर्शनमार्गणेयोळु केवलज्ञानमार्गणेयोळ् तंतेयक्कुमल्लियुदययोग्यंगळु नाल्वत्तेरडु प्रकृतिगळप्पुवु ४२ । सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानद्वयमक्कुं । संदृष्टि । केवलदर्शनयोग्य ४२

०	स	अ
व्यु	३०	१२
उ	४२	१२
अ	०	३०

एकान्नपंचाशत् ४९ । उदयाः चदुसहियसयं १०४ । सगसीदि ८७ । इगिसीदि ८१ । छसदरी ७६ । दुसदरी ७२ । छावट्ठि ६६ । सट्ठि ६० । णवपण्णास ५९ । सगवण्णास ५७ । केवलदर्शने केवलज्ञानवत् । संदृष्टि :— ५

केवलदर्शनयोग्य ४२

	स	अ
व्यु	३०	१२
उ	४२	१२
अ	०	३०

३४, चालीस ४०, छियालीस ४६, सैंतालीस ४७, उनचास ४९ । उदय क्रमसे एक सौ चार १०४, सत्तासी ८७, इक्यासी ८१, छियत्तर ७६, बहत्तर ७२, छियासठ ६६, साठ ६०, उनसठ ५९, सत्तावन ५७ । केवलदर्शनमें केवलज्ञानकी तरह जानना । संदृष्टि— १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेश्यामार्ग्गणेयोळु किण्हदुगे सगुणोघं मिच्छे णिरयाणु वोच्छेदो एंदितु कृष्ण नील लेश्याद्वयमार्ग्गणेयोळु[1] तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुमितु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदुळिद सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरहत्तोंभत्तु प्रकृतिगळप्पुवु ११९। मिथ्यादृष्ट्याद्दि चतुर्ग्गुणस्थानंगळप्पुवेकेंदोडयदोत्ति छलेस्साओ एंदितु पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदं। मिथ्यादृष्टियोळु तन्न प्रकृतिगपंचकमुं नरकानुपूर्व्यमुमंतारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु ६। एकेंदोडे णिरयं सासण सम्मो ण गच्छदि एंदु सासादननोळा नरकानुपूर्व्योदयमिल्ल। मिश्रनोळावानुपूर्व्यंगळगमुदयमिल्लप्पुदरिनल्लियुं नरकानुपूर्व्योदयमिल्ल। असंयतसम्यग्दृष्टि द्वितीयादिपृथ्विगळोळु पुट्टनप्पुदरिंदमी तृतीयादिपृथ्वीसंबंधि नीलकृष्णलेश्याद्वयमार्ग्गणेयोळसंयतंगे नरकानुपूर्व्योदयमिल्लदु कारणमागि मिथ्यादृष्टियोळे तदुदयव्युच्छित्तियक्कुमप्पुदरिंदं॥ सासादननोळु तन्न गुणस्थानदों भत्तु ९ असंयतनत्तणि बंद सुरद्विकमुं २। सुरायुष्यमुं १। तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमितु त्रयोदशप्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १॥ असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४। नरकगतिनाममुं १ नरकायुष्यमुं १ वैक्रियिकद्वयमुं २ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १। दुर्भगत्रयमु ३ मितु पन्नेरडु प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२॥ तिर्य्यगानुपूर्व्योदयमसंयतनोळेकिल्लेंदोडे भोगापुण्णगसम्मे काउस्स

लेश्यामार्गणायां कृष्णनीलयोस्तीर्थकृदाहारकद्वयं च नेत्युदययोग्यप्रकृतयः एकान्नविंशतिशतं। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टयादीनि चत्वारि। कुतः? 'अयदोत्ति छल्लेस्साओ' इत्युक्तत्वात्। मिथ्यादृष्टौ स्वस्य पंच नरकानुपूर्व्यं च व्युच्छित्तिः ६ सासादनस्य नरकगमनाभावात्,। मिश्रस्यानुपूर्व्यानुदयात्, असंयतस्य द्वितीयादिपृथ्वीष्वनुत्पत्तेश्च तदानुपूर्व्यस्यात्रैव छेदात्। सासादने स्वस्य नव, असंयतागतसुरद्विकसुरायुस्तिर्यगानुपूर्व्याणि च १३। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं नरकगतिस्तदायुर्वैक्रियिककद्वयं मनुष्यानुपूर्व्यं

अवधिदर्शन रचना १०६

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
२	१९	२५	३०	३४	४०	४६	४७	४९

केवलदर्शन ४२

स.	अ.
३०	१२
४२	१२
०	३०

लेश्या मार्गणामें कृष्ण और नीलमें तीर्थंकर और आहारकाद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य प्रकृतियाँ एक सौ उन्नीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार; क्योंकि आगममें कहा है कि असंयत गुणस्थान पर्यन्त छह लेश्या होती हैं।

मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर व्युच्छित्ति छह। क्योंकि सासादन तो मरकर नरकमें नहीं जाता। मिश्रमें आनुपूर्वीका उदय नहीं होता, और असंयत मरकर दूसरे आदि नरकोंमें उत्पन्न नहीं होता। इसलिए नरकानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें ही होती है। सासादनमें अपनी नौ तथा असंयत सम्बन्धी देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु और तिर्यंचानुपूर्वी मिलकर तेरह १३। मिश्रमें मिश्र एक। असंयतमें दूसरी कषाय चार, नरकगति, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब बारह १२।

१. म °र्गणेगलोलु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णियं हवे णियमा एंदु तिर्य्यगानुपूर्व्योदयमिल्ल । देवनारकसम्यग्दृष्टिगळु कर्म्मभूमियोळु पुट्टुवरादोडं तिर्य्यग्गतियोळपुट्टरु । मनुष्यानुपूर्व्योदयमसंयतसम्यग्दृष्टियोळें तेंदोडे नरकदिदं बर्प्प सम्यग्दृष्टिगे कर्म्मभूमियोळुत्पत्तिनियममुंटप्पुदरिदं तन्मनुष्यभवप्रथमकालदोळंतर्म्मुहूर्त्त-पर्य्यंतं पूर्व्वभवलेश्येयप्पुदरिदं मनुष्यानुपूर्व्योदयं कृष्णनीललेश्याऽसंयतनोळक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोलु मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळगुदयमक्कुं २ उदयंगळु नूर पदिनेळु ११७ ॥ सासादनगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळें टु ८ । उदयंगळु नूर हन्नों दु १११ । मिश्र गुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तों दरोळु कूडिमत्तमुदयप्रकृतिगळोळु मनुष्यानुपूर्व्यमं कळेदनुउदयंग-ळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तों दु २१ । उदयंगळु तों भतेंटु ९८ ॥ असंयतगुणस्थानदोळों दु गूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरल-नुदयंगळिप्पत्तु २० । उदयंगळु तों भत्तों भत्तु ९९ । संदृष्टि :—

कृ० नी० यो ११९

०	मि	सा	मि	अ
व्युच्छि	६	१३	१	१२
उद	११७	१११	९८	९९
अनु	२	८	२१	२०

दुर्भगत्रयं च १२ । तिर्यगानुपूर्व्यं कुतो न ? 'भोगापुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे' इति नियमात् देवनारका-संयतस्य तु तिर्यक्ष्वनुत्पत्तेः । मनुष्यानुपूर्व्यं कथं स्यात् ? नरकादागच्छत्सम्यग्दृष्टेः कर्मभूम्युत्पत्तिनियमात्तद्भव-प्रथमकालांतर्मुहूर्तं पूर्वभवलेश्यासद्भावात् । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वेऽनुदयः, उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७ । सासादने षट् संयोज्यानुदयोऽष्टौ ८ । उदय एकादशोत्तरशतं १११ । मिश्रेऽनुदयः त्रयोदश मनुष्यानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकविंशतिः २१ । उदयोऽष्टानवतिः ९८ ॥ असंयतेऽनुदय एकं मिलित्वा सम्यक्त्वमनुष्यानु-

शंका—यहाँ तिर्यंचानुपूर्वी क्यों नहीं है ?

समाधान—आगममें कहा है—'भोगभूमियाँ निर्वृत्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टिके कापोत लेश्याका जघन्य अंश होता है,' ऐसा नियम होनेसे देव और नारक असंयत तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होता।

शंका—तब मनुष्यानुपूर्वीका उदय यहाँ कैसे सम्भव है ?

समाधान—नरकसे आनेवाला सम्यग्दृष्टी नियमसे कर्मभूमिके मनुष्योंमें उत्पन्न होता है और उसके भवके प्रथम अन्तर्मुहूर्त कालमें पूर्व भवकी लेश्या रहती है इससे यहाँ असंयतमें मनुष्यानुपूर्वीका उदय सम्भव है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व दोका अनुदय। उदय एक सौ सतरह।

२. सासादनमें छह मिलाकर अनुदय आठ ८। उदय एक सौ ग्यारह १११।

३. मिश्रमें अनुदय तेरह और मनुष्यानुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे इक्कीस २१। उदय अठानवे ९८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपोतलेश्यामार्ग्गणेयोळुदययोग्यंगळु कृष्णनीललेश्याद्वयदोळेंतंते नूर हत्तोंभत्तु ११९। मिथ्यादृष्ट्याादि नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवु। मिथ्यादृष्टियोळु तन्न गुणस्थानद प्रकृतिपंचकक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५॥ सासादननोळं तन्न गुणस्थानद नवप्रकृतिगळु ९। असंयतनत्तणिंदं सुरद्विकमुं २ सुरायुष्यमुं १ मंतु पन्नेरडुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं॥ असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ नरकद्विकमुं २। नरकायुष्यमुं १ वैक्रियिकद्विकमुं २। तिर्य्यंग्मनुष्यानुपूर्व्यद्विकमुं २ दुर्भगत्रयमु ३ मंतु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४। मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रसम्यक्त्व प्रकृतिद्वयक्कनुदयमक्कुं २। नूर हदिनेळु प्रकृतिगळुगुदयमक्कु ११७॥ सासादनगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळेळरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेंटु ८। उदयंगळु नूर हन्नोंदु १११॥ मिश्रगुणस्थानदोळु पन्नेरडुगूडियनुदयंगळिप्पत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तमुदयप्रकृतिगळोळु आनुपूर्व्यद्वयमं २ कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तोंदु २१। उदयंगळु तोभत्तेंटु ९८॥ असंयतगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं मूरानुपूर्व्यंगळुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनेंटु १८। उदयंगळु नूरोंदु १०१॥ संदृष्टि :—

पूर्व्योदयाद् विंशतिः २०। उदय एकान्नशतं ९९।

कपोतलेश्यायामुदययोग्यं कृष्णनीलवदेकान्नविंशतिशतं ११९। गुणस्थानानि आद्यानि चत्वारि। तत्र मिथ्यादृष्टौ निजपंच व्युच्छित्तिः। सासादने स्वकीयनवासंयतागतसुरद्विकसुरायुषी च १२। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं नरकद्विकं तदायुर्वैक्रियिकद्विकं तिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यौ दुर्भगत्रयं च ११४। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वे अनुदयः उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। सासादने पंच नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वाऽनुदयोऽष्टौ ८। उदय एकादशोत्तरशतं १११। मिश्रेऽनुदयो द्वादशानुपूर्व्यद्वयं च संयोज्य मिश्रोदयादेकविंशतिः २१। उदयोऽष्टानवतिः ९८। असंयतेऽनुदयः एकं संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यत्रयोदयादष्टादश १८। उदय एकोत्तरशतं १०१।

---

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे बीस २०। उदय निन्यानबे ९९।

कापोत लेश्यामें उदययोग्य कृष्ण-नीलकी तरह एक सौ उन्नीस। गुणस्थान आदिके चार। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँचकी व्युच्छित्ति। सासादनमें अपनी नौ तथा असंयत सम्बन्धी देवगति, देवानुपूर्वी और देवायु मिलाकर १२।

मिश्रमें मिश्र एक। असंयतमें दूसरी कषाय चार, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब चौदह। ऐसा होनेपर।

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय एक सौ सतरह ११७।

२. सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी मिलाकर अनुदय आठ ८। उदय एक सौ ग्यारह।

३. मिश्रमें अनुदय बारह और दो आनुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्रका उदय होनेसे इक्कीस २१। उदय अठानबे ९८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपोत यो० ११९।

गु	मि	सा	मि	अ
व्यु	५	१२	१	१४
उ	११७	१११	९८	१०१
अ	२	८	२१	१८

भवनत्रयदेवक्कळनिर्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळ् अशुभलेश्यात्रयमे शरीरपर्य्याप्तियिंदं मेले तेजोलेश्याजघन्यांशमेयप्पुदरिंदमशुभलेश्यात्रयासंयतसम्यग्दृष्टिभवनत्रयदोळ् पुट्टनप्पुदरिंदं देवद्विकमुं १ देवायुष्यमुं १ सासादनसम्यग्दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तियादुवेकेंदोडे अशुभलेश्यात्रय सासादनना भवनत्रयदोळ् पुट्टुवनप्पुदरिंदमंते पेळल्पट्टुदु ॥

साणे सुराउसुरगदिदेवतिरिक्खाणु वोच्छिदी एवं।
काओदे अयदगुणे णिरयतिरिक्खाणुवोच्छेदो ॥३२६॥

सासादने सुरायुः सुरगति देवगतितिर्य्यगानुपूर्व्यव्युच्छित्तिरेवं। कापोते असंयतगुणं नरकतिर्य्यगानुपूर्व्यव्युच्छेदः ॥

अदु कारणमागि कृष्णनीललेश्याद्वय सासादननोळ् सुरायुष्यमुं सुरगतियुं देवानुपूर्व्यमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं मंतु नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरला सासादननोळ् पदिमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३ ॥ एवं काओदे कपोतलेश्ययोळमित नूर हत्तोंभत्तुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ११९। वा कपोतलेश्याऽसंयतगुणस्थानदोळु नरकानुपूर्व्यमुं

भवनत्रयदेवानामपर्याप्तकाले अशुभलेश्यात्रयं। पर्याप्तेरुपरि तेजोलेश्याजघन्यांशः। अशुभलेश्यात्रयासंयतानां भवनत्रयाऽनुत्पत्तेर्देवद्विकं देवायुः सासादने व्युच्छित्तिः तादृक् सासादनानां तत्रोत्पत्तेः ॥३२५॥ तथैवाह—

ततः कारणात्कृष्णनीलयोः सासादने सुरगत्यायुरानुपूर्व्यतिर्यगानुपूर्व्याणि व्युच्छित्तिरेवं सति त्रयोदश

---

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व और तीन आनुपूर्वीका उदय होनेसे अठारह १८। उदय एक सौ एक १०१।

भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके अपर्याप्त अवस्थामें तीन अशुभ लेश्या होती हैं। और पर्याप्त होनेपर तेजोलेश्याका जघन्य अंश होता है। तीन अशुभलेश्यावाले असंयत सम्यग्दृष्टी मरकर भवनत्रिकमें उत्पन्न नहीं होते। इसलिए देवगति, देवानुपूर्वी और देवायुकी व्युच्छित्ति सासादनमें कही है; क्योंकि अशुभलेश्यावाले सासादन सम्यग्दृष्टि भवनत्रिकमें उत्पन्न हो सकते हैं ॥३२५॥

वही कहते हैं—

इसी कारणसे कृष्ण और नीलमें सासादन गुणस्थानमें देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, और तिर्यंचानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होनेसे तेरहकी व्युच्छित्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्य्यंगानुपूर्व्यमुमेरडु मुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवंतागुत्तं विरला कपोतलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिप्रथमपृथ्वियोळ् पुट्टुवनप्पुदरिंदं द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ नरकद्विकमु २ वैक्रियिकद्विकमुं २ नारकायुष्यमुं १ तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगत्रयमुं ३ मनुष्यानुपूर्व्यमुमंतु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमें दितु पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदं ।

अनंतरं शुभलेश्यात्रयमार्ग्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्वपरु :—

तेउतिए सगुणोघं णादाविगिविगल थावरचउक्कं ।
णिरयदुतदाउतिरियाणुगं णराणू ण मिच्छदुगे ॥३२७॥

तेजस्त्रये स्वगुणौघः नातापैकविकलस्थावरचतुष्कं । नरकद्वयतदायुस्तिर्य्यगानुपूर्व्यं नरानुपूर्व्यं न मिथ्यादृष्टिद्विके ॥

तेजःपद्मशुक्ललेश्यात्रयमार्ग्गणेयोळु स्वगुणौघमक्कुमल्लियातपनाममुं १ एकेंद्रियजातियुं १ विकलत्रयमुं ३ स्थावरमुं १। सूक्ष्ममुं १ अपर्य्याप्तमुं १ साधारणशरीरमुं १ नरकद्विकमुं २। नरकायुष्यमुं १। तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १ यितु पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरों भत्तुं प्रकृतिगळुदय योग्यंगळप्पुवल्लि। तेजःपद्मलेश्यामार्ग्गणाद्वयदोळु तीर्त्थमं कळेदु योग्यप्रकृतिगळु नूरेंदु

१३। एवं कपोतलेश्यायामपि एकान्नविंशतिशतमुदययोग्यं भवति ११९। तदसंयते गुणस्थाने नरकतिर्यगानुपूर्व्ये व्युच्छित्तिरेवं सति तदसंयतप्रथमपृथ्व्यामुत्पद्यते तेन द्वितीयकषायचतुष्कं नरकद्विकवैक्रियिकद्विकं नारकायुस्तिर्यगानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं मनुष्यानुपूर्व्यं चेति चतुर्दश व्युच्छित्तिरित्युक्तं ॥३२६॥ अथ शुभलेश्यात्रयस्याह—

तेजःपद्मशुक्ललेश्यासु स्वगुणौघः। तत्रातप एकेंद्रियं विकलत्रयं स्थावरं सूक्ष्ममपर्याप्तं साधारणं नरकद्विकं तदायुस्तिर्यगानुपूर्व्यं च नेति नवोत्तरशतमुदययोग्यं भवति। तत्रापि तेजःपद्मयोस्तीर्थकरत्वं नेत्यष्टोत्तरशतं

इसी प्रकार कापोत लेश्यामें भी उदययोग्य एक सौ उन्नीस ११९ हैं। वहाँ असंयत गुणस्थानमें नरकानुपूर्वी और तिर्यंचानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर कापोतलेश्यावाला असंयत प्रथम नरकमें उत्पन्न होता है अतः दूसरी कषाय चार, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन और मनुष्यानुपूर्वी इन चौदहकी व्युच्छित्ति कही है ॥३२६॥

कृष्णनील रचना ११९

	मि.	सा.	मि.	अ.
व्यु.	६	१३	१	१२
उदय	११७	१११	९८	९९
अनुदय	२	८	२१	२०

कापोत रचना ११९

	मि.	सा.	मि.	अ.
व्यु.	५	१२	१	१४
उदय	११७	१११	९८	१०१
अनु.	२	८	२१	१८

आगे तीन शुभ लेश्याओंमें कहते हैं—

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यामें अपने गुणस्थानवत् जानना। उनमें आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं। उनमें भी तेजोलेश्या और पद्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०८। मिथ्यादृष्ट्याद्यावि सप्तगुणस्थानंगळप्पुववल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों देयुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्क मुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों वक्कुदयव्युच्छित्तियक्कु १ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगत्रयमु ३ मंतु त्रयोदशप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३॥ देशसंयतनोळु तृतीयकषायमुं तिर्य्यगायुष्यमुं १ उद्योतमुं १ नीचैर्ग्गोत्रमुं १ तिर्य्यग्गतियु १ मंतेंटु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळाहारद्विकमुं २। स्त्यानगृद्धित्रयमु ३ मंतु पंचप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतिमसंहननत्रयमुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु ४ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियु सम्यक्त्वप्रकृतियुं आहारकद्विकमुं २ णराणू ण मिच्छ दुगे येंदु मनुष्यानुपूर्व्यमु १ मंतय्दुं प्रकृतिगळनुदयंगळक्कुं ५। उदयंगळु नूर मूरु १०३॥ सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळारु ६। उदयंगळु नूरेरडु १०२॥ मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु हृतरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयंगळोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तु १०। उदयंगळु तोंभत्तेंटु ९८॥ असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु पत्तों दरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यमं देवानुपूर्व्यमुमनंतु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु

१०८। गुणस्थानानि सप्ताद्यानि। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः १। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायाः सुरद्विकं वैक्रियिकद्विकं सुरायुमनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं चेति त्रयोदश। देशसंयते तृतीयकषायास्तिर्यगायुरुद्योतो नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेत्यष्टौ ८ प्रमत्ते आहारकद्विकं स्त्यानगृद्धित्रयं चेति पंच ५। अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं चेति चत्वारि ४। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वमाहारकद्विकं 'णराणूण मिचछदुगे' इति मनुष्यानुपूर्व्यं चेति पंचानुदयः ५ उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३। सासादने एकं संयोज्यानुदयः षट् उदयो द्व्युत्तरशतं १०२। मिश्रेऽनुदयः चतुष्कं देवानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रोदयाद्दश १०। उदयोऽष्टानवतिः ९८। असंयतेऽनुदये एकं संयोज्य सम्यक्त्वमनुष्यदेवानुपूर्व्योदयादष्टौ ८। उदयः शतं १००।

लेश्यामें तीर्थंकरका उदय होनेसे एक सौ आठका उदय है। गुणस्थान आदिके सात होते हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब तेरह १३। देशसंयतमें तीसरी कषाय चार, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यंचगति आठ। प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीन आहारकद्विक ५। अप्रमत्तमें सम्यक्त्व और अन्तके तीन संहनन सब चार। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और मनुष्यानुपूर्वी मिलकर अनुदय पाँच। उदय एक सौ तीन १०३।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय छह। उदय एक सौ दो १०२।

३. मिश्रमें अनुदय चार और देवानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे दस १०। उदय अठानबे ९८।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वीका उदय होनेसे आठ ८। उदय सौ १००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूडुत्तं विरलनुदयंगळे टु ८। उदयंगळु नूर १००। देशसंयतगुणस्थानदोळ् पदिमूरुगूडियनुदयं-गळिप्पत्तों दु २१ उदयंगळे ण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळें टुगूडियनुदयंगळिप्पत्तों भत्तु अवरोळाहारकद्विकमं कळे दुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तेळु २७ उदयंगळेण्भत्तों दु ८१॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोलय्दुगूडियनुदयंगलु मूवत्तेरडु ३२॥ उदयंगलेप्पत्तारु ७६॥ संदृष्टि :—

तेज० पद्म० योग्य १०८।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ
व्यु	१	४	१	१३	८	५	४
उ	१०३	१०२	९८	१००	८७	८१	७६
अ	५	६	१०	८	२१	२७	३२

शुक्ललेश्यामार्ग्गणेयोळु योग्यप्रकृतिगळु नूरों भत्तु १०९। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदलागि पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दुदयव्युच्छित्ति १। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १॥ असंयतगुणस्थानदोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगत्रयमुमितु पदिमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३॥ देशसंयतादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदं अडपंचय चउर छक्क छच्चेव इगिदुगसोळस बुदाळ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृति सम्यक्त्वप्रकृति आहारद्विक तीर्त्थंकरनाम णराणू ण मिच्छदुगे एंदु मनुष्यानुपूर्व्यमुमंतु षट्प्रकृतिगळनुदयंगळु ६ उदयंगळु

देशसंयते त्रयोदश संयोज्यानुदयः एकविंशतिः २१। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयः सप्तविंशतिः २७। उदय एकाशीतिः। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयो द्वात्रिंशत् ३२। उदयः षट्सप्ततिः ७६।

शुक्ललेश्यायां—उदययोग्यं नवोत्तरशतं १०९। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश १३। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रं। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं, सुरचतुष्कं, सुरायुर्मनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं चेति त्रयोदश १३। देशसंयतादिषु यथाक्रमं 'अडपंचयचउरछक्कछच्चेव

५. देशसंयतमें तेरह मिलाकर अनुदय इक्कीस २१। उदय सत्तासी ८७।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय सत्ताईस, उदय इक्यासी ८१।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय बत्तीस ३२। उदय छियत्तर ७६।

शुक्ललेश्यामें उदययोग्य एक सौ नौ १०९। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि तेरह। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन ये तेरह। देशसंयत आदिमें क्रमसे आठ, पाँच, चार, छह,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नूर मूरु १०३ । सासादनगुणस्थानदोळु ओंदुगूडियनुदयंगळेळु ७ । उदयंगळु नूरेरडु १०२ ॥ मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु पन्नोंदरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयप्रकृतिगळोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नोंदु । उदयंगळु तोंभत्तेंटु ९८ ॥ असंयतगुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयंगळु पन्नेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं देवानुपूर्व्यमं मनुष्यानुपूर्व्यमनंतु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळो भत्तु ९ । उदयंगळु नूरु १०० ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२ । उदयंगळेण्भत्तेळु ८७ ॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळेंटु गूडियनुदयंगळु मूवत्तरोळु आहारद्विकमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तेंटु २८ । उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळु मूवत्तमूरु ३३ उदयंगळेप्पत्तारु ७६ ॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु ३७ । उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु आरुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तमूरु ४३ । उदयंगळरुवत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तोंभत्तु ४९ उदयंगळरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषाय गुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयंगळय्वत्तु ५० । उदयंगळय्त्तोंभत्तु-

इगिदुगसोलसबादालं' । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकतीर्थकरत्वानि 'णराणू ण मिच्छदुगे' इति मनुष्यानुपूर्व्यं चेत्यनुदयः ६ । उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३ । सासादने एकं संयोज्यानुदयः सप्त ७ । उदयो द्व्युत्तरशतं १०२ । मिश्रेऽनुदये चतुष्कं देवानुपूर्व्यं च संयोज्य मिश्रोदयादेकादश उदयोऽष्टानवतिः ९८ । असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वदेवमनुष्यानुपूर्व्योदयान्नव ९ उदयः शतं १०० । देशसंयते त्रयोदश संयोज्यानुदयो द्वाविंशतिः २२ । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयोऽष्टाविंशतिः २८ । उदय एकाशीतिः ८१ । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रयस्त्रिंशत् ३३ । उदयः षट्सप्ततिः ७६ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयः सप्तत्रिंशत् ३७ । उदयो द्वासप्ततिः ७२ । अनिवृत्तिकरणेऽनुदयस्त्रिचत्वारिंशत् ४३ । उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट्संयोज्यानुदय एकान्नपंचाशत् ४९ । उदयः षष्टिः ६० । उपशांतकषाये एकं संयोज्यानुदयः

छह एक, दो, सोलह तथा बयालीस । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर, मनुष्यानुपूर्वी, इन छहका अनुदय । उदय एक सौ तीन ।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय सात । उदय एक सौ दो ।

३. मिश्रमें अनुदय चार और देवानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे ग्यारह । उदय अठानबे ।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व, देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय नौ । उदय एक सौ १०० ।

५. देशसंयतमें तेरह मिलाकर अनुदय बाईस २२ । उदय सत्तासी ८७ ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय अठाईस । उदय इक्यासी ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तेंतीस । उदय छियत्तर ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७ । उदय बहत्तर ७२ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदय तैंतालीस ४३ । उदय छियासठ ६६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडियनुदयंगळय्वत्तेरडु ५२। उदयंगळय्वत्तेळु ५७॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळरुवत्तेरोळु तीर्त्थमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तेळु ६७। उदयंगळु नाल्वत्तरडु ४२। संदृष्टि :—

शुक्ललेश्यायोग्य १०९

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०३	१०२	९८	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	६	७	११	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

भव्विदरुवसमवेदगखइए सुगुणोघमुवसमे खइए।
ण हि सम्ममुवसमे पुण णादितियाणू य हारदुगं ॥३२८॥

भव्येतरोपशमवेदकक्षायिके स्वगुणौघः उपशमे क्षायिके न हि सम्यक्त्वमुपशमे पुनर्न्नादित्रयानुपूर्व्यं चाहारकद्विकं॥

भव्यमार्ग्गणेयोळमितरमभव्यमार्ग्गणेयोळमुपशमसम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळं वेदकसम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळं क्षायिकसम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळं स्वगुणौघमक्कुमुपशमदोळं सम्यक्त्वप्रकृतियिल्लेकेंदोडे उपशमसम्यक्त्वदोळु दर्शनमोहत्रयक्के प्रशस्तोपशममुंटप्पुदरिंदमुदयक्के बारदु। क्षायिकसम्यक्त्वदोळु दर्शनमोहत्रयं क्षपियिसल्पट्टुदप्पुदरिंद नष्टमादुदप्पदरिंदं। मत्तमुपशमसम्यक्त्वदोळु

पंचाशत् ५०। उदयः एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयो द्वापंचाशत् ५२। उदयः सप्तपंचाशत् ५७। सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयादनुदयः सप्तषष्टिः ६७। उदयो द्वाचत्वारिंशत् ४२॥ ३२७॥

भव्याभव्योपशमवेदकक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु स्वगुणौघः किंतु उपशमसम्यक्त्वे दर्शनमोहस्य प्रशस्तो-

१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय उनचास ४९। उदय साठ ६०।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय पचास ५०। उदय उनसठ ५९।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बावन ५२। उदय सत्तावन ५७।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय सड़सठ। उदय बयालीस ॥३२७॥

तेज-पद्मलेश्या १०८

मि.	सा.	मि	अ.	दे.	प्र.	अ.
१	४	१	१३	८	५	४
१०३	१०२	९८	१००	८७	८१	७६
५	६	१०	८	२१	२७	३२

शुक्ललेश्या १०९

मि.	सा.	मि	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.
१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
१०३	१०२	९८	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
६	७	११	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

भव्य, अभव्य, उपशम सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणाओंमें अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना। किन्तु उपशम सम्यक्त्वमें दर्शनमोहका प्रशस्त उपशम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयमुमाहारकद्विकमुमिल्लेकेंदोडे[1] प्रथमोपसम्यक्त्वदोळ् प्राग्बद्धनरकतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यरादोडं मरणमिल्लेकेंदोडे :—

मिस्साहारस्सयाखवगा चडमाणपढमपुव्वा य।
पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥
अणसंजोजिदमिच्छे मुहुत्त अंतोत्ति णत्थि मरणं तु।
कदकरणिज्जं जाव दु सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा ॥

निवृत्यपर्य्याप्तकरुं आहारकमिश्रकायरुं क्षपकरुगळुमुपशमश्रेण्यारोहणप्रथमभागापूर्व्वकरणरुं प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळुं सप्तमपृथ्वियगुणप्रतिपन्नरुगळुं न मरंति मरणमनेय्दरु। अनंतानुबंधियं विसंजोयिसि मिथ्यात्वमं पोर्द्दिदवर्गंळ्गमंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं मरणमिल्ल। दर्शनमोहक्षपकंगे कृतकृत्यत्वमेन्नेवरमन्नेवरं मरणमिल्ल। तु शब्ददिदं बद्धदेवायुष्यरुगळुपशमश्रेण्यारोहणमं माडि मत्तमवतरणदोळुपशांतकषायगुणस्थानाद्यपूर्व्वकरणगुणस्थानावसानदोळ् मरणमादोडे देवासंयतरप्परु[2] कारणदिद प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळ् नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यो-

पशमात् क्षायिकसम्यक्त्वे च क्षयात् सम्यक्त्वप्रकृतिर्न। पुनः उपशमसम्यक्त्वे नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्याहारकद्विकमपि न, प्राग्बद्धतदायुषामपि तत्रामरणात् ॥ ३२८ ॥

निर्वृत्यपर्याप्ता आहारकमिश्रकायाः क्षपका उपशमश्रेण्यारोहकप्रथमभागापूर्वकरणाः प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः सप्तमपृथ्वीगुणप्रतिपन्नाश्च न म्रियंते। अनंतानुबंधिकषायान्विसंयोज्य मिथ्यात्वं प्राप्तस्यांतर्मुहूर्तपर्यंतं[3] दर्शनमोहक्षपके च कृतकृत्यत्वं यावत्तावन्मरणं नास्ति। तुशब्दाद्बद्धदेवायुष्का उपशमश्रेण्यवतरणेऽपूर्वकरणगुणस्थानावसाने म्रियंते तदा देवासंयता एव जायंते ततो न प्रथमोपशमसम्यक्त्वे नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यो-

होनेसे और क्षायिक सम्यक्त्वमें क्षय होनेसे सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय नहीं होता। पुनः उपशम सम्यक्त्वमें नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी तथा आहारकद्विकका उदय नहीं होता, क्योंकि पूर्वमें जिन्होंने इन आयुओंका बन्ध किया है उनका भी उपशम सम्यक्त्वमें मरण नहीं होता ॥३२८॥

वही कहते हैं—

निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थावालोंका, आहारक मिश्रकायवालोंका, क्षपक श्रेणीवालोंका उपशमश्रेणिपर चढ़े हुए अपूर्वकरणके प्रथम भागवालोंका, प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टियोंका, और सातवें नरकमें ऊपरके गुणस्थानोंमें स्थित जीवोंका मरण नहीं होता। तथा अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करके जो पीछे मिथ्यात्वमें आता है उसका एक अन्तर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता। दर्शन मोहका क्षय करनेवालेके जबतक कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिपना होता है तबतक मरण नहीं होता। 'तु' शब्दसे जिन्होंने पूर्वमें देवायुका बन्ध किया है वे उपशम श्रेणीसे उतरनेपर अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त मरते हैं तो मरकर असंयत सम्यग्दृष्टि देव ही होते हैं। अतः प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और मनुष्यानुपूर्वी का उदय

१. द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयमिल्लदोडं प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळीयानुपूर्व्यत्रयं घटिसदेंदोडे पेळ्दपरु—कृतकृत्यवेदकस्य प्रथमांतर्म्मुहूर्त्त पर्य्यंतं मरणं नास्ति। गुणस्थानच्युतिर्गतिच्युतिरित्युभयं। सव्वपरमट्ठाणं। २. द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळें बुदु सुपाठं ॥ ३. ब °तं मरणं नास्तीति द°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयमिल्ल। द्वितीयोपशमसम्यक्त्ववोलावोडे देवायुष्यमं बिट्टु शेषायुष्यंगळ्गे सत्वमिल्लेकेंदोडे उपशमश्रेण्यारोहणनिमित्तमागि सातिशयाप्रमत्तसंयतं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमं कैकोळ्गुमप्पुदरिवं अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुमें बी नियममुंटप्पुदरिंदमा मूरु मायुष्यंगळ्गे सत्वमिल्लदु कारणदिंदमा मूरु मानुपूर्व्यंगळ्गुदयमिल्ल। प्रथमोपशमसम्यक्त्ववोळं द्वितीयोपशमसम्यक्त्ववोलमाहारकऋद्धिप्राप्तिरिल्लप्पुदरिंदमाहारकद्विकक्कमुदयमिल्लें दरिउदितरियल्पडुत्तं विरलु भव्य मार्गणेयोळु मूलौघमप्पुदरिंदमुदययोग्यप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ गुणस्थानंगळुमल्लि पदिनाल्कुमप्पुवु। मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिंदमुदयव्युच्छित्तियुदयानुदयप्रकृतिगळु मुन्नं गुणस्थानदोळु पेळ्वंते रचनाविशेषमं माडुत्तं विरलु संदृष्टि :—

भव्य मा० योग्य १२२।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

दयः। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेऽपि देवायुर्विना न शेषायुःसत्त्वं उपशमश्रेण्यारोहणार्थं सातिशयाप्रमत्तेनैव तत्सम्यक्त्वस्य स्वीकरणात् 'अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तु' इति नियमात् न तदानुपूर्व्यत्रयस्य सत्त्वं। तत उदयोऽपि न। उभयोपशमसम्यक्त्वे आहारकर्द्ध्यप्राप्ते न तद्द्विकोदयः। तथा सति भव्यमार्गणायां मूलौघ इत्युदययोग्यं द्वाविंशत्युत्तरशतं। गुणस्थानानि चतुर्दश। व्युच्छित्त्यादि गुणस्थानवत्। संदृष्टि :—

भव्यमार्ग = योग्य १२२।

व्यु	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

नहीं होता। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें भी देवायुके विना शेष आयुका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि उपशम श्रेणिपर आरोहण करने के लिए सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव ही द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको स्वीकार करता है। और अणुव्रत महाव्रत देवायुके सिवाय अन्य आयुका बन्ध करनेवाले के होते नहीं, ऐसा नियम है। अतः उपशम सम्यक्त्वमें देव बिना तीन आनुपूर्वी का सत्त्व नहीं होता। इसीसे उदय भी नहीं होता। दोनों ही उपशम सम्यक्त्वोंमें आहारकऋद्धि प्राप्त नहीं होती। अतः उपशम सम्यक्त्वमें आहारकद्विकका उदय नहीं होता।

ऐसा होनेपर भव्य मार्गणामें उदययोग्य एक सौ बाईस। गुणस्थान चौदह। व्युच्छित्ति आदि गुणस्थानवत् जानना। संदृष्टि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभव्यमार्गणेयोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमों देयक्कुमल्लि सामान्योदययोग्यप्रकृतिगळु नूर दिनेळु ११७। उपशमसम्यक्त्वमार्गणेयोलसंयतनोळुदयप्रकृतिगळु नूर नाल्करोळु णादि तियाणू य हारदुगमेंदु नरकातिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १००॥ असंयताद्यष्टगुणस्थानंगळप्पुवल्लियसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ नरकायुष्यमुं १ नरकगतिनाममुं १ दुर्भगत्रमु ३ मंतु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४। यिल्लि प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षेयिदं नरकगतियुं तदायुष्यमरियल्पडुगुं॥ देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ तिर्य्यगायुष्यमुं १ उद्योतमुं १ नीचैर्ग्गोत्रमुं १ तिर्य्यग्गतियुं १ अंतेंदुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कु ८ मिल्लियुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षेयिदमी तिर्य्यगायुरादिप्रकृतिचतुःकोदयमरियल्पडुगुं॥ प्रमत्तसंयतनोळु उभयोपशमसम्यक्त्ववोळमाहारकऋद्धिप्राप्तरिल्लप्पुदरिनाहारकद्वयमं कळेदु स्त्यानगृद्धित्रयक्कमें युदयव्युच्छित्तियक्कुं ३॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृतिगुदयमिल्लप्पुदरिंदमवं

अभव्यमार्गणायामेकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं। उदयप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामसंयतोदये चतुरुत्तरशते 'णादितियाणूयहारदुगं' इत्याद्यानुपूर्व्यत्रयं सम्यक्त्वप्रकृतिश्च नेति शतमुदययोग्यं १००। गुणस्थानान्यसंयतादीन्यष्टौ। तत्रासंयते द्वितीयकषायचतुष्कं सुरनारकायुषी नरकगतिर्देवगतिद्विकं। वैक्रियिकद्विकं दुर्भगत्रयं चेति चतुर्दश व्युच्छित्तिः १४। अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षया नरकगतितदायुषी ज्ञातव्ये। देशसंयते तृतीयकषायाः तिर्यगायुरुद्योतौ नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेत्यष्टौ। अत्रापि तदपेक्षयैव तिर्यगायुष्यादिचतुष्कं ज्ञातव्यं। प्रमत्तसंयते उभयोपशमसम्यक्त्वेऽप्याहारकर्द्धयप्राप्तेस्तद्द्वयाभावात् स्त्यानगृद्धित्रयं

भव्यमार्गणायोग्य १२२

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.	अ.
व्यु.	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उदय	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अनुदय	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

अभव्यमार्गणामें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है। उदय प्रकृतियाँ एक सौ सतरह ११७।

उपशम सम्यक्त्व मार्गणामें असंयतमें उदययोग्य एक सौ चारमें से आदिकी तीन आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय न होने से उदययोग्य सौ हैं। गुणस्थान असंयत आदि आठ हैं। उनमें से असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवायु, नरकायु, नरकगति, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक और दुर्भग आदि तीन इन चौदहकी व्युच्छित्ति होती है। यहाँ नरकगति और नरकायु प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षासे जानना। देशसंयतमें तीसरी कषाय चार, तिर्यंचायु, उद्योत, नीच गोत्र और तिर्यंच गति आठकी व्युच्छित्ति। यहाँ भी प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा ही तिर्यंचायु आदि चार जानना। प्रमत्तसंयतमें दोनों ही उपशम सम्यक्त्वमें आहारकऋद्धिका उदय न होनेसे आहारकद्विकका अभाव है। अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कळेवु चरमसंहननत्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अपूर्व्वकरणनोळ षण्णोकषायंगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । अनिवृत्तिकरणनोळु वेदत्रयमुं संज्वलनक्रोधादित्रयमुमंतारुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ ॥ उपशांतकषायनोळु वज्रनाराच नाराचसंहननद्विकक्कुदयव्युच्छित्तियक्कु २ मंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळनुदयंशून्यमेकें दोडे सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुं २ तीर्त्थमुं राशियोळकळेदुवप्पुदरिंद उदयंगळ् नूरु ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळ् पदिनाल्कुगूडियनुदयंगळ् पदिनाल्केयप्पुवु १४ । उदयंगळेण्भत्तारु ८६ ॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळें टुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२ । उदयंगळेप्पत्तें टु ७८ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मूरु गूडियनुदयंगळिप्पत्तय्दु २५ । उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५ । अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु मूरु गूडियनुदयंगळिप्पत्तें टु २८ । उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु मूवत्तनाल्कु ३४ । उदयंगळरुवत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तु ४० । उदयंगळरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषायवीतरागछद्मस्थगुणस्थानदोळु ओंदुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तोंदु प्रकृतिगळप्पुवु ४१ । उदयप्रकृतिगळय्वत्तों भत्तप्पुवु ५९ । संदृष्टि :—

व्युच्छित्तिः ३ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृत्यभावाच्चरमसंहननत्रयं ३ । अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६ । अनिवृत्तिकरणे वेदत्रयं संज्वलनक्रोधादित्रयं च ६ । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः । उपशांतकषाये वज्रनाराचनाराचद्विकं । एवं सत्यसंयतेऽनुदयः शून्यं सम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थापनयनात् । उदयः शतं १०० । देशसंयतेऽनुदयश्चतुर्दश १४ उदयः षडशीतिः ८६ । प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्यानुदयो द्वाविंशतिः २२ । उदयोऽष्टसप्ततिः ७८ । अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयः पंचविंशतिः २५ । उदयः पंचसप्ततिः । अपूर्वकरणे त्रयं संयोज्यानुदयोऽष्टाविंशतिः २८ । उदयो द्वासप्ततिः ७२ । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् ३४ । उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० । उदयः षष्टिः ६० । उपशांतकषाये एकां संयोज्यानुदय एकचत्वारिंशत् ४१ । उदय एकान्नषष्टिः ५९ ।

स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी व्युच्छित्ति होती है । अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृतिका अभाव होनेसे अन्तके तीन संहनन की व्युच्छित्ति है । अपूर्वकरणमें छह नोकषाय । अनिवृत्तिकरणमें तीन वेद और तीन संज्वलनकषाय । सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्मलोभ । उपशान्त कषायमें वज्र नाराच और नाराच संहननकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होने पर—

४ असंयतमें अनुदय शून्य क्योंकि सम्यक्त्व, तीर्थंकर और आहारक द्विक नहीं है । उदय सौ १०० ।

५ देश संयतमें अनुदय चौदह १४ । उदय छियासी ८६ ।

६ प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय बाईस २२ । उदय अठहत्तर ७८ ।

७ अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय पचीस । उदय पचहत्तर ७५ ।

८ अपूर्वकरणमें तीन मिलाकर अनुदय अठाईस २८ । उदय बहत्तर ७२ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चौंतीस ३४ । उदय छियासठ ।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें छह मिलाकर अनुदय चालीस ४० । उदय साठ ६० ।

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय इकतालीस ४१ । उदय उनसठ ५९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपशमसम्यक्त्वयोग्यप्रकृतिगळु १०० ।

०	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ
व्यु	१४	८	३	३	६	६	१	२
उ	१००	८६	७८	७५	७२	६६	६०	५९
अ	०	१४	२२	२५	२८	३४	४०	४१

वेदकसम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळु स्वगुणौघमप्पुदरिदं मिथ्यादृष्टिय प्रकृतिपंचकमुं ५ सासादननवकमुं ९ मिश्रन मिश्रमुं १ तीर्त्थमुं १ मितु पदिनारुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषस्वगुणौघमुदययोग्यप्रकृतिगळु नूरारु १०६। असंयतादिनाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि असंयतकृतकृत्यवेदकंगे चतुर्ग्गतित्वमुंटप्पुदरिदं। तदपेक्षेयिं तद्गुणस्थानदोळिप्पं नाल्कानुपूर्व्यंगळुगूडि पदिनेळु प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १७॥ देशसंयतनोळु तन्न गुणस्थानवेंटुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळु आहारकऋद्धियुंटप्पुदरिदं तन्न गुणस्थानदप्रकृतिपंचकक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५॥ अप्रमत्तसंयतनोळु तन्न गुणस्थानद नाल्कुं ४ मेले वेदकसम्यक्त्वमिल्लप्पुदरिदमपूर्व्वकरणनारुं ६ अनिवृत्तिकरणनारु ६ सूक्ष्मसांपरायनोंदुं उपशांतकषायनेरडुं २ क्षीणकषायन पदिनारुं १६ सयोगकेवलिभट्टारक मूवत्तुं ३० अयोगिकेवलिभट्टारकन पन्नोंदु ११ मंतु एप्पत्तारुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७६। मंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विकक्कनुदयमक्कु २ मुदयंगळु नूर नाल्कु १०४। देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळु गूडियनुदयंगळु पत्तोंभत्तु १९। उदयंगळेंभत्तेळु ८७॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळें दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळरोळाहारक-

---

वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां स्वगुणौघः इति मिथ्यादृष्ट्यादित्रयस्य पंचनवैकतीर्थं च नेत्युदययोग्यं षडुत्तरशतं १०६। असंयतादिचतुर्गुणस्थानानि। तत्रासंयते कृतकृत्यवेदकस्य चतुर्गतिषु संभवात्तदपेक्षया चत्वार्यानुपूर्व्याणीति सप्तदश व्युच्छित्तिः। देशसंयतेऽष्टौ ८। प्रमत्ते आहारकर्धिसद्भावात्पंच। अप्रमत्ते चतस्रः। उपरितनाश्च षट्षडेका द्वे षोडश त्रिंशदेकादश मिलित्वा षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणादिषु तत्सम्यक्त्वाभावात्। एवं सत्यसंयते आहारकद्विकमनुदयः। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश

वेदक सम्यक्त्व मार्गणामें अपने गुणस्थानवत् जानना। मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें जिनकी व्युच्छित्ति होती है वे पाँच, नौ और एक तथा तीर्थंकरके न होनेसे उदय योग्य एक सौ छह १०६ हैं। असंयत आदि चार गुणस्थान होते हैं। उनमेंसे असंयतमें कृतकृत्य वेदक मरकर चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें उत्पन्न हो सकता है अतः उसकी अपेक्षासे चारों आनुपूर्वीका उदय होता है। इससे असंयतमें व्युच्छित्ति सतरह १७। देश संयतमें आठ ८। प्रमत्तमें आहारक ऋद्धि सम्भव होनेसे पाँच ५। अप्रमत्तमें चार तथा ऊपरके गुणस्थानोंकी छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और ग्यारह मिलकर छियत्तर। क्योंकि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें वेदक सम्यक्त्व नहीं होता। ऐसा होने पर—

४. असंयतमें आहारकद्विकका अनुदय। उदय एक सौ चार १०४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विकमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तय्दु २५। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१। अप्रमत्त-गुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तु ३०। उदयंगळेप्पत्तारु ७६॥ संदृष्टि :—

वेदक योग्य १०६

०	अ	दे	प्र	अ
व्यु	१७	८	५	७६
उ	१०४	८७	८१	७६
अ	२	१९	२५	३०

क्षायिकसम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळु मिथ्यादृष्टि ५ सासादनन ९ मिश्रन १ सम्यक्त्वप्रकृति १ अंतु पदिनारुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषनूरारुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०६। अल्लि असंयतादि पन्नोंदुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि असंयतनोळु तन्न गुणस्थानद पदिनेळुं :—

खाइयसम्मो देसो णर एव तदो तहिं ण तिरियाऊ।
उज्जोवं तिरियगदी तेसिं अयदम्मि वोच्छेदो ॥३२९॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्द्देशसंयतो नर एव ततस्तस्मिन्न तिर्य्यगायुरुद्योतस्तिर्य्यग्गतिस्तैरसंयते व्युच्छेदः॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियप्प देशसंयतं मनुष्यनेयप्पुदरिंदमल्लि तिर्य्यगायुष्यमुमुद्योतनाममुं तिर्य्यग्गतियुमंतु मूरुं प्रकृतिगळुगुदयमातनोळिल्लदु कारणमागियसंयतगुणस्थानदोळा मूरुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुमप्पुदरिंदमउ सहितमागिप्पत्तु प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कु २०॥

संयोज्यानुदय एकान्नविंशतिः १९। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽनुदयेऽष्टसंयोज्याहारकद्विकोदयात् पंचविंशतिः २५। उदय एकाशीति ८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रिंशत् ३०, उदयः षट्सप्ततिः ७६।

क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यादृष्टयादित्रयस्य पंचदश सम्यक्त्वं च नेत्युदययोग्यं षडुत्तरशतं १०६। असंयताद्येकादश गुणस्थानानि। तत्रासंयते स्वस्य सप्तदश १७॥ १—२॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतो मनुष्य एव ततः कारणात्तत्र तिर्यगायुरुद्योतस्तिर्यग्गतिश्चेति त्रीण्युदये न

---

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय उन्नीस १९। उदय सत्तासी ८७।

६. प्रमत्तमें अनुदय आठ मिलाकर तथा आहारकद्विकका उदय होनेसे पच्चीस। उदय ८१।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तीस ३०। उदय छियत्तर ७६।

क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणामें मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें व्युच्छिन्न हुई पन्द्रह तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके न होनेसे उदय योग्य एक सौ छह १०६। असंयतसे लेकर ग्यारह गुणस्थान होते हैं। असंयतमें अपनी सतरह ॥३२८॥

देश संयत गुणस्थानमें क्षायिक सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही होता है, तिर्यंच नहीं होता। इस कारणसे पंचम गुणस्थानमें तिर्यंचायु, उद्योत और तिर्यंचगति इन तीनका उदय यहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशसंयतनोळा मूरुं प्रकृतिगळुं कळेदुवप्पुदरिंदं तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ नीचैर्ग्गोत्रमुमंतय्दुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ ॥ प्रमत्तसंयतनोळु तन्न गुणस्थानद पंचप्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृति क्षपियिसल्पट्टुदप्पुदरिंदमदं कळेदु शेष मूरुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अपूर्व्वकरणं मोदल्गोंडु छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस तीसं बारस प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु असंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विकमुं २ तीर्त्थमुमनुदयमक्कुं ३ ॥ उदयंगळु नूर मुरु १०३ ॥ देशसंयतनोळिप्पत्तुगूडियनुदयंगळिप्पत्तमूरु २३ ॥ उदयंगळें भत्तमूरु ८३ ॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळिप्पत्तेंटरोळु आहारकद्विकमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तारु २६ । उदयंगळेंभत्तु ८० ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळु मूवत्तोंदु ३१ । उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५ ॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु मूरुगूडियनुदयंगळु मूवत्तनाल्कु ३४ उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तु ४० । उदयंगळरुवत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारु गूडियनुदयंगळु नाल्वत्तारु उदयंगळरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेळु ४७ । उदयंगळय्वत्तोंभत्तु ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु डुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तोंभत्तु ४९ ।

संति तेन तत्त्रयस्य तत्ससदशभिः सहासंयतगुणस्थाने एव व्युच्छित्तिः २० । देशसंयते तत्त्रयाभावात् तृतीयकषाया नीचैर्गोत्रं चेति पंचैव ५ । प्रमत्ते स्वस्य पंच ५ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतेः क्षपितत्वात्त्रयं । अपूर्वकरणादिषु 'छक्कछच्चेव इगिदुगसोलसतीसंबारस' एवं सत्यसंयते आहारकद्विकं तीर्थं चानुदयः । उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३ । देशसंयते विंशति संयोज्यानुदयस्त्रयोविंशतिः २३ । उदयस्त्र्यशीतिः ८३ । प्रमत्ते पंच संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयः षड्विंशतिः २६ । उदयोऽशीतिः ८० । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदय एकत्रिंशत् ३१ । उदयः पंचसप्ततिः ७५ । अपूर्वकरणे तिस्रः संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् उदयो द्वासप्ततिः । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० । उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६ । उदयः षष्टिः ६० । उपशांतकषाये एकां संयोज्यानुदयः सप्तचत्वारिंशत् ४७ । उदय एकान्नषष्टिः ५९ ।

नहीं होता । अतः इन तीनोंकी व्युच्छित्ति भी सतरहके साथ असंयत गुणस्थानमें होती है । अतः असंयतमें व्युच्छित्ति बीस २० है । और देशसंयतमें इन तीनका अभाव होनेसे तीसरी कषाय चार और नीचगोत्र इन पाँचकी व्युच्छित्ति होती है । प्रमत्तमें अपनी पाँच ।

अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय हो जानेसे तीन । अपूर्वकरण आदिमें क्रमसे छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह ।

४. असंयतमें आहारक द्विक और तीर्थंकरका अनुदय । उदय एक सौ तीन ।

५. देश संयतमें बीस मिलाकर अनुदय तेईस २३ । उदय तेरासी ८३ ।

६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर आहारक द्विकका उदय होनेसे अनुदय छब्बीस २६ । उदय अस्सी ८० ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय इकतीस ३१ । उदय पिचहत्तर ।

८. अपूर्वकरणमें तीन मिलाकर अनुदय चौंतीस । उदय बहत्तर ७२ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चालीस । उदय छियासठ ।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस । उदय साठ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयंगळय्वत्तेळु ५७ ॥ सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पदिनारु गूडियनुदयंगळरुवत्तय्दरोळ् तीर्त्थंकर नाममं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलुनुदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४ । उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२ ॥ अयोगिकेवलि भट्टारकगुणस्थानदोळुमूवत्तुगूडियनुदयंगळु तों भत्तनाल्कु ९४ ॥ उदयंगळु पन्नेरडु १२ । संदृष्टि :—

क्षायिक यो० १०६ ।

०	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२०	५	५	३	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	१०३	८३	८०	७५	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	३	२३	२६	३१	३४	४०	४६	४७	४९	६४	९४

क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदय एकान्नपंचाशत् ४९ । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ । सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थोदयादनुदयः चतुःषष्टिः, उदयो द्वाचत्वारिंशत् । अयोगे त्रिंशतं संयोज्यानुदयश्चतुर्णवतिः ९४ । उदयो द्वादश १२ ॥ ३२९ ॥

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतालीस । उदय उनसठ ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनचास । उदय सत्तावन ।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय चौसठ ६४ । उदय बयालीस ।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय चौरानबे । उदय बारह ॥३२९॥

उपशम सम्यक्त्व रचना १००

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.
१४	८	३	३	६	६	१	२
१००	८६	७८	७५	७२	६६	६०	५९
०	१४	२२	२५	२८	३४	४०	४१

वेदक सम्यक्त्व रचना १०६

अ.	दे.	प्र.	अ.
१७	८	५	४
१०४	८७	८१	७६
२	१९	२५	३०

क्षायिक सम्यक्त्व रचना १०६

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
२०	५	५	३	६	६	१	२	१६	३०	१२
१०३	८३	८०	७५	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
३	२३	२६	३१	३४	४०	४६	४७	४९	६४	९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसाणं सगुणोघं सण्णिस्स वि णत्थि ताव साहरणं ।
थावर-सुहुमिगिविगलं असण्णिणो वि य ण मणुदुच्चं ॥३३०॥

शेषाणां स्वगुणौघः संज्ञिनश्च नास्त्यातप साधारणं । स्थावरसूक्ष्मैकविकलमसंज्ञिनोपि च न मनुष्यद्वयोच्चं ॥

शेषमिथ्यादृष्टिसासादन मिश्ररुचिगळ्गे स्वगुणौघमक्कुमल्लि मिथ्यारुचिगळ्गे मिश्रप्रकृतिसम्यक्त्वप्रकृति आहारकद्वयतीर्त्थंकर नाममंतय्दुं प्रकृतिगळं कळेदु नूरपदिनेळुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ११७ ॥ सासादनरुचिगळ्गा प्रकृतिपंचकमुं ५ मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ सूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणत्रयमुमातपनाममुं नरकानुपूर्व्यमुमंतु पन्नोंदु प्रकृतिगळं कळेदु नूर पन्नोंदु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १११ । मिश्ररुचिगळ्गा पन्नोंदुं प्रकृतिगळोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदु शेष पत्तुं प्रकृतिगळुं १० । अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ । एकेंद्रियजातियुं १ स्थावरनाममुं १ विकलत्रयमुं ३ तिर्य्यंगानुपूर्व्यमुं १ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ देवानुपूर्व्यमु १ मितिप्पत्तेरडु प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०० संज्ञिमार्ग्गणेयोळु आतपनाममुं १ साधारणशरीरनाममुं १ स्थावरनाममुं १ सूक्ष्मनाममु १ मेकेंद्रियजातिनाममुं १ विकलेंद्रियजातित्रयमुं ३ तीर्त्थंकरनाममुमि, तोंभत्तुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूर पदिमूरुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ११३ ॥ मिथ्यादृष्ट्यादिपन्नेरडुं गुणस्थानंगळप्पुवेकेंदोडे सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानंगळ्गे संज्ञित्वमिल्लेकेंदोडे "संज्ञिनः समनस्काः" एंदितु समनस्करल्लप्पुदरिदं । अंतादोडऽमनस्करेकल्लेंदोडे तिर्य्यंचरुगळ्गल्लदमनस्कव्यपदेशमिल्लप्पुदरिदं । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ अपर्य्याप्तनाममु १ मितेरडुं

शेषाणां मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररुचीनां स्वगुणौघः । तत्र मिथ्यारुचीनां मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वानि नेत्युदययोग्यं सप्तदशोत्तरशतं ११७ । सासादनरुचीनां तत्पंचकं मिथ्यादृष्टिः व्युच्छित्तिपंचकं नरकानुपूर्व्यं च नेत्येकादशोत्तरशतं १११ । मिश्ररुचीनां मिश्रं विना ता एव दश पुनः अनंतानुबंधिचतुष्कमेकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्याणि च नेति शतं १०० ।

संज्ञिमार्गणायामातपसाधारणस्थावरसूक्ष्मैकेंद्रियविकलत्रयतीर्थकरत्वानि नेति त्रयोदशशतमुदययोग्यं । ११३ । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश । सयोगायोगौ न संज्ञिनौ भावमनोरहितत्वात् । नाप्यसंज्ञिनौ

शेष मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र सम्यक्त्वमें अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना । इनमें से मिथ्यारुचिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थंकरके न होनेसे उदययोग्य एक सौ सतरह ११७ हैं । सासादनरुचिमें वे पाँचों, मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पाँच और नरकानुपूर्वी नहीं होनेसे उदय योग्य एक सौ ग्यारह हैं । मिश्ररुचिमें मिश्रके बिना दस ऊपर कही तथा अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय स्थावर, विकलत्रय, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी ये बाईस न होनेसे उदय योग्य सौ हैं । इन सबमें अपना-अपना एक ही गुणस्थान होता है ।

संज्ञीमार्गणामें आतप, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, विकलत्रय और तीर्थंकरके न होनेसे उदययोग्य एक सौ तेरह हैं । गुणस्थान मिथ्यादृष्टिसे लेकर बारह हैं । सयोगकेवली और अयोगकेवली संज्ञी नहीं हैं क्योंकि उनके भावमन नहीं होता । और न वे असंज्ञी हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं २ ।। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कवकुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ।। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ असंयतं मोदल्गोंडु क्षीणकषायावसानमाद गुणस्थानंगळोळु सत्तरस १७ अड ८ पंचय ५ चउर ४ छक्क ६ छच्चेव ६ इगि १ दुग २ सोळस १६ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । मत्तं सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानद्वयद नाल्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोळु तीर्त्थमं कळेदु शेष नाल्वत्तोंदु प्रकृतिगळगे क्षीणकषायगुणस्थानदोळुदय व्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरला क्षीणकषायगुणस्थानदोळय्वत्तेळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु-५७ । मल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियु १ माहारकद्विकमु २ मंतु नाल्कुं प्रकृतिगळनुदयमक्कु ४ । उदयंगळु नूरों भत्तु १०९ ।। सासादनगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयंगळाररोळु ६ नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७ । उदयंगळु नूरारु १०६ ।। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयंगळु पन्नोंदरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयप्रकृतिगळोळु तिर्य्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्यत्रयमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिमूरु १३ । उदयंगळु नूरु १०० ।। असंयतगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळु पदिनाल्करोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमनानुपूर्व्यचतुष्कमुमनंतय्दुं प्रकृतिगळं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोंभत्तु ९ । उदयंगळु नूर नाल्कु १०४ ।। देशसंयतगुणस्थान मोदल्गोंडु यी प्रकारदिननुदयोदयंगळं यथाक्रमदिदमिप्पत्तारुमेंभत्तेळु ८७ ।। मूवत्तेरडु ३२ मेंभत्तोंदु ८१ । मूवत्तेळु

तिर्यग्भ्योऽन्यत्र तद्व्यपदेशाभावात् । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वमपर्याप्तं चेति द्वयं व्युच्छित्तिः । सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं ४ । मिश्रे मिश्रं १ । असंयतादिषु 'सत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलस' सयोगायोगस्य विना तीर्थकरत्वमेकचत्वारिंशत् । ४१ । एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वमाहारकद्विकं चानुदयः ४ उदयो नवोत्तरशतं १०९ । सासादने द्वे नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वानुदयः सप्त ७ । उदयः षडुत्तरशतम् १०६ । मिश्रेऽनुदयश्चतस्रः तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्याणि च संयोज्य मिश्रोदयात्त्रयोदश ।१३। उदयः शतं ।१००। असंयते एकां संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयादनुदयो नव ९ । उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४ । देशसंयतादिष्वेव-

---

क्योंकि असंज्ञी व्यपदेश तिर्यंचोंमें ही होता है, अन्यत्र नहीं होता। उनमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दो की व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार ४। मिश्रमें एक मिश्र। असंयतादिमें क्रमसे सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह तथा सयोगी अयोगीकी तीर्थंकर बिना इकतालीस मिलाकर १६ + ४१ = सत्तावन। ऐसा होने पर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विक चारका अनुदय। उदय एक सौ नौ १०९।

२. सासादनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलाकर अनुदय सात। उदय एक सौ छह।

३. मिश्रमें अनुदय चार और तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे तेरह १३। उदय सौ १००।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय नौ ९। उदय एक सौ चार १०४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेप्पतारुं ३७।७६। नाल्वत्तोंदुमेप्पत्तेरडु ४१।७२। नाल्वत्तेळुमरुवत्तारु ४७।६६। अय्वत्तमूरु मरुवत्तु ५३। ६०। अय्वत्तनाल्कुमय्वत्तों भत्तु ५४।५९। अय्वत्तारुमय्वत्तेळु ५६। ५७। प्रकृतिगळप्पुवु। संदृष्टि :—

संज्ञि यो० ११३

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	५७
उ	१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	४	७	१३	९	२६	३२	३७	४१	४७	५३	५४	५६

असण्णिणोवि य ण मणुदुच्चं ॥

वेगुव्वछ पणसंहदिसंठाण सुगमण सुभग आउतियं।
आहारे सगुणोघं णवरि ण सव्वाणुपुव्वीओ ॥३३१॥

वैक्रियिकषट्पंचसंहनन संस्थान सुगमन सुभगायुस्त्रयं ३। आहारे स्वगुणौघः नविनं न सर्व्वानुपूर्व्याणि ॥

असंज्ञिमार्ग्गणेयोळु मनुष्यद्विकमु २। मुच्चैर्ग्गोत्रमुं १ वैक्रियिकषट्कमुमारु ६ माद्यसंहनन-पंचकमु ५ माद्यसंस्थानपंचकमुं ५ प्रशस्तविहायोगतियुं १ सुभगत्रयमु ३। नरकमनुष्यदेवायुस्त्रयमुं

मनुदयोदयौ यथाक्रमं षड्विंशतिः सप्ताशीतिः २६, ८७। द्वात्रिंशत् एकाशीतिः ३२, ८१। सप्तत्रिंशत् षट् सप्ततिः। ३७।७६। एकचत्वारिंशद् द्वासप्ततिः ४१।७२। सप्तचत्वारिंशत् षट्षष्टिः ४७। ६६। त्रिपंचाशत् षष्टिः ५३। ६०। चतुःपंचाशत् एकान्नषष्टिः। ५४। ५९। षट्पंचाशत् सप्तपंचाशत्। ५६। ५७ ॥३३०॥

असंज्ञिमार्गणायां मनुद्विकमुच्चैर्गोत्रं वैक्रियिकषट्कमाद्यसंहननपंचकम द्यसंस्थानपंचकं प्रशस्तविहायो-

---

५. इसी प्रकार देशसंयत आदिमें अनुदय और उदय क्रमसे २६, ८७। बत्तीस ३२, इक्यासी ८१। सैंतीस ३७, छियत्तर ७६। इकतालीस ४१, बहत्तर ७२। सैंतालीस ४७, छियासठ ६६। तिरपन ५३, साठ ६०। चौवन ५४, उनसठ ५९। छप्पन ५६, सत्तावन ५७ जानना ॥३३०॥

संज्ञीमार्गणारचना ११३

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
व्यु.	२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	५७
उ.	१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अनु.	४	७	१३	९	२६	२३	३७	४१	४७	५३	५४	५६

असंज्ञी मार्गणामें मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, आदिके पाँच संहनन, आदिके पाँच संस्थान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ यितिप्पत्तारुं प्रकृतिगळं २६ मिथ्यादृष्टिय नूर पदिनेळुं प्रकृतिगळोळु कळेदु शेष तोंभत्तोंदु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ९१। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानंगळेरडेयप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतपनामसुं १ सूक्ष्मत्रयमु ३ मितय्दुं प्रकृतिगळुं ५ स्त्यानयानगृद्धित्रयमुं ३ परघातोद्योतोच्छ्वासत्रयमुं ३ दुःस्वरमु १ मप्रशस्तविहायोगतियु १ मितेंटुं प्रकृतिगळ्गे सासादननोळुदयमिल्लेकेंदोडा सासादनन भवप्रथमदोळु कालं जघन्यदिद मेकसमयमुत्कृष्टदिंदमारावळिकालमप्पुदरिंदमा प्रकृत्यष्टकं तंतम्म पर्य्याप्तियिदं मेलल्लदुदयिसदप्पुदरिनातनोळा प्रकृतिगळुदयमिल्लप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळेप्पुवंतागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळु पदिमूरु १३॥ सासादननोळु तन्न गुणस्थानदोंभत्तु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु—९ मंतागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयंगळु तोंभत्तोंदु ९१ । सासादनगुणस्थानदोळु पदिमूरुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं १३ । उदयप्रकृतिगळप्पत्तेंटु ७८ ॥ संदृष्टिः—

असंज्ञि यो० ९१ ।

०	मि	सा
व्यु	१३	९
उ	९१	७८
अ	०	१३

गतिः सुभगत्रयं नरकमनुष्यदेवायूंषि च मिथ्यादृष्टिः सप्तदशोत्तरशते नेत्येकनवतिरुदययोग्याः ९१ । गुणस्थानद्वयं। तत्र मिथ्यादृष्टौ स्वस्य पंच पुनःस्त्यानगृद्धित्रयपरघातोद्योतोच्छ्वासदुःस्वराप्रशस्तविहायोगतीनां पर्याप्तेरुपर्युदयनियमात्, सासादने स्तोककालत्वात्तदघटनात् ता अष्टौ च व्युच्छित्तिः। १३ । सासादने स्वस्य नव ९। तथा सति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं। उदय एकनवतिः ९१ । सासादने त्रयोदश संयोज्यानुदयः त्रयोदश १३ । उदयोऽष्टसप्ततिः ७८ ।

प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, नरकायु, मनुष्यायु, देवायु ये छब्बीस प्रकृतियाँ मिथ्यादृष्टिके उदय योग्य एक सौ सतरहमें से नहीं होतीं। अतः उदय योग्य इक्यानवें ९१ हैं। गुणस्थान दो हैं। उनमें से मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँच और स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दुःस्वर, अप्रशस्त विहायोगति ये प्रकृतियाँ पर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद उदयमें आती हैं और सासादनका काल थोड़ा होनेसे वहाँ इनका उदय सम्भव नहीं है अतः इन आठकी व्युच्छित्ति मिलकर तेरहकी होती है। सासादनमें अपनी नौ। ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय इक्यानवें ९१। सासादनमें तेरह मिलाकर अनुदय तेरह। उदय अठहत्तर ७८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारे स्वगुणौघः आहारमार्गणेयोळ् सामान्योदयप्रकृतिगळ् नूरिप्पत्तेरडरोळ् १२२ नाल्कुमानुपूर्व्यंगळं कळेदु शेष नूर पदिने टुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ११८ वल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवु। मिथ्यादृष्टियोळ् तन्न गुणस्थानदय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५। सासादननोळ् तन्न गुणस्थानदों भत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ९॥ मिश्रनोळ् मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कु १। असंयतनोळानुपूर्व्यचतुष्टयमं कळेवुळिद पदिमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३॥ देशसंयतादिगळोळु अड ८। पंच य ५ चउर ४ छक्क ६ छच्चेव ६ इगि १ दुग २ सोळस १६ बादाळ ४२ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ् तीर्त्थमुमाहारकद्विकमुं २ मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितय्दुं प्रकृतिगळनुदयमक्कु ५ उदयप्रकृतिगळु नूर पदिमूरुं ११३। सासादनगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळु हत्तु १०। उदयंगळ् नूरें टु १०८। मिश्रगुणस्थानदोळों भत्तुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हदिनें टु १८। उदयंगळु नूरु १००॥ असंयतगुणदोळों दुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हदिनें टु १८। उदयंगळु नूरु १००॥ देशसंयतादि सयोगिकेवलिपर्य्यंतं यथासंख्यमागियनुदयंगळुमुदयंगळु मूवत्तों दु मेण्भत्तेळु ३१। ८७। मूवत्तेळुमेण्भत्तों दु ३७। ८१॥ नाल्वत्तेरडुमेप्पत्तारुं ४२।७६। नाल्वत्तारुमेप्पत्तेरडु ४६।७२। अय्वत्तेरडुमरुवत्तारु ५२।६६॥ अय्वत्तें टुमरुवत्तु ५८।६०। मय्वत्तों भत्तु मय्वत्तों भत्तु ५९।५९। अरुवत्तों दु मय्वत्तेळुं ६१।५७।

आहारमार्गणायां—द्वाविंशत्युत्तरशते चतुरानुपूर्व्यं नेत्यष्टादशोत्तरशतमुदययोग्यं। ११८। गुणस्थानानि त्रयोदश १३। तत्र मिथ्यादृष्ट्यादित्रये स्वस्य पंच नवैकं व्युच्छित्तिः। असंयते त्रयोदश १३। आनुपूर्व्यचतुष्टयस्यापनीतत्वात्। देशसंयतादिषु—'अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलसबादालं' एवं सति मिथ्यादृष्टौ तीर्थमाहारकद्विकं मिश्रं सम्यक्त्वं चेति पंचानुदयः ५। उदयस्त्रयोदशशतं ११३। सासादने पंच संयोज्यानुदयो दश १० उदयोऽष्टोत्तरशतं १०८। मिश्रे नव संयोज्य मिश्रोदयादनुदयोऽष्टादश १८। उदयः शतं १००। असंयते एकां संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयोऽष्टादश १८, उदयः शतं १००। देशसंयतादिष्वनुदयोदयौ एकत्रिंशत् ३१। सप्ताशीतिः ८७। सप्तत्रिंशत् ३७। एकाशीतिः ८१। द्वाचत्वारिंशत् ४२। षट्सप्ततिः ७६। षट्चत्वारिंशत् ४६। द्वासप्ततिः ७२। द्वापंचाशत् ५२, षट्षष्टिः ६६। अष्टपंचाशत्

आहारमार्गणामें एक सौ बाईसमें से चार आनुपूर्वी न होनेसे उदय योग्य एक सौ ११८। गुणस्थान तेरह। मिथ्यादृष्टि आदि तीनमें अपनी पाँच, नौ और एककी व्युच्छित्ति है। असंयतमें तेरह क्योंकि चार आनुपूर्वी नहीं हैं। देशसंयत आदिमें क्रमसे आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, बयालीस। ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, मिश्र, सम्यक्त्व, पाँचका अनुदय। उदय एक सौ तेरह ११३। सासादनमें पाँच मिलाकर अनुदय दस। उदय एक सौ आठ। मिश्रमें नौ मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय अठारह। उदय सौ १००। असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे अनुदय अठारह, उदय सौ १००। देश संयत आदिमें अनुदय और उदय क्रमसे इकतीस ३१, सतासी ८७। सैंतीस ३७, इक्यासी ८१। बयालीस ४२, छियत्तर ७६। छियालीस ४६,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एप्पत्तारुं नाल्वत्तेरडुं ७६।४२। प्रकृतिगळप्पुवु। संदृष्टि :—

आहारमार्गणा यो० ११८।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु.	५	९	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	११३	१०८	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	१०	१८	१८	३१	३७	४२	४६	५२	५८	५९	६१	७६

कम्मेवाणाहारे पयडीणं उदयमेवमादेसे।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३३२॥

कार्म्मणे इवानाहारे प्रकृतीनामुदय एवमादेशे। कथितोयं बलमाधवचंद्रार्च्चितनेमिचंद्रेण ॥

कार्म्मणे यिवानाहारे अनाहारमार्ग्गणेयोळु कार्म्मणकाययोगदोळें तंते स्वरद्विकमुं २ विहायोगतिद्विकमुं २ प्रत्येकसाधारणद्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ मौदारिकद्विकमुं २ मिश्रप्रकृतियु १ मुपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासपंचकमुं ५। वैक्रियिकद्विकमुं २। स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ संस्थानषट्कमुं ६। संहननषट्कमु ६ मितु मूवत्तमूरु ३३ प्रकृतिगळं कळेदेणभत्तों भत्तुप्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ८९॥ गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगायोगिकेवलिगुणस्थानमें वितय्दुं ५ गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुं सूक्ष्मनाममुमितु मूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमु ४ मेकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावर नाममुं १ विकलत्रयमु ३ मितों भत्तुं प्रकृतिगळुं। स्त्रीवेदमिल्लिये व्युच्छित्तियक्कुमेकें बोडऽ-

---

५८। षष्टिः ६०। एकान्नषष्टिरेकान्नषष्टिः ५९। ५९। एकषष्टिः सप्तपंचाशत्। ६१। ५७। षट्सप्ततिर्द्वाचत्वारिंशत्। ७६। ४२॥ ३३१॥

अनाहारमार्गणायां कार्मणकाययोगवत्स्वरविहायोगतिप्रत्येकाहारकौदारिकद्विकानि मिश्रप्रकृत्युपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासा वैक्रियिकद्विकं स्त्यानगृद्धित्रयं संस्थानषट्कं संहननषट्कं च नेत्येकान्ननवतिरुदययोग्याः ८९, गुणस्थानानि पंच। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वापर्याप्तसूक्ष्माणि व्युच्छित्तिः ३। सासादने—

बहत्तर ७२। बावन ५२, छियासठ ६६। अठावन ५८, साठ ६०। उनसठ ५९, उनसठ ५९। इकसठ ६१, सत्तावन ५७। छियत्तर ७६, बयालीस ४२ ॥३३१॥

अनाहार मार्गणामें कार्मणकाययोगकी तरह सुस्वर दुस्वर, प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारकद्विक, औदारिकद्विक, मिश्रप्रकृति, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, वैक्रियिकशरीर अंगोपांग, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, छह संस्थान, छह संहनन ये तेंतीस न होनेसे उदय योग्य नवासी ८९ हैं। गुणस्थान पाँच हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, अपर्याप्त, सूक्ष्म तीनकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयतं स्त्रीयागि पुट्टनप्पुदरिंदमंतु पत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १० ॥ असंयतनोळु वैक्रियिकद्वितयरहितमागि तन्न गुणस्थानदोळु पंचदशप्रकृतिगळु १५ उद्योतरहितमागि देशसंयतनोळेळु ७ प्रमत्तनल्लि शून्यमप्रमत्तन सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ अपूर्व्वकरणन नोकषायषट्कमुं ६ अनिवृत्तिकरणन स्त्रीवेदरहितप्रकृतिपंचकमुं ५ सूक्ष्मसांपरायन लोभमुं १ उपशांतकषायनोळु शून्यं क्षीणकषायन पदिनारु १६ मितिगिवर्ण्णप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५१। सयोगकेवलियोळु वेदनीयमोंदुं निर्म्माणनाममुं १ स्थिरास्थिरद्विकमुं २ शुभाशुभद्विकमुं २ तैजसकार्म्मणद्विकमुं २ वर्णचतुष्कमुं ४ अगुरुलघुकमुं १ मितु पदिमूरु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु १३ ॥ अयोगिकेवलियोळु वेदनीयमोंदु १ मनुष्यगतिनाममुं १ पंचेंद्रियजातिनाममुं १ सुभगनाममुं १ त्रसत्रयमु ३ मादेयनाममुं १। यशस्कीर्त्तिनाममुं १ तीर्त्थंकरनाममुं १ मनुष्यायुष्यमुं १ उच्चैर्ग्गोत्रमुं १ मेंब पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२ ॥

अंतागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ तीर्त्थंकरनाममु १ मितेरडुं प्रकृतिगळनुदयमक्कं २। उदयप्रकृतिगळेंभत्तेळु ८७। सासादनगुणस्थानदोळु मूरुगूडियनुदयंगळय्दरोळु नरकद्विकमुमं नरकायुष्यमुमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलुदयंगळेंटु ८। उदयंगळेंभत्तोंदु ८१ ॥ असंयतगुणस्थानदोळु पत्तुगूडियनुदयंगळु पदिनेंटरोळु १८ सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्यत्रितयमुम ३ मंतु नाल्कुं प्रकृतिगळु कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनाल्कु १४ उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५ ॥ सयोग-

अनंतानुबंधिचतुष्कमेकेन्द्रियं स्थावरं विकलत्रयं स्त्रीवेदश्चेति दश १० । असंयते वैक्रियिकद्विकं विना पंचदश उद्योतं विना सप्त शून्यं सम्यक्त्वप्रकृतिः नोकषायषट्कं स्त्रीवेदं विना पंच सूक्ष्मलोभः शून्यं षोडश चेत्येकपंचाशत् । ५१ । सयोगे सातासातैकतरनिर्माणस्थिरास्थिरशुभाशुभतैजसकार्मणानि वर्णचतुष्कमगुरुलघुकं चेति त्रयोदश १३ । अयोगे स्वस्य द्वादश १२ । एवं सति मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वं तीर्थं चानुदयः । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । सासादनेऽनुदयस्त्रयं नरकद्विकं नरकायुश्च मिलित्वाष्टौ ८ । उदय एकाशीतिः ८१ । असंयते दश संयोज्य सम्यक्त्वतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्योदयादनुदयश्चतुर्दश १४ । उदयः पंचसप्ततिः ७५ । सयोगे एकपंचाशतं

चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय और स्त्रीवेद दसकी व्युच्छित्ति है। असंयतमें वैक्रियिकद्विकके बिना पन्द्रह, उद्योतके बिना सात, शून्य, सम्यक्त्वप्रकृति, छह नोकषाय, स्त्रीवेद बिना पाँच, सूक्ष्म लोभ, शून्य, सोलह ये सब मिलकर इकयावन ५१। सयोगीमें साता या असाता, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्मण, वर्णादि चार, अगुरुलघु ये तेरह। अयोगीमें अपनी बारह। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थंकरका अनुदय। उदय सत्तासी ८७।

२. सासादनमें अनुदय तीन नरकगति नरकानुपूर्वी, नरकायु मिलकर आठ। उदय इक्यासी ८१।

४. असंयतमें दस मिलाकर सम्यक्त्व, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय चौदह १४। उदय पचहत्तर ७५।

१. म युमं नारकद्विकमुमं नरकायुष्यमुममंतु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलिगुणस्थानदोळय्वत्तो'दुगूडियनुदयंगळरुवत्तय्दरोळ् तीर्त्थंकरनाममं कळे'दुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४ उदयप्रकृतिगळिप्पत्तय्दु २५। अयोगिकेवलिगुणस्थानदोळ् पदिमूरुगूडियनुदयंगळे'प्पत्तेळ् ७७। उदयंगळ् पन्नेरडु १२। संदृष्टि :—

अनाहार यो० ८९

०	मि	सा	अ	स	अ
व्यु	३	१०	५१	१३	१२
उ	८७	८१	७५	२५	१२
अ	२	८	१४	६४	७७

एवमादेशे इंतु मार्ग्गणास्थानदोळ् प्रकृतीनामुदयः प्रकृतिगळुदयं। अयं इदु। बलमाधवचंद्रा[1]चिचतनेमिचंद्रेण प्रत्यक्षवंदकरप्प बलदेवनुं नारायणनुमें'दिवर्गळिंदमर्च्चिसल्पट्ट नेमितीर्त्थंकरपरमदेवनिदं। कथितः पेळल्पट्टुदु। बलदेवण्णोनि श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवनिंदमुमर्च्चिसल्पट्ट नेमिचंद्रसिद्धांत चक्रवर्त्तिगळिंदमुं मेणु पेळल्पट्टुदु। उदयप्रकरणं समाप्तमादुदु॥

सारत्रयनेत्रत्रयमारोलु गोम्मटद वृत्तिमणिदर्प्पणमा। मारहरंगल्लदे पेलसारमे जात्यंधकंगे दृग्द्वितयंगं॥

गंभीररचनेगल परिरंभणेयं विडिसितोरिवुदने बुधर्प्रा-। रंभिसि गोम्मटवृत्ति सुदंभोलियिनोडयि मोहवज्राचळमं॥

संयोज्य तीर्थोदयादनुदयश्चतुःषष्टिः ६४ उदयः पंचविंशतिः २५। अयोगे त्रयोदश संयोज्यानुदयः सप्ततिः ७७। उदयो द्वादश। एवं मार्गणास्थाने उदयः, बलदेवनारायणार्चितनेमितीर्थंकरेण बलदेवभ्रातृश्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवार्चितनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिना वा कथितः। इत्युदयप्रकरणं समाप्तं॥३३२॥

१३-१४ सयोगीमें इक्यावन मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय चौंसठ ६४। उदय पचीस २५। अयोगीमें तेरह मिलाकर अनुदय सतहत्तर ७७। उदय बारह १२।

इस प्रकार मार्गणास्थानमें उदयका कथन बलदेव और नारायणसे पूजित नेमिनाथ तीर्थंकरने अथवा बलदेव भाई और श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवसे पूजित नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने किया॥३३२॥

उदय प्रकरण समाप्त

आहारक रचना ११८

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.
५	९	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
११३	१०८	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
५	१०	१८	१८	३१	३७	४२	४६	५२	५८	५९	६१	७६

अनाहारक रचना ८९

	मि.	सा.	अ.	स.	अ.
व्यु.	३	१०	५१	१३	१२
उ.	८७	८१	७५	२५	१२
अ.	२	८	१४	६४	७७

१. चाउंडरायनि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतर प्रकृतिसत्वम गुणस्थानदोळु पेळ्दपरु :—

तित्थाहारा जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिये ।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवइ ॥३३३॥

तीर्थाहारा युगपत्सत्वं तीर्थं न मिथ्यादृष्ट्यादित्रये । तत्सत्त्वकर्मणां तद्‌गुणस्थानं न संभवति ॥

तीर्थाहारा युगपन्न तीर्थकरनाममुमाहारकद्वयमुं मिथ्यादृष्टियोळु एकजीवापेक्षेयिवं युगपत्सत्वमिल्ल । अदेंतेंदोडे तीर्थसत्वमुळ्ळनोळाहारकद्वयसत्वमिल्ल । आहारकद्वयसत्वमुळ्ळनोळु तीर्थसत्वमिल्ल । उभयसत्वमुळ्ळ जीवनो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोर्दनप्पुदरिंदं । नानाजीवापेक्षेयिदं युगपत्सत्वमुंटु । अदु कारणमागि मिथ्यादृष्टियोळु नूरनाल्वत्तेंटु प्रकृतिगळि्गे सत्वमक्कुं १४८ ॥ सासादननोळु सर्व्वं न तीर्थमुमाहारकद्वयमुमेकजीवापेक्षेयिंदमुं नानाजीवापेक्षेयिंदमुं युगपत्क्रमदिंदमुं सत्वमिल्ल । मिश्रनोळु तीर्थनामसत्त्वं न यिल्लेकेंदोडे तत्सत्त्वकर्मणां आ तीर्थाहारकद्वयसत्वयुतजीवंगळ्गे तद्‌गुणस्थानं न संभवति तीर्थाहारकद्वयं युगपत्संभविसुव मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुं तीर्थमुमाहारकद्वयमुं संभविसुव सासादनगुणस्थानमुं तीर्थं संभविसुव मिश्रगुणस्थानमुं संभविसवप्पुदवुकारणमागि मिथ्यादृष्टियोळु नूरनाल्वत्तेंटु प्रकृतिसत्वमुं १४८ । सासादननोळु नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमुं १४५ । मिश्रनोळु नूरनाल्वत्तेळु प्रकृतिसत्वमुमक्कुं १४७॥

अथ प्रकृतिसत्त्वं गुणस्थानेष्वाह—

मिथ्यादृष्टौ तीर्थकृत्त्वसत्त्वे आहारकद्वयसत्त्वं न, आहारकद्वयसत्त्वे च तीर्थकृत्त्वसत्त्वं न, उभयसत्त्वे तु मिथ्यात्वाश्रयणं न । तेन तद्द्वयं तत्र युगपदेकजीवापेक्षया न । नानाजीवापेक्षयास्ति ([1]ततोऽष्टचत्वारिंशदुत्तरशतं सत्त्वं) । सासादने तदुभयमपि एकजीवापेक्षयाऽनेकजीवापेक्षया च क्रमेण युगपद्वा सत्त्वं नेति (पंचचत्वारिंशदुत्तरशतं १४५) । मिश्रे तीर्थकरत्वसत्त्वं न (सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं सत्त्वं १४७) । कुतः ? तत्सत्त्वकर्मणां जीवानां तद्‌गुणस्थानं न संभवतीति कारणात् ॥ ३३३ ॥

आगे गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंकी सत्ता कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जिसके तीर्थंकरकी सत्ता होती है उसके आहारकद्विककी सत्ता नहीं होती और जिसके आहारकद्विककी सत्ता होती है उसके तीर्थंकरकी सत्ता नहीं होती। जिसके दोनोंकी सत्ता होती है वह मिथ्यात्वमें आता ही नहीं। इसलिए ये दोनों मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक साथ एक जीवकी अपेक्षा नहीं हैं। किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षासे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकर और आहारकद्विक दोनोंकी सत्ता होनेसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस १४८ है। सासादनमें ये दोनों ही एक जीव और नाना जीवकी अपेक्षा क्रमसे या एक साथ नहीं रहते अतः वहाँ सत्त्व एक सौ पैंतालीस। मिश्रमें तीर्थंकरकी सत्ता न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस; क्योंकि जिनके इन प्रकृतियोंकी सत्ता होती है उनके ये गुणस्थान नहीं होते ॥३३३॥

१. कोष्ठान्तर्गतः पाठो नास्ति ब प्रतौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारिवि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥३३४॥

चतुर्णां क्षेत्राणामायुर्ब्बंधेन भवति सम्यक्त्वं । अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुर्म्मुक्त्वा ॥

चतुर्ग्गतिगळायुर्ब्बंधमावुदरिंदमुं जीवक्के सम्यक्त्वमक्कु मल्लि देवगतिगायुर्ब्बंधमागिद्दं जीवक्कणुव्रतमहाव्रतंगळु संभविसुववा देवायुष्यमं बिट्टुळिद नरकतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळु बंधमाद भुज्यमान तिर्य्यंचनणुव्रतमं पडेयल्नेरेयं । भुज्यमानमनुष्यनावोडणुव्रतमहाव्रतंगळं पडेयल्नेरेयनेकें दोडा गतित्रयबध्यमानायुष्यरुगळ्गे अणुव्रतमहाव्रतपरिणामकारणविशुद्धिकषायपरिणामस्थानोदयंगळु संभविसवप्पुदरिंदं ॥

णिरयतिरिक्खसुराउग सत्ते ण हि देससयलवदिखवगा ।
अयदचउक्कं तु अणं-अणियट्टीकरणचरिमम्मि ॥३३५॥

नरकतिर्य्यग्देवायुःसत्त्वे न हि देशसकलव्रतिक्षपकाः असंयतचतुष्कं त्वनंतानुबंधिनोऽनिवृत्तिकरणचरमे ॥

नरकायुष्यसत्वमुं तिर्य्यगायुष्यसत्वमुं देवायुष्यसत्वमुं भुज्यमानबध्यमानोभयप्रकारदिवं सत्वमुंटागुत्तं विरलु यथासंख्यमागि देशव्रतिगळुं सकलव्रतिगळुं क्षपकरुं न हि इल्ल । तु मत्तम-

---

चतुर्णां क्षेत्राणां गतीनां संबन्ध्यायुर्बंधेनापि जीवस्य सम्यक्त्वं भवति । तत्र देवगत्यायुर्मुक्त्वा शेषैकतरगतिबद्धायुष्कस्तिर्यङ् अणुव्रतं मनुष्योऽणुव्रतं महाव्रतं वा न लभते तेषां तत्तद्व्रतपरिणामकारणविशुद्धकषायपरिणामस्थानोदयासंभवात् ॥ ३३४ ॥

नरकतिर्यग्देवायुस्सु भुज्यमानबध्यमानोभयप्रकारेण सत्त्वेषु सत्सु यथासंख्यं देशव्रताः सकलव्रताः क्षपका

चारों क्षेत्र अर्थात् गति सम्बन्धी आयुका बन्ध करनेपर भी जीवके सम्यक्त्व हो सकता है। किन्तु देवगति सम्बन्धी आयुको छोड़कर शेष गतियोंमें-से किसी एक गतिकी आयुका बन्ध करनेवाले तिर्यंचके अणुव्रत और मनुष्यके अणुव्रत अथवा महाव्रत नहीं हो सकते; क्योंकि उनके उन-उन व्रतरूप परिणामोंके कारण विशुद्ध कषाय स्थानोंकी उत्पत्ति असम्भव है।

विशेषार्थ—यदि पहले चारों आयुमें-से किसी भी आयुका बन्ध हो चुका हो और पीछे सम्यक्त्वको धारण करे तो उसमें कोई दोष नहीं है। ऐसा हो सकता है। किन्तु यदि पहले नरकायु या तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध हुआ हो तो पीछे अणुव्रत या महाव्रत धारण नहीं कर सकता। एक देवायुका बन्ध पहले हुआ हो तो अणुव्रत महाव्रत धारण करना सम्भव है। इसका कारण यह है कि अन्य आयुका बन्ध कर लेनेवाले जीवोंके ऐसे विशुद्ध परिणाम नहीं होते जो व्रत परिणामके कारण होते हैं। यह कथन परभवकी आयुका बन्ध कर लेनेवालोंकी दृष्टिसे है। परभवकी आयुका बन्ध जिसने नहीं किया है वह तो उसी भवसे मोक्ष भी जा सकता है ॥३३४॥

जिस वर्तमान आयुको जीव भोगता है उसे भुज्यमान कहते हैं और परभवकी जो आयु बाँधी उसे बध्यमान कहते हैं। भुज्यमान और बध्यमान दोनों प्रकारकी नरकायु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नतानुबंधि कषायंगळनु। असंयतचतुष्कं असंयतसम्यग्दृष्टियादियागि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु। अनिवृत्तिकरणचरमे अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयक्के द्वादशकषायनोकषायस्वरूपकरण विसंयोजनविधानदोळु वोरेकोळ्व करणलब्धियोळधःप्रवृत्तापूर्व्वानिवृत्तिकरणपरिणामंगळोळा व्युच्छित्यनिवृत्तिकरणचरमसमयदोळु :--

जुगवं संजोगित्ता पुणोवि अणियट्टिकरणबहुभागं।
वोलिय कमसो मिच्छं मिस्सं सम्मं खवेइ कमे ॥३३६॥

युगपद्विसंयोज्य पुनरप्यनिवृत्तिकरणबहुभागं। नीत्वा क्रमशो मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वं क्षपयति क्रमे ॥

अनंतानुबंधिकषायचतुष्कमनक्रमर्मिदं युगपदोम्मोदलोळ अनिवृत्तिकरणपरिणामकालांतर्म्मुहूर्त्तचरमसमयदोळं परप्रकृतिरूपर्मिदं विसंयोजिसि अंतर्म्मुहूर्त्तकालं विश्रमिसि। पुनरपि मत्तमनंतानुबंधिविसंयोजनविधानदोळे तंत दर्शनमोहक्षपणोद्योगदोळु वोरेकोळ्व करणलब्धियोळधःप्रवृत्तापूर्व्वानिवृत्तिकरणंगळोळा व्युत्पत्यनिवृत्तिकरणकालांतर्म्मुहूर्त्तसंख्यातबहुभागमं २१४/४ कळिदेकभागावशेषमादागळा प्रथमसमयं मोदल्गोंडु मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वप्रकृति येंब दर्शनमोहत्रयमं यथाक्रमर्दिदं क्षपियिसुगुमंतु क्षपियिसि असंयतादियाद नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु

नैव स्युः। तु—पुनः, असंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽनिवृत्तिकरणपरिणामकालांतर्मुहूर्तचरमसमयेऽनंतानुबंधिकषायचतुष्कं—॥ ३३५॥

युगपदेव विसंयोज्य द्वादशकषायनोकषायरूपेण परिणमय्य अंतर्मुहूर्तकालं विश्रम्य पुनरप्यनंतानुबंधिविसंयोजनवद्दर्शनमोहक्षपणोद्योगेपि स्वीकृतकरणलब्धावधःप्रवृत्तापूर्वाऽनिवृत्तिकरणेषु तदुत्पत्त्यनिवृत्तिकरणकालांतर्मुहूर्तसंख्यातबहुभागं २१४/४ अतीत्यैकभागे प्रथमसमयात्प्रभृतिमिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतीः क्रमेण क्षप-

तिर्यंचायु और देवायुका सत्त्व होनेपर क्रमसे देशव्रत, महाव्रत और क्षपकश्रेणी नहीं होती। अर्थात् भुज्यमान या बध्यमान रूपसे नरकायुका सत्त्व होनेपर अणुव्रत नहीं हो सकते। भुज्यमान और बध्यमान रूपसे तिर्यंचायुका सत्त्व होनेपर महाव्रत नहीं हो सकते। और भुज्यमान या बध्यमान रूपसे देवायुका सत्त्व होनेपर क्षपकश्रेणी नहीं होती।

असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसी एक गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी चार और दर्शनमोहनीय तीन इन सातोंकी सत्ताका नाश करके क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है। सो कैसे नाश करता है यह कहते हैं—प्रथम तीन करण करता है। उनमें-से अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्तकालके अन्तमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक साथ विसंयोजन करता है उन्हें बारह कषाय और नोकषायरूप परिणमाता है। विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्त तक विश्राम करता है। फिर दर्शनमोहको नष्ट करनेके लिए पुनः अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण करता है। अनिवृत्तिकरणके काल अन्तर्मुहूर्तमें संख्यातसे भाग दें। संख्यात बहुभाग प्रमाण काल बीत जानेपर जब एक भाग काल शेष रहे तब उसके प्रथम समयसे लगाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परंतागुत्तं विरलु । तीर्त्थाहारकंगळगक्रमदोळु सत्वरहितमागि एकजीवापेक्षेयिदं क्रमदिवं सत्वमक्कुमदें तें दोडाहारकद्वयमनुद्वेल्लनं माडिद मिथ्यादृष्टि बद्धनरकायुष्यनसंयतनागि तीर्त्थमं कट्टि द्वितीयतृतीयपृथ्वीगळ्गे पोपागळु सम्यक्त्वमं विराधिसुगुमप्पुदरिवं ॥ नानाजीवापेक्षेयिनक्रमदिं मिथ्यादृष्टियोळु नूर नाल्वत्तें टुं प्रकृतिगळिगे सत्वमक्कुं । १४८ । सासादननोळा प्रकृतित्रयक्के क्रमाक्रमदोळं सत्वमिल्लप्पुदरिवं नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिगळ्गेये सत्वमक्कु १४५ ॥ मिश्रनोळु तीर्त्थसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तेळु प्रकृतिगळ्गे सत्वमक्कुं १४७ । असंयतसम्यग्दृष्टियोळु सप्तप्रकृतिगळ सत्वमनुळ्ळवग्गें नूरनाल्वत्तें टु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४८ । देशसंयतनोळुमंते नरकायुर्व्वज्जित नूरनाल्वत्तेळु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४७ ॥ प्रमत्तसंयतनोळमंते नरकतिर्य्यगायुर्द्वयरहितमागि नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४६ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळमंते नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४६ । मत्तमसंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळु तद्भवकर्म्मक्षयभागिगळु क्षपकश्रेण्या-

---

यति । ततः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । तथा सति मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने कश्चिदाहारकद्वयमुद्वेल्य नरकायुर्बध्वाऽसंयतो भूत्वा तीर्थं बद्ध्वा द्वितीयतृतीयपृथ्वीगमनकाले पुनर्मिथ्यादृष्टिर्भवतीत्येकजीवे क्रमेण नानाजीवे युगपत्तीर्थाहाराः स्युः इति तत्र सत्त्वमष्टचत्वारिंशदुत्तरशतं १४८ । सासादने क्रमाक्रमाभ्यां तदसत्त्वात् पंचचत्वारिंशदुत्तरशतं १४५ । मिश्रे तीर्थकृदसत्त्वात्सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं । असंयते सप्तप्रकृतिसत्त्वजीवानामष्टचत्वारिंशदुत्तरशतं । १४८ । देशसंयते तेषामेव नरकायुरसत्त्वात्सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं १४७ । प्रमत्तसंयते तेषामेव नरकतिर्यगायुरसत्त्वात् षट्चत्वारिंशदुत्तरशतं १४६ । अप्रमत्तेऽपि तथैव षट्चत्वारिंशदुत्तरशतं १४६ ।

पहले मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षय करता है, उसके पश्चात् मिश्रका और उसके पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय करता है। तब क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें सत्ता कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक ही जीवके आहारकद्विक और तीर्थंकरका सत्त्व क्रमसे कैसे पाया जाता है यह कहते हैं। किसी जीवने ऊपरके गुणस्थानोंमें आहारकका बन्ध किया। पीछे मिथ्यात्व गुणस्थानमें आकर आहारकद्विकका उद्वेलन कर दिया। पीछे नरकायुका बन्ध करके असंयत गुणस्थानमें जाकर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। पश्चात् दूसरे या तीसरे नरकमें जानेके समय मिथ्यादृष्टि हो गया। इस प्रकार एक ही जीवके मिथ्यात्व गुणस्थानमें क्रमसे पहले आहारकद्विकका और उसकी उद्वेलना-बन्धका अभाव करनेके पश्चात् तीर्थंकरका सत्त्व होता है। किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षा एक साथ दोनोंका सत्त्व पाया जाता है। किसी जीवके आहारकद्विकका सत्त्व पाया जाता है और किसीके तीर्थंकरका सत्त्व पाया जाता है। इस तरह मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका सत्त्व भी पाया जानेसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस है।

सासादनमें आहारकद्विक और तीर्थंकरका सत्त्व किसी भी प्रकारसे नहीं है। अतः सत्त्व एक सौ पैंतालीस है। मिश्रमें तीर्थंकरका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस है। असंयतादिमें जिन उपशम और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्क और तीन दर्शनमोहकी सत्ता पायी जाती है उनकी अपेक्षा असंयतमें एक सौ अड़तालीसका सत्त्व है। देशसंयतमें नरकायुके बिना एक सौ सैंतालीस, प्रमत्तमें नरकायु तिर्यंचायुके बिना एक सौ छियालीस तथा अप्रमत्तमें भी एक सौ छियालीसका सत्त्व है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोहणं माळ्पवर्गळगपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नूर मूवत्तेंटु प्रकृतिसत्वमक्कु-१३८। मेकेंदोडे अबद्धायुष्यरप्प भुज्यमानमनुष्यायुष्यरु असंयतादि चतुर्ग्गुणस्थानंगळोळेल्लियादोडं सप्तप्रकृतिगळं किडिसि क्षपकश्रेण्यारोहणमं माळ्परप्पुदरिंदमपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु सप्तप्रकृतिगळुं नरकतिर्य्यग्देवायुष्यत्रयमुमंतु दशप्रकृतिगळगसत्वमक्कुं १० ॥

[1]मिच्छे सासणमिस्से सुण्णं एक्केक्कगं तु बिट्ठाणे ।
विरदापमत्तपुव्वे सुण्णडसुण्णं च वोच्छिण्णा ॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानं मोदल्गोंडु मेलण गुणस्थानंगळोळु क्षपियिसुव प्रकृतिगळ क्रममं पेळदपरु :—

सोलट्ठेक्किगिछक्कं चदुसेक्कं बादरे अदो एक्कं ।
खीणे सोलमजोगे बावत्तरि तेरुवंतंते ॥३३७॥

षोडशाष्टैकैकषट्कं चतुर्ष्वेकं बादरेऽतः एकं । क्षीणे षोडशायोगे द्वासप्ततिस्त्रयोदशोपांतंते ॥

बादरे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु क्रमदिदं षोडश अष्ट एक एक षट्कं चतुर्ष्वेकं नाल्कंडेयोळोंदोंदक्के सत्वव्युच्छित्तियक्कुं । १ । १ । १ । १ । अतः अल्लिदं मेले सुहुमे सूक्ष्मसांपरायदोळु एकं ओंदु सत्वव्युच्छित्तियक्कुं १ । क्षीणे षोडश क्षीणकषायनोळु पदिनारुं प्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तियप्पुवु १६ ॥ सयोगकेवलियोळु सत्वव्युच्छित्तिशून्यमक्कुमयोगकेवलियोळु उपांते द्विचरमसमयदोळु द्वासप्ततिप्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तिगळप्पुवु ७२ । अंते चरमसमयदोळु त्रयोदश पदिमूरुं प्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तियप्पुवु[2] १३ ।

क्षपकश्रेण्यारूढानामपूर्वकरणेऽष्टत्रिंशदुत्तरशतं । १३८ । सप्तप्रकृतीनामसंयतादिचतुर्गुणस्थानेष्वेकत्र क्षपितत्वान्नरकतिर्यग्देवायुषां चाबद्धायुष्कत्वेनासत्वात् ॥ ३३६ ॥ अनिवृत्तिकरणादिषु क्षययोग्यानां क्रममाह—

अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने क्रमेण षोडशाष्टावेकमेकं षट्कं चतुर्ष्वेकैकं सत्त्वव्युच्छित्तिः । अत उपरि सूक्ष्मसांपरायेष्वेकं । क्षीणे षोडश । सयोगे शून्यं । अयोगे द्विचरमसमये द्वासप्ततिः, चरमसमये त्रयोदश ॥३३७॥

किन्तु इन गुणस्थानोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टीके सात-सात प्रकृति कम होती है। अपूर्वकरणादिमें दो श्रेणी हैं—एक क्षपकश्रेणि और एक उपशमश्रेणि। प्रथम क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा कहते हैं—जिसके परभवकी आयुका बन्ध नहीं होता वही जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहण करता है। अतः उसके नरक, तिर्यंच, देव तीन आयुका सत्त्व नहीं होता। तथा असंयतादि गुणस्थानमें सात प्रकृतियोंका क्षय करके वह क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है। इस तरह दस प्रकृतियोंका सत्त्व न होनेसे अपूर्वकरणमें एक सौ अड़तीस सत्त्व होता है ॥३३५–३३६॥

आगे अनिवृत्तिकरण आदिमें क्षययोग्य प्रकृतियोंको कहते हैं—

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्रमसे सोलह, आठ, एक, एक, छह, और चार स्थानोंमें एक-एक प्रकृतिकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। उससे ऊपर सूक्ष्म साम्परायमें एक, क्षीण कषायमें सोलह, सयोगीमें शून्य, अयोगीमें द्विचरम समयमें बहत्तर और अन्त समयमें तेरहकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ॥३३७॥

---

१. म प्रतौ नास्तीयं गाथा । २. म °त्तियप्पुवु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ षोडशादिप्रकृतिगळवाउवें दोडे पेळ्दपरु :—

णिरयतिरिक्खदु वियलं थीणतिगुज्जोव-ताव-एइंदी ।
साहरणसुहुमथावर सोलं मज्झिमकसायट्ठं ॥३३८॥

नरकतिर्य्यग्द्विक विकलं स्त्यानगृद्धित्रिकोद्योतातपैकेंद्रियाणि । साधारणसूक्ष्मस्थावर-षोडशमध्यमकषायाष्टौ ॥ नरकद्विकमुं २ । तिर्य्यग्द्विकमुं २ । विकलेंद्रियत्रितयमुं ३ । स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ । उद्योतनाममुं १ । आतपमुं १ । एकेंद्रियजातिनाममुं १ साधारणशरीरनाममुं १ । सूक्ष्मनाममुं १ स्थावरनाममु १ मितु षोडशप्रकृतिगळप्पुवु । मध्यमकषायाष्टौ अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-मध्यमकषायाष्टकमक्कुं । ८ ॥

संढित्थिछक्कसाया पुरिसो कोहो य माण मायं च ।
थूले सुहुमे लोहो उदयं वा होदि खीणम्मि ॥३३९॥

षंढस्त्रीषट्कषायाः पुरुषः क्रोधश्च मानं माया च । स्थूले सूक्ष्मे लोभः उदयवद्भवति क्षीणे ॥

क्रमदिदं षंढवेदमुं स्त्रीवेदमुं नोकषायषट्कमुं पुंवेदमुं संज्वलनक्रोधमुं संज्वलनमानमुं संज्वलनमायेयुमिवु स्थूले अनिवृत्तिकरणनोळु व्युच्छित्तिप्रकृतिगळप्पवक्कुं । सूक्ष्मे सूक्ष्मसांपराय-नोळु लोभः सूक्ष्म संज्वलनलोभमों दे सत्वव्युच्छित्तियक्कुं । क्षीणे क्षीणकषायनोळु उदयवद्भवति उदयदोळु पेळद षोडशप्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळप्पुवु । सयोगकेवलियोळु सत्वव्युच्छित्ति-शून्यमप्पुदरिंदमयोगिकेवलिगुणस्थानदुपांतदोळु सत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपरु ।

ताः षोडशादिप्रकृतयः काः ? इति चेदाह—

नरकद्विकं तिर्यग्द्विकं विकलत्रयं स्त्यानगृद्धित्रयमुद्योतः आतपः एकेंद्रियं साधारणं सूक्ष्मं स्थावरं चेति षोडश । अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषाया अष्टौ ८ ॥ ३३८ ॥

क्रमेण षंढवेदः स्त्रीवेदो नोकषायषट्कं पुंवेदः संज्वलनक्रोधः संज्वलनमानः संज्वलनमाया एताः स्थूले अनिवृत्तिकरणे व्युच्छिन्ना भवंति । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मसंज्वलनलोभः, क्षीणकषाये उदयवत्षोडश, सयोगे

विशेषार्थ—जहाँ जिन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है उससे ऊपर उन प्रकृतियों-की सत्ताका अभाव होता है।

आगे उन सोलह आदि प्रकृतियोंको कहते हैं—

नरकगति, नरकानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, विकलत्रय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर इन सोलहकी व्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें होती है। अप्रत्याख्यान कषाय चार और प्रत्याख्यान कषाय चार इन आठ मध्यम कषायोंकी दूसरे भागमें व्युच्छित्ति होती है ॥३३८॥

नपुंसकवेदकी तीसरे भागमें, स्त्रीवेदकी चौथे भागमें, छह नोकषायोंकी पाँचवें भाग-में, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमायाकी छठे, सातवें, आठवें और नवमें भागमें क्रमसे व्युच्छित्ति होती है। इस प्रकार छत्तीसकी व्युच्छित्ति स्थूल अर्थात् अनिवृत्तिकरणमें होती है। सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्मलोभकी व्युच्छित्ति है। क्षीणकषायमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देहादीफस्संता थिरसुहसरसुरविहायदुगदुभगं ।
णिमिणं जसणादेज्जं पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ ॥३४०॥
अणुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा ।
उदयगबार णराणू तेरस चरिमम्मि वोच्छिण्णा ॥३४१॥

देहादिस्पर्शांताः स्थिरशुभस्वरसुरविहायोगतिद्विक दुर्भगं निर्म्माणायशस्कीर्त्यनादेयं प्रत्येकापूर्ण्ण अगुरुचतस्रः ॥

अनुदयतृतीयं नीचमयोगिद्विचरमे सत्वव्युच्छित्तयः। उदयगतद्वादशनरानुपूर्व्व्यं त्रयोदश चरमे व्युच्छिन्नाः ॥

देहादिस्पर्शांताः शरीरपंचकमुं ५ बंधनपंचकमुं ५ संघातपंचकमुं ५ संस्थानषट्कमुं ६। अंगोपांगत्रितयमुं ३। संहननषट्कमुं ६। वर्ण्णपंचकमुं ५। गंधद्विकमुं २। रसपंचकमुं ५। स्पर्शाष्टकमुं ८। स्थिरद्विकमुं २। शुभद्विकमुं २। स्वरद्विकमुं २। सुरद्विकमुं २। विहायोगतिद्विकमुं २। दुर्भगनाममुं १। निर्म्माणनाममुं १ अयशस्कीर्त्तियुं १अनादेयमुं १ प्रत्येकशरीरमुं १ अपर्य्याप्तनाममुं १ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कमुं ४। अनुदयवेदनीयमुं १ नीचैर्ग्गोत्रमु १ मितेप्पत्तेरडुं प्रकृतिगळयोगिद्विचरमसमयसत्वव्युच्छित्तिगळप्पुवु। चरमसमयदसत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु तद्गुणस्थानदोळुदयिसुत्तिर्द्दं तृतीयैकादि द्वादश प्रकृतिगळुं मनुष्यानुपूर्व्व्यमुमितु पदिमूरुं प्रकृतिगळप्पुवु। अंतागुत्तं विरलनिवृत्तिकरणन प्रथमभागदोळु असत्वंगळु पत्तु १०। सत्वप्रकृतिगळु नूर मूवत्तेंटु १३८। आद्वितीयस्थानदोळु पदिनारुगूडियसत्वप्रकृतिगळु

शून्यं ॥ ३३९ ॥

पंचशरीरपंचबंधनपंचसंघातषट्संस्थानत्र्यंगोपांगषट्संहननपंचवर्णद्विगंधपंचरसाष्टस्पर्शाः स्थिरशुभसुस्वरसुरविहायोगतिद्विकानि दुर्भगं निर्माणमयशस्कीर्तिरनादेयं प्रत्येकमपर्याप्तमगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासा अनुदयवेदनीयं नीचैर्गोत्रं चेति द्वासप्ततिरयोगिद्विचरमसमये सत्वव्युच्छित्तिः। चरमसमये उदयगततृतीयैकादिद्वादश; मनुष्यानुपूर्व्यं चेति त्रयोदश। एवं सत्यनिवृत्तिकरणप्रथमभागे असत्त्वं दश सत्त्वमष्टात्रिंशदुत्तरशतं,

उदय व्युच्छित्तिकी तरह पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, निद्रा और प्रचला इन सोलहकी सत्त्व व्युच्छित्ति है। सयोगीमें सत्त्व व्युच्छित्ति नहीं है ॥३३९॥

पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति, देवानुपूर्वी, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, जिसका उदय न हो वह एक वेदनीय और नीच गोत्र इन बहत्तरकी अयोगकेवलीके द्विचरम समयमें सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। अन्तिम समयमें जिनका उदय अयोगीमें होता है वह कोई एक वेदनीय, मनुष्य-

१. तदियेक्कं मणुवगदि पंचिंदिय सुभग तसतिगादेज्जं ।
जसतित्थं मणुआवु उच्चं च अजोगिचरिमम्हि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यिप्पत्तारु २६ । सत्वंगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ । तृतीयस्थानदोळेंटुगूडियसत्वंगळु मूवत्तनाल्कु ३४ । सत्वप्रकृतिगळु नूरहदिनाल्कु ११४ । चतुर्थस्थानदोळु ओंदु गूडियसत्वंगळु मूवत्तय्दु ३५ । सत्वंगळु नूरहदिमूरु ११३ । पंचमस्थानदोळोंदु गूडियसत्वंगळु मूवत्तारु ३६ । सत्वप्रकृतिगळु ११२ ॥ षष्ठस्थानदोळारुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेरडु ४२ । सत्वंगळु नूरारु १०६ सप्तमस्थानदोळोंदु गूडियसत्वंगळु नाल्वत्तमूरु ४३ । सत्वंगळु नूरय्दु १०५ ॥ अष्टमस्थानदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तनाल्कु ४४ । सत्वंगळु नूर नाल्कु १०४ ॥ नवमस्थानदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तय्दु ४५ । सत्वंगळु नूर मूरु १०३ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळोंदु गूडियसत्वंगळु नाल्वत्तारु ४६ । सत्वंगळु नूर येरडु १०२ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळु सूक्ष्मलोभंगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेळु ४७ । सत्वंगळु नूरोंदु १०१ ॥ सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियसत्वंगळु अरुवत्तमूरु ६३ । सत्वंगळेंभत्तय्दु ८५ । अयोगिकेवलिगुणस्थानद्विचरमसमयपर्य्यंतमसत्वप्रकृतिगळु मरुवत्तमूरु ६३ । सत्वप्रकृतिगळेंभत्तय्दु ८५ ॥ चरमसमयदोळेप्पत्तेरडुगूडि नूर मूवत्तय्द सत्वंगळु १३५ ॥ सत्वंगळु पदिमूरु १३ ॥ संदृष्टि :—

तद्द्वितीयस्थाने षोडश संयोज्यासत्त्वं षड्विंशतिः सत्त्वं द्वाविंशत्युत्तरशतं । तृतीयस्थानेऽष्टौ संयोज्यासत्त्वं चतुस्त्रिंशत्, सत्त्वं चतुर्दशोत्तरशतं । चतुर्थस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशत्, सत्त्वं त्रयोदशोत्तरशतं । पंचमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं षट्त्रिंशत्, सत्त्वं द्वादशोत्तरशतं । षष्ठस्थाने षट्संयोज्यासत्त्वं द्वाचत्वारिंशत्, सत्त्वं षडुत्तरशतं । सप्तमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं त्रिचत्वारिंशत्, सत्त्वं पंचोत्तरशतं । अष्टमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं चतुश्चत्वारिंशत्, सत्त्वं चतुरुत्तरशतं । नवमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं पंचचत्वारिंशत्, सत्त्वं त्र्युत्तरशतं । सूक्ष्मसांपराये एकां संयोज्यासत्त्वं षट्चत्वारिंशत् सत्त्वं द्व्युत्तरशतं । क्षीणकषाये सूक्ष्मलोभं संयोज्यासत्त्वं सप्तचत्वारिंशत् । सत्त्वमेकोत्तरशतं । सयोगे षोडश संयोज्यासत्त्वं त्रिषष्टिः सत्त्वं पंचाशीतिः । अयोगे द्विचरमसमयपर्यंतमसत्त्वं त्रिषष्टिः सत्त्वं पंचाशीतिः, चरमसमये द्वासप्तति संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशदुत्तरशतं, सत्त्वं त्रयोदश । ॥ ३४०–३४१ ॥

गति पंचेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और मनुष्यानुपूर्वी इन तेरहकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें असत्त्व दस । सत्त्व एक सौ अड़तीस । उसके दूसरे भागमें सोलह मिलाकर असत्त्व छब्बीस, सत्त्व एक सौ बाईस । उसके तीसरे भागमें आठ मिलाकर असत्त्व चौंतीस, सत्त्व एक सौ चौदह । उसके चौथे भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतीस, सत्त्व एक सौ तेरह । उसके पाँचवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व छत्तीस, सत्त्व एक सौ बारह । उसके छठे भागमें छह मिलाकर असत्त्व बयालीस, सत्त्व एक सौ छह । उसके सातवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व तैंतालीस, सत्त्व एक सौ पाँच । उसके आठवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व चवालीस, सत्त्व एक सौ चार । उसके नौवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतालीस, सत्त्व एक सौ तीन । सूक्ष्म साम्परायमें एक मिलाकर असत्त्व छियालीस, सत्त्व एक सौ दो । क्षीणकषायमें एक सूक्ष्म लोभ मिलाकर असत्त्व सैंतालीस, सत्त्व एक सौ एक । सयोगीमें सोलह मिलाकर असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व पिचासी । अयोगीके द्विचरम समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	०	०	०	०	०	०	०
व्यु	०	०	०	१	१	०	८	०	१६	८	१	१	६	१	१	१
उ	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४

→

०	सू	क्षी	स	अ	अ
१	१	१६	०	७२	१३
← १०३	१०२	१०१	८५	८५	१३
४५	४६	४७	६३	६३	१३५

अनंतरमुक्तसत्वासत्वंगळं पेळदपरु :—

णभतिगिणभइगि दोद्दोदसदससोलट्ठगादिहीणेसु ।
सत्ता हवंति एवं असहायपरक्कमुद्दिट्ठं ॥३४२॥

नभस्त्र्येकनभ एक द्विद्वि दश दश षोडशाष्टकादिहीनेषु । सत्वानि भवंत्येवमसहायपराक्रमोद्दिष्टं ॥

नभः मिथ्यादृष्टियोळु असत्वं शून्यमक्कुं । त्रि सासादननोळसत्वं मूरक्कुं ३ । एक मिश्रनोळोंदक्कुं १ । नभः असंयतनोळसत्वं शून्यमक्कुं १ । एकदेशसंयतनोळु असत्वमोंदेयक्कुं १ । द्वि प्रमत्तसंयतनोळसत्वमेरडक्कुं २ । द्वि अप्रमत्तसंयतनोळसत्वमेरडक्कुं २ । दश अपूर्व्वकरणनोळसत्वं पत्तु १० । दश अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागदोळसत्वं पत्तु १० । षोडशाष्टकादिहीनेषु अनिवृत्तिकरणद्वितीय तृतीयादिभागादिगळोळु षोडशाष्टकादिगळोळु हीनंगळागुत्तं विरलु सत्वानि भवंति सत्वंगळु पूर्व्वोक्तक्रमदिवमप्पुवेंदितसहायपराक्रमनप्प श्रीवीरवर्द्धमानस्वामिर्गिदं पेळल्पट्टु-

---

अथोक्तसत्वासत्वे प्राह—

मिथ्यादृष्टावसत्वं शून्यं । सासादने त्रिकं । मिश्रे एकं । असंयते शून्यं । देशसंयते एकं । प्रमत्ते द्वयं । अप्रमत्ते द्वयं अपूर्वकरणे दश । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागे दश । द्वितीयतृतीयादिभागेषु षोडशाष्टकादिहीनेषु पूर्वोक्तक्रमेण सत्वानि स्युरित्यसहायपराक्रमेण वर्धमानस्वामिना प्ररूपितं । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानोक्तषोडशा-

---

पर्यन्त असत्व त्रेसठ, सत्व पिचासी । अन्तिम समयमें बहत्तर मिलाकर असत्व एक सौ पैंतीस, सत्व तेरह ॥३४०-३४१॥ आगे उक्त सत्व-असत्वको कहते हैं—

असत्व मिथ्यादृष्टिमें शून्य, सासादनमें तीन, मिश्रमें एक, असंयतमें शून्य, देशसंयतमें एक, प्रमत्तमें दो, अप्रमत्तमें दो, अपूर्वकरणमें दस, अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें दस, दूसरे तीसरे आदि भागोंमें सोलह, आठ आदि मिलानेपर असत्व होता है। सो सत्व प्रकृतियोंमें-से असत्व प्रकृतियोंको घटानेपर उस-उस गुणस्थानमें सत्व प्रकृति पूर्वोक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु पेळल्पट्ट षोडशाष्टकादिसत्वव्युच्छित्तिगळ क्षपणाविधानरचना। संदृष्टि :—

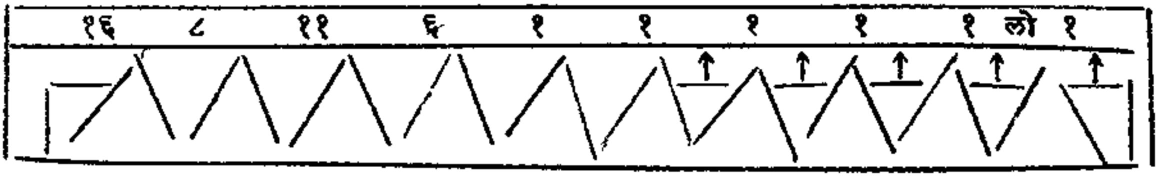

यिल्लि बादरसंज्वलनलोभमनिवृत्तिकरणनिवं क्षपियिसल्पट्टुदें तें दोडे सूक्ष्मकृष्टिकरणमनिवृत्तिकरणनोळक्कुमदरुदयं सूक्ष्मसांपरायनोळक्कुमें बी विशेषमरियल्पडुगुं। ई क्षपणाविधानदोळुदयवंतमप्प पुवेदादिगळ्गो दु निषेकमों देसमयकालस्थितियक्कुमेरडु निषेकंगळेरडे समयकालस्थितिगप्पुवित्यादि। मत्तमनुदयंगळप्प नपुंसकवेदादिकर्म्मप्रकृतिगळ क्षपितावशेषोच्छिष्टावलिमात्रनिषेकंगळ्गे परमुखोदयत्वदिंद समयाधिकावलिमात्रसमयस्थितियक्कुमें तें दोडों दु निषेक-

ष्टकादिसत्त्वव्युच्छित्तीनां क्षपणाविधानरचनासंदृष्टिः।

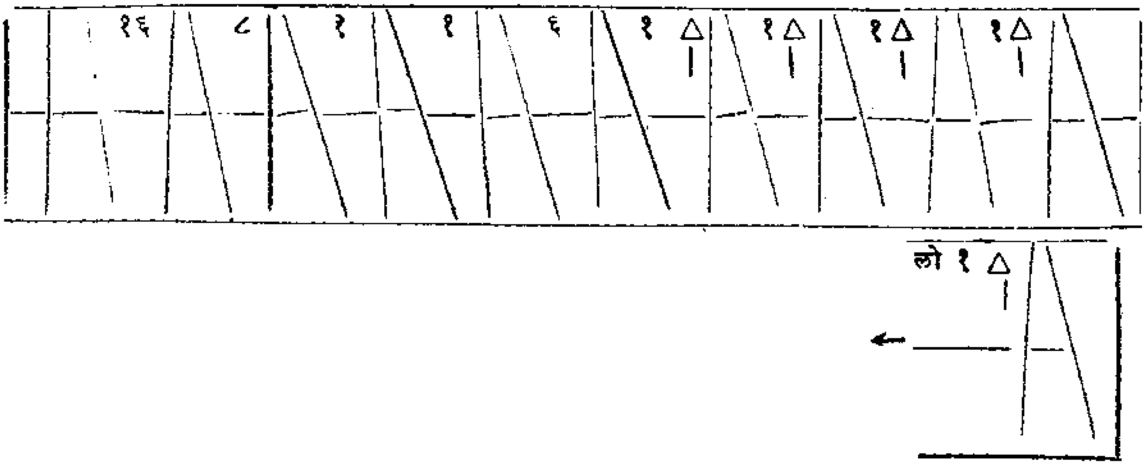

अत्रानिवृत्तिकरणे बादरलोभं क्षपयति सूक्ष्मकृष्टीः करोति। ताः कृष्टयः सूक्ष्मसांपराये उदयंतीति ज्ञातव्यं। अस्मिन् क्षपणाविधाने उदयागतपुंवेदादीनामेकनिषेकः एकसमयस्थितिकः। द्वौ निषेकौ द्विसमयस्थितिकावेवं क्रमः। अनुदयगतनपुंसकवेदादीनां च क्षपितावशेषोच्छिष्टस्य समयाधिकावलिः स्थितिः स्यात्,

क्रमानुसार जानना। ऐसा असहाय पराक्रमके धारी श्री वर्धमान स्वामीने कहा है। यहाँ अनिवृत्तिकरणमें बादर लोभका क्षपण करता है। उस लोभकी सूक्ष्मकृष्टि करता है। वे सूक्ष्मकृष्टियाँ सूक्ष्मसाम्परायमें उदयमें आती हैं ऐसा जानना। इस क्षपणाविधानमें उदयमें आये पुरुषवेद आदिका एक निषेक तो एक समयकी स्थितिवाला होता है। दो निषेक दो समयकी स्थितिवाले होते हैं। ऐसा क्रम जानना। जिनका उदय नहीं है उन नपुंसकवेद आदिकी क्षयके बाद अवशेष उच्छिष्ट रही सर्वस्थिति एक समय अधिक आवली प्रमाण है क्योंकि वहाँ एक निषेक दो समयकी स्थितिवाला है। दो निषेक तीन समयकी स्थितिवाले हैं इत्यादि क्रम पाया जाता है अतः उच्छिष्टावलीसे एक समय अधिक स्थिति जानना। उदयको अप्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरडु समयकालस्थितियक्कुमेरडु निषेकंगळु मूरु समयकालस्थितिगळप्पुवित्यादिक्रममुंटप्पुदरिद-मनुदयंगळगे परमुखोदयत्वदिदं समसमयोदयनिषेकंगळोंदोंदु निषेकंगळु स्थितोत्क संक्रमदिद संक्रमिसि पोपुवेंदितु स्वमुखोदयपरमुखोदयविशेषमरियल्पडुगुं । संदृष्टि :—

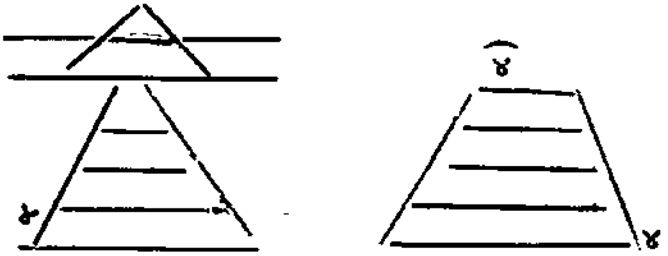

अनंतरमेकविंशति चारित्रमोहनीयोपशमविधानक्रममं पेळ्वपरु :—

खवणं वा उवसमणे णवरि य संजलण पुरिसमज्झम्मि ।
मज्झिम दो दो कोहादीया कमसोवसंता हु ॥३४३॥

क्षपणे वोपशमने नवीनं संज्वलनपुरुषमध्ये, मध्यम द्वौ द्वौ क्रोधादि कषायौ क्रमश उपशांतौ खलु ॥

एकनिषेको द्विसमयस्थितिकः, द्वौ निषेकौ त्रिसमयस्थितिकाविति क्रमस्य सद्भावात् । अनुदयगतानां परमुखोदयत्वेन समयसमयोदया एकैकनिषेकाः स्थितोक्तसंक्रमेण संक्रम्य गच्छंतीति स्वमुखपरमुखोदयविशेषोऽवगंतव्यः[1] । संदृष्टिः—

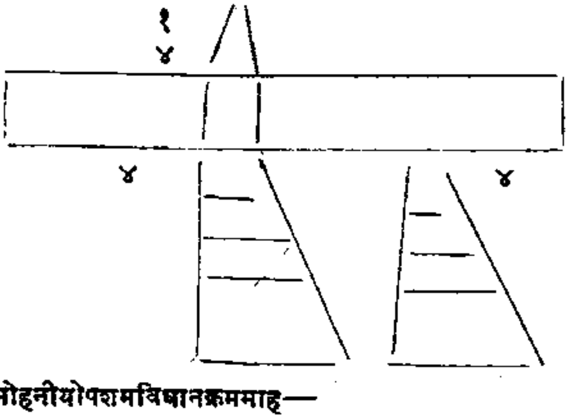

॥३४२॥ अथैकविंशतिचारित्रमोहनीयोपशमविधानक्रममाह—

नपुंसक वेद आदिका परमुख उदयके द्वारा समान समयोंमें उदयरूप एक-एक निषेक कहे क्रमानुसार संक्रमण रूप होता है। इस प्रकार स्वमुख और परमुख उदयमें विशेष जानना। जो प्रकृति अपने रूपमें ही उदयमें आती है उसमें स्वमुख उदय है। जो प्रकृति अन्यरूप हो उदयमें आवे वहाँ परमुख उदय है ॥३४२॥

आगे चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंके उपशम करनेका विधान कहते हैं—

1. ब °वगंतव्यः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षपणाविधानदोळु पेळ्दंते उपशमनविधानदोळं सत्वमक्कुं। विशेषमुंटदावुदेंदोडे संज्वलनकषायपुंवेदोपशमनमध्यदोळु मध्यमंगळप्प अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधादिकषायद्वय-द्वयंगळुपशमिसल्पडुवुवु क्रमदिदमदेंतेंदोडे पुरुषवेदोपशमनानंतरं पुंवेदनवकबंध सहितमागि मध्यमक्रोधकषायद्वयमुपशमिसल्पडुगुं। तदनंतरं संज्वलनक्रोधमुपशमिसल्पडुगुमनंतरमा संज्वलन-क्रोधनवकबंधसहितमागि मध्यममानकषायद्विकमुपशमिसल्पडुगुं। तदनंतरमा संज्वलनमान-मुपशमिसल्पडुगु। मनंतरमा मानसंज्वलन नवकबंधसहितमागि मध्यममायाकषायद्वयमुपशमि-सल्पडुगुं। तदनंतरं मायासंज्वलनकषायमुपशमिसल्पडुगुं। मनंतरं मायासंज्वलन नवकबंधसहित-मागि मध्यमलोभकषायद्वयमुपशमिसल्पडुगुं। तदनंतरं संज्वलनबादर लोभमुपशमिसल्पडुगुमें बी-विशेषमिनितेंपोसतु। मोहनीयकर्म्ममों दक्कल्लदुळिदवेळं कर्म्मंगळुपशमविधानमिल्लप्पुदरिंदं नपुंसकवेदादिगळुपशमविधानमरियल्पडुगु। संदृष्टि :—

क्षपणावदुपशमविधानेऽपि सत्त्वं स्यात्। किंतु संज्वलनकषायपुंवेदमध्ये मध्यमा अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानाः द्वौ द्वौ क्रोधादयः क्रमेणोपशांताः खलु। तद्यथा—पुंवेदोपशमनानंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यमक्रोधद्वयमुपशमयति। तदनंतरं संज्वलनक्रोधमुपशमयति। तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यममानद्वयमुपशमयति। तदनंतरं संज्वलनमानमुपशमयति। तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यममायाद्वयमुपशमयति। तदनंतरं संज्वलनमायामुपशमयति। तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यमलोभद्वयमुपशमयति। तदनंतरं संज्वलनबादरलोभमुपशमयति इति विशेषो मोहनीयस्यैव शेषकर्मणामुपशमनविधानाभावात्। नपुंसकवेदादीनामुपशमविधाने संदृष्टिः—

क्षपणाकी तरह ही उपशम विधानका भी क्रम है। किन्तु विशेष इतना है कि संज्वलन कषाय और पुरुषवेदके मध्यमें मध्यके अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दो-दो क्रोधादिका क्रमसे उपशम होता है। वही कहते हैं—

नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह और पुरुषवेदका क्रमसे उपशम होता है। पीछे पुरुषवेदका उपशम करनेके अनन्तर जो नवीन बन्ध हुआ उस सहित अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोधके युगलका उपशम करता है।

तत्काल पुरुषवेदका जो नवीन बन्ध हुआ उसके निषेक पुरुषवेदका उपशमन करनेके कालमें उपशम करने योग्य नहीं हुए थे। क्योंकि अचलावलीमें कर्मप्रकृतिको अन्यरूप परिणमाना अशक्य होता है। इससे पुरुषवेदके निषेक मध्यम क्रोधयुगलका उपशम करनेके कालमें उपशम किये जाते हैं। इसी प्रकार संज्वलन क्रोधादिके भी नवकबन्धका स्वरूप जानना। अनन्तर संज्वलन क्रोधका उपशम करता है। उसके अनन्तर उस संज्वलन क्रोधके नवीन-बन्ध सहित अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान मान युगलका उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मानका उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मानके नवीनबन्ध सहित मध्यम अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान मायायुगलका उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मायाका उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मायाके नवीनबन्ध सहित मध्यम अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभको उपशमाता है। उसके अनन्तर बादर संज्वलन लोभको उपशमाता है। यह विशेष केवल मोहनीय कर्मका ही जानना, क्योंकि मोहनीयके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

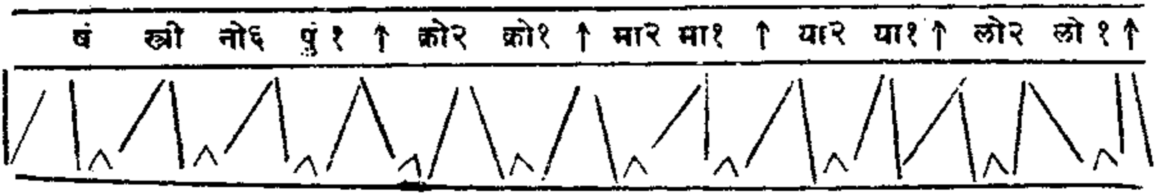

णिरयादिसु पयडिट्ठिदि-अणुभागपदेस-भेदभिण्णस्स ।
सत्तस्स य सामित्तं णेदव्वमदो जहाजोग्गं ॥३४४॥

नरकादिषु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेश भेदभिन्नस्य । सत्वस्य च स्वामित्वं नेतव्यमितो यथायोग्यं ॥

नरकगत्यादिमार्ग्गणास्थानंगळोळु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदविदं चतुर्व्विधमप्प सत्वक्कै स्वामित्वमिल्लिदं मेले यथायोग्यमागि नेतव्यमक्कुं ।

अनंतरं परिभाषयं पेळ्दपरु:—

तिरिये ण तित्थसत्तं णिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिण्णि ।
आऊणि होंति सत्ता सेसं ओघादु जाणेज्जो ॥३४५॥

तिरश्चि न तीर्त्थसत्वं नरकादिषु त्रयचतुष्क चतुस्त्रीणि । आयूंषि भवंति सत्वानि शेषमोघात् ज्ञातव्यं ॥

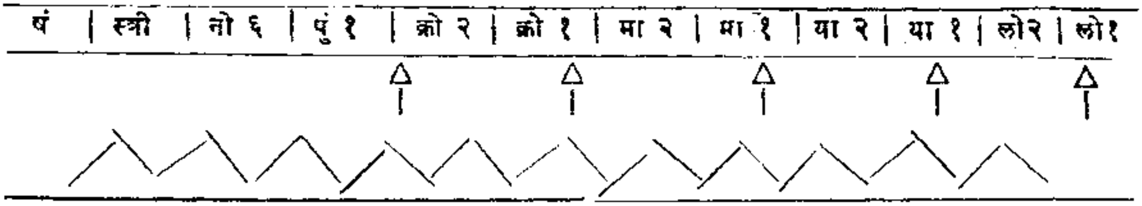

इतः परं नरकगत्यादिमार्गणासु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नस्य चतुर्विधसत्त्वस्य स्वामित्वं यथायोग्यं नेतव्यं ॥३४४॥ अथ परिभाषामाह—

सिवाय अन्य कर्मोंका उपशम नहीं होता। इस प्रकार उपशम श्रेणिमें मोहको उपशमाता है उसकी सत्ताका नाश नहीं होता। अतः अपूर्वकरणसे उपशान्त गुणस्थान पर्यन्त उपशम श्रेणिवालेके नरकायु तिर्यचायु बिना एक सौ छियालीसकी सत्ता रहती है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टी उपशम श्रेणिवालेके एक सौ अड़तीसकी सत्ता अपूर्वकरणसे उपशान्त कषाय पर्यन्त रहती है। तथा जिसके आयुबन्ध नहीं हुआ हो उस क्षायिक सम्यग्दृष्टीके असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें भी एक सौ अड़तीस ही की सत्ता होती है ॥३४३॥

यहाँसे आगे नरक गति आदि मार्गणाओंमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चार प्रकारके भेदसे भिन्न कर्मोंके सत्वको यथायोग्य घटाना चाहिए ॥३४४॥

आगे परिभाषा कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्य्यंचनोळु तीर्त्थसत्वमिल्ल। नरकगतियोळु देवायुष्यं पोरगागि भुज्यमान नरकायुष्य-सहितमागि बद्धचमानतिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यद्विकं गूडि मूरायुष्यं सत्वमक्कु ३। तिर्यंग्गतियोळु भुज्यमानतिर्य्यंगायुष्यं सहितमागि बध्यमाननरकतिर्य्यंग्मनुष्यदेवायुष्यंगळु नाल्कुं सत्वंगळक्कुं ४॥ मनुष्यगतियोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यं सहितमागि बध्यमान नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळु नाल्कुं सत्वंगळक्कुं। देवगतियोळु भुज्यमानदेवायुष्यं सहितमागि बध्यमानतिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यं-गूडि मूरायुष्यंगळु सत्वंगळक्कुं ३॥ शेषप्रकृतिसत्वं सर्व्वं गुणस्थानदत्तणिदं ज्ञातव्यमक्कुं।

अनंतरं नरकगतियोळु सत्वप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

ओघं वा णेरइए ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति।
छट्ठित्ति मणुस्साऊ तिरिए ओघं ण तित्थयरं ॥३४६॥

ओघवन्नैरयिके न सुरायुस्तीर्त्थमस्ति तृतीया पर्य्यंतं। षष्ठी पर्य्यंतं मनुष्यायुस्तिरश्च्योघो न तीर्त्थंकरं॥

नारकनोळु गुणस्थानदोळु पेळ्द देवायुर्व्वज्जितसर्व्वंकर्म्मप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेळुमक्कुं १४७। मल्लि तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतं तीर्त्थंसत्वमुंटु। चतुर्त्थादिपृथ्वीगळोळु तीर्त्थरहितमागिया नूर नाल्वत्तारुं प्रकृतिगळ्गे १४६ सत्वमक्कुं। आरनेय मघविपर्य्यंतं मनुष्यायुष्यं सत्वमुंटु। माघवियोळु मनुष्यायुर्व्वज्जित नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिगळु सत्वमक्कुं १४५॥ अल्लि घर्म्मावि मूरुं

तिर्यग्जीवे तीर्थकृत्त्वसत्त्वं न स्यात्। नरकगतौ भुज्यमाननरकायुर्बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुषी चेति त्रयमेव, न देवायुः। तिर्यग्गतौ भुज्यमानतिर्यगायुः बध्यमाननरकतिर्यग्मनुष्यदेवायूंषीति चत्वारि। मनुष्यगतौ भुज्य-मानमनुष्यायुर्बध्यमाननरकतिर्यग्मनुष्यदेवायूंषीति चतुष्कं। देवगतौ भुज्यमानदेवायुर्बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुषी इति त्रयं। शेषप्रकृतिसत्त्वं सर्वं गुणस्थानवज्ज्ञातव्यं ॥३४५॥ अथ नरकगतौ सत्त्वमाह—

नारके गुणस्थानवन्न देवायुरिति सप्तचत्वारिंशच्छतं। तत्रापि तृतीयपृथ्वीपर्यंतं तीर्थसत्त्वमस्ति न चतुर्थ्यादिष्विति षट्चत्वारिंशच्छतं। तत्रापि षष्ठपृथ्वीपर्यंतं मनुष्यायुःसत्त्वमस्ति न माघव्यामिति पंचचत्वा-

तिर्यंच जीवमें तीर्थंकर प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता। नरकगतिमें भुज्यमान नरकायु, बध्यमान तिर्यंचायु अथवा मनुष्यायु इस प्रकार तीन आयुका ही सत्त्व होता है, देवायुका नहीं। तिर्यंचगतिमें भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु इस प्रकार चारों आयुका सत्त्व होता है। मनुष्यगतिमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु, इस प्रकार चारों आयुका सत्त्व है। देवगतिमें भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यंचायु या मनुष्यायु इस प्रकार तीन आयुका सत्त्व है।

विशेषार्थ—जिस आयुको जीव भोग रहा है उसे भुज्यमान कहते हैं। और आगामी भवमें उदय आनेके योग्य जिस आयुका बन्ध होता है उसे बध्यमान कहते हैं। शेष प्रकृतियोंका सत्त्व गुणस्थानोंमें जैसा कहा है उसी प्रकार जानना ॥३४५॥

आगे नरकगतिमें सत्ता कहते हैं—

नरकगतिमें गुणस्थानवत् जानना। वहाँ देवायुका सत्त्व नहीं है, इससे सत्त्व योग्य एक सौ सैंतालीस है। तथा तीर्थंकरका सत्त्व तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है, अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्विगळोळु योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेळप्पु १४७ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळसत्वं शून्यं सत्वं नूर नाल्वत्तेळु १४७। सासादननोळ् तीर्थमुमाहारकद्विकमुसत्वमक्कु। सत्वप्रकृतिगळ् नूर नाल्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्थमोंदे असत्वमक्कुं १। सत्वगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। असंयतगुणस्थानदोळु असत्वं शून्यमक्कुं। सत्वंगळु तीर्थमुमाहारकद्वयमुं सहितमागि नूरनाल्वत्तेळु १४७। संदृष्टि :—

घम्मे वंसे मेघयोग्य १४७।

०	मि	सा	मि	अ
सत्व	१४७	१४४	१४६	१४७
अस	०	३	१	०

अंजनेयादियागि मघवि पर्यंतं मूरुं पृथ्विगळोळु योग्यसत्वप्रकृतिगळु तीर्थमुं देवायुष्यमुं पोरगागि योग्यसत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तारप्पु १४६ वल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवोळसत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तारु १४६॥ सासादनगुणस्थानदोळाहारकद्विकमसत्वमक्कुं २। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळ् आहारकद्विकं सहितमागि नूरनाल्वत्तारुं सत्वप्रकृतिगळक्कुं १४६। असंयतगुणस्थानवोळसत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तारु १४६। संदृष्टि :—

रिंशच्छतं। तत्र घर्मादित्रयसत्त्वे १४७। मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं। सत्त्वं सर्वं। सासादने तीर्थाहारद्वयं असत्त्वं। सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं। मिश्रे तीर्थमसत्त्वं सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। असंयते असत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४७।

अंजनादित्रयसत्त्वे १४६ मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४६। सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं सत्त्वं च चतुश्चत्वारिंशच्छतं। मिश्रे असत्त्वं शून्यं सत्त्वमाहारकद्वयसद्भावात् सर्वं १४६। असंयते असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४६।

चतुर्थ आदि पृथिवियोंमें सत्त्व एक सौ छियालीस है। वहाँ भी मनुष्यायुका सत्त्व छठी पृथ्वी तक है अतः सातवीं माघवी पृथ्वीमें एक सौ पैंतालीसका सत्त्व है। इस प्रकार घर्मा आदि तीन पृथिवियोंमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस है। सो मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य है अर्थात् नहीं है। सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका असत्त्व। सत्त्व एक सौ चवालीस। मिश्रमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ छियालीस। असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस।

अंजना आदि तीन पृथ्वियोंमें सत्त्व एक सौ छियालीस। मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस। सासादनमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ चवालीस। मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व आहारकद्विककी सत्ता होनेसे सब १४६। असंयतमें असत्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अं। अ। म। यो० १४६

०	मि	सा	मि	अ
सत्व	१४६	१४४	१४६	१४६
अस	०	२	०	०

माघवियोळ् मनुष्यायुष्यमुं तीर्त्थमुं देवायुष्यमुं पोरगागि नूर नाल्वत्तय्दुं योग्यसत्वप्रकृतिगळक्कु १४५ ॥ मल्लि मिथ्यादृष्टियोळसत्वं शून्यं। सत्वंगळ् नूरनाल्वत्तय्दु १४५। सासादननोळाहारकद्वयमसत्वं २। सत्वप्रकृतिगळ् नूर नाल्वत्तमूरु १४३ ॥ मिश्रगुणस्थानदोळसत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५ ॥ असंयतगुणस्थानदोळ् असत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५। संदृष्टि :—

माघवि योग्यं १४५

०	मि	सा	मि	अ
स	१४५	१४३	१४५	१४५
अ	०	२	०	०

तिरश्च्योघे न तीर्त्थकरं"-तिर्य्यग्गतियोळु तीर्त्थरहितसामान्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेळप्पु १४७ वल्लि सामान्यपंचेंद्रियपर्य्याप्त योनिमतितिर्य्यंचरुगळ्गे योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु असत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेळु

माघवीसत्त्वे १४५ मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४५। सासादने आहारकद्वयमसत्त्वं सत्त्वं त्रिचत्वारिंशच्छतं। मिश्रेऽसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४५। असंयतेऽसत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४५।

तिर्यग्गतौ ओघो, न तीर्थकरमिति सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं

शून्य, सत्त्व सब १४६। माघवीमें सत्त्व १४५। मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्व सब १४५। सासादनमें आहारकद्वयका असत्त्व, सत्त्व एक सौ तैंतालीस। मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व सब एक सौ पैंतालीस। असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ पैंतालीस।

घर्मादि १४७

	मि.	सा.	मि.	अ.
सत्त्व	१४७	१४४	१४६	१४७
असत्त्व	०	२	१	०

अंजनादि १४६

मि.	सा.	मि.	अ.
१४६	१४४	१४६	१४६
०	२	०	०

माघवी १४५

मि.	सा.	मि.	अ.
१४५	१४३	१४५	१४५
०	२	०	०

तिर्यंचगतिमें तीर्थंकरके न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४७। सासादननोळ् आहारकद्विकमसत्वं २। सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तय्दु १४५ ॥ मिश्र-गुणस्थानदोळसत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तेळु १४७। असंयतगुणस्थानदोळ् नरका-युष्यमुं मनुष्यायुष्यमुं सत्वव्युच्छित्तियक्कुमेकेंदोडे आ प्रकृतिद्वयसत्वमुळ्ळनोळणुव्रतं घटि इस-वप्पुदरिदं। देशसंयतनोळा प्रकृतिद्वयक्के सत्वमिल्लप्पुदरिदं असत्वं शून्यं। सत्वंगळ् नूर नाल्वत्तेळु १४७। देशसंयतनोळ् व्युच्छित्तिद्वयमसत्वमक्कुं २। सत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तय्दु १४५। संदृष्टि :—

सा। सं। प। योनि योग्य १४७

०	मि	सा	मि	अ	दे
व्यु	०	०	०	२	१[1]
उ	१४७	१४५	१४७	१४७	१४५
अ	०	२	०	०	२

एवं पंचतिरिक्खे पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाऊ।
ओघं मणुसतिएसुवि अपुण्णगे पुण अपुण्णेव ॥३४७॥

एवं पंचतिर्यक्षु पूर्णेतरस्मिन्नस्तः नरकदेवायुषी ओघो मनुष्यत्रयेऽप्यपूर्णके पुनरपूर्णक इव ॥

एवं पंच तिर्यक्षु ई सामान्यतिर्यंचंगे पेळदंते सामान्यपंचेंद्रियपर्याप्तक योनिमतिअपर्याप्त-करेंब पंचप्रकार तिर्य्यंचरुगळनितर्गमक्कुमल्लि लब्ध्यपर्य्याप्तकतिर्य्यंचर्गे नरकायुष्यमुं देवायु-ष्यमुं तिर्य्यग्गतियोळु सत्वविरुद्धमप्प तीर्त्थमुमितु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूर नाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४५। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमों देयक्कुं १ मेकेंदोडे 'णहिसासणो अपुण्णे यें ब

१४७। सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। मिश्रे असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४७। असंयते नारकमनुष्यायुषो व्युच्छित्तिः, तत्सत्त्वेऽणुव्रताघटनात्। असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। देशसंयते तद्द्वयमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं ॥३४६॥

एवं तिर्यग्वत्सामान्यपंचेंद्रियपर्याप्तयोनिमदपर्याप्तपंचविधतिर्यक्ष्वपि भवति। तत्र लब्ध्यपर्याप्ते तु नरक-देवायुषी अपि नेति सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिरेव। कुतः ? 'णहि सासणो अपुण्णे' इति

सौ पैंतालीस। मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस। असंयतमें नरकायु और मनुष्यायुकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि उनके सत्त्वमें अणुव्रत नहीं होते। असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस। देशसंयतमें नरकायु मनुष्यायुका असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैंतालीस ॥३४६॥

इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, योनिमत् तिर्यंच और अपर्याप्ततिर्यंचोंमें जानना। इतना विशेष है कि लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचमें नरकायु

१. भुज्यमानतिर्य्यगायुर्व्विच्छित्तिः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियममुंटप्पुदरिंदं। मनुष्यत्रयेष्वप्योघः मनुष्यगतियोळु सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तकमनुष्य, योनिमतिमनुष्यरेंब मूरुं तेरद मनुष्यरोळु, योनिमतिमनुष्यरोळु क्षपकग्गें विशेषमुंटप्पुदरिंदमा जीवंगळं बिट्टु सामान्यमनुष्यरुगळगं पर्य्याप्तमनुष्यरुगळगं योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टप्पु १४८ वल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु नानाजीवापेक्षेयिदं नूरनाल्वत्तें टु प्रकृतिसत्वमक्कु १४८। सासादन गुणस्थानदोळु तीर्त्थमुमाहारद्विकं पोरगागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कु १४५॥ मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्त्थं पोरगागि नूर नाल्वत्तेळु प्रकृतिसत्वमक्कु १४७। असंयतगुणस्थानदोळु नूरनाल्वत्तें टु प्रकृतिसत्वमक्कु १४८। देशसंयतनोळु नरकायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुं बद्ध्यमानमनुष्यायुष्यमुं पोरगागि नूर नाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कु १४६। प्रमत्तसंयतनोळमंते नूरनाल्वत्तारुं प्रकृतिसत्वमक्कुं १४६। अप्रमत्तसंयतनोळमंते नूर नाल्वत्तारुं प्रकृतिसत्वमक्कुं १४६। क्षपकश्रेण्यपूर्व्वकरणनोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यं पोरगागि शेषमूरायुष्यंगळुं सप्तप्रकृतिगळुं कूडि पत्तुं प्रकृतिगळ्वर्ज्जितमागि नूर मूवत्तें टुं प्रकृतिसत्वमक्कुं–१३८। मुपशमश्रेण्यपेक्षेयिदं नरकतिर्यगायुर्द्वयरहितं नूरनाल्वत्तारुं १४६ क्षायिकसम्यक्त्वमं कुरुत्तु नूर मूवत्तें टुं प्रकृतिसत्वमक्कु १३८। उपशमकश्रेणियोळु क्षपकश्रेणियोळं दर्शनमोहक्षपणेयिल्लप्पुदरिंदं। श्रेणियिदं केळगण अबद्धायुष्यरप्प मनुष्यासंयतदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोळु नूर मूवत्तें टुं प्रकृतिसत्वरोळरेकें दोडा नाल्कुं गुणस्थानदोळेल्लियादोडं दर्शनमोहक्षपणेयक्कुमप्पुदरिंदं। अपूर्व्वकरणगुणस्थानदिंदं मेलण गुणस्थानवनियनिवृत्तिकरणनोळमंते क्षपकश्रेण्यपेक्षेयल्लदुपशमश्रेण्यपेक्षेयिदं नूरनाल्वत्तारु १४६ नूर

नियमात्। मनुष्यगतौ सामान्यपर्याप्तकयोनिमत्त्रिविधमनुष्येष्वोघः किंतु योनिमत्क्षपकेष्वेव विशेषः, तेन शेषद्वये सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ नानाजीवापेक्षया सत्त्वं सर्वं। सासादने तीर्थाहारा नेति पंचचत्वारिंशच्छतं। मिश्रे तीर्थं नेति सप्तचत्वारिंशच्छतं। असंयते सर्वं। देशसंयते प्रमत्ताप्रमत्तयोश्च न नरकतिर्यगायुषी बध्यमानदेवायुर्भुज्यमानमनुष्यायुश्चेति षट्चत्वारिंशच्छतं। क्षपकापूर्वकरणे भुज्यमानमनुष्यायुरस्तीति शेषायुस्त्रयसप्तप्रकृत्यभावादष्टत्रिंशच्छतं। उपशमश्रेण्यपेक्षया नरकतिर्यगायुरभावात् षट्चत्वारिंशच्छतं। क्षायिकसम्यक्त्वं प्रत्यष्टत्रिंशच्छतं। अबद्धायुर्मनुष्यासंयतादिचतुर्ष्वपि तत्प्रत्यष्टत्रिंशच्छतं। अनिवृत्तिकरणे उपशमश्रे-

---

और देवायुके भी न होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस। और गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही होता है, क्योंकि 'ण हि सासणो अपुण्णे' इस नियमके होनेसे उसमें सासादन गुणस्थान नहीं होता।

मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य, पर्याप्तक मनुष्य और योनिमत् मनुष्योंमें गुणस्थानवत् जानना। किन्तु योनिमत् मनुष्योंमें क्षपक श्रेणीमें ही विशेष है। शेष दोनोंमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। उनमें मिथ्यादृष्टिमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंका सत्त्व है। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विक न होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस। मिश्रमें तीर्थंकरके न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस। असंयतमें सबका सत्त्व है। देशसंयत और प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें नरकायु तिर्यंचायुका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। वहाँ बध्यमान देवायु और भुज्यमान मनुष्यायुका ही सत्त्व होता है।

क्षपक अपूर्वकरणमें केवल भुज्यमान मनुष्यायुका ही सत्त्व होनेसे शेष तीन आयु और क्षायिक सम्यक्त्व होनेसे मोहनीयकी सात प्रकृतियोंके न होनेसे सत्त्व एक सौ अड़तीस। उपशम श्रेणिकी अपेक्षा नरकायु तिर्यंचायुका असत्त्व होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूवत्तें टु १३८ प्रकृतिसत्वमक्कुं । क्षपकश्रेण्यपेक्षेयिदं प्रथमभागदोळु नूर मूवत्तें टु प्रकृतिसत्वमक्कुं १३८। द्वितीयभागदोळ् नूरिप्पत्तेरडु प्रकृतिसत्वमक्कु १२२। मेकें दोडे आ प्रथमभागचरमसमयदोळु षोडश प्रकृतिगळु क्षपिसल्पट्टुवप्पुदरिदं । तृतीयभागदोळमंते मध्यमाष्टकषायरहितमागि नूर पदिनाल्कु प्रकृतिसत्वमक्कुं ११४। चतुर्थभागदोळु षंढवेदरहितमागि नूर पदिमूरु प्रकृतिसत्वमक्कुं ११३। पंचमभागदोळु स्त्रीवेदरहितमागि नूर हन्नेरडु प्रकृतिसत्वमक्कुं ११२। षष्ठभागदोळु षण्णोकषायवर्जितं नूरारुं प्रकृतिसत्वमक्कुं १०६। सप्तमभागदोळु पुंवेदरहितमागि नूरय्दु प्रकृतिसत्वमक्कुं १०५॥ अष्टमभागदोळ् संज्वलनक्रोधवर्ज्जितचतुरुत्तरशतप्रकृतिसत्वमक्कुं १०४॥ नवमभागदोळु संज्वलनमानरहितत्र्यधिकशतप्रकृतिसत्वमक्कुं १०३। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु संज्वलनमायारहितमागि नूरेरडु प्रकृतिसत्वमक्कु १०२। मुपशमश्रेण्यपेक्षेयिदं नूर नाल्वत्तारु १४६ नूरमूवत्तें टु १३८ प्रकृतिसत्वमक्कु। मुपशांतकषायगुणस्थानदोळु नूर नाल्वत्तारुं १४६ नूर मूवत्तें टु १३८ प्रकृतिसत्वमक्कुं। क्षीणकषायनोळु संज्वलनलोभरहितमागि नूरोंदु प्रकृतिसत्वमक्कुं १०१। सयोगिकेवलियोळु निद्राप्रचलादि षोडशप्रकृतिरहितमागि

ण्यपेक्षया षट्चत्वारिंशच्छतं अष्टत्रिंशच्छतं च क्षपकश्रेण्यपेक्षया प्रथमभागे अष्टत्रिंशच्छतं द्वितीयभागे द्वाविंशतिशतं षोडशानां तत्प्रथमभागचरमसमये एव क्षपणात् । तृतीयभागे मध्यमाष्टकषायाभावाच्चतुर्दशशतं । चतुर्थभागे षंढवेदाभावात्त्रयोदशशतं । पंचमभागे स्त्रीवेदाभावाद् द्वादशशतं । षष्टमभागे षण्णोकषायाभावात् षडुत्तरशतं । सप्तमभागे पुंवेदाभावात्पंचोत्तरशतं । अष्टमभागे संज्वलनक्रोधाभावाच्चतुरुत्तरशतं । नवमभागे संज्वलनमानाभावात्त्र्युत्तरशतं । सूक्ष्मसांपराये संज्वलनमायाऽभावात् द्व्युत्तरशतं । उपशमश्रेण्यपेक्षया षट्चत्वारिंशच्छतं अष्टचत्वारिंशच्छतं च । उपशांतकषाये द्वाचत्वारिंशच्छतं, अष्टत्रिंशच्छतं च । क्षीणकषाये संज्वलनलोभाभावादेकोत्तरशतं । सयोगे निद्राप्रचलादिषोडशाभावात् पंचाशीतिः । अयोगे द्विचरमसम-

---

क्षायिक सम्यग्दृष्टीके एक सौ अड़तीस । जिस मनुष्यने परभवकी आयु नहीं बाँधी है और क्षायिक सम्यग्दृष्टी है उसके असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें भी एक सौ अड़तीसका सत्त्व होता है। अनिवृत्तिकरणमें उपशम श्रेणिकी अपेक्षा सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस। क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा प्रथम भागमें एक सौ अड़तीस। और इस प्रथम भागके अन्तिम समयमें सोलह प्रकृतियोंका क्षय होनेसे दूसरे भागमें सत्त्व एक सौ बाईस। और इस दूसरे भागके अन्तिम समयमें मध्यकी आठ कषायोंका क्षय होनेसे तीसरे भागमें सत्त्व एक सौ चौदह। इसी प्रकार चतुर्थ भागमें नपुंसक वेदका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ तेरह। स्त्रीवेदका अभाव होनेसे पंचम भागमें सत्त्व एक सौ बारह। छह नोकषायोंका अभाव होनेसे छठे भागमें सत्त्व एक सौ छह। पुरुषवेदका अभाव होनेसे सातवें भागमें एक सौ पाँच। संज्वलन क्रोधका अभाव होनेसे आठवें भागमें एक सौ चार। संज्वलन मानका अभाव होनेसे नवम भागमें एक सौ तीन।

सूक्ष्म साम्परायमें संज्वलन मायाका अभाव होनेसे एक सौ दो। उपशमश्रेणिकी अपेक्षा सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस। उपशान्त कषायमें एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस। क्षीण कषायमें संज्वलन लोभका अभाव होनेसे एक सौ एक।

---

१. ब षट्चत्वा° । २. ब सयोगे अयोगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

येण्भत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कुं ८५। अयोगिकेवलिद्विचरमसमयदोळु तावन्मात्रमे येण्भत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कुं ८५। चरम समयदोळु एप्पत्तेरडु प्रकृतिरहितमागि पदिमूरु प्रकृतिसत्वमक्कुं १३। संदृष्टि—मनुष्यसामान्यपर्य्याप्तकयोग्य सत्वप्रकृतिगळु १४८।

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ
व्यु	०	०	०	२	०	०	८	०
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४६	१४६	१४६	१३८
अ	०	३	१	०	२	२	२	१०

		अनि	१६	८	१	१	६	१	१	१
उ १४६	१३८	उ १३८।१४६	क्ष १३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४
२	१०		१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४

१	सू=	१	उ	क्षी	सयोग	अयो ७२	अयो १३	सिद्ध ०
१०३	उ १३८।१४६	क्ष १०२	१३८।१४६	१०१	८५	८५	१३	०
४५	१० २	४६	१०।२	४७	६३	६३	१३५	१४८

योनिमतिमनुष्यनोळु विशेषमाउदेंदोडे क्षपकश्रेणियोळु तीर्त्थसत्वमिल्ला। तीर्त्थंकरसत्वप्रमत्तनोळु सत्वव्युच्छित्तियक्कुं। अपूर्व्वकरणनोळु सत्वप्रकृतिगळु नूरमूवत्तेळु १३७। असत्वं पत्तु १०। अनिवृत्तिकरणनोळु प्रथमभागदोळं सत्वंगळु १३७। असत्वंगळु १०॥ द्वितीयभागदोळु षोडश प्रकृतिगळुगूडियसत्वंगळु इप्पत्तारु २६। सत्वंगळु नूरिप्पत्तोंदु १२१।

यांतं च निद्राप्रचलादिषोडशाभावात्पंचाशीतिः। चरमसमये द्वासप्तत्यभावात्त्रयोदश।

योनिमन्मनुष्ये तु क्षपकश्रेण्यां न तीर्थं, तीर्थसत्ववतोऽप्रमत्तादुपरि स्त्रीवेदित्वासंभवात्। अपूर्वकरणे सत्वं सप्तत्रिंशच्छतं। असत्वं दश। अनिवृत्तिकरणे प्रथमभागे सत्वं सप्तत्रिंशच्छतं। असत्वं दश। द्वितीयभागे

सयोगकेवलीमें निद्रा प्रचला आदि सोलहका अभाव होनेसे पचासी। अयोग केवलीके द्विचरम समयमें निद्रा प्रचलादिके न होनेसे पिचासी। अन्तिम समयमें बहत्तरके न होनेसे सत्त्व तेरह।

योनिमत् मनुष्यमें क्षपक श्रेणिमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि जिनके तीर्थंकर सत्ता होती है उनके अप्रमत्त गुणस्थानसे ऊपर स्त्रीवेदपना नहीं होता। अतः अपूर्वकरणमें

---

१. भावस्त्री येंबुदरर्थं यिल्लि तात्पर्यमेनेंदोडे तित्थयरो दव्वभावपुंवेदी एंबी वचनदिं चरमभवतीर्त्थंकरं भावदोळं स्त्रीयल्लनप्पुदरिं क्षपकश्रेणियोळु भावस्त्रीगे तीर्त्थकरसत्वमिल्लें बुदु युक्तमितागुत्तिरला भावस्त्रीयप्प अप्रमत्तनोळु तीर्त्थकरसत्वव्युच्छित्तियें तु घटियिसुगुमें दोडे तृतीयजन्मदोळु तीर्त्थंकर नामकर्म माळ्पजीवं द्रव्यदोळु पुंवेदियें भावदोळु पुंवेदियं स्त्रीवेदियुमप्पनप्पुदरिंदें दरिवुदु॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयभागदोळु अष्ट प्रकृतिगळुगूडियसत्वंगळु मूवत्त नाल्कु ३४। सत्वंगळु नूर हदिमूरु ११३। चतुर्थभागदोळु ओंदु गूडियसत्वंगळु मूवत्तय्दु ३५। सत्वप्रकृतिगळु नूर हन्नेरडु ११२। पंचमभागदोळोंदुगूडियसत्वंगळु मूवत्तारु ३६ सत्वंगळु नूर हन्नोंदु १११। षष्ठ भागदोळु आरुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। सत्वंगळु नूरय्दु १०५। सप्तमभागदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तमूरु ४३। सत्वंगळु नूरनाल्कु १०४। अष्टमभागदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तनाल्कु ४४। सत्वप्रकृतिगळु नूर मूरु १०३। नवमभागदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तय्दु ४५। सत्वप्रकृतिगळु नूरेरडु १०२। सूक्ष्मसांपरायनोळु लोभव्युच्छित्तियक्कुं। असत्वंगळु संज्वलनमायेगूडि नाल्वत्तारु ४६। सत्वंगळु नूरोंदु १०१। क्षीणकषायनोळु लोभगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेळु ४७। सत्वंगळु नूरु १००। सयोगकेवलियोळु हदिनारुगूडियसत्वंगळ अरुवत्तमूरु ६३। सत्वंगळु येंभत्तनाल्कु ८४। अयोगिकेवलिय द्विचरमसमयदोळु असत्वंगळरुवत्त मूरु ६३। सत्वंगळेंभत्तनाल्कु ८४। चरमसमयदोळसत्वंगळु येप्पत्तेरडुगूडि नूर मूवत्तय्दु १३५। सत्वंगळु पन्नेरडु १२। संदृष्टि :—

षोडश संयोज्यासत्त्वं षड्विंशतिः। सत्त्वमेकविंशतिशतं। तृतीयभागे अष्ट संयोज्याऽसत्त्वं चतुस्त्रिंशत् सत्त्वं त्रयोदशशतं। चतुर्थभागे एकं संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशत् सत्त्वं द्वादशशतं। पंचमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं षट्त्रिंशत् सत्त्वमेकादशशतं। षष्ठभागे षट् संयोज्यासत्त्वं द्वाचत्वारिंशत् सत्त्वं पंचोत्तरशतं। सप्तमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं त्रिचत्वारिंशत्, सत्त्वं चतुरुत्तरशतं। अष्टमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं चतुश्चत्वारिंशत्, सत्त्वं त्र्युत्तरशतं। नवमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं पंचचत्वारिंशत्, सत्त्वं द्व्युत्तरशतं। सूक्ष्मसांपराये लोभव्युच्छित्तिः, असत्त्वं संज्वलनमायां संयोज्य षट्चत्वारिंशत्, सत्त्वमेकोत्तरशतं। क्षीणकषाये लोभं संयोज्यासत्त्वं सप्तचत्वारिंशत्, सत्त्वं शतं। सयोगे षोडश संयोज्यासत्त्वं त्रिषष्टिः, सत्त्वं चतुरशीतिः। अयोगे द्विचरमसमये असत्त्वं त्रिषष्टिः, सत्त्वं चतुरशीतिः। चरमसमयेऽसत्त्वं द्वासप्तति संयोज्य पंचत्रिंशदुत्तरशतं, सत्त्वं द्वादश।

सत्त्व एक सौ सैंतीस, असत्त्व दस। अनिवृत्तिकरणमें प्रथम भागमें सत्त्व एक सौ सैंतीस। असत्त्व दस। दूसरे भागमें सोलह मिलाकर असत्त्व छब्बीस, सत्त्व एक सौ इक्कीस। तीसरे भागमें आठ मिलाकर असत्त्व चौंतीस, सत्त्व एक सौ तेरह। चतुर्थ भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतीस, सत्त्व एक सौ बारह। पंचम भागमें एक मिलाकर असत्त्व छत्तीस, सत्त्व एक सौ ग्यारह। छठे भागमें छह मिलाकर असत्त्व बयालीस, सत्त्व एक सौ पाँच। सप्तम भागमें एक मिलाकर असत्त्व तैंतालीस, सत्त्व एक सौ चार। अष्टम भागमें एक मिलाकर असत्त्व चवालीस, सत्त्व एक सौ तीन। नवम भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतालीस, सत्त्व एक सौ दो। सूक्ष्म साम्परायमें लोभकी व्युच्छित्ति होती है। तथा संज्वलन मायाको मिलाकर असत्त्व छियालीस, सत्त्व एक सौ एक। क्षीण कषायमें लोभ मिलाकर असत्त्व सैंतालीस, सत्त्व सौ। सयोगीमें सोलह मिलाकर असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व चौरासी। अयोगीके द्विचरम समयमें असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व चौरासी। अन्तिम समयमें बहत्तर मिलाकर असत्त्व एक सौ पैंतीस, सत्त्व बारह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योनिमति क्षपकयोग्य प्रकृतिगळु १३७।

*	अपू	अ									सू	क्षी	सयो	अयोगिकेवलि	
व्यु	०	१६	८	१	१	६	१	१	१	१	१	१६	०	७२	१२
स	१३७	१३७	१२१	११३	११२	१११	१०५	१०४	१०३	१०२	१०१	१००	८४	८४	१२
अ	१०	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५	४६	४७	६३	६३	१३५

अपुण्णगे पुण अपुण्णेव मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तनोळु तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तंगे पेळ्दंते तीर्त्थमुं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुमक्कुं। मि १४५॥

अनंतरं देवगतियोळु पेळ्दपरु :—

५ लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्ये पुनस्तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तकवत्तीर्थनरकदेवायूंषि नेति सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिरेव ॥३४७॥ अथ देवगतावाह—

मनुष्य १४८ सत्त्व

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.		
व्यु.	०	०	०	०	१	०	८		१६	८	१	१
स.	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३
प्र.	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५

						सू.	उ.	उ.	क्षी.	स.	अ.	अ.
व्यु.	६	१	१	१	१	१			१६		७२	१३
स.	११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५	८५	१३
प्र.	३६	४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३	३३	१३५

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यमें तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तककी तरह तीर्थंकर नरकायु और देवायुका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही होता है ॥३४७॥

देवगतिमें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघं देवे ण हि णिरयाऊ सारोत्ति होदि तिरियाऊ ।
भवणतियकप्पवासियइत्थीसु ण तित्थयरसत्तं ॥३४८॥

ओघो देवे न हि नरकायुः सहस्रारपर्यंतं भवति तिर्यगायुः । भवनत्रयकल्पवासिस्त्रीषु न तीर्थंकर सत्वं ॥

देवगतियोळु सौधर्म्मादिसहस्रारकल्पपर्य्यंतं द्वादश कल्पंगळोळु योग्यसत्वप्रकृतिगळु नरकायुर्व्वर्जितमागि सामान्यसत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तेळुं योग्यंगळप्पुवु १४७। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थमसत्वमक्कुमेकेंदोडे 'किण्हदुग सुह तिलेस्सिय वामे वि ण तित्थयरसत्तमें'ब नियममुंटप्पुदरिंदं सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। असत्व १। सासादननोळु तीर्त्थंकरवुमाहारकद्विकमुमसत्वमक्कुं ३। सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्त्थमसत्वमक्कुं १। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। असंयतगुणस्थानदोळु नूर नाल्वत्तेळु सत्वमक्कुं १४७। मसत्वं शून्यं। संदृष्टि :—

सौधर्म्मादिकल्प योग्य १४७।

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४६	१४४	१४६	१४७
अ	१	३	१	०

आनतादि चतुःकल्पंगळोळं नवग्रैवेयकंगळोळं नरकतिर्य्यगायुर्द्वयरहितमागि सत्वयोग्यंगळु नूर नाल्वत्तारु प्रकृतिगळप्पु १४६। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थमसत्वमक्कुं १। सत्वंगळु नूर

देवगतौ ओघः किंतु नरकायुर्नहि पुनः सहस्रारपर्यंतमेव तिर्यगायुरस्ति न तत उपरि, तेन सौधर्मादिसहस्रारपर्यंतं द्वादशकल्पेषु सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ तीर्थं न 'किण्हदुगसुहतिलेस्सय वामेवि ण तित्थयरसत्त' मिति नियमात् सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं, असत्त्वमेकं। सासादने तीर्थाहारा असत्त्वं। सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं। मिश्रे तीर्थमसत्त्वं सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। असंयते सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं, असत्त्वं शून्यं।

आनतादिचतुःकल्पेषु नवग्रैवेयकेषु च नरकतिर्यगायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टा-

देवगतिमें नरकायुका सत्त्व नहीं है तथा सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त ही तिर्यंचायुका सत्त्व रहता है। अतः सौधर्मसे लेकर सहस्रार पर्यन्त बारह स्वर्गोंमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि ऐसा नियम है कि कृष्ण, नील तथा तीन शुभलेश्यामें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता। अतः सत्त्व एक सौ छियालीस। असत्त्व एक। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ चवालीस। मिश्रमें तीर्थंकरका असत्त्व. सत्त्व एक सौ छियालीस। असंयतमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस असत्त्व शून्य।

आनत आदि चार स्वर्गोंमें और नौ ग्रैवेयकोंमें नरकायु तिर्यंचायुका सत्त्व न होनेसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाल्वत्तय्दु १४५। सासादनगुणस्थानदोळु तीर्त्थंकरमाहारकद्विकमुमसत्वंगळप्पुवु ३। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तमूर १४३। मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्त्थमसत्वमक्कु १। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५। असंयतगुणस्थानदोळसत्वं शून्यमक्कुं। ०। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। संदृष्टि :—

आनतादि १३ योग्य १४६।

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४५	१४३	१४५	१४६
अ	१	३	१	०

अनुदिशानुत्तर चतुर्द्दशविमानंगळ सम्यग्दृष्टिगळोळु नरकतिर्य्यगायुर्द्वयमं कळेदु सत्वयोग्यंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। भवनत्रयदोळं कल्पजस्त्रीयरोळं तीर्त्थंकरत्वमुं नरकायुष्यमुं रहितमागि योग्यसत्वंगळु नूर नाल्वत्तारप्पुवु १४६। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। असत्वंगळु शून्यं। सासादनगुणस्थानदोळाहारकद्विकमसत्वमक्कुं २। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळु असत्वं शून्यं। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६॥ असंयतगुणस्थानदोळसत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तारु १४६॥ संदृष्टि।

भवनत्रय कल्पज स्त्री यो० १४६।

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४६	१४४	१४६	१४६
अ	०	२	०	०

असत्त्वं तीर्थं, सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। सासादने असत्त्वं तीर्थाहाराः सत्त्वं त्रिचत्वारिंशच्छतं। मिश्रे तीर्थमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। असंयते असत्त्वं शून्यं, सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं।

नवानुदिशपंचानुत्तरविमानसम्यग्दृष्टिषु नरकतिर्यगायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। भवनत्रयदेवेषु कल्पस्त्रीषु च तीर्थनरकायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं तदेव, असत्त्वं शून्यं। सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं, सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं। मिश्रासंयतयोरसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं

सत्त्व एक सौ छियालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैंतालीस। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ तैंतालीस। मिश्रमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैंतालीस। असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस।

नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासीदेव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। उनके नरकायु तिर्यंचायुका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। भवनत्रिक देवोंमें और कल्पवासी देवांगनाओंमें तीर्थंकर और नरकायु न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरमिंद्रियमार्ग्गणेयोळं कायमार्ग्गणेयोळं प्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

ओघं पंचक्खतसे सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा ।
तेउदुगे ण णराऊ सव्वत्थुव्वेल्लणा वि हवे ॥३४९॥

ओघं पंचाक्षत्रसे शेषेंद्रियकायिके अपूर्णवत् । तेजोद्विके न नरायुः सर्व्वत्रोद्वेल्लनापि भवेत् ॥

यिंद्रियमार्ग्गणेयोळं कायमार्ग्गणेयोळं यथासंख्यमागि पंचाक्षदोळं त्रसकायिकदोळं ओघः सामान्यगुणस्थानदोळ् पेळ्दक्रममक्कुमदु कारणदिदं योग्यसत्वप्रकृतिगळ् नूर नाल्वत्तेंटमप्पुवु १४८ । अल्लि मिथ्यादृष्टयादिचतुर्द्दशगुणस्थानंगळप्पुवु ॥ संदृष्टि :—

व्यु	मि.	सा.	मि.	अ १	दे १	प्र ०	अ८	अ०	अ १६	८	१	१	६
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२ →
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५	३६

१	१	१	१	सू १	उ०	०	क्षी १६	स०	अ ७२	१३
← १०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५	८१	१३
४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३	६३	१३५

॥३४८॥ अथेंद्रियमार्गणायामाह—

इंद्रियकायमार्गणयोः पंचाक्षे त्रसे च ओघः इति सत्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानि चतुर्दश । तद्रचना सामान्योक्तैव ज्ञातव्या । संदृष्टि:—

पंचेंद्रियत्रसकायिकयोर्योग्याः सत्त्वप्रकृतयः १४८ ।

व्यु	मि.	सा.	मि.	अ.	दे१	प्र.	अ८	अ.	अ१६	अ८	१	१
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३ →
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५

६	१	१	१	१	सू१	उ	०	क्षी१६	स.	[illegible]	१३
← ११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५	८१	१३
३६	४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३	६३	१३५

सत्त्व एक सौ छियालीस, असत्त्व शून्य । सासादनमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ चवालीस । मिश्र और असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस ॥३४८॥

सौधर्मादि द्वादशमें १४७

	मि.	सा.	मि.	अ.
सत्त्व	१४६	१४५	१४६	१४७
असत्त्व	१	३	१	०

आनतादि नवग्रैवेयक १४६

मि.	सा.	मि.	अ.
१४५	१४३	१४५	१४६
१	३	१	०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषेंद्रियकायिके अपूर्णवत् एकेंद्रियविकलत्रयपृथ्विकायिक अप्कायिक वनस्पतिकायिकंगळोळु लब्ध्यपर्य्याप्तकंगे पेळदंते तीर्त्थंकरत्वमुं नारकायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमागि योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तय्दप्पु १४५ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तय्दु १४५। असत्वं शून्यं॥ सासादननोळाहारकद्वयमसत्वमक्कुं २। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तमूरु। १४३॥ संदृष्टि :—

ए। वि ३। पु। अ। व। योग्य १४५।

०	मि	सा
स	१४५	१४३
अ	०	२

तेजोद्विके न नरायुः तेजस्कायिकंगळोळु वायुकायिकंगळोळं मनुष्यायुष्यं सत्वमिल्लदु कारणमगि योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तनाल्कप्पु १४४ वल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमों दयक्कुमेके दोडे–ण हि सासणो अपुण्णे साहारण सुहुमगे य तेउदुगे येंबो नियममुंटप्पुदरिंदं। सर्व्वत्रोद्वेल्लनापि भवेत् यिंद्रियमार्ग्गणेयोळं कायमार्ग्गणेयोळं सर्व्वत्र परप्रकृतिस्वरूपपरिणमनलक्षणमुद्वेल्लनमुमरियल्पडुगु। मुद्वेल्लनमें बुदेनें दोडे नेणुतुदियिदं हुरि बिच्चिव नेण्केडुवंते पदिमूरुं

शेषैकद्वित्रिचतुरिंद्रियपृथ्व्यब्वनस्पतिकायिकेषु लब्ध्यपर्याप्तवत्तीर्थनरकदेवायुरभावात् सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं, असत्त्वं शून्यं। सासादने आहारकद्वयमसत्त्वं, सत्त्वं त्रिचत्वारिंशच्छतं।

तेजोद्विके मनुष्यायुरपि नेति सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमेकमेव। 'णहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे' इति नियमात्। सर्वत्र इंद्रियमार्गणायां कायमार्गणायां चोद्वेल्लनापि

इन्द्रिय मार्गणामें कहते हैं—

इन्द्रिय और कायमार्गणामें पंचेन्द्रिय और त्रसकायमें गुणस्थानवत् सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान चौदह। उनमें सब रचना गुणस्थानोंकी तरह ही जानना। शेष एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पृथ्वी अप् वनस्पतिकायिकोंमें लब्ध्यपर्याप्तककी तरह तीर्थंकर नरकायु और देवायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ पैंतालीस, असत्त्व शून्य। सासादनमें आहारकद्वयका असत्त्व, सत्त्व एक सौ तैंतालीस।

तेजकाय वायुकायमें मनुष्यायु भी नहीं होती अतः सत्त्व एक सौ चवालीस। उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है क्योंकि ऐसा नियम है कि लब्ध्यपर्याप्तक, साधारण-वनस्पति, सूक्ष्मकाय, तेजकाय वायुकायमें सासादन गुणस्थान नहीं होता। तथा सर्वत्र इन्द्रिय मार्गणा और कायमार्गणामें उद्वेलना भी होती है। जैसे रस्सीको बलपूर्वक उधेड़नेसे उसका रस्सीपना नष्ट हो जाता है उसी प्रकार जिन प्रकृतियोंका बन्ध किया था उनको उद्वेलन भाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिगळु संक्लिष्टजीवंगळिंदमुद्वेल्लन भागहारदिंदमपकर्षिसिकोंडु परप्रकृतिस्वरूपमप्पंतु माडि कडिसल्पडुगुमदनुद्वेल्लनमेंबुदु । आ उद्वेल्लनप्रकृतिगळावुवें दोडे पेळ्दपरु :—

हारदु सम्मं मिस्सं सुरदुग णारयचउक्कमणुकमसो ।
उच्चागोदं मणुदुगमुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं ॥३५०॥

मुंदे विस्तरमागियुद्वेल्लनविधानं पेळल्पडुगुमीसत्व प्रकरणदोळु प्रसंगायातमप्पुदरिंदमाहारकद्विकमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं सुरद्विकमुं नारकचतुष्कमुं उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यद्विकमुमेंब पदिमूरुं प्रकृतिगळुक्तक्रमदिंदं जीवंगळिंदमुद्वेल्लनविधानदिंदं कडिसल्पडुवुवावाव जीवंगळावाव प्रकृतिगळुद्वेल्लनमं माळ्पुवें दोडे पेळ्दपरु :—

चदुगदिमिच्छे चउरो इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे ।
सिय अत्थि णत्थि सत्तं सपदे उप्पण्णठाणेवि ॥३५१॥

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ चतस्रः एकविकले षडपि तिस्रस्तेजोद्विके स्यादस्ति नास्ति सत्त्वं स्वपदे उत्पन्नस्थानेपि ॥

चतुर्गतिय मिथ्यादृष्टियोळु नाल्कु । एकेंद्रियविकलत्रयंगळोळारु । तेजोद्विकदोळु मूरुं प्रकृतिगळु । स्वस्थानदोळमुत्पन्नस्थानदोळं स्यात्सत्वंगळुं स्यादसत्वंगळुमप्पुवदें तें दोडे तीर्थंकरत्वमुं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं सत्वमिल्लद चतुर्गतिय संक्लिष्टमिथ्यादृष्टि जीवनाहारकद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु नूरनाल्वत्तमूरु प्रकृतिगळु सत्वमक्कु–१४३ । मवरोळु

भवेत् बल्वजरज्जुभावविनाशवत् प्रकृतेरुद्वेल्लनभागहारेणापकृष्य परप्रकृतितां नीत्वा विनाशनमुद्वेल्लनं ॥३४९॥ ताः प्रकृतीराह—

उद्वेल्लनविधानं विस्तरेण वक्ष्यमाणमप्यत्र प्रसंगायातं आहारद्विकं सम्यक्त्वप्रकृतिः मिश्रप्रकृतिः सुरद्विकं नारकचतुष्कं उच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्विकं चेति त्रयोदश प्रकृतयः क्रमेणोद्वेल्लयंते ॥३५०॥ कैर्जीवैः का इति चेदाह—

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ चतस्रः । एकविकलेंद्रियेषु षट् । तेजोद्विके तिस्रः । स्वस्थाने उत्पन्नस्थाने च सत्त्वं स्यादस्ति स्यान्नास्ति । तद्यथा—

हारके द्वारा अपकर्षण करके अन्य प्रकृतिरूप करना और इस प्रकारसे उनको नष्ट करनेका नाम उद्वेलन है ॥३४९॥

आगे उद्वेलना प्रकृतियोंको कहते हैं—

आगे उद्वेलनाका विधान विस्तारसे कहेंगे। फिर भी यहाँ प्रसंगवश कहते हैं। आहारकद्विक, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी ये तेरह प्रकृतियोंकी क्रमसे उद्वेलना की जाती है ॥३५०॥

कौन जीव किस प्रकृतिकी उद्वेलना करता है, यह कहते हैं—

चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीवोंके चार, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियके छह और तेजकाय वायुकायके तीन प्रकृतियाँ स्वस्थान और उत्पन्न स्थानमें कोई प्रकारसे हैं और कोई प्रकारसे

१. ब वल्वरजोरयादुद्वलेनेनैव प्रकृते॰ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वप्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडिदोडे नूर नाल्वत्तरडु सत्वमक्कु १४२। मवरोळ् सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडिदोडे नूरनाल्वत्तो ंदु प्रकृतिसत्वमक्कु १४१ मितु स्वस्थानदोळ् चतुर्गतिय मिथ्यादृष्टिगळोळुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळ् सत्वंगळप्पुवुद्वेल्लनमं माडद पक्षदोळ् नूर नाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कु १४५। मुत्पन्नस्थानदोळेकेंद्रिय द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय पृथ्विकायिक अप्कायिक-वनस्पतिकायिकमेंब सप्तस्थानदोळं नूर नाल्वत्तय्दुं नूर नाल्वत्मूरुं नूर नाल्वत्तेरडुं नूर नाल्वत्तो ंदुं प्रकृतिसत्वमप्पुवु। मल्ल एक विकलत्रयंगळु सुरद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु स्वस्थानदोळ् नूरमूवत्तो ंभत्तु प्रकृतिसत्वमक्कुमवरोळु नारकचतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु स्वस्थानदोळ् नूर मूवत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कु-१३५। मुत्पन्नस्थानदोळ् तेजस्कायिक वायुकायिकंगळोळ् मनुष्यायुष्यं रहितमागि नूर नाल्वत्तनाल्कुं नूर नाल्वत्तेरडुं नूर नाल्वत्तो ंदुं नूर नाल्वत्तुं नूर-मूवत्तेंटुं नूर मूवत्तनाल्कुं सत्वंगळप्पुवल्लि उच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळ् नूर मूवत्तमूरु प्रकृतिगळु स्वस्थानदोळ् सत्वमक्कुमवरोळ् नरकद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळ् नूर मूवत्तो ंदु प्रकृतिगळु स्वस्थानदोळु सत्वमक्कुमुत्पन्नस्थानदोळेकेंद्रियादिसप्तस्थानंगळोळु नूर मूवत्तमूरुं नूर मूवत्तो ंदुं सत्वमप्पुवु। संदृष्टि :—

तीर्थकरनरकदेवायुरसत्वचातुर्गतिकसंक्लिष्टमिथ्यादृष्टेराहारकद्विके उद्वेल्लिते त्रिचत्वारिंशच्छतं सत्त्वं। पुनः सम्यक्त्वप्रकृतावुद्वेल्लितायां द्वाचत्वारिंशच्छतं। पुनः सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतावुद्वेल्लितायां एकचत्वारिंशच्छतं, स्वस्थाने स्यात्। अकृतोद्वेल्लनस्य तस्य पंचचत्वारिंशच्छतमेव। उत्पन्नस्थाने एकद्वित्रिचतुरिंद्रियपृथ्व्यब्वन-स्पतिकायिकेषु तानि चत्वारि सत्वानि। पुनः सुरद्विके उद्वेल्लिते स्वस्थाने एकोनचत्वारिंशच्छतं। पुनर्नारक-चतुष्के उद्वेल्लिते स्वस्थाने पंचत्रिंशच्छतं। उत्पन्नस्थाने तेजोद्विके मनुष्यायुरभावाच्चतुश्चत्वारिंशच्छतं द्वाचत्वारिंशच्छतं एकचत्वारिंशच्छतं चत्वारिंशच्छतं अष्टात्रिंशच्छतं चतुस्त्रिंशच्छतं च। पुनः स्वस्थाने

नहीं है। अर्थात् यदि उद्वेलना न हुई तो इनका सत्त्व होता है और उद्वेलना हुई तो सत्त्व नहीं होता; जिसके तीर्थंकर, नरकायु देवायुका सत्त्व नहीं है ऐसे चारों गतिके संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि जीवके आहारकद्विककी उद्वेलना करनेपर एक सौ तैंतालीसका सत्त्व होता है। पुनः सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलना करनेपर एक सौ बयालीसका और मिश्रमोहनीय-की उद्वेलना करनेपर एक सौ इकतालीसका सत्त्व स्वस्थानमें होता है। उद्वेलना न करनेपर उसके एक सौ पैंतालीसका ही सत्त्व होता है। उत्पन्न स्थानमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकायमें वे चारों सत्त्व एक सौ पैंतालीस, एक सौ तैंतालीस, एक सौ बयालीस, एक सौ इकतालीस होते हैं। पुनः देवगति देवानुपूर्वीकी उद्वेलना करनेपर स्वस्थानमें एक सौ उनतालीसका सत्त्व होता है। पुनः नारक चतुष्ककी उद्वेलना करनेपर स्वस्थानमें एक सौ पैंतीसका सत्त्व होता है। उत्पन्न स्थानमें तेजकाय वायुकायमें मनुष्यायुका भी सत्त्व न होनेसे बिना उद्वेलना हुए सत्त्व एक सौ चवालीस, आहारकद्विककी उद्वेलना होनेपर एक सौ बयालीस, सम्यक्त्वके उद्वेलना होनेपर एक सौ इकतालीस, मिश्र प्रकृतिकी उद्वेलना होनेपर एक सौ चालीस, देवद्विककी उद्वेलना होनेपर एक सौ अड़तीस, नारक चतुष्ककी उद्वेलना होनेपर एक सौ चौंतीसका सत्त्व होता है। पुनः स्वस्थानमें उच्चगोत्रकी उद्वेलना करनेपर तेजकाय वायुकायमें सत्त्व एक सौ तैंतीस होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ए। द्वि। त्रि। च। पृ। अ। व। योग्य १४५								
स्वस्थान	० आ २	० सं १	० मि १	० मि १	० सु २	० नार ४	उत्पन्न	॥
४५	१४३	१४२	१४२	१४१	१३९	१३५	१३३	१३१

←

तेजो द्विक योग्य १४४							
*	० अ २	० सं १	० मि १	० सु २	० ना ४	० उ १	० म २
१४४	१४२	१४१	१४०	१३८	१३४	१३३	१३१

अनंतरं योगमार्ग्गणेयोळु सत्वप्रकृतिगळं पेळदपरु :—

पुण्णेक्कारसजोगे साहारय मिस्सगे वि सगुणोघं ।
वेगुव्वियमिस्सेवि य णवरि ण माणुस तिरिक्खाऊ ॥३५२॥

पूर्ण्णैकादशयोगेष्वाहारकमिश्रकेऽपि स्वगुणौघः वैक्रियिकमिश्रेऽपि च नवीनं न मानुषतिर्य्यगायुषी ॥

पूर्ण्णैकादशयोगेषु नाल्कु मनोयोगंगळु नाल्कु वाग्योगंगळु मौदारिक वैक्रियिकाहारकमुमें ब पर्य्याप्तैकादश योगंगळोळमाहारकमिश्रकाययोगदोळं स्वगुणौघमक्कुमल्लि मनोवागौदारिकमें बों भत्तुं योगंगळोळु सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टु १४८ गुणस्थानंगळुं मिथ्यादृष्टिमोदलागि पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

उच्चैर्गोत्रे उद्वेल्लिते त्रयस्त्रिंशच्छतं । पुनः नरकद्विके मनुष्यद्विके (?) उद्वेल्लिते एकत्रिंशच्छतं इदमंत्यसत्त्वद्वयं उत्पन्नस्थानेऽप्येकेंद्रियादिसप्तस्वप्यस्ति ॥३५१॥ अथ योगमार्गणायामाह—

पूर्णैकादशयोगेषु चतुर्मनश्चतुर्वागौदारिकवैक्रियिकाहारकयोगेषु आहारकमिश्रे च स्वगुणौघः इत्याद्येषु नवसु सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानि त्रयोदश । तस्य संदृष्टिः—

और मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर एक सौ इकतीसका सत्त्व होता है। ये अन्तके दोनों सत्त्व एक सौ तैंतीस और एक सौ इकतीस उत्पन्न स्थानमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, वनस्पतिकायमें भी होते हैं।

विशेषार्थ—ऊपर दो सत्त्व कहे हैं—स्वस्थान सत्त्व और उत्पन्न स्थानमें सत्त्व। विवक्षित पर्यायमें उद्वेलनाके बिना या उद्वेलना होनेसे जो सत्त्व होता है वह स्वस्थान सत्त्व है। और उस सत्त्वके साथ आगामी पर्यायमें जो उत्पत्ति होती है वहाँ उस सत्त्वको उत्पन्न स्थानमें सत्त्व कहते हैं॥

आगे योग मार्गणामें कहते हैं—

चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक वैक्रियिक आहारक इन ग्यारह पूर्णयोगमें तथा आहारकमिश्रमें अपने-अपने गुणस्थानोंकी तरह जानना। इनमेंसे आदिके नौ योगोंमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस है और गुणस्थान बारह अथवा तेरह होते हैं। इसकी रचना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यु	मि०	सा०	मि०	अ १	दे १	प्र ०	अ० ८	अ ०	अ १६	८	१	१	६
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५	३६

१	१	१	१	सू १	उ		क्षी १६	स०
१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५
४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३

आहारककाययोगदोळं तन्मिश्रकाययोगदोळं नरकतिर्य्यगायुर्द्वयवर्जितमागि प्रमत्तसंयतनोळ नूरनाल्वत्तारु सत्वमक्कु १४६। वैक्रियिककाययोगदोळु नूर नाल्वत्तें टु प्रकृतिगळु सत्वमक्कु १४८ मल्लि मिथ्यादृष्टियोळु नूरनाल्वत्तें टु प्रकृतिसत्वमक्कुमेकें दोडे तीर्त्थसत्वयुक्तंगे तृतीयपृथ्विपर्य्यंतं गमनमुंटप्पुदरिंदं। सासादननोळु नूर नाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कु १४५। मसत्वंगळु मूरु ३। मिश्रनोळु नूरनाल्वत्तेळु सत्वमक्कु १४७ मसत्वमों दु १। असंयतनोळु नूर नाल्वत्तें टु सत्वमक्कु। १४८। संदृष्टि :— वैक्रियिक काययोग्य १४८

०	मि	सा	मि	अ
स	१४८	१४५	१४७	१४८
अ	०	३	१	०

मनो ४। वाग्योग ४। औदारिक काययोग १। योग्य १४८।

व्यु	मि	सा	मि	अ१	द १	प्र०	अ८	अ०	अ१६	८	१
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४

१	६	१	१	१	१	सू१	उ	०	क्षी१६	स
११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५
३५	३६	४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३

आहारकतन्मिश्रयोर्नरकतिर्यगायुरभावात् प्रमत्ते षट्चत्वारिंशच्छतं। वैक्रियिकयोगेऽष्टचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं सर्वं तीर्थकरसत्त्वयुक्तस्य तृतीयपृथ्व्यंतं गमनात्। सासादने पंचचत्वारिंशच्छतं सत्त्वं,

ऊपर टीकाके अनुसार जानना। आहारक आहारक मिश्रमें नरकायु तिर्यंचायुका असत्त्व होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस है। गुणस्थान एक प्रमत्त ही होता है। वैक्रियिक योगमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें सबका सत्त्व है क्योंकि तीर्थंकरकी सत्तावाला मरकर नरकमें तीसरी पृथ्वी तक जाता है। सासादनमें सत्त्व एक सौ पैंतालीस, असत्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळु मिथ्यादृष्टियोळु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्व्वर्जितमागि नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कु १४६। मल्लियुमसत्वं शून्यमक्कुं। सासादननोळु नरकायुर्व्वर्जितमागि मुन्निन मूरुं प्रकृतिगळ्गूडियसत्वंगळु नाल्कु ४। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तेरडु १४२। असंयतनोळु नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कुं। संदृष्टि :—

वै० मि० का० योग्य १४६

०	मि	सा	अ
स	१४६	१४२	१४६
अ	०	४	०

औदारिक मिश्रकाययोगदोळु सत्वप्रकृतिगळं पेळदपरु :—

ओरालमिस्सजोगे ओघं सुरणिरय आउगं णत्थि।
तम्मिस्सवामगे ण हि तित्थं कम्मेवि सगुणोघं ॥३५३॥

औदारिकमिश्रयोगे ओघः सुरनारकायुर्नास्ति। तन्मिश्रवामे न हि तीर्त्थं कार्म्मणेऽपि स्वगुणोघः॥

औदारिकमिश्रकाययोगदोळु सामान्य सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेंटरोळु सुरनारकायुर्द्वयमं कळेदु शेष नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कु १४६। मल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थंकर सत्वमिल्ले-केंदोडे तीर्थसत्वमुळ्ळ जीवनौदारिकमिश्रकाययोगि तीर्त्थकरकुमारनप्पुदरिदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं

असत्वं त्रयं। मिश्रे सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं, असत्वमेकं। असंयते सत्त्वं सर्वं।

तन्मिश्रयोगे तिर्यग्मनुष्यायुषी नेति मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं असत्त्वं शून्यं। सासादने नरकायुस्तत्त्रयं च नेत्यसत्त्वं चत्वारि सत्त्वं द्वाचत्वारिंशत् शतं। असंयते सत्त्वं षट्चत्वारिंशत् शतं ॥३५२॥

औदारिकमिश्रयोगस्याह—

औदारिकमिश्रयोगे सामान्यसत्त्वं किंतु सुरनारकायुषी न स्तः इति षट्चत्वारिंशत् शतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं पंचचत्वारिंशत् शतं, तन्मिश्रवामे तीर्थं नहीत्युक्तत्वात्। असत्वमेकं। सासादने असत्त्वं त्रयं,

---

तीन। मिश्रमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस, असत्त्व एक। असंयतमें सबका सत्त्व है।

वैक्रियिक मिश्रयोगमें तिर्यंचायु मनुष्यायुका सत्त्व नहीं होता। अतः मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ छियालीस, असत्त्व शून्य। सासादनमें नरकायु तथा आहारकद्विक और तीर्थंकरके न होनेसे असत्त्व चार, सत्त्व एक सौ बयालीस। असंयतमें सत्त्व एक सौ छियालीस ॥३५२॥

औदारिक मिश्रयोगमें कहते हैं—

औदारिक मिश्रयोगमें सामान्यवत् सत्त्व है। किन्तु देवायु नरकायुके न होनेसे एक सौ छियालीसका सत्त्व है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ पैंतालीस, क्योंकि औदारिक मिश्रमें मिथ्यादृष्टिके तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता, ऐसा कहा है। अतः असत्त्व एक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभविसदप्पुदरिंदं तन्मिश्रवामे न हि तीर्त्थमें दितु पेळल्पट्टुदु। अल्लि नूर नाल्वत्तय्दु सत्वमक्कु १४५। मसत्वमोंदु। सासादननोळ् असत्वं मूरु ३। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तमूरु १४३। असंयतनोळ् सत्वं नूर नाल्वत्तारु १४६। सयोगकेवलियोळु सत्वंगळेंभत्तय्दु ८५। असत्वंगळरुवत्तोंदु ६१। संदृष्टि :—

औ० मि० योग्य १४६।

०	मि	सा	अ	स
स	१४५	१४३	१४६	८५
अ	ती १	३	०	६१

कार्म्मणे स्वगुणौघः कार्म्मणकाययोगदोळु चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं भुज्यमाननाल्कायुष्यंगळु संभविसुवप्पुदरिंदं सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टु १४८। मिथ्यादृष्टियोळु नूरनाल्वत्तें टु १४८। सासादननोळ् नूरनाल्वत्तनाल्कु १४४। सत्वमसत्वंगळु तीर्त्थमुमाहारकद्विकमुं नरकायुष्यमुं नाल्कप्पुवु ४। असंयतनोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। सयोगकेवलियोळु सत्वंगळेंभत्तय्दु ८५। असत्वंगळरुवत्तमूरु ६३। संदृष्टि :—

कार्म्मणकाययोग्य १४८।

*	मि	सा	अ	स
स	१४८	१४४	१४८	८५
अ	०	४	०	६३

अनंतरं वेदादिमार्ग्गणेगळोळु सत्वप्रकृतिगळं व्याप्तियागि पेळ्वपरु :—

सत्त्वं त्रिचत्वारिंशत् शतं। असंयतेऽसत्त्वं शून्यं सत्त्वं षट्चत्वारिंशत् शतं। सयोगे सत्त्वं पंचाशीतिः। असत्त्वमेकषष्टिः।

कार्मणयोगे चतुर्गतिभुज्यमानायुःसंभवात् मिथ्यादृष्टौ सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं, सासादने सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशत् शतं, असत्त्वं तीर्थाहारनरकायूंषि। असंयते सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। सयोगे सत्त्वं पंचाशीतिः। असत्त्वं त्रिषष्टिः ॥३५३॥ अथ वेदमार्गणादिष्वाह—

सासादनमें असत्त्व तीन, सत्त्व एक सौ तैंतालीस। असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस। सयोग केवलीमें सत्त्व पिचासी, असत्त्व इकसठ।

कार्मणकाय योगमें चारों गति सम्बन्धी भुज्यमान आयुका सत्त्व सम्भव है अतः मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। सासादनमें सत्त्व एक सौ चवालीस। असत्त्वमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, नरकायु ये चार। असंयतमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। सयोगीमें सत्त्व पिचासी, असत्त्व त्रेसठ ॥३५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदादाहारोत्ति य सगुणोघं णवरि संढथीखवगे ।
किण्हदुगसुहतिलेस्सियवामेवि ण तित्थयरसत्तं ॥३५४॥

वेदादाहारपर्य्यंतं स्वगुणौघः नवीनं षंढस्त्रीक्षपके । कृष्णद्विकशुभत्रयलेश्यावामेपि न तीर्त्थंकर सत्वं ॥

वेदत्रयदोळु पुंवेदमार्ग्गणेयोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेंदु १४८ । मिथ्यादृष्टि मोदल्गोंडु सामान्यदिदं पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि गुणस्थानदोळपेळ्दंते सत्वप्रकृतिगळक्कुं । षंढस्त्रीक्षपके षंढवेदमार्ग्गणेयोळं स्त्रीवेदमार्ग्गणेयोळं गुणस्थानदोळपेळदंते नूर नाल्वत्तेंदु प्रकृतिसत्वमल्लि क्षपकश्रेणियोळु तीर्त्थंकरसत्वमिल्लेकेंदोडे तीर्त्थंकरसत्वमुळ्ळजीवं तद्वेदोदयसंक्लेशदिदं क्षपकश्रेणियनेरुवुदिल्लदु कारणमागियपूर्व्वकरणंगे तीर्त्थरहितमागि नूर मूवत्तेळु प्रकृतिसत्वमक्कुं । शेष विधानमिनितुमनिवृत्तिकरणादिगळोळु गुणस्थानदोळु पेळ्दंते सत्वप्रकृतिगळु ओंदुगुंदियप्पुवु । संदृष्टियुं गुणस्थानदोळपेळ्दंतेयप्पुदरिदं बरेयल्पट्टुदिल्ल । कषायमार्ग्गणेयोळु क्रोधमानमायाकषायंगळगनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्य्यंतमों भत्तुं गुणस्थानंगळप्पुवु । योग्य-

वेदमार्गणातः आहारमार्गणापर्यंतं स्वगुणौघः इति पुंवेदे सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं । गुणस्थानानि चतुर्दश । रचना गुणस्थानोक्तैव ।

षंडस्त्रीवेदयोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं किंतु क्षपकश्रेण्यां न तीर्थकरसत्त्वं तत्सत्त्वे तदुदयसंक्लिष्टस्य तत्रारोहणाभावात्, तेनापूर्वकरणादिषु सत्त्वमेकैकहीनं स्यात् ।

वैक्रियिक काययोग १४८

	मि.	सा.	मि.	अ.
सत्व	१४८	१४५	१४७	१४८
असं.	०	३	१	०

वैक्रियिक मिश्र १४६

मि.	सा.	अ.
१४६	१४२	१४६
०	४	०

औदारिक मिश्र १४६

मि.	सा.	अ.	सयो.
१४५	१४३	१४६	८५
१	३	०	६१

कार्मण १४८

मि.	सा.	अ.	स.
१४८	१४४	१४८	८५
०	४	०	६३

आगे वेदमार्गणा आदिमें कहते हैं—

वेदमार्गणासे आहारमार्गणा पर्यन्त अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना। पुरुषवेदमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान चौदह। रचना गुणस्थानवत्। नपुंसक स्त्रीवेदमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। किन्तु क्षपक श्रेणीमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि तीर्थंकरका सत्त्व होनेपर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयके साथ संक्लेश परिणामी जीव क्षपक श्रेणीपर आरोहण नहीं कर सकता। अतः अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें सत्त्व एक-एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। लोभकषायमार्ग्गणेयोळमंते सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टु १४८। मिथ्यादृष्ट्यादि सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं गुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टियुं विशेषमिल्लप्पुदरिं गुणस्थानदोळु पेळ्दंतेयक्कुं। ज्ञानमार्ग्गणेयोळु कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानंगळोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु असत्वं शून्यं सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। सासादननोळु असत्वं मूरु ३। सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५। मतिश्रुतावधिज्ञानत्रयदोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। गुणस्थानंगळु असंयतादिनवकमक्कुमल्लि गुणस्थानदोळु पेळ्दंते संदृष्टियरियल्पडुगुं। मनःपर्य्ययज्ञानमार्ग्गणेयोळु नरकतिर्य्यगायुष्यं पोरगागि योग्यसत्वप्रकृतिगळु १४६। प्रमत्तसंयतादि सप्तगुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टियुं गुणस्थानदोळ्पेळ्दंतेयक्कुं। केवलज्ञानमार्ग्गणेयोळु योग्यसत्वप्रकृतिगळ ण्भत्तय्दु ८५। सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानद्वयमक्कुं। गुणस्थानातीतरप्प सिद्धरुमोळरु॥ संयममार्ग्गणेयोळु असंयमयोग्यप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। अल्लि मिथ्यादृष्ट्यादियागि चतुर्गुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

असंयमयोग्य १४८

०	मि	सा	मि	असं
स	१४८	१४५	१४७	१४८
अ	०	३	१	०

कषायमार्गणायां सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। गुणस्थानानि क्रोधादित्रयेऽनिवृत्तिकरणांतानि नव। लोभे सूक्ष्मसांपरायांतानि दश संदृष्टिर्गुणस्थानवत्।

ज्ञानमार्गणायां कुमतित्रये सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं। सासादनेऽसत्त्वं त्रयं। सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। मतित्रये सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानान्यसंयतादीनि नव। संदृष्टिस्तदुक्तैव। मनःपर्यये नरकतिर्यगायुरभावात्सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि सप्त, संदृष्टिस्तद्वत्। केवलज्ञाने सत्त्वं पंचाशीतिः सयोगायोगगुणस्थानद्वयं। गुणस्थानातीताः सिद्धाः।

संयममार्गणायामसंयमे सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि। संदृष्टिस्त-

हीन होता है। कषाय मार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान क्रोध, मान, मायामें अनिवृत्तिकरणपर्यन्त नौ। लोभमें सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त दश। रचना गुणस्थानवत् जानना।

ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञानमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्वमें सब। सासादनमें असत्त्व तीन, सत्त्व एक सौ पैंतालीस। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान असंयत आदि नौ। रचना गुणस्थानवत्। मनःपर्ययमें नरकायु तिर्यंचायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। गुणस्थान प्रमत्त आदि सात। रचना गुणस्थानवत्। केवलज्ञानमें सत्त्व पचासी। दो गुणस्थान सयोग केवली और अयोगकेवली। सिद्धोंके कोई गुणस्थान नहीं होता।

१. ब ँनि रचना गुणस्थानोक्ता। २. ब गुणस्थाने सयोगायोगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशसंयमदोळु सत्वप्रकृतिगळु नरकायुष्यं पोरगागि नूर नाल्वत्तेळु १४७। देशसंयतगुणस्थानमों देयक्कुं। सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयदोळु नरकतिर्य्यगायुर्द्वयरहितमागि नूर नाल्वत्तारु सत्वप्रकृतिगळप्पुवु १४६। प्रमत्तसंयतादि नाल्कु गुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टियुं गुणस्थानदोळु पेळदंतेयक्कुं। परिहारविशुद्धिसंयमदोळु सत्वप्रकृतिगळु नरकतिर्यगायुर्द्वयं पोरगागि योग्यसत्वंगळु नूरनाल्वत्तारु १४६। 'परिहारं पमदिदरे' एंदु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतगुणस्थानद्वयमेयप्पुवु। सूक्ष्मसांपरायसंयतदोळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमोंदेयक्कुं। सत्वप्रकृतिगळु नूरेरडु १०२। यथाख्यातसंयममार्ग्गणेयोळु नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि उपशांतकषायनोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तारु १४६ नूरमूवत्तेंटुमप्पुवु १३८। क्षीणकषाय वीतरागच्छद्मस्थनोळु सत्वंगळु नूरोंदु १०१। सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु एण्भत्तय्दु सत्वप्रकृतिगळु ८५। अयोगिकेवलिभट्टारकनद्विचरमसमयदोळु सत्वप्रकृतिगळेण्भत्तय्दु ८५। चरमसमयदोळु पदिमू १३।
संदृष्टि :—

यथाख्यात योग्य १४६

०	उ		क्षी१६	स०	अ ७२	१३
स	१४६	१३८	१०१	८५	८५	१३
अ	०	८	४५	६१	६१	१३३

दर्शनमार्ग्गणेयोळु चक्षुरचक्षुर्द्दर्शनद्वयदोळु नूरनाल्वत्तेंटु सत्वप्रकृतिगळु १४८। मिथ्यादृष्टयादि द्वादशगुणस्थानंगळोळं गुणस्थानदोळु पेळ्दंते सत्वप्रकृतिगळप्पुवु। अवधिदर्शनदोळु

दुक्तैव। देशसंयते सत्त्वं नरकायुरभावात्सप्तचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानं तन्नाम। सामायिकछेदोपस्थापनयोर्नरकतिर्यगायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि चत्वारि। संदृष्टिस्तदुक्तैव। परिहारविशुद्धौ सत्त्वं तदायुर्द्वयाभावात् षट्चत्वारिंशच्छतं गुणस्थानं प्रमत्ताप्रमत्तद्वयं। सूक्ष्मसांपराये गुणस्थानं तन्नामैव सत्त्वं द्व्युत्तरशतं। यथाख्याते गुणस्थानानि चत्वारि तत्रोपशांतकषाये सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं अष्टत्रिंशच्छतं च। क्षीणकषाये एकोत्तरशतं। सयोगे पंचाशीतिः। अयोगे द्विचरमसमयांतं पंचाशीतिः, चरमसमये त्रयोदश।

संयममार्गणामें असंयममें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार। रचना गुणस्थानवत्। देशसंयतमें सत्त्व नरकायुका अभाव होनेसे एक सौ सैंतालीस गुणस्थान एक देशसंयत ही होता है। सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें नरकायु तिर्यंचायुके न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। गुणस्थान प्रमत्त आदि चार। रचना गुणस्थानवत्। परिहार विशुद्धि संयममें भी नरकायु तिर्यंचायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। गुणस्थान दो प्रमत्त और अप्रमत्त। सूक्ष्म साम्परायमें गुणस्थान एक सूक्ष्म साम्पराय नामक होता है। सत्त्व एक सौ दो। यथाख्यात संयममें गुणस्थान चार। उनमें-से उपशान्त कषायमें सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस। क्षीणकषायमें सत्त्व एक सौ एक। सयोगीमें सत्त्व पिचासी। अयोगीमें द्विचरम समयपर्यन्त पिचासी, अन्तिम समयमें तेरह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्यसत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तें टप्पुवु १४८। अल्लि असंयतादिनवगुणस्थानंगळप्पुवल्लि गुणस्थानदोळ् पेळ्वंते सत्वप्रकृतिगळप्पुवु। केवलदर्शनमार्ग्गणेयोळु केवलज्ञानवंते सत्वप्रकृतिगळप्पुवु। सयोगायोगिगुणस्थानद्वितयमक्कुं। लेश्यामार्ग्गणेयोळु "किण्हदुग वामे ण तित्थयरसत्तं" एंदितु कृष्णनीललेश्याद्वयदोळु सत्वप्रकृतिगळ् नूर नाल्वत्तें टप्पुवु १४८ ॥ अल्लि मिथ्यादृष्टयादि नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळ् तीर्थमसत्वमक्कुं। सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेळप्पु १४७। वेकें दोड तीर्थसत्वयुक्तमनुष्यासंयतंगशुभलेश्यात्रयदोळु तीर्थबंधप्रारंभमिल्लमेंसलानुं बद्धनरकायुष्यंगे द्वितीयतृतीयपृथ्विगळोळु पुट्टुवडे सम्यक्त्वमं किडिसि मिथ्यादृष्टियागि कपोतलेश्येयिदं पोकुमप्पुदरिदमी कृष्णनीललेश्याद्वयदोळु मिथ्यादृष्टि तीर्थसत्वमुळ्ळनिल्लें-दरियल्पडुगुं। संदृष्टि :—

कृ० नी० योग्य १४८

०	मि	सा	मि	अ
स	१४७	१४५	१४७	१४८
अ	ती १	३	ती १	०

दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः सत्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानान्याद्यानि द्वादश। संदृष्टिस्तदुक्तैव। अवधिदर्शने सत्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानान्यसंयतादीनि नव। रचना तदुक्तैव। केवलदर्शने तज्ज्ञानवत्।

लेश्यामार्गणायां कृष्णनीलयोः सत्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टयादीनि चत्वारि। तत्र किण्हदुगवामे ण तित्थयरसत्तमिति मिथ्यादृष्टौ सत्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। अशुभलेश्यात्रये तीर्थबंधप्रारंभाभावात्। बद्धनारकायुषोऽपि द्वितीयतृतीयपृथ्व्योः कपोतलेश्ययैव गमनात्। संदृष्टिः—

कृष्ण नी= योग्य १४८

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४७	१४५	१४७	१४८
अ	ती १	३	ती १	०

दर्शन मार्गणामें चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनमें सत्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान आदिके बारह। रचना गुणस्थानवत्। अवधिदर्शनमें सत्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान असंयत आदि नौ। रचना गुणस्थानवत्। केवलदर्शनमें केवलज्ञानकी तरह जानना।

लेश्यामार्गणामें कृष्ण और नीलमें सत्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार। कृष्ण नीलमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरकी सत्ताका अभाव कहा है, क्योंकि तीन अशुभ लेश्याओंमें तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। तथा जिसने नरकायुका बन्ध किया है वह मरकर दूसरी तीसरी पृथ्वीमें यदि जाता है तो कपोतलेश्यासे ही जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपोतलेश्यामार्गणेयोळ् योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेंटु १४८। गुणस्थानंगळु नाल्कप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळ् सत्वंगळु नूर नाल्वत्तेंटु १४८। सासादननोळ् नूर नाल्वत्तय्दु १४५। मिश्रनोळु नूर नाल्वत्तेळु १४७॥ असंयतनोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तेंटु १४८। संदृष्टिः — कपोतयोग्य १४८।

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४८	१४५	१४७	१४८
अ	०	३	१	०

तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वयदोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेंटु १४८। गुणस्थानंगळेळप्पुवल्लि "सुहतिलेस्सिय वामे वि ण तित्थयरसत्तं" येंदितु तेजःपद्मलेश्यामिथ्यादृष्टियोळु तीर्थसत्वमिल्लेकेंदोडे नरकगतिगमनाभिमुखसंक्लिष्टजीवंगळल्लदे सम्यक्त्वविराधनेयिल्लदु कारणमागि शुभलेश्यात्रययुक्तंगे सम्यक्त्वविराधनेयिल्लप्पुदरिंदमी शुभलेश्याद्वयदोळु तीर्थसत्वमुळ्ळ मिथ्यादृष्टियिल्लेंदरियल्पडुगुमप्पुदरिंदं सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७। सासादननोळ् सत्वंगळु नूर नाल्वत्तय्दु १४५। मिश्रनोळु सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७। असंयतनोळु सत्वंगळु नूरनाल्वत्तेंटु १४८। देशसंयतनोळ् सत्वंगळु नरकायुष्यं पोरगागि नूरनाल्वत्तेळु १४७। प्रमत्तसंयतनोळु नरकतिर्य्यगायुर्द्वयं पोरगागि सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। अप्रमत्तनोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। संदृष्टि :—

कपोतलेश्यायां मिथ्यादृष्टौ सत्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। सासादने पंचचत्वारिंशत् शतं। मिश्रे सप्तचत्वारिंशत् शतं। असंयते सर्वं। तेजःपद्मलेश्ययोः सत्वमष्टचत्वारिंशत् शतं गुणस्थानानि सप्त। तत्र सुहतियलेस्सियवामेवि ण तित्थयरसत्तमिति तन्मिथ्यादृष्टौ तीर्थसत्वं नास्ति, कुतः ? नरकगमनाभिमुखसंक्लिष्टेभ्योऽन्येषां सम्यक्त्वविराधनाभावेन शुभलेश्यात्रये तद्विराधनासंभवात्। तेषु तन्मिथ्यादृष्टौ सत्वं सप्तचत्वारिंशत् शतं। सासादने पंचचत्वारिंशत् शतं। मिश्रे सप्तचत्वारिंशच्छतं। असंयते अष्टचत्वारिंच्छतं देशसंयते नरकायुर्विना सप्तचत्वारिंशच्छतं। प्रमत्ते नरकतिर्यगायुषी विना षट्चत्वारिंशत् शतं। अप्रमत्तेऽपि तथैव षट्चत्वा-

---

अतः कृष्णनीलमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक सौ सैंतालीसका सत्व होता है। कपोत लेश्यामें मिथ्यादृष्टिमें सत्व एक सौ अड़तालीस। सासादनमें सत्व एक सौ पैंतालीस। मिश्रमें सत्व एक सौ सैंतालीस। असंयतमें एक सौ अड़तालीस।

तेज और पद्मलेश्यामें सत्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान सात। आगममें कहा है कि शुभ तीन लेश्याओंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरका सत्व नहीं होता, अतः मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरकी सत्ता नहीं है क्योंकि जो तीर्थंकरकी सत्तावाला नरक जानेके अभिमुख होता है उसके ही सम्यक्त्वकी विराधना होती है। अतः तीन शुभलेश्याओंमें सम्यक्त्वकी विराधना संभव नहीं है। इससे मिथ्यादृष्टिमें सत्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें एक सौ पैंतालीस। मिश्रमें एक सौ सैंतालीस। असंयतमें एक सौ अड़तालीस। देशसंयतमें नरकायुके बिना एक सौ सैंतालीस। प्रमत्तमें नरकायु तिर्यंचायुके बिना एक सौ छियालीस। अप्रमत्तमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजःपद्म० योग्य १४८।

व्यु	मि	सा	मि	अ १	दे १	प्र	अ
स	१४७	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६
अ	ती १	३	१	०	१	२	२

शुक्ललेश्यामार्ग्गणेयोळु योग्यसत्वंगळु १४८। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्ट्यादियागि पदिमूरप्पु वल्लियुं मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळु तीर्त्थसत्वमिल्ल। कारणं मुंपेळ्दुदेयक्कुं। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७। सासादनादि गुणस्थानंगळोळु गुणस्थानदोळ्पेळ्दंतेयक्कुं। संदृष्टि :—

शुक्ललेश्यायोग्य १४८

व्यु	मि	सा	मि	अ १	दे १	प्र	अ ८	अ	अ १६	८	१	१
स	१४७	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३ →
अ	ती १	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५

←								
६	१	१	१	१	सू १	उ ०	क्षी १६	स
११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१०१	८५
३६	४२	४३	४४	४५	४६	२	४७	६३

भव्यमार्ग्गणेयोळु गुणस्थानदोळु पेळ्दंते योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेंटु १४८। गुणस्थानंगळु पदिनाल्कुमप्पुवु। संदृष्टियुं गुणस्थानदोळ्पेळ्दंतेयक्कुं विशेषमिल्ल॥

रिंशत् शतं।

शुक्ललेश्यायां सत्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश। तत्रापि मिथ्यादृष्टौ तीर्थासत्वात् सत्वं सप्तचत्वारिंशत् शतं। सासादनादिषु गुणस्थानोक्तैव संदृष्टिः।

भव्यमार्गणायां सत्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। गुणस्थानानि चतुर्दश, संदृष्टिस्तदुक्तैव॥३५४॥

भी इसी प्रकार एक सौ छियालीस।

शुक्ल लेश्यामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि तेरह। यहाँ भी मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका असत्त्व होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादन आदिमें रचना गुणस्थानवत् जानना।

भव्य मार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान चौदह। रचना गुणस्थानवत्॥३५४॥

१. ब सासादनादौ गुणस्थानवत्।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

अभव्यमार्ग्गणेयोळु पेळ्दपरु :--

> अभव्वसिद्धे णत्थि हु सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं ।
> आहारचउक्कस्सवि असण्णिजीवे ण तित्थयरं ॥३५९॥

अभव्यसिद्धे नास्ति खलु सत्वं तीर्त्थंकरसम्यक्त्वमिश्राणामाहारचतुष्कस्याप्यसंज्ञिजीवे न तीर्त्थंकरं ॥

अभव्यमार्ग्गणेयोळु तीर्त्थंकरसम्यक्त्वमिश्राहारकचतुष्टयमेंबेळुं प्रकृतिगळ्गे सत्वमिल्लेकेंबोडे अभव्यजीवंगे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राभिव्यक्तिसर्व्वकालदोळं संभविसदप्पुदरिदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमों देयक्कुं । १४१ ॥ सम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळु मिथ्यारुचिगळ्गे सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेंटु १४८ । सासादनरुचिगळ्गे सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५ । मिश्ररुचिगळ्गे सत्वप्रकृतिगळु १४७ । उपशमसम्यक्त्वदोळु सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टप्पुवु । अल्लि असंयतगुणस्थानमादियागि उपशांतकषायगुणस्थानावसानमागि यें टुं गुणस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि :--

उपशमसम्यक्त्वदोळु योग्य १४८

व्यु	अ १	दे १	प्र	अ	अ	अ	सू	उ
स	१४८	१४७	१४६	१४६	१४६	१४६	१४६	१४६
अ	०	१	२	२	२	२	२	२

अभव्यमार्गणायां तीर्थंकरसम्यक्त्वमिश्राणामाहारकचतुष्कस्य च सत्त्वं नास्ति, तस्य सम्यग्दर्शनाद्यभिव्यक्तेः सर्वकालेऽप्यसंभवात्[1] । गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिसंज्ञं । सत्त्वमेकचत्वारिंशच्छतं ।

सम्यक्त्वमार्गणायां—मिथ्यारुचीनां सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । सासादनरुचीनां पंचचत्वारिंशच्छतं । मिश्ररुचीनां सप्तचत्वारिंशच्छतं । उपशमसम्यक्त्वेऽष्टचत्वारिंशच्छतं । तत्रासंयतादयुपशान्तकषायान्तान्यष्टौ गुणस्थानानि । संदृष्टिः—

उपशमसम्यक्त्वयोग्य १४८

व्यु	अ१	दे१	प्र	अ	अ	अ	सू	उ
स	१४८	१४७	१४६	१४६	१४६	१४६	१४६	१४६
अ	०	१	२	२	२	२	२	२

अभव्य मार्गणामें तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय और आहारक शरीर अंगोपांग, बन्धन संघातका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि उसके सम्यग्दर्शन आदिकी अभिव्यक्ति कभी भी नहीं होती। गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि होता है। सत्त्व एक सौ इकतालीस।

१. ब सर्वदापि तस्य सम्यग्दर्शनाभिव्यक्त्यभावात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदकसम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु असंयतादिचतुर्ग्गुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

वेदक सम्यक्त्वयोग्य १४८।

व्यु	अ १	दे १	प्र	अ
स	१४८	१४७	१४६	१४६
अ	०	१	२	२

क्षायिकसम्यक्त्वमार्ग्गणेयोळु सत्वप्रकृतिगळु सप्तप्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तोंदप्पुवु १४१। अल्लि असंयतनोळु नरकायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुं सत्वव्युच्छित्तियप्पुवेकें दोडे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देशसंयतं मनुष्यनेयप्पुदु कारणमागि सत्वंगळु नूर नाल्वत्तोंदु। देशसंयतनोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर मूवत्तों भत्तु १३९। अप्रत्तमसंयतनोळु क्षपकश्रेण्यपेक्षेयिदं देवायुष्यं सत्वव्युच्छित्तिमक्कु १। सत्वप्रकृतिगळु नूर मूवत्तों भत्तु १३९। अपूर्व्वकरणनोळुभयश्रेण्यपेक्षेयिदं सत्वंगळु नूर मूवत्तें टु १३८। अनिवृत्तिकरणं मोदलगों डु गुणस्थानदोळपेळदंते सत्वंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

वेदकसम्यक्त्वे सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। असंयतादिचतुर्गुणस्थानानि। संदृष्टिः—

वेदकयोग्य १४८

व्यु	अ१	दे१	प्र०	अ०
स	१४८	१४७	१४६	१४६
अ	०	१	२	२

क्षायिकसम्यक्त्वे सत्त्वं सप्तप्रकृत्यभावादेकचत्वारिंशच्छतं। तत्रासंयते नरकतिर्यगायुषी व्युच्छित्तिः। कुतः ? क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतो मनुष्य एवेति कारणात्। सत्त्वमेकचत्वारिंशच्छतं। देशसंयते एकान्नचत्वारिंशच्छतं। प्रमत्तेऽप्येकान्नचत्वारिंशच्छतं। अप्रमत्ते क्षपकश्रेण्यपेक्षया देवायुर्व्युच्छित्तिः। सत्त्वमेकोनचत्वारिंशच्छतं। अपूर्वकरणे उभयश्रेण्यपेक्षयाऽष्टत्रिंशच्छतं। अनिवृत्तिकरणादिषु गुणस्थानवत्।

सम्यक्त्व मार्गणामें मिथ्यारुचि जीवोंमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। सासादन रुचि जीवोंमें तीर्थंकरके बिना एक सौ सैंतालीस। उपशम सम्यक्त्वमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। वहाँ असंयतसे लेकर उपशान्त कषाय पर्यन्त आठ गुणस्थान होते हैं। वेदक सम्यक्त्वमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस गुणस्थान असंयत आदि चार। क्षायिक सम्यक्त्वमें सत्त्व एक सौ इकतालीस क्योंकि मोहनीय सम्बन्धी सात प्रकृतियोंका अभाव है। वहाँ असंयत गुणस्थानमें नरकायु तिर्यंचायुकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयत मनुष्य ही होता है। सत्त्व एक सौ इकतालीस। देशसंयतमें सत्त्व एक सौ उनतालीस। प्रमत्तमें भी एक सौ उनतालीस। अप्रमत्तमें क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा देवायुकी व्युच्छित्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षायिकसम्यक्त्वयोग्य १४१ ।

व्यु	अ २	दे	प्र	अ १	अ	अ १६	८	१	१	६	१	१	१	१	सू १	उ ०	क्षी १६	स	अ ७२	१३
स	१४१	१३९	१३९	१३९	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१३८	१०१	८५	८५	१३
अ	०	२	२	२	३	३	१९	२७	२८	२९	३५	३६	३७	३८	३९	३	४०	५६	५६	१२८

संज्ञिमार्ग्गणेयोळु सामान्यसत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टु १४८। अल्लि मिथ्यादृष्टयादियागि पन्नेरडुं गुणस्थानंगळप्पुवुळिदंतेनुं विशेषमिल्ल ॥ असंज्ञिमार्ग्गणेयोळु असण्णिजीवे ण तित्थयरमें दितु तीर्त्थसत्वं पोरगागि नूर नाल्वत्तेळु सत्वप्रकृतिगळप्पुवु नूरनाल्वत्तेळु १४७। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सत्वंगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७ सासादननोळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५ ॥ आहारमार्ग्गणेयोळु पेळदपरु। सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टप्पुवु १४८। वल्लि मिथ्यादृष्टयादियागि सयोगिकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवु मत्तों दु विशेषमिल्ल। गुणस्थानदोळ्पेळदंते संदृष्टियुमक्कुं। अनाहारमार्ग्गणेयोळु पेळदपरु :—

कम्मेवाणाहारे पयडीणं सत्तमेवमादेसे ।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३५६॥

कार्म्मणमिवानाहारे प्रकृतीनां सत्वमेवमादेशे। कथितमिदं बलमाधवचंद्रार्च्चितनेमिचंद्रेण ॥

संज्ञिमार्गणायां सामान्यसत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश विशेषो न।

असंज्ञिमार्गणायां 'ण तित्थयरमिति सत्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। मिथ्यादृष्टावपि तथा। सासादने पंचचत्वारिंशच्छतं।

आहारमार्गणायां—सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानानि सयोगांतानि त्रयोदश। विशेषो नास्ति ॥३५५॥

अनाहारमार्गणायां कार्मणयोगवत्. संदृष्टिः—

होती है। सत्त्व एक सौ उनतालीस। अपूर्वकरणमें उपशमश्रेणी तथा क्षपक श्रेणीकी अपेक्षा एक सौ अड़तीसका सत्त्व। अनिवृत्तिकरण आदिमें गुणस्थानवत् जानना।

संज्ञी मार्गणामें सामान्यसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि बारह। अन्य कोई विशेष नहीं है। असंज्ञिमार्गणामें तीर्थंकर न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस। मिथ्यादृष्टिमें भी सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें एक सौ पैंतालीस।

आहारमार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान सयोगीपर्यन्त तेरह। कोई विशेष नहीं है ॥३५५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मेवि सगुणोधमें वितु कार्म्मणकाययोगवोळ् पेळ्वंतनाहारमार्ग्गणेयोळ् सत्वप्रकृतिगळप्पुवु । संदृष्टि :—

ब्यु	मि	सा	अ	स	अ ७२	अ १३
स	१४८	१४४	१४८	८५	८५	१३
अ	०	४	०	६३	६३	१३५

यितुक्तप्रकारदिदं मार्ग्गणास्थानदोळ् प्रकृतिगळ सत्वमितु प्रत्यक्षवंदकरप्प बलदेववासुदेवरुगळिदर्च्चिसल्पट्ट नेमिचंद्रतीर्त्थंकर परमभट्टारकरिंद पेळल्पट्टुदु । मेणाबलदेवण्णनिदं श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्य देवरुगळिदमुं पूजिसल्पट्ट नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्त्तिगळिदं पेळल्पट्टुदु ॥

सो मे तिहुवणमहिओ सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणलाहं बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥३५७॥

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धो बुद्धो निरंजनो नित्यः । दिशतु वरज्ञानलाभं बुधजनपरिप्रार्त्थितं परमशुद्धं ॥

अनाहारयोग्य १४८

ब्यु	मि	सा	अ	स	अ७२	१३
स	१४८	१४४	१४८	८५	८५	१३
अ	०	४	०	६३	६३	१३५

एवं मार्गणास्थाने प्रकृतिसत्त्वमिदं प्रत्यक्षवंदारुभ्यां बलदेववासुदेवाभ्यामर्चितनेमिचंद्रतीर्थंकरेण अथवा बलदेवभ्रात्रा श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवेनार्चितनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिना निरूपितं ॥३५६॥

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धो बुद्धो निरंजनो नित्यः दिशतु वरज्ञानलाभं बुधजनपरिप्रार्थितं परमशुद्धं ॥३५७॥

अनाहार मार्गणामें कार्मणकाययोगकी तरह जानना। इस प्रकार मार्गणास्थानमें यह प्रकृतियोंका सत्त्व प्रत्यक्ष वन्दना करनेवाले बलदेव और वासुदेवसे पूजित नेमिचन्द्र तीर्थंकरने कहा है। अथवा बलदेव भ्राता और श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवसे अर्चित नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने कहा है ॥३५६॥

वे श्री नेमिनाथ भगवान् जो तीनों लोकोंके द्वारा पूजित हैं, सिद्ध, बुद्ध, निरंजन और नित्य हैं मुझे वह परम शुद्ध उत्कृष्ट ज्ञान दें, जो ज्ञान ज्ञानीजनोंके द्वारा प्रार्थनीय है, ज्ञानीजन जिसे चाहते हैं ॥३५७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंदवंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्राय राजगुरु मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादीपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमद्धर्म्मभूषण भट्टारकदेवप्रिय सधर्म्मनुं *श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं* श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांडबंधोदयसत्वयुक्तस्तवं महाधिकारं प्ररूपितमादुदु ॥

इत्याचार्यनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां
कर्मकांडे बंधोदयसत्त्वप्ररूपणो नाम द्वितीयोऽधिकारः ॥२॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा इसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत बन्धोदय सत्त्वनिरूपण नामक दूसरा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

अथ सत्त्वस्थानभंगाधिकारः ॥३॥

णमिऊण वड्ढमाणं कणयणिहं देवरायपरिपुज्जं ।
पयडीण सत्तठाणं ओघे भंगे समं वोच्छं ॥३५८॥

नत्वा वर्द्धमानं कनकनिभं देवराजपरिपूज्यं । प्रकृतीनां सत्वस्थानं ओघे भंगे समं वक्ष्यामि ॥

कनकवर्णनुं देवराजपरिपूज्यनुमप्प श्रीवीरवर्द्धमानस्वामियं नमस्कारमं माडि प्रकृतिगळ सत्वस्थानमं गुणस्थानंगळु भंगसहितमागि पेळ्दपनु ।

किं स्थानं को वा भंगः एंदिते दोडे संख्याभेदेनैकस्मिन्जीवे युगपत्संभवत्प्रकृतिसमूहः स्थानं[1] । अभिन्नसंख्यानां प्रकृतीनां परिवर्तन भंगः[2] । संख्याभेदेनैकत्वे प्रकृतिभेदेन वा भंगः एंदितु स्थान-लक्षणमुं भंगलक्षणमुमरियल्पडुगुं । गुणस्थानदोळु स्थानभंगंगळं पेळव प्रकारमं पेळ्दपरु :—

कनकवर्णं देवराजपरिपूज्यं श्रीवीरवर्धमानस्वामिनं नत्वा प्रकृतीनां सत्त्वस्थानं गुणस्थानेषु भंगसहितं वक्ष्यामि । किं स्थानं ? को वा भंगः ? संख्याभेदेनैकस्मिन् जीवे युगपत्संभवत्प्रकृतिसमूहः स्थानं । अभिन्नसंख्यानां प्रकृतीनां परिवर्तनं भंगः, संख्याभेदेनैकत्वे प्रकृतिभेदेन वा भंगः ॥३५८॥ गुणस्थानेषु स्थानभंगप्रतिपादन-प्रकारमाह—

स्वर्णके समान रूपरंगवाले और देवोंके राजा इन्द्रके द्वारा पूजनीय श्री वर्धमान स्वामीको नमस्कार करके प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानको गुणस्थानोंमें भंगके साथ कहूँगा । स्थान किसे कहते हैं और भंगका क्या स्वरूप है यह कहते हैं—

एक समयमें एक जीवके संख्या भेदको लिये हुए जो प्रकृतियोंका समूह पाया जाता है उसे स्थान कहते हैं । और समान संख्यावाली प्रकृतियोंमें जो प्रकृतियोंका परिवर्तन होता है उसे भंग कहते हैं । अथवा संख्या भेदसे समानता रहते हुए भी प्रकृति भेद होनेसे भंग होता है ॥३५८॥

विशेषार्थ—एक जीवके एक कालमें जितनी प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है उनके समूहका नाम स्थान है । सो जहाँ अन्य-अन्य संख्याको लिये प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है वहाँ अन्य-अन्य स्थान कहा जाता है । जैसे किन्हीं जीवोंके एक सौ छियालीसकी सत्ता पायी जाती है और किन्हीं जीवोंके एक सौ पैंतालीसकी सत्ता पायी जाती है तो यहाँ दो स्थान हुए । इसी प्रकार सर्वत्र जानना । और जहाँ एक ही स्थानमें प्रकृतियाँ बदल जाती हों तो उसे भंग कहते हैं । जैसे किन्हीं जीवोंके मनुष्यायु और देवायुके साथ एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है किन्हीं जीवोंके तिर्यंचायु नरकायुके साथ एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है । सो यहाँ स्थान तो एक ही हुआ क्योंकि संख्या समान है ।

---

१. सत्त्वस्थाननिरूपणा-संख्याप्रकृतिभ्यां भेदे स्थानं । २. संख्यैकत्वे प्रकृतिभेदे भंगः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आउगबंधाबंधणभेदमकाऊण वण्णणं पढमं ।
भेदेण य भंगसमं परूवणं होदि बिदियम्मि ॥३५९॥

आयुर्बंधाऽबंधनभेदमकृत्वा वर्णनं प्रथमं । भेदेन च भंगसमं प्ररूपणं भवति द्वितीयस्मिन् ॥

आयुर्ब्बंधाबंधभेदमं माडदे प्रथमवर्णनमक्कुं । द्वितीयदोळायुर्ब्बंधाबंधभेददोडने भंगसहितमागि प्ररूपणमक्कुमल्लि प्रथमपक्षदोळु पेळ्दपरु :--

सव्वं तिगेग सव्वं चेगं छसु दोण्णि चउसु छद्दस य दुगे ।
छस्सगदालं दोसु तिसट्ठी परिहीण पयडिसत्तं जाणे ॥३६०॥

सर्व्वं त्रिकैकं सर्व्वं चैकं षट्सु द्वे चतुर्षु षट् दशकं द्विके । षट् सप्तचत्वारिंशत् द्वयोस्त्रिषष्टि परिहीनप्रकृतिसत्वं जानीहि ॥

मिथ्यादृष्टियोळु सर्व्वं नूर नाल्वत्तें टुं प्रकृतिसत्वमक्कुं । सासादननोळु तीर्त्थमुमाहारकद्विकमुमें ब त्रिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं । मिश्रनोळु तीर्त्थरहितमागि सर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं । असंयतनोळु सर्व्वं नूरनाल्वत्तें टुं प्रकृतिसत्वमक्कुं । देशसंयतनोळु एकं नरकायुष्यं रहितमागि सर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं । षट्सु द्वे प्रमत्ताप्रमत्तरुगळुमुपशमकापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरें बारुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नरकतिर्य्यगायुष्यमें बेरडु प्रकृतिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं । चतुर्षु षट् मत्तमुपशमकापूर्व्वानिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरें ब नाल्कुं

आयुर्बंधाबंधभेदमकृत्वा प्रथमं वर्णनं भवति । द्वितीयस्मिन्नायुर्बंधाबंधभेदेन सह भंगसहितं प्ररूपणं भवति ॥३५९॥ तत्र प्रथमपक्षे प्राह—

मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं सर्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । सासादने तदेव तीर्थाहारकद्विकहीनं । मिश्रे तीर्थहीनं । असंयते सर्वं । देशसंयते नरकायुर्हीनं । प्रमत्तादिषु षट्सु नरकतिर्यगायुर्हीनं । पुनरपूर्वकरणादिषु चतुर्षु

किन्तु भंग अन्य हुआ क्योंकि प्रकृति बदल गयी है। पहलेमें मनुष्यायु देवायुकी सत्ता है और दूसरेमें तिर्यंचायु नरकायुकी सत्ता है। इसी प्रकार सर्वत्र अन्य-अन्य प्रकृतियोंकी संख्या होनेसे स्थान भेद होता है। और एक ही स्थानमें कोई प्रकृति अन्य-अन्य होनेसे भंग भेद होता है ॥३५८॥

आगे गुणस्थानोंमें स्थान और भंगके भेदोंका प्रकार कहते हैं—

आयुके बन्ध अथवा अबन्धका भेद न करके पहला वर्णन है और दूसरे वर्णनमें आयुके बन्ध और अबन्धके भेदके साथ भंगसहित वर्णन है ॥३५९॥

उनमें-से प्रथम पक्षका वर्णन करते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व सब एक सौ अड़तालीस है। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्वयसे बिना एक सौ पैंतालीसका सत्त्व है। मिश्रमें तीर्थंकरके बिना एक सौ सैंतालीसका सत्त्व है। असंयतमें सब एक सौ अड़तालीसका सत्त्व है। देशसंयतमें नरकायुके बिना एक सौ सैंतालीसका सत्त्व है। प्रमत्त आदि छह गुणस्थानोंमें उपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा नरकायु तिर्यंचायुके बिना एक सौ छियालीसका सत्त्व है। पुनः अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानंगळोळु नरकतिर्य्यगायुष्यंगळुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमेंबारुं रहितमागि प्रत्येकं सर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं। वशकद्विके क्षपकापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणरेंबेरडुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नरकतिर्य्यग्देवायुष्यंगळु सप्तप्रकृतिगळुमंतु दशप्रकृतिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं। द्वयोः षट् सप्तचत्वारिंशत् सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषायरेंबेरडुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं सोळट्ठेक्किगि छक्कं चदुसेक्कमेंब नाल्वत्तारुं लोभसहितमागि नाल्वत्तेळु हीनमागि सर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं। द्वयोस्त्रिषष्टिपरिहीनप्रकृतिसत्वं सयोगायोगकेवलिगुणस्थानद्वयदोळु घातिगळु नाल्वत्तेळु। नामकर्म्मदोळु पदिमूरु आयुष्यंगळु मूरिंतु त्रिषष्टिहीनप्रकृतिसत्वं प्रत्येकमक्कुं। च शब्ददिंदमयोगकेवलिचरमसमयदोळु नूरमूवत्तय्दु प्रकृतिहीनमागि पदिमूरु प्रकृतिसत्वमक्कुमेंदितु त्वं जानीहि शिष्य नीनरि येंदु संबोधिसल्पट्टुदु। आ हीनप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

सासण मिस्से देसे संजमदुग सामगेसु णत्थी य ।
तित्थाहारं तित्थं णिरयाऊ णिरयतिरियआउ अणं ॥३६१॥

सासादनमिश्रयोर्देशसंयते संयतद्विकोपशमकेषु नास्ति च। तीर्थाहारं तीर्थं नरकायुर्नरकतिर्यगायुरनंतानुबंधिनः ॥

सासादननोळं मिश्रनोळं देशसंयतनोळं संयतद्विकदोळमुपशमकरोळं हीनप्रकृतिगळु यथाक्रमदिदं तीर्त्थाहारत्रिकमुं तीर्त्थमुं नरकायुष्यमुं नरकतिर्य्यगायुर्द्वयमुं नरकतिर्य्यगायुष्यंगळुम-

नरकतिर्यगायुरनंतानुबंधिचतुष्कहीनं। क्षपकापूर्वकरणादिद्वये नरकतिर्यग्देवायुःसप्तप्रकृतिहीनं। सूक्ष्मसांपराये सोलट्ठिगिछक्कं चदुसेक्कमिति षट्चत्वारिंशता हीनं। क्षीणकषाये लोभसहितया हीनं। सयोगायोगयोः घातिसप्तचत्वारिंशता नामकर्मत्रयोदशभिरायुस्त्रयेण च हीनं। चशब्दादयोगिचरमसमये पंचत्रिंशच्छतहीनं जानीहि ॥३६०॥ ता अपनीतप्रकृतीराह—

सासादने मिश्रे देशसंयते संयतद्विके उपशमके चापनीतप्रकृतयः क्रमेण तीर्थाहारत्रयं तीर्थं नरकायुष्यं नरकतिर्यगायुर्द्वयं नरकतिर्यगायुषी अनंतानुबंधिचतुष्कं चेति षट्। चशब्दात् क्षपकेषु दस य दुगे इत्यादिनोक्त-

नरकायु, तिर्यंचायु और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करनेकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना एक सौ बयालीसका सत्त्व है। क्षपक अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु तथा मोहनीयकी सात प्रकृतियोंके बिना एक सौ अड़तीसका सत्त्व है। सूक्ष्म साम्परायमें अनिवृत्तिकरणमें व्युच्छिन्न हुई सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक, एकके बिना एक सौ दो का सत्त्व है। क्षीणकषायमें लोभ सहित सैंतालीस बिना एक सौ एकका सत्त्व है। सयोगी-अयोगीमें घातिकर्मोंकी सैंतालीस, नामकर्मकी तेरह और तीन आयुके बिना पिचासीका सत्त्व है। 'च' शब्दसे अयोगीके अन्तिम समयमें एक सौ पैंतीस बिना तेरहका सत्त्व है ॥३६०॥

घटायी हुई प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

सासादन, मिश्र, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्त संयत, और उपशम श्रेणीमें घटायी हुई प्रकृतियाँ क्रमसे तीर्थंकर और आहारकद्विक ये तीन, तीर्थंकर, नरकायु, नरकायु और

१. ब °योगयोः सप्तचत्वारिंशद्घाति त्रयोदशनामत्र्यायुःहीनं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नंतानुबंधिचतुष्कमुमंतारुं प्रकृतिगळप्पुवु। च शब्दविंदक्षपकरोळु दसयदुगे एंदितिवु मोदलागि हीनप्रकृतिगळरियल्पडुवुवु। संदृष्टि :—

व्यु	मि०	सा०	मि०	अ	दे	प्र	अ	अ उ		अ० क्ष	अनिवृत्ति० उ० अ०क्ष		
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१४६	१४२	१३८	१४६	१४२	१३८
अ	०	३	१	०	१	२	२	२	६	१०	२	६	१०

→

←

सूक्ष्म०	उ. प.	सूक्ष्म	उ		क्षी	स	अ	
१४६	१४२	१०२	१४६	१४२	१०१	८५	८५	१३
२	६	४६	२	६	४७	६३	६३	१३५

अनंतरं गुणस्थानदोळु स्थानसंख्येयं गाथाद्वयदिदं पेळदपरु :—

बिगुणणव चारि अट्ठं मिच्छतिये अयदचउसु चालीसं।
तिसु उवसमगे संते चउवीसा होंति पत्तेयं ॥३६१॥
चउछक्कदि चउ अट्ठं चउ छक्क य होंति सत्तठाणाणि।
आउगबंधाबंधे अजोगिअंते तदो भंगं ॥३६२॥

द्विगुणनव चतुरष्टौ मिथ्यादृष्टि त्रिके असंयतचतुर्षु चत्वारिंशत् त्रिषूपशमकेषूपशांते च चतुर्विंशतिर्भवंति प्रत्येकं ॥

चतुःषट्कृति चतुरष्टौ चतुः षट् च भवंति सत्वस्थानानि। आयुर्बंधाऽबंधे अयोग्यंते ततो भंगः ॥

द्विगुण नव मिथ्यादृष्टियोळु अष्टादश स्थानंगळप्पुवु। चतुःसासादनगुणस्थानदोळु नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु। अष्टौ मिश्रगुणस्थानदोळें टु सत्वस्थानंगळप्पुवु। असंयतचतुर्षु चत्वारिंशत् असंयतादि नाल्कु गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नाल्वत्तु नाल्वत्तु सत्वस्थानंगळप्पुवु। त्रिषूपशमकेषूपशांते च अपूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायरें ब मूवरुमुपशमकरोळमुपशान्तकषायनोळं प्रत्येकं चतुर्व्विंशतिः प्रत्येकमिप्पत्तनाल्कु इप्पत्तु नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु। चतुःक्षपकश्रेणियोळपूर्व्व-

प्रकृतयोऽपि ज्ञातव्याः। अथ गुणस्थानेषु स्थानसंख्या गाथाद्वयेनाह—

मिथ्यादृष्टौ सत्त्वस्थानान्यष्टादश, सासादने चत्वारि, मिश्रेऽष्टौ, असंयतादिषु चतुर्षु प्रत्येकं चत्वारिंशत्,

तिर्यंचायु दो, तथा नरकायु तिर्यंचायु, अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये छह जानना। 'च' शब्दसे क्षपकश्रेणीमें 'दस य दुगे' इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारसे घटायी गयीं प्रकृतियाँ जानना ॥३६१॥

आगे गुणस्थानोंमें स्थानोंकी संख्या दो गाथाओंके द्वारा कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें सत्त्वस्थान अठारह, सासादनमें चार, मिश्रमें आठ, असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें प्रत्येकमें चालीस, उपशम श्रेणीके तीन गुणस्थानोंमें तथा उपशान्त कषायमें

१. ब तान्यायुर्बन्धाबन्धविवक्षायामयोग्यंतगुणस्थानेषु सत्त्वस्थानान्याह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणनोळु नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु । षट्कृति अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु मूवत्तारु सत्वस्थानंगळप्पुवु । चतुः सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु । अष्टौ क्षीणकषायगुणस्थानदोळें टु सत्वस्थानंगळप्पुवु । चतुः सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु । षट् च भवंति सत्वस्थानानि अयोगिगुणस्थानदोळारु सत्वस्थानंगळप्पुविंतायुर्ब्बंधाऽबंधविवक्षेयोळयोगिकेवलि गुणस्थानावसानमाद गुणस्थानंगळोळु सत्वस्थानंगळ संख्ये पेळल्पट्टुवु । ततो भंगः अल्लिंद बळिक्कमा पेळद सत्वस्थानंगळगे भंगसंख्ये पेळल्पडुगुं :—

पण्णास बार छक्कदि वीससयं अडदाल दुसु ताल ।
अडवीसा बासट्ठी अडचउवीसा य अट्ठ चउ अट्ठा ॥३६४॥

पंचाशत् द्वादश षट्कृति विंशत्युत्तरशतमष्ट चत्वारिंशद्द्वयोश्चत्वारिंशदष्टाविंशतिर्द्वाषष्टिरष्ट चतुरुत्तरविंशतिश्चाष्टचतुरष्टौ ॥

पंचाशत् मिथ्यादृष्टियोळपदिनें टु स्थानंगळगय्वत्तु भंगंगळप्पुवु । द्वादश सासादनन नाल्कुं स्थानंगळगे पन्नेरडु भंगं गळप्पुवु । षट्कृति मिश्रनें टुं स्थानंगळगे षट्त्रिंशद्भंगंगळप्पुवु । विंशत्युत्तरशतं असंयतन नाल्वत्तुं स्थानंगळगे नूरिप्पत्तु भंगंगळप्पुवु । अष्टचत्वारिंशत् देशसंयतन नाल्वत्तु सत्वस्थानंगळगे नाल्वत्तें टु भंगंगळप्पुवु । द्वयोश्चत्वारिंशत् प्रमत्ताप्रमत्तरुगळ नाल्वत्तुं नाल्वत्तुं सत्वस्थानंगळगे नाल्वत्तुं नाल्वत्तुं भंगंगळप्पुवु । अष्टाविंशतिः अपूर्व्वकरणनुभयश्रेणिय इप्पत्तें टु सत्वस्थानंगळिगिप्पत्तें टु भंगंगळप्पुवु । द्विषष्टिः अनिवृत्तिकरणनुभयश्रेणिय अरुवत्तुं स्थानंगळगय्वत्ते-

---

त्रिषूपशमकेषूपशांते च प्रत्येकं चतुर्विंशतिः, क्षपकापूर्वकरणे चत्वारि, अनिवृत्तिकरणे षट्त्रिंशत्, सूक्ष्मसांपराये चत्वारि, क्षीणकषायेऽष्टौ, सयोगे चत्वारि, अयोगे षट् । एवमायुर्बंधाबंधविवक्षायामयोग्यंतगुणस्थानेषु सत्त्वस्थानान्युक्तानि ॥३६२–३६३॥ ततोऽग्रे तेषां भंगसंख्यामाह—

मिथ्यादृष्टावष्टादशस्थानानां भंगाः पंचाशत् । सासादनस्य चतुर्णां द्वादश । मिश्रस्याष्टानां षट्त्रिंशत् । असंयतस्य चत्वारिंशतो विंशत्युत्तरशतं । देशसंयतस्य चत्वारिंशतोऽष्टचत्वारिंशत् । प्रमत्तस्याप्रमत्तस्य च चत्वारिंशतश्चत्वारिंशत् । उभयश्रेण्यपूर्वकरणस्याष्टाविंशतेरष्टाविंशतिः । उभयश्रेण्यनिवृत्तिकरणस्य षष्टेर्द्वाषष्टिः ।

प्रत्येकमें चौबीस सत्त्वस्थान होते हैं । क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरणमें चार, अनिवृत्तिकरणमें छत्तीस, सूक्ष्म साम्परायमें चार, क्षीणकषायमें आठ, सयोगीमें चार और अयोगीमें छह सत्त्वस्थान होते हैं । इस प्रकार आयुके बन्ध और अबन्धकी विवक्षामें अयोगी पर्यन्त चौदह गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान कहे ॥३६२-३६३॥

आगे इन स्थानोंके भंगोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थानोंके पचास भंग होते हैं । सासादनके चार स्थानोंके बारह भंग होते हैं । मिश्रके आठ स्थानोंके छत्तीस भंग होते हैं । असंयतके चालीस स्थानोंके एक सौ बीस भंग होते हैं । देशसंयतके चालीस स्थानोंके अड़तालीस भंग होते हैं । प्रमत्त और अप्रमत्तके चालीस स्थानोंके चालीस भंग होते हैं । दोनों श्रेणियों सम्बन्धी अपूर्वकरणके अठाईस स्थानोंके अठाईस भंग होते हैं । दोनों श्रेणी सम्बन्धी अनिवृत्तिकरणके

Jain Education International - For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रडु भंगंगळप्पुवु । अष्टाविंशतिः सूक्ष्मसांपरायनुभयश्रेणिय इप्पत्तें टु सत्वस्थानंगळिगिप्पत्तें टु भंगंगळप्पुवु । चतुर्विंशतिः उपशांतकषायन इप्पत्तनाल्कुं सत्वस्थानंगळिगिप्पत्तनाल्कुं भंगंगळप्पुवु । अष्ट क्षीणकषायनें टुं सत्वस्थानंगळगें टु भंगंगळप्पुवु । चतुःसयोगिकेवलिय नाल्कुं सत्वस्थानंगळगे नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । अष्टौ अयोगिकेवलिय आरुं सत्वस्थानंगळगें टुं भंगंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

*	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अपू	अनि	सू	उ	क्षी	स	अ
स्थानं	१८	४	८	४०	४०	४०	४०	२४।४	२४।३६	२४।४	२४	८	४	६
भंगः	५०	१२	३६	१२०	४८	४०	४०	२८	६२	२८	२४	८	४	८

अनंतरं मिथ्यादृष्टियोळु पदिनें टुं स्थानंगळगे प्रकृतिसंख्येयनायुर्बंधाबंधविवक्षेयिदं पेळदपरु :—

दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्करसं सत्तरसमूणवीसमिगिवीसं ।
हीणा सव्वे सत्ता मिच्छे बद्धाउगिदरमेगूणं ॥३६५॥

द्वित्रिषट्सप्ताष्टनवैकादशसप्तदशैकान्नविंशत्येकविंशतिहीनाः । सर्व्वसत्वानि मिथ्यादृष्टौ बद्धायुषीतरस्मिन्नेकोनं ॥

बद्धायुषि मिथ्यादृष्टौ बद्धायुष्यनप्प मिथ्यादृष्टियोळु द्विहीन त्रिहीन षड्हीन सप्तहीनाष्टहीन नवहीनैकादशहीन सप्तदशहीनैकान्नविंशतिहीनैकविंशतिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वमागुत्तं विरलु सत्वस्थानंगळु पत्तु १० । अबद्धायुष्यनोळु मत्तोंदोंदु प्रकृतिहीनमागुत्तं विरलु सत्वस्थानंगळवुं

उभयश्रेणीसूक्ष्मसांपरायस्याष्टाविंशतेरष्टाविंशतिः । उपशांतकषायस्य चतुर्विंशतेश्चतुर्विंशतिः । क्षीणकषायस्याष्टानामष्टौ । सयोगकेवलिनश्चतुर्णां चत्वारः । अयोगिनः षण्णामष्टौ ॥३६४॥ अथ मिथ्यादृष्टावष्टादशस्थानानां प्रकृतिसंख्यामायुर्बंधाबंधविवक्षयाह—

बद्धायुष्के मिथ्यादृष्टौ द्वित्रिषट्सप्ताष्टनवैकादशसप्तदशैकान्नविंशतिभिः पृथग्घीने सत्त्वे स्थानानि दश ।

साठ स्थानोंके बासठ भंग होते हैं। दोनों श्रेणीसम्बन्धी सूक्ष्मसाम्परायके अठाईस स्थानोंके अठाईस भंग होते हैं। उपशान्तकषायके चौबीस स्थानोंके चौबीस भंग होते हैं। क्षीणकषायके आठ स्थानोंके आठ भंग होते हैं। सयोगकेवलीके चार स्थानोंके चार भंग होते हैं। अयोगकेवलीके छह स्थानोंके आठ भंग होते हैं ॥३६४॥

आगे मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थानोंकी प्रकृति संख्यामें आयुके बन्ध और अबन्धकी विवक्षापूर्वक कहते हैं—

जिसके आगामी आयुका बन्ध हुआ है उसे बद्धायु कहते हैं और जिसके आगामी आयुका बन्ध नहीं हुआ उसे अबद्धायु कहते हैं। बद्धायु मिथ्यादृष्टिके सर्व सत्त्वरूप एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंमें-से दो प्रकृति हीन पहला स्थान है। इसी प्रकार द्वितीयादि स्थान क्रमसे तीन, छह, सात, आठ, नौ, ग्यारह, सतरह, उन्नीस और इक्कीस प्रकृति हीन होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्तु १०। अंतुं कूडि सत्वस्थानंगळिप्पत्तरोळु पुनरुक्तस्थानद्वयमं कळेदु शेष सत्वस्थानंगळु पदिनेंटप्पुवु। संदृष्टिः—

	० २	० ३	० ६	० ७	० ८	० ९	० ११	० १७	० १९	० २१
अबद्धायुष्क मि० ८	१४६ भं १	१४५ ५	१४२ १	१४१ ५	१४० ५	१३९ ५	१३७ १	१३१ १	१२९ १	१२७ १
अबद्धायुष्क मि०	१४५	१४४	१४१	१४०	१३९	१३८	१३६	१३०	१२९	१२७
भं	१	४	१	४	४	४	४	२	पुनरुक्त	पुनरुक्त

इल्लि द्वित्र्यादिहीन प्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळ्वपरु :—

तिरियाउगदेवाउगमण्णदराउगदुगं तहा तित्थं।
देवतिरियाउसहियाहारचउक्कं तु छच्चेदे ॥३६६॥
आउदुगहारतित्थं सम्मं मिस्सं च तह य देवदुगं।
णारयछक्कं च तहा णराउउच्चं च मणुवदुगं ॥३६७॥

तिर्य्यगायुर्द्देवायुरन्यतरायुर्द्धिकं तथा तीर्त्थं। देवतिर्य्यगायुःसहिताहारचतुष्कं तु षट् चैताः ॥

आयुर्द्वयाहारतीर्त्थं सम्यक्त्वं मिश्रं च तथा च देवद्विकं। नारकषट्कं च तथा नरायुरुच्चं च मानवद्विकं ॥

तिर्य्यगायुष्यमुं देवायुष्यमुमें बेरडुं अन्यतरायुर्द्विकमुं तीर्त्थमुमें ब मूरुं देवायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुमाहारचतुष्टयमें बारुं, अन्यतरायुर्द्वयं तीर्त्थमाहारचतुष्टयमें बेळुं सम्यक्त्वप्रकृतिसहितमप्पें टुं मिश्रप्रकृतिसहितमप्पों भत्तुं देवद्विकसहितमप्प पन्नों दुं नारकषट्कसहितमप्प पदिनेळु

अबद्धायुष्के पुनरेकैकस्मिन् हीने दश। एवं विंशतिस्थानेषु पुनरुक्तद्वयेऽपनीतेऽष्टादश भवंति ॥३६५॥ ताः[2] अपनीतप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

तिर्यग्देवायुषी अन्यतरायुषी तीर्थं चेति देवतिर्यगायुषी आहारकचतुष्कं चेति अन्यतरायुषी तीर्थमाहा-

ये दस स्थान तो बद्धायुके हैं। अबद्धायुके इनमें-से एक-एक अधिक प्रकृति हीन स्थान होते हैं यह भी दस होते हैं। इस प्रकार बीस स्थानोंमें-से दो पुनरुक्त स्थान घटानेपर मिथ्यादृष्टिमें सब अठारह स्थान होते हैं ॥३६५॥

आगे घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

किसी जीवके तिर्यंचायु-देवायुके बिना एक सौ छियालीसका सत्त्व होता है। किसीके भुज्यमान बध्यमान दो आयुके बिना कोई दो आयु और तीर्थंकरके बिना एक सौ पैंतालीस-

१. आहारकशरीरबंधनसंघात अंगोपांगमें ब। २. ब ताः हीनप्र°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरायुष्यमुमुच्चैर्ग्गोत्रमुं सहितमागि हत्तो भत्तु मनुष्यद्विकसहितमाविप्पत्तोंदु रहितमाव सर्व्वसत्व प्रकृतिगळु सत्वस्थानमक्कुमंतु बद्धायुष्यनोळु सत्वस्थानंगळु पत्तु १०। अबद्धायुष्यनोळु भुज्यमानायुष्यमोंदे सत्वमप्पुदरिना पत्तुं स्थानंगळ प्रकृतिगळोळोंदोंदायुष्यमं कळेदु शेषप्रकृतिगळ सत्वस्थानंगळुं पत्तुं १०। अंतिप्पत्तुं सत्वस्थानंगळोळु पुनरुक्तस्थानंगळ मुंदे पेळल्पडुवववं कळेदु शेषसत्वस्थानंगळु पदिनेंटप्पु १८ ववक्के भंगंगळय्वत्तप्पुववें तें दोडे रचनेयोळु पेळ्व भंगंगळानुसारियागि परमगुरूपदेशदिदं भंगंगळु पेळल्पडुवुवल्लि प्राग्बद्ध नरकायुष्यनप्प मनुष्य मिथ्यादृष्टि गृहीतवेदकसम्यक्त्वनसंयतगुणस्थानवर्त्ति केवलिद्वयोपांतवोळु षोडशभावनापरिणतं तीर्त्थंकरपुण्यबंधमं प्रारंभिसि तीर्थसत्कर्म्मनागि मरणकालदोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रावशेषमादागळु सम्यग्दर्शनमं विराधिसि मिथ्यादृष्टियादातंगे तिर्य्यगायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमागि

रचतुष्कं चेति ता एव सप्त, सम्यक्त्वप्रकृत्याष्टौ, पुनर्मिश्रप्रकृत्या नव, देवद्विकेनैकादश, नारकषट्केन सप्तदश, नरायुरुच्चैर्गोत्राभ्यामेकान्नविंशतिः, मनुष्यद्विकेनैकविंशतिः, तेषामष्टादशस्थानानां पंचाशद्भंगाः रचनानुसारेण परमगुरूपदे[1]शेनोच्यंते—

तत्र कश्चित् प्राग्बद्धनरकायुर्मनुष्यो मिथ्यादृ[2]ष्टिर्गृहीतवेदकसम्यक्त्वोऽसंयतः केवलिद्वयोपांते षोडशभावनाभिस्तीर्थबंधं प्रारभ्य तत्स[3]त्कर्मा भूत्वा मरणकाले भुज्यमानायुष्यंतर्मुहूर्तेऽवशिष्टे मिथ्यादृष्टिर्जातस्तस्य

का सत्त्व होता है। किसीके देवायु, तिर्यंचायु और आहारक चतुष्कके बिना एक सौ बयालीसका सत्त्व होता है। किसीके कोई दो आयु, आहारक चतुष्क और तीर्थंकरके बिना एक सौ इकतालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त सात और सम्यक्त्व मोहनीयके बिना एक सौ चालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त आठ और मिश्र मोहनीयके बिना एक सौ उनतालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त नौ और देवगति-देवानुपूर्वी बिना एक सौ सैंतीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त ग्यारह तथा नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, अंगोपांग बन्धन संघात, इस नारकषट्कके बिना एक सौ इकतीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त सतरह, नरकायु, उच्चगोत्र इन उन्नीसके बिना एक सौ उनतीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त उन्नीस और मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वीके बिना एक सौ सत्ताईसका सत्त्व होता है। इस प्रकार ये दस स्थान बद्धायुके जानना। अबद्धायुके केवल भुज्यमान आयुकी ही सत्ता होती है, बध्यमान आयुकी सत्ता नहीं होती। अतः पूर्वोक्त सत्त्वमें एक-एक बध्यमान आयु हीन करनेसे अबद्धायुके भी दस स्थान होते हैं। उनमें-से दो पुनरुक्त स्थान घटानेपर मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थान होते हैं। अर्थात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक जीवके एक कालमें उक्त प्रकारसे प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है। इससे भिन्न प्रकारसे कभी भी नहीं पायी जाती।

अब इन अठारह स्थानोंके पचास भंग परमगुरुके उपदेशानुसार कहते हैं—

जिसने पहले नरकायुका बन्ध किया है वह मिथ्यादृष्टि मनुष्य वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करके असंयत गुणस्थानवर्ती होकर केवली श्रुतकेवलीके पासमें सोलह भावनाओंके

---

१. ब °देशादुच्यंते। २. ब °ष्टिः वेदकसम्यग्दृष्टी संयतो भूत्वा। ३. ब तत्सत्व सन् मरणे भु°।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कु । निदो्ंदे भंगमेकें दोडे बध्यमानेतर "भवः" तिर्य्यग्मनुष्यायुष्यनप्प भुज्यमानमनुष्यायुष्यंगसंयतसम्यग्दृष्टिगे तीर्त्थबंधप्रारंभं निरवदिदमिल्लेकें दोडे तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते एंब नियममुंटप्पुदरिंदं । बध्यमानदेवायुष्यनप्प मनुष्याऽसंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळ्गे सम्यग्दर्शनच्युतियिल्ल । भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यं मिथ्यादृष्टियल्लनेकें दोडे षण्मासावशेषमागुत्तिरलु बद्धमनुष्यायुष्यंगे गर्भावतरणकल्याणमुंटप्पुदरिदमदु कारणमागि भंगमोंदे सिद्धमक्कु—। मा जीवं नारकनागि पर्य्याप्तिनेरेदन्तर्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतं मिथ्यादृष्टियागिरकुमबद्धायुष्यनप्पुदरिंदं । भुज्यमाननरकायुष्यमल्लदितरतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळ् मूरुं रहितमागि नूर नाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमिदोंदे भंगं । संदृष्टि :—

तिर्यग्देवायुरभावात्षट्चत्वारिंशच्छतं सत्वस्थानं भवति । (१) अस्य तु भंगः बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुर्भुज्यमानमनुष्यायुःसंयतयोस्तीर्थबंधप्रारंभाभावात्, (२) बध्यमानदेवायुर्मनुष्यासंयतादिचतुर्णां सम्यग्दर्शनच्युत्यभावात् । (३) भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुषो मिथ्यादृष्टिर्नास्ति कुतः ? षण्मासावशेषे संभवत्तीर्थकरस्य तदा गर्भावतरणकल्याणसद्भावात् मिथ्यादृष्टित्वाघटनाच्चैक एव । स एव जीवो नारको भूत्वा पर्याप्तिनिष्ठान्तर्मुहूर्तं मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा तिष्ठति तस्याबद्धायुष्कत्वाद्भुज्यमानायुष्यादितरेषामभावात्पंचचत्वारिंशच्छतं सत्वस्थानं भवति । तत्रापि भंग एक एव । संदृष्टि:—

द्वारा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ कर तीर्थंकरकी सत्तावाला होकर मरणकाल आनेपर भुज्यमान आयुमें एक अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यादृष्टि हुआ। उस जीवके तिर्यंचायु और देवायुका अभाव होनेसे एक सौ छियालीस प्रकृतिस्वरूप सत्त्व स्थान होता है। यहाँ भंग एक ही होता है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जिस असंयत सम्यग्दृष्टी मनुष्यने तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। और जिसने देवायुका बन्ध कर लिया है वह असंयत आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वमें नहीं आता। तथा भुज्यमान नरकायु और बध्यमान मनुष्यायु मिथ्यादृष्टि नहीं होता क्योंकि जिसके तीर्थंकरकी सत्ता है ऐसा नारकी नरकायुके छह मास शेष रहनेपर उसका गर्भावतरण कल्याणक होता है तब वह सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यादृष्टि नहीं होता। अतः एक सौ छियालीसके सत्त्वमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु यह एक ही भंग होता है। तथा अबद्धायुके भुज्यमान एक आयुका सत्त्वके सिवाय अन्य आयुका सत्त्व सम्भव नहीं है अतः देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायुके बिना एक सौ पैंतालीसका सत्त्वस्थान होता है। उसमें भी भुज्यमान नरकायु यह एक ही भंग होता है। क्योंकि वही भुज्यमान नरकायु तथा तीर्थंकरकी सत्तावाला मनुष्य जब मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तब उसके निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मिथ्यादृष्टिपना रहता है। उस अवस्थामें अबद्धायु होनेसे भुज्यमान एक नरकायुके सत्त्वके सिवाय अन्य तीन आयुका सत्त्व न होनेसे एक सौ पैंतालीसका सत्त्व होता है, अन्यके नहीं होता।

---

१. बद्धतिर्यग्मनुष्यायुष्यदोलु तीर्त्थसत्वं दोरेकोळ्ळदेंदुमुंदे तावे पेळ्दपरप्पुदरिंदमिल्लियुमदे तात्पर्यं ।

२. ब°ष्टित्वा भावावेकभंगमेव । स एव जीवो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब	१४६ १
अब	१४५ १

मत्तं द्वितीयबध्यमानायुस्थानदोळु चतुर्गतिगळ विवक्षित भुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुर्द्वयमुं तीर्त्थमुमितु मूरुं रहितमागि नूरनाल्वत्तदु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु पन्नेरडु भंगंगळप्पुवदेंतेंदोडे भुज्यमाननारकं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनुं १। भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमाननारकायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानदेवायुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानमनुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानदेवायुष्यनु १। भुज्यमानदेवं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनु १। भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यनु १ मेंदितु द्वादश भंगंगळप्पुवु। संदृष्टिः—

बध्यमान	ति	म	न	ति	म	दे	न	ति	म	दे	ति	म
भुज्यमान	ना	ना	ति	ति	ति	ति	म	म	म	म	दे	दे

ब	१४६ १
अ	१४५ १

पुनः द्वितीयं बध्यमानायुःस्थानं चतुर्गतिविवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयाच्छेषायुर्द्वयतीर्थाभावात्पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिकं। तत्र भंगाः भुज्यमाननारकबध्यमानतिर्यगायुः १ भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुः २ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमाननरकायुः ३ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानतिर्यगायुः ४ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुः ५ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानदेवायुः ६ भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननारकायुः ७ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्यगायुः ८ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानमनुष्यायुः ९ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुः १० भुज्यमानदेवबध्यमानतिर्यगायुः ११ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुश्चेति १२ द्वादश भवंति।

बद्धायुका दूसरा स्थान चारों आयुओंमें-से भुज्यमान और बध्यमान दो आयुके सिवाय शेष दो आयु और तीर्थंकर इन तीनके बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंके सत्त्वरूप होता है। वहाँ बारह भंग इस प्रकार हैं—१ भुज्यमान नरकायु बध्यमान तिर्यंचायु, २ भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु, ३ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान नरकायु, ४ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु, ५ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु, ६ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायु, ७. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु, ८ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यंचायु, ९. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु, १० भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु, ११ भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यंचायु, १२ भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु।

ई द्वादश भंगंगळोळु भुज्यमानतिर्य्यगायुष्यमुं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यभंगमुं भुज्यमानमनुष्यायुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यभंगमुमिवेरडुं पुनरुक्तभंगंगळु। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमाननरकायुष्यनुं १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनुं १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनु १। भुज्यमानदेवं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनुं १। भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १ मितय्दुं भंगंगळु समंगळु। पुनरुक्तसमविहीनंगळु भंगंगळप्पुवरिदं शेषभुज्यमाननारकं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनु १। भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंच बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानदेवायुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानदेवायुष्यनु १ मेंबय्दुं ५ भंगंगळं ग्रहणमक्कुं। संदृष्टिः—

बध्यमान	ति	म	म	दे	दे
भुज्यमान	ना	ना	ति	ति	म

	१	१	०	०	१	१	०	०	०	१	०	०
बध्यमा.	ति	म	ना	ति	म	दे	ना	ति	म	दे	ति	म
भुज्यमा.	ना	ना	ति	ति	ति	ति	म	म	म	म	दे	दे

एतेषु भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुर्भुज्यमानबध्यमानमनुष्यायुषोः पुनरुक्तत्वात् भुज्यमानतिर्यग्बध्यमाननरकायुः १–भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुः २–भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्यगायुः ३–भुज्यमानदेवबध्यमानतिर्यगायुः ४–भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुषां समत्वाच्च शेषाः पंचैव ग्राह्याः। संदृष्टिः—

बध्य	ति	म	म	दे	दे
भुज्य	ना	ना	ति	ति	म

इस प्रकार बारह भंग होते हैं। इनमें-से भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु तथा भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु ये दो भंग पुनरुक्त हैं क्योंकि दोनों भंगोंमें भुज्यमान और बध्यमान प्रकृति एक-सी है। शेष दशमें-से भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान नरकायु और भुज्यमान नरकायु बध्यमान तिर्यंचायु ये दो भंग समान हैं क्योंकि दोनोंमें ही नरकायु और तिर्यंचायुकी सत्ता है। इसलिए दोनोंमें-से एक ही भंग लेना। इसी प्रकार भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु और भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु, इन दो भंगोंमें समानता है। भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यंचायु और भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु इनमें भी समानता है। भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यंचायु और भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायुमें समानता है, भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु और भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायुमें समानता है। अतः एक एक ही भंग गिननेसे पाँच भंग जानना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबध्यमान द्वितीयसत्वस्थानदोळु अबध्यायुष्यनं कुरुत्तु विवक्षितायुष्यमोंदं कळेवु नूर नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिसत्वस्थानक्कं भुज्यमाननारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवनुमें ब नाल्कुं भंगंगळप्पुवल्लि प्रत्येकमितरायुस्त्रयमुं तीर्त्थमुं रहितमागि नूर नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं। संदृष्टि :—

बध्यमान	१४५ ५
अबध्यमान	१४४ ४

तृतीयबध्यमानायुःस्थानदोळु स्वामियप्प मिथ्यादृष्टिजीवं मुन्नमप्रमत्तगुणस्थानमं पोर्द्दियाहारक चतुष्टयमनुपार्ज्जिसदे सत्वरहितं मेणऽप्रमत्तगुणस्थानमं पोर्द्दिदोनाहारकचतुष्टयमनुपार्ज्जिसि क्रमदिदं मिथ्यादृष्टियागियाहारकचतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडिदत्सत्वरहितजीवं मेणु मनुष्यं बद्धनरकायुष्यं गृहीतवेदकसम्यक्त्वनसंयतसम्यग्दृष्टिकेवलिद्वयोपांतदोळु षोडशभावनापरिणतं तीर्त्थंकरपुण्यबंधमं प्रारंभिसि तीर्त्थंकर सत्कर्म्मनागि मरणकालदोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रावशेषमागुत्तिरलु द्वितीयावितृतीयपृत्थ्विपर्य्यंतं जिगमिषुमिथ्यादृष्टियागि वर्त्तिप-

तदबध्यमानायुःस्थानं तदेकं बद्धायुर्विना चतुश्चत्वारिंशच्छतप्रकृतिकं। तस्य भंगाश्चतुर्गतिभुज्यमानायुर्भेदाच्चत्वारः। संदृष्टिः—

बध्य	१४५ ५
अब	१४४ ४

कश्चिन्मिथ्यादृष्टिः प्रागप्रमत्तगुणस्थानं गत्वाऽनुपार्जिताहारकचतुष्टयतया तदसत्त्वाऽथवा उपार्ज्य क्रमेण मिथ्यादृष्टिर्भूत्वोद्वेल्य तदसत्वः सन् मनुष्यो बद्धनरकायुर्गृहीतवेदकसम्यक्त्वोऽसंयतः केवलिद्वयोपांते षोडशभावनाभिस्तीर्थंकरपुण्यबंधं प्रारभ्य तत्सकर्मा भूत्वा मरणे भुज्यमानायुष्यंतर्मुहूर्तेऽवशिष्टे द्वितीयतृतीयपृथ्व्योर्ग-

अबद्धायुके दूसरे स्थानमें एक सौ पैंतालीसमें-से एक बध्यमान आयुकी सत्ता घटानेसे एक सौ चवालीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होता है। इसमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग जानना।

कोई मिथ्यादृष्टि जीव पहले अप्रमत्त गुणस्थानमें गया किन्तु वहाँ उसने आहारक चतुष्कका बन्ध नहीं किया। अतः उसके आहारक चतुष्कका सत्त्व नहीं है। अथवा अप्रमत्त गुणस्थानमें आहारक चतुष्कका बन्ध करके पीछे मिथ्यादृष्टि होकर आहारक चतुष्ककी उद्वेलना कर दी। अतः उसके भी आहारक चतुष्कका सत्त्व नहीं रहा। ऐसा मनुष्य पहले नरकायुका बन्ध करके पीछे वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करके असंयत गुणस्थानवर्ती होकर केवली श्रुतकेवलीके निकट सोलह भावनाके द्वारा तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करके तीर्थंकर-

१. ब अबध्यमानद्वितीयसत्वस्थाने चाबद्धायुष्कं प्रति विवक्षितैकैकायुरभावाच्चतुश्चत्वारिंशत्शतम्। तद्भंगाश्चत्वारः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निदों दे भंगमक्कु। मातंगे तिर्य्यगायुष्यमुं देवायुष्यमुमाहारकचतुष्टयमुमितारुं प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तेरडु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमितरबद्धतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यरोळु तीर्त्थसत्वंदोरेकोळ्ळदु। बद्धदेवायुष्यं तीर्त्थंकरसत्कर्म्मनादोडे सम्यक्त्वच्युतियिल्ल। मनुष्यनल्लदितरगतित्रयदोळु तीर्त्थंकर-बंधप्रारंभमुमिल्लप्पुदरिदं नरकगतियोळं देवगतियोळं तीर्त्थंकरबंधमसंयतरुगळोळें तु पेळल्पट्टुदेनल्वेड। .तीर्त्थबंधप्रारंभं मनुष्यगतियोळेयक्कुं। सम्यक्त्वच्युतियिल्लदिर्द्दोडुत्कृष्टदिदं तीर्त्थनिरंतरबंधाद्धे। अंतर्म्मुहूर्त्ताधिकाष्टवर्षन्यूनपूर्व्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमित-मक्कुमप्पुदरिदं। अल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तु मनुष्यायुष्यमं कळेदु भुज्यमाननारकं द्वितीय तृतीय पृथ्वियोळपर्य्याप्तकालदोळु मिथ्यादृष्टियप्पुदरिंदमातनोळु तिर्य्यगायुष्यमुं मनुष्यायुष्यमुं देवायुष्यमुमाहारकचतुष्टयमुं रहितमागि नूरनाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमदों दे भंगमक्कुं। संदृष्टिः—

मिथ्यमानमिथ्यादृष्टिः स्यात् तस्य तृतीयं बध्यमानायुःस्थानं तिर्यग्देवायुराहारकचतुष्काभावाद्द्वाचत्वारिंशच्छतकं भवति। तस्य भंग एक एव बद्धतिर्यग्मनुष्यायुष्कयोस्तीर्थसत्त्वाभावात्। बद्धदेवायुष्के तत्सत्त्वेऽपि सम्यक्त्वप्रच्युत्यभावाच्च। तर्हि मनुष्य एव तत्प्रारंभे, देवनारकासंयतेऽपि तद्बंधः कथं? सम्यक्त्वाप्रच्युता-वुत्कृष्टतन्निरंतरबंधकालस्यांतर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षन्यूनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रत्वेन तत्रापि संभवात्। तदबद्धायुःस्थानं मनुष्यायूरहितमिति तिर्यग्मनुष्यदेवायुराहारकचतुष्काभावादेकचत्वारिंशच्छतकं। तस्य द्वितीयतृतीयपृथ्व्यपर्याप्तनारकमिथ्यादृष्टेरेव संभवाद् भंग एकः। संदृष्टिः—

की सत्तासहित हो। तथा भुज्यमान आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर दूसरे-तीसरे नरकमें जानेके योग्य मिथ्यादृष्टि हो। उस जीवके तीसरा बद्धायु स्थान तिर्यंचायु, देवायु और आहारक चतुष्क बिना एक सौ बयालीस प्रकृतिरूप होता है। उसमें भंग एक ही होता है। क्योंकि जिसने तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता। और जिसने देवायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थंकरकी सत्ता हो सकती है किन्तु वह सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि नहीं होता।

शंका—यदि मनुष्य ही तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करता है तो देव और नारक असंयत सम्यग्दृष्टीके तीर्थंकरका बन्ध कैसे कहा है?

समाधान—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ तो मनुष्यके ही होता है। पीछे यदि सम्यक्त्वसे भ्रष्ट न हो तो तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट निरन्तर बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षहीन दो पूर्व कोटि अधिक तैंतीस सागर प्रमाण होनेसे देव नारकी असंयत सम्यग्दृष्टीके भी उसका बन्ध सम्भव है।

तीसरा अबद्धायु स्थान तीन आयु और आहारक चतुष्क बिना एक सौ इकतालीस प्रकृति रूप है क्योंकि इसमें मनुष्यायुका भी सत्व नहीं है। सो तीर्थंकरकी सत्तावाला मनुष्य जिसने पहले नरकायुका बन्ध किया था मिथ्यादृष्टि होकर मरण करके दूसरे-तीसरे नरकमें जाकर अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि ही रहता है। उसके भुज्यमान नरकायु रूप एक ही भंग होता है। चौथा बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके बिना शेष दो आयु, आहारक चतुष्क और तीर्थंकरका अभाव होनेसे एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बध्यमान	१४२ १
अबध्यमान	१४१ १

चतुर्थबध्यमानायुष्यस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लदन्यतरायुर्द्वयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्थंकरमुं रहितमागि नूर नाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु मुंपेळ्द द्वादश भंगंगळोळु पुनरुक्तसमभंगविहीन पंचभंगंगळप्पु ५ वल्लियुमबद्धायुष्यनं कुरुत्तु गतिचतुष्टयंगळोळितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्थमुरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु चतुर्गतिजर भेददिदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

बध्यमान	१४१ ५
अबध्यमान	१४० ४

पंचमबध्यमानायुस्थानदोळु विवक्षित भुज्यमान बध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुर्द्वयमं आहारकचतुष्टयमुं तीर्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितेंदु प्रकृतिगळु रहितमाद नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळंमुं पेळ्द द्वादशभंगंगळोळु पुनरुक्तसमविहीनपंचभंगंगळप्पु ५ वल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तु गतिचतुष्टयंगळोळितरायुस्त्रयमुमाहारचतुष्टयमुं तीर्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितों भत्तु

ब	१४२ १
अ	१४१ १

चतुर्थं बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्भ्यामितरायुर्द्वयाहारचतुष्कतीर्थाभावादेकचत्वारिंशच्छतकं । तत्र प्रागुक्तद्वादशभंगेषु पुनरुक्तसमभंगान्विहाय पंच भंगा भवंति । तदबद्धायुःस्थानं इतरायुस्त्रयाहारकचतुष्कतीर्थाभावाच्चत्वारिंशच्छतकं । तत्र चातुर्गतिकभेदाद् भंगाश्चत्वारः । संदृष्टि :—

ब	१४१ ५
अ	१४० ४

पंचमं बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्भ्यामितरायुर्द्वयाहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वप्रकृत्यभावाच्चत्वारिंशच्छतकं । तत्र प्राग्वद्भंगाः पंच । तदबद्धायुःस्थानं एकान्नचत्वारिंशच्छतकं । तत्र

वहाँ पूर्वोक्त बारह भंगोंमें-से पुनरुक्त सात भंगोंको छोड़ पाँच भंग होते हैं । चौथा अबद्धायुस्थान भुज्यमान बिना तीन आयु आहारक चतुष्क तीर्थंकरके बिना एक सौ चालीस प्रकृतिरूप होता है । उसमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं ।

पाँचवाँ बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके सिवाय शेष दो आयु आहारक चतुष्क, तीर्थंकर और सम्यक्त्व मोहनीयका अभाव होनेसे एक सौ चालीस प्रकृतिरूप है । उसमें पूर्वोक्त बारह भंगोंमें-से पाँच भंग होते हैं । पाँचवाँ अबद्धायस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिरहितमाव नूरमूवत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानवोळु चतुर्गतिजरभेदविं नाल्कु भंगंगळप्पुवु। संदृष्टिः—

बध्यमान	१४० ५
अबध्यमान	१३९ ४

षष्ठबध्यमानस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लवितरायुर्द्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियु मिश्रप्रकृतियुं मितों भत्तं प्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि पुनरुक्तसमविहीनचतुर्गतिसंबंधि भंगंगळप्पु ५ मप्पुवल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तु चतुर्गतिय विवक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लवितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं मितु वशप्रकृतिरहितमागि नूर मूवत्तें टु प्रकृतिसत्वस्थानवोळु चतुर्गतिजर भेदविंदं नाल्कु भंगंगळप्पुवु। संदृष्टिः —

बध्यमान	१३९ ५
अबध्यमान	१३८ ४

चातुर्गतिकभेदाद्भंगाश्चत्वारः। संदृष्टि—

ब	१४० ५
अ	१३९ ४

षष्ठं बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्भ्यामितरायुर्द्विकाहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वमिश्राभावादेकान्नचत्वारिंशच्छतकं। तत्र प्राग्वद्भंगाः पंच। तदबद्धायुःस्थानमष्टत्रिंशच्छतकं। तत्र चातुर्गतिकभेदाद्भंगाश्चत्वारः। संदृष्टिः—

ब	१३९ ५
अ	१३८ ४

पूर्वोक्त एक सौ चालीसमें-से बध्यमान आयुके बिना एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप होता है। उसमें चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं।

छठा बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके बिना शेष दो आयु आहारकचतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीयका अभाव होनेसे एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप है। उसके भंग पूर्ववत् पाँच हैं। छठा अबद्धायु स्थान पूर्वोक्त एक सौ उनतालीसमें-से बध्यमान आयु बिना एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप है। भंग चार आयुकी अपेक्षा चार

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सप्तमबध्यमानायुःस्थानदोळु देवद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगे भुज्यमानतिर्य्यगायुष्यबध्यमानमनुष्यायुष्यमुमल्लवितरनारकदेवायुर्द्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं यितु पन्नोंदु प्रकृतिरहितमागि नूर मूवत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानैकेंद्रियविकलत्रयविशिष्टतिर्य्यगायुष्यं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनुं भुज्यमानतिर्य्यगायुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमें बेरडुं भंगंगळोळु पुनरुक्तभंगमं कळेदोडोंदे भंगमक्कुमल्लि अबद्धायुष्यंगे विरक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुमंतु पन्नेरडु प्रकृतिरहितमागि नूरमूवत्तारु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु :—

उव्वेल्लिददेवदुगे विदियपदे चारि भंगया एवं ।
सपदे पढमो विदियो सो चेव णरेसु उप्पण्णे ॥३६८॥
वेगुव्वट्ठ य रहिदे पंचिंदियतिरियजादिसुववण्णे ।
सुरछब्बंधे तदियो णरेसु तब्बंधणे तुरियो ॥३६९॥

उद्वेल्लनमं देवद्विकक्के माडिदेकेंद्रियविकलत्रयमिथ्यादृष्टिय द्वितीयपदमप्प अबद्धायुष्यस्थानदोळु ई प्रकारदिदं नाल्कु भंगंगळप्पुवाव प्रकारदिदमें दोडे देवद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रय भवदोळु प्रथम भंगमक्कुमा जीवं मनुष्यनागि पुट्टि अपर्य्याप्तकालदोळु "ओराळे वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं । मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ॥

एंब नियममुंटप्पुदरिंदमा मिथ्यादृष्टि सुरचतुष्कमं कट्टनप्पुदरिंदमल्लि द्वितीयभंगमक्कुमें-कें दोडे संख्यैकत्वमुं[1] प्रकृतिभेदमुमुंटप्पुदरिदं वैक्रियिकाष्टकमनुद्वेल्लनमं माडिदंतप्प एकेंद्रियविक-

सप्तमं बध्यमानायुःस्थानमुद्वेल्लितदेवद्विकैकेंद्रियविकलत्रयजीवस्य भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुषी त्यक्त्वा नारकदेवायुराहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकाभावात्सप्तत्रिंशच्छतकं । तत्र भंगः भुज्यमानैकेंद्रियविकलत्रयविशिष्टतिर्यग्बध्यमानतिर्यगायुष्कः भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुष्कश्चेति द्वयोः पुनरुक्तमेकं विनैकः ॥ ३६६–३६७ ॥

होते हैं। सातवाँ बद्धायुस्थान जिनके देवद्विककी उद्वेलना हुई है ऐसे एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीवोंके भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु बिना शेष देवायु नरकायु आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, देवद्विकका अभाव होनेसे एक सौ सैंतीस प्रकृतिरूप है। वहाँ भंग भुज्यमान एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय सम्बन्धी तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु तथा भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु ये दो होते हैं। उनमें-से भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु पुनरुक्त है। अतः एक ही भंग है ॥३६६–३६७॥

१. यिल्लि संख्यैकत्वमें तें दोडे आ जीवं मनुष्यनागि पुट्टि अल्लि अपर्य्याप्तकाल दोळु सुरचतुष्कमं कट्टनप्पुदरिं पूर्व्वदल्लिउद्वेल्लनमं माडिद सुरद्विकक्कें तात्कालिकसत्वं घटिसदु। पूर्व्वदल्लि कट्टिद वैक्रियिकद्विक सत्वमुंटप्पुदरिं संख्यैकत्वमुंटु। प्रकृतिभेदमें तें दोडे अल्लि तिर्य्यगायुष्यं भुज्यमानमिल्लि मनुष्यायुष्यमें ब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लत्रयजीवं बद्धतिर्य्यगायुष्यं पंचेंद्रियतिर्य्यग्जातियोळु बंदु पुट्टिद पर्य्याप्तियिदं मेळे सुरषट्कमं कट्टुत्तं विरलु नरकद्विकमनागळकट्टुवनल्लनप्पुदरिंदमल्लि संख्यैकत्वमुं प्रकृतिभेदमुमुंटप्पुदरिंदं तृतीयभंगमक्कु मा वैक्रियिकाष्टकमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रयजीवं बद्धमनुष्यायुष्यं मनुष्यरोळु बंदु पुट्टिद पर्य्याप्तियिदं मेले सुरषट्कमं कट्टुत्तं विरलु संख्यैकत्वमुं प्रकृतिभेदमुमुंटप्पुदरिंदं चतुर्त्थभंगंगळक्कुमें दितु नाल्कु भंगंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

बध्य०	१३७ १
अबध्य०	१३६ ४

अष्टमबध्यमानायुःस्थानदोळु नारकषट्कमनुद्वेल्लनमं माडिदंतप्पेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगे भुज्यमानतिर्य्यगायुर्ब्बध्यमानमनुष्यायुष्य मल्लदितरसुरनारकायुर्द्वयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं

तद्द्वितीयेऽबद्धायुःस्थाने षट्त्रिंशच्छतकोद्वेल्लितदेवद्विकस्यैकेंद्रियविकलत्रयमिथ्यादृष्टेः तस्मिन्नेव भवे भंग एकः । पुनस्तस्यैव मनुष्येषूत्पन्नस्यापर्याप्तकाले मिथ्यादृष्टित्वात्सुरचतुष्कस्याबंधाद् द्वितीयः, संख्यैकत्व-प्रकृतिभेदयोस्सद्भावात् । पुनस्तस्यैव वैक्रियिकाष्टके उद्वेल्लिते पंचेंद्रियतिर्यग्जातावुत्पन्नस्य पर्याप्तेरुपरि सुरषट्कबंधेन नरकद्विकस्याबंधात्तृतीयः । मनुष्येषूत्पन्नस्य सुरषट्कबंधे चतुर्थः । एवं चत्वारो भंगा भवंति ।

सातवाँ अबद्धायुस्थान एक सौ छत्तीस प्रकृतिरूप है। जिसके देवद्विककी उद्वेलना हुई है ऐसे एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवके उसी पर्यायमें आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, देवगति, देवानुपूर्वी तथा भुज्यमान तिर्यंचायु बिना शेष तीन आयु इन बारहके बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व पाया जाता है। अतः एक भंग तो यह हुआ। पुनः वही देवद्विककी उद्वेलना करनेवाला एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव मरकर मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न हुआ। वहाँ अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि होनेसे सुरचतुष्कका बन्ध नहीं होता। अतः पूर्वोक्त नौ और भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु, इस तरह बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व होता है यह दूसरा भंग है। दोनोंमें संख्या समान होते हुए भी प्रकृतिभेद होनेसे भंग है। पुनः जिसके वैक्रियिक अष्टककी उद्वेलना हुई है ऐसा वही एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें उत्पन्न हुआ। वहाँ पर्याप्त अवस्थामें देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, बन्धन, संघात इस सुरषट्कका बन्ध किया और नरकगति नरकानुपूर्वीका बन्ध नहीं किया। वहाँ आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, नरकगति, नरकानुपूर्वी ये नौ और भुज्यमान तिर्यंचायु बिना शेष तीन आयु इन बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व पाया जाता है। यह तीसरा भंग है। पुनः वही जीव मरकर मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न

भेदर्दिदं ॥ सुरगति सुरगत्यानुपूर्व्य वैक्रियिक तदंगोपांगबंधनसंघातरूप सुरषट्क । बंधन संघात द्वयसहित वैक्रियिकषट्क मुंपेल्द पदिमूरुद्वेल्लनप्रकृतिगळोळु वैक्रियिकवैक्रियिकांगोपांगद्वयदोळु वैक्रियिकबंधनसंघात-मंतर्भाविसि येंबुदर्त्थं ॥

सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं नारकषट्कमुमंतु सप्तदशप्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यं भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमेंब भंगद्वयदोळु पुनरुक्तभंगमनोंदं कळेदोडोंदे भंगमक्कुमल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तं भुज्यमानतिर्य्यगायुष्यमल्लदितरमनुष्यायुष्यं देवायुष्यं नारकायुष्यमाहारकचतुष्कयं तीर्त्थं सम्यक्त्वप्रकृति मिश्रप्रकृति सुरद्विक नारकषट्कमुमंतष्टादश प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि:--

नारकछक्कुव्वेल्ले आउगबंधुज्झिदे दु भंगा हु ।
इगिविगलेसिगिभंगो तम्मि णरे बिदियमुप्पण्णे ॥३७०॥

नारकषट्कमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगबद्धायुष्यंगेरडु भंगंगळप्पुवेंतेंदोडे-- एक विकलत्रयद स्वस्थानदोळोंदु भंगमक्कुमा जीवमनुष्यायुष्यमं कट्टि मनुष्यरोळु बंदु पुट्टिद तद्भवप्रथमकालदोळु तावन्मात्र प्रकृतिसत्वनप्पुदरिंदमुं मनुष्यायुष्यप्रकृति भेददिंदमुं द्वितीय भंगमक्कुं । संदृष्टि--

संदृष्टि:—

ब	१३७ १
अ	१३६ ४

अष्टमे बध्यमानायु:स्थाने नारकषट्के उद्वेल्लिते एकेंद्रियविकलत्रयजीवस्य भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुर्म्यामितरसुरनारकायुराहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकनारकषट्काभावादेकत्रिंशच्छतके भंग: भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुष्कभुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुष्कश्चेति भंगद्वये पुनरुक्तमेकं त्यक्त्वैक: ॥३६८-३६९॥

हुआ। वहाँ सुरषट्कका बन्ध होनेपर पूर्वोक्त नौ और भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु, इस प्रकार बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व होता है। यह चौथा भंग है। इस प्रकार चार भंग हुए। यहाँ सब भंगोंमें संख्या १३६ समान है अतः स्थान एक ही कहा है। और प्रकृति बदलनेसे चार प्रकार पाये जाते हैं अत: भंग चार कहे हैं।

आठवाँ बद्धायुस्थान नारकषट्ककी उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीवके होता है। सो भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु बिना देव नरक दो आयु, आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, बन्धन संघात ये नारकषट्क, इन सतरह बिना एक सौ इकतीस प्रकृतिरूप जानना। वहाँ भंग दो भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु, भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु। इनमें-से भुज्यमान तिर्यंच बध्यमान तिर्यंच पुनरुक्त है। अत: एक ही भंग है ॥३६८-३६९॥

आठवाँ अबद्धायुस्थान एक सौ तीस प्रकृतिरूप है। उसमें दो भंग हैं। नारकषट्ककी उद्वेलना किये एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीवके तिर्यंचायु बिना तीन आयु तथा आहारक चतुष्क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बध्यमान	१३१ १
अबध्यमान	१३० २

उच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद तेजस्कायिकवायुकायिकजीवंगळ नवमबद्धायुष्यसत्वस्थानदोळु भुज्यमानतेजस्काय वायुकाय विशिष्टतिर्य्यंगायुष्यमं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यमुमल्लवितरनारकमनुष्यदेवायुस्त्रितयमुमाहारकचतुष्टयमं तीर्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमु नारकषट्कमुमुच्चैर्गोत्रमुमें ब हत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरिप्पत्तो भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानमुं बध्यमानमुं तिर्य्यंगायुष्यमप्प तेजोवायुकायिकजीवंगळ भंगमो देयक्कुमदुवुं पुनरुक्तभंगमादोडं ग्राह्यमादुवु। अल्लि अबद्धायुष्यनोळाऽऽबद्धायुष्यनोळु पेळ्द सत्वरहित प्रकृतिगळु हत्तों भत्तु मो जीवनोळं सत्वरहितंगळागि नूरिप्पत्तो भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमा तेजोवायुकायिकजीवंगळ स्वस्थानभंगमो देयक्कुमदु पुनरुक्तभंगत्वदिंदमग्राह्यमक्कु। संदृष्टि :—

बध्यमान	१२९ १
अबध्यमा	१२९ पुनरुक्त

तदबद्धायुःस्थाने त्रिशच्छतके भंगः, नारकषट्कोद्वेल्लितैकेंद्रियविकलत्रयजीवे एकः। तु—पुनस्तस्मिन्नेव जीवे मनुष्येषूत्पन्ने प्रथमकाले द्वितीयः। एवं द्वौ भंगौ खलु स्फुटं मनुष्यायुषो भेदात्। संदृष्टिः—

ब	१३१ १
अ	१३० २

उच्चैर्गोत्रोद्वेल्लिततेजोवातकायिकयोर्नवमं बद्धायुःस्थानं तत्कायविशिष्टभुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुर्भ्यामितरायुस्त्रयाहारकचतुष्टयतीर्थसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकनारकषट्कोच्चैर्गोत्राभावात् एकान्नत्रिंशच्छतकं। तत्र भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुष्कतेजोवातकायिकभंग एकः। सोऽयं पुनरुक्तोऽपि ग्राह्यः। तदबद्धायुःस्थानमेकान्नत्रिशच्छतकं तत्र तेजोवातयोः स्वस्थानभंग एकः स न ग्राह्यः पुनरुक्तत्वात्। संदृष्टिः—

आदि पन्द्रहके बिना एक सौ तीसका सत्त्व होता है। अतः यह एक भंग हुआ। वही एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीव मरकर मनुष्य हुआ। वहाँ अपर्याप्तकालमें मनुष्यायुके बिना तीन आयु और आहारक चतुष्क आदि पन्द्रहके बिना एक सौ तीसका सत्त्व पाया जाता है। यह दूसरा भंग हुआ।

नौवाँ बद्धायुस्थान उच्चगोत्रकी उद्वेलना होनेपर तेजकाय वायुकायमें होता है। सो पूर्वोक्त एक सौ तीसमें-से उच्चगोत्रका अभाव होनेसे एक सौ उनतीस प्रकृतिरूप होता है। यहाँ भंग एक भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु। यह पुनरुक्त है। किन्तु यहाँ कोई अन्य भंगका प्रकार न होनेसे इसीको ग्रहण किया है। नौवाँ अबद्धायुस्थान भी एक सौ उनतीस प्रकृतिरूप है। अतः बद्धायुस्थानके समान होनेसे पुनरुक्त है। अतः इसका ग्रहण नहीं करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद तेजस्कायिक वातकायिक जीवंगळ दशमबद्धायुष्यसत्वस्थानदोळुच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद जीवंगळगे पेळ्द सत्वरहितप्रकृतिगळु हत्तोंभत्तुं मनुष्यद्विकमुं कूडिप्पत्तोंदु प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरिप्पत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं भुज्यमानमुं बध्यमानमुं तिर्य्यगायुष्यमप्प तेजोवायुकायिकजीवन स्वस्थानभंगमों देयक्कुमदुवुं पुनरुक्तभंगमादोडं ग्राह्यमक्कुं। अल्लि अबद्धायुष्यनोळा बद्धायुष्यनोळु पेळ्द यिप्पत्तोंदु प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरिप्पत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुम। तेजोवायुकायिकजीवस्वस्थानभंगमों देयक्कुमदुवु पुनरुक्त भंगमग्राह्यमक्कुं। संदृष्टि :—

बध्यमान	१२७ १
अबध्यमान	१२७ पुनरुक्त

ई पेळ्द सत्वस्थानंगळु पदिनें टरोळं पुनरुक्तसमभंगंगळं कळेदु शेषभंगंगळं संख्येयं पेळ्वपरु :—

ब	१२९ १
अ	१२९ पुनरु.

मनुष्यद्विकोद्वेल्लिततेजोवायुकायिकयोर्दशमं बद्धायुःस्थानं तद्द्विकेनोच्चैर्गोत्रोद्वेल्लितस्योक्तदसत्त्वस्याभावात्सप्तविंशतिशतकं। तत्रापि भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुष्कतेजोवायुकायिकभंग एकः स च पुनरुक्तोऽपि ग्राह्यः। तदबद्धायुःस्थानं तदेकविंशतेरभावात्सप्तविंशतिशतकं। तत्र तत्तेजोवायुकायिकस्वस्थानभंग एकः, स च पुनरुक्तत्वान्न ग्राह्यः। संदृष्टिः—

बध्य	१२७ १
अब	१२७ १
पुनरु.	

॥३७०॥ अथोक्ताष्टादशसत्त्वस्थानभंगान् पुनरुक्तसमभंगेभ्यः शेषान् संख्याति—

दसवाँ बद्धायुस्थान मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर तेजकाय वायुकायके जीवके होता है। सो पूर्वोक्त एक सौ उनतीसमें-से मनुष्यगति मनुष्यानुपूर्वीके बिना एक सौ सत्ताईस प्रकृतिरूप जानना। यहाँ एक ही भंग है। वह पुनरुक्त है फिर भी ग्राह्य है। क्योंकि पूर्व पुनरुक्त भंग अबद्धायु स्थानमें गर्भित हो गये थे अतः उनको ग्रहण नहीं किया था। यहाँ अबद्धायुस्थानका ही ग्रहण नहीं किया है। अतः पुनरुक्त भंगको ग्रहण किया है।

दसवाँ अबद्धायुस्थान भी उसी प्रकार एक सौ सत्ताईस प्रकृतिरूप है। सो इस बद्धायुस्थान और अबद्धायुस्थानमें संख्या या प्रकृतियोंको लेकर भेद नहीं है। अतः यह स्थान ग्रहण नहीं करना ॥३७०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिदिये तुरिये पणगे छट्ठे पंचेव सेसगे एक्कं ।
बिदिचउपण छस्सत्तयठाणे चत्तारि अट्ठगे दोण्णि ॥३७१॥

द्वितीये तुरीये पंचमे षष्ठे पंचैव शेषके एकः । द्वितीयचतुर्थं पंचमषष्ठसप्तमस्थाने चत्वारोऽष्टमे द्वौ ॥

द्वितीयचतुर्थपंचमषष्ठबद्धायुश्चतुःसत्वस्थानंगळोळु प्रत्येकं पंच पंच भंगंगळप्पुवु । शेषप्रथमतृतीयसप्तमाष्टमनवमदशमस्थानषट्कदोळु प्रत्येकमेकैकभंगमक्कुमबद्धायुःसत्वस्थानंगळेंटरोळु द्वितीयचतुर्थपंचमषष्ठसप्तमस्थानंगळय्दरोळु प्रत्येकं नाल्कु नाल्कु भंगंगळप्पुवष्टमसत्वस्थानदोळु एरडु भंगंगळप्पुवु । शेषप्रथमतृतीयस्थानद्वयदोळु प्रत्येकमेकैकभंगमक्कुमंतु कूडि सत्वस्थानंगळु मिथ्यादृष्टियोळु पदिनेंटप्पुवरोळु भंगंगळु पंचाशत्प्रमितंगळप्पुवु ।

अनंतरं सासादनगुणस्थानदोळं मिश्रगुणस्थानदोळं बद्धाबद्धायुष्यरुगळं विवक्षिसिकोंडु सत्वस्थानंगळमनवर भंगंगळ संख्येयुमं गाथाचतुष्टयदिदं पेळ्दपरु :—

सत्ततिगं सासाणे मिस्से तिग सत्त सत्त एयारा ।
परिहीण सव्वसत्तं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७२॥

सप्तत्रिकमासासादने मिश्रे त्रिकसप्तसप्तैकादश । परिहीणसर्व्वसत्वं बद्धस्येतरस्यैकोनं ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोळु सप्तप्रकृतिसत्वमुं त्रिप्रकृतिसत्वमुं परिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वस्थानद्वयमक्कुं । मिश्रनोळु त्रि सप्त सप्त एकादश प्रकृतिसत्वरहितसर्व्वप्रकृतिसत्वस्थानचतुष्टयमिवु बद्धायुष्यरोळप्पुवु । इतरस्य अबद्धायुष्यंगे अवरोळु प्रत्येकमेकैकप्रकृतिसत्वहीनमक्कुमा सासादन-

---

द्वितीये चतुर्थे पंचमे षष्ठे बद्धायुष्कसत्त्वस्थाने पंच पंच भंगा भवंति । शेषप्रथमतृतीयसप्तमाष्टमनवमदशमेष्वेकैक एव । अबद्धायुःस्थानेषु च द्वितीये चतुर्थे पंचमे षष्ठे सप्तमे चत्वारश्चत्वारः, अष्टमे द्वौ, शेषप्रथमतृतीययोरेकैकः, एवं मिथ्यादृष्टौ सत्त्वस्थानान्यष्टादश । भंगाः पंचाशत् ॥ ३७१ ॥ अथ सासादनमिश्रयोः स्थानभंगसंख्यां गाथाचतुष्केणाह—

सासादने सप्तभिर्हीनं त्रिभिर्हीनं च सर्वसत्त्वं बद्धायुष्कस्य । मिश्रे त्रिभिः सप्तभिः सप्तभिरेकादश-

---

पूर्वमें कहे अठारह स्थानोंके पुनरुक्त और समान भंगोंके बिना जो भंग कहे हैं उनकी संख्या कहते हैं—

दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे बद्धायुष्क स्थानमें पाँच-पाँच भंग होते हैं शेष पहले, तीसरे, सातवें, आठवें, नौवें और दसवें बद्धायुस्थानमें एक-एक भंग होता है। अबद्धायुस्थानमें दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवेंमें चार-चार, आठवेंमें दो, शेष पहले और तीसरेमें एक-एक भंग होता है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें स्थान अठारह और भंग पचास होते हैं ॥३७१॥

आगे सासादन और मिश्र गुणस्थानमें स्थानों और भंगोंकी संख्या चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

सासादनमें बद्धायुष्कके सर्व सत्त्वमें-से सात हीन और तीन हीन दो स्थान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ सत्वस्थानभंगंगळगे संदृष्टि :—

बध्य. ० ७	सासादनगे ० ३	मिश्रगे ० ३	० ७	० ७	० ११
बध्य. १४१ ५	१४५ १	१४५ ५	१४१ ५	१४१ ५	१३७ ५
अबध्य. १४० ४	१४४ २	१४४ ४	१४० ४	१४० ४	१३६ ४

सासादनंगे सत्वरहितप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

तित्थाहारचउक्कं अण्णदराउगदुगं च सत्तेदे ।
हारचउक्कं वज्जिय तिण्णि य केइं समुद्दिट्ठं ॥३७३॥

तीर्थाहारचतुष्कमन्यतरायुर्द्विकं च सप्तैतानि । आहारकचतुष्कं विवर्ज्य त्रीणि च केश्चित्समुद्दिष्टं ॥

तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुर्द्वयमुमंतु एळुं प्रकृतिगळ् सासादननोळु सत्वरहितप्रकृतिगळप्पुवु । अवरोळाहारकचतुष्टयमुं वर्ज्जिसि तीर्थमुमितरायुर्द्वितयमुं मूरे प्रकृतिगळ् सत्वरहितंगळाहारकचतुष्टयमुं सत्वप्रकृतिगळप्पुवेंदु केलंबराचार्य्यरुगळिंदं पेळल्पट्टुवु ॥

मिश्रनोळु सत्वरहितप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

तित्थण्णदराउदुगं तिण्णिवि अणसहिय तह य सत्तं च ।
हारचउक्के सहिया ते चेव य होंति एयारा ॥३७४॥

तीर्थान्यतरायुर्द्विकं त्रीण्यप्यनंतानुबंधिसहितं । तथा च सप्त च आहारकचतुष्केण सहितानि तानि चैव भवंत्येकादश ॥

मिश्च हीनं भवति । अबद्धायुष्कस्य पुनरेकैकहीनं भवति ॥ ३७२ ॥ सासादनस्य हीनप्रकृतीराह—

तीर्थमाहारचतुष्टयं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानाभ्यामितरायुषी चेति सप्त । तत्राहारकचतुष्के वर्जिते तिस्रः तच्चतुष्कसत्वं तु कैश्चिदेवोद्दिष्टं ॥ ३७३ ॥ मिश्रस्य ता आह—

मिश्रमें तीन, सात, सात और ग्यारहसे हीन चार स्थान होते हैं। अबद्धायुके स्थान बद्धायुके स्थानमें-से एक-एक बध्यमान आयुसे हीन होते हैं ॥३७२॥

सासादनमें घटायी गयी प्रकृतियोंको कहते हैं—

सासादनमें तीर्थंकर, आहारक चतुष्क, भुज्यमान और बध्यमानके बिना शेष दो आयु इन सातके बिना एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान होता है। उन सातमें आहारक चतुष्कको छोड़ देनेपर तीन प्रकृतिहीन दूसरा स्थान एक सौ पैंतालीस रूप होता है। इस एक सौ पैंतालीसमें जो आहारक चतुष्कका सत्त्व कहा है वह कुछ आचार्योंके मतानुसार कहा है। अन्यथा पूर्वमें सासादन गुणस्थानमें आहारकका सत्त्व नहीं कहा है ॥३७३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्त्थमुमन्यतरायुर्द्विकमुमितु मूरुं प्रकृतिगळुं मत्तमनंतानुबंधिकषायचतुष्टयं सहितमागि एळुं प्रकृतिगळु तथा च अहंगे आहारकचतुष्टयदोडनेयुमेळं प्रकृतिगळुमा अनंतानुबंधिकषाय चतुष्टयं सहितमागि एकादश प्रकृतिगळुं सत्वरहितमागि नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु ॥

अनंतरमा बद्धाबद्धायुष्यरुगळ सत्वस्थानंगळोळु भंगंगळ संख्येयं पेळदपरु :—

साणे पण इगि भंगा बद्धस्सियरस्स चारि दो चेव ।
मिस्से पण पण भंगा बद्धस्सियरस्स चउ चउ णेया ॥३७५॥

सासादने पंचैक भंगा बद्धस्येतरस्य चत्वारो द्वौ चैव । मिश्रे पंच पंच भंगा बद्धस्येतरस्य चत्वारश्चत्वारो ज्ञेयाः ॥

सासादननोळु बद्धायुष्यंगैदुमोंदु भंगंगळप्पुवु । इतरनप्प अबद्धायुष्यंगे नाल्कुमेरडुं भंगंगळप्पुवु । मिश्रनोळु बद्धायुष्यंगय्दय्दु भंगंगळप्पुवु । इतरनप्प अबद्धायुष्यंगे नाल्कु नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । अवे ते दोडे पेळल्पडुगुं । चतुर्गतिय सासादननप्पुदरिदं विवक्षित भुज्यमान बद्धयमानायुद्द्वयमल्लदितरायुर्द्वितयमुं तीर्त्थमुमाहारकचतुष्टयक चतुष्टयमुमितेळु प्रकृतिगळु रहितमागि नूरनाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु मुंपेळ्द चतुर्गतिबद्धायुष्यरुगळ द्वादश भंगंगळोळु पुनरुक्त समभंगंगळं कळेदु शेष पंच भंगंगळप्पुवु । अल्लि अबद्धायुष्यं चतुर्गतिजनप्पुदरिदं विवक्षित भुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुमंतें टुं प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु नाल्कुं गतिय भुज्यमानायुश्चतुष्टय भेददिदं नाल्कु भंगंगळप्पुवुं ।

तीर्थमन्यतरायुषी चेति तिस्रः । ता एव पुनः अनंतानुबंधिचतुष्केण सप्त वा आहारकचतुष्केण सप्त । अमूः पुनः अनंतानुबंधिचतुष्केणैकादश भवंति ॥ ३७४ ॥ अथ तेषु स्थानेषु भंगसंख्यामाह—

सासादने भंगाः पंचैको बद्धायुष्कस्य । इतरस्य चत्वारो द्वौ । मिश्रे पंच पंच बद्धायुष्कस्य । इतरस्य चत्वारश्चत्वारः । तद्यथा—एकचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके चतुर्गतिबद्धायुषां द्वादशभंगेषु सप्त पुनरुक्तान्विना पंच

आगे मिश्रगुणस्थानमें घटायी गयी प्रकृतियोंको कहते हैं—

मिश्रमें तीर्थंकर और भुज्यमान बध्यमान बिना दो आयुके एक सौ पैंतालीस रूप प्रथम-स्थान है । तीन ये और अनन्तानुबन्धी चतुष्क अथवा आहारक चतुष्क बिना एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप दूसरा और तीसरा स्थान है । तथा तीन पूर्वोक्त, चार अनन्तानुबन्धी और आहारक चतुष्क इन ग्यारहके बिना एक सौ सैंतीस रूप चतुर्थ स्थान है । ये बद्धायुके स्थान हैं । इनमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर अबद्धायुके स्थान होते हैं ॥३७४॥

आगे इनमें भंगोंकी संख्या कहते हैं—

सासादनमें बद्धायुके भंग पाँच और एक होते हैं । अबद्धायुके चार और दो होते हैं । मिश्रमें बद्धायुके पाँच-पाँच भंग होते हैं । अबद्धायुके चार-चार भंग जानना । वह इस प्रकार होते हैं—

सासादनमें एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थानमें चारों गतिके बद्धायु जीवोंकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ सासादन द्वितीयबद्धायुष्य सत्वस्थानदोळ् तीर्थमुमन्यतरायुर्द्वितयमुमंतु त्रिप्रकृतिगळ् सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमें दिंताहारकचतुष्टयसत्वमुळ्ळ सासादननुमोळनें बाचार्यर पक्षदोळु भंगमों दयक्कुमदें तें दोडे बद्धदेवायुष्यनुपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्टयमनप्रमत्तगुणस्थानदोळुपार्जिसि बळिक्कं सम्यक्त्वविराधकनादोडल्लियों दे भंगमक्कुमा अबद्धायुष्यनोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यनुपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्टयमनुपार्जिसि अनंतानुबंधिकषायोदयदिदं सासादननादोडोळियों दु भंगमक्कुं मुन्नं बद्धदेवायुष्यंगे मरणमादोडे भुज्यमानदेवायुष्यनोळों दु भंगमक्कुं। अंतु अबद्धायुष्यनोळेरडु भंगमप्पुवु। संदृष्टि :—

बद्ध	१४५ १
अबद्ध	१४४ २

मिश्रनोळु प्रथम बद्धायुःसत्वस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमान बद्ध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुर्द्वितयमुं तीर्थमुमंतु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानं मुं पेळ्द द्वादशभंगंगळोळु पुनरुक्तसमभंगंगळं कळेदु शेषमपुनरुक्तभंगंगळय्दप्पुववल्लि अबद्धायुःसत्वस्थानदोळु

भंगाः। अबद्धायुष्कस्य चत्वारिंशच्छतप्रकृतिके चतुर्गतिभुज्यमानायुर्भेदाच्चत्वारो भंगाः।

द्वितीये बद्धायुःस्थाने पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके बद्धाहारचतुष्कस्य कस्यचित्सासादनत्वप्राप्तिरित्युपदेशाश्रयणादेको भंगः। तदबद्धायुष्के भुज्यमानमनुष्यायुष्कस्योपशमसम्यग्दृष्टेरर्जिताहारकचतुष्कस्यानंतानुबंध्युदयाज्जातसासादनस्यैको भंगः। प्राग्बद्धदेवायुष्कस्य मृत्वा जातभुज्यमानदेवायुष्कस्यैको भंगः, एवं द्वौ। संदृष्टि—

ब	१४५ १
अ	१४४ २

मिश्रे प्रथमे बद्धायुःस्थाने पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके प्राग्वद्द्वादशभंगे सप्तपुनरुक्तान्विना पंच भंगाः।

अपेक्षा बारह भंगोंमें-से सात पुनरुक्त भंगोंके बिना पाँच भंग होते हैं। अबद्धायुष्कके एक सौ चालीस प्रकृतिरूप स्थानमें चारों गति सम्बन्धी भुज्यमान आयुके भेदसे चार भंग होते हैं। दूसरे बद्धायुस्थानमें जो एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप है, जिसने आहारक चतुष्कका बन्ध किया है ऐसे किसी जीवको सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति होती है इस उपदेशका आश्रय लेकर एक भंग कहा है। उसके अबद्धायु स्थानमें दो भंग इस प्रकार हैं—भुज्यमान मनुष्यायुवाला उपशम सम्यग्दृष्टि आहारक चतुष्कका बन्ध करके मरकर सासादन हुआ सो एक भंग तो यह हुआ। पूर्वमें जिसके देवायुका बन्ध हुआ था ऐसा उपशम सम्यग्दृष्टी आहारक चतुष्कका बन्ध करके मरकर देव हो सासादन हुआ। वहाँ भुज्यमान देवायुका सत्त्व होनेसे दूसरा भंग हुआ।

मिश्रगुणस्थानमें बद्धायुके चारों स्थानोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे बारह भंगोंमें-से पाँच-पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवक्षितभुज्यमानायुष्यमों दल्लदितरायुस्त्रितयं तीर्थमुमंतु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तु नूरनाल्वत्तु नाल्कु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं। चतुर्गतिजरुगळ भेदर्दि नाल्कु भंगमक्कु । संदृष्टि :—

ब	१४५ ५
अ	१४४ ४

द्वितीयबद्धायुःसत्वस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबद्धचमानायुर्द्वितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुमंतु सप्तप्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तों दु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु मुंपेळ्द पुनरुक्तसमभंगंगळं कळेदु शेषपंचभंगंगळप्पुवल्लि अबद्धायुष्यनोळु विवक्षितभुज्यमानायुष्यमों-दल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्थमुमनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुमंतें दुं प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरं नाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि नाल्कुं गतिगळ भेदर्दिदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । संदृष्टि :

ब	१४१ ५
अ	१४० ४

तृतीयबध्यमानायुः सत्वस्थानदोळु तीर्त्थमुं भुज्यमानबध्यमानायुर्द्वितयमल्लदितरायुर्द्वितय-मुमाहारकचतुष्टयमुमंतेळु प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तों दुं प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि पुनरुक्तसमविहीनपंचभंगंगळप्पुवल्लि अबद्धायुष्यसत्वस्थानदोळु भुज्यमानायुः सत्वमल्लदितरायु-स्त्रयमुं तीर्थमुं आहारक चतुष्टयमुमंतें दु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तुप्रकृतिसत्वस्थानमक्कु-मल्लि गतिचतुष्टयभेदर्दिदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

अबद्धायुःस्थाने चतुर्गतिकभेदाच्चत्वारो भंगा । संदृष्टिः—

ब	१४५ ५
अ	१४४ ४

एवं द्वितीयतृतीयचतुर्थबद्धाबद्धायुःस्थानेष्वपि पंच चत्वारो भंगा ज्ञातव्याः । अत्र मिश्रेऽनंतानुबंध्यसत्वं कथमिति चेत् असंयतादिचतुर्ष्वेकत्र करणत्रयेण तच्चतुष्कं विसंयोज्य दर्शनमोहक्षपणानभिमुखस्य संक्लिष्ट-

---

भंग होते हैं। अबद्धायुके चारों स्थानोंमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार-चार भंग होते हैं।

शंका—मिश्रमें अनन्तानुबन्धीका असत्त्व कैसे है ?

समाधान—असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसी एकमें तीन करणोंके द्वारा अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन किया। उसके पश्चात् दर्शनमोहनीयकी क्षपणा तो न कर सका और संक्लेश परिणामके द्वारा मिश्र मोहनीयके उदयसे मिश्र गुणस्थानवर्ती हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब १४१
५
अ १४०
४

मिश्र चतुर्थबध्यमानायुःसत्वस्थानदोळु तीर्त्थमितरायुर्द्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतु पन्नों दुं प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं। भंगंगळुमपुनरुक्तंगळुमप्पवप्पुवल्लि अबद्धायुः—सत्वस्थानदोळु तीर्त्थमुमितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतु द्वादश प्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तारु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु गतिचतुष्टय भेददिदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

ब १३७
५
अ १३६
४

ई मिश्रनोळनंतानुबंधिसत्वरहितत्वमें ते दोडे असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमं करणत्रयकरणपूर्व्वकं विसंयोजनमं माडिदवर्ग्गळु दर्शनमोहनीयमं क्षपिपिसलभिमुखरल्लदवर्ग्गळु संक्लिष्टपरिणामदिदं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयदिदं मिश्रगुणस्थानमं पोद्दियल्लियुमनंतानुबंधिकषायचतुष्टयं सासादननोळ बंधव्युच्छित्तिगळादुदप्पुदरिंदमनंतानुबंधिरहितत्वं मिश्रनोळरियल्पडुगुं।

इंतु सासादनमिश्ररुगळगे सत्वस्थानंगळ भेदंगळुमनवर भंगंगळुमं पेळदनंतरं असंयतगुणस्थानदोळु मुंपेळद नाल्वत्तुं स्थानंगळगुपपत्तियमनवर भंगंगळु नूरिप्पतक्कं गाथाषट्कदिदं पेळ्वपरु :—

> दुग छक्क सत्त अट्ठं णवरहियं तह य चउपडिं किच्चा।
> णभमिगि चउ पणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७६॥

द्विकषट्कसप्ताष्टौ नवरहितं तथा च चतुः प्रति कृत्वा। नभ एक चतुः पंचहीनं बद्धस्येतरस्यैकोनं॥

परिणामेन सम्यग्मिथ्यात्वोदयात्तत्र गमनात्। तद्बंधस्य सासादने एव च्छेदात् ॥ ३७५ ॥ अथासंयतोक्तचत्वारिंशत्स्थानानामुत्पत्ति तद्विंशत्युत्तरशतभंगांश्च गाथाषट्केनाह—

इसके अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नहीं होता। नवीनबन्ध हो तो सत्त्व हो, किन्तु नवीनबन्धकी व्युच्छित्ति तो सासादनमें ही हो जाती है ॥३७५॥

आगे असंयत गुणस्थानमें कहे चालीस स्थानोंकी उत्पत्ति और उनके एक सौ बीस भंगोंको छह गाथाओंसे कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विकषट्कसप्ताष्टनवप्रकृतिरहितपंचसत्वस्थानंगळं तिर्य्यक्क्रमदिनिरिसि मत्तमा प्रकारदिदं कळकेळगे तिर्य्यक्कागि नाल्कुं पंक्तियं माडि प्रथमपंक्तियोळु शून्यमनव्वुं स्थानंगळोळ् कळेवुदु। द्वितीयपंक्तिय पंचस्थानंगळोळु प्रत्येकमों दों दं कळेवुदु। तृतीयपंक्तिय पंचस्थानंगळोळु प्रत्येकं नाल्कुं नाल्कं कळेदु चतुर्त्थपंक्तियोळु पंचमस्थानंगळोळु प्रत्येकं अय्दय्दुं कळेवुवंतु कळेद नाल्कुं पंक्तिगळोळु बद्धायुष्यंगे सत्वस्थानंगळिप्पत्तप्पुवबद्धायुष्यंगे प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्त्थपंक्तिय पंच पंच सत्वस्थानंगळोळु प्रत्येकमों दों दं कळेदु तंतम्म पंक्तिगळ केळगे केळगे स्थापिसुत्तं विरलु सत्वस्थानंगळिप्पत्तप्पुवु। अंतु असंयतंगे सत्वनंगळ् नाल्वत्तप्पुवु। यिल्लि प्रथमपंक्तिद्वयमुं तृतीयपंक्तिद्वयमुं सतीर्त्थस्थानंगळप्पुवितर द्वितीयपंक्तिद्वयमुं चतुर्त्थपंक्तिद्वितयमुं तीर्त्थरहितस्थानंगळें दु पेळ्दपरु :—

तित्थाहारे सहियं तित्थूणं अह य हारचउहीणं।
तित्थाहारचउक्केणूणं इदि चउपडिट्ठाणं ॥३७७॥

तीर्त्थाहारसहितं तीर्त्थोनमथ चाहारचतुर्हीनं। तीर्त्थाहारकचतुष्केणोनमिति चतुःप्रतिस्थानं ॥

द्विकषट्कसप्ताष्टनवप्रकृतिरहितपंचस्थानानि तिर्यक्क्रमेण विन्यस्य पुनस्तथैवाधोधः चतुःपंक्तीः कृत्वा प्रथमपंक्तौ पंचस्थानेषु शून्यमपनयेत्। द्वितीयपंक्तौ एकैकं, तृतीयपंक्तौ चतुष्कं चतुष्कं, चतुर्थपंक्तौ पंच पंच। एवं बद्धायुष्कस्य विंशतिः सत्त्वस्थानानि। अबद्धायुष्कस्य तथा पंचपंक्तीनां पंच पंच सत्त्वस्थानेषु प्रत्येकमेकैकमपनीय स्वस्वाधःस्थापितेषु विंशतिः, मिलित्वा असंयतस्य चत्वारिंशद्भवंति ॥ ३७६ ॥ अथोक्तपंक्तिचतुष्के तीर्थाहारयुतायुतत्वेन विशेषमाह—

दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृति रहित पाँच स्थानोंको बराबर-बराबर लिखकर पुनः उसी प्रकार नीचे-नीचे पाँच स्थानोंकी चार पंक्तियाँ लिखो। उनमें-से प्रथम पंक्तिके पाँच स्थानोंमें शून्य घटाओ। अर्थात् वे पाँचों स्थान ज्योंके त्यों दो, छह, सात, आठ और नौ प्रकृति रहित होते हैं। दूसरी पंक्तिमें-से एक-एक प्रकृति और घटाओ। अर्थात् वे पाँचों स्थान तीन, सात, आठ, नौ, दस रहित जानना। तीसरी पंक्तिके पाँचों स्थानोंमें-से चार-चार प्रकृति घटाना। अर्थात् वे पाँचों स्थान छह, दस, ग्यारह, बारह, तेरह प्रकृति रहित जानना। चौथी पंक्तिमें पाँच-पाँच प्रकृति घटाना। अतः वे पाँचों स्थान सात, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह प्रकृति रहित होते हैं।

इस प्रकार बद्धायुके बीस स्थान होते हैं। इसी प्रकार अबद्धायुको चार पंक्तियोंके पाँच-पाँच सत्त्वस्थानोंमें-से प्रत्येकमें बध्यमान आयुरूप एक-एक प्रकृति घटानेपर बीस स्थान होते हैं। सब मिलकर असंयतमें चालीस सत्त्वस्थान होते हैं ॥३७६॥

आगे चारों पंक्तियोंमें तीर्थंकर और आहारक चतुष्ककी अपेक्षा जो विशेष है उसे कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमपंक्तिद्वयद स्थानपंचकद्वयं तीर्त्थमुमाहारकचतुष्टयमुं सहितमक्कुं। द्वितीयपंक्तिद्वयद स्थानपंचकद्वयं तीर्त्थकरप्रकृतिसत्वरहितमक्कुमाहारकचतुष्टयसहितमक्कुं। तृतीयपंक्तिद्वयद स्थानपंचकद्वयं तीर्त्थंकरप्रकृतिसत्वसहितमक्कुमाहारकचतुष्टयरहितमक्कुं। चतुर्त्थपंक्तिद्वयस्थानपंचकद्वयं तीर्त्थंकरमुमाहारकचतुष्टयमुं सत्वरहितमक्कुमितु चतुः प्रतिस्थानमरियल्पडुगुं ॥

अनंतरं दुगछक्काबि सत्वहीनप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

अण्णदर आउसहिया तिरियाऊ ते च तह य अणसहिया।
मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण खविदे हवे ठाणा ॥३७८॥

अन्यतरायुःसहितं तिर्य्यगायुस्ते च तथा चानंतानुबंधिसहितं मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वं क्रमेण क्षपिते भवेत् स्थानं ॥

अन्यतरायुष्यमोंदु सहितमाद तिर्य्यगायुष्यमा येरडुमनंतानुबंधिसहितमादारु मी यारुं मिथ्यात्वमुं कूडि येळु मी येळुं मिश्रप्रकृति गूडि येंटु ई येंटुं सम्यक्त्वप्रकृतिगूडि ओंभत्तुं प्रकृतिगळु रहितंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

प्रथमपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थाहारकचतुष्कसहितं भवति। द्वितीयपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थरहितमाहारकचतुष्टयसहितं भवति। तृतीयपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थसहितमाहारकचतुष्टयरहितं भवति। चतुर्थपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थकराहारकचतुष्टयरहितं भवति। एवं चतुःप्रकृतिकं स्थानं ज्ञातव्यं ॥ ३७७ ॥ अथ दुगछक्कादिहीनप्रकृतीराह—

तिर्यगायुरन्यतरायुःसहितं तद्द्वितीयमनंतानुबंधिसहितं तत्षट्कं मिथ्यात्वसहितं तत्सप्तकं मिश्रसहितं तदष्टकं सम्यक्त्वसहितनवकमित्यपनीतप्रकृतयो भवंति ॥ ३७८ ॥ अथ भंगान् गाथाद्वयेनाह—

बद्धायु और अबद्धायुकी प्रथम दो पंक्तियोंके जो पाँच-पाँच स्थान हैं वे तीर्थंकर और आहारक चतुष्क सहित हैं। बद्धायु और अबद्धायुकी दूसरी दो पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान तीर्थंकर रहित किन्तु आहारक चतुष्क सहित हैं। बद्धायु और अबद्धायुकी तीसरी दो पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान तीर्थंकर सहित किन्तु आहारक चतुष्टय रहित हैं। बद्धायु और अबद्धायुकी चतुर्थ दोनों पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान तीर्थंकर तथा आहारक चतुष्कसे रहित हैं। अर्थात् प्रथम पंक्तिसे शून्य घटानेसे मतलब है कि उसमें तीर्थंकर और आहारक चतुष्क हैं। दूसरीमें एक घटानेसे मतलब है कि उसमें तीर्थंकर नहीं है, तीसरीमें चार घटानेसे मतलब है कि उसमें आहारक चतुष्क नहीं है और चौथीमें पाँच घटानेसे मतलब है कि उसमें तीर्थंकर भी नहीं है और आहारक चतुष्क भी नहीं है ॥३७७॥

इसे नीचे रचना द्वारा स्पष्ट किया जाता है। प्रत्येक कोठेमें ऊपर प्रकृतियोंका प्रमाण है उसके नीचे भंगोंका प्रमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

०	०	० २	० ६	० ७	० ८	० ९
सतीर्थं ॥ ०	बंध ॥	१४६ २	१४२ २	१४१ २	१४० २	१३९ २
सतीर्थं ॥ ०	अबंध ॥	१४५ ३	१४१ ३	१४० १	१३९ ३	१३८ ३
अतीर्थं ॥ ०	बंध ॥	१४५ ५	१४१ ५	१४० ३	१३९ ३	१३८ ४
अतीर्थं ॥ ०	अबंध ॥	१४४ ४	१४० ४	१३९ १	१३८ ४	१३७ ४
सतीर्थं ॥ ०	बंध ॥	१४२ २	१३८ २	१३७ २	१३६ २	१३५ २
सतीर्थं ॥ ०	अबंध ॥	१४१ ३	१३७ ३	१३६ १	१३५ ३	१३४ ३
अतीर्थं ॥ ०	बंध ॥	१४१ ५	१३७ ५	१३६ ३	१३५ ३	१३४ ४
अतीर्थं ॥ ०	अबंध ॥	१४० ४	१३६ ४	१३५ १	१३४ ४	१३३ ४

बद्धायुस्थान २०, भंग ६०

ती. आ. सहित	१४६ २	१४२ २	१४१ २	१४० २	१३९ २
तीर्थं. रहित	१४५ ५	१४१ ५	१४० ३	१३९ ३	१३८ ४
आहारक रहित	१४२ २	१३८ २	१३७ २	१३६ २	१३५ २
ती. आ. रहित	१४१ ५	१३७ ५	१३६ ३	१३५ ३	१३४ ४

अबद्धायुस्थान २०, भंग ६०

१४५ ३	१४१ ३	१४० १	१३९ ३	१३८ ३
१४४ ४	१४० ४	१३९ १	१३८ ४	१३७ ४
१४१ ३	१३७ ३	१३६ १	१३५ ३	१३४ ३
१४० ४	१३६ ४	१३५ १	१३४ ४	१३३ ४

आगे दो, छह आदि घटायी प्रकृतियोंको कहते हैं—

तिर्यंचायु और कोई एक अन्य आयु ये दो प्रकृति जानना। दो ये और अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये छह जानना। इनमें मिथ्यात्व मोहनीय मिलानेसे सात जानना। मिश्रमोहनीय मिलानेसे आठ जानना। सम्यक्त्व मोहनीय मिलानेसे नौ जानना। ये घटाई गयी प्रकृतियाँ हैं। अर्थात् बद्धायुकी प्रथम पंक्तिका प्रथम स्थान दो आयु बिना एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप है। दूसरी पंक्तिका प्रथम स्थान तीर्थंकर बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप है। तीसरी पंक्तिका प्रथम स्थान आहारक चतुष्क बिना एक सौ बयालीस प्रकृतिरूप है। चौथी पंक्तिका प्रथम स्थान आहारक चतुष्क और तीर्थंकर बिना एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप है। इनमें बध्यमान आयुरूप एक प्रकृति और घटानेपर अबद्धायुके चार स्थान होते हैं। इस प्रकार आठ स्थान हुए। इन सबमें अनन्तानुबन्धी चतुष्करूप चार प्रकृतियोंके घटानेपर दूसरे आठ स्थान होते हैं। उनमें-से भी मिथ्यात्व घटानेपर तीसरे आठ स्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं भंगंगळं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपरु :—

आदिमपंचट्ठाणे दुगदुगभंगा हवंति बद्धस्स ।
इयरस्सवि णादव्वा तिगतिग इगि तिण्णि तिण्णेव ॥३७९॥

आदिमपंचस्थाने द्विकद्विकभंगा भवंति बद्धस्य । इतरस्यापि ज्ञातव्याः त्रिकत्रिकैकत्रित्रयः ॥

मोदल पंचस्थानदोळेरडेरडु भंगंगळप्पुवु । बद्धायुष्यंगे यितराबद्धायुष्यंगे मूरु मूरुं ओंदु मूरु मूरुं भंगंगळरियल्पडुवुवु ॥

बिदियस्स वि पणठाणे पण पण तिग तिण्णि चारि बद्धस्स ।
इयरस्स होंति णेया चउ चउ इगि चारि चत्तारि ॥३८०॥

द्वितीयस्यापि पंचस्थाने पंच पंच त्रिकत्रयश्चत्वारो बद्धस्येतरस्य भवंति ज्ञेयाश्चतुश्चतुरेकश्चत्वारश्चत्वारः ॥

द्वितीयपंक्तिय पंचस्थानंगळोळु बद्धायुष्यंगे क्रमदिदं पंच पंच त्रिकत्रिकचतुर्भंगंगळप्पुवितरंगबद्धायुष्यंगे चतुश्चतुरेक चतुश्चतुर्भंगंगळु ज्ञातव्यंगळप्पुवु ॥

आदिल्ल दससु सरिसा भंगेण य तदिय दसय ठाणाणि ।
बिदियस्स चउत्थस्स य दस ठाणाणि य समा होंति ॥३८१॥

आद्यतनदशसु सदृशानि भंगेन च तृतीयदशकस्थानानि । द्वितीयायाश्चतुर्थ्याश्च दशस्थानानि च भंगैः समानि भवंति ॥

प्रथमपंचस्थानेषु बद्धायुष्कस्य द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । अबद्धायुष्कस्य च त्रयस्त्रयः एकस्त्रयस्त्रयो भवंति ॥ ३७९ ॥

द्वितीयपंक्तेः पंचस्थानेषु बद्धायुष्कस्य पंच पंच त्रयस्त्रयश्चत्वारो भंगा भवंति । इतरस्य चत्वारश्चत्वार एकश्चत्वारश्चत्वारो भवंति ॥ ३८० ॥

आद्येषु बद्धाबद्धायुष्कदशस्थानेषूक्तभंगैः तृतीयबद्धाबद्धायुष्कदशस्थानभंगाः समानाः । द्वितीयपंक्तेर्बद्धाबद्धायुष्कदशस्थानोक्तभंगैः चतुर्थपंक्तेर्बद्धाबद्धायुष्कदशस्थानभंगाः समानाः । एवमसंयतस्य चत्वारिंशत्स्थानेषु

होते हैं। उनमें-से भी मिश्रमोहनीय घटानेपर चौथे आठ स्थान होते हैं। उनमें-से भी सम्यक्त्व मोहनीय घटानेपर पाँचवें आठ स्थान होते हैं। इस तरह सब मिलकर असंयतमें चालीस सत्त्वस्थान होते हैं ॥३७८॥

आगे दो गाथाओंसे इनमें भंग कहते हैं—

प्रथम पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं। अबद्धायुके पाँच स्थानोंमें क्रमसे तीन-तीन, एक, तीन-तीन भंग होते हैं ॥३७९॥

दूसरी पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें क्रमसे पाँच-पाँच, तीन-तीन, चार भंग होते हैं। अबद्धायुके पाँच स्थानोंमें क्रमसे चार-चार, एक, चार भंग होते हैं ॥३८०॥

पहली पंक्ति सम्बन्धी पाँच बद्धायु और पाँच अबद्धायुके दस स्थानोंमें जो भंग कहे हैं उन्हींके समान तीसरी पंक्तिके दस स्थानोंमें भंग जानना। तथा दूसरी पंक्ति सम्बन्धी पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आद्यतनबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळोळु पेळद भंगंगळोडने तृतीयबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळ भंगंगळु समानंगळप्पुवु । द्वितीयपंक्तिय बद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळोळु पेळद भंगंगळोडने चतुर्त्थपंक्तियबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळ भंगंगळु समानंगळप्पुवु । इंतसंयतन नाल्वत्तुं स्थानंगळोळु नूरिप्पत्तु भंगंगळप्पुववर भेदं पेळल्पडुगुमवें तें दोडे—बद्धायुष्यनप्प असंयतन प्रथमपंक्तिय पंचस्थानंगळु सतीर्त्थस्थानंगळप्पुवरिदं भुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुष्यमों दुं तीर्त्थसत्वमुल्लंगे तिर्य्यगायुष्यसत्वमिल्लप्पुदरिदं तिर्य्यगायुष्यमुमंतु प्रकृतिद्वयरहितमागि नूरनाल्व-त्तारु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानदेवा-युष्यनु । भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं । भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यनु । में बितु नाल्कुं भंगंगळोळु समभंगंगळप्प कडेयवेरडुं भंगंगळं बिट्टु भंगद्वयमक्कुमत्तमा स्थानदोळु अनंतानुबंधि चतुष्टयमं विसंयोजिसिदातंगे अन्यतरायुष्यमों दुं तिर्य्यगायुष्यमुमनंतानुबंधिचतुष्कमुमंतु षट् प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तेरडु प्रकृतिसत्वस्थानदोळं भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननारकायुष्यनु ।

विंशत्युत्तरशतं भंगा भवंति । तद्भेद उच्यते—

बद्धायुष्कस्यासंयतस्य प्रथमपंक्तिपंचस्थानानां सतीर्थत्वात्तिर्यगायुषा भुज्यमानबध्यमानाभ्यामितरायुषा च रहितषट्चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भंगाः भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुष्कः १ भुज्यमानमनुष्यबध्यमान-देवायुष्कः २ भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुष्कः ३ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुष्कश्चेति चतुर्षु समद्वये त्यक्ते द्वौ भंगौ भवतः । तथा विसंयोजितानंतानुबंधिनस्तच्चतुष्कस्यान्यतरायुस्तिर्यगायुषोश्चाभावाद् द्वाच-त्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितमिथ्यात्वस्य तस्यैकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितमिश्रस्य चत्वा-रिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितसम्यक्त्वप्रकृतेरेकान्नचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि तौ भुज्यमानमनुष्यबध्यमान-

---

बद्धायु और पाँच अबद्धायुके दस स्थानोंमें जो भंग कहे हैं उन्हींके समान चौथी पंक्तिके दस स्थानोंमें भंग जानना। इस तरह असंयतके चालीस स्थानोंमें एक सौ बीस भंग होते हैं। अब उन भंगोंको कहते हैं—

बद्धायु असंयत सम्यग्दृष्टीके पहली पंक्ति सम्बन्धी जो पाँच स्थान हैं वे तीर्थंकर प्रकृति सहित हैं। और तिर्यंचमें तीर्थंकरकी सत्ता नहीं होती। अतः प्रथम पंक्तिके प्रथम स्थानमें भुज्यमान या बध्यमान तिर्यंचायु और एक कोई अन्य आयुके बिना एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप है। उसमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु, भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु, भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु, भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु ये चार भंग होते हैं। इनमें-से भुज्यमान मनुष्यायु और बध्यमान नरकायु तथा भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु भंग समान होनेसे पुनरुक्त है। तथा भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु और बध्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु यह भंग भी समान होनेसे पुनरुक्त है। अतः दो भंगोंके पुनरुक्त होनेसे शेष दो भंग होते हैं। प्रथम पंक्तिका दूसरा स्थान जिसके अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन हुआ उसके अनन्तानुबन्धी चार, तिर्यंचायु और एक अन्य आयु इन छह बिना एक सौ बयालीस प्रकृतिरूप है। जिसके मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षय हुआ है उसके एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप तीसरा स्थान है, जिसके मिश्र मोहनीयका क्षय हुआ है उसके एक सौ चालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुज्यमानमनुष्यनु बध्यमानदेवायुष्यनेंब भंगद्वयमक्कु। मा स्थानदोळ मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसि सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसुत्तिर्प्प भुज्यमानमनुष्यंगे अन्यतरायुष्यमोंदुं तिर्य्यगायुष्यमुं अनंतानुबंधिचतुष्कमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुमंतु सप्तप्रकृतिसत्वरहितमागि नूर नाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुमा भंगद्वयमेयक्कुमा स्थानदोळु मिश्रप्रकृतियं क्षपिसि सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसुत्तमिर्प्पातंगितरायुस्तिर्य्यगायुर्द्वितयमुं अनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुमंतेंदुं प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु मुंपेळ्देरडे भंगंगळप्पुवु। आ स्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसिदातंगन्यतरायुस्तिर्य्यगायुर्द्विकमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं दर्शनमोहनीयत्रितयमुमंतु नवप्रकृतिरहितमागि नूर मूवत्तोंभत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळं मुंपेळ्द भुज्यमानमनुष्यं बद्धनरकदेवायुष्यभेददेरडे भंगंगळप्पुवीबद्धायुष्यन स्थानपंचकद केळगण अबद्धायुष्यन पंक्तिय-

---

नरकायुःभुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुश्चेति द्वौ द्वौ भंगौ भवतः। तदधस्तनाबद्धायुष्कपंक्तौ पंचस्थानेषु पंचचत्वारिंशच्छतके विसंयोजितानंतानुबंधिनः एकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमाननारकमनुष्यदेवायुर्भेदात्त्रयो भंगाः। क्षपितमिथ्यात्वस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमानमनुष्याणामेको भंगः। क्षपितमिश्रस्यैकान्नचत्वारिंशच्छतके भुज्यमाननरकमनुष्यदेवायुर्भेदात्त्रयो भंगाः कृतकृत्यवेदकतीर्थसत्त्वमनुष्यस्य गतिद्वयजननसंभवात्। क्षपितसम्यक्त्वप्रकृतेरष्टत्रिंशच्छतकेऽपि त एव त्रयो भंगा। असौ क्षायिकसम्यग्दृष्टिः तस्मिन्नेव भवे घातीनि

और जिसके सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय हुआ है उसके एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप पाँचवाँ स्थान है। इन चारों स्थानोंमें भी पूर्ववत् भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु और भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु ये दो दो ही भंग होते हैं। अबद्धायुके प्रथम पंक्ति सम्बन्धी पाँच स्थानोंमें प्रथम स्थान एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप और अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर दूसरा स्थान एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप है। इन दोनों स्थानोंमें भुज्यमान नरकायु मनुष्यायु और देवायुकी अपेक्षा तीन भंग है। तथा मिथ्यात्वका क्षय होनेपर तीसरा स्थान एक सौ चालीस प्रकृतिरूप है। उसमें भुज्यमान मनुष्यायु एक ही भंग होता है। मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है। उसमें भुज्यमान नरकायु, मनुष्यायु देवायुकी अपेक्षा तीन भंग हैं। क्योंकि तीर्थंकरकी सत्तावाला कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी मनुष्य मरकर नरक और देवगतिमें उत्पन्न हो सकता है। अतः देवगति और नरकगतिमें भी इस प्रकारका सत्त्वस्थान सम्भव है। सम्यक्त्व मोहनीयका अभाव होनेपर एक सौ अड़तीसका सत्तारूप पाँचवाँ स्थान होता है। यहाँ भी भुज्यमान नरकायु मनुष्यायु और देवायुकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं। मनुष्यायु सहित एक सौ अड़तीस सत्त्वस्थानवाला यह क्षायिक सम्यग्दृष्टी यदि उसी भवमें घातिया कर्मोंको नष्ट कर केवली होता है तो उसके गर्भ और जन्मकल्याणक न होकर तप आदि तीन

---

१. इल्लि क्षायिकनप्पुदरिं भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यमुमेंब भंगंगळु कूडि नाल्कु भंगंगळुळ्ळडं समभंगंगळेंदु एरडु भंगंगळं तेगदु येरडे भंगंगळेंबदर्थं। षट्-सप्ताष्टप्रकृतिरहितस्थानदोळु नाल्कु भंगंगळिगे संभवमिल्लप्पुदरिंदेरडे भंगंगळु। एकेंदोडे अनंतानुबंधियनु-मिथ्यात्वप्रकृतियनुकेडिसि मिश्रप्रकृतियं केडिसद मुन्न मरणमिल्लप्पुदरिं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानपंचकदोळ् पेळल्पडुगुं । तिर्य्यंगायुर्व्वर्ज्जितविवक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयं रहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानन्नारकं मनुष्यं देवनें ब भेददिदं मूरु भंगंगळप्पुवनंतानुबंधिचतुष्कमुं विसंयोजनमं माडिदातंगेळु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तों दु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनें ब भेददिदं भंगत्रयमक्कुं । मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसिदातंगें दु प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लिभुज्यमानमनुष्यनों दे भंगमक्कुं । मिश्रप्रकृतियं क्षपिसिदातंगे नवप्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तों भत्तु प्रकृतिसत्व- स्थानमक्कुमल्लियुं तिर्य्यग्गतिवर्ज्जितमागि भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनें ब भेददिदं भंगत्रयमक्कु- मेकें बोडे कृतकृत्यवेदकंगे सतीर्त्थंगे मनुष्यंगे गतिद्वयजनन संभवमुंटप्पुदरिदं । सम्यक्त्व प्रकृतियं क्षपिसिदंगेयुं भुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुमनंतानुबंधिचतुष्कमुं मिथ्यात्वादि- दर्शनमोहनीयत्रयमुमंतु दशप्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तें दु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनें ब भेददिदं भंगत्रयमक्कुमी अबद्धायुष्यनप्प सतीर्त्थनप्प क्षायिक- सम्यग्दृष्टि तद्भवदोळु घातिगळं केडिसिदोडे गर्भावतरणकल्याणमुं जन्माभिषवणकल्याणमु- मिल्ल । अथवा तृतीयभवदोळु घातिगळं केडिसुवडे नियमदिदं देवायुष्यमं कट्टि देवनक्कु- मातंगे पंचकल्याणंगळमोळवु । बद्धनरकायुष्यनप्प सतीर्त्थंगेयुं नारकनागि प्रथमद्वितीयतृतीय- पृथ्विगळोळिर्प्पंगर्व्विगळु भुज्यमाननरकायुष्यावशेषमादागळु तीर्त्थंकरविशिष्टमनुष्यायुष्यमं

हंति तदा गर्भावतरणजन्माभिषवणकल्याणे न स्यातां । अथ तृतीयभवे हंति तदा नियमेन देवायुरेव बध्वा देवो भवेत् तस्य पंच कल्याणानि स्युः । यो बद्धनारकायुस्तीर्थसत्वः स प्रथमपृथ्व्यां द्वितीयायां तृतीयायां वा जायते । तस्य षण्मासावशेषे बद्धमनुष्यायुष्कस्य नारकोपसर्गनिवारणं गर्भावतरणकल्याणादयश्च भवंति । द्वितीयपंक्तौ बद्धायुःपंचस्थानेषु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानाभ्यामितरायुर्द्वयतीर्थाभावात्पंचचत्वारिंशच्छतसत्त्व- स्थाने विसंयोजितानंतानुबंधिन एकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने च तीर्थासत्त्वाच्चातुर्गतिसंबंधिद्वादशभंगेषु समभंगेषु समपुनरुक्तान्विना पंच । क्षपितमिथ्यात्वस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमानमनुष्यस्य बध्यमान-

ही कल्याणक होते हैं। यदि तीसरे भवमें घातिकर्मोंको नष्ट करता है तो नियमसे देवायुको बाँधता है। वहाँ देवायु सहित एक सौ अड़तीसका सत्त्व पाया जाता है। मनुष्य पर्यायमें जन्म लेनेपर उसके पाँच कल्याणक होते हैं। किन्तु जिसने मिथ्यात्वमें नरकायुका बन्ध किया है और उसके तीर्थंकरका सत्त्व है तो वह प्रथम द्वितीय या तृतीय नरकमें उत्पन्न होता है उसके एक सौ अड़तीसका सत्त्व होता है। उसकी आयुमें छह महीना शेष रहनेपर मनुष्यायुका बन्ध होता है तथा नरकमें नारकियों द्वारा किये जानेवाले उपसर्गका निवारण और पंचकल्याणक होते हैं।

दूसरी पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें विवक्षित भुज्यमान और बध्यमान बिना दो आयु और तीर्थंकरके बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान है। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप दूसरा स्थान है। इन दोनों स्थानोंमें तीर्थंकर प्रकृतिका अभाव होनेसे चारों गति सम्बन्धी बारह भंगोंमें समभंग और पुनरुक्त भंगके बिना पाँच-पाँच भंग जानना। मिथ्यात्वका क्षय होनेपर एक सौ चालीस प्रकृतिरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कट्टिदंगे नारकोपसर्गनिवारणमुं गर्भावतरणादिकल्याणंगळुमप्पुवु। द्वितीयपंक्तिय बद्धायुष्यन सत्वस्थानपंचकंगळोळु तीर्त्थमुं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वितयमुमल्लदितरायुर्द्वितयमुमंतु त्रिप्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि तीर्त्थरहितस्थानमप्पुदरिंदं चतुर्ग्गतिसंबंधि द्वादशभंगंगळोळु पुनरुक्तसमभंगंगळेळं कळेदु शेषपंचभंगंगळप्पुवु। अनंतानुबंधिविसंयोजनमं माडिदातंगे तीर्त्थमुमन्यतरायुर्द्वितयमुं अनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतेळु सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुमा पंचभंगंगळप्पुवु। मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसि मिश्रप्रकृतियं क्षपियिसुत्तिर्प्पात मनुष्यनेयप्पुदरिंदमातंगे तीर्त्थमुमितरायुर्द्वितयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वमुमंतेंदुं प्रकृतिरहितमागि नूर नाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्यमानमनुष्यंगे बध्यमाननरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवनेंब भेददिदं नाल्कु भंगंगळोळु पुनरुक्तभंगमोंदं कळेदु शेषभंगंगळु मूरप्पुवु। मिश्रप्रकृतियुमं क्षपिसि सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसुत्तिर्प्प कृतकृत्यवेदकंगं तीर्त्थमुमितरायुर्द्वितयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं कूडि नव प्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तोंभत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं भुज्यमानमनुष्यं बद्धनरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यभेददिंदं नाल्कु भंगंगळोळु पुनरुक्तमं कळेदु मूरु भंगंगळप्पुवु। सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टियाद तीर्त्थरहितंगे तीर्त्थमुमितरायुर्द्वितयमुमनंतानुबंधि चतुष्टयमुं दर्शनमोहनीयत्रयमुमंतु दशप्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तेंदुं प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लिभुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानदेवायुष्यनु। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनु। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु। भुज्यमानमनुष्यनु बध्यमानदेवायुष्यनु। भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमेंब सप्तभंगंगळोळु भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनेंब पुनरुक्तभंगमुमं

नरकतिर्यक्मनुष्यदेवभेदेन चतुर्षु भंगेषु पुनरुक्तमेकं विना त्रयः। क्षपितमिश्रस्यैकान्नचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि त एव त्रयः। क्षपितसम्यक्त्वप्रकृतेरष्टत्रिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुष्कः १ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानदेवायुष्कः २ भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुष्कः ३ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्यगायुष्कः ४ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानमनुष्यायुष्कः ५ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुष्कः ६ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्या-

---

तीसरा स्थान है। वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु और बध्यमान नरकायु तिर्यंचायु मनुष्यायु देवायुके भेदसे चार भंग होते हैं। उनमें-से भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु भंग एक ही प्रकृति होनेसे पुनरुक्त है। उसके बिना तीन भंग होते हैं। मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है। वहाँ भी उसी प्रकार तीन भंग होते हैं। सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप पाँचवाँ स्थान है। वहाँ भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु १ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायु २ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु ३ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यंचायु ४ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु ५, भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु ६, भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु इन सात भंगोंमें पाँचवाँ भंग पुनरुक्त है क्योंकि एक ही मनुष्यायु है। पहला भंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु । भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमें बेरडुं समभंगंगळु मंतु मूरुं भंगंगळं कळेदु शेषभंगंगळु नाल्कु अप्पुवु। शेषपंचभंगंगळऽसंभवंगळप्पुवु : संदृष्टि :—

ब	ति । म	ना । ति । म । दे	ना । ति । म । दे	ति । म
भु	ना । ना	ति । ति । ति । ति	म । म । म । म	दे । दे
*	० । स	० । ० । ० । ०	+ । + । पु । +	० । स

आ द्वितीयपंक्तिय केळगण अबद्धायुष्यरुगळ सत्वस्थानपंचकदोळु विवक्षित भुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुं कूडि नाल्कु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूर नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कु । मल्लि नाल्कुं गतिजर भेदर्दिदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । भज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतु अष्टप्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कु मल्लियुं चतुर्ग्गतिजर भेदर्दिदं नाल्कु भंगंगळप्पुवु । मिथ्यात्वमं क्षपिसिद सत्वस्थानदोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वमुमंतु नव प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्यमानमनुष्यनल्लदितरगतित्रयजरल्लप्पुदरिंदमों दे भंगमक्कुं । मिश्रप्रकृतियुमं क्षपिसि सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपियिसुत्तिर्द्दातनुं कृतकृत्यवेदकनुं मेणातंगे अन्यतरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिचतुष्कमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं

युष्कश्चेति ७ सप्तभंगेषु पंचमः पुनरुक्तः, प्रथमसप्तमौ च समाविति चत्वारः । शेषाः पंच न संभवंति । संदृष्टिः—

ब	ति	म	ना	ति	म	दे	ना	ति	म	दे	ति	म
भु	ना	ना	ति	ति	ति	ति	म	म	म	म	दे	दे
०	०	स	०	०	०	०	०	०	पु	०	०	स

तदधस्तनाबद्धायुष्कपंचस्थानेषु विवक्षितभुज्यमानादितरायुस्त्रयतीर्थाभावे चतुश्चत्वारिंश्च्छतसत्वस्थाने विसंयोजितानंतानुबंधिचतुष्कस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने चतुर्गतिजभेदाच्चत्वारः । क्षपितमिथ्यात्वस्यैकान्नचत्वारिंश्चतसत्त्वस्थाने भुज्यमानमनुष्यादितरगतित्रयजाभावादेकः । क्षपितमिश्रस्याष्टात्रिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्य-

और तीसरा भंग तथा सातवाँ और छठा भंग समान है । इन तीनके बिना चार भंग होते हैं । चारों गति सम्बन्धी जो बारह भंग कहे थे उनमें-से पाँच भंग यहाँ नहीं होते । दूसरी पंक्ति सम्बन्धी अबद्धायुके पांच स्थानोंमें-से भुज्यमान आयु बिना तीन आयु और तीर्थंकर बिना एक सौ चवालीस प्रकृतिरूप पहला स्थान है । अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर एक सौ चालीस प्रकृतिरूप दूसरा स्थान है । इन दोनोंमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार-चार

१. मुंपेल्द द्वादश भंगंगळोळु घटियिसुववु । अय्दु घटियिसव बुदत्थं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रप्रकृतियुमितु दशप्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूर मूवत्तें टु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्यमानमनुष्यनुं कृतकृत्यापेक्षेयिदं नारकनुं तिर्य्यंचनुं देवनुमें ब नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। सम्यक्त्वप्रकृतियुमं क्षपिसिद क्षायिक सम्यग्दृष्टिगे यितरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिचतुष्कमुं दर्शनमोहनीयत्रयमंतु पन्नों दु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं चतुर्ग्गतिजरुगळ भेर्दाददं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। इंतु प्रथमपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु त्रयोविंशति भंगंगळप्पुवु। द्वितीयपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु सप्तत्रिंशद्भंगंगळप्पुवु। इतरतृतीयपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु प्रथमपंक्तिद्वय दशस्थानं गळोळु पेळ्दंते त्रयोविंशति भंगंगळप्पुवु। चतुर्त्थपंक्तिद्वयद दशस्थानंगळोळु द्वितीयपंक्तिद्वयद दशस्थानंगळोळु पेळ्द सप्तत्रिंशद्भंगंगळप्पुवंतसंयतगुणस्थानदोळु सत्वस्थानंगळु नाल्वत्तरोळु पुनरुक्त समविहीनभंगंगळु नूरिप्पत्तप्पुवु॥

अनंतरं देशसंयतादि गुणस्थानत्रयदोळु भंगगळं पेळ्दपरु :—

देसतिएसुवि एवं भंगा एक्केक्क देसगस्स पुणो।
पडिरासि बिदियतुरियस्सादीबिदियम्मि दो भंगा ॥३८२॥

देशव्रतादित्रयेष्वेवं भंगा एकैके देशव्रतस्य पुनः। प्रतिराशि द्वितीयतुरीयस्यादौ द्वितीये द्वौ भंगौ॥

मानमनुष्यः कृतकृत्यवेदकनारकतिर्यग्देवाश्चेति चत्वारः। क्षायिकसम्यग्दृष्टेः सप्तत्रिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि चतुर्गतिजभेदाच्चत्वारः। एवं इतरतृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु प्रथमपंक्तिद्वयदशस्थानवत्त्रयोविंशतिर्भूत्वा चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानेषु द्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानवत्सप्तत्रिंशद्भूत्वा चासंयते चत्वारिंशत्सत्त्वस्थानेषु समपुनरुक्तान्विना विंशत्युत्तरशतं भंगाः स्युः ॥३८१॥

देशसंयतादित्रये प्रतिस्थानमेकैको भंगः। देशसंयते पुनर्द्वितीयपंक्तिद्वयस्य चतुर्थपंक्तिद्वयस्य च बद्धाबद्धायुषोः प्रथमद्वितीयस्थानयोर्द्वौ द्वौ भंगौ। तथाहि—

भंग होते हैं। मिथ्यात्वका क्षय होनेपर एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप तीसरा स्थान है। वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु एक ही भंग होता है। मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है। वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु और कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टीकी अपेक्षा भुज्यमान नरकायु तिर्यंचायु देवायु इस प्रकार चार भंग होते हैं। सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय होनेपर क्षायिक सम्यग्दृष्टीके एक सौ सैंतीस प्रकृतिरूप पाँचवाँ स्थान है। वहाँ भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं।

तीसरी पंक्तिमें पहली पंक्तिके बद्धायु अबद्धायुरूप दस स्थानोंमें आहारक चतुष्कको घटानेपर दस स्थान होते हैं। उनमें प्रथम पंक्तिकी तरह तेईस भंग जानना। चौथी पंक्तिमें दूसरी पंक्तिके बद्धायु अबद्धायु रूप दस स्थानोंमें आहारक चतुष्करूप चार-चार प्रकृति घटानेपर दस स्थान होते हैं। उनमें दूसरी पंक्तिकी तरह सैंतीस भंग होते हैं। इस प्रकार असंयतमें सब मिलकर चालीस सत्वस्थान और एक सौ बीस भंग होते हैं ॥३८१॥

देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन तीन गुणस्थानोंमें असंयतकी तरह ही चालीस-चालीस स्थान होते हैं। और प्रत्येक स्थानमें एक-एक भंग होता है। विशेष इतना है कि देशसंयतमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशसंयतगुणस्थानदोळं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळमप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळं प्रतिस्थानमेकैकभंगंगळप्पुवु। देशसंयतगुणस्थानदोळु मत्तं द्वितीयपंक्तिद्वयद चतुर्थपंक्तिद्वयद बद्धाबद्धायुष्यरुगळ प्रथम द्वितीयस्थानंगळोळु एरडेरडु भंगंगळप्पुवु। अदें तें दोडे देशसंयतादिगुणस्थानत्रयदोळमसंयतगुणस्थानदोळु पेळ्दंते दुग छक्क सत्त अट्ठ णव रहियमें दु तिर्य्यगायुष्यमुं नरकायुष्यमुमंतेरडु मा येरडुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतारुमा आरुं मिथ्यात्वप्रकृतियुमंतेळुमा एळु मिश्रप्रकृतियुमंतें टुमा एंटुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतों भत्तुं प्रकृतिगळु क्रमदिदं सत्वरहितंगळागि नूर नाल्वत्तारुं नूरनाल्वत्तेरडुं नूरनाल्वत्तों दु नूरनाल्वत्तु नूरमूवत्तों भत्तुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळक्कुमेकें दोडे असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु दर्शनमोहनीय क्षपणाप्रारंभकरप्पुदरिदमा पंचसत्वस्थानंगळं तिर्य्यक्कागि केळगे केळगे चतुः प्रतियं माडि स्थापिसिदोडे बद्धायुष्यंगे सत्वस्थानंगळप्पुवल्लि मत्तो दों दायुष्यंगळं कुंदिसियवर केळगे केळगे स्थापिसिदोडबद्धायुष्यंगे स्थानंगळप्पुवल्लि प्रथमपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु तीर्त्थमुमाहारकचतुष्टयमुं सत्वमुंटप्पुदरिदं शून्यमं कळेदु द्वितीयपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु प्रत्येकं तीर्त्थमों दं कळेदु तृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानंगळोळु तीर्त्थमनिरिसियाहारचतुष्कमं कळेदु चतुर्त्थपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु तीर्त्थमुमाहारचतुष्कमुममंतु प्रकृतिपंचकमं कळेदु स्थापिसिदें टुं पंक्तिगळ बद्धायुष्यरुगळ पंचपंच स्थानंगळोळु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यं बद्धदेवायुष्यनें बो दों दे भंगंगळप्पुवेकें दोडे भुज्यमानमनुष्य देशसंयतादिगळगे देवायुष्यं बध्यमानमल्लदितरायुस्त्रितयं बध्यमानायुष्यमादोडे देशव्रतमुं महाव्रतमुमिल्लप्पुदरिदं। अबद्धायुष्यरुगळ पंच

तद्गुणस्थानत्रयेऽप्यसंयतवद् दुगछक्कसत्तअट्ठनव प्रकृतयो हीना भूत्वा पंचस्थानानि तिर्यगधोधश्चतुःप्रतिकं कृत्वा स्थाप्यानि बद्धायुष्कस्य भवंति। तत्र पुनरेकैकायुरपनीय तेषामधःस्थापितेऽबद्धायुष्कस्य भवंति। तत्र प्रथमपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तीर्थाहाराः संतीति शून्यमपनीय द्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तीर्थमपनीय तृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तन्निक्षिप्याहारकचतुष्कमपनीय चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानेषूभयमपनीय स्थापिताष्टपंक्तीनां बद्धायुष्कपंचपंचस्थानेषु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यबद्धदेवायुरित्येक एव, इतरायुस्त्रये बध्यमाने देशमहाव्रताभावात्। अबद्धायुष्कपंचपंचस्थानेषु भुज्यमानमनुष्य इत्येक एव। पुनर्देशसंयते तीर्थरहितद्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु

बद्धायु और अबद्धायुकी दूसरी दो पंक्ति और चौथी दो पंक्तिके पहले और दूसरे स्थानमें दो-दो भंग होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

देशसंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें असंयतकी तरह दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृति रहित पाँच स्थान बराबर लिखकर उनके नीचे-नीचे चार पंक्ति बद्धायुकी करो। और उनके नीचे बध्यमान एक-एक आयु घटाकर चार पंक्ति अबद्धायुकी करो। उनमेंसे पहली पंक्ति तीर्थंकर आहारक सहित है। दूसरी पंक्तिमें तीर्थंकर प्रकृति घटाना। तीसरी पंक्तिमें तीर्थंकर मिलाकर आहारक चतुष्क घटाना। चौथी पंक्तिमें तीर्थंकर और आहारक चतुष्क घटाना। इस प्रकार बद्धायु अबद्धायुकी आठ पंक्तियोंके चालीस स्थान हुए। उनमेंसे जो बद्धायुके बीस स्थान हैं उनमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु यह एक-एक ही भंग होता है। क्योंकि अन्य तीन आयुके बन्धमें देशव्रत और महाव्रत नहीं होते। तथा अबद्धायुके जो बीस स्थान हैं उनमें भुज्यमान मनुष्यायु यह एक-एक ही भंग होता है। किन्तु इतना विशेष है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच स्थानंगळोळु भुज्यमानमनुष्यने ओंदोंदे भंगंगळप्पुवु। मत्तं देशसंयत गुणस्थानदोळु तीर्त्थरहितंगळप्प द्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानंगळोळं चतुर्त्थपंक्तिद्वयदशस्थानंगळोळमवर प्रथमद्वितीयस्थानद्वयंगळोळु भुज्यमानमनुष्यं बद्धदेवायुष्यनु भुज्यमानतिर्य्यंचं बद्धदेवायुष्यनेंबेरडेरडुं भंगंगळुं भुज्यमानमनुष्यं भुज्यमानतिर्य्यंचनुमेंबेरडेरडुं भंगंगळप्पुवु। यितागुत्तं विरलु देशसंयतन नाल्वत्तुं स्थानंगळगे नाल्वत्तें दु भंगंगळप्पुवु। प्रमत्तसंयतंगं नाल्वत्तुं स्थानंगळगे नाल्वत्ते भंगंगळप्पुवु। अप्रमत्तसंयतंगे नाल्वत्तुं स्थानंगळगे नाल्वत्ते भंगंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

देशसंयतंगे— प्रमत्तसंयतंगे—

	० २	० ६	० ७	० ८	० ९	० २	० ६	० ७	० ८	० ९
सतीर्थ	ब १४६ १	१४२ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	ब १४६ १	१४२ १	१४१ १	१४० १	१३९ १
	अ १४५ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	१३८ १	अ १४५ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	१३८ १
अतीर्थ	ब १४५ २	१४१ २	१४० १	१३९ १	१३८ १	ब १४५ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	१३८ १
	अ १४४ २	१४० २	१३९ १	१३८ १	१३७ १	अ १४४ १	१४० १	१३९ १	१३८ १	१३७ १
सतीर्थ	ब १४२ १	१३८ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	ब १४२ १	१३८ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १
	अ १४१ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	१३४ १	अ १४१ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	१३४ १
अतीर्थ	ब १४१ २	१३७ २	१३६ १	१३५ १	१३४ १	ब १४१ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	१३४ १
	अ १४० २	१३६ २	१३५ १	१३४ १	१३३ १	अ १४० १	१३६ १	१३५ १	१३४ १	१३३ १

→

चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानेषु च प्रथमद्वितीयस्थानयोर्भुज्यमानमनुष्यबद्धदेवायुष्कभुज्यमानतिर्यग्बद्धदेवायुष्कौ भुज्यमानमनुष्यभुज्यमानतिर्यंचौ च भवतः। एवं सति देशसंयतस्य चत्वारिंशत्स्थानानामष्टचत्वारिंशद्भंगा भवंति। तथा प्रमत्ताप्रमत्तयोस्तु चत्वारिंशत्स्थानानां चत्वारिंशदेव भवंतीति ज्ञातव्यं ॥३८२॥

देशसंयतमें तीर्थंकर रहित दूसरी पंक्तिके दस स्थानोंमें-से और चौथी पंक्तिके दस स्थानोंमें-से पहले और दूसरे दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं। सो बद्धायुकी दूसरी और चौथी पंक्तिके पहले और दूसरे स्थानमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु, भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायु ये दो-दो भंग होते हैं। तथा अबद्धायुकी दूसरी और चौथी पंक्तिके पहले और दूसरे स्थानमें भुज्यमान मनुष्यायु और भुज्यमान तिर्यंचायु ये दो-दो भंग होते हैं। इस प्रकार देशसंयतमें चालीस स्थानोंके अड़तालीस भंग होते हैं। किन्तु प्रमत्त और अप्रमत्तमें चालीस-चालीस स्थानोंके चालीस-चालीस भंग हैं ॥३८२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रमत्तसंयतंग—

०/२	०/६	०/७	०/८	०/९
ब १४६/१	१४२/१	१४१/१	१४०/१	१३९/१
अ १४५/१	१४१/१	१४०/१	१३९/१	१३८/१
ब १४५/१	१४१/१	१४०/१	१३९/१	१३८/१
← अ १४४/१	१४०/१	१३९/१	१३८/१	१३७/१
ब १४२/१	१३८/१	१३७/१	१३६/१	१३५/१
अ १४१/१	१३७/१	१३६/१	१३५/१	१३४/१
ब १४१/१	१३७/१	१३६/१	१३५/१	१३४/१
अ १४०/१	१३६/१	१३५/१	‹३४/१	१३३/१

अनंतरमुपशमकरुगळप्प अपूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरु गळे ब नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगळोळु बद्धाबद्धायुष्यरुगळगे सत्वस्थानंगळुमनवर भंगंगळुमं पेळल्वेडि मोदलोळपूर्व्वकरणंगे पेळवपरु :—

दुगछक्कतिण्णिवग्गेणूणाऽपुव्वस्स चउपडिं किच्चा ।
णभमिगि चउपणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३८३॥

द्विकषट्कत्रिवर्ग्गेणोनमपूर्व्वकरणस्य चतुः प्रति कृत्वा । नभ एक चतुःपंचरहितं बद्धस्येतरस्यैकोनं ॥

अपूर्व्वकरणस्य उपशमकापूर्व्वकरणंगे द्विकषट्कत्रिवर्ग्गमात्रप्रकृतिगळिंदमूनमप्प सत्वस्थानत्रितयमं चतुःप्रतिकमं माडि प्रथमपंक्तियोळु शून्यमं द्वितीयपंक्तियोळु तीर्त्थमों दं तृतीयपंक्तियोळु आहारकचतुष्टयमं चतुर्त्थपंक्तियोळाहारकचतुष्टयमु तीर्त्थमुमंतप्दुं कळेदोडे बद्धायुष्यरुगळगे सत्वस्थानंगळप्पुवबद्धायुष्यरुगळगे आ नाल्कुं पंक्तिगळ तंतम्म केळगो दोंदु आयुष्यमं कुंदिसि

अथोपशमकचतुष्के वक्तुं तावदपूर्वकरणस्याह—

उपशमकापूर्वकरणस्य द्विकषट्कत्रिवर्गोनस्थानत्रयं चतुःप्रतिकं कृत्वा प्रथमपंक्तौ शून्ये द्वितीयपंक्तौ तीर्थे तृतीयपंक्तावाहारकचतुष्के चतुर्थपंक्तावुभयस्मिश्चापनीते बद्धायुष्काणां सत्वस्थानानि भवंति । अबद्धा-

आगे उपशमश्रेणिके चार गुणस्थानोंमें कहनेके लिये प्रथम अपूर्वकरणमें कहते हैं—

उपशमक अपूर्वकरणमें दो, छह और तीनका वर्ग नौ इन प्रकृतियोंसे रहित तीन स्थानोंकी चार पंक्तियां करो। पूर्ववत् प्रथम पंक्तिमें शून्य घटाना। दूसरी पंक्तिमें एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थापिसिदोडवि नाल्कुं पंक्तिगळप्पुवंतें दुं पंक्तिगळगें प्रतिपंक्ति प्रकृतिसत्वस्थानंगळु मूरु मूरागुत्तं विरलिप्पत्तनाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु ॥

अनंतरं सत्वरहितप्रकृतिगळुमं भंगंगळुमं पेळ्दपरु :—

णिरयतिरियाउ दोण्णिवि पढमकसायाणि दंसणतियाणि ।
हीणा एदे णेया भंगा एक्केक्कगा होंति ॥३८४॥

नरकतिर्य्यगायुर्द्वयमपि प्रथमकषाया दर्शनमोहनीयत्रयाणि हीनान्येतानि ज्ञेयानि भंगा एकैके भवंति ॥

नरकायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुमें बेरडुमा येरडुं प्रथमकषायंगळु नाल्कुमंतारु मा आरुं प्रकृतिगळुं दर्शनमोहनीयत्रयमुमंतों भत्तुं प्रकृतिगळु हीनमागि क्रमदिदं नूरनाल्वत्तारुं नूरनाल्वत्तेरडुं नूर मूवत्तों भत्तुं प्रकृतिसत्वस्थानत्रितयमप्पुवें दरियल्पडुवुवु । बद्धायुः स्थानपंक्तिगळु नाल्करोळु भुज्यमानमनुष्यं बद्धदेवायुष्यनें बों दों दे भंगंगळरियल्पडुवुवु । आ पंक्तिचतुष्टयद तंतम्म केळगण अबद्धायुःस्थानत्रितयचतुःपंक्तिगळोळु भुज्यमानमनुष्यनें यें बों दों दे भंगमागुत्तिरलिप्पत्तनाल्कुं स्थानंगळिगप्पत्तनाल्के भंगंगळप्पुवु ॥

युष्काणां तच्चतुःपंक्तीनां स्वस्याधः एकैकस्मिन्नायुष्यपनीते चतुःपंक्तयो भवंति । एवमष्टपंक्तीनां प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि भूत्वा चतुर्विंशतिस्थानानि भवंति ॥३८३॥ अथ ता हीनप्रकृती भंगांश्चाह—

नरकतिर्यगायुषी तच्च प्रथमकषायचतुष्कं च तानि च दर्शनमोहत्रयं च अमूनि क्रमेण षट्चत्वारिंशच्छतद्वाचत्वारिंशच्छतैकान्नचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेष्वपनेतव्यानि । बद्धायुःस्थानपंक्तिचतुष्के भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुरित्येकैक एव भंगः । तत्पंक्तिचतुष्कस्याधः अबद्धायुःस्थानत्रयचतुःपंक्तिषु भुज्यमानमनुष्य इत्येकैक एव भंगः । एवं सति स्थानानि भंगाश्च चतुर्विंशतिर्भवंति ॥३८४॥

तीर्थंकर प्रकृति घटाना । तीसरी पंक्तिमें आहारक चतुष्क घटाना । चौथी पंक्तिमें तीर्थंकर और आहारक चतुष्क घटाना । इस तरह बद्धायुके बारह स्थान हुए । और अबद्धायुकी चारों पंक्तियोंमें सब स्थानोंमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर बारह स्थान होते हैं । इस प्रकार आठ पंक्तियोंके तीन-तीन स्थान होनेसे सब चौबीस स्थान होते हैं ॥३८३॥

आगे उन घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम और भंग कहते हैं—

नरकायु तिर्यंचायु घटानेपर एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान होता है । दो ये आयु और अनन्तानुबन्धी चतुष्क घटानेपर एक सौ बयालीस रूप दूसरा स्थान होता है । ये छह और तीन दर्शनमोह इन नौ को घटानेपर एक सौ उनतालीस रूप तीसरा स्थान होता है । इन तीनों स्थानोंकी पूर्ववत् चार पंक्ति करो । तब बद्धायुके बारह स्थान हुए । इन सबमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर अबद्धायुके बारह स्थान होते हैं । इन चौबीस स्थानोंमें भंग एक-एक ही है । बद्धायुके स्थानोंमें तो भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु यह एक भंग है । अबद्धायु स्थानोंमें भुज्यमान मनुष्यायु यह एक ही भंग होता है । इस प्रकार उपशम अपूर्वकरणमें चौबीस स्थान चौबीस भंग होते हैं ॥३८४॥

इसी प्रकार उपशमक अपूर्वकरणकी तरह उपशम श्रेणिके अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं तिसु उवसमगे खवगापुव्वम्मि दसहिं परिहीणं ।
सव्वं चउपडि किच्चा णभमेक्कं चारि पण हीणं ॥३८५॥

एवं त्रिषूपशमकेषु क्षपकापूर्व्वकरणे दशभिः परिहीनं । सर्व्वं चतुः प्रति कृत्वा नभ एकं चत्वारि पंचहीनं ॥

इंतुपशमकापूर्व्वकरणंगे पेळ्दंते शेषोपशमकानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरुगळें ब नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगळ्गं प्रत्येकमिप्पत्तनाल्कुं इप्पत्तनाल्कुं सत्वस्थानंगळुमिप्पत्तनाल्कुमिप्पत्तनाल्कुं भंगंगळुमप्पुवितुपशमश्रेणियोळु नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगळ सत्वस्थानंगळगं भंगंगळगं संदृष्टि इदु :—

उपशमकचतुष्कवके→	२४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ ।		
*	० २	० ६	० ९
बद्ध	१४६ १	१४२ १	१३९ १
अब	१४५ १	१४१ १	१३८ १
बद्ध	१४५ १	१४१ १	१३८ १
अब	१४४ १	१४० १	१३७ १
० बद्ध	१४२ १	१३८ १	१३५ १
४ अब	१४१ १	१३७ १	१३४ १
० बद्ध	१४१ १	१३७ १	१३४ १
५ अब	१४० १	१३६ १	१३३ १

क्षपकापूर्व्वकरणे क्षपकश्रेणियोळु अपूर्व्वकरणंगे भुज्यमानमनुष्यायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुमनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुं दर्शनमोहनीयत्रयमुमंतु दशप्रकृतिगळिंद परिहीनमागि नूर मूवत्तें टु प्रकृतिस्थानमेयक्कुमेकेंदोडसंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळे प्रथमकषायचतुष्टयविसंयोजकरुं

एवमुपशमकापूर्वकरणवत् अनिवृत्तिकरणाद्युपशमकत्रयेऽपि स्थानानि भंगाश्च चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिर्भवंति । क्षपकापूर्वकरणे भुज्यमानमनुष्यायुष्यादितरायुस्त्रयानंतानुबंधिचतुष्कदर्शनमोहत्रयाभावात्सत्त्वस्थान-

---

साम्पराय और उपशान्त मोह नामक गुणस्थानोंमें भी स्थान और भंग चौबीस-चौबीस होते हैं।

क्षपक अपूर्वकरणमें भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु-अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तीन दर्शनमोह इन दस रहित एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप एक ही सत्त्वस्थान होता है। उसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनमोहनीयत्रयक्षपणाप्रारंभकरुमप्पुदरिंदमा दशप्रकृतिगळु क्षपकश्रेणियिदकेळगे कडिसल्पट्टु-वप्पुदरिंदमपूर्व्वकरणनोळु नूरमूवत्तें टु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमदं चतुःप्रतिकमं माडि प्रथमस्थान-दोळु तीर्त्थमाहारकचतुष्टयमुं सत्वमुंटेंदु शून्यमं कळेदु द्वितीयस्थानदोळु तीर्त्थमिल्लाहारक चतुष्टयसत्वमुंटें दोंदं कळेदु तृतीयस्थानदोळु तीर्त्थमुंटाहारकचतुष्टयमिल्लेंदु नाल्कं कळेदु चतुर्त्थसत्वस्थानदोळु तीर्त्थमुमाहारकचतुष्टयमुमिल्लेंदय्दुमं कळेदु प्रकृतिसत्वस्थानंगळु नूर-मूवत्तें टुं नूर मूवत्तेळुं नूरमूवत्तनाल्कुं नूरमूवत्तमूरुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळु नाल्केयप्पुवु । ई नाल्कुं स्थानंगळोळु भुज्यमानमनुष्यनें बोंदोंदे भंगमागुत्तिरलु नाल्कुं स्थानंगळगं नाल्के भंगंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

क्ष० अपू
१३८ १
१३७ १
१३४ १
१३३ १

एदे सत्तट्ठाणा अणियट्टिस्सवि पुणो वि खविदेवि ।
सोलस अट्ठेक्केक्कं छक्केक्कं एक्कमेक्क तहा ॥३८६॥

एतानि सत्वस्थानानि अनिवृत्तेरपि पुनरपि क्षपितेपि षोडशाष्टैकैकं षट्कमेकमेकं तथा ।

ई क्षपकानिवृत्तिकरणंगे पेळद नाल्कु सत्वस्थानंगळु क्षपकानिवृत्तिकरणंगमप्पुवु । मत्तं षोडश अष्ट एक एक षट्क एक एक एक प्रकृतिगळु क्षयियिसल्पडुत्तं विरलु कर्मदिं नूरिप्पत्तेरडुं

सप्तात्रिंशच्छतकं स्यात् । तच्चतुःप्रतिकं कृत्वा प्रथमे तीर्थाहारः समस्तीति शून्यमपनयेत्, द्वितीये तीर्थं, तृतीये आहारकचतुष्कं, चतुर्थे उभयं एवं सत्वस्थानानि अष्टात्रिंशच्छतकसप्तत्रिंशच्छतकचतुस्त्रिंशच्छतकत्रयस्त्रिंशच्छत-कानि चत्वारि तेषु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यायुरेवेति भंगा अपि चत्वारः ॥३८५॥

एतानि क्षपकापूर्वकरणोक्तचत्वारि स्थानानि क्षपकानिवृत्तिकरणस्यापि भवंति पुनः षोडशाष्टैकैकेषु षट्कैकैकैकेषु क्षपितेषु क्रमेण द्वाविंशतिशतकचतुर्दशशतकत्रयोदशशतकद्वादशशतकषडुत्तरशतकपंचोत्तरशतकचतु-

चार पंक्ति करना। प्रथममें तीर्थंकर और आहारक चतुष्क हैं अतः शून्य घटाना। दूसरीमें तीर्थंकर, तीसरीमें आहारक चतुष्क, चौथीमें दोनों घटानेपर एक सौ अड़तीस, एक सौ सैंतीस, एक सौ चौंतीस और एक सौ तैंतीस प्रकृतिरूप चार स्थान होते हैं। उनमेंसे प्रत्येक-में भुज्यमान मनुष्यायु एक-एक ही भंग होता है। अतः भंग भी चार ही हैं ॥३८५॥

क्षपक अपूर्वकरणमें जो ये चार स्थान कहे हैं ये क्षपक अनिवृत्तिकरणमें भी होते हैं। फिर सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक प्रकृतियोंका क्षय करनेपर एक सौ बाईस, एक सौ चौदह, एक सौ तेरह, एक सौ बारह, एक सौ छह, एक सौ पाँच, एक सौ चार, एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नूरपदिनाल्कुं नूरपदिमूरुं नूरपन्नेरडुं नूरारुं नूरय्दुं नूरनाल्कुं नूरमूरु प्रकृतिसत्वस्थानंगळप्पुववं प्रत्येकं चतुःप्रतिकं माडि णभमेक्कं चारि पण परिहीणमें दु स्थापिसुत्तं विरलु संदृष्टिरचन यितिक्कुं

स १३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
अ १	१२१	११३	११२ २।	१११	१०५	१०४	१०३	१०२
स १३४	११८	११०	१०९	१०८	१०२	१०१	१००	९९
अ १३३	११७	१०९	१०८ २।	१०७	१०१	१००	९९	९८

अनंतरं अनिवृत्तिकरणन मूवत्तारु प्रकृतिसत्वस्थानंगळोळु भंगंगळं गाथाद्वयदिवं पेळ्दपरु :—

भंगा एक्केक्का पुण णउंसयक्खविदचउसु ठाणेसु ।
बिदियतुरियेसु दोद्दो भंगा तित्थयरहीणेसु ॥३८७॥

भंगा एकैके पुनर्नपुंसकक्षपित चतुर्षु स्थानेषु । द्वितीयतुर्य्ययो द्वौ द्वौ भंगौ तीर्थंकर हीनयोः ॥

ई क्षपकानिवृत्तिकरणसत्वस्थानंगळु मूवत्ताररोळं भंगंगळु प्रत्येकमों दों देयप्पुवल्लि नपुंसकवेदमं क्षपिसिद नाल्कुं सत्वस्थानंगळोळु तीर्थंकरसत्वरहितंगळप्प द्वितीयचतुर्थस्थानदोळेर-डेरडु भंगंगळप्पुवदें तें दोडे पेळ्दपरु :—

त्तरशतकद्युत्तरशतकान्यपि भवंति । तानि सर्वाणि चतुःप्रतिकानि कृत्वा णभमेक्कचारिपणहीणमिति स्थाप्यानि ॥३८६॥ अमीषु षट्त्रिंशत्सत्वस्थानेषु भंगान् गाथाद्वयेनाह—

एतेषु क्षपकानिवृत्तिकरणस्य षट्त्रिंशत्सत्वस्थानेषु भंगः एकैकः तत्र क्षपितनपुंसकवेदचतुःस्थानेषु तीर्थकरत्वोनद्वितीयचतुर्थयोर्द्वौ द्वौ ॥३८७॥ तद्यथा—

सौ तीन रूप आठ स्थान होते हैं। इनको चार पंक्ति करके प्रथम पंक्तिमें शून्य, दूसरीमें तीर्थंकर, तीसरीमें आहारक चतुष्क, चौथीमें तीर्थंकर आहारक चतुष्क घटाना। इस प्रकार चारों पंक्तियोंके बत्तीस स्थान हुए। चार अपूर्वकरणवाले स्थान मिलानेपर क्षपक अनिवृत्ति करणमें छत्तीस स्थान होते हैं ॥३८६॥

क्षपक इन अनिवृत्तिकरणके छत्तीस स्थानोंमें दो गाथा द्वारा भंग कहते हैं—

क्षपक अनिवृत्तिकरणके छत्तीस स्थानोंमें एक-एक भंग होता है किन्तु इतना विशेष है कि जहाँ नपुंसक वेदका क्षय कहा है उन चार पंक्ति सम्बन्धी चार स्थानोंमें तीर्थंकर रहित दूसरी और चौथी पंक्ति सम्बन्धी दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं ॥३८७॥

उन्हें ही कहते हैं—

---

१. स्त्रीवेदक्षपणायोग्यचतुर्थस्थान । ऊर्ध्ववागिदर्द ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थीपुरिसोदयचडिदे पुव्वं संढं खवेदि थी अत्थि।
संढस्सुदये पुव्वं थीखविदं संढमत्थित्ति ॥३८८॥

स्त्रीपुरुषोदयचटिते पूर्व्वं षंडं क्षपयति स्त्रीवेदोस्ति षंडस्योदये पूर्व्वं स्त्रीक्षपितं षंडमस्तीति ॥

स्त्रीवेदोदयदिदमुं पुरुषवेदोदयदिदमुं क्षपकश्रेणियनेरिदवग्गंळु मुन्नं षंडवेदमं क्षपिसुवरु। स्त्रीवेदं सत्वमुंटु। षंडवेदोदयदिदं क्षपकश्रेणियनेरिदोडे मुन्नं स्त्रीवेदं क्षपिसल्पट्टु षंडवेदं सत्वमुंटे विंतेरडेरडुं भंगंगळप्पुवंतागुत्तं विरलनिवृत्तिकरणंगुभयश्रेणियोळं कूडि द्वाषष्टिभंगंगळप्पुवु। ई पक्षदोळु क्षपकानिवृत्तिकरणंगे मायासत्वरहितस्थानंगळु नाल्किल्ल। चदुसेक्कं बादरे यें दु पेळ्वाचार्य्यन पक्षदोळनिवृत्तिकरणंगे मायारहितचतुःस्थानंगळुमोळवु।

अनंतरं क्षपकसूक्ष्मसांपरायंगं क्षीणकषायंगं सत्वस्थानंगळं पेळ्वपरु :—

अणियट्टिचरिमठाणा चत्तारिवि एक्कहीण सुहुमस्स।
ते इगि दोण्णिविहीणं खीणस्सवि होंति ठाणाणि ॥३८९॥

अनिवृत्तिचरमस्थानानि चत्वार्य्यप्येकहीनानि सूक्ष्मस्य। तान्येकद्विहीनानि क्षीणकषायस्यापि भवंति स्थानानि ॥

क्षपकानिवृत्तिकरणन संज्वलनमानरहितमप्प नाल्कुं सत्वस्थानंगळोळु संज्वलनमायेयों दु। सत्वरहितंगळादुवादोडे सूक्ष्मसांपरायंगे नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

स्त्रीवेदोदयेन पुंवेदोदयेन वा क्षपकश्रेणिमारूढाः पूर्वं षंढवेदं क्षपयंति स्त्रीवेदसत्त्वं स्यात्। षंढवेदोदयेनारूढाः पूर्वं स्त्रीवेदं क्षपयंति षंढवेदसत्त्वं स्यात्। तेन द्वौ द्वौ भंगौ भवतः। एवं सत्यनिवृत्तिकरणस्योभयश्रेण्योर्मिलित्वा द्वाषष्टिभंगा भवंति। अस्मिन्पक्षे क्षपकानिवृत्तिकरणस्य मायोनचत्वारि स्थानानि न संति चदुसेक्के बादरे इति पक्षे संति ॥३८८॥ अथ क्षपकसूक्ष्मसांपरायक्षीणकषाययोराह—

क्षपकानिवृत्तिकरणस्य संज्वलनमानरहितचत्वारि स्थानानि संज्वलनमायाहीनानि भूत्वा सूक्ष्मसांपरायस्य

जो जीव स्त्रीवेद या पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि चढ़ते हैं वे पहले नपुंसक वेदका क्षपण करते हैं। उनके पूर्वोक्त दोनों स्थानोंमें स्त्रीवेदका सत्त्व रहता है। किन्तु जो नपुंसक वेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणि चढ़ते हैं वे पहले स्त्रीवेदका क्षपण करते हैं उनके नपुंसकवेदका सत्त्व रहता है। इससे दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं। इस प्रकार क्षपकके छत्तीस स्थानोंके अड़तीस भंग और उपशमकके चौबीस भंग मिलाकर अनिवृत्तिकरणमें बासठ भंग होते हैं। इस पक्षमें क्षपक अनिवृत्तिकरणमें माया रहित चार स्थान नहीं होते। किन्तु 'चदुसेक्के बादरे' इत्यादि गाथा आगे कहेंगे। उस पक्षकी अपेक्षा ये चार स्थान होते हैं। यह कथन आगे करेंगे ॥३८८॥

आगे क्षपक सूक्ष्म साम्पराय और क्षीणकषायमें कहते हैं—

क्षपक अनिवृत्तिकरणमें जो संज्वलन मानरहित चार स्थान कहे थे, उन चार स्थानोंमें-से संज्वलन मायाको घटानेपर सूक्ष्मसाम्परायके चार स्थान होते हैं। वे एक सौ दो, एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सू=
१०२
१०१
९८
९७

तान्येकविहीनानि आ सूक्ष्मसांपरायन संज्वलनकषायरहितस्थानंगळु नाल्कुं संज्वलनलोभकषायमोंदरिदं हीनंगळागुत्तिरलोडे क्षीणकषायंगे द्विचरमसमयपर्य्यंतं नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

क्षीण क०
द्वि २०
१०१
१००
९७
९६

ई नाल्कु स्थानंगळु प्रत्येकं निद्राप्रचलावरणद्वयरहितगळादोडे क्षीणकषायन चरमसमयसत्वस्थानंगळु नाल्कप्पुवु। संदृष्टि :—

क्षी चरम
९९
९८
९५
९४

अनंतरं सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानंगळोळु सत्वस्थानंगळ पेळ्दपरु :—

ते चोद्दसपरिहीणा जोगिस्स अजोगिचरिमगो वि पुणो।
बावत्तरिमडसट्ठिं दुसु दुसु हीणेसु दुग दुगा भंगा ॥३९०॥

तानि चतुर्द्दशपरिहीनानि योगिनोऽयोगिचरमेपि पुनर्द्वासप्ततिमष्टषष्टिं द्वयोर्द्वयोर्हीनेषु द्वौ द्वौ भंगौ ॥

भवंति। एतानि चत्वारि संज्वलनलोभहीनानि क्षीणकषायद्विचरमसमयपर्यंतं भवंति। एतानि पुर्नाद्राप्रचलारहितानि चरमसमयस्य भवंति ॥३८९॥ अथ सयोगायोगयोराह—

सौ एक, अठानवे और सत्तानवे प्रकृतिरूप हैं। इन चारों स्थानोंमें-से संज्वलन लोभ घटानेपर एक सौ एक, एक सौ, सत्तानवे, छियानवे प्रकृतिरूप क्षीणकषायके द्विचरम समय पर्यन्त चार स्थान होते हैं। इन चारों स्थानोंमें-से निद्रा प्रचलाको घटानेपर निन्यानवे, अठानवे, पंचानवे, चौरानवे प्रकृतिरूप क्षीणकषायके अन्तिम समयमें चार स्थान होते हैं ॥३८९॥

आगे सयोगी-अयोगीमें कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आक्षीणकषायक्षपकन चरमसमयचतुःसत्वस्थानंगळोळु प्रत्येकं पदिनाल्कुं पदिनाल्कुं प्रकृतिगळु क्षपिसल्पट्टु सत्वरहितंगळागि सयोगकेवलि भट्टारकंगेयुमयोगिकेवलि भट्टारकद्विचरमसमयपर्य्यंतमुं नाल्कुं नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

सयो०	अयो० द्वि०
८५	८५
८४	८४
८१	८१
८०	८०

अयोगिकेवलि चरमेपि पुनः अयोगिकेवलि भट्टारकन चरमसमयदोळु तन्न द्विचरमसमयचतुःसत्वस्थानंगळोळु प्रथमद्वितीयस्थानदोळेप्पत्तेरडुमनेप्पत्तेरडुमं तृतीयचतुर्थस्थानद्वयदोळरुवत्तेंटुमरुवत्तेंटुं प्रकृतिगळं हीनं माडुत्तिरलु शेषप्रकृतिसत्वस्थानंगळु अयोगिकेवलिचरमसमयदोळु पदिमूरुं पन्नेरडुं पदिमूरुं पन्नेरडुमितु नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवल्लि पुनरुक्तस्थानद्वयमं बिट्टरडुमपुनरुक्त स्थानंगळप्पुवु

चरम
१३ २
१२ २

अल्लि सातोदयमुळ्ळंगे असातं सत्वमिल्ल । असातोदयमुळ्ळंगे सातं सत्वमिल्लेंदितु द्वौ द्वौ भंगौ भवतः आ एरडेरडु भंगंगळप्पुवु । यितु गुणस्थानदोळु प्रकृतिसत्वस्थानंगळु भंगसहितमागि पेळल्पट्टुवु ।

तानि क्षीणकषायचरमसमयस्थानानि चतुर्दशप्रकृतिरहितानि सयोगायोगद्विचरमसमयपर्यंतं च भवंति । पुनर्द्विचरमचतुःस्थानेषु प्रथमद्वितीययोर्द्वासप्ततौ तृतीयचतुर्थयोरष्टषष्ट्यां चापनीतायां चरमसमये द्वे त्रयोदशात्मके द्वादशात्मके तत्र पुनरुक्तद्वये त्यक्ते द्वे भवतः । तत्र सातोदययुतस्य नासातसत्त्वमसातोदययुतस्य न सातसत्त्वमिति द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । एवं गुणस्थानेषु सत्त्वस्थानानि सभंगान्युक्तानि ॥३९०॥

क्षीणकषायके अन्त समय सम्बन्धी चार स्थानोंमें-से ज्ञानावरण पाँच, दर्शनावरण चार और अन्तराय पाँच इन चौदह प्रकृतियोंको घटानेपर पिचासी, चौरासी, इक्यासी और अस्सी प्रकृतिरूप चार स्थान सयोगी तथा अयोगीके द्विचरम समय पर्यन्त होते हैं। पुनः अयोगीके द्विचरम समय सम्बन्धी चार स्थानोंमें-से प्रथम और द्वितीयमें बहत्तर तथा तीसरे और चतुर्थमें अड़सठ प्रकृति घटानेपर तेरह, बारह, तेरह, बारह ये चार स्थान अयोगीके अन्तिम समयमें होते हैं। इनमें-से दो पुनरुक्त छोड़ देनेपर दो रहते हैं। यहाँ जिसके सातावेदनीयका उदय होता है उसके साताका ही सत्त्व होता है असाताका सत्त्व नहीं होता। और जिसके असाताका उदय होता है उसके असाताका ही सत्त्व होता है साताका नहीं। अतः इन दोनों स्थानोंमें साता-असाता प्रकृतिके बदलनेसे दो-दो भंग होते हैं। इस प्रकार गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान भंगसहित कहे ॥३९०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतरं दुगछक्कतिण्णि वग्गेणूणा एंदितुपशमकरुगळुपशमश्रेणियोळनंतानुबंधिचतुष्टयसहित स्थानाष्टकंगळु पेळल्पट्टुवप्पुदरिंदं तंतम्म पक्षदोळा सत्वस्थानाष्टकंगळिल्लें दित्यादि विशेषंगळुमना स्थानभंगसंख्येगळुमं गाथाचतुष्टयदिदं पेळदपरु :—

णत्थि अणं उवसमगे खवगापुव्वं खवित्तु अट्ठा य ।
पच्छा सोलादीणं खवणं इदि केइ णिद्दिट्ठं ॥३९१॥

नास्त्यनंतानुबंध्युपशमके क्षपकाः पूर्वं क्षपयित्वाष्टौ च । पश्चात् षोडशादीनां क्षपणेति कैश्चिन्निर्दिष्टं ॥

श्रीकनकनंदिसिद्धांतचक्रवर्ति तीर्थसंप्रदायदोळुपशम श्रेणियोळुपशमकर्नाल्वरोळमनंतानुबंधिचतुष्टयसत्वयुताष्टस्थानंगळिल्ल । क्षपकरु मध्यमाष्टकषायंगळ मुन्नं क्षपिसि बळिक्क षोडशादिप्रकृतिगळ क्षपणेयं माळ्परेंदितु मत्ते केलंबराचार्य्यरुगळिंदं पेळल्पट्टुदु ॥

अथ दुगछक्कतिण्णिवग्गेणूणेत्युपशमकाना सानंतानुबंधिस्थानाष्टकयुक्तं तत्स्वपक्षे नेत्यादिविशेषं तद्भंगसंख्यां च गाथाचतुष्केणाह—

श्रीकनकनंदिसिद्धांतचक्रवर्तितीर्थसंप्रदाये चतुरुपशमकेष्वनंतानुबंधिचतुष्कसत्त्वयुतस्थानाष्टकं न स्यात् । क्षपका मध्यमकषायाष्टकं पूर्वं क्षपयित्वा पश्चात् षोडशादीनि क्षपयंति इति पुनः कैश्चिदुक्तं ॥३९१॥

क्षीणकषाय ८ स्थान ८ भंग

१०१ १	९९ १
१०० १	९८ १
९७ १	९५ १
९६ १	९४ १

सयोगी ४ स्थान ४ भंग

८५
८४
८१
८०

अयोगी ६ स्थान ८ भंग

उपान्त	अन्त
८५ १	१३ २
८४ १	१२ २
८१ १	१३ पु.
८० १	१२ पु.

आगे ग्रन्थकार कहते हैं कि पूर्वमें जो अनन्तानुबन्धी सहित आठ स्थान उपशम श्रेणिमें कहे हैं वे हमारे मतानुसार नहीं हैं—

श्री कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके मतानुसार उपशमश्रेणिके चार गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके सत्त्व सहित जो बद्धायु और अबद्धायुकी चार पंक्तियोंमें आठ स्थान कहे हैं वे नहीं होते। अतः चौबीसके स्थानमें सोलह ही स्थान होते हैं। तथा क्षपक अनिवृत्तिकरण पहले तो अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान रूप आठ कषायोंका क्षपण करता है। पीछे सोलह आदि प्रकृतियोंका क्षपण करता है ऐसा किन्हीं आचार्योंका मत है ॥३९१॥

---

१. उपशमकचतुष्कस्य प्रत्येकं चतुर्विंशतिस्थानानि एकस्यां रचनायां संदर्शितानि । तत्र तिर्यक् त्रिस्थाने प्रथमसत्त्वस्थानं द्विहीनं आयुर्द्वयरहितं नत्वनंतानुबंधिचतुष्करहितं एवं व्याख्याने पूर्वोक्तप्रकारेण तस्याधः समसत्त्वस्थानान्यनंतानुबंधिचतुष्कसहितानि । एवं स्थानाष्टकं अनंतानुबंधिचतुष्कसत्त्वसहितं प्रणीतं इति यावत् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणियट्टिगुणट्ठाणे मायारहिदं च ठाणमिच्छंति ।
ठाणा भंगपमाणा केइ एवं परूवेंति ॥३९२॥

अनिवृत्तिगुणस्थाने मायारहितं च स्थानमिच्छंति। स्थानानि भंगप्रमाणानि केचिदेवं प्ररूपयंति ॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु मायारहितमप्प नाल्कुं स्थानंगळंगीकरिसल्पट्टुवु । स्थानंगळु भंगप्रमाणंगळे यें दितु केलंबराचार्य्यरुगळु पेळ्वरु । अंतागुत्तं विरलु स्थानभंगसंख्ययें गाथाद्वयदिदं पेळदपरु :—

अट्ठारह चउ अट्ठं मिच्छतिए उवरि चाल चउठाणे ।
तिसु उवसमगे संते सोलस सोलस हवे ठाणा ॥३९३॥

अष्टादश चतुरष्टौ मिथ्यादृष्टयादित्रये उपरि चत्वारिंशच्चतुः स्थाने त्रिषूपशमकेषूपशांते षोडश षोडश भवेयुः स्थानानि ॥

मिथ्यादृष्टियोळं सासादननोळं मिश्रनोळं पूर्व्वोक्तप्रकारदिदं क्रमदिं पदिनें टुं नाल्कुं एंटुं स्थानंगळप्पुवु। मेले असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नाल्वत्तुं नाल्वत्तुं सत्वस्थानंगळप्पुवु। उपशमकम्मूवरोळमुपशांतकषायनोळं प्रत्येकमनंतानुबंधिसत्वयुतबद्धाबद्धायुष्यरुगळें टें टुं स्थानंगळु कूडि प्रत्येकं षोडश षोडश सत्वस्थानंगळप्पुवु । क्षपकरोळु पूर्व्वोक्तक्रमदिदमपूर्व्वकरणनोळु स्थानंगळु नाल्कु । अनिवृत्तिकरणनोळु संज्वलनमायारहितचतुःस्थानंगळुगूडि नाल्वत्तु । सूक्ष्मसांपरायनोळुस्थानंगळु नाल्कु । क्षीणकषायनोळु सत्वस्थानंगळें टु । सयोगरोळु सत्वस्थानंगळु नाल्कु । अयोगिकेवलियोळु सत्वस्थानंगळारु अरियल्पडुवुवु ॥

अनिवृत्तिगुणस्थाने मायारहितं स्थानचतुष्कमिच्छंति । स्थानानि भंगप्रमाणानीति केचित्प्ररूपयंति ॥३९२॥ एवं सति स्थानभंगसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानत्रये स्थानानि प्राग्वत् क्रमेणाष्टादश चत्वार्यष्टौ भवंति । उपर्यसंयतादिचतुर्षु प्रत्येकं चत्वारिंशच्चत्वारिंशत् उपशमकत्रये उपशांतकषाये चानंतानुबंधिसत्वरहितानि बद्धाबद्धायुष्काणामष्टावष्टौ भूत्वा षोडश षोडश, क्षपके तु पूर्वोक्तक्रमेणापूर्वकरणे चत्वारि अनिवृत्तिकरणे संज्वलनमायारहितचतुर्भिश्चत्वारिंशत्, सूक्ष्मसांपराये चत्वारि, क्षीणकषायेऽष्टौ, सयोगकेवलिनि चत्वारि, अयोगकेवलिनि

तथा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें कोई आचार्य मायाकषायसे रहित चार स्थान मानते हैं। तथा किन्हींका कहना है कि उसमें स्थान भंगोंकी संख्या समान है ॥३९२॥

ऐसा होनेपर स्थान और भंगोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें स्थान पूर्वोक्त प्रकार अठारह, चार और आठ होते हैं। आगे असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें चालीस-चालीस स्थान होते हैं। उपशमश्रेणिके तीन गुणस्थानोंमें और उपशान्तकषायमें अनन्तानुबन्धीके सत्त्वसे रहित बद्धायु अबद्धायु-सम्बन्धी चार-चार पंक्तियोंके आठ-आठ स्थान होनेसे सोलह-सोलह स्थान होते हैं। क्षपकश्रेणिमें पूर्वोक्त क्रमसे अपूर्णकरणमें चार स्थान हैं। अनिवृत्तिकरणमें छत्तीस स्थान तो पूर्वोक्त हैं और संज्वलन माया रहित चार स्थान जो पहले सूक्ष्म साम्परायमें कहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णेक्कारं छक्कदि वीससयं अट्ठदाल दुसु तालं ।
वीसडवण्णं वीसं सोलट्ठ य चारि अट्ठेव ॥३९४॥

पंचाशदेकादश षट्कृतिविंशत्युत्तरशतं अष्टचत्वारिंशद्द्वयोश्चत्वारिंशत् विंशतिरष्टापंचाशत् विंशतिः षोडशाष्ट चतुरष्टावेव ॥

मिथ्यादृष्टियोळु पूर्व्वोक्तपंचाशद्भंगंगळेयप्पुवु । सासादननोळु पूर्व्वोक्तद्वादश भंगंगळोळु अबद्धायुःसत्वस्थानदोळु मरणमादोडे देवापर्य्याप्तकनें ब भंगमं कळेदेकादश भंगंगळप्पुवु । एकें-दोडा द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिबद्धदेवायुष्यंगे सासादनगुणस्थानमं पोद्दिदोडल्लि मरणमिल्लें दु पेळ्वाचार्य्यर पक्षमंगीकृतमप्पुदरिंदं । मिश्रगुणस्थानदोळु मुंपेळ्द षट्त्रिंशद्भंगंगळेयप्पुवु । असंयतनोळं मुंपेळ्द विंशत्युत्तरशत भंगंगळप्पुवु । देशसंयतनोळु पूर्व्वोक्ताष्टाचत्वारिंशद्भंगंगळप्पुवु । प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरुगळोळु पूर्व्वोक्तचत्वारिंशच्चत्वारिंशद्भंगंगळेयप्पुवु । अपूर्व्वकरणनोळुपशमश्रेणिय पदिनारुं भंगंगळुं क्षपकश्रेणिय नाल्कुं भंगंगळु गूडि विंशतिभंगंगळप्पुवु । अनिवृत्तिकरणनोळुपशमश्रेणिय पदिनारुं भंगंगळुं क्षपकश्रेणिय मायारहित चतुर्भंगगळु गूडि नाल्वत्तुं नपुंसकवेदमं क्षपिसिदेडेयोळु नाल्कुं स्थानंगळोळु तीर्त्थरहितद्वितीयचतुर्त्थस्थानंगळोळु स्त्रीषंडवेदसत्वकृतभंगंगळेरडप्पुवंतु अष्टापंचाशद्भंगंगळप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायनोळुपशमश्रेणिय षोडश भंगंगळुं क्षपकश्रेणिय चतुर्भंगंगळुं कूडि विंशतिभंगंगळप्पुवु । उपशांतकषायनोळुपशमश्रेणिय पदिनारे भंगंगळप्पुवु । क्षीणकषायनोळु द्विचरमचरमसमयसंभविसत्वस्थानं-

---

षट् ॥३९३॥

ते पूर्वोक्तभंगा मिथ्यादृष्टौ पंचाशत् । सासादने द्वादश स्वबद्धायुःस्थानमध्यवर्तिदेवापर्याप्तभेदमुद्वृत्यैकादश, द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टेर्बद्धदेवायुष्कस्य सासादने मरणं नास्तीति पक्षांगीकरणात् । मिश्रे षट्त्रिंशत् । असंयते विंशत्युत्तरशतं । देशसंयतेऽष्टाचत्वारिंशत् । प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चत्वारिंशत् चत्वारिंशत् । अपूर्वकरणे उपशमके षोडश, क्षपके चत्वारः, मिलित्वा विंशतिः । अनिवृत्तिकरणे उपशमके षोडश, क्षपके षट्त्रिंशत् । मायारहिताः चत्वारः । नपुंसकवेदे क्षपणास्थानस्य चतुर्षु स्थानेषु तीर्थरहितद्वितीयचतुर्थयोः स्त्रीषंढवेदकृतौ

थे वे अनिवृत्तिकरणमें ही माननेसे चालीस स्थान हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें चार, क्षीणकषायमें आठ, सयोग केवलीमें चार और अयोगकेवलीमें छह पूर्वोक्त स्थान होते हैं ॥३९३॥

मिथ्यादृष्टिमें पूर्वोक्त भंग पचास हैं। सासादनमें बारह हैं। उनमें-से बद्धायुस्थानमें देव अपर्याप्तक भेद निकाल देनेसे ग्यारह भंग होते हैं। क्योंकि जिस द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी जीवके देवायुका बन्ध हुआ है उसका सासादनमें मरण नहीं होता इस पक्षको स्वीकार करनेसे ग्यारह भंग कहे हैं। मिश्रमें छत्तीस, असंयतमें एक सौ बीस, देशसंयतमें अड़तालीस, प्रमत्त और अप्रमत्तमें चालीस-चालीस. उपशमक अपूर्वकरणमें सोलह, क्षपकमें चार, मिलकर बीस। अनिवृत्तिकरण उपशमकमें सोलह, क्षपकमें छत्तीस पूर्वोक्त तथा चार माया रहित, तथा नपुंसक वेदकी क्षपणाके चार स्थानोंमें-से तीर्थंकर रहित दूसरे और चौथे स्थानमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके बदलनेसे दो-दो भंग हुए। इस तरह १६ + ३८ + ४ सब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गळें टक्कमें दु भंगंगळप्पुवु । सयोगकेवलियोळु नाल्के भंगंगळप्पुवु । अयोगिकेवलियोळु द्विचरम-चरमसमयसत्वस्थानंगळारक्कमें दु भंगंगळप्पुवेके दोडे चरमसमयदोळु सातासातसत्वभेदविंदमेरडु भंगंगळधिकंगळप्पुर्दारदं इल्लि संदृष्टि रचनाविशेषमिदु ।

*	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
स्थान	१८	४	८	४०	४०	४०	४०	उ १६क्ष४	उ१६क्ष४०	उ १६ । ४	१६	८	४	४।२
भंग	५०	११	३६	१२०	४८	४०	४०	२०	५८	२०	१६	८	४	८

एवं सत्तट्ठाणं सवित्थरं वण्णियं मए सम्मं ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं ॥३९५॥

एवं सत्वस्थानं सविस्तरं वर्णितं मया सम्यक् । यः पठति श्रुणोति भावयति स प्राप्नोति निर्वृतेः सौख्यं ॥

इंतु सत्वस्थानं सविस्तरमागि येंमिदं वर्ण्णिसल्पट्टुदु । सम्यक् अवनोर्व्वनोवुगुं केळुगुं भाविसुगुमातं मोक्षसुखमनेय्दुगुं ॥

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥३९६॥

वरेंद्रनंदिगुरोः पार्श्वे श्रुत्वा सकलसिद्धांतं । श्रीकनकनंदिगुरुणा सत्वस्थानं समुद्दिष्टं ॥

द्वौ एवमष्टपंचाशत् । सूक्ष्मसांपराये उपशमके षोडश, क्षपके चत्वारः, मिलित्वा विंशतिः । उपशांतकषाये षोडश । क्षीणकषाये द्विचरमचरमसमयाष्टस्थानानामष्टौ । सयोगे चत्वारः । अयोगे द्विचरमसमयस्थानषट्क-स्याष्टौ, चरमसमये सातासातसत्त्वभेदेन भंगद्वयस्याधिक्यात् ॥३९४॥

एवं सत्त्वस्थानं सविस्तरं मया वर्णितं सम्यक् यः पठति शृणोति भावयति स मोक्षसुखं प्राप्नोति ॥३९५॥

मिलकर अठावन भंग होते हैं। सूक्ष्म साम्परायमें उपशमकमें सोलह, क्षपकमें चार मिलकर बीस। उपशान्त कषायमें सोलह। क्षीणकषायमें द्विचरम और चरम समय सम्बन्धी आठ स्थानोंमें आठ। सयोगीमें चार। अयोगीमें द्विचरम और चरम समय सम्बन्धी छह स्थानों-में आठ भंग; क्योंकि चरम समयमें साता और असाताके सत्त्वके भेदसे दो भंग अधिक होते हैं ॥३९४॥

इस प्रकार मैंने सत्त्व स्थानका विस्तारसे सम्यक् वर्णन किया। जो इसे पढ़ता है, सुनता है, भाता है वह निर्वाण सुखको पाता है ॥३९५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेष्ठरप्पिंद्रनंदिभट्टारक पार्श्वदोळ् सकलसिद्धांतमं केळ्दु श्रीकनकनंदिसिद्धांतचक्रवर्त्तिगळिदं सत्वस्थानं सम्यक्कागि पेळल्पट्टुदु ॥

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण ।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

यथा चक्रेण चक्रिणा षट्खंडं साधितं अविघ्नेन । तथा मतिचक्रेण मया षट्खण्डं साधितं सम्यक् ॥

एंतीगळु चक्रदिदं चक्रवर्तियिं षट्खंडक्षेत्रमविघ्नदिदं साधिसल्पट्टुदंते मतिचक्रदिदमेन्निं जीवस्थानक्षुद्रकबंध । बंधस्वामित्व । वेदनाखंड । वर्गणाखंड । महाबंधमेंब षट्खंड सिद्धांतशास्त्रं सम्यग्विघ्नरहितमागि साधिसल्पट्टुदु ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्य महावाद वादीश्वरराय वादीपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरि सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्ट श्रीमत्केशवण्ण विरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांडदोळु कनकनंदिषट्त्रिंशत्गाथागुणस्थानप्रकृतिसत्वस्थानभंगस्वरूपनिरूपणमहाधिकारं निरूपितमादुदु ॥

सूरिमतल्लिकाश्रीमदिंद्रनंदिभट्टारकपार्श्वे सकलसिद्धांतं श्रुत्वा श्रीकनकनंदिसिद्धांतचक्रवर्तिभिः सत्वस्थानं सम्यक् प्ररूपितं ॥३९६॥

यथा चक्रेण चक्रवर्तिना षट्खण्डक्षेत्रमविघ्नेन साधितं तथा मतिचक्रेण मया जीवस्थानक्षुद्रकबंधबंधस्वामित्ववेदनाखंडवर्गणाखंडमहाबंधभेदषट्खंडसिद्धांतशास्त्रं सम्यक् साधितं ॥३९७॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां कर्मकांडे कनकनंदिकृतसत्वस्थानभंगप्ररूपणो नाम तृतीयोऽधिकारः ॥३॥

आचार्यश्रेष्ठ श्री इन्द्रनन्दि भट्टारकके पास सकल सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके द्वारा सत्त्व स्थान सम्यक्रूपसे कहा गया ॥३९६॥

जैसे चक्रवर्ती चक्रके द्वारा छह खण्डोंको बिना विघ्नबाधाके साधता है। उसी प्रकार मैंने मतिरूपी चक्रके द्वारा जीवस्थान क्षुद्रकबन्ध, बन्ध स्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्धके भेदसे षट्खण्ड रूप सिद्धान्त शास्त्रको सम्यक् रूपसे साधा है ॥३९७॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कनकनन्दि आचार्यकृत सत्त्वस्थान भंग प्ररूपण नामक तीसरा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

(धर्म, दर्शन एवं सिद्धान्त ग्रन्थ)

षट्खण्डागम-परिशीलन
—पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

समीचीन जैन धर्म
—सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

गोम्मटसार (जीवकाण्ड एवं कर्मकाण्ड)
—आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती
—सम्पा. : डॉ. आ.ने. उपाध्ये
—अनु. : सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

पंचास्तिकायसार (प्राकृत-अँग्रेजी)
—सम्पा.-अनु. : प्रो. ए. चक्रवर्ती

समयसार (प्राकृत-अँग्रेजी)
—सम्पा.-अनु. : प्रो. ए. चक्रवर्ती

षड्दर्शनसमुच्चय (संस्कृत-हिन्दी)
—हरिभद्र सूरि
—सम्पा.-अनु. : प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

नयचक्र (प्राकृत-हिन्दी) : माइल्ल धवल
—सम्पा.-अनु. : पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

योगसारप्राभृत (संस्कृत-हिन्दी) : अमितगति
—सम्पा.-अनु. : पं. जुगलकिशोर मुख्तार

सर्वार्थसिद्धि (संस्कृत-हिन्दी)
—आचार्य पूज्यपाद
—सम्पा.-अनु. : पं. फूलचन्द्र शास्त्री

तत्त्वार्थवार्तिक (संस्कृत-हिन्दी) भाग 1,2
—भट्ट अकलंक
—सम्पा.-अनु. : प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

पाहुडदोहा : मुनि रामसिंह
—सम्पा. अनु. : डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्रीमती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org